



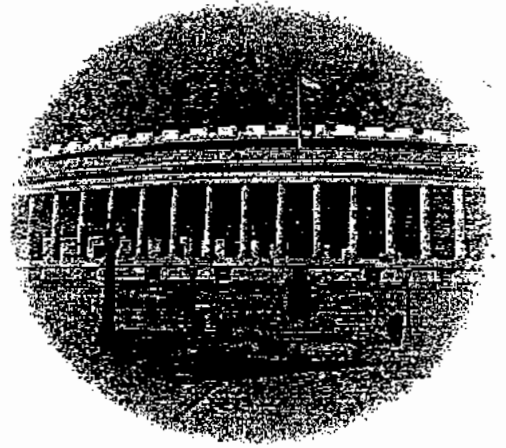
भारतीय
राजव्यवस्था
(*Indian Polity*)



भारतीय राजव्यवस्था
(Indian Polity)

इकाई-1 (Unit-1)

राजव्यवस्था : एक परिचय
(Polity : An Introduction)



- 1.1 राज्य (State) क्या है? राज्य के तत्व (Elements of state) क्या हैं? राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
- 1.2 शासन के तीनों अंगों— विधायिका (Legislature), कार्यपालिका (Executive) तथा न्यायपालिका (Judiciary) का परिचय व उनके पारस्परिक संबंधों की व्याख्या। कानूनों के विभिन्न प्रकार तथा प्राकृतिक न्याय की धारणा।
- 1.3 शासन प्रणालियों (Government systems) के विभिन्न प्रकार जैसे—धर्मतंत्र (Theocracy), राजतंत्र (Monarchy), निरंकुशतंत्र (Autocracy), तानाशाही (Dictatorship), कुलीनतंत्र (Aristocracy), अल्पतंत्र/गुटतंत्र (Oligarchy), भीड़तंत्र (Mobocracy), गुणतंत्र/योग्यतातंत्र (Meritocracy), औसततंत्र (Mediocracy) गणतंत्र (Republic), सैन्यतंत्र (Military Rule) तथा लोकतंत्र (Democracy) क्या हैं? भारतीय शासन प्रणाली उनमें से किसके नजदीक है?
- 1.4 लोकतंत्र (Democracy) तथा संविधानवाद (Constitutionalism) का ऐतिहासिक विकास। वर्तमान समय में संविधानवाद के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ।
- 1.5 लोकतंत्र के विभिन्न प्रकार तथा भारतीय लोकतंत्र से उनका संबंध। लोकतंत्र की परिसंघात्मक (Confederal), संघात्मक (Federal) तथा एकात्मक (Unitary) प्रणालियों एवं संसदीय (Parliamentary) व अध्यक्षीय (Presidential) प्रणालियों में अंतर तथा भारतीय राजव्यवस्था के स्वरूप का निर्धारण।
- 1.6 कुछ महत्वपूर्ण देशों, जैसे- इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्ज़रलैंड, फ्रांस तथा जर्मनी की राजनीतिक प्रणालियों का परिचय तथा भारतीय राजनीतिक प्रणाली से उनकी तुलना।
- 1.7 भारतीय राजनीतिक प्रणाली तथा राजनीति पर प्रभाव डालने वाली प्रमुख विचारधाराओं (Ideologies), जैसे- मार्क्सवाद (Marxism), नक्सलवाद, माओवाद, समाजवाद (Socialism), उदारवाद

राज्य, राज्य के तत्व तथा राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता (State, Elements of state and the need of political system)

भारतीय राजव्यवस्था को समझने से पहले जरूरी है कि राजव्यवस्था (Polity) की कुछ मूलभूत अवधारणाओं तथा पारिभाषिक शब्दावली (Terminology) से आप परिचित हों। ऐसी कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएँ तथा उनकी व्याख्या आगे दी गई है।

राज्य क्या है? (What is State?)

राजव्यवस्था से जुड़ी सबसे प्राथमिक अवधारणा 'राज्य' (State) है। राज्य शब्द का प्रयोग यूँ तो विभिन्न प्रान्तों (Provinces), जैसे उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु आदि को सूचित करने के लिए भी होता है, किन्तु इसका वास्तविक अर्थ किसी प्रान्त से न होकर किसी समाज की 'राजनीतिक संरचना' (Political Structure) से होता है। वस्तुतः यह एक अमूर्त (Abstract) अवधारणा है अर्थात् इसे बौद्धिक स्तर पर समझा तो जा सकता है, किन्तु देखा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए भारत की सरकार, संसद, न्यायपालिका, राज्यों की सरकारें, नौकरशाही से जुड़े सभी अधिकारी इत्यादि का समग्र संयोजन ही राज्य कहलाती है। किसी समाज के विकसित व सक्षम होने की पहचान इस बात से होती है कि वह एक स्वतंत्र राज्य के रूप में विकसित हो सका है या नहीं? विश्व के अधिकांश विकसित देशों में एक स्थिर राजनीतिक प्रणाली का दिखाई देता है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया में) और स्थिर राजनीतिक प्रणाली से वंचित देशों (जैसे कुछ समय पहले के अफगानिस्तान) में विकास प्रक्रिया की अवस्था होना इसी बात का प्रमाण है।

राज्य के तत्व (Elements of State)

किसी भी राज्य के होने की शर्त है कि उसमें चार तत्व विद्यमान हों-

राज्य के तत्व (Constituents of State)

भू-भाग (Geographical Area) जनसंख्या (Population) सरकार (Government) संप्रभुता (Sovereignty)

- (क) **भू-भाग (Geographical Area):** अर्थात् एक ऐसा निश्चित भौगोलिक प्रदेश होना चाहिए जिस पर उस 'राज्य' की सरकार अपनी राजनीतिक क्रियाएँ करती हो। उदाहरण के लिए, भारत का सम्पूर्ण क्षेत्रफल भारत राज्य का भौगोलिक आधार या भू-भाग है।
- (ख) **जनसंख्या (Population):** राज्य होने की शर्त है कि उसके भू-भाग पर निवास करने वाला एक ऐसा जनसमुदाय होना चाहिए जो राजनीतिक व्यवस्था के अनुसार संचालित होता हो। यदि जनसंख्या ही नहीं होगी तो राज्य का अस्तित्व निरर्थक हो जाएगा।
- (ग) **सरकार (Government):** सरकार एक या एक से अधिक व्यक्तियों का वह समूह है जो व्यावहारिक स्तर पर राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करता है। 'राज्य' (State) और 'सरकार' (Government) में यही अंतर है कि राज्य एक अमूर्त संरचना (Abstract structure) है जबकि सरकार उसकी मूर्त (Concrete) व व्यावहारिक अभिव्यक्ति।
- (घ) **संप्रभुता या प्रभुसत्ता (Sovereignty):** यह राज्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। इसका अर्थ है कि राज्य के पास अर्थात् उसकी सरकार के पास अपने भू-भाग और जनसंख्या की सीमाओं के भीतर कोई भी निर्णय करने की पूरी शक्ति होनी चाहिए तथा उसे किसी भी बाहरी और भीतरी दबाव में निर्णय करने के लिए बाध्य नहीं होना चाहिए।

राज्य के ये चारों तत्व अनिवार्य हैं, वैकल्पिक नहीं। यदि इनमें से एक भी अनुपस्थित हो तो राज्य की अवधारणा निरर्थक हो जाती है। इसे कुछ उदाहरणों की सहायता से ज्यादा बेहतर तरीके से समझा जा सकता है—

प्रदेश के 'धर्मशाला' नामक स्थान से तिब्बत की निर्वासित सरकार का संचालन करने लगे तो एक विचित्र सी स्थिति उत्पन्न हो गई, क्योंकि तिब्बत की सरकार और कुछ जनता तो यहाँ थी किन्तु उनके पास न तो अपना भू-भाग था और न ही अपने मूल भू-भाग के संबंध में स्वतंत्र निर्णय करने की ताकत या प्रभुसत्ता।

2. कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि सरकार भी हो, जनता भी हो, भू-भाग भी हो किन्तु संप्रभुता की कमी के कारण राज्य की धारणा पूरी न हो सके। उदाहरण के लिए, पराधीन भारत में जब चौधसराय भारतीय भू-भाग का सर्वोच्च प्रशासक होता था तो एक निश्चित भू-भाग के भीतर जनता उसकी आज्ञाओं का पालन करती थी। किन्तु, तब भी वह संप्रभु नहीं था क्योंकि वह ब्रिटेन की सरकार के आदेशों के तहत कार्य करता था।
3. जब किसी देश में अराजक स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं तो भी राज्य का ढाँचा चरमराने लगता है। उदाहरण के लिए, अफगानिस्तान में लम्बे समय तक कई गुटों में झगड़ा चलता रहा और अलग-अलग गुट देश के अलग-अलग हिस्से पर कब्जा जमाने में सफल होते रहे। ऐसी स्थिति में सरकार की शक्तियाँ व्यावहारिक स्तर पर शून्य हो जाती हैं, इसलिए उसकी संप्रभुता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता क्यों पड़ती है? (Why is political system required?)

एक स्वाभाविक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या मानव समाज को उचित तरीके से रहने के लिए सचमुच राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत है या नहीं? और यदि हाँ, तो क्यों?

कुछ लोग मानते हैं कि मनुष्य की राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत तो जहाँ जहाँ राजनीतिक व्यवस्था तो मनुष्य के इतिहास की गतिवियों का एक परिणाम है। यदि मानव संप्रभुता और सामूहिक विचारों से काम करती है तो राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत अपने आप खत्म हो जाती है। इसीलिए मानव समाज में जहाँ मानव सत्ता और सावसीवाद विचारों की प्रतीति है, वहाँ महात्मा गांधी भी मानते थे कि जब समाज के प्रत्येक सदस्य की 'आत्मिक उन्नति' का पर्याप्त अवसर मिलेगा तो राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत नहीं रहेगी।

किन्तु कुछ लोग मानते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत तो जहाँ जहाँ राजनीतिक व्यवस्था तो मनुष्य के इतिहास की गतिवियों का एक परिणाम है। यदि मानव संप्रभुता और सामूहिक विचारों से काम करती है तो राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत अपने आप खत्म हो जाती है। इसीलिए मानव समाज में जहाँ मानव सत्ता और सावसीवाद विचारों की प्रतीति है, वहाँ महात्मा गांधी भी मानते थे कि जब समाज के प्रत्येक सदस्य की 'आत्मिक उन्नति' का पर्याप्त अवसर मिलेगा तो राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत नहीं रहेगी।

मानव समाज को सचमुच राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता है, इसका प्रमाण बहुत स्पष्ट है। इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों (Anthropologists) ने अभी तक प्राचीन से प्राचीन और सरल से सरल जितने भी समाजों का अध्ययन किया है, उन सभी में किसी न किसी रूप में राजनीतिक ढाँचे (Political structure) की उपस्थिति देखी गई है, चाहे वह ढाँचा राजतंत्र (Monarchy) का हो, लोकतंत्र (Democracy) का या तानाशाही (Dictatorship) का।

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि आज के समय में राजनीतिक व्यवस्था की भूमिका काफी ज्यादा बढ़ गई है। जनसंख्या की अधिकता के कारण अब यह बिल्कुल संभव नहीं रहा है कि लोग आपसी सहमति से ही काम चला लें। औपचारिक कानूनों के निर्माण और कानूनों को लेकर होने वाले विवादों की स्थिति में न्यायिक प्रक्रियाओं की ज़रूरत बहुत अधिक मात्रा में पड़ने लगी है। इतना ही नहीं, आज की राजनीतिक व्यवस्था सिर्फ कानून का पालन करवाने तक सीमित नहीं है, अब उसने लोककल्याणकारी राज्य (Welfare state) का रूप धारण कर लिया है और समाज के सभी वर्गों को स्वतंत्रता, समानता और न्याय उपलब्ध कराना अब उसकी ज़िम्मेदारी हो गई है।

जहाँ तक भारत में राजनीतिक प्रणाली का प्रश्न है, इसकी आवश्यकता को कई स्तरों पर महसूस किया जा सकता है, जैसे-

(क) भारत में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया (Nation building process) अभी चल रही है जिसे राष्ट्र विरोधी ताकतें नुकसान पहुँचा सकती हैं। ऐसे खतरों से निपटने के लिए भजवूत राजनीतिक प्रणाली ज़रूरी है।

(ख) भारत की आंतरिक सुरक्षा (Internal security) के समक्ष अभी कई चुनौतियाँ हैं; जैसे- आतंकवाद (Terrorism)।

(ग) भारतीय राज्य एक कल्याणकारी राज्य (Welfare state) है और यह वंचित वर्गों (Deprived classes) को समानता की स्थिति में लाने के लिए गंभीर प्रयास करता है। आरक्षण (Reservation) तथा सामाजिक न्याय (Social justice) की अन्य नीतियाँ इसी उद्देश्य से लागू की जाती हैं। चूँकि भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा (जैसे- स्त्रियाँ, बच्चे, पिछड़ी जातियाँ तथा अल्पसंख्यक समुदाय) भिन्न-भिन्न दृष्टियों से वंचन (Deprivation) का शिकार रहा है और उन्हें समाज की मुख्यधारा (Mainstream) में लाने के लिए ज़रूरी है कि सरकार की ओर से उन्हें विशेष सुविधाएँ दी जाएँ, इसलिए भी भारत के लिए एक सुगठित राजनीतिक संरचना ज़रूरी है।

(घ) भारत में विभिन्न हित-समूह (Interest groups) रहते हैं जिनके बीच अपने हितों को लेकर टकराव होना स्वाभाविक है। इन हितों में सामंजस्य करते हुए उचित कानूनों के निर्माण के लिए संसद (Parliament) की ज़रूरत है जबकि ऐसे विवादों का न्यायिक समाधान करने के लिए एक सशक्त और सुलझी हुई न्यायपालिका (Judiciary) भी ज़रूरी है।

(ङ) भारतीय समाज तीव्र सामाजिक परिवर्तनों (Social changes) के दौर से गुज़र रहा है जिसके कारण वंचित वर्ग (Deprived classes) अपने अधिकारों की मांग बुलंद कर रहे हैं। इससे समाज के वे तबके असहज हैं जो पुरानी व्यवस्था में लाभकारी स्थिति में थे। ये परिवर्तन स्वाभाविक तौर पर तनावों को जन्म देते हैं जो कभी-कभी दलितों तथा स्त्रियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। सामाजिक परिवर्तन (Social change) तथा आधुनिकीकरण (Modernisation) की इस प्रक्रिया को इन दबावों से बचाने के लिए तथा उसे सुचारू रूप से चलाने के लिए सशक्त राजनीतिक ढाँचे की ज़रूरत पड़ती है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. राज्य के लिए अनिवार्य तत्व हैं—

(i) जनसंख्या (ii) भूभाग

(iii) संप्रभुता (iv) अर्थ-व्यवस्था

कूट

(1) (i), (ii) और (iii)

(2) (ii), (iii) और (iv)

(3) (i), (iii) और (iv)

(4) (i), (ii), (iii) और (iv)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) राज्य के चारों तत्व वैकल्पिक रूप से अनिवार्य होते हैं।

(ii) यदि चारों तत्वों में से एक भी अनुपस्थित हो तो राज्य की अवधारणा निरर्थक हो जाती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) और न ही (ii)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) संप्रभुता राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।

(ii) संप्रभुता राज्य की वह सार्वभौम शक्ति है जिससे वह किसी भी बाह्य अथवा आंतरिक निर्णयों को लेने के लिए स्वतंत्र है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) और न ही (ii)

(1) निश्चित रूप से समाज के अभाव के कारण

(2) जनसंख्या के अभाव के कारण

(3) सरकार के अभाव के कारण

(4) संप्रभुता के अभाव के कारण

5. भारत में राजनीतिक प्रणाली की आवश्यकता के कारण हैं—

(i) भारत में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया अभी चल रही है, जिसे राष्ट्र विरोधी ताकतें नुकसान पहुँचा सकती हैं।

(ii) भारत की आंतरिक सुरक्षा के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं।

(iii) भारत एक कल्याणकारी राज्य (Welfare state) की भूमिका में है।

(iv) भारतीय समाज तीव्र सामाजिक परिवर्तनों के दौर से गुज़र रहा है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

(1) केवल (iii) और (iv)

(2) (i), (iii) और (iv)

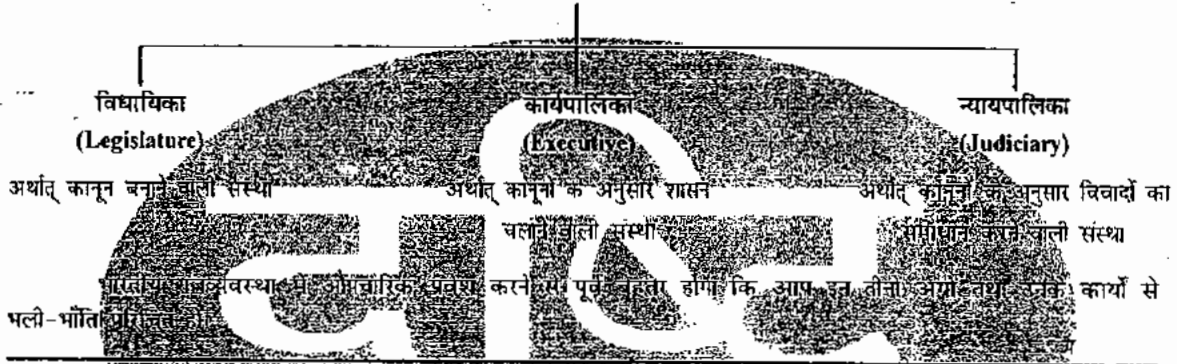
(3) (i), (ii) और (iii)

(4) उपरोक्त सभी

शासन के अंग (Organs of Government)

किसी भी सरकार या राज्यव्यवस्था के सामने मूलतः तीन चुनौतियाँ होती हैं- (क) कानून बनाने की चुनौती, (ख) कानूनों के अनुसार शासन कार्य का संचालन करने की चुनौती, तथा (ग) व्यक्तियों के आपसी विवादों या व्यक्ति और सरकार के विवादों के समाधान के लिए कानून-प्रणाली (Legal System) के अनुसार न्याय व्यवस्था (Justice System) संचालित करने की चुनौती। प्रत्येक शासन व्यवस्था में इन तीन मूल चुनौतियों के समाधान के लिए उपाय किये जाते हैं। जिन तीन व्यवस्थाओं के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान किया जाता है, उन्हें शासन के अंग कहते हैं। शासन के तीनों अंग निम्नलिखित हैं-

शासन के अंग (Organs of Government)



विधायिका (Legislature)

विधायिका का काम कानूनों का निर्माण करना है। राजतन्त्र प्रणाली (Monarchical system) में यह कार्य आमतौर पर राजा के हाथ में होता था तथा राजा की इच्छा को ही कानून माना जाता था। धार्मिक शासन प्रणाली (Theocratic system) में धार्मिक ग्रन्थों का ही कानून माना जाता था। काका का कानून का अंतिम व्याख्याकार माना जाता था क्योंकि वे ही बताते थे कि कानून क्या है। इसलिए कानून का निर्माण करना एक उदाहरण छोड़ दे तो आधुनिक काल से पूर्व मोटे तौर पर कानूनों का निर्माण इसी रीति से होता रहा।

आधुनिक काल में लोकतंत्र की स्थापना के बाद माना गया कि कानूनों का निर्माण जनता की इच्छाओं के अनुसार होना चाहिए। स्विट्ज़रलैंड जैसे कुछ देशों में कोशिश की जाती है कि जनता की इच्छाओं को सीधे तौर पर ही जान लिया जाये। इसके लिए वहाँ कुछ विशेष व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं, जैसे-पहल (Initiative) तथा जनमतसंग्रह (Referendum)। किन्तु, सामान्यतः जनसंख्या तथा क्षेत्रफल की अधिकता के कारण व्यावहारिक तौर पर यह संभव नहीं होता कि सारी जनता को राय जानी जा सके। इसलिए, आजकल अधिकांश देशों में प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) के माध्यम से विधायिका का गठन किया जाता है। इसके अंतर्गत, एक क्षेत्र विशेष का जनसमुदाय अपने एक प्रतिनिधि को चुनकर विधायिका या विधानमण्डल में भेजता है तथा सभी क्षेत्रों से चुनकर आये ऐसे प्रतिनिधि आपसी सहमति से कानूनों का निर्माण करते हैं। चूँकि ये सब प्रतिनिधि जनता द्वारा इसी उद्देश्य के लिए चुने जाते हैं, इसलिए मान लिया जाता है कि इनकी सहमति से निर्मित कानून वस्तुतः जनता की इच्छा के अनुसार ही बनाए गये हैं।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में विधायिका आमतौर पर दो सदनों (Two houses) से मिलकर बनती है, जैसे भारत में लोकसभा और राज्यसभा। इनमें से एक सदन जनता द्वारा सीधे चुना जाता है और उसकी कानूनों के निर्माण में प्रमुख भूमिका होती है। भारत में लोकसभा इसी भूमिका में है। दूसरे सदन की ज़रूरत मुख्यतः उन देशों में होती है जो संघात्मक ढाँचे (Federal Structure) के अनुसार संगठित होते हैं। संघात्मक ढाँचे को सुरक्षित बनाए रखने के लिए इस दूसरे सदन में सभी राज्यों या भागों के एक सदस्यों को स्थान मिलता है। संघीय राज्य संघीयता में 'संघीय' और शासन में 'राज्य' के अर्थों में सही भूमिका

है। चूँकि अधिकांश कानूनों के निर्माण के लिए इस सदन की भी सहमति आवश्यक होती है, इसलिए इस सदन की उपस्थिति से यह सुनिश्चित होता रहता है कि केन्द्र सरकार राज्यों की शक्तियों को छीन न ले। ध्यातव्य है कि ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था इसका एक महत्वपूर्ण अपवाद है। वहाँ की राजनीतिक प्रणाली एकात्मक (Unitary) है, इसलिए वस्तुतः वहाँ दूसरे सदन की ज़रूरत नहीं है। किन्तु, तब भी वहाँ लॉर्ड्स सभा (House of Lords) के रूप में दूसरा सदन रखा गया है, हालाँकि उसका मूल कार्य अपनी परंपराओं को सुरक्षित रखना तथा कुछ अतिविशिष्ट व गणमान्य लोगों को संसद में शामिल होने का मौका देना है, न कि प्रांतों या स्थानीय इकाइयों के अधिकारों की रक्षा करना।

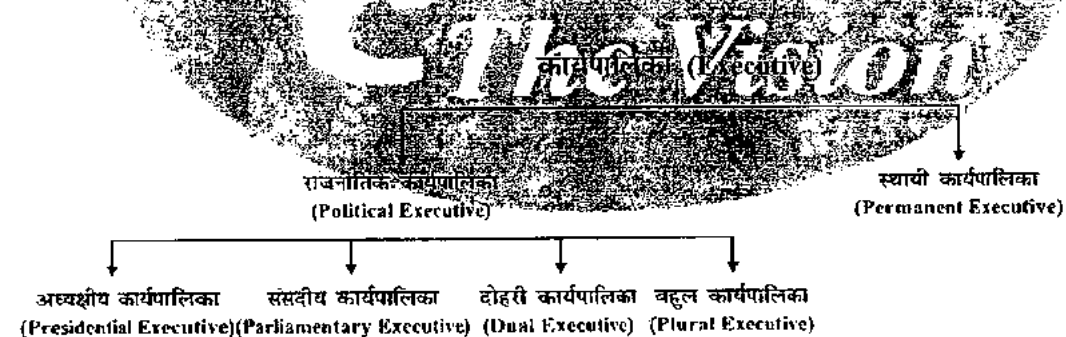
जहाँ तक भारतीय विधायिका (Indian Legislature) का प्रश्न है, यह संघात्मक ढाँचे (Federal Structure) पर आधारित है। केन्द्र और विभिन्न राज्यों की विधायिकाएँ संविधान में निर्दिष्ट अपने-अपने क्षेत्रों के लिए विधान बनाती हैं। केन्द्रीय विधायिका या संसद (Parliament) द्विसदनीय (Bicameral) है। प्रचलित भाषा में, इसके दो सदन में से 'लोकसभा' को निचला सदन तथा 'राज्यसभा' को उच्च सदन कहते हैं (हालाँकि संविधान में इस शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया है)। 'राज्य-सभा' का गठन कुछ हद तक अमेरिकी सेनेट की तरह राज्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिए है और कुछ हद तक ब्रिटेन के 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' की तरह गणमान्य नागरिकों को विधायिका का हिस्सा बनाने के लिए। राज्यों या प्रांतों की विधायिकाएँ आमतौर पर एकसदनीय (Unicameral) हैं। इस सदन को 'विधानसभा' कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि यदि किसी राज्य विशेष में ज़रूरत महसूस की जाए तो दूसरे सदन के तौर पर 'विधान परिषद' की स्थापना की जा सकती है। विधायिका के एक अंग के रूप में भारतीय राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों (Bills) पर अपनी सहमति प्रदान करता है।

कार्यपालिका (Executive)

राज्य के दूसरे अंग को कार्यपालिका कहते हैं। इसका अर्थ उस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से है जो विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार शासन चलाता है अर्थात् कानूनों को लागू करता है।

प्राचीन व्यवस्थाओं में विधायिका (Legislature) और कार्यपालिका (Executive) में कोई भेद नहीं था। उदाहरण के लिए, राजतंत्र (Monarchy) में राजा विधायिका का प्रमुख भी होता था और कार्यपालिका का भी। इसी प्रकार, धर्मतंत्र (Theocracy) में धर्म का प्रमुख हो लोग राजा का सर्वोच्च अधिकारी होता था।

आधुनिक काल में जैसे-जैसे लोकतंत्र और संविधानवाद का विकास हुआ, कार्यपालिका को सरलता में परिवर्तन आने लगे। वर्तमान समय में कार्यपालिका के कई रूप दिखाई पड़ते हैं जो नीचे बने चित्र में देखकर समझे जा सकते हैं।



उपरोक्त चित्र द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण में कार्यपालिका के सबसे महत्वपूर्ण दो प्रकार हैं- (क) राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive) तथा (ख) स्थायी कार्यपालिका (Permanent Executive)।

राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive) कार्यपालिका के सर्वोच्च स्तर पर होती है जिसे जनता निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनती है। उदाहरण के लिए, भारत में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल या अमेरिका में राष्ट्रपति इसी के उदाहरण हैं।

इसके विपरीत, स्थायी कार्यपालिका (Permanent Executive) में वे उच्च पदाधिकारी शामिल होते हैं जो अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) के अंग होते हैं तथा जिनका कार्यकाल किसी तरह के निर्वाचन (Election) पर निर्भर नहीं होता। उदाहरण के लिए, भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) तथा अन्य सिविल सेवाओं के अधिकारी इसी के उदाहरण हैं। स्थायी कार्यपालिका को राजनीतिक कार्यपालिका के निर्देशों के अनुरूप कार्य करना होता है। इसमें शामिल लोगों को प्रशासन के क्षेत्र में विशेष दक्षता हासिल होती है। इसलिए, जिन विद्ओं पर राजनीतिक कार्यपालिका ऐसी दक्षता से वंचित होती

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive) के भी कई रूप देखे जा सकते हैं, जैसे-

(क) अध्यक्षीय कार्यपालिका (Presidential Executive):

यह प्रणाली अमेरिका जैसे देशों में प्रचलित है जहाँ जनता एक निर्वाचकागण (Electoral College) के माध्यम से राजनीतिक कार्यपालिका के प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति का चयन करती है। राष्ट्रपति को कार्यपालिका के क्षेत्र में सभी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(ख) संसदीय कार्यपालिका (Parliamentary Executive):

यह प्रणाली भारत और इंग्लैण्ड जैसे देशों में प्रचलित है। इसके अंतर्गत विधायिका (Legislature) के सदस्यों में से ही राजनीतिक कार्यपालिका का चयन होता है। विधायिकों में जिस दल के सदस्य बहुमत में होते हैं, वही दल अपनी सरकार बनाता है। सरकार चलाने वाले इसके सदस्यों के समूह को मंत्रिमण्डल कहा जाता है।

(ग) दोहरी कार्यपालिका (Dual Executive):

यह एक विशेष प्रणाली है जो फ्रांस जैसे कुछ देशों में दिखाई पड़ती है। इसके अंतर्गत कार्यपालिका की शक्तियाँ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में विभाजित होती हैं। ध्यातव्य है कि इसमें राष्ट्रपति का चुनाव अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली के समान होता है जबकि प्रधानमंत्री का चयन ब्रिटीश या भारतीय संसदीय प्रणाली के समान होता है।

(घ) बहुल कार्यपालिका (Plural Executive):

यह एक विशिष्ट व्यवस्था है जिसका उदाहरण स्विट्जरलैण्ड जैसे कुछ देशों में देखा जा सकता है। इसके अंतर्गत राजनीतिक कार्यपालिका के सभी सदस्य बराबर शक्तियाँ रखते हैं। उनमें सर्वोच्च अधिकारी का पद सिर्फ औपचारिक या नाममात्र का होता है। उदाहरण के लिए, स्विट्जरलैण्ड की राजनीतिक कार्यपालिका में एक प्रमुख सहित कुल सात सदस्य होते हैं किन्तु इन सातों की शक्तियाँ बराबर होती हैं। आमतौर पर इस रूप में दो वर्गों की नियुक्ति प्रचलित होती है।

यहाँ जहाँ भारतीय कार्यपालिका (Indian Executive) का अर्थ है, उसमें राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive) के स्तर पर ब्रिटीश या संसदीय प्रणाली जैसा दोहरी चयन किया गया है जिसके अन्तर्गत लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल मंत्रिमण्डल का गठन करती है। राष्ट्रपति का सामूहिक ज़िम्मेदारिता (Collective Responsibility) के सिद्धांत के अन्तर्गत कार्य करता है। राष्ट्रपति भारतीय कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान (Formal Head) है, किन्तु वास्तव में इसे मंत्रिमण्डल के निर्देशों के अनुसार ही काम करना होता है।

राजनीतिक कार्यपालिका के अंतर्गत एक विशेष वर्ग प्रणाली भारत में अर्थात् कार्यपालिका (Permanent Executive) के रूप में एक संशुक्त नौकरशाही या अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) माना जाता है। इसमें भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) जैसी अखिल भारतीय सेवाओं (All India Services) के अधिकारी भी शामिल हैं और भारतीय राजस्व सेवा (Indian Revenue Service) जैसी केंद्रीय सेवाओं (Central Services) के अधिकारी भी। राज्य के स्तर पर उनकी अपनी लोक-सेवाएँ (Public Services) भी कार्य करती हैं।

न्यायपालिका (Judiciary)

शासन का तीसरा अंग न्यायपालिका (Judiciary) कहलाता है। न्यायपालिका के कई कार्य हैं। इसका प्रमुख कार्य यह है कि विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार विभिन्न विवादों का समाधान करे। किन्तु, आजकल न्यायपालिका की भूमिका काफी हद तक विधायिका के समान भी होने लगी है। इसका कारण यह है कि कई कानून इतने जटिल और अस्पष्ट होते हैं कि न्यायपालिका को उनकी मौलिक व्याख्या करनी पड़ती है। ये व्याख्याएँ स्वतः कानून का दर्जा प्राप्त कर लेती हैं जिन्हें न्यायाधीश-निर्मित-कानून (Judge Made Laws) या निर्णय-कानून (Case Laws) कहते हैं। वर्तमान समय में इन्हें कानूनों की एक पृथक् शाखा के रूप में महत्त्व दिया जाता है। ध्यातव्य है कि उच्च स्तर के न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णय निचली अदालतों के लिए पूर्वनिर्णय (Precedent) होते हैं तथा उनके लिए बाद के किसी भी समान मामले में उन पूर्वनिर्णयों (Precedents) को आधार बनाना ज़रूरी होता है।

न्यायपालिका की शक्तियाँ (Powers of Judiciary):

न्यायपालिका की शक्तियाँ इस आधार पर तय होती हैं कि शासन का स्वरूप कैसा है? साधारणतः एकात्मक (Unitary) शासन प्रणाली में न्यायपालिका कमजोर होती है तथा संसद की शक्ति बहुत अधिक होती है। ब्रिटेन की राजनीतिक प्रणाली इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। किन्तु, संघात्मक (Federal) प्रणालियों में न्यायपालिका की शक्ति हमेशा अधिक होती है। उन्हें केन्द्र और प्रान्तों के बीच उत्पन्न होने वाले वैधानिक विवादों का समुचित समाधान करने के लिए यह शक्ति दी जाती है कि वे केन्द्रीय विधायिका द्वारा निर्मित कुछ कानूनों को भी इस आधार पर अवैध घोषित कर दें कि वे संघात्मक प्रणाली या संविधान की मूल भावना को विरुद्ध हैं। अमेरिका और भारत के सर्वोच्च न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त है, इसलिए वे अत्यन्त ताकतवर हैं। जिन देशों में लिखित संविधान होता है, वहाँ संविधान का सटीक निर्वचन (Exact Interpretation) करने का दायित्व भी न्यायपालिका के पास होता है जिससे उसकी शक्ति और बढ़ जाती है। पुनः जिन देशों के संविधान नागरिकों को मूल अधिकारों की गारण्टी देते हैं, वहाँ न्यायपालिका मूल अधिकारों की संरक्षक होती है और न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) आदि की उसकी शक्ति बढ़ जाती है। इस संबंध में 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by Law) तथा 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due Process of Law) का विवाद बहुत रोचक है। इनमें से पहला सिद्धान्त संसद को न्यायपालिका से ताकतवर बनाता है (जैसे इंग्लैण्ड में), जबकि दूसरा सिद्धान्त न्यायपालिका को सर्वोच्चता प्रदान करता है (जैसे अमेरिका तथा भारत में)।

भारतीय न्यायपालिका (Indian Judiciary) अत्यंत शक्तिशाली है। भारतीय राजव्यवस्था का ढाँचा विधायिका और कार्यपालिका के स्तर पर भले ही संघात्मक (Federal) हो, न्यायपालिका के स्तर पर यह एकात्मक (Unitary) होने के नजदीक है क्योंकि केन्द्र और राज्यों के स्तर पर भिन्न-भिन्न न्यायपालिकाएँ होती हैं। न्यायिक उच्च न्यायालय (High courts) सीधे तौर पर सर्वोच्च न्यायालय (Supreme court) के अधीन होते हैं। एक अलावा, मूल अधिकारों का संरक्षक (Guardian of fundamental rights) के तौर पर तथा संविधान के निर्वचन (Interpretation) की अतिम शक्ति रखने के कारण भारतीय न्यायपालिका काफी शक्तिशाली है। न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) का अधिकार उसे पहले ही प्राप्त था, अब उसकी व्याख्या संविधान के आधारभूत लक्षणों (Basic structure of Constitution) के एक अंग के रूप में करके न्यायपालिका ने अपनी यह शक्ति और बढ़ा दी है।

कानूनों के विभिन्न प्रकार (Different types of laws):

न्यायपालिका के संबंध में यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि कानूनों (Laws) के विभिन्न प्रकार कौन-सा हैं तथा किस राजनीतिक व्यवस्था में किस प्रकार के कानूनों की ज्यादा महत्त्वपूर्णता पाता है। कानूनों या विधियों (Laws) के कुछ प्रमुख प्रकार हैं—



(क) सकारात्मक विधि (Positive Law) का अर्थ होता है— व्यक्तियों के एक निश्चित समूह द्वारा बनाया जाने वाला कानून। उदाहरण के लिए, वर्तमान में अधिकांश लोकतंत्रों में संसद द्वारा कानून बनाया जाना सकारात्मक विधि का ही प्रमाण है। ब्रिटेन जैसे देशों में सकारात्मक विधि (Positive law) को ही सर्वोच्च माना जाता है। इसीलिए, वहाँ न्यायपालिका की शक्तियाँ संसद की तुलना में अत्यन्त सीमित हैं।

(ख) प्राकृतिक विधि (Natural Law) का अर्थ है वे कानून जो स्वयं प्रकृति ने निर्मित किये हैं। इस कानून का प्रयोग आमतौर पर उन देशों में होता है जहाँ संविधान की सर्वोच्चता (Constitutional Supremacy) तथा न्यायपालिका की सर्वोच्चता (Judicial Supremacy) के सिद्धान्त लागू होते हैं। इसके तहत, यदि संसद द्वारा बनाया गया कानून प्रकृति द्वारा बनाये गये कानूनों या नागरिकों के मूल अधिकारों या नैतिक औचित्य (Moral appropriateness) के खिलाफ होता है तो न्यायालय उसे निरस्त कर देता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई संसद व्यक्ति के साँस लेने के अधिकार को सीमित करना चाहे तो यह प्राकृतिक विधि के खिलाफ माना जाएगा क्योंकि प्रकृति ने सभी प्राणियों को साँस लेने की शक्ति और सुविधा प्रदान की है। इसी प्रकार, यदि संसद सदस्य पूर्ण बहुमत से अपने कार्यकाल को स्थायी बनाना चाहें तो भी सर्वोच्च न्यायालय इसे अवैध घोषित कर देगा क्योंकि यह नागरिकों के अपने प्रतिनिधियों को चुनने के अधिकार के खिलाफ है। अमेरिका और भारत के सर्वोच्च न्यायालय इसी सिद्धान्त के आधार पर संसद द्वारा निर्मित विधियों का न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) करते हैं।

(ग) लोक विधि (Common Law) का अर्थ उन कानूनों से है जो लम्बे समय से समाज में चली आ रही परंपराओं को ही कानून का रूप देने से निर्मित हुए हैं। जिन क्षेत्रों में सविधान मौन होता है, वहाँ आमतौर पर लोक विधि का ही सहारा लिया जाता है। परंपरावादी देशों में लोकविधि का महत्व काफी ज्यादा होता है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में आज भी लोकविधि को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, विशेषतः वहाँ का कंजर्वेटिव दल इन विधियों के पक्ष में रहता है।

(घ) ईश्वरीय विधि (Divine Law) का संबंध धर्मतंत्र (Theocracy) पर आधारित शासन प्रणालियों या उन देशों से है जहाँ किसी धार्मिक ग्रंथ को ही सविधान की मान्यता दे दी गई हो। ऐसे देशों में ईश्वर के कथनों को ही कानून माना जाता है और उन्हें धर्मग्रन्थों के आधार पर निर्वाचित (Interpret) किया जाता है। ऐसी व्यवस्थाओं में न्यायपालिका के सर्वोच्च स्तर पर धार्मिक संगठन या चर्च के प्रमुख लोग ही होते हैं। उन्हें अधिकार होता है कि जहाँ धार्मिक ग्रंथ मौन हों, वहाँ वे धर्म की मूल धारणाओं के अनुसार उचित व्याख्या दें।

भारत की विधि-व्यवस्था (Indian Legal system) उपरोक्त विधियों के समन्वय से निर्मित हुई है। यह मूलतः सकारात्मक विधि (Positive law) के सिद्धांत पर आधारित है क्योंकि संसद को कानून बनाने तथा सविधान को संशोधित करने की शक्ति हासिल है। किन्तु, न्यायपालिका को न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial review) की शक्ति देकर यह प्राकृतिक विधि (Natural law) के तत्व को भी शामिल करती है। जिन क्षेत्रों में संसद ने विशेष कानून न बनाया हो या न्यायपालिका ने विशिष्ट निर्णय न दिया हो, वहाँ भारतीय विधि व्यवस्था लोकविधियों (Common laws) को भी महत्व देती है। ईश्वरीय विधियों (Divine laws) को सामान्यतः स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular state) है। तब भी, धर्म विशेष के आंतरिक धार्मिक मामलों में धार्मिक विधियों (Religious laws) को उस सीमा-तक स्वीकार किया जाता है जहाँ तक वह नागरिकों के मूल अधिकारों (Fundamental rights) या कानूनी अधिकारों (Legal rights) का उल्लंघन नहीं करता।

प्राकृतिक न्याय की धारणा (Concept of Natural Justice)

न्यायपालिका को संपूर्णता में संपन्न करने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) का सिद्धांत क्या है और यह आजकल इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है। प्राचीन और मध्यकाल में राजा का न्याय निरंकुश (Autocratic) किसे कहा जाता था, अर्थात् उसे यह सिद्ध नहीं करना पड़ता था कि न्याय को प्रक्रिया-वस्तुनिष्ठ (Objective) और पारदर्शी (Transparency) है। आधुनिक काल में व्यक्ति का महत्व बढ़ता गया है और अतः न्याय-प्रणाली का पारदर्शी हो गई है। इस पारदर्शिता की अभिव्यक्ति प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के सिद्धांत में होती है।

प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) का अर्थ शास्त्रीय अर्थ (Original meaning) में अर्थात् न्याय का अर्थ पूर्णतः सुनिश्चित न होकर न्याय का अर्थ बदलता रहता है। मोटे तौर पर इसका अर्थ निम्नलिखित सिद्धांत स्वीकार करने के होते हैं—

- (क) आक्षेप (Accused) को अपनी पक्ष रखने का अवसर जरूर मिलना चाहिए।
- (ख) न्यायाधीश को निष्पक्ष रहना है। न्यायपालिका को न्यायसंगत रहना चाहिए।
- (ग) न्यायाधीश को निर्णय करने के लिए अपने पूर्वानुभव, विचारों, आदर्शों तथा पूर्वाग्रहों (Prejudices) से तटस्थ रहना चाहिए।
- (घ) निर्णय सुनाते समय सिर्फ निर्णय ही नहीं बताया जाना चाहिए बल्कि वे कारण भी स्पष्ट किए जाने चाहिए जिन्होंने न्यायाधीश को इस निर्णय तक पहुँचाया है।
- (ङ) किसी भी व्यक्ति को स्वयं अपने खिलाफ गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

भारतीय न्यायपालिका (Indian Judiciary) ने प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के सिद्धांत को पूरी तरह स्वीकार किया है। वह इस मूल सिद्धांत पर कार्य करती है कि "हजार अपराधी भले छूट जाएँ, एक भी निरपराध को सजा नहीं मिलनी चाहिए।" प्रत्येक अभियुक्त (Accused) को अदालत में अपना पक्ष रखने का मौका मिलता है, चाहे उसका कृत्य कितना भी घृणित हो या चाहे उसे सिद्ध करने के लिए कई गवाह मौजूद हों। इससे न्याय मिलने में थोड़ी देरी भले हो, राज्य का कुछ खर्च भी भले बढ़ जाए; प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) का सिद्धांत सही तरीके से लागू होता है। वर्तमान में मुंबई बम धमाकों के अभियुक्त मुहम्मद कसाब पर चलने वाला अत्यंत खर्चीला व अत्यधिक समय लेने वाला मुकदमा यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि भारतीय राजव्यवस्था प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के सिद्धांत को पूरी प्रतिबद्धता से स्वीकार करती है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी व राजीव गांधी के हत्याओं को अदालत द्वारा अपना पक्ष रखने का पूरा मौका दिया जाना भी इसी बात को प्रमाणित करता है।

न्यायिक सक्रियतावाद की धारणा (Concept of Judicial Activism):

वर्तमान समय में न्यायिक सक्रियतावाद (Judicial Activism) की चर्चा काफी ज्यादा होने लगी है। इसका अर्थ उस स्थिति से है जब न्यायपालिका आगे बढ़ चढ़कर काम करती है तथा विधायिका और कार्यपालिका के लिए निर्दिष्ट किए गये कार्यों में भी दखल देने लगती है। भारतीय राजव्यवस्था में पिछले 20-30 वर्षों में न्यायिक सक्रियतावाद के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। जनहित याचिकाओं (Public Interest Litigations) को आधार बनाकर भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों ने कई अभूतपूर्व निर्णय दिये हैं। अनुच्छेद-21 की मौलिक व्याख्याएँ इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं। इसके अलावा, आजकल कुछ न्यायाधीश पर्यावरण-रक्षा के मुद्दे पर कई क्रांतिकारी महत्व के निर्णय दे रहे हैं। ऐसी न्याय-पीठों (Benches) को आजकल 'हरित-पीठें' (Green Benches) कहा जाने लगा है।

शासन के तीनों अंगों में संबंध (Relation among the three organs of government)

किसी देश की राजव्यवस्था को समझने के लिए यह जानना भी जरूरी होता है कि वहाँ शासन के तीनों अंगों में कैसा संबंध है? मोटे तौर पर यह संबंध तीन प्रकार का हो सकता है—

1. कहीं-कहीं ये तीनों अंग परस्पर जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, राजतंत्र (Monarchy) में राजा विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका तीनों का सर्वोच्च अधिकारी होता है। अधिनायकतंत्र/ तानाशाही (Dictatorship) तथा धर्मतंत्र (Theocracy) में भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। यह लक्षण किसी राजव्यवस्था के पारंपरिक (Traditional) तथा गैर-लोकतांत्रिक (Non-democratic) होने का और इशारा करता है।
2. कुछ देशों में विधायिका और कार्यपालिका में नज़दीक का संबंध होता है जबकि न्यायपालिका इनसे अलग होती है। यह व्यवस्था संसदीय प्रणाली वाले देशों में दिखाई पड़ती है। इनमें कार्यपालिका विधायिका की ही अंग होती है जबकि न्यायपालिका इन दोनों से पृथक् और स्वतंत्र होता है। भारत और ब्रिटेन का मोटे तौर पर इसका उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।
3. अमेरिका जैसे देश में यह संबंध कुछ अलग है। वहाँ ये तीनों अंग एक-दूसरे से पृथक् होते हैं। इस शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) का सिद्धान्त कहे जाते हैं। कार्यपालिका के प्रमुख यानी राष्ट्रपति का चुनाव जनसभाएँ द्वारा निर्वाचित निर्वाचक आग (Electoral college) के माध्यम से होता है। विधायिका का चुनाव सदनों का चुनाव जनता अलग-अलग तरीके से करती है। न्यायपालिका के प्रधानकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। अतः इसके लिए उसे सीनेट की अनुमति (Ratification) की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार, शासन के तीनों अंग एक-दूसरे की शक्तियों को पर्याप्त करते हैं और एक-दूसरे को पालना पाले। कई विरोध प्रवाहनों को नियंत्रित करने के लिए इस सिद्धान्त को 'नियंत्रण के संतुलन' (Checks and Balances) का सिद्धान्त कहते हैं।

जहाँ तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था (Indian Political System) का संबंध है, इसमें शासन के तीनों अंगों का संबंध न तो पूरी तरह अमेरिका जैसा है और न ही ब्रिटेन जैसा। भारत में विधायिका और कार्यपालिका के भीतर से ही बनती है क्योंकि भारत में संसदीय प्रणाली की अमूर्त प्रथा है। इससे स्वतंत्र भारतीय संसद विदेशी संसद की तरह इतनी ताकतवर नहीं है कि उसके ऊपर सीमाएँ आरोपित न की जा सकें। भारतीय न्यायपालिका को अमेरिकी न्यायपालिका की तरह यह शक्ति प्राप्त है कि वह संसद द्वारा पारित कानून का न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) कर सके, और यदि वह कानून संविधान के मूल ढाँचे (Basic structure of constitution) के विरुद्ध है तो उसे खारिज कर सके। यह विशिष्ट संबंध भारत के संविधान निर्माताओं ने भारत की विशेष ज़रूरतों को ध्यान में रखकर बनाया था और अभी तक का अनुभव सिद्ध करता है कि उनका दृष्टिकोण उचित ही था।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित में से किस देश में प्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण पाया जाता है।
(1) अमेरिका (2) ब्रिटेन
(3) भारत (4) स्विट्ज़रलैंड
2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
(i) राज्य से अभिप्राय किसी समाज की राजनीतिक संरचना (Political Structure) से है।
(ii) राज्य एक अमूर्त (Abstract) अवधारणा है।
(iii) सरकार, राज्य की सर्वोच्च न्यायिक शक्ति है।
उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
(1) (i) और (ii)
(2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii)
(4) (i), (ii) और (iii)
3. निम्नलिखित में सरकार के अंग के रूप में जाने जाते हैं—
(i) न्यायपालिका
(ii) विधायिका

कूट-

- (1) (i) और (ii)
 - (2) (ii) और (iii)
 - (3) (i) और (iii)
 - (4) (i), (ii) और (iii)
4. निम्न में से किसे जनता निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनती है?
- (1) राजनीतिक कार्यपालिका
 - (2) स्थायी कार्यपालिका
 - (3) राजनीतिक व स्थायी कार्यपालिका दोनों
 - (4) न तो राजनीतिक और न ही स्थायी कार्यपालिका
5. निम्नलिखित में से किस कार्यपालिका का चयन विधायिका (Legislature) के सदस्यों में से ही होता है?
- (1) अध्यक्षीय कार्यपालिका
 - (2) संसदीय कार्यपालिका
 - (3) दोहरी कार्यपालिका
 - (4) उपरोक्त में से कोई नहीं
6. भारतीय शासन-प्रणाली का स्वरूप
- (1) अध्यक्षीय
 - (2) संसदीय
 - (3) अध्यक्षीय व संसदीय दोनों
 - (4) उपरोक्त में से कोई नहीं
7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
- (i) भारत में मंत्रिमंडल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर कार्य करता है।
 - (ii) मंत्रिमंडल का समर्थन उत्तरदायित्व लोकसभा के पास होता है।
- उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
- (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)
8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
- (i) भारत की शासन व्यवस्था एकात्मक शासन प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।
 - (ii) एकात्मक शासन प्रणाली में न्यायपालिका हमेशा कमजोर होती है तथा संसद की शक्ति बहुत अधिक होती है।
- उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
- (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)
9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
- (i) भारत में एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है।
 - (ii) भारत में केन्द्र और राज्य स्तर पर भिन्न-भिन्न व पृथक न्यायपालिकाएँ हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)
10. भारत में संविधान के आधारभूत लक्षणों (Basic Structure of Constitution) का निर्धारणकर्ता है-
- (1) संसद
 - (2) न्यायालय
 - (3) राष्ट्रपति
 - (4) मंत्रिमंडल
11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
- (i) भारत की विधि-व्यवस्था मूलतः सकारात्मक विधि (Positive Law) के सिद्धांत पर आधारित है।
 - (ii) भारतीय शासन व्यवस्था में न्यायपालिका की न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial review) की शक्ति प्राकृतिक विधि (Natural Law) के तत्व को शामिल करती है।
- उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
- (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)
12. शक्तियों के पृथक्करण (Separation of powers) तथा नियंत्रण और संतुलन (Checks and Balances) का सिद्धांत मुख्यतः प्रायः ज्ञात है-
- (1) अमेरिकी शासन प्रणाली में
 - (2) भारतीय शासन प्रणाली में
 - (3) ब्रिटिश शासन प्रणाली में
 - (4) स्विट्जरलैंड की शासन प्रणाली में
13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
- (i) भारत में मंत्रिमंडल कार्यपालिका की विधायिका के भीतर से ही बनती है।
 - (ii) भारतीय न्यायपालिका को अमेरिकी न्यायपालिका की तरह न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial review) की शक्ति प्राप्त है।
- उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
- (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)
14. निम्नलिखित में से किस शासन प्रणाली में सत्ता की वैधता का स्रोत जनता स्वयं होती है?
- (1) अभिजनतंत्र
 - (2) धर्मतंत्र
 - (3) राजतंत्र
 - (4) लोकतंत्र
15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
- (i) भारत प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र (Representative Democracy) का उदाहरण है।
 - (ii) भारत में केन्द्रीय विधानमंडल दो सदनों से युक्त है।
- उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
- (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)

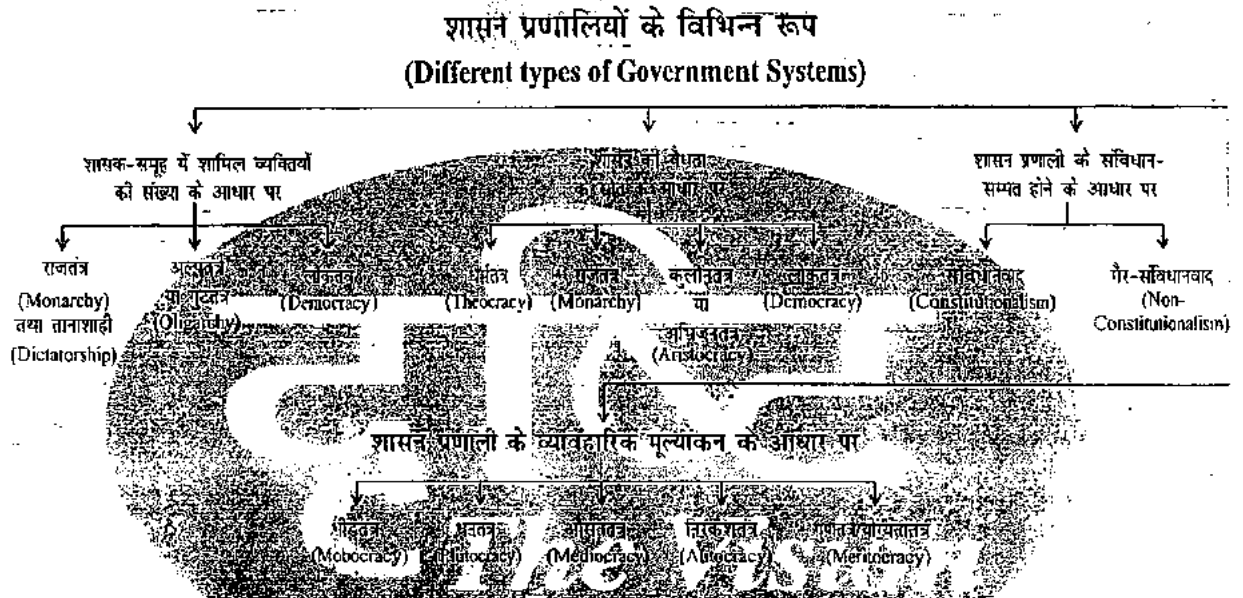
100

100

100

शासन प्रणालियों के विभिन्न प्रकार (Different types of government systems)

राजनीतिक व्यवस्था दुनिया के हर सभाज में हमेशा रही है किन्तु सरकारें या शासन प्रणालियों की संरचना हमेशा एक सी नहीं रही है। शासन प्रणालियों के विभिन्न रूप देखे जाते रहे हैं और आज भी देखे जा सकते हैं। इनके वर्गीकरण के कुछ तरीके इस प्रकार हैं—



(क) वर्गीकरण का पहला आधार यह है कि शासन किससे चलाया जाता है। इस दृष्टि से शासन प्रणालियाँ तीन प्रकार की हो सकती हैं—

- कभी-कभी शासन की संपूर्ण शक्तियाँ एक ही व्यक्ति के हाथों में केंद्रित होती हैं। ऐसे शासन को राजतंत्र (Monarchy) या तानाशाही (Dictatorship) कहा जाता है, हालाँकि यह ध्यान रखना चाहिए कि तानाशाही अनिवार्यतः एक व्यक्ति के हाथ में नहीं होती, वह कभी-कभी किसी गुट के हाथ में भी हो सकती है।
- कभी-कभी शासन एक छोटे से समूह के हाथों में केंद्रित होता है। ऐसे शासन को अल्पतंत्र या गुटतंत्र (Oligarchy) कहा जाता है।
- कभी-कभी शासन संपूर्ण जनता के हाथों में केंद्रित होता है। ऐसे शासन को लोकतंत्र/ जनतंत्र/ प्रजातंत्र या लोकशाही (Democracy) कहते हैं। समकालीन विश्व में अधिकांश देशों की राजव्यवस्था लोकतंत्र के ढाँचे पर ही कार्य करती है। कुछ ही देश ऐसे हैं जहाँ आज भी राजतंत्र कायम है। हाल ही में अरब देशों जैसे लीबिया, सीरिया आदि में घटी घटनाएँ साबित करती हैं कि राजतंत्र जहाँ भी है, अब उसका भविष्य बहुत सुरक्षित नहीं है क्योंकि दुनिया के हर देश की जनता अपने विवेक के अनुसार शासन प्रणाली चाहती है।

(ख) शासन प्रणालियों के वर्गीकरण का दूसरा आधार यह है कि शासक-वर्ग को किस स्रोत से शासन करने की वैधता (Legitimacy) मिलती है? इस दृष्टि से शासन प्रणालियों के कई प्रकार हो सकते हैं, जैसे—धर्मतंत्र (Theocracy), राजतंत्र (Monarchy), कुलीनतंत्र या अभिजनतंत्र (Aristocracy), लोकतंत्र (Democracy) इत्यादि। इन प्रणालियों का संक्षिप्त वर्णन

- (i) यदि सरकार की वैधता धार्मिक ग्रन्थों पर टिकी होती है तो ऐसी शासन व्यवस्था धर्मतंत्र (Theocracy) कहलाती है। मोटे तौर पर तिब्बत और वेटेकन सिटी की शासन प्रणालियों को इस वर्ग में रखा जा सकता है।
- (ii) कहीं-कहीं सामाजिक परंपराओं के आधार पर उच्चवंश व उच्चकुल के लोग राज्य की सत्ता अपने वर्ग तक सीमित कर लेते हैं। इस व्यवस्था को कुलीनतंत्र या अभिजनतंत्र (Aristocracy) कहा जाता है। प्राचीन यूनान तथा कई अन्य देशों में यह व्यवस्था प्रचलित थी।
- (iii) कभी-कभी सत्ता का स्रोत किसी व्यक्ति की शारीरिक या सैनिक ताकत में ही निहित होता है। वह व्यक्ति तब तक शासक रहता है जब तक कि कोई अन्य उससे सत्ता छीन न सकता हो। ऐसे शासन को राजतंत्र (Monarchy) कहते हैं।
- (iv) आधुनिक युग में आमतौर पर सभी देशों में सत्ता की वैधता का स्रोत जनता खुद होती है। वही तय करती है कि शासन कौन चलाएगा? ऐसी व्यवस्था को लोकतंत्र (Democracy) कहते हैं।
- (ग) तीसरी दृष्टि से सभी शासन प्रणालियों को इस आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है कि वह शासन प्रणाली किसी निश्चित संविधान की मर्यादाओं के भीतर कार्य करती है या नहीं? इस दृष्टि से दो ही तरह के शासन हैं—संविधानवादी (Constitutional) तथा गैर-संविधानवादी (Non-constitutional)।

(i) संविधानवाद (Constitutionalism) वह विचारधारा है जिसके अनुसार समस्त शासन नियमों (Rules) और कानूनों (Laws) के एक समुच्चय के माध्यम से चलाया जाता है। कोई भी व्यक्ति, समूह, समुदाय या संस्था संविधान से ऊपर नहीं होती बल्कि उसका शासन और शासक संविधान के माध्यम से निर्धारित होते हैं। ऐसे शासन को ही आमतौर पर विधि का शासन (Rule of Law) भी कहा जाता है। आमतौर पर लोकतांत्रिक प्रणालियाँ संविधानवाद के दायरे में आती हैं। हालाँकि, पूर्ववर्त संविधानवाद और वर्तमान चीन का शासन उदाहरण लोकतंत्र को स्वीकार न करने के बावजूद एक खास दृष्टिकोण से स्वयं को संविधानवादी बताती रही है।

(ii) गैर-संविधानवादी (Non-constitutional) शासन प्रणालियाँ तब तब जिनमें संविधान या संविधानी के अनिवार्य समुच्चय की आवश्यकता प्राप्त नहीं होती। राजतंत्र (Monarchy), सैनिक शासन (Military Rule) और तानाशाही (Dictatorship) इसी तरह की प्रणालियाँ हैं। राजतंत्र (Monarchy) में राजा का आदेश ही कानून होता है। राजा हर कानून से ऊपर होता है। जबकि कोई कानून राजा की शक्तियों को सीमित नहीं कर पाता। तानाशाही या अभिजनतंत्र (Dictatorship) में भी यही स्थिति होती है।

(घ) कुछ और दृष्टियों से भी शासन प्रणालियों को कुछ नाम दिये जाते हैं किन्तु ये नाम शासन प्रणालियों के औपचारिक (Formal) नाम नहीं होते। उनके मूल्यकानूनीक (Substantive) नाम हैं। उदाहरण के लिए लोकतंत्र पर व्यंग्य करने वाले उसे कई नामों से मुकादर करते हैं। राजतंत्र को Autocracy, अरिजनतंत्र (Aristocracy), औसततंत्र (Mediocracy) इत्यादि। इसी प्रकार, कुछ और व्यवस्थाओं के नाम भी दिये जा सकते हैं जैसे वृद्धतंत्र (Gerontocracy) निरंकुशतंत्र (Autocracy) तथा गुणतंत्र या गुणतंत्र (Meritocracy) इत्यादि। इन सभी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

- (i) भीड़तंत्र (Mobocracy) कहने का आशय है कि उक्त व्यवस्था में राजनीतिक निर्णय विवेकशील व्यक्तियों के समूह के हाथ में नहीं होता बल्कि समाज के लोग भीड़ की तरह विवेकहीन तरीके से ऐसे निर्णय करते हैं। भावनात्मक आधारों पर चुनावों में मतदान किया जाना इसी का एक उदाहरण है क्योंकि भीड़ का व्यवहार विवेक (Reason) से नहीं, भावनाओं से संचालित होता है।
- (ii) औसततंत्र (Mediocracy) कहने का भी प्रायः यही भाव है कि लोकतंत्र में सत्ता सबसे समझदार व्यक्तियों के हाथ में नहीं होती बल्कि औसत दर्जे के उन लोगों के हाथ में होती है जो जनता को अपनी वाक्पटुता से प्रभावित करने में सफल हो जाते हैं।
- (iii) धनतंत्र (Plutocracy) उस व्यवस्था को कहते हैं जहाँ शासक वर्ग में केवल धनी लोग शामिल हो पाते हैं। कई देशों में लोकतंत्र की शुरुआत में मताधिकार प्रत्येक व्यक्ति को नहीं दिया जाकर सिर्फ़ अमीर वर्ग तक सीमित कर दिया गया था। यह धनतंत्र था। आज भी लोकतंत्र पर व्यंग्य करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि चुनाव प्रणाली व्यावहारिक स्तर पर इतनी महंगी होती है कि समाज के केवल बहुत थोड़े से अत्यन्त धनी लोग ही चुनाव लड़ने का साहस कर पाते हैं। इस दृष्टि से लोकतंत्र (Democracy) कहने को चाहें आम जनता का शासन हो, व्यवहारतः चुनाव वही लोग जीत पाते हैं जो धनी वर्ग से होते हैं।
- (iv) वृद्धतंत्र (Gerontocracy) उस शासन व्यवस्था को कहते हैं जिसमें शासन के सर्वोच्च पदों पर अमीर होने का

माना जाता है, इस तरह की व्यवस्था प्रायः देखने को मिलती है जबकि आधुनिक सभाजों में राजनीतिक शक्ति युवा लोगों को देने की मानसिकता ज्यादा दिखाई पड़ती है।

- (v) **निरंकुशतंत्र (Autocracy)** उस शासन व्यवस्था को कहते हैं जिसमें शासक वर्ग किन्हीं भी सीमाओं को न मानते हुए अपनी मर्जी के मुताबिक शासन चलाता है। आमतौर पर राजतंत्र (Monarchy), तानाशाही (Dictatorship) तथा अल्पतंत्र (Oligarchy) में निरंकुशतंत्र (Autocracy) बनने को ज्यादा प्रवृत्ति होती है, किन्तु कभी-कभी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में भी ऐसे उदाहरण देखने को मिल जाते हैं।
- (vi) **गुणतंत्र या योग्यतातंत्र (Meritocracy)** एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यताओं के अनुसार शक्ति तथा दायित्व वितरित किये जाते हैं। इस प्रणाली में राजनीतिक नेतृत्व और नौकरशाही (Bureaucracy) में आने के लिए व्यक्तियों में मुक्त प्रतिस्पर्धा होती है तथा जो उम्मीदवार सबसे अधिक योग्य होते हैं, उन्हें ही वह पद और प्रतिष्ठा प्रदान की जाती है। समाज के वंचित वर्ग (Deprived classes) प्रायः गुणतंत्र का विरोध करते हैं क्योंकि कई शताब्दियों के वंचन (deprivation) और दमन (Suppression) के कारण उनकी क्षमताएँ तुलनात्मक रूप से कम होती हैं। दूसरी ओर, समाज का ताकतवर वर्ग प्रायः गुणतंत्र का समर्थक होता है क्योंकि वंचित वर्गों की तुलना में उसे अपनी क्षमताओं को विकसित करने का ज्यादा अवसर प्राप्त होता है।

विचार का प्रश्न यह है कि भारतीय राजव्यवस्था (Indian Political System) शासन प्रणालियों के इन प्रकारों में से किस-किसके नजदीक है? कुछ सूत्रों में इसे समझा जा सकता है—

- (क) पहले वर्गीकरण अर्थात् इस विधि से भारत में राजनीतिक तौर पर लोकतंत्र (Democracy) है। किन्तु कुछ लोग निम्नलिखित दो तर्कों के आधार पर जनता के अनुरोध को ध्यान देने के कारण सत्ता की प्रतिस्पर्धा वस्तुतः दो-तीन छोटे-छोटे गुटों के बीच ही रहती है। अतः यह अल्पतंत्र या गुटतंत्र (Oligarchy) है। सभी दलों के कुछ ही नेता राजनीतिक व्यवस्था के केंद्र में होते हैं जिससे गुटतंत्रीय स्वरूप (Oligarchical nature) उजागर होता है। कुछ लोगों ने राजनीतिक कदम है कि भारतीय लोकतंत्र भीतर से राजतंत्र (Monarchy) के नजदीक है क्योंकि इसमें वंशवाद (Family tradition) को विशेष प्राथमिकता दी जाती है। तब राजतंत्र की मानसिकता के अनुरूप ही केन्द्र में नेताओं की छोटी-छोटी परिवार के सदस्यों की जात हो पायी है। गुटतंत्र में पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही परिवार के नेताओं के सफल होने का प्रयास हो (जैसे—कन्नड़ में अम्बल्लाखरिस्, पंजाब में खालसा परिवार, उड़ीसा में भटनायक परिवार, तमिलनाडु में कर्माचारि परिवार, महाराष्ट्र में ठाकरे परिवार, हरियाणा में भसीलाल, देवीलाल तथा पंजनलाल के परिवार)। इनसे लोकतंत्र के भीतर राजतंत्र की मानसिकता का कितना प्रमाण दिखाई पड़ता है।
- (ख) भारतीय शासन प्रणाली दूसरे लोकतांत्रिक (Democratic) है किन्तु इसके भीतर थोड़ा-बहुत मात्रा में धर्मतंत्र (Theocracy) और कुलीनतंत्र (Aristocracy) के तत्व भी पाये जा सकते हैं। धर्मतंत्र (Theocracy) के तत्व इस रूप में दिखते हैं कि चुनाव सूत्रों में धार्मिक नेताओं की बड़ी भूमिका रहती है और आमतौर पर सरकार भी धार्मिक भावनाओं वाले मुद्दों पर कठोर निर्णय करने से बचती है। चाहे वह धर्म मानने के शासन पर प्रश्न खड़ा करते हों। इसी प्रकार, कुछ परिवारों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी राजनीति में सफल होते जाते हैं। कुलीनतंत्र (Aristocracy) की मानसिकता का भी उदाहरण है।
- (ग) संविधानवाद (Constitutionalism) व गैर-संविधानवाद (Non-constitutionalism) की दृष्टि से भारतीय राजव्यवस्था ने संविधानवाद (Constitutionalism) के मार्ग को चुना है और सारा शासन कार्य संविधान के प्रावधानों के अनुसार ही चलता है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी कई मामलों में संविधान के रक्षक (Guardian of the constitution) की भूमिका बहुत ठोस तरीके से निभाई है। किन्तु, तब भी, कभी-कभार ऐसे उदाहरण मिल ही जाते हैं जहाँ संविधानेतर (Extra constitutional) शक्तियाँ संवैधानिक ढाँचे पर हावी होती हुई दिखती हैं। उदाहरण के लिए, 1975 में इंदिरा गांधी सरकार ने जब आपात्काल की घोषणा की तो संजय गांधी बिना किसी संवैधानिक पद पर होते हुए भी सत्ता के केन्द्रीय सूत्र बने हुए थे। कुछ लोग तो वर्तमान केन्द्रीय सरकार पर भी प्रश्न उठाते हैं कि श्रीमती सोनिया गांधी किसी संवैधानिक पद पर न होते हुए भी मंत्रिमंडल से ज्यादा शक्ति क्यों रखती हैं? ध्यातव्य है कि जिस 'राष्ट्रीय सलाहकार समिति' (NAC-National Advisory Committee) की वे अध्यक्ष हैं, वह स्वयं संविधानेतर (Extra-constitutional) निकाय है। इसी प्रकार, कई राज्यों के स्तर पर भी ऐसी विवादपूर्ण स्थितियाँ देखी जाती रही हैं।
- (घ) भारतीय लोकतंत्र को कई लोग 'भीड़तंत्र' (Mobocracy) तथा 'औसततंत्र' (Mediocracy) भी कहते हैं क्योंकि उनकी राय में हमारे देश की जनता का मतदान व्यवहार (Voting behaviour) प्रायः परंपरिक मान्यताओं तथा भावनाओं के कारण ही अंधाधुनक प्रभावित होता है। राष्ट्रीय नेताओं में से जो यदि कुछ आपत्तियों को छोड़ दें तो अधिकतर नेताओं का

वैचारिक-स्तर व योग्यता-स्तर हमारी व्यवस्था के औसततंत्र (Mediocracy) होने को भी प्रमाणित करता है। दूसरी ओर, चुनाव प्रक्रिया के अत्यधिक महंगा होने के कारण तथा राज्य द्वारा चुनाव खर्च वहन न करने के कारण हमारा लोकतंत्र धनतंत्र (Plutocracy) के भी नजदीक है। वर्तमान लोकसभा में अधिकांश सांसदों का करोड़पति होना इसी का प्रमाण है। पुनः, यदि भारतीय राजनेताओं की औसत उम्र देखा जाए तो आलोचक इसे 'वृद्धतंत्र' (Gerontocracy) भी कह सकते हैं। प्रमाण यह है कि जहाँ विकसित देशों के शासनाध्यक्ष आमतौर पर 45 से 55 वर्ष के आयु वर्ग में दिखाई पड़ते हैं, वहीं भारत में प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्रियों या अन्य मंत्रियों का 70-75 वर्ष से अधिक उम्र का होना सामान्य लक्षण है। भारतीय राजव्यवस्था में निरंकुशतंत्र (Autocracy) के लक्षण काफी कम हैं क्योंकि विपक्ष और जनमत का दबाव सरकार को निरंकुश होने से रोकता है। जनता के पास मूल अधिकारों (Fundamental rights) का होना तथा न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति का होना भी इसे निरंकुशतंत्र (Autocracy) बनने से रोकता है। 1975 के आपात्काल जैसी अत्यंत विरल घटनाओं को अपवाद मानकर छोड़ दें तो यह सामान्यतः निरंकुशतंत्र (Autocracy) नहीं बनता है। जहाँ तक योग्यतातंत्र या गुणतंत्र (Meritocracy) होने का प्रश्न है, भारतीय राजव्यवस्था ने इसे सीमित रूप में अपनाया है। वंचित वर्गों को समाज की मुख्यधारा (Mainstream) में लाने के लिए आरक्षण (Reservation) जैसी सुविधाएँ दी गई हैं किंतु उनके अलावा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार आगे बढ़ने का पूरा मौका दिया जाता है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

- निम्नलिखित कथनों में सत्य-कथन चुनिए—
 - समकालीन विश्व में अधिकांश देशों का शासन-व्यवस्था लोकतांत्रिक ढाँचे पर ही संचालित होती है।
 - तानाशाही व्यवस्था में शासक की संपूर्ण शक्तें एक ही व्यक्ति अथवा कभी-कभी किसी एक ही गुट के हाथ में होती हैं।
 - धर्मतंत्र ऐसी शासन व्यवस्था है, जिसमें सरकार को वैधता धार्मिक धर्मों पर टिकी होती है।
 - राजतंत्र संविधानवाद का सर्वांगीण अंग नहीं है।
- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
 - संविधानवाद पर आधारित शासन की ही आमतौर पर 'विधि का शासन' (Rule of Law) भी कहा जाता है।
 - कुलीनतंत्र (Aristocracy) में सामाजिक प्रसंगों के आधार पर उच्चकुल के लोग राज्य की सत्ता अपने वर्ग तक सीमित कर लेते हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

 - केवल (i)
 - केवल (ii)
 - (i) और (ii) दोनों
 - न तो (i) और न ही (ii)
- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
 - आमतौर पर लोकतांत्रिक प्रणालियाँ संविधानवाद के दायरे में आती हैं।
 - संविधानवाद एक विचारधारा है जिसमें संविधान या विधियों
- निम्नलिखित कथनों में सत्य-कथन चुनिए—
 - केवल (i)
 - केवल (ii)
 - (i) और (ii) दोनों
 - न तो (i) और न ही (ii)
- भारतीय राजव्यवस्था में निरंकुशतंत्र (Autocracy) के लक्षण काफी कम दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि—
 - सरकार पर विपक्ष और जनमत का दबाव होता है।
 - जनता को मूल अधिकार तथा न्यायपालिका को न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति प्राप्त है।
- कूट—
 - केवल (i)

लोकतंत्र व संविधानवाद का ऐतिहासिक विकास (Evolution of Democracy & Constitutionalism)

लोकतंत्र (Democracy) और संविधानवाद (Constitutionalism) को सामान्यतः आधुनिक काल से जोड़कर देखा जाता है। यूँ, लोकतंत्र के कुछेक उदाहरण प्राचीन यूनान के नगर राज्यों में दिखाई पड़ते हैं जहाँ नगरों के 'स्वतंत्र नागरिक' परस्पर मिलकर राजनीतिक निर्णय करते थे। ध्यातव्य है कि यह अधिकार दासों (Slaves) को प्राप्त नहीं था। स्त्रियाँ भी साधारणतः इस अधिकार से वंचित थीं। सभी स्वतंत्रजन (Free men) एक साथ बैठकर महत्वपूर्ण निर्णय करते थे। ऐसे लोकतंत्र को आजकल प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) कहा जाता है। वैदिककालीन भारत में जो 'सभा' और 'समिति' जैसी संस्थाएँ थीं, उनके भीतर भी लोकतंत्र के बीज देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार, संविधानवाद (Constitutionalism) का व्यवस्थित विकास प्राचीनकाल में चाहे पूर्णतः न हो सका हो, वैचारिक स्तर पर ऐसी कोशिशें कहीं-कहीं दिख जाती हैं। हम्मूरबी की संहिता (1780 ई.पू. में बेबीलोनियाई सम्राट के छोटे राजा हम्मूरबी द्वारा लिखित 282 कानूनों का संग्रह) और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में विद्यमान सैद्धांतिक स्थापनाएँ इसी की ओर संकेत करती हैं।

किन्तु, यह मानने में कोई समस्या नहीं है कि आज हम जिस लोकतंत्र और संविधानवाद को जानते हैं, उनका प्रत्यक्ष संबंध 17वीं और 18वीं शताब्दी की कुछ खास घटनाओं से है। इस प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं:-

1. **इंग्लैण्ड की गौरवमयी क्रांति (England's Glorious Revolution) (1688 ई.)**:- 1688 ई. से पूर्व इंग्लैण्ड में राजतंत्र चल रहा था और जेम्स द्वितीय ने वहाँ का राजा था। चूंकि आधुनिक चिंतन का शुरुआत इंग्लैण्ड में ही हुई थी और जॉन लॉक (John Locke) जैसे उदारवादी (Liberal) चिंतकों के प्रभाव के कारण वहाँ व्यक्तिवाद (Individualism) का विकास हो रहा था और समाज के सभी व्यक्ति-निकरा राजतंत्र (Autocratic Monarchy) से परेशान होकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करने वाली शासन व्यवस्था की तलाश कर रहे थे, इसलिए यह क्रांति सम्पन्न हुई। यह रक्तहीन क्रांति (Bloodless revolution) थी क्योंकि जनमत के विरोध को देखकर राजा ने चुपचाप अपनी पराजय स्वीकार कर ली और जनसमुदाय ने राजा को बेटा 'मेरी' और उसके पति 'विलियम' को राज्याभिषेक शांतिपूर्ण तरीके से कर दिया। इस क्रांति से संबन्धित सम्पन्न हो गया और संवैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) की प्रणाली शुरू हुई जिसमें शासन संविधान के अनुसार चलाया जाना था और राजा की भूमिका सिर्फ नाममात्र के राजाध्यक्ष (Nominal head of state) या औपचारिक प्रधान की रह गई थी।
2. **अमेरिकी क्रांति (American Revolution) (1776 ई.)**:- ऐसी दूसरी महत्वपूर्ण घटना अमेरिका में घटी। अमेरिका इंग्लैण्ड का उपनिवेश था और वहाँ उपनिवेशवाद (Colonialism) के विरुद्ध एक लंबा जन आंदोलन चला जिसका नेतृत्व जॉर्ज वाशिंगटन ने किया। एक लंबी लड़ाई के बाद 1776 ई. में अमेरिका ब्रिटेन से स्वतंत्र हुआ और उसने संविधानवाद (Constitutionalism) तथा लोकतंत्र (Democracy) को स्वीकार किया। 13 अमेरिकी राज्यों की सहमति से निर्मित तथा संघात्मक (Federal) ढाँचे पर आधारित अमेरिकी संविधान 1787 ई. में लागू हुआ जो अपने प्रकार का पहला लिखित संविधान था। ध्यातव्य है कि ब्रिटेन में संविधानवाद की शुरुआत लगभग 100 साल पहले हो चुकी थी किन्तु वहाँ लिखित संविधान नहीं था।
3. **फ्रांसीसी क्रांति (French Revolution) (1789 ई.)**:- ऐसी तीसरी महत्वपूर्ण घटना 1789 ई. में फ्रांस में हुई जिसके मूल में अमेरिकी क्रांति भी एक महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व थी। इस समय फ्रांस की जनता में मध्यवर्ग का पर्याप्त महत्व स्थापित हो चुका था और वह 'रूस्सो' के नेतृत्व में गणतंत्रात्मक (Republican) शासन पद्धति के लिए संघर्ष कर रही थी। फ्रांस का तत्कालीन राजा लुई 16वाँ जन-आंदोलन को ठीक से समझ नहीं सका और उसने जनता को स्थान पर कुलीन वर्ग (Aristocratic class) तथा पुरोहित वर्ग (Clergy) को महत्व दिया। फलतः जनता ने 1789-1793 ई. के आंदोलन के दौरान राजतंत्र (Monarchy) तथा कुलीन वर्ग (Aristocratic class) के शासन को उखाड़ फेंका तथा जनता की प्रभुसत्ता की घोषणा कर दी।

इन तीन बड़ी क्रांतियों के बाद धीरे-धीरे विश्व के अधिकांश देशों में राजतंत्र (Monarchy), उपनिवेशवाद (Colonialism), अधिनायकतंत्र (Dictatorship), धर्मतंत्र (Theocracy) और साम्राज्यवाद (Imperialism) के विरुद्ध आंदोलन होने लगे और जनता ने लोकतंत्र और संविधानवाद की मांग को पुरजोर तरीके से प्रस्तुत किया। भारत जैसे पराधीन देशों के स्वतंत्रता संघर्ष इसी प्रक्रिया

किया। 20वीं सदी के मध्य तक विश्व के लगभग सभी देशों में लोकतंत्र तथा संविधानवाद स्थापित हो गया था। अफ्रीका के अंतिम उपनिवेश भी इस दौर में स्वतंत्र हो रहे थे। इसके बाद कुछ ही देशों में राजतंत्र या अधिनायकतंत्र बना रहा, जैसे- नेपाल, भूटान, सीरिया, यमन, लीबिया, बुर्माई इत्यादि। हाल के वर्षों में सूचना क्रांति के कारण इन सभी देशों में (विशेषतः सीरिया, लीबिया, यमन आदि में) जो जन-विद्रोह देखे जा रहे हैं, वे इस बात के सूचक हैं कि लोकतंत्र और संविधानवाद अब विश्व के प्रत्येक नागरिक की स्वाभाविक बहुरत बन गये हैं। ध्यातव्य है कि भूतपूर्व सोवियत संघ तथा वर्तमान चीन जैसे साम्यवादी राजव्यवस्था वाले देश भी साम्यवादी दल की तानाशाही को स्वीकार करते हैं। 1988-89 में सोवियत संघ का राजनीतिक ढाँचा स्वाधीनता व लोकतंत्र की मांग की आंधी में ढह गया। इसी प्रकार, 1989 में चीन में भी युवाओं, विशेषतः विद्यार्थियों ने लोकतंत्र की स्थापना के लिए बहुत बड़ी संख्या में प्राणों की आहुति दी जो वहाँ की जनता की इच्छाओं को सूचित करती है।

वर्तमान समय में संविधानवाद के समक्ष विद्यमान चुनौतियाँ

(Challenges before constitutionalism in present time)

संविधानवाद (Constitutionalism) का सांख्यिक यही है कि शासन की शक्तियों का प्रयोग शासन के वही अंग करे जिन्हें संविधान के अनुसार उन शक्तियों के प्रयोग का अधिकार दिया गया हो और वे शक्तियों का प्रयोग उन्हीं मर्यादाओं (Limits) के भीतर रहकर करें जो संविधान ने उन पर आरोपित की हो। किन्तु, समाज व राजनीति की स्थितियाँ अत्यंत जटिल होती हैं और उनमें से कई स्थितियाँ संविधानवाद के सामने चुनौती पेश करती हैं। ऐसी प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं-

- (1) कई विकासशील (Developing) और नवस्वाधीन (Newly independent) देशों में तो सबसे बड़ी चुनौती संविधान-सम्पन्न शासन प्रणाली को बचाए रखने की है। भारत को अपवाद को छोड़ दे तो एशिया और अफ्रीका के अधिकांश नवस्वाधीन देशों में संवैधानिक सरकार को गिराकर सैनिक शासन (Military rule) की स्थापना के उदाहरण प्राप्त दिखते रहते हैं। भारत के पड़ोसी देशों पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा म्यांमार में भी ऐसी स्थितियाँ दिखती रही हैं।
- (2) कई देशों में, विशेषतः विकासशील देशों में, व्यक्तिपूजा (Personality cult) का महत्व बहुत अधिक है। इसके अंतर्गत, किसी व्यक्ति विशेष का महत्व इतना अधिक हो जाता है कि सभी संवैधानिक संरचनाएँ (Constitutional structures) जैसे विधायिका (Legislature) और कार्यपालिका (Executive) इत्यादि उसके पिछलग्गू बन जाते हैं। कुछ देशों में ऐसा 'करीश्माई' नेतृत्व (Charismatic Leadership) का कारण होता है, तो कुछ में जनभावनाओं के कारण। भारत में जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी के शासन में प्रायः ऐसी स्थितियाँ देखी गईं। चीन में माओ सोवियत संघ में लेनिन और स्टालिन, बर्मा में फोर्देन कोन्वो आदि को भी ऐसा ही जनसमर्थन हासिल रहा है।
- (3) कई देशों में कुछ दबाव समूह (Pressure groups) इतनी प्रभावी हो जाते हैं कि संवैधानिक पदों पर आसीन व्यक्ति उनके दबाव के अनुसार निर्णय करने की बाध्य हो जाते हैं। अमेरिका में कुछ व्यापारिक घरेलू अपारकी अधिकार नौतियों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। लगभग यही स्थिति भारत जैसे देशों की भी है। हाल ही में हुए 2017 मिस्टम घोटाले के संबंध में यह आरोप लगाया जाता है कि संबद्ध मंत्री व अधिकारियों ने संविधान के अनुसार कार्य करने के बजाय सरकार के अंदर में सक्रिय कुछ बड़ी निजी कंपनियों के हितों को बरोयता दी।
- (4) जनसंपर्क (Mass communication) के साधन आजकल बहुत अधिक महत्व रखने लगे हैं और वे प्रायः जनमत (Public opinion) को बनाने व बदलने की शक्ति भी रखते हैं। यदि जनसंचार (Mass media) के साधनों पर किसी वर्ग या दल विशेष का नियंत्रण हो तो वह जनमत तथा संवैधानिक पदों पर आसीन अधिकारियों को अपने पक्ष में मोड़ सकता है। उदाहरण के लिए, मोडिया उन कंपनियों के श्रेष्ठार पर प्रायः मौन रहता है जो उसे विज्ञापन देती हैं या उसके खर्च को उठाती हैं।
- (5) जिन समाजों में जनसाधारण के संस्कार रूढ़िवादी (Orthodox) या सामंती (Feudal) होते हैं, वहाँ संविधानवाद को सुनिश्चित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। ऐसे रूढ़िवादी लोग अपनी परंपराओं की रक्षा के नाम पर संवैधानिक ढाँचे को पूर्णतः खारिज करने को तैयार रहते हैं। उदाहरण के लिए, पिछले कुछ वर्षों में हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की खाप-पंचायतों ने जिस तरह अतिवादी (Radical) फैसले दिए हैं, वे भारतीय संविधान द्वारा प्रत्येक नागरिक को प्रदत्त समानता के अधिकार, स्वतंत्रता के अधिकार तथा जीवन के अधिकार का उल्लंघन करते हैं। स्पष्ट है कि जब तक समाज की सोच न बदले, तब तक संविधानवाद की स्थापना करना कठिन होता है।

संविधानवाद को नुकसान पहुँचाता है। लोककल्याणकारी राज्य (Welfare state) के सफल संचालन के लिए बहुत बड़ी संख्या में अधिकारियों की जरूरत पड़ती है और उन्हें शक्तियाँ भी देनी पड़ती हैं, किन्तु बहुत से अधिकारी इन शक्तियों का अतिक्रमण करते हैं या इनका दुरुपयोग व्यक्तिगत हित में करने लगते हैं जो संविधानवाद की मान्यताओं के विपरीत सिद्ध होता है।

(8) लोकतांत्रिक देशों में कभी-कभी कुछ लोकप्रिय नेता स्वयं संविधानवाद का अतिक्रमण करते हैं। वे अपने लोक समर्थन के बल पर संवैधानिक संस्थाओं तथा नियमों को खारिज करके 'जनता की अदालत' में बड़े फैसले करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के तौर पर, आरक्षण की माँग को लेकर रेलमार्ग और सड़कों को जाम कर देने जैसी घटनाएँ इसी के उदाहरण हैं।

(9) गरीब देशों का संवैधानिक तंत्र वहाँ भी कमजोर पड़ जाता है जहाँ उन्हें अपनी आर्थिक मजबूरियों के कारण विश्व बैंक (World Bank) तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF- International Monetary Fund) जैसी संस्थाओं की दबावपूर्ण नीतियों को स्वीकार करना पड़ता है। 1991 के आसपास भारतीय राजव्यवस्था भी इस तनाव से गुज़री है।

(10) जिन देशों में तीव्र सामाजिक परिवर्तन (Acute social changes) घटित हो रहे होते हैं, वहाँ संविधानवाद के सफल संचालन के लिए राज्य को बहुत मजबूत होना पड़ता है किन्तु प्रायः ऐसा हो नहीं पाता। उदाहरण के लिए, भारत सरकार चाहती है कि भूमि जोतने वाले किसानों को भूमि का अधिकार मिले किन्तु इससे भूमिपति वर्ग (Landlord class) के हितों को ठेस पहुँचती है। इसलिए, वह पूरी शक्ति लगाकर संविधानवादी शक्तियों को रोकने का प्रयास करता है। बिहार में 'रणवीर सेना' जैसे संगठन इस दृष्टि से संविधानवाद के विरुद्ध कार्य करते हैं। इसी प्रकार, सरकार द्वारा दलितों को समानता की स्थिति में लाने के लिए जो उपाय किए जाते हैं, सर्वर्ण जातियों के कई समूह उन्हें लागू करने में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं ताकि उनके वर्चस्व (Dominance) में कोई कमी न आए।

यदि भारतीय शासन व्यवस्था का पर्यायन किया जाय तो प्रायः यहाँ संविधानवादी शासन (Constitutional rule) ठीक तरीके से चलता है। यह बात भारत के साथ ही संविधानवाद देशों में चलाने के लिए और ज्यादा प्रामाणिकता से कही जा सकती है। किन्तु, चूँकि अभी भारत परंपरावादी समाज के बुराई से आधुनिक समाज बनने की ओर गतिशील है और राष्ट्रीय एकीकरण (National integration) की प्रक्रिया भी अभी पूर्ण नहीं हुई है इसलिए संविधानवाद से विचलन के कुछ उदाहरण यहां नजर आ जाते हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख उपरोक्त बिंदुओं में किया गया है। तब भी यह कहने में कोई समस्या नहीं कि भारत की राजव्यवस्था ने इस दिशा में जितनी प्रगति की है, वह प्रशंसनीय है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

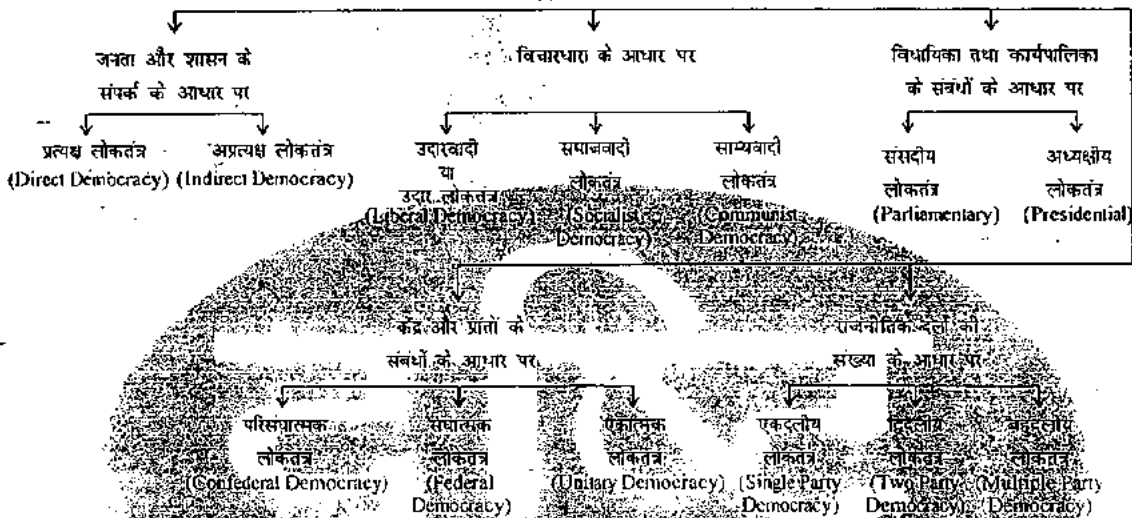
- संवैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) की प्रणाली कब आरम्भ हुई?
 - फ्रांसीसी क्रांति के बाद।
 - इंग्लैंड की संसदीय क्रांति के बाद।
 - अमरीकी क्रांति के बाद।
 - प्रथम विश्व युद्ध के बाद।
- संविधानवाद की शुरुआत यहाँ की जाती है—
 - अमेरिका से।
 - फ्रांस से।
 - ब्रिटेन से।
 - भूतपूर्व सोवियत संघ से।
- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
 - अमेरिकी संविधान 1787 ई. में लागू हुआ जो अपने प्रकार का पहला लिखित संविधान था।
 - यद्यपि संविधानवाद की शुरुआत ब्रिटेन में हुई, तथापि वहाँ लिखित संविधान नहीं है।
 उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
 - केवल (i)
 - केवल (ii)
 - (i) और (ii) दोनों
 - न तो (i) और न ही (ii)
- रूस के नेतृत्व में गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति के लिए संघर्ष का संबंध है—
 - फ्रांस से।
 - रूस से।
 - जर्मनी से।
 - अमेरिका से।
- निम्नलिखित में से कौन-कौन से कारक संविधानवाद के समक्ष चुनौतियों के रूप में गढ़वाते जाते रहे हैं—
 - एशिया और अफ्रीका के अधिकांश नवस्वतंत्र देशों में सैनिक शासन की स्थापना।
 - विकासशील देशों में व्यक्ति-पूजा व करिश्माई नेतृत्व का बहुत अधिक महत्त्व।
 - अनेक देशों में दबाव समूहों की गहराई प्रभावों क्षमता।
 - गरीबी, निरक्षरता और अंधविश्वास जैसी समस्याएँ।
- कूट—
 - (i) और (iv)
 - (i), (iii) और (iv)
 - (ii), (iii) और (iv)
 - (i), (ii), (iii) और (iv)
- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
 - जिन सप्ताजों में जनसाधारण के संस्कार रूढ़िवादी या सामंती होते हैं, वहाँ संविधानवाद को सुनिश्चित करना अपेक्षाकृत आसान होता है।
 - भारतीय शासन व्यवस्था संविधानवादी शासन का उदाहरण प्रस्तुत करती है।
 उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?
 - केवल (i)
 - केवल (ii)
 - (i) और (ii) दोनों
 - न तो (i) और न ही (ii)



लोकतंत्र के प्रकार (Types of Democracy)

लोकतंत्र का वर्गीकरण कई भिन्न-भिन्न दृष्टियों से किया जा सकता है। इनमें से कुछ प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

लोकतंत्र के प्रकार (Types of Democracy)



1. जनता और शासन के संपर्क के आधार पर लोकतंत्र के प्रकार (Types of Democracy on the basis of contact between public and government)

जनता और शासन के संपर्क के आधार पर लोकतंत्र दो प्रकार का होता है— प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) तथा अप्रत्यक्ष लोकतंत्र (Indirect Democracy)।

प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct democracy) में जनता सीधे-सीधे शासन प्रक्रिया में भाग लेती है। प्राचीन यूनान के नगर-राज्यों में ऐसी व्यवस्था दिखाई पड़ती थी। इनमें किसी भी महत्वपूर्ण मुद्दे के लिए सभी स्वतंत्र नागरिकों (दास नहीं) की बैठक होती थी और उसमें बहुमत की राय के आधार पर निर्णय किया जाता था। रोचक तथ्य है कि इन नगर-राज्यों में न्यायपालिका के स्तर पर भी ऐसी ही प्रणति अपनाई जाती थी जो आज उपयुक्त नहीं समझी जाती है। वर्तमान समय में प्रायः हर देश में अप्रत्यक्ष लोकतंत्र (Indirect democracy) या प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) ही दिखाई पड़ता है। इसकी मूल वजह यह है कि आजकल किसी भी देश की जनसंख्या इतनी ज्यादा है कि वहाँ के सभी नागरिक एक साथ बैठकर कोई निर्णय ले सकें, यह संभव नहीं है। इसलिए देश के संपूर्ण भू-भाग को जनसंख्या की दृष्टि से कई हिस्सों में विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक हिस्से की जनता अपने एक प्रतिनिधि को चुन कर भेजती है। इस प्रकार जनता द्वारा चुने गये सभी प्रतिनिधि मिलकर शासन व्यवस्था का संचालन करते हैं। प्रतिनिधियों के माध्यम से संचालित होने के कारण इस प्रणाली को प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) कहते हैं।

आज भी कहीं-कहीं यह कोशिश की जाती है कि प्रत्यक्ष लोकतंत्र की विशेषताओं को राजनीतिक प्रणाली में शामिल किया जाए। जनसंख्या की अधिकता के कारण यह व्यापक रूप में तो संभव नहीं होता किंतु थोड़ी बहुत मात्रा में ऐसे प्रयोग किये जा सकते

(क) 'पहल' (Initiative) के अंतर्गत व्यवस्था यह है कि कोई साधारण नागरिक या नागरिकों का समूह किसी नए कानून या संविधान संशोधन का प्रारूप स्वयं तैयार कर सकता है और यदि स्विट्जरलैंड के पंजीकृत मतदाताओं में से पचास हजार (नए कानून के लिए) या एक लाख (संविधान संशोधन प्रस्ताव के लिए) इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर देते हैं तो शासन के लिए उसे दो वर्ष के भीतर राष्ट्रव्यापी मतदान के लिए प्रस्तुत करना अनिवार्य हो जाता है।

(ख) 'जनमतसंग्रह' या 'परिपुच्छ' (Referendum) एक ऐसी पद्धति है जिसमें सरकार या संसद किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर अपनी ओर से निर्णय थोपने की बजाय जनता की राय जानने का प्रयास करती है और जनता मतदान के माध्यम से अपनी राय बताती है।

स्विट्जरलैंड को छोड़ दें तो प्रत्यक्ष लोकतंत्र की एक और विशेष व्यवस्था होती है- वापस बुलाने का अधिकार (Right to recall)। इसके अंतर्गत मतदाताओं को यह अधिकार होता है कि यदि उनका प्रतिनिधि उनकी आकांक्षाओं के मुताबिक काम नहीं कर रहा है तो निर्वाचक मंडल (Electorate) के एक निश्चित संख्या के सदस्य अपने प्रतिनिधि को वापस बुलाने का प्रस्ताव रख सकते हैं। यदि अधिकांश जनता इस प्रस्ताव पर होने वाले जनमतसंग्रह (Referendum) में प्रतिनिधि को वापस बुलाने के पक्ष में मत देती है तो उस प्रतिनिधि को अपने पद से हटना पड़ता है।

भारत में अभी प्रत्यक्ष लोकतंत्र की व्यवस्था लागू नहीं है किंतु पिछले कुछ वर्षों में चुनाव सुधारों (Electoral Reforms) के पक्ष में चलने वाले आंदोलनों ने ऐसी कुछ मांगें रखी हैं। हाल ही में अन्ना हजारे द्वारा चलाये गये 'जनलोकपाल आंदोलन' के माध्यम से भी ऐसी कुछ मांगें प्रस्तुत की गई हैं। वापस बुलाने का अधिकार (Right to recall), खारिज करने का अधिकार (Right to reject), सूचना का अधिकार (Right to information) तथा जनता की अधिक शक्ति देने का प्रस्ताव, समाज द्वारा नये कानूनों की पहल (Initiative) करने की कोशिश जैसे-माँझी प्रकार के ही विद्यमान हैं। कि, जन लोकपाल-बिल का मसौदा जिस प्रकार सिविल सोसायटी (Civil Society) ने अपने स्तर पर निर्मित किया है वह एक अर्थ में स्विट्जरलैंड में लागू पहल (Initiative) जैसी व्यवस्था का ही उदाहरण है।

2. विचारधारा की दृष्टि से लोकतंत्र के प्रकार (Types of Democracy on the basis of Ideology)

विचारधारा की दृष्टि से लोकतंत्र को प्रायः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है: (i) उदार या उदारवादी लोकतंत्र (Liberal Democracy), (ii) समाजवादी लोकतंत्र (Socialist Democracy), तथा (iii) साम्यवादी लोकतंत्र (Communist Democracy)।

(i) उदार लोकतंत्र (Liberal Democracy) प्रायः चार देशों में लोकतंत्र की धारणा के रूप में स्थापनित: जानते हैं। चूँकि आधुनिक काल में लोकतंत्र की विचारधारा उदारवादी चिंतन ने प्रभावित किया था। इसलिए इसे उदार लोकतंत्र कह दिया जाता है। उदारवादी विचारधारा का मूल मूल्य है विचारधारा की दो-आंशिकता (Individualism) तथा उसकी स्वतंत्रता (Freedom) को महत्त्वपूर्ण मानती है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली आदि देशों का लोकतंत्र इसी विचारधारा पर आधारित है।

उदार लोकतंत्र का मूल विश्वास यह है कि प्रत्येक व्यक्ति इतना विवेकशील होता है कि वह अपने बारे में सर्वश्रेष्ठ निर्णय स्वयं ले सकता है। इसलिए यदि सभी व्यक्ति स्वतंत्र मतदान के माध्यम से अपने राजनीतिक प्रतिनिधि का चयन करते हैं और उन प्रतिनिधियों के माध्यम से अपना शासन स्वयं चलाते हैं तो यह एक आदर्श स्थिति है। इस दृष्टिकोण के आधार पर उदार लोकतंत्र के समर्थक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के लिए निम्नलिखित शर्तों का प्रावधान करते हैं-

1. इसमें एक से अधिक राजनीतिक दलों तथा उम्मीदवारों की उपस्थिति होनी चाहिए।
2. इसमें प्रत्येक वयस्क नागरिक को मतदाधिकार प्राप्त होना चाहिए।
3. निश्चित अंतराल के बाद स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव संपन्न होने चाहिए।
4. राजनीतिक पदों तथा अधिकारी तंत्र (Bureaucracy) के पदों को मुक्त प्रतिस्पर्धा तथा योग्यता के आधार पर भरा जाना

7. विभिन्न हित समूहों (Interest groups) और दबाव समूहों (Pressure groups) को संगठित होने तथा अपनी मांगें मनवाने के लिए सरकार पर दबाव डालने की आज्ञा दी होनी चाहिए।

8. न्यायपालिका (Judiciary) स्वाधीन होनी चाहिए अर्थात् उसे विधायिका (Legislature) तथा कार्यपालिका (Executive) के प्रभावों से मुक्त होना चाहिए।

(ii) समाजवादी लोकतंत्र (Socialist Democracy) उदार लोकतंत्र से पृथक् होता है। इसका एक रूप तो वह है तो भूतपूर्व सोवियत संघ में था और वर्तमान चीन में है। इस प्रणाली को सभ्यतः 'साम्यवादी दल की तानाशाही' (Dictatorship of Communist Party) के रूप में जाना जाता है किन्तु इन देशों के साम्यवादी विचारक दावा करते हैं कि असली लोकतंत्र उन्हीं के पास है। वे इसे 'साम्यवादी लोकतंत्र (Communist Democracy)' कहना पसंद करते हैं। उनका तर्क है कि लोकतंत्र की वास्तविक पहचान चुनाव प्रणाली आदि संस्थाओं व व्यवस्थाओं से नहीं होती बल्कि इस बात से होती है कि शासन के केंद्र में सचमुच आम आदमी है या नहीं। उदार लोकतंत्र कहने को लोकतंत्र है किन्तु वस्तुतः वह धनतंत्र (Plutocracy) है क्योंकि अत्यधिक महंगी चुनाव प्रक्रिया के कारण सिर्फ कुछ अमीर लोग ही चुनाव का खर्च उठाने में समर्थ होते हैं। वास्तविक लोकतंत्र के लिए चुनाव आदि प्रणालियों की जरूरत नहीं होती, बल्कि ऐसे शासन की जरूरत होती है जो आम जनता के हितों के प्रति अत्यन्त प्रतिबद्ध हो। इसलिए 'साम्यवादी दल की तानाशाही' दिखने में चाहे लोकतंत्र के विरुद्ध प्रतीत हो, भीतरी स्तर पर यही प्रणाली लोकतंत्र के मूल्यों का वहन करती है। ध्यातव्य है कि इस प्रणाली में एक ही दल होता है— साम्यवादी दल (Communist party)। शेष दलों के गठन पर प्रतिबंध होता है। यदि अन्य दल होते भी हैं तो उनके अस्तित्व की शर्त होती है कि वे साम्यवादी दल के निर्देशन के अंतर्गत कार्य करेंगे। चीन में ऐसी ही व्यवस्था है। सामान्यतः साम्यवादी लोकतंत्र में आयोजित होनेवाले चुनावों में एक ही उम्मीदवार खड़ा होता है। इसलिए चुनाव का संबंध हार-जीत से नहीं, सिर्फ इस बात से जुड़ा है कि चुने गये नेता की लोकप्रियता का स्तर क्या है।

(iii) समाजवादी लोकतंत्र का एक ऐसा रूप भी है जो स्तुलनवादी रूप से विभिन्न तथा उदार है। इसे लोकतंत्र को 'समाजवादी लोकतंत्र' (Socialist Democracy) या 'लोकतांत्रिक समाजवाद' (Democratic Socialism) कहते हैं। जवाहरलाल नेहरू इसका प्रमुख समर्थकों में शामिल थे और भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी इसे भारतीय राज व्यवस्था का उद्देश्य घोषित किया गया है। परिचय में भी इसमें मिलते-जुलते कई अंदोलन हुए हैं जिनमें एडवर्ड बर्नस्टीन का विकासवादी समाजवाद (Evolutionary Socialism) तथा जॉर्ज बर्नार्ड शॉ व ऐनी बेसेट आदि की फैबियन समाजवाद (Fabian socialism) अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

संक्षेप में लोकतांत्रिक समाजवाद या समाजवादी लोकतंत्र को कुछ मान्यताएं इस प्रकार हैं:

1. यदि उदार लोकतंत्र की प्रणाली तथा विधियाँ का प्रयोग सही तरीके से किया जाए तो वे सामाजिक व आर्थिक न्याय (Social and Economic Justice) स्थापित करने में सक्षम हो सकती हैं। अतः दो या अधिक दलों की उपस्थिति, वयस्क मत अधिकार (Adult Suffrage), भारतीय संविधान प्रणाली, आदिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण जैसी प्रक्रियाएँ समाजवादी लोकतंत्र को स्वीकार हैं।
2. आर्थिक समानता को लाना जरूरी है किन्तु इसके लिए बहिष्कार क्रांति नहीं, लोकतांत्रिक प्रक्रिया ही काफी है।
3. अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित सुधार होने चाहिए—
 - (i) प्रगतिशील कराधान (Progressive taxation) को प्रणाली हो।
 - (ii) प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार मिलना चाहिए। यदि रोजगार न मिल सके तो कम से कम गुजारा भत्ता अवश्य मिलना चाहिए।
 - (iii) उत्पादन के महत्वपूर्ण साधनों पर व्यक्तिगत नहीं, सार्वजनिक स्वामित्व (Public ownership) होना चाहिए।
 - (iv) भूमि एवं बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) होना चाहिए।
 - (v) निजी सम्पत्ति को स्वीकार किया जा सकता है किन्तु अधिकतम सीमाओं के साथ, ताकि वर्ग अंतराल (Class differences) ज़्यादा न बढ़ें।
4. समाजवादी लोकतंत्र के समर्थक लोककल्याणकारी राज्य (Welfare state) का समर्थन करते हैं।
5. समाज के जो वर्ग वंचित हैं, उनके लिए संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective discrimination) तथा सामाजिक न्याय (Social justice) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, सैद्धांतिक तौर पर वह लोकतांत्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) या समाजवादी

वैधानिक अधिकार (Legal Right) बनाने, बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने तथा गरीबी के निवारण के लिए कई प्रकार की योजनाएँ चलाने में राज्य का लोकतांत्रिक समाजवादी होना स्पष्ट दिखता है। वर्तमान में चल रही 'मनरेगा' जैसी योजनाएँ भी समाजवादी लोकतंत्र की विचारधारा के अनुरूप हैं। किंतु, 1991 में शुरू हुई नई आर्थिक नीतियों (New economic policies) के बाद भारतीय राजव्यवस्था उदारवाद (Liberalism) तथा नव-उदारवाद (Neo-liberalism) के पक्ष में झुकने लगी है। निजीकरण (Privatisation) तथा उदारीकरण (Liberalisation) की नीतियाँ उदार लोकतंत्र के ज्यादा नजदीक हैं; समाजवादी लोकतंत्र के कम। इसीलिए भारत के समाजवादी दल वर्तमान सरकार पर समाजवादी नीतियों से विचलन (Deviation) का आरोप लगाते हैं।

3. कार्यपालिका तथा विधायिका के संबंधों की दृष्टि से लोकतंत्र के प्रकार

(Types of Democracy on the basis of relationship between the Executive & Legislature)

कार्यपालिका (Executive) और विधायिका (Legislature) के संबंधों की दृष्टि से लोकतंत्र दो प्रकार का हो सकता है— संसदीय लोकतंत्र (Parliamentary Democracy) तथा अध्यक्षीय लोकतंत्र (Presidential Democracy)। संसदीय लोकतंत्र का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण ब्रिटेन है जबकि अध्यक्षीय लोकतंत्र का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है।

(i) संसदीय प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- इसमें कार्यपालिका (Executive) विधायिका (Legislature) से स्वतंत्र नहीं होती बल्कि विधायिका में जिस दल को आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन हासिल होता है, उसी दल का एक प्रतिनिधि समूह मंत्रिपरिषद् (Council of ministers) के रूप में कार्यपालिका बनाता है। भारतीय राजव्यवस्था भी इसी प्रणाली पर आधारित है।
- संसदीय प्रणाली में राज्याध्यक्ष (Head of state) की महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक (Symbolic) या नाममात्र का (Nominal) होता है, उसका वास्तविक रूप से शासन पर कोई प्रभाव नहीं होता। उदाहरणतः ब्रिटेन के राजा या भारत के राष्ट्रपति की भूमिका प्रतीकात्मक ही रहती है।
- संसदीय प्रणाली में विधायिका निम्नलिखित दो सदनों में विभाजित होता है— निम्न सदन तथा उच्च सदन। निम्न सदन (Lower House) जनसंधारण द्वारा सीधे तौर पर निर्वाचित होता है जबकि उच्च सदन (Upper House) का निर्वाचन आमतौर पर विभिन्न प्रांतों की प्रतिनिधित्व देने के लिए या फिर ऐसे गणमान्य नागरिकों तथा विद्वानों को संसिद्ध बनाने के लिए किया जाता है जो निर्वाचन की सामान्य प्रक्रिया में या तो हवि नहीं लेते या फिर राजनैतिक राजनीति में सहजता महसूस नहीं करते।
- संसदीय प्रणाली में विधानमंडल का कार्यकाल निश्चित तो होता है किंतु राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमंडल को यह हक होता है कि यदि वह चाहे तो राज्याध्यक्ष को विधानमंडल भंग करने की सलाह देकर नये चुनाव आयोजित करवाये।

संसदीय प्रणाली के कई लाभ हैं। प्रथम इसमें कार्यपालिका और विधायिका में गतिरोध पैदा नहीं होता क्योंकि कार्यपालिका विधायिका के बहुमत के समर्थन से ही निर्मित होती है। दूसरे, संसदीय प्रणाली अत्यंत लचीली होती है। इसमें प्रधानमंत्री या मंत्रिपरिषद् का कोई ऐसा निश्चित कार्यकाल नहीं होता कि उसे बीच में हटाया ही न जा सक। जिस क्षण कार्यपालिका विधायिका के बहुमत का समर्थन खो देती है, उसी समय सरकार भंग हो जाती है। तीसरा लाभ यह है कि जिन देशों में धार्मिक, जातीय (Ethnic), क्षेत्रीय या भाषागत वैविध्य ज्यादा होता है, वहाँ अल्पसंख्यक वर्गों (Minorities) को कार्यपालिका में उचित प्रतिनिधित्व इस प्रणाली में मिल जाता है जो कि अध्यक्षीय प्रणाली में साधारणतः नहीं मिल पाता। चौथा लाभ यह है कि इस प्रणाली के अंतर्गत काम करने वाली सरकार को हमेशा चौकस रहना पड़ता है क्योंकि विपक्ष उस पर लगातार दबाव बनाए रखता है और यदि विपक्ष की आलोचनाओं के कारण सरकार बहुमत का समर्थन खो देती है तो सरकार गिर सकती है।

संसदीय प्रणाली में बहुत सी कमियाँ भी हैं। पहली कमी यह है कि इसमें सरकार या मंत्रिपरिषद् को कार्यपालिका को

(ii) लोकतंत्र की दूसरी प्रणाली अध्यक्षीय प्रणाली (Presidential system) है जिसमें विधायिका और कार्यपालिका का संबंध संसदीय प्रणाली से भिन्न प्रकार का होता है। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

- इसमें कार्यपालिका के प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति का चयन विधानमंडल के सदस्य नहीं करते बल्कि या तो जनता सीधे तौर पर करती है या जनता द्वारा इसी विशेष उद्देश्य के लिए निर्वाचित निर्वाचकगण (Electoral college) करता है। दोनों ही स्थितियों में राष्ट्रपति जनता की पसंद से चुना जाता है।
- राष्ट्रपति सिर्फ प्रतीकात्मक या नाममात्र का राज्याध्यक्ष (Nominal Head of State) नहीं होता, वह वास्तविक राज्याध्यक्ष भी होता है। इसका अर्थ यह है कि राज्य की ओर से सभी प्रमुख निर्णय वह स्वयं लेता है, वह किसी अन्य की सलाह के अनुसार निर्णय लेने को बाध्य नहीं होता।
- राष्ट्रपति, जो कि कार्यपालिका का प्रमुख होता है, वह विधानमंडल (Legislature) से एकदम पृथक् होता है, उसका अंग नहीं होता। इसलिए विधानमंडल सामान्य स्थितियों में उसे हटा नहीं सकता। केवल विरलतम स्थितियों में विधानमंडल महाभियोग (Impeachment) के माध्यम से राष्ट्रपति को हटा सकता है, किंतु यह प्रक्रिया पनपाने तौर पर (Arbitrarily) नहीं हो सकती।
- राष्ट्रपति पर यह बाध्यता नहीं होती कि वह विधायिका के सदस्यों में से अपने मंत्रिमंडल का चयन करे। वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को मंत्री बना सकता है, जो उसकी दृष्टि में वह विभाग या मंत्रालय संभालने के लिए सर्वाधिक योग्य हो।
- चूंकि कार्यपालिका और विधायिका एक-दूसरे से पृथक् होती हैं इसलिए कार्यपालिका के प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति को संसदीय व्यवस्था की तुलना में यह शक्ति नहीं होती कि वह अपने विवेक के अनुसार विधानमंडल को भंग कर सके।

अध्यक्षीय प्रणाली के भी अपने लाभ और नुकसान हैं। इसका पहला लाभ यह है कि शक्तियों के पृथक्करण (Separation of powers) तथा नियंत्रण व सतर्कता (Checks & Balances) के सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण शासन का कोई भी अंग नागरिकों के साथ गलत बर्ताव नहीं कर पाता। दूसरा लाभ यह है कि इसमें शासन की स्थिरता होती है और राष्ट्रपति निश्चित होकर अपनी योजनाओं को लागू कर पाता है। तीसरा लाभ यह है कि मंत्रिमंडल के चयन में योग्यता और कुशलता को पूरा महत्व मिलता है क्योंकि विधायिका के सदस्यों में से लोकचर्चा, चयन की बाध्यता नहीं होती। इससे प्रशासन में कुशलता आ जाती है। चौथा लाभ यह है कि चूंकि कार्यपालिका को विधायिका की जिम्मेदारियाँ नहीं विभाजनी पड़ती, इसलिए उसका पूरा ध्यान प्रशासनिक कार्यों पर रहता है जो देश के शासन व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

किंतु, अध्यक्षीय प्रणाली के भी अपने नुकसान हैं। पहला नुकसान यह है कि इसमें कई बार विधायिका और कार्यपालिका में टकराव या गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कार्यपालिका का प्रधान एक दल से हो जबकि विधायिका में दूसरे दल का बहुमत हो तो ऐसा गतिरोध पैदा होता है और वह शासन व्यवस्था को काफी नुकसान पहुँचाता है। दूसरा नुकसान यह है कि चूंकि राष्ट्रपति और विधायिका का कार्यकाल पूर्णतः निश्चित होता है, इसलिए वे पूर्णतः निश्चित रहते हैं और कई बार जनमत के प्रति लापरवाह हो जाते हैं। तीसरा नुकसान यह है कि निश्चित कार्यकाल की स्थिरता होने के कारण यदि जनता चाहे भी तो राष्ट्रपति को बीच में नहीं हटा पाती, चाहे राष्ट्रपति को हासिल लोक समर्थन शून्य ही क्यों न हो जाए। चौथा नुकसान है कि यह प्रणाली सारे महत्वपूर्ण निर्णय लेने की जिम्मेदारी एक ही व्यक्ति के कंधों पर डाल देती है। इससे यह खतरा बढ़ जाता है कि यदि वह व्यक्ति किसी महत्वपूर्ण निर्णय में कोई चूक कर बैठे तो समाज और देश को उसकी गलती की भारी कीमत चुकानी पड़ती है। पाँचवा नुकसान यह है कि यदि उस समाज में विभिन्न धर्मों, जातियों और भाषाओं के लोग रहते हों तो राष्ट्रपति वही व्यक्ति बन पाता है जो बहुसंख्यक वर्ग (Majority) से जुड़ा होता है। ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक (Minority) वर्ग के भीतर असुरक्षा (Insecurity) का संकट हमेशा बना रहता है।

भारतीय संविधान निर्माता इस प्रश्न को लेकर अत्यंत सजग थे कि भारत के लिए अध्यक्षीय प्रणाली (Presidential System) बेहतर होगी या संसदीय प्रणाली (Parliamentary System)? काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने संसदीय प्रणाली को चुना।

के दशक में जो राजनीतिक अस्थिरता (Political instability) की समस्या केन्द्रीय स्तर पर उत्पन्न हुई, उस समय कुछ लोगों ने यह कहा कि अध्यक्षीय प्रणाली को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। किंतु, अस्थिरता की समस्या का धीरे-धीरे समाधान हो गया और आज यह मानने में कोई समस्या नहीं है कि भारतीय समाज की विशिष्ट जरूरतों की पूर्ति के लिए संसदीय प्रणाली का ही चयन किया जाना उपयुक्त था।

4. केंद्र तथा प्रांतों के संबंधों के आधार पर लोकतंत्र के प्रकार

(Types of Democracy on the basis of relations between Centre & States)

केंद्र तथा प्रांतों के संबंधों के दृष्टिकोण से लोकतंत्र के तीन प्रकार माने जाते हैं- परिसंघात्मक (Confederal) लोकतंत्र, संघात्मक (Federal) लोकतंत्र तथा एकात्मक (Unitary) लोकतंत्र। इस वर्गीकरण का पूरा आधार यह है कि पूरे देश के लिए क्या सिर्फ एक केन्द्रीय सरकार काम करती है या फिर राजनीतिक शक्ति केन्द्रीय शासन तथा विभिन्न प्रांतों की सरकारों में मध्य बँटी हुई है? बेहतर होगा कि पहले इन तीनों अवधारणाओं (Concepts) को समझ लिया जाए।

परिसंघ (Confederation) का अर्थ होता है- वह राजनीतिक प्रणाली जिसमें केंद्र (Centre) का न तो महत्व होता है और न ही स्वतंत्र अस्तित्व। विभिन्न स्वतंत्र राज्य (States) या प्रांत (Provinces) मिलकर एक समझौता कर लेते हैं कि कुछ विषयों, जैसे विदेश नीति (Foreign policy), बाह्य सुरक्षा (External security) तथा संचार (Communication) आदि का प्रशासन वे लोग मिलकर करेंगे और इसके लिए केन्द्रीय शासन की व्यवस्था बनाई जाती है। इन प्रांतों या निर्माणक इकाइयों (Constituent units) को यह स्वतंत्रता हमेशा रहती है कि यदि वे चाहें तो परिसंघ (Confederation) से अलग हो सकते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी व्यवस्था में परिसंघ या केन्द्रीय ढांचा तो विनाशी (Destructible) होता है किंतु प्रांत या राज्य मिलकर समुचित रूप से अविनाशी (Indestructible) होते हैं। इसलिए इसे 'अविनाशी राज्यों का विनाशी संगठन' (Destructible union of indestructible states) भी कह दिया जाता है। भूतपूर्व सोवियत संघ में जो तत्कालीन परिसंघ (Confederation) था, जो कि स्वतंत्र राज्यों को मिलकर बना था, तत्कालीन साम्यवादी शासन के दौरान व्यवहारिक तौर पर राज्यों को अलग होने की अनुमति नहीं थी। सोवियत संघ के टूटने के बाद इन सभी राज्यों का स्वतंत्र अस्तित्व में आ जाना भी उसका परिसंघ होने का ही प्रमाण है। अब वे सभी स्वतंत्र राज्यों के संघ (CIS - Commonwealth of Independent States) के रूप में जुड़े हैं। यह संगठन यूरोपियन यूनियन (European Union) की तरह एक ढीला-ढाला सा संगठन है। इसे औपचारिक (Formal) तौर से परिसंघ (Confederation) भी कहा जा सकता है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका का जब गठन हुआ था तो वह भी परिसंघ (Confederation) के रूप में ही विकसित हुआ था, किंतु आगे चलकर अमेरिकी संसद ने गैरालयों के कुछ क्रान्तिकारी निर्माणों से राज्यों को अलग होने की अधिकार खत्म हो गया। इसलिए अब अमेरिका परिसंघ (Confederation) नहीं बल्कि संघ (Federation) बन गया है।

संघात्मक व्यवस्था (Federal system) परिसंघ की तुलना में कुछ कम लचीली होती है। यह व्यवस्था भी कई स्वतंत्र राज्यों (Independent states) को आपसी समझौते के तहत निर्मित होती है किंतु इस समझौते में निर्माणक इकाइयों को यह हक नहीं होता कि वे संघ से अलग होने का अधिकार रखें। इसलिए संघात्मक व्यवस्था को 'अविनाशी राज्यों का अविनाशी संगठन' (Indestructible union of indestructible states) कहा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका आज के समय में संघवाद (Federalism) का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। ऐसे अन्य उदाहरणों में जर्मनी और स्विट्जरलैंड को रखा जा सकता है। ध्यातव्य है कि स्विट्जरलैंड का नाम तो 'स्विस परिसंघ' (Swiss confederation) है किंतु वास्तविक रूप में यह एक संघ (Federation) ही है क्योंकि किसी भी कैंटन (Canton) को संघ (Federation) से अलग होने का अधिकार नहीं है।

तीसरे प्रकार की व्यवस्था **एकात्मक व्यवस्था (Unitary System)** कहलाती है। इस व्यवस्था में केंद्र को ही महत्व मिलता है, प्रांतों को नहीं। आमतौर पर छोटे देशों में, जहाँ केन्द्रीय शासन पूरे देश की व्यवस्था का संचालन करने में समर्थ होता है, ऐसी व्यवस्था पाई जाती है। ऐसी व्यवस्था में राज्यों या प्रांतों को कोई विशेष अधिकार नहीं होता, न ही उनके पास निश्चित शक्तियाँ होती हैं; उन्हें सिर्फ केन्द्रीय शासन द्वारा सौंपे गए कार्य ही करने होते हैं। इतना ही नहीं, केंद्र चाहे तो राज्यों की सीमाओं को बदल सकता है; उनके नाम बदल सकता है; नए राज्यों को निर्मित या पुराने राज्यों को नष्ट भी कर सकता है। इसलिए एकात्मक व्यवस्था (Unitary system) को 'विनाशी राज्यों का अविनाशी संगठन' (Indestructible union of destructible states) कहा जाता है। ब्रिटेन इस प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। फ्रांस की राजनीतिक प्रणाली भी एकात्मक ढांचे पर आधारित है।

- राज्यों और केन्द्र के मध्य शक्तियों और दायित्वों का वितरण एकदम स्पष्ट रूप में होता है क्योंकि इसी के आधार पर राज्यों और केन्द्र के मध्य समझौता होता है।
- संविधान की सर्वोच्चता परिसंघात्मक व संघात्मक प्रणालियों की अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि संघ की स्थापना संविधान रूपी लिखित दस्तावेज के आधार पर ही होती है। यदि इसे सर्वोच्चता हासिल न हो तो संघ व इकाइयों के बीच का समझौता विश्वसनीय नहीं रह जाता।
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Freedom of Judiciary) और संविधान की व्याख्या के मामले में न्यायपालिका की सर्वोच्चता (Judicial Supremacy) का सिद्धांत इन प्रणालियों में अनिवार्यतः स्वीकार किया जाता है क्योंकि जो संविधान केन्द्र तथा राज्यों के मध्य शक्तियों का वितरण करता है, उसकी समुचित व्याख्या को लेकर कई विवाद उत्पन्न होते रहते हैं और उन विवादों के निपटारे के लिए न्यायालय की सर्वोच्चता के सिद्धांत को मानना जरूरी हो जाता है।

परिसंघात्मक (Confederal) व संघात्मक (Federal) प्रणालियों पर आधारित लोकतंत्र के अपने फायदे भी हैं और नुकसान भी। इसका पहला लाभ यह है कि यदि समाज में जातीय, धार्मिक, क्षेत्रीय वैविध्य हो तो उस वैविध्य के अनुसार राजनीतिक प्रणाली का गठन करना आसान हो जाता है। दूसरा लाभ यह है कि इसमें राष्ट्रीय एकता (National unity) और स्थानीय स्वायत्तता (Local autonomy) दोनों व्यवस्थाओं के लाभ एक साथ उपलब्ध होते हैं। तीसरा लाभ यह है कि केन्द्रीय सरकार को बहुत सारे छोटे दायित्वों से मुक्ति मिल जाती है और वह अपना समय न्यायपालिका व अंतरराष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर केन्द्रित कर पाती है। चौथा लाभ यह है कि यदि कभी कोई राजनीतिक प्रश्न उत्पन्न हो तो पहले उसे कुछ जाता केन्द्र सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की समीक्षा करके धीरे-धीरे राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाया जा सकता है। ऐसी प्रक्रिया में अयोग्यता की संभावना काफी कम रह जाती है।

किंतु, परिसंघात्मक (Confederal) या संघात्मक (Federal) प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र में कुछ दोष भी होते हैं, जैसे- पहला नुकसान यह है कि इसमें दोहरी शासन तंत्र का अभाव से न्यायपालिका खड़ी आता है जल्द प्रशासन का ढाँचा भी अत्यंत जटिल हो जाता है। दूसरा नुकसान यह है कि केन्द्र सरकार और प्रांतीय सरकारों के मध्य अधिकार क्षेत्रों के लेकर विवाद उत्पन्न होते रहते हैं जो देश की शासन प्रणाली के लिए नुकसानदायक सिद्ध होते हैं। तीसरा नुकसान तब दिखाई पड़ता है जब किसी राज्य में किसी एक वर्ग की सरकार बनती है जो केन्द्र सरकार बनाए जाने का विरोधी होता है। ऐसी स्थिति में कई बार राजनीतिक मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं। चौथा नुकसान यह है कि कई बार प्रांतीय सरकारों के अधिकार केन्द्र सरकार की विरुद्ध आती जनता को भड़काती हैं जिससे अस्थिरता (Regional tendencies) उत्पन्न हो जाती है तथा राष्ट्रीय एकता व अखंडता (National unity and integrity) खतरे में पड़ जाती है। पांचवां नुकसान यह है कि कई बार केन्द्र सरकार उन राज्यों के विकास पर ज्यादा बल देने के लिए बाध्य हो जाती है जहाँ उसका अभाव है। अस्थिरता के कारण प्रांतीय सरकारें अक्सर विरोधी दलों की सरकारों द्वारा शासित राज्य केन्द्र के असहयोगी रवैये के कारण अस्थिरता में प्रविष्ट होती हैं। इसीलिए संघात्मक प्रणाली के लोकतंत्र पर अक्सर असंतुलित विकास (Imbalanced Development) का आरोप लगाया जाता है।

(ii) एकात्मक प्रणाली (Unitary system) पर आधारित लोकतंत्र के अंतर्गत पूरे देश के लिए एक ही सरकार काम करती है; कार्यपालिका या विधायिका के स्तर पर केन्द्र और राज्यों में समानांतर ढाँचा नहीं पाया जाता। इसका यह अर्थ नहीं कि ऐसे देशों में छोटी प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं होतीं। वे होतीं तो हैं किंतु उन्हें केन्द्र सरकार के नियंत्रण में ही काम करना होता है। केन्द्र सरकार अपनी इच्छा से स्थानीय स्तर पर थोड़ा बहुत राजनीतिक विकेन्द्रीकरण (Political decentralisation) कर सकती है किंतु वह विकेन्द्रीकरण भी स्थानीय इकाइयों का संवैधानिक अधिकार न होकर केन्द्र सरकार की प्रशासनिक कार्य-योजना (Administrative workplan) का परिणाम होता है। इंग्लैंड की शासन प्रणाली इसी ढाँचे पर आधारित है। इस प्रणाली में स्वाभाविक तौर पर न तो संविधान का उतना महत्व होता है और न ही न्यायपालिका को वैसी सर्वोच्चता हासिल होती है जैसी कि संघात्मक ढाँचे में।

एकात्मक प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र के लाभों और हानियों पर भी विचार किया जा सकता है। इसका लाभ मुख्यतः ऐसे देशों में दिखाई पड़ता है जिनका भौगोलिक क्षेत्रफल कम हो, जनसंख्या सीमित हो तथा समाज में बहुत अधिक जातीय या धार्मिक वैविध्य न हो। इंग्लैंड ऐसा ही देश है। इसलिए वहाँ यह प्रणाली खूबसूरत सफल है। इस प्रणाली के लाभों में पहला लाभ यह है कि इसमें शासन पर खर्च कम आता है। दूसरा लाभ यह है कि इसमें शासन कार्य में जटिलता भी काफी कम रह जाती है।

यह है कि इससे राष्ट्रीय एकता और अखंडता के सुनिश्चित होने के अलावा सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास भी सध पाता है।

किंतु, एकात्मक प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र के कुछ नुकसान भी हैं। पहला नुकसान यह है कि इसमें सरकार और व्यक्तियों के बीच की दूरी बहुत अधिक बढ़ जाती है क्योंकि स्थानीय स्तर की नीतियों और योजनाओं का निर्धारण भी बहुत ऊँचे स्तर से होता है। दूसरी सीमा यह है कि निर्णय करने वाले चूँकि बहुत दूर से स्थानीय समस्याओं को देख पाते हैं, इसलिए कई बार समस्याओं को ठीक से न समझ पाने के कारण समुचित समाधान नहीं हो पाता। तीसरा नुकसान यह है कि व्यक्ति और शासन के बीच अत्यधिक दूरी होने के कारण अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) की भूमिका बढ़ जाती है और लालफीताशाही (Red tapism) जैसी प्रवृत्तियाँ प्रभावी होने लगती हैं।

भारत के संविधान निर्माता इस बात को ठीक से समझते थे कि इन दोनों ही प्रणालियों के यदि कुछ फायदे हैं तो कुछ गंभीर नुकसान भी हैं। इसलिए उन्होंने भारत की विशिष्ट ज़रूरतों को समझते हुए बीच का एक रास्ता निकाला जिसमें शासन का स्वरूप सामान्यतः संघात्मक (Federal) रहता है किंतु किसी भी संकट के समय वह एकात्मक (Unitary) रूप धारण कर लेता है।

5. राजनीतिक दलों की संख्या के आधार पर लोकतंत्र के प्रकार

(Types of Democracy on the basis of number of political parties)

राजनीतिक दलों की संख्या के दृष्टिकोण से लोकतंत्र को तीन भेद किए जाते हैं— (क) एकदलीय (Single party) लोकतंत्र, (ख) द्विदलीय (Two-party) लोकतंत्र तथा (ग) बहुदलीय (Multi-party) लोकतंत्र।

(i) एकदलीय लोकतंत्र (Single Party Democracy) वह है जिसमें संसदीय या व्यवहारिक एक ही दल का प्रभुत्व होता है। साधारणतः इसका अर्थ प्रभुत्व प्राप्त होता है। पहला रूप वह है जिसमें संविधान के तहत अपरिमित दल को चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त होता है। भूतपूर्व सोवियत संघ सहित अधिकांश साम्यवादी (Communist) राज्यों में यह प्रणाली दिखाई पड़ती है। इस व्यवस्थाओं में साम्यवादी दल (कम्युनिस्ट पार्टी) एकमात्र दल होता है। नागरिकों को उससे परे कोई दल बनाने का अधिकार प्रदान नहीं किया जाता यदि अन्य दल होते भी हैं तो इसी दल के साथ किंवदंतीवादी दल के नेतृत्व के अधीन ही काम करेंगे। वर्तमान चीन में ऐसी ही व्यवस्था है।

एकदलीय प्रणाली का दूसरा रूप वह है जिसमें संसदीय तौर पर कोई दल होते हैं किंतु व्यवहारिक तौर पर एक ही दल लगातार सत्ता में बना रहता है। इससे इस प्रणाली को एकदलीय प्रणाली कहने से ज्यादा उचित है कि इसे 'एक दल प्रधान प्रणाली' (One Party Dominance System) कहा जाए। भारतीय राजनीति में राजनीति के बाद से 1977 तक के सरकारों में जिस तरह कांग्रेस दल की प्रभुता रही वह एक दल प्रधान प्रणाली का ही उदाहरण था। मैक्सिको की राजनीति में भी ऐसी ही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

(ii) द्विदलीय लोकतंत्र (Two Party Democracy) उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमें दो राजनीतिक दलों की प्रधानता होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संविधान के तहत परमप्रायः प्रभावी पार्टी को दलों का चुनाव लड़ने की अनुमति प्राप्त होती है। वहाँ अन्य राजनीतिक दल भी हैं किंतु वे अल्पसंख्यक दल हैं। पेरिस प्रणाली का प्रभुत्व नहीं के बराबर होता है और प्रभावी तौर पर सत्ता उन दोनों दलों के पास हो बनी रहती है। ब्रिटिश प्रणाली इस व्यवस्था का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। वहाँ पिछले लंबे समय से लेबर पार्टी और कंजर्वेटिव पार्टी की सरकारें ही क्रमशः सत्ता में बनी रहती हैं। अमेरिका में भी दो ही राजनीतिक दलों की प्रधानता है— डेमोक्रेटिक दल और रिपब्लिक दल।

(iii) बहुदलीय लोकतंत्र (Multi Party Democracy) उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमें दो से अधिक राजनीतिक दल बहुमत प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहते हैं। ऐसा हो सकता है कि आमतौर पर इनमें से दो ही दल ज्यादा प्रभावी हों और व्यवहारिक स्तर पर यह प्रणाली द्विदलीय प्रणाली की तरह कार्य करे, किंतु इसमें शेष दल इतने कमजोर नहीं होते कि उन्हें महत्वहीन मान लिया जाए। स्वीडन, नॉर्वे, फ्रांस और इटली की शासन प्रणालियाँ इसी प्रकार की हैं। भारत के संविधान निर्माताओं ने भी क्षेत्रीय तथा भाषाई वैविध्य (Regional and Linguistic Diversity) को देखते हुए इसी प्रणाली को चुना।

ध्यातव्य है कि 1990 के दशक में भारतीय बहुदलीय प्रणाली पर कई प्रश्न-चिह्न लगने लगे थे क्योंकि उस दौर में केंद्रीय शासन के स्तर पर प्रायः 20 से अधिक दलों की मिली जुली सरकारें बन रही थीं और कुछ दलों की राजनीतिक अपरिपक्वता के कारण बार-बार सरकारें गिर रही थीं। देश राजनीतिक अस्थिरता (Political instability) की स्थिति का शिकार बन रहा था। उस समय कई राजनीतिक विद्वानों ने सुझाव दिया था कि भारतीय दलीय व्यवस्था को द्विदलीय प्रणाली के ढाँचे पर पुनर्व्यवस्थित किया जाना चाहिए। किंतु, ऐसा करने की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि भारतीय मतदाताओं की राजनीतिक परिपक्वता (Political maturity) तथा उभरती हुई नई राजनीतिक संस्कृति (Political culture) के कारण धीरे-धीरे दो गठबंधन (Coalitions) स्थिर होते गए तथा अधिकांश दल इन गठबंधनों के साथ जुड़ने गए। धीरे-धीरे एक ठोस प्रणाली विकसित हो गई जिसे गठबंधनीय व्यवस्था (Coalition System) कहा गया।

System) कहा जाने लगा। अभी भी भारत में यही व्यवस्था चल रही है। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA- National Democratic Alliance) तथा संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA- United Progressive Alliance) इस व्यवस्था में शामिल सबसे महत्वपूर्ण दो गठबंधन हैं। इस नए ढाँचे का लाभ यह है कि इसमें द्विदलीय प्रणाली वाली स्थिरता भी विद्यमान है और देश के भाषाई, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक वैविध्य को अभिव्यक्ति देने वाली बहुदलीय प्रणाली के लाभ भी शामिल हैं।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. प्रत्यक्ष लोकतंत्र में यदि कोई नागरिक या नागरिकों का समूह किसी नए कानून या संविधान संशोधन का प्रारूप स्वयं तैयार करता है, तो यह प्रक्रिया कहलाती है—

- (1) पहल (Initiative)
(2) जनमत संग्रह (Referendum)
(3) प्रत्यावर्तन (Recall)
(4) इनमें से कोई नहीं।

2. निम्नलिखित में कौन-कौन सी प्रत्यक्ष लोकतंत्र की विशेषताएँ हैं?

- (i) पहल (Initiative)
(ii) वापस बुलाने का अधिकार (Right to Recall)
(iii) जनमत संग्रह (Initiative)

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) उदारवादी लोकतंत्र व्यवस्था तथा उसकी स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण मानता है।
(ii) उदारवादी लोकतंत्र इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप में सर्वोच्च नियंत्रण रख सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

4. उदार लोकतंत्र के समर्थकों के अनुसार लोकतांत्रिक शासन प्रणाली हेतु निम्नलिखित शर्तें हैं—

- (i) एक से अधिक राजनीतिक दलों तथा उम्मीदवारों की उपस्थिति होनी चाहिए।
(ii) प्रत्येक वयस्क नागरिक को मताधिकार प्राप्त होना चाहिए।
(iii) निश्चित अंतराल के बाद स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव संपन्न होने चाहिए।
(iv) विभिन्न हित समूहों और दबाव समूहों को सरकार पर दबाव डालने की आजादी होनी चाहिए।

सही कूट का चयन कीजिए—

- (1) (i), (ii) और (iv)
(2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (ii) और (iii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) साम्यवादी लोकतंत्र का तर्क है कि लोकतंत्र की वास्तविक पहचान इस बात से होती है कि शासन के केन्द्र में सचमुच आम आदमी है या नहीं।
(ii) समाजवादी लोकतंत्र की मान्यता है कि यदि उदारवादी लोकतंत्र की प्रणाली तथा विधियों का प्रयोग सही तरीके से किया जाए तो वे सामाजिक व आर्थिक न्याय स्थापित करने में सक्षम हो सकती हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन असत्य है?

- (i) समाजवादी लोकतंत्र के समर्थक लोककल्याणकारी राज्य का समर्थन करते हैं।
(ii) समाजवादी लोकतंत्र के समर्थक सामाजिक भेदभाव व सामाजिक न्याय का समर्थन करते हैं।
(iii) समाजवादी लोकतंत्र की यह मान्यता है कि आर्थिक समानता लाने में हिसक क्रांति का सहारा लेना तर्कसंगत है।
(iv) गणतन्त्रवादी लोकतंत्र का समर्थक है।

संसदीय लोकतंत्र की विशेषताओं में शामिल हैं—

- (i) कार्यपालिका की निर्माण विधायिका में से होता है।
(ii) कार्यपालिका के दो प्रमुख होते हैं—एक नाममात्र का तथा दूसरा वास्तविक।
(iii) शक्ति पृथक्करण तथा नियंत्रण व संतुलन का सिद्धांत प्रभाव डग से पाया जाता है।

- (iv) विधायिका का समर्थन खो देने पर सरकार भंग हो जाती है।

- कूट—
(1) (i), (ii) और (iii)
(2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (ii) और (iv)
(4) (i), (ii), (iii) और (iv)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अध्यक्षीय शासन प्रणाली में सरकार पर हमेशा अस्थिरता का खतरा छाया रहता है।
(ii) संसदीय शासन प्रणाली में सरकार पर बहुमत का खतरा नहीं रहता है तथा वह निश्चित कार्यकाल तक कार्य करने में सक्षम रहती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- अध्यक्षीय शासन प्रणाली में राष्ट्राध्यक्ष का चयन विधानमंडल के सदस्यों द्वारा होता है।
- अध्यक्षीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति पर यह बाध्यता होती है वह विधायिका के सदस्यों में से ही अपने मंत्रिमंडल का चयन करे।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

10. अध्यक्षीय शासन प्रणाली के संबंध में असत्य है—

- राष्ट्रपति वास्तविक उन्माध्यक्ष होता है।
- विधानमंडल महाभियोग के माध्यम से राष्ट्रपति को हटा सकता है।
- राष्ट्रपति को यह शक्ति होती है कि वह अपने विवेकानुसार विधानमंडल को भंग कर सके।
- यह शासन प्रणाली शक्ति-पृथक्करण तथा नियंत्रण व संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित होती है।

11. अध्यक्षीय शासन प्रणाली के लक्षण हैं—

- इसमें शासन की शक्ति राष्ट्रपति और राष्ट्रपति नियुक्त होकर अपनी योजनाओं की लागू कर पाता है।
- मंत्रिमंडल की चयन में योग्यता और कशलता को परा महत्व मिलता है।
- चौकी कार्यपालिका को विधायिका को नज़रान्तरी नहीं निभाती। यद्यपि अतः प्रशासनिक दक्षता बनी रहती है।

कूट—

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (ii) और (iii) दोनों
- (i), (ii) और (iii)

12. निम्नलिखित में से किस व्यवस्था को 'विनाशी राज्य का अविनाशी संगठन' कहा जाता है—

- परिसंघात्मक व्यवस्था।
- एकात्मक व्यवस्था।
- संघात्मक व्यवस्था।
- इनमें से कोई नहीं।

13. 'अविनाशी राज्यों का विनाशी संगठन' कहलाने वाली व्यवस्था होती है—

- एकात्मक व्यवस्था।
- परिसंघात्मक व्यवस्था।
- संघात्मक व्यवस्था।
- इनमें से कोई नहीं।

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- वर्तमान में अमेरिका संघ (Federation) न होकर परिसंघ (Confederation) बन गया है।
- एकात्मक व्यवस्था को 'विनाशी राज्यों का अविनाशी संगठन' कहा जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

16. संघात्मक व्यवस्था की विशेषताओं में शामिल दत्त्व है/हैं—

- राज्यों और केन्द्र के मध्य शक्तियों और दायित्वों का स्पष्ट वितरण।
- संविधान की सर्वोच्चता।
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता।

कूट—

- केवल (i)
- केवल (i) और (ii)
- केवल (ii) और (iii)
- (i), (ii) और (iii)

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- एकात्मक व्यवस्था में कार्यपालिका या विधायिका के स्तर पर केन्द्र और राज्यों में समानांतर ढाँचा नहीं पाया जाता।
- एकात्मक व्यवस्था में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण (Political decentralisation) सरकार की प्रशासनिक कार्य योजना को परिष्कारित करने, प्रांतों के अधिकारों का नहीं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- भारतीय शासन का स्वरूप सामान्यतः संघात्मक है।
- किन्तु संघात्मक में समग्र एकात्मक हो जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

19. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- ब्रिटिश प्रणाली द्वितीय व्यवस्था का प्रतिनिधि उदाहरण है।
- लेबर पार्टी और कंजर्वेटिव पार्टी का संबंध ब्रिटेन से है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

कुछ प्रमुख देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का परिचय (Introduction of the Political Systems of some important countries)

भारतीय राजव्यवस्था को विभिन्न पक्षों का विस्तृत अध्ययन करने से पहले बेहतर होगा कि आप विश्व के कुछ प्रमुख देशों के संविधानों तथा उनकी राजव्यवस्थाओं से परिचित हों। ऐसा करने के दो लाभ होंगे—

- (क) यह समझना आसान होगा कि भारतीय संविधान व राजव्यवस्था में कौन-कौन सी विशेषताएँ किस देश से ली गई हैं?
- (ख) भारतीय राजव्यवस्था की तुलना अन्य राजनीतिक प्रणालियों से करना सरल हो जाएगा।

ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था (British Political System)

भारतीय संविधान और राजनीतिक व्यवस्था पर सबसे ज्यादा प्रभाव ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली का है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि लंबे समय तक ब्रिटेन के अधीन रहने के कारण हमारे स्वाधीनता संघर्ष के नेताओं को ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली के लक्षणों से परिचित होने का पर्याप्त अवसर मिला था। संक्षेप में, ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. ब्रिटिश शासन प्रणाली संवैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) पर आधारित है। सन् 1688 से पहले ब्रिटेन में राजतंत्र (Monarchy) चल रहा था किन्तु 1688 ई. में हुई गौरवमयी क्रांति (Glorious Revolution) ने राजतंत्र को हटा कर संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना कर दी। इसका अर्थ है कि आजकल ब्रिटेन में राजा के पास नाममात्र की शक्ति है, जबकि वास्तविक शक्तियाँ संविधान के अंतर्गत काम करने वाली संस्थाओं जैसे संसद के पास आ गयी हैं। यह जरूर है कि ब्रिटिश व्यवस्था में अभी भी राजतंत्र (Monarchy) और कुलीनतंत्र (Aristocracy) के कुछ लक्षण बचे हुए हैं जैसे राजमुकुट (Crown) की संस्था तथा लॉर्ड्स सभा (House of Lords) की निरंतरता।
2. ब्रिटेन की लोकतंत्र संसदीय प्रणाली (Parliamentary system) पर आधारित है जिसका अर्थ है कि कार्यपालिका (Executive) का गठन विधायिका (Legislature) अर्थात् ब्रिटिश संसद के सदस्यों में से ही होता है। चूँकि संसदीय व्यवस्था का जन्म ब्रिटिश संसद से ही हुआ था, इसलिए संसदीय प्रणाली को वेस्टमिन्स्टर (Westminster) प्रणाली भी कहा जाता है। ध्यातव्य है कि 'वेस्टमिन्स्टर' लंदन का वह स्थान है जहाँ ब्रिटिश संसद भवन स्थित है।
3. ब्रिटेन का संविधान अलिखित संविधान (Unwritten Constitution) है। इसका अर्थ यह है कि यहाँ औपचारिक रूप से गठित किसी संविधान सभा (Constituent assembly) ने कोई ऐसा अकेला संविधान तैयार नहीं किया है जिसे ब्रिटिश संविधान की संज्ञा दी जा सके। ब्रिटेन में संविधान धीरे-धीरे विकसित हुआ है जिसका कुछ हिस्सा जाकी विधियाँ (Common Laws), कुछ संवैधानिक परम्पराओं (Constitutional Conventions), कुछ न्यायालयी निर्णयों (Case laws) तथा कुछ संसद के अधिनियमों (Parliamentary Acts) पर आधारित है।
4. ब्रिटेन की संसद अत्यधिक शक्तिशाली है जिसका मूल कारण संविधान का अलिखित होना है। चूँकि संविधान संसद की शक्तियों पर कोई नियंत्रण लागू नहीं करता, इसलिये ब्रिटेन की संसद विधि निर्माण की साधारण प्रक्रिया से ही संविधान को बदल सकती है। यही कारण है कि ब्रिटिश संविधान को सुनम्य या लचीला संविधान (Flexible Constitution) भी कहा जाता है। ब्रिटिश संसद की शक्तियों पर टिप्पणी करते हुए एक प्रसिद्ध विधिवेत्ता एडवर्ड कॉक ने कहा है कि "ब्रिटिश संसद ऐसा कोई भी कार्य कर सकती है जो कि प्राकृतिक दृष्टि से असंभव न हो।"
5. ब्रिटेन की शासन प्रणाली एकात्मक (Unitary) है, संघात्मक (Federal) नहीं। चूँकि ब्रिटेन एक छोटा देश है और वहाँ की जनसंख्या में बहुत ज्यादा वैविध्य नहीं है, इसलिए वहाँ एकात्मक प्रणाली सफल रूप से कार्य कर रही है। एकात्मक शासन का अर्थ है कि स्थानीय शासन की इकाइयों को कानून बनाने का स्वतंत्र अधिकार नहीं है, उन्हें ब्रिटिश संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार ही कार्य करना होता है।
6. ब्रिटिश राज्य का राज्याध्यक्ष राजमुकुट (Crown) को माना जाता है। ध्यातव्य है कि महारानी की सरकार वस्तुतः राजमुकुट की सरकार होती है। राजमुकुट एक संस्था (Institution) है जबकि सम्राट एक व्यक्ति विशेष है; राजमुकुट स्थायी है जबकि सम्राट बदलते रहते हैं। रोचक तथ्य है कि लोकतंत्र का जनक देश होने के बावजूद इंग्लैण्ड अभी तक राजमुकुट के आधार पर राजतंत्र

7. ब्रिटिश संसद के दो सदन हैं- कॉमन्स सभा (House of commons) तथा लॉर्ड्स सभा (House of Lords)। कॉमन्स सभा को निचला सदन (Lower House) भी कहा जाता है और लॉर्ड्स सभा को उच्च सदन (Upper House) कहते हैं।

8. कॉमन्स सभा (House of Commons) कहने को भले ही निचला सदन हो, शक्तियों की दृष्टि से यह लॉर्ड्स सभा से बहुत आगे है। यह सदन इंग्लैण्ड के संबंध में सिद्धान्ततः ऐसा सब कुछ कर सकता है जो प्राकृतिक दृष्टि से असम्भव न हो। कॉमन्स सभा के सदस्यों की वर्तमान संख्या 650 है। ये सभी सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव (Direct election) के माध्यम से इस सदन में आते हैं। इनका कार्यकाल 5 वर्षों का होता है। विधेयकों (Bills) को पारित करने की दृष्टि से कॉमन्स सभा लॉर्ड्स सभा से बहुत अधिक शक्तिशाली है क्योंकि धन विधेयक (Money Bills) तो सिर्फ इसी में शुरू हो सकते हैं; शेष विधेयकों में से भी महत्वपूर्ण विधेयक इसी में शुरू होते हैं। लॉर्ड्स सभा की शक्ति सिर्फ औपचारिक किस्म की है क्योंकि कॉमन्स सभा यदि किसी विधेयक को एक वर्ष में दो बार पारित कर देती है तो वह कानून बन जाता है, चाहे लॉर्ड्स सभा उसके पक्ष में न हो।

9. ब्रिटिश कार्यपालिका (Executive) एक मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) के अधीन काम करती है जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री (Prime Minister) होता है। मंत्रिपरिषद के सदस्य आम तौर पर कॉमन्स सभा के लिये निर्वाचित सांसद ही होते हैं। मंत्रिपरिषद का अस्तित्व तभी तक रहता है जब तक उसे कॉमन्स सभा में बहुमत हासिल हो।

10. संसद का दूसरा सदन लॉर्ड्स सभा (House of Lords) है जिसे उच्च सदन भी कहा जाता है। ध्यातव्य है कि एकात्मक (Unitary) शासन प्रणाली में वस्तुतः दूसरे सदन की जरूरत नहीं होती किन्तु इंग्लैण्ड में कुछ और कारणों से यह सदन चला आ रहा है। इसके सदस्य जनसाधारण द्वारा निर्वाचित नहीं होते। इसमें वे लोग शामिल हैं जिन्हें या तो वंशानुगत रूप से 'लॉर्ड' की पदवी मिली हुई है, या वे पुरोहित वर्ग (Clergy) के प्रतिष्ठित सदस्य होने के कारण इसमें शामिल किये गए हैं, या फिर अपनी विशेष योग्यताओं आदि के कारण उन्हें लॉर्ड्स नियुक्ति आयोग (Lords Appointment Commission) ने जीवन भर के लिए लॉर्ड्स सभा में मनोनीत कर दिया है। 1999 ई. के बाद से लेबर पार्टी के प्रयासों के कारण वंशानुगत रूप से लॉर्ड की पदवी दिये जाने की परंपरा बन्द कर दी गई है और अब 100 से भी कम ऐसे सदस्य रह गए हैं जो वंशानुगत रूप से इस सभा में हैं।

लॉर्ड्स सभा के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। आजकल इनकी संख्या 800 के आसपास है। हालाँकि कभी-कभी यह 1200 तक भी गई है। इसके पुरुष और महिला सदस्यों को सम्मान देने के लिये उनके नाम से पूर्व क्रमशः 'लॉर्ड' तथा 'लॉडी' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। लॉर्ड्स सभा के प्रमुख की लॉर्ड चान्सलर (Lord Chancellor) कहा जाता है। पुरोहित वर्ग (Clergy) से जुड़े लॉर्ड्स को 'लॉर्ड स्पिरिटुअल' (Lord Spiritual) कहा जाता है जबकि शेष को 'लॉर्ड टेम्पोरल' (Lord Temporal)।

लॉर्ड्स सभा की एक विशेष बात यह भी है कि इसमें 12 विधि लॉर्ड्स (Law Lords) शामिल होते हैं जो कानूनी क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। इन्हें आजीवन नियुक्ति प्रदान की जाती है और इनकी भूमिका तब अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है जब लॉर्ड्स सभा इंग्लैण्ड के सर्वोच्च न्यायाधिकरण (Highest Tribunal) तथा अन्तिम अपील न्यायालय (Final Court of Appeal) के रूप में कार्य करती है। जब लॉर्ड्स सभा उच्चतम न्यायालय (Highest Court) के तौर पर काम करती है तब उसमें लॉर्ड चान्सलर के अलावा सिर्फ विधि लॉर्ड्स ही उपस्थित होते हैं। विधि लॉर्ड्स 7 वर्ष की उम्र तक विधि लॉर्ड्स रहते हैं, फिर वे विधि लॉर्ड्स नहीं रहते किन्तु अन्य लॉर्ड्स की तरह आजीवन लॉर्ड्स सभा में बने रहते हैं।

ध्यातव्य है कि सामान्यतः लॉर्ड्स सभा के सदस्य राजनीति में भाग नहीं ले सकते। ऐसे बहुत कम ही उदाहरण हुए हैं वहाँ लॉर्ड्स सभा के सदस्यों ने राजनीतिक पद संभाले हैं।

लॉर्ड्स सभा पर यह आक्षेप किया जाता है कि वह गैर-लोकतांत्रिक (Non-democratic) सदन है और अमीर वर्ग तथा रूढ़िवादियों (Conservatives) का गढ़ है।

11. इंग्लैण्ड की न्यायपालिका (Judiciary) सामान्यतः कार्यपालिका और विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त है हालाँकि संसदीय प्रणाली के अंतर्गत वहाँ शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) की वैसी गुंजाइश नहीं है जैसी संयुक्त राज्य अमेरिका में। न्यायालय आमतौर पर स्वतंत्र होकर काम करते हैं किन्तु वे संसद द्वारा पारित विधेयकों का पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन (Judicial Review) करने की शक्ति नहीं रखते। वैसे भी, न्यायपालिका का सर्वोच्च स्तर लॉर्ड्स सभा के विधि लॉर्ड्स (Law Lords) में ही है। इस दृष्टि से भी ब्रिटिश संसद न्यायपालिका से बहुत अधिक शक्तिशाली है।

अमेरिकी राजनीतिक प्रणाली (America's Political System)

संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक प्रणाली अत्यंत मौलिक व महत्वपूर्ण है। अमेरिका के कई राज्य 18वीं शताब्दी में ब्रिटेन के उपनिवेश (Colony) थे और एक लम्बे स्वाधीनता संघर्ष के बाद 1776 ईस्वी में अमेरिका के तेरह ब्रिटिश उपनिवेशों ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा (Declaration of Independence) के माध्यम से 'संयुक्त राज्य अमेरिका' (United States of America) की नींव रखी थी। अमेरिका में मूलतः आदिवासी समुदाय के लोग रहते थे। जब यूरोप के विभिन्न देशों ने उपनिवेश बनाने के लिए नए देशों की खोज की और उसी प्रक्रिया में अमेरिका को खोजा तो यूरोप के कई देशों के सहस्री और उद्यमी लोग वहाँ जाकर बसे। अफ्रीका के कुछ देशों के अश्वेत लोगों को दास बनाकर यहाँ लाया गया ताकि बड़े-बड़े जंगलों की कटाई करके नए तरीके के शहर और उद्योग धंधे स्थापित किए जा सकें। जब ब्रिटेन ने इन अधिकांश राज्यों को अपना उपनिवेश (Colony) बना लिया तो धीरे-धीरे वहाँ के लोगों में स्वतंत्रता की भूख पैदा हुई और 1776 में वे स्वाधीन हुए। किन्तु, ध्यातव्य है कि अमेरिकी आज़ादी की प्राप्ति के बावजूद वहाँ के दासों (Slaves) को मुक्ति नहीं मिली तथा अश्वेतों (Blacks) को भी श्वेतों (Whites) की तरह अधिकार नहीं मिल सके। अश्वेत और श्वेत की समस्या तब से लगातार अमेरिका को परेशान करती रही है।

इस पृष्ठभूमि के आलोक में अमेरिकी राजनीतिक संरचना को कुछ बिंदुओं में समझा जा सकता है-

1. संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान संघात्मक (Federal) है। ध्यातव्य है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 13 स्वतंत्र राज्यों के समझौते के रूप में इस संविधान का निर्माण हुआ था, इसलिये यह अपनी मूल प्रकृति में ही संघात्मक (Federal) है। शुरू में अमेरिका स्वतंत्र राज्यों का परिसंघ (Confederation) था किन्तु अब यह संघ (Federation) बन गया है अर्थात् राज्यों को संघ से पृथक् होने की शक्ति अब नहीं है। संघात्मक व्यवस्था का अनुरूप अधिकार विभाजन अमेरिकी संविधान में शामिल है, जैसे- लिखित संविधान, राज्यों के अपने पृथक् संविधानों की उपस्थिति, केंद्र और राज्यों की शक्तों की स्पष्ट विभाजित विधायिका के दो सदनों की व्यवस्था, सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति, दोहरी नागरिकता (Dual citizenship) का प्रावधान इत्यादि। ध्यातव्य है कि अमेरिका में अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary powers) राज्यों के पास हैं जबकि संघ (Federation) की शक्तियाँ स्पष्ट शब्दों में संविधान में उल्लिखित हैं। यही कारण है कि आंशिक संघात्मक व्यवस्था के आदर्श के तौर पर अमेरिकी राजनीतिक प्रणाली का ही उदाहरण दिया जाता है।

2. अमेरिकी लोकतंत्र अध्यक्षीय प्रणाली (Presidential System) पर आधारित है। इंग्लैंड की तरह संसदीय प्रणाली पर नहीं। अध्यक्षीय प्रणाली के कारण अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक राज्याध्यक्ष होता है, सिर्फ नाममात्र का नहीं। वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है।

3. अमेरिकी राष्ट्रपति अमेरिका की कार्यपालिका का मुख्य कार्यकारी (Chief Executive) होता है। उसका चुनाव 4 वर्षों के लिए होता है तथा कोई व्यक्ति अपने जीवनकाल में दो से ज्यादा बार राष्ट्रपति पद के लिए नहीं चुना जा सकता। राष्ट्रपति का कार्यकाल एकदम स्थिर होता है और उसे कबल महाभियोग (Impeachment) से ही कार्यकाल के बीच में हटाया जा सकता है जो कि लगभग असंभव जैसी होती है। महाभियोग तभी चलाया जा सकता है जब राष्ट्रपति पर देशद्रोह, जघन्य अपराध या भारी भ्रष्टाचार का आरोप हो। संसद के दोनों सदनों में यह प्रस्ताव पारित होना चाहिए। सर्वोच्च प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) में और फिर सीनेट (Senate) में। आज तक एक भी अमेरिकी राष्ट्रपति को महाभियोग के कारण हटाया नहीं जा सका है।

अमेरिकी राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचकगण (Electoral College) द्वारा किया जाता है जिसमें 538 सदस्य होते हैं। शुरू में अमेरिकी नागरिक अपने-अपने क्षेत्र से निर्वाचकगण के सदस्यों का चुनाव करते हैं और फिर निर्वाचकगण के सदस्य राष्ट्रपति का वस्तुतः यह व्यवस्था तब लागू की गई थी जब जन-सम्पर्क के साधन बहुत कम थे और जनता द्वारा सीधे राष्ट्रपति का चुनाव किया जाना संभव नहीं था। आज की तकनीकी सुविधाओं के दौर में निर्वाचकगण की व्यवस्था का सिर्फ प्रतीकात्मक (Symbolic) महत्व शेष बचा है, वस्तुतः अमेरिकी राष्ट्रपति अमेरिकी नागरिकों की पसंद से ही चुना जाता है।

4. राष्ट्रपति अपने मंत्रिमण्डल (Cabinet) के निर्णय के लिए ब्रिटिश व्यवस्था की तरह विधायिका के सदस्यों में से चयन करने को बाध्य नहीं होता। वह अपनी पसन्द से किसी भी व्यक्ति को मंत्री बना सकता है और जब चाहे उसे हटा भी सकता है। राष्ट्रपति के मंत्री उसके सहयोगी नहीं, सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, अधिकांश उच्च अधिकारियों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति करता है, जैसे सेना के उच्च अधिकारी, सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य संघीय न्यायालयों के न्यायाधीश, राजदूत इत्यादि; हालाँकि इन नियुक्तियों के लिए उसे सीनेट का अनुसमर्थन (Ratification) हासिल करना पड़ता है।

5. अमेरिकी विधायिका (American Legislature) को कांग्रेस कहा जाता है। चूँकि अमेरिका संघीय प्रणाली (Federal structure) पर आधारित है, इसलिये स्वाभाविक तौर पर वहाँ का विधानमण्डल द्विसदनीय (Bicameral) है। इनमें से पहला सदन

‘प्रतिनिधि सभा’ (House of Representatives) है जिसे निचला सदन (Lower House) भी कहा जाता है। दूसरा सदन सीनेट (Senate) है जिसे उच्च सदन (Upper House) भी कहा जाता है।

6. प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) में 435 सदस्य होते हैं जो पूरे देश की जनता द्वारा चुने जाते हैं। इनके निर्वाचन क्षेत्र जनसंख्या के आधार पर तय होते हैं, इसलिए स्वाभाविक है कि प्रत्येक राज्य से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या असमान होती है। यह आवश्यक है कि चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार उसी निर्वाचन क्षेत्र (Constituency) का निवासी होना चाहिए। इस नियम के कारण कभी-कभी कुछ प्रतिभाशाली लोग राजनीतिक अवसरों से वंचित हो जाते हैं किन्तु इससे लोकतंत्र की भावना को मजबूती मिलती है। प्रतिनिधि सभा के सदस्यों का निर्वाचन दो वर्षों के लिए होता है और इस अवधि को किसी भी तरह बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता।

7. अमेरिकी कांग्रेस के दूसरे सदन ‘सीनेट’ (Senate) का ढाँचा संघात्मक शासन प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुरूप है। प्रत्येक राज्य को सीनेट में दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, चाहे जनसंख्या या क्षेत्र की दृष्टि से राज्य का आकार कुछ भी हो। चूँकि अभी संयुक्त राज्य अमेरिका में 50 राज्य हैं, इसलिये सीनेट में 100 सदस्य होते हैं। इन सदस्यों का निर्वाचन आरम्भ में राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा होता था किन्तु 1913 ई. के बाद से राज्य की जनता इनका प्रत्यक्ष चुनाव (Direct election) करती है। सीनेट के प्रत्येक सदस्य को 6 वर्षों के लिए चुना जाता है। प्रत्येक 2 वर्षों के बाद सीनेट के एक तिहाई सदस्य सेवानिवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार पूरी सीनेट कभी भी भंग नहीं होती। यही कारण है कि इसे स्थायी सदन (Permanent House) भी कहा जाता है।

8. संयुक्त राज्य अमेरिका का उपराष्ट्रपति (Vice President) सीनेट का सभापति होता है। ध्यातव्य है कि अमेरिका में उपराष्ट्रपति का चुनाव भी राष्ट्रपति के चुनाव के साथ ही निर्वाचन मण्डल (Electoral college) के माध्यम से चार वर्षों के लिए होता है। वह सीनेट में सामान्यतः तटस्थ रूप से कार्य करता है किन्तु यदि किसी मामले में यह और विपक्ष में बराबर मत पड़ जाने के कारण फैसला न हो पा रहा हो तो वह निर्णायक मत देता है। यदि राष्ट्रपति को मुख्यतः चार या वह इस्तीफा दे दे या उसे प्रहर्षाभियोग (Impeachment) के माध्यम से हटा दिया जाए तो उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति का स्थिति ग्रहण करता है।

9. अमेरिकी राजनीतिक प्रणाली में सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान में इसमें कुल 9 न्यायाधीश होते हैं जिनमें से एक मुख्य न्यायाधीश होता है। ये न्यायाधीश आजीवन अपने पद पर बने रहते हैं परन्तु यदि कोई न्यायाधीश कम से कम 10 वर्षों की सेवा पूरी कर चुका हो और 70 वर्ष की आयु का हो गया हो तो स्वच्छ से सेवानिवृत्त हो सकता है। इसके अलावा, इन न्यायाधीशों को हटाने का एकमात्र तरीका महाभियोग (Impeachment) है जो देशद्रोह, जघन्य अपराध या भारी प्रष्टाचार जैसे कारणों के आधार पर ही लगाया जा सकता है।

चूँकि संघात्मक संविधान (Federal Constitution) के मामले में लिखित संविधान का तथा संविधान के उपबंधों के समुचित निर्वचन (Appropriate Interpretation) का विशेष महत्त्व होता है, इसलिये स्वाभाविक तौर पर सर्वोच्च न्यायालय अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। यँ तो अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण (Separation of powers) का सिद्धान्त लागू है किन्तु पिछले 225 वर्षों में धीरे-धीरे सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं को सर्वोच्च शक्तिशाली सिद्ध कर दिया है और संविधान के संरक्षक (Guardian of the constitution) की भूमिका अख्तियार कर ली है।

10. अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय मुख्यतः दो शक्तियों का प्रयोग करता है जो उसकी सर्वोच्चता को सिद्ध करती हैं—(क) न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review); तथा (ख) अधिनिर्णयन (Adjudication)।

न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) का अर्थ है—यह निर्णय करने की शक्ति कि विधायिका (Legislature) द्वारा निर्मित कोई कानून या कार्यवाही संविधानसम्मत (Constitutional) है अथवा नहीं; और यदि वह संविधान के विरुद्ध (Unconstitutional) है तो उसे अवैध घोषित करने की शक्ति। इस शक्ति का प्रयोग सर्वोच्च न्यायालय निचले न्यायालयों (Lower courts) के निर्णयों पर भी कर सकता है। ध्यातव्य है कि अमेरिकी संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति स्पष्ट शब्दों में नहीं दी गई थी, इसे सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों के माध्यम से अर्जित कर लिया है और अब अमेरिकी जनता ने भी इसे उचित मानकर स्वीकार कर लिया है।

अधिनिर्णयन (Adjudication) का अर्थ है संविधान के किसी उपबंध या किसी कानून को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करते हुए यह बताना कि संविधान की मूल भावना (Spirit of the Constitution) के अनुसार उसका ‘वास्तविक अर्थ’ क्या है। यह शक्ति भी अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने धीरे-धीरे हासिल कर ली है। वह संविधान के शब्दों की नई व्याख्या करके विधानमण्डल के कृत्यों को

स्विट्जरलैण्ड की राजनीतिक प्रणाली (Swiss Political System)

स्विट्जरलैण्ड संघात्मक प्रणाली (Federal structure) की दृष्टि से विश्व के सबसे महत्वपूर्ण देशों में से एक है। इसका वास्तविक नाम 'स्विस परिसंघ' (Swiss confederation) है जो इसकी संघात्मक संरचना (Federal structure) को सूचित करता है। इसकी राजनीतिक प्रणाली को प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. स्विट्जरलैण्ड का संघात्मक ढाँचा (Federal structure) बाकी देशों से कुछ अलग है। यह देश कई राजनीतिक इकाइयों से मिलकर बना है जिनमें से कुछ को कैंटन (Canton) कहते हैं और कुछ को अर्द्ध-कैंटन (Half canton) कहते हैं। स्विस परिसंघ में कुल 20 कैंटन तथा 6 अर्द्ध-कैंटन हैं। अर्द्ध-कैंटन भी कैंटन ही हैं, इस नामकरण का सिर्फ ऐतिहासिक महत्व है। प्रत्येक कैंटन का अपना पृथक संविधान, अपनी विधानसभा और अपनी सरकार है। 1874 से चले आ रहे स्विस संविधान के तहत संघीय सरकार (Federal Government) को कुछ निश्चित शक्तियाँ दी गई हैं जबकि अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary powers) कैंटनों के पास हैं।

2. संघ के स्तर पर संघीय सभा (Federal assembly) विधायिका (Legislature) का कार्य करती है। संघात्मक ढाँचे के अनुरूप इसके दो सदन हैं। निचले सदन को राष्ट्रीय परिषद (National council) कहा जाता है जबकि उच्च सदन को राज्य परिषद (Council of States) कहते हैं। निचले सदन अर्थात् राष्ट्रीय परिषद में 200 सदस्य होते हैं जो सार्वजनीन वयस्क मताधिकार (Universal adult suffrage) के आधार पर चुने जाते हैं। यह चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation) के अनुसार दलीय सूची प्रणाली (Party List System) के आधार पर आयोजित होता है। इन सदस्यों का कार्य 4 वर्षों के लिये होता है। उच्च सदन अर्थात् राज्य परिषद में कुल 46 सदस्य होते हैं जिनमें से प्रत्येक कैंटन से दो तथा प्रत्येक अर्द्ध-कैंटन से एक सदस्य आता है।

3. संघीय स्तर पर कार्यकारी शक्ति (Executive power) एक विशेष समूह के लिये होती है जिससे संघीय परिषद (Federal Council) कहते हैं। इस परिषद में 7 सदस्य होते हैं जिन्हें विधानमण्डल के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) में 4 वर्ष के लिए चुना जाता है। संघीय परिषद के अध्यक्ष को स्विस परिसंघ का राष्ट्रपति (President) कहा जाता है और बाकी छह सदस्यों को प्रायः भूतों कहा दिया जाता है। ध्यातव्य है कि राष्ट्रपति सिर्फ सांकेतिक एवम् अध्यक्ष (Symbolic head of state) होता है, वस्तुतः उसकी शक्तियाँ बाकी सहयोगियों के बराबर होती हैं। हर एक वर्ष के बाद राष्ट्रपति बदलता रहता है। कार्यपालिका की इसी विलक्षण संरचना के कारण स्विस कार्यपालिका को बहुल कार्यपालिका (Plural executive) कहा जाता है।

4. स्विस राजनीतिक प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि उसमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) के सिद्धांत का सबसे ज्यादा प्रयोग दिखायी देता है। यहाँ वहाँ भी जनसंख्या के प्रचुर आकार के कारण प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative democracy) ही प्रचलित है किन्तु उसके भीतर प्रत्यक्ष लोकतंत्र की कुछ विधियाँ भी शामिल किया गया है। ऐसी दो प्रमुख विधियाँ वहाँ प्रचलित हैं- (क) पहल या उपक्रम (Initiative) तथा (ख) जनमतसंग्रह या परिपृच्छा (Referendum)।

पहल (Initiative) का अर्थ है कि यदि कोई नागरिक या नागरिकों का समूह चाहे तो वह किसी कानून या संविधान संशोधन के विधेयक का प्रारूप स्वयं तैयार कर सकता है। यदि राजसूत मतदाताओं की एक निश्चित संख्या उस पर हस्ताक्षर कर देती है तो सरकार के लिए बाध्यता होती है कि वह विधानमण्डल (Legislature) या निर्वाचक मण्डल (Electorate) से उस पर मतदान कराये। इसके तहत, संविधान संशोधन के मामले में न्यूनतम 1 लाख मतदाताओं के हस्ताक्षर चाहिए जबकि किसी संघीय कानून के मामले में 50 हजार मतदाताओं के हस्ताक्षर पर्याप्त होते हैं। दोनों ही स्थितियों में 2 वर्षों के भीतर मतदान कराना जरूरी होता है। **जनमतसंग्रह या परिपृच्छा (Referendum)** ऐसी विधि है जिसमें सरकार या संसद स्वयं किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर जनसाधारण की राय जानने के लिए मतदान कटती है। इसका उद्देश्य यह जानना होता है कि सरकार जिस नीति या कानून को लागू करना चाहती है, कहीं वह जनता की भावनाओं के विपरीत तो नहीं है।

फ्रांस की राजनीतिक प्रणाली (French Political System)

1789 की फ्रांसीसी क्रांति के बाद से फ्रांस ने उदार लोकतंत्र (Liberal Democracy) को स्वीकार किया है। राजतंत्र (Monarchy) और कुलीनतंत्र (Aristocracy) को समाप्त करने की दृष्टि से 1789 की क्रांति का काफी महत्व है।

फ्रांसीसी राजनीतिक प्रणाली की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. फ्रांस में एकात्मक (Unitary) शासन प्रणाली है अर्थात् वहाँ एक ही राष्ट्रीय सरकार है। स्थानीय स्तर पर बहुत-सी क्षेत्रीय परिषदें (Zonal councils) व नगरपालिका परिषदें (Municipal councils) हैं किंतु उन्हें केंद्रीय सरकार द्वारा निर्धारित कार्य ही करने होते हैं।
2. फ्रांस की कार्यपालिका की एक विशेषता 'दोहरी कार्यपालिका प्रणाली' (Dual Executive System) है जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों के पास कार्यपालिका की निश्चित शक्तियाँ होती हैं। राष्ट्रपति का चुनाव जनता प्रत्यक्ष विधि (Direct method) से करती है और प्रधानमंत्री का चुनाव संसद के बहुमत के आधार पर होता है। फ्रांसीसी राष्ट्रपति ब्रिटिश राजा या भारतीय राष्ट्रपति की तरह नाममात्र का प्रधान (Nominal head) नहीं होता बल्कि उसे भी प्रधानमंत्री के साथ-साथ कई कार्यकारी शक्तियाँ (Executive powers) प्राप्त हैं।
3. फ्रांसीसी शासन व्यवस्था की एक विशेष बात यह भी है कि इसमें राजनीतिक कार्यपालिका की तुलना में संसद की शक्तियाँ बहुत कम हैं। संसद केवल मूल सिद्धांत या मार्गदर्शक सिद्धांत (Guiding Principles) ही बना सकती है, अन्य क्षेत्रों में सरकार को कानून बनाने की पर्याप्त शक्ति मिली हुई है।
4. 'सहचारिता' (Co-habitation) फ्रांस में ऐसी स्थिति को कहते हैं जब राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भिन्न-भिन्न दलों के होते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार राजनीतिक अतिरोध (Political Deadlock) का खतरा उत्पन्न हो जाता है।
5. फ्रांस की चुनाव प्रणाली का एक उपबन्ध (Provision) विशिष्ट है। इसे 'द्वितीयक पूर्ण बहुमत प्रणाली' (Run off Absolute Majority System) या 'दोबारा मतदान प्रणाली' (Second Ballot System) कहते हैं। इसके अंतर्गत नेशनल असेंबली का चुनाव जीतने के लिए उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत (Absolute Majority) प्राप्त करना होता है। जिसका अर्थ है उसे पंजीकृत मतदाताओं के कम से कम एक-चौथाई मत तथा मतदान में डाले गए कुल मध्य मतों के कम से कम 50 प्रतिशत वोट प्राप्त करने होते हैं। यदि पहली बार में किसी भी उम्मीदवार को ऐसा बहुमत प्राप्त नहीं होता तो पंजीकृत मतदाताओं को कुल संख्या के साढ़े बाह्य प्रतिशत से ज्यादा वोट जिन उम्मीदवारों को मिलते हैं, उनके बीच पुनः चुनाव कराया जाता है। इस बार जिस उम्मीदवार को सबसे ज्यादा मत मिलते हैं उसे विजयी घोषित कर दिया जाता है चाहे उसे पूर्ण बहुमत मिला हो या नहीं।
फ्रांस के राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया में यही पद्धति कुछ भिन्न तरीके से प्रयोग की जाती है। इसमें यदि पहली बार में किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो तो सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले दो उम्मीदवारों के मध्य फिर मुकाबला कराया जाता है और उनके विजेता को निर्वाचित मान लिया जाता है।
6. फ्रांस की राजनीतिक प्रणाली में एक विलक्षण विशेषता पाई जाती है जिसे 'निर्वाचित पदों का संचय' (Accumulation of elected offices) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधि एक से अधिक निर्वाचित पदों (Elected offices) पर एक साथ बने रह सकते हैं, जैसे— वे एक ही समय में नगरपालिका के सदस्य या मेयर भी हो सकते हैं और संसद के सदस्य भी। इस प्रथा के कारण वहाँ की संसद की शक्ति को बहुत नुकसान पहुँचता है क्योंकि अधिकांश निर्वाचित लोग अपने क्षेत्रीय कार्यकलापों में इतने व्यस्त रहते हैं कि संसदीय जिम्मेदारियों के निर्वाह पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते।
7. दूसरी ओर, एक नियम यह है कि कोई भी व्यक्ति सरकार में काम करते हुए (जैसे कि मंत्री होते हुए) संसद का सदस्य नहीं हो सकता। इसलिए, नेशनल असेंबली के प्रत्येक उम्मीदवार को एक अनुपूरक (Running mate) नियुक्त करना पड़ता है जो उसके मंत्री बन जाने या उसकी मृत्यु हो जाने की स्थिति में उसके प्रतिनिधि के तौर पर कार्य कर सके।
8. फ्रांस की न्यायपालिका (Judiciary) को अमेरिकी या भारतीय न्यायपालिका जैसी शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। वहाँ का सर्वोच्च न्यायिक निकाय 'संविधान परिषद' (Constitutional Council) है। यह परिषद मोटे तौर पर अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय से

जर्मन राजनीतिक प्रणाली (German Political System)

जर्मन राजनीतिक प्रणाली की कुछ विशेषताएँ काफी महत्वपूर्ण हैं। ये इस प्रकार हैं—

1. जर्मनी में संसदीय (Parliamentary) शासन प्रणाली तथा संघात्मक व्यवस्था (Federal system) का प्रावधान किया गया है क्योंकि हिटलर के फासीवादी शासन के बाद यह कोशिश की जा रही थी कि सारी सत्ता एक ही जगह केंद्रित न होने पाए।
2. संघात्मक प्रणाली (Federal structure) के अनुरूप जर्मनी में केंद्र और राज्यों में स्पष्ट शक्ति विभाजन है। राज्यों का अपना-अपना पृथक् संविधान भी है। सिर्फ एक राज्य को छोड़कर शेष सभी में एक सदनीय (Unicameral) विधानसभा के निर्वाचन की व्यवस्था है।
3. संघीय स्तर पर राज्याध्यक्ष को संघीय राष्ट्रपति (Federal President) कहा जाता है जो कि नाममात्र का ही प्रधान होता है। वास्तविक शक्तियाँ चांसलर (Chancellor) के हाथों में रहती हैं जो कि भारतीय प्रधानमंत्री के समतुल्य होता है।
4. जर्मनी की 'संघीय विधायिका' (Federal Legislature) के दो सदन हैं— निम्न सदन (Lower House) तथा उच्च सदन (Upper House)। निम्न सदन को 'बुंदेस्टाग' कहते हैं जबकि उच्च सदन को 'बुन्देस्त्रात' कहते हैं। निम्न सदन के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति (Direct method) से जबकि उच्च सदन के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति (Indirect method) से होता है। निम्न सदन उच्च सदन की तुलना में काफी ज्यादा शक्तिशाली है हालाँकि उच्च सदन को विधेयकों (Bills) के मामले में विधेयाधिकार (Veto) की व्यापक शक्ति प्राप्त है जो भारतीय राज्यसभा से काफी ज्यादा है।
5. जर्मन संघ के निम्न सदन के चुनाव एक विशेष रीति से होते हैं जिसे 'दो वोट मतदान प्रक्रिया' (Two vote ballot procedure) कहते हैं। इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक मतदाता के दो वोट होते हैं। पहला वोट स्थानीय जिले में एक सदस्य को निर्वाचित करने के लिए होता है और सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को निर्वाचित माना जाता है। दूसरा वोट मतदाता की पसंद के दल के लिए होता है। यह वोट सूची प्रणाली (List system) के लक्षणों से संबंधित है। सदन के आधे स्थानों को पहले वोट से भर दिए जाते हैं किंतु शेष आधे स्थान दलीय सूची (Party list) के आधार पर भरे जाते हैं। इससे लाभ यह होता है कि यदि किसी दल को बहुत सारे चुनाव क्षेत्रों में अच्छी संख्या में मत प्राप्त होते हैं किंतु वे मत चुनाव जीतने के लिए पर्याप्त नहीं होते तो उस दल की मतदाताओं की पसंद के समानुपातिक (Proportional) कुछ स्थान हासिल हो जाते हैं।
6. जर्मन राजनीतिक प्रणाली की एक विलक्षण विशेषता है— 'रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव' (Constructive Vote of no-confidence)। इसके अनुसार, यदि संघीय विधायिका के निम्न सदन में चांसलर के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव (No-confidence Motion) लाया जाता है तो उस प्रस्ताव में ही यह निर्दिष्ट करना पड़ता है कि प्रस्ताव ग्राह्य हो जाने की स्थिति में नया चांसलर कौन होगा? यदि सदन बहुमत से इस पर प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो ही चांसलर को पद से हटाया जाता है। इसका लाभ यह है कि सरकार गिरने से जर्मन राजनियंत्रण में अस्थिरता (Instability) का समझा उत्पन्न नहीं होती। 1990 के दशक में जब भारत में राजनीतिक अस्थिरता (Political instability) एक बड़ी समस्या बन गई थी तब जर्मन राजनीतिक विचारक इसी व्यवस्था को भारत में लागू करने का सुझाव दे रहे थे।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित में ब्रिटिश शासन प्रणाली की विशेषताएँ नहीं हैं—

- (i) संवैधानिक राजतंत्र
- (ii) प्रत्यक्ष लोकतंत्र
- (iii) संसदीय शासन प्रणाली
- (iv) गणतंत्रात्मक व्यवस्था
- (v) अध्यक्षीय शासन प्रणाली

कूट—

- (1) (i), (iii) और (iv) (2) (ii), (iii) और (iv)

- (3) (i) और (ii) (4) (i), (iii) और (v)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) ब्रिटेन में कार्यपालिका का गठन विधायिका अर्थात् ब्रिटिश संसद के सदस्यों में से ही होता है।
- (ii) ब्रिटेन में संविधान का विकास क्रमिक रूप से हुआ है, जिसमें लोक विधि (Common Laws), संवैधानिक परम्परा, न्यायालयी निर्णय व संसदीय अधिनियमों का योगदान है।

उपरोक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)

- (2) केवल (ii)

- (3) (i) और (ii) दोनों

3. निम्नांकित में से किस देश की संसद के बारे में कहा जा सकता है कि "वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के अलावा सब कुछ कर सकती है।"

- (1) अमेरिका
- (2) ब्रिटेन
- (3) भारत
- (4) ऑस्ट्रेलिया

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) ब्रिटिश संविधान को सुनम्प या लचीला संविधान कहा जाता है।
- (ii) ब्रिटेन में संघात्मक शासन प्रणाली है।
- (iii) ब्रिटेन में सम्राट के चयन का आधार स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) केवल (iii)
- (4) उपरोक्त सभी

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) प्रतिनिधि सभा व सीनेट ब्रिटिश संसद के दो सदन हैं।
- (ii) सीनेट ब्रिटिश संसद का उच्च सदन है जबकि प्रतिनिधि सभा निम्न सदन।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) धन विधेयक के संदर्भ में कॉमन्स सभा लॉर्ड्स सभा की तुलना में अत्यधिक शक्तिशाली सदन है।
- (ii) ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद् का अस्तित्व तभी तक रहता है, जब तक उसे कॉमन्स सभा में बहुमत प्राप्त हो।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) ब्रिटिश संसद ब्रिटेन की न्यायपालिका की तुलना में बहुत अधिक शक्तिशाली है।
- (ii) ब्रिटिश न्यायपालिका न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति से रहित है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

8. भारत एवं ब्रिटेन की शासन व्यवस्था समान है क्योंकि-

- (i) दोनों लोकतांत्रिक देश हैं।
- (ii) दोनों गणतांत्रिक देश हैं।
- (iii) दोनों संसदीय शासन व्यवस्था पर आधारित हैं।
- (iv) दोनों देशों में संघात्मक शासन व्यवस्था है।

कट-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (i) और (iii)
- (3) (i), (ii) और (iii)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

9. भारत, ब्रिटेन एवं अमेरिकी शासन व्यवस्था में समानता है, क्योंकि-

- (i) तीनों लोकतांत्रिक देश हैं।
- (ii) तीनों गणतांत्रिक देश हैं।
- (iii) तीनों संसदीय शासन प्रणाली पर आधारित हैं।
- (iv) तीनों देशों में केन्द्रीय विधायिका द्विसदनीय है।

कट-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (i), (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) कॉमन्स सभा के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है।
- (ii) कॉमन्स सभा के सभी सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से आते हैं।
- (iii) धन विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया का प्रारंभ कॉमन्स सभा से ही होता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान संघात्मक है।
- अमेरिकी लोकतंत्र अध्यक्षीय प्रणाली पर आधारित है।
- अमेरिकी राष्ट्रपति औपचारिक प्रधान जबकि मंत्रिमंडल वास्तविक प्रधान होता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

(1) (i) और (ii)

(2) (ii) और (iii)

(3) (i) और (iii)

(4) (i), (ii) और (iii)

12. अमेरिकी संविधान की विशेषताएँ हैं-

- लिखित संविधान।
- केन्द्र और राज्यों में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन।
- राज्यों का पृथक् संविधान।
- दोहरी नागरिकता का प्रावधान।

कूट-

(1) (i), (ii) और (iii)

(2) (ii), (iii) और (iv)

(3) (i), (ii) और (iv)

(4) (i), (ii), (iii) और (iv)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक राज्याध्यक्ष होता है जबकि ब्रिटिश सम्राट् संवैधानिक या औपचारिक प्रमुख होता है।
- अमेरिकी न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति ब्रिटेन की न्यायपालिका की तुलना में ज्यादा है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- अमेरिकी राष्ट्रपति अपने मंत्रिमंडल के निर्माण के लिए विधायिका के सदस्यों में से चयन करने को बाध्य नहीं होता।
- अमेरिकी राष्ट्रपति को अधिकांश उच्चाधिकारियों की नियुक्ति के लिए सीनेट का अनुसमर्थन प्राप्त

उपरोक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii)

(4) न तो (i) न ही (ii)

15. अमेरिकी विधानमंडल में उच्च और निम्न सदन क्रमशः हैं-

(1) लॉर्ड्स सभा तथा कॉमन्स सभा।

(2) प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट

(3) सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा

(4) कॉमन्स सभा तथा लॉर्ड्स सभा

16. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- प्रतिनिधि सभा में प्रत्येक राज्य से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या समान होती है।
- प्रतिनिधि सभा के लिए आवश्यक है कि चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार उसी निर्वाचन क्षेत्र का निवासी होना चाहिए।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii)

(4) न तो (i) न ही (ii)

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- अमेरिका में प्रत्येक राज्य को सीनेट में दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।
- वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका में 50 राज्य हैं, इसलिए सीनेट में सौ सदस्य हैं।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii)

(4) न तो (i) न ही (ii)

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- सीनेट के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है।
- प्रत्येक दो वर्ष बाद सीनेट के एक-तिहाई सदस्य सेवानिवृत्त होते हैं।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii)

(4) न तो (i) न ही (ii)

19. संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का कार्यकाल है—

(1) 5 वर्ष

✓(2) 4 वर्ष

(3) कॉमन्स सभा में बहुमत पर निर्भर

(4) सीनेट में बहुमत पर निर्भर

20. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) अमेरिकी उपराष्ट्रपति सीनेट का सभापति होता है।

(ii) अमेरिका में उपराष्ट्रपति का चुनाव राष्ट्रपति के चुनाव के साथ ही चार वर्षों के लिए होता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i) (2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) (4) न तो (i) न ही (ii)

21. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) अमेरिकी उपराष्ट्रपति को सीनेट में निर्णायक मत देने का अधिकार प्राप्त है।

(ii) अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग नहीं लगाया जा सकता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) न ही (ii)

22. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की कुल संख्या नौ है, जो 10 वर्षों की सेवा के पश्चात् स्वच्छा से सेवानिवृत्त हो सकते हैं।

(ii) इन न्यायाधीशों को हटाने का एकमात्र तरीका महाभियोग है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

✓(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) न ही (ii)

23. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) यह निर्णय करने की शक्ति कि विधायिका द्वारा निर्मित कानून या कार्यवाही संविधानसम्मत है अथवा नहीं, न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) कहलाती है।

(ii) संविधान के किसी उपबंध या किसी कानून को

संविधान की मूल भावना के अनुसार उसका वास्तविक अर्थ क्या है, अधिनिर्णयन (Adjudication) कहलाता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i) (2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

24. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) अमेरिका में अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास हैं जबकि संघ की शक्तियों का संविधान में स्पष्ट वर्णन है।

(ii) संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यों को संघ से पृथक् होने की शक्ति नहीं है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i) (2) केवल (ii)

✓(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

25. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) अमेरिकी न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति ब्रिटिश न्यायपालिका की तुलना में कम है।

(ii) ब्रिटिश विधायिका की शक्ति अमेरिकी विधायिका की तुलना में ज्यादा है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) न ही (ii)

26. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) स्विट्ज़रलैण्ड की शासन व्यवस्था संघात्मक ढाँचे पर आधारित है।

(ii) स्विट्स संविधान में संघीय सरकार को कुछ निश्चित शक्तियाँ दी गई हैं जबकि अवशिष्ट शक्तियाँ कैंटनों के पास हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) और न ही (ii)

27. स्विट्ज़रलैण्ड के उच्च सदन को कहा जाता है—

(1) राष्ट्रीय परिषद।

(2) राज्य परिषद।

(3) सीनेट।

28. स्विट्जरलैण्ड की राजनीतिक प्रणाली के संबंध में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) निचले सदन के सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार दलीय सूची प्रणाली के आधार पर आयोजित होता है।
- (ii) निचले सदन के सदस्यों का चुनाव सार्वजनिक वयस्क मतधिकार के आधार पर नहीं होता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

29. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) स्विट्जरलैण्ड में संघीय स्तर पर कार्यकारी शक्ति एक विशेष समूह के हाथ में होती है, जिसे संघीय परिषद कहते हैं।
- (ii) संघीय परिषद के अध्यक्ष को स्विस परिषद का राष्ट्रपति कहा जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

30. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) स्विट्जरलैण्ड में हर एक वर्ष के बाद राष्ट्रपति बदलती रहता है।
- (ii) स्विस कार्यपालिका को, निचले कार्यपालिका (Lower executive) कहा जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

31. फ्रांस की शासन प्रणाली है—

- (1) एकात्मक।
- (2) संचात्मक।
- (3) परिसंचात्मक।
- (4) इनमें से कोई नहीं।

32. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) फ्रांस में दोहरी कार्यपालिका प्रणाली पायी जाती है।
- (ii) फ्रांस में राष्ट्रपति का चुनाव जवत्त प्रत्यक्ष विधि से किया जाता है जबकि प्रधानमंत्री का चुनाव संसद के बहुमत से होता है।

के आधार पर होता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

33. फ्रांस में 'सहचरिता' (Co-habitation) की स्थिति कहलाती है, जब—

- (1) राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री एक साथ मिलकर निर्णय लें।
- (2) राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री एक ही दल के होते हैं।
- (3) राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भिन्न-भिन्न दलों के होते हैं।
- (4) राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री परस्पर विरोधी निर्णय लें।

34. दोबारा मतदान प्रणाली (Second Ballot System) का संबंध है—

- (1) भारत में।
- (2) फ्रांस में।
- (3) ब्रिटेन में।
- (4) स्विट्जरलैण्ड में।

35. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) जर्मनी में संसदीय शासन प्रणाली तथा संघात्मक व्यवस्था का प्रावधान है।
- (ii) जर्मनी में संघीय राष्ट्रपति भारतीय प्रधानमंत्री के समतुल्य होता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

36. निम्न में से किस देश के निम्न सदन के सदस्यों का चुनाव 'दो वोट मतदान प्रक्रिया' (Two Vote ballot procedure) से होता है?

- (1) जर्मनी।
- (2) स्विट्जरलैण्ड।
- (3) ब्रिटेन।
- (4) अपरीका।

37. निम्न में से किस देश में रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव (Constructive Vote of no-confidence) की विलक्षण विशेषता पायी जाती है?

- (1) फ्रांस।
- (2) स्विट्जरलैण्ड।
- (3) जर्मनी।
- (4) ब्रिटेन।

भारतीय राजव्यवस्था के संबंध में चर्चित प्रमुख विचारधाराएँ (Main Ideologies discussed in relation to Indian Polity)

भारतीय राजव्यवस्था की गंभीर और परिपक्व समझ बनाने के लिए जरूरी है कि आप उन प्रमुख विचारधाराओं (Ideologies) से परिचित हों जिन्होंने भारतीय संविधान तथा भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। ध्यातव्य है कि हमारा स्वाधीनता-संघर्ष कई विचारधाराओं के समर्थकों का साझा प्रयास था। इसलिए स्वाभाविक ही है कि वे विचारधाराएँ भारतीय राजव्यवस्था पर अपना पर्याप्त प्रभाव रखती हैं। इसके अलावा, कुछ और विचारधाराएँ हैं जो स्वाधीनता के बाद की राजनीतिक चर्चाओं में महत्वपूर्ण स्थान बनाने लगी हैं। ऐसी कुछ विचारधाराओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. मार्क्सवाद (Marxism), नक्सलवाद (Naxalism), माओवाद (Maoism)

ये तीनों शब्द समकालीन भारतीय राजनीति में अत्यधिक चर्चित हैं। इन्हें एक वर्ग में रखने का कारण यह है कि विचारधारा के स्तर पर इनमें गहरा आन्तरिक संबंध है। मार्क्सवाद (Marxism) मूल विचारधारा है जबकि नक्सलवाद (Naxalism) और माओवाद (Maoism) उसकी दो विशेष अभिव्यक्तियाँ हैं।

मार्क्सवाद का प्रतिपादन काल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स नामक दो यूरोपीय चिंतकों ने 19वीं सदी में किया था। अग्रे चलकर 1917 ई. में लेनिन (रूसी) ने सोवियत रूस में तथा 1949 ई. में माओ त्से तुंग ने चीन में इसे विचारधारा को आधार बनाकर क्रांतियों की तथा नये प्रकार की राजनीतिक प्रणाली का विकास किया। इस दृष्टि से लेनिन तथा माओ की भी मार्क्सवादी विचारधारा का मुखे स्वप्न माना जाता है। जब तक भारत की प्रश्न है, मानवेंद ने यह सब इसके प्रमुख समर्थकों में शामिल थे। वे लेनिन के मुताबिक 'मण्डल' की संरचना थी, किन्तु 1949 में इनका मार्क्सवाद से मोहभंग हो गया था तथा 'नया' विचार कुछ बदल गये थे। इस प्रकार, कुछ समय तक प. जवाहरलाल नेहरू पर भी मार्क्सवाद का असर देखा गया किन्तु बाद में स्वयं उन्होंने स्पष्ट किया कि वे मार्क्सवाद के कम, समाजवाद के ज्यादा तर्जदीक हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारी आंदोलन (Revolutionary movement) के दूसरे चरण जिसमें अंगत सिद्ध चीन क्रांतिकारी शामिल थे, पर भी मार्क्सवाद का व्यापक असर पड़ा। वर्तमान समय में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (CPI), मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM), फोरवर्ड ब्लॉक आदि राजनीतिक दलों व कई जनसंघों तथा माओवादी संगठनों पर इस विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव तजर आता है।

मार्क्सवाद एक जटिल विचारधारा है किन्तु भारतीय राजव्यवस्था को समझने के लिए उसे सरलता में जानना जरूरी नहीं है। उसकी जो विशेषताएँ राजव्यवस्था को समझने के लिए उपयोगी हैं, उनकी संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

- (1) मार्क्सवाद के दो प्रमुख सिद्धांत हैं—द्वैतात्मक भौतिकवाद (Dialectic Materialism) तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism)। द्वैतात्मक भौतिकवाद (Dialectic Materialism) का संबंध प्रकृति और जगत के नियमों की व्याख्या से है जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) मनुष्य के सम्पूर्ण इतिहास की व्याख्या है।
- (2) मार्क्सवाद का मानना है कि प्रकृति की हर वस्तु में कुछ अन्तर्विरोध (Contradictions) होते हैं जिनके कारण वस्तु के भीतर 'वाद' (Thesis) और 'प्रतिवाद' (Anti-thesis) में द्वंद्व (struggle) की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इन दोनों के संघर्ष के माध्यम से ही सारा विकास (Evolution) होता है। अतः विकास के लिए संघर्ष जरूरी है।
- (3) जहाँ तक मानवीय समाज का प्रश्न है, मार्क्स का मत है कि किसी भी समाज की व्याख्या उसकी बुनियादी संरचना (Deep structure) अर्थात् उत्पादन प्रणाली (Mode of production) के आधार पर हो सकती है। शेष सभी संरचनाएँ (Structures) जैसे राजनीति, संस्कृति, कला इत्यादि इसी बुनियादी संरचना (Deep structure) द्वारा निर्धारित होने वाली ऊपरी संरचनाएँ (Super structures) हैं।
- (4) मार्क्स के अनुसार, इतिहास के विकास की प्रक्रिया में कुछ लोग उत्पादन के साधनों के मालिक बन जाते हैं तथा बिना श्रम किए लाभ कमाते हैं जबकि समाज का बहुसंख्यक वर्ग उत्पादन के साधनों पर श्रम करता है किन्तु उसे सीमित आय से ही गुजारा करना पड़ता है। हर समाज में यही दो वर्ग होते हैं, जिन्हें मार्क्स ने 'शोषक' (Haves) और 'शीषित' (Have-nots) वर्ग भी कहा है।

- (5) मार्क्स के अनुसार, शोषित वर्ग की समस्याओं का एक ही समाधान है कि वह संगठित होकर हिंसक क्रांति (Violent Revolution) करे। वर्ग चेतना (Class consciousness) उत्पन्न होने पर शोषित वर्ग अपने हितों के लिए जगमगाता होता है और क्रांति की संभावना बनती है। मार्क्सवाद, गांधी जी तथा अन्य विचारकों के 'हृदय-परिवर्तन' के विचार से सहमत नहीं है क्योंकि उसके अनुसार यह एक कल्पना ही है, यथार्थ नहीं।
- (6) मार्क्स ने 'धर्म' (Religion) और 'राष्ट्र' (Nation) जैसी संरचनाओं का निषेध किया है। धर्म अफीम (Opium) के समान है क्योंकि वह शोषित व्यक्ति को वास्तविक वर्ग-शत्रु (Class-enemy) से संघर्ष करने के स्थान पर अलौकिक सुखों (Transcendental Pleasures) के लिए प्रेरित कर देता है। राष्ट्र भी धर्म के समान एक मिथ्या चेतना (False Consciousness) है क्योंकि वह वास्तविक वर्ग विभेद के स्थान पर कृत्रिम, भौगोलिक विभेदों को स्थापित करता है।
- (7) मार्क्सवाद के समर्थकों का एक वर्ग विवाह (Marriage) और परिवार (Family) संस्थाओं का भी विरोध है क्योंकि ये संस्थाएँ निजी संपत्ति (Private Property) की सुरक्षा और हस्तांतरण के लिए विकसित हुई हैं, न कि प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए। उसका स्पष्ट मानना है कि नारी विवाह और परिवार के अंतर्गत शोषित वर्ग है, जबकि पुरुष शोषक वर्ग।
- (8) पूंजीवाद मानव इतिहास की वह अवस्था है जहाँ औद्योगिक उत्पादन की प्रचुरता के कारण मनुष्य की सभी भौतिक जरूरतें पूरी होने की संभावना बनती है किन्तु उत्पादन के इन लाभों पर पूंजीपति-वर्ग (Capitalist class) का कब्जा होने के कारण सर्वहारा या श्रमिक वर्ग (Proletariat or Labour class) को मानवोचित स्थितियाँ (Humane conditions) उपलब्ध नहीं हो पाती, इसलिए पूंजीवाद को नष्ट करना दुनिया भर के मजदूरों के लिए आवश्यक है।
- (9) हिंसक क्रांति के बाद समाजवाद (Socialism) की अवस्था आएगी जिसमें सर्वहारा वर्ग की तानाशाही (Dictatorship of Proletariat) होगी। यह एक 'संक्रमणकालीन' अवस्था (Transitional stage) है और इसके गुजरने के बाद साम्यवाद (Communist) आगमन की संभावना के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था होगी। साम्यवाद में न राज्य (State) होगा, न धर्म (Religion), न शोषण (Exploitation), न अलगाव (Alienation), न विवाह और न ही परिवार। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं (Capabilities) और रुचियों (Interests) के अनुसार कार्य करेगा तथा उसे उसकी आवश्यकताओं (Needs) के अनुसार संसाधनों (Resources) की प्राप्ति होगी।

नक्सलवाद (Naxalism):

स्वतंत्र भारत के राजनीतिक इतिहास में नक्सलवादी विचारधारा और आन्दोलन का विशेष महत्व है। 'नक्सलवाद' शब्द 'नक्सलबादी' नामक मालिक नाम से विकसित हुआ है जो पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में स्थित है। 1967 ई. का एक घटना से नक्सलवाद का औपचारिक आरंभ माना जाता है हालाँकि इसका इतिहास 1940 से 1951 तक चले तेलंगाना आन्दोलन से गहरा तौर पर जुड़ा है जहाँ स्वतंत्र भारत में पहली बार हिंसक क्रांति (Violent Revolution) की विचारधारा के साथ कुछ आदिवासी किसानों (Tribal peasants) द्वारा भूमिहीनता (Landlessness) में आम तौर पर जातीय जाति आधारित भूमिहीनता को अधिकार हासिल करने की कोशिश की गयी थी।

1964 में जब 'संयुक्त कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया' (यूनाइटेड सी.पी.आई.) से अलग होकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM) ने राज्य का पूर्ण विरोध करने के स्थान पर चुनाव प्रणाली में भाग लेने का फैसला किया तो चारू मजूमदार, कानू सान्याल आदि क्रांतिकारियों ने इसे 'अवसरवाद' (Opportunism) कहकर खारिज कर दिया। 1967 के चुनावों में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM) की जीत हुई। तभी, 1967 में नक्सलबादी नामक गाँव में एक किसान की जमीन के मुद्दे को लेकर जमींदार और किसान नेताओं में झड़प हुई जिसमें एक पुलिस इंस्पेक्टर की मृत्यु हो गयी। इस घटना ने 'संथाल जनजाति' के बहुत सारे भूमिहीन कुषकों को प्रेरित किया कि वे अपने भूमि अधिकारों के लिये सीधे-सीधे हिंसक संघर्ष (Violent struggle) में शामिल हों। यहीं से नक्सल आन्दोलन की शुरुआत हुई और लगभग 72 दिनों तक यह आन्दोलन चलता रहा। उस समय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (CPM) के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा (United Front) की सरकार ने पश्चिम बंगाल में शासन करना आरंभ कर दिया था और उसी ने इस आन्दोलन को कुचला। इस आन्दोलन को कुचलने के लिए केन्द्र सरकार का भी पश्चिम बंगाल सरकार पर अत्यधिक दबाव था।

चारू मजूमदार तथा कानू सान्याल जैसे क्रांतिकारियों ने 1969 में अपने गुरु चारू मजूमदार की स्मृति में 'नक्सलवादी' नामक एक संगठन की स्थापना की।

थोड़ा बहुत असर है। पिछले कुछ वर्षों में छत्तीसगढ़ के दन्तेवाड़ा तथा नारायणपुर क्षेत्रों में नक्सलवादियों द्वारा केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (CRPF- Central Reserve Police Force) के बहुत से कर्मचारियों की हत्या ने सिद्ध कर दिया है कि नक्सलवादी आन्दोलन को हलके में लेना आन्तरिक सुरक्षा (Internal Security) को दृष्टि से एक बड़ी भूल होगी।

नक्सलवादी विचारधारा मूलतः माओ त्से तुंग के विचारों से प्रभावित है। 1949 में 'माओ' ने चीन में जिस तरह हिंसक क्रांति (Violent Revolution) की थी, वैसी ही क्रांति करने का सपना नक्सलवादियों का था। ये राज्य (State) को उच्च वर्ग (Haves or Upper Class) के हाथों की कठपुतली मानते थे और इनका दावा था कि भूमिपतिगण (Landlords) और सामंतों (Feudal lords) की आर्थिक ताकत के सहारे से बनी सरकार से यह उम्मीद करना व्यर्थ है कि वह भूमिहीन किसानों को उनके भूमि संबंधी अधिकार दिलायेगी। इसलिये चारू भूमिदार तथा उनके सहयोगियों ने गरीब किसानों और आदिवासियों को प्रेरित किया कि यदि वे शोषण (Exploitation) और दमन (Suppression) से मुक्ति चाहते हैं तो राज्य (State) तथा शोषक वर्ग के खिलाफ हिंसक संघर्ष (Violent Struggle) का रास्ता चुनें।

माओवाद (Maoism):

नक्सलवाद और माओवाद में कोई विशेष अन्तर नहीं है। नक्सलवाद के प्रवर्तक चारू भूमिदार खुद माओवादी विचारधारा से प्रभावित थे और वे माओ की नीतियों को ही लागू करना चाह रहे थे। यह अन्तर जरूर है कि चीनी क्रांति सफल होने के बाद माओवाद चीन की राजकीय विचारधारा (State Ideology) बन गया और कई नए प्रश्नों व चुनौतियों का उत्तर देने के लिए माओवादी विचारधारा का कलेवर व्यापक होता गया। चारू भूमिदारों तथा उनके सहयोगियों का ज्यादा ध्यान इसी बात पर रहा कि राज्य के विरुद्ध हिंसक क्रांति को सफल कैसे बनाया जाये? इसलिे का जवाब मिल सकता है कि नक्सलवादी विचारधारा में उतनी व्यापकता नहीं आ सकी जितनी कि माओवाद में है।

2. समाजवाद (Socialism)

समाजवाद (Socialism) वर्तमान विश्व की सबसे प्रसिद्ध विचारधाराओं में से एक है किन्तु इस परीक्षा की रवतता के साथ परिभाषित करना सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि हम समाजवादी विचारक ने समाजवाद की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से की है। तब भी मोटे तौर पर समाजवाद को एक अर्थ दिया जा सकता है। इस दृष्टि से समाजवाद (Socialism) मार्क्सवाद (Marxism) का एक विनम्र रूप है जो समाज में संपदा (Wealth) और आर्थिक संसाधनों (Economic Resources) का समानतापूर्वक वितरण तो करना चाहता है किन्तु इसके लिये हिंसक क्रांति (Violent Revolution), वर्ग संघर्ष (Class Struggle) या राज्य के पूर्ण निषेध (Absolute negation of State) को आवश्यक नहीं मानता। मोटे तौर पर समाजवाद की निम्नलिखित विशेषताओं को स्वीकार किया जा सकता है—

1. सभी समाजवादी मानते हैं कि राज्य या सरकार का काम समाज में आर्थिक समानता (Economic equality) की स्थापना के लिए अधिकाधिक प्रयत्न करना है। इसलिये राजनीति को समाज की भाँति समझा जाना चाहिये जो इस उद्देश्य को साधने में सहायक हो सकते हैं; जैसे—प्रगतिशील करधान (Progressive Taxation) की व्यवस्था, समाज के सभी सदस्यों को निःशुल्क शिक्षा (Free education) और निःशुल्क चिकित्सा (Free Medical Facilities) जैसे अधिकार इत्यादि।
2. समाजवाद यह नहीं कहता कि व्यक्ति को निजी सम्पत्ति (Private Property) अर्जित करने की बिल्कुल अनुमति न हो; न ही वह इस बात का समर्थक है कि निजी उद्यमशीलता (Private Entrepreneurship) को पूर्णतः अस्वीकार कर दिया जाए। किन्तु, वह चाहता है कि उत्पादन के प्रमुख साधन सार्वजनिक स्वामित्व (Public Ownership) में हों तथा उद्यमशीलता (Entrepreneurship) के नाम पर मुक्त बाजार को खुली छूट न दी जाए।
3. समाजवाद के समर्थक औद्योगिक उत्पादन प्रणाली (Industrial Production System) का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि औद्योगिक प्रणाली के अधिकाधिक प्रयोग से मानव समाज की सभी भौतिक जरूरतों को पूरा किया जा सकता है।
4. समाजवादी सामान्यतः धर्म को एक रूढ़िवादी (Orthodox) विचार मानते हैं और चाहते हैं कि मनुष्य की चेतना (Consciousness) से धर्म समाप्त हो जाये। किन्तु, ये लोग मार्क्सवादियों की तरह धर्म को पूरी तरह खारिज नहीं करते। यदि कोई व्यक्ति निजी जीवन में धर्म को मानना चाहे तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

जहाँ तक भारतीय राजनीति का प्रश्न है, उस पर कई समाजवादी चिन्तकों का असर है। स्वाधीनता संग्राम के दौर में आचार्य

को स्वीकार किया गया। 1976 में संविधान के 42वें संशोधन में तो-संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में ही 'समाजवाद' (Socialism) शब्द जोड़ दिया गया। वर्तमान में भारत के कई राजनीतिक दल खुद को समाजवादी विचारधारा का वाहक बताते हैं, जैसे समाजवादी पार्टी (SP), जनता पार्टी और उसके विभिन्न धड़े भी समाजवाद को ही अपनी मूल विचारधारा बताते हैं, जैसे जनता दल एकीकृत (JDU-Janta Dal United), राष्ट्रीय जनता दल (RJD-Rashtiya Janta Dal) इत्यादि।

फ़ेबियन समाजवाद (Fabian Socialism):

समाजवाद की चर्चा के दौरान फ़ेबियन समाजवाद की चर्चा करना ज़रूरी है क्योंकि भारतीय संविधान पर जिस समाजवाद का प्रभाव है, वह मूलतः ब्रिटेन का फ़ेबियन समाजवाद ही है। फ़ेबियन समाजवाद की वैचारिक शुरुआत 19वीं शताब्दी के अन्त में हुई थी और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में इसका महत्त्व काफी बढ़ गया था। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, ग्राहम वेलेस, ऐनी बेसेंट, रैम्से मैकडॉनल्ड आदि इसके सदस्यों में शामिल थे। इस विचारधारा पर जे.एस. मिल जैसे विचारकों का काफी प्रभाव था। ब्रिटेन की लेबर पार्टी (Labour Party) का जन्म मूलतः इसी विचारधारा के आधार पर हुआ था। ध्यातव्य है कि 1900 ई. में लेबर पार्टी के गठन के समय इसके संविधान का प्रमुख अंश 'सिडनी वेब' (Sidney Webb) ने लिखा था जिनका बहुत गहरा संबंध फ़ेबियन सोसायटी से था।

फ़ेबियन सोसायटी का नाम एक प्रसिद्ध रोमन सेनापति क्विन्टस फ़ेबियस मैक्सिमस (Quintus Fabius Maximus) के नाम पर पड़ा है जिसने हेनोबॉल (Hannibal) के साथ हुए प्रसिद्ध युद्ध को एक विशेष रणनीति से जीता था। रणनीति यह थी कि जब तक सही मौका न मिले, तब तक इन्तज़ार करना चाहिये और जैसे ही सही मौका मिले, तभी पूरी शक्ति से प्रहार करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह था कि अभी पूँजीवाद से सीधे तौर पर संघर्ष करना निरर्थक है क्योंकि अभी हमारी शक्ति इतनी नहीं है। इसलिये, फ़ेबियन सोसायटी के सदस्यों ने धीमे-धीमे समाजवाद की स्थापना का प्रयास किया। उन्होंने जमींदारों की अधाधुन आय के खिलाफ़ आन्दोलन चलाया, 1906 में न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages) की घोषणा करवाने का प्रयास किया, आन्दोलन चलाया तथा 1911 में सभी नागरिकों को नि:शुल्क चिकित्सा (Free health care) का अधिकार के लिये बड़ा आन्दोलन चलाया। इन्होंने पूँजीवादी अर्थशास्त्र (Capitalist Economics) के विरोध में सहकारी अर्थशास्त्र (Cooperative Economics) की नींव रखने की तथा अपने समूह के कुछ धन से लंदन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स (London School of Economics) की स्थापना की। इनका बला इस बात पर भी था कि शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में प्रयास करते हुये समाज की चेतना (Society's Consciousness) में ऐसे परिवर्तन लाये जाने चाहिये कि पूरा समाज राष्ट्रपति के तन की समझ सके तथा समाजवाद की जड़ें गहरी कर सके। चेतना का यह परिवर्तन हो जाने के बाद पूँजीवाद से सीधे-सीधे लड़ने का सही समय आ जायेगा।

फ़ेबियन समाजवाद की समझना इसलिये ज़रूरी है कि पी.डी. जवाहरलाल नेहरू पर समाजवाद के इसी प्रारूप (Format) का प्रमुख प्रभाव था। उनकी रणनीतियों में भी वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific Temper) का विकास, लोक कल्याणकारी राज्य (Welfare state) जैसी योजनाओं का प्रवास महत्त्व था।

3. उदारवाद (Liberalism)

उदारवाद विश्व की अधिकांश राजनीतिक व्यवस्थाओं पर प्रभाव रखने वाली एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा है जिसका आरम्भ 17वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ और जो कई परिवर्तनों के साथ आज तक एक प्रमुख राजनीतिक विचारधारा बनी हुई है। उदारवाद 'लिबरलिज्म' (Liberalism) शब्द का हिन्दी अनुवाद है। इसे उदारवाद (Liberalism) इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह 'व्यक्ति' (Individual) के लिए अधिकतम स्वतंत्रता (Liberty) की मांग करता है।

उदारवाद का विकास भोटे तौर पर दो चरणों में हुआ है। इसके विकास के प्रमुख चरणों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

प्रथम चरण का उदारवाद (Liberalism in first phase):

उदारवाद का आरम्भिक चरण 17वीं शताब्दी के अंत से शुरू होकर लगभग 1850 ई. तक चलता रहा। इस दौर के प्रमुख उदारवादी विचारक हैं- जॉन लॉक, एडम स्मिथ, जेरेमी बेंथम तथा हर्बर्ट स्पेंसर। जॉन लॉक को उदारवाद का जनक भी कहा जाता

- (3) सभी व्यक्तियों के आपसी संबंध एक दौड़ (Race) के समान हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं के साथ इस दौड़ में भाग लेता है। राज्य (State) का काम सिर्फ यह देखना है कि कोई भी व्यक्ति दौड़ के नियमों का उल्लंघन न करे। अंतिम रूप से किसकी हार होती है तथा किसकी जीत- यह तय करना राज्य का काम नहीं है। दौड़ में होने वाली हार और जीत न्यायोचित (Justified) है, न कि अनैतिक (Unethical)।
- (4) राज्य प्राकृतिक (Natural) या दैवीय (Divine) संस्था नहीं है बल्कि व्यक्तियों द्वारा अपने हित में बनाया गया एक कृत्रिम यंत्र (Artificial Instrument) है। राज्य का निर्माण सिर्फ इसलिए किया गया है कि सभी व्यक्ति शांति के साथ रह सकें। उसका कार्य सिर्फ यह देखना है कि कोई व्यक्ति कानूनों का उल्लंघन न करे। राज्य की इस धारणा को रात्रिचक्षक राज्य (Night-Watchman State) या प्रहरी राज्य कहा जाता है। ध्यातव्य है कि उदारवाद ऐसे राज्य का विरोध करता है जो निरंकुश (Autocratic) प्रकृति का हो।
- (5) अर्थव्यवस्था के संबंध में यह विचारधारा 'अहस्तक्षेप के सिद्धांत' (Laissez Faire) की समर्थक है। इसके अनुसार, अर्थव्यवस्था मांग (Demand) और पूर्ति (Supply) के नियम के अनुसार स्वतः चलने वाली व्यवस्था है जिसमें राज्य की ओर से कोई भी हस्तक्षेप अवांछनीय (Undesirable) है।
- (6) इन विचारकों के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं का मालिक है। इसलिए इन क्षमताओं से अर्जित होने वाले सभी लाभों पर उसका नैतिक अधिकार है जिसे उससे छीना नहीं जा सकता।
- (7) 'अनुबंध की स्वतंत्रता' (Freedom of Contract) इनके आर्थिक विचारों का एक और महत्वपूर्ण अंग है। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति से जबान कोई कार्य नहीं करवाया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति कोई भी कार्य करने या न करने हेतु स्वतंत्र है। यदि रोजगार देने वाले तथा उसे स्वीकार करने वाले व्यक्तियों के मध्य सहमति चरित होती है तो उनकी सहमति की शर्त अनुबंध (Contract) के रूप में होगी। अनुबंध करने तक व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र है किंतु अनुबंध स्वीकार करने के पश्चात् वह उसकी शर्तों से बांध जाता है।
- (8) सम्पत्ति का अधिकार (Right to property) इनकी आर्थिक धारणाओं में प्रमुख है। लोक का मानना था कि सम्पत्ति का अधिकार मानव के अधिकारों का सारवर्गिक है।
- (9) जहाँ तक समाज का प्रश्न है, वे चिंतक आधुनिक दृष्टिकोण की समर्थक हैं। इनका मानना है कि व्यक्ति को सभी प्रकार की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। यह तभी संभव होगा जब उसे धार्मिक संस्थाओं, सामाजिक रूढ़ियों इत्यादि से भी पर्याप्त स्वतंत्रता मिले।

दूसरे चरण का उदारवाद (Liberalism in second phase):

उदारवाद का दूसरा चरण 1950-1960 के बीच उदारवाद, प्रजातन्त्रवाद, समाजवाद तथा श्रमसंवाद के उदय के कारण अब इन चिंतकों को भी लगा कि मजदूरों व गरीबों की चिंता राज्य को करना चाहिए। इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक थे- जे.एस. मिल (अंतिम दौर में), टी.एच. ग्रीन तथा लास्क्री। आधुनिक उदारवाद का प्रमुख भाष्यताएँ इस प्रकार हैं-

- (1) समाज के वंचित वर्ग सहो अर्थों में समानता और स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उनके लिए संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति अपनाई जाए। इस नीति को 'सकारात्मक कार्यवाही' (Affirmative Action) भी कहा जाता है और इसी से सामाजिक न्याय (Social Justice) की स्थिति उत्पन्न होती है। आरक्षण (Reservation) की व्यवस्था भी इसी नीति का एक अंग है।
- (2) अर्थव्यवस्था के संबंध में इन्होंने 'अहस्तक्षेप सिद्धांत' (Laissez Faire) का विरोध किया और 'न्यूनतम हस्तक्षेप' (Minimum interference) का सिद्धांत प्रस्तुत किया। बाजार अर्थव्यवस्था को 'नियमित' (Regular) करने हेतु स्वतंत्र है, किन्तु वह उसे 'नियंत्रित' (Control) नहीं करेगा। राज्य इतना हस्तक्षेप अवश्य करेगा कि मुक्त बाजार के नियम वंचित वर्ग को नुकसान न पहुँचा सके।
- (3) इनका मानना है कि सम्पत्ति का अधिकार सीमित होना चाहिए; विशेष रूप से भू-सम्पत्ति के स्वामित्व पर सीमा आरोपित की जानी चाहिए। इन्होंने सम्पत्ति के हस्तांतरण पर भारी कर लगाने की वकालत भी की।
- (4) जहाँ तक राज्य का प्रश्न है, इन विचारकों ने 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) की धारणा प्रस्तुत की। इनके अनुसार, राज्य का कार्य सिर्फ कानून व्यवस्था बनाए रखना नहीं है बल्कि विभिन्न वर्गों के मध्य अंतराल कम करना, वंचित वर्गों (Deprived classes) की वनियादी जरूरतों पूरी करना इत्यादि भी है।

नव-उदारवाद (Neo-liberalism):

1950 ई. के बाद विश्व की स्थितियाँ बदलने के कारण पुनः उदारवाद के स्वरूप में संशोधन हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व बैंक और आई.एम.एफ. जैसी संस्थाएँ निर्मित हुईं और धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में निजीकरण (Privatisation), उदारकरण (Liberalisation) तथा भूमंडलीकरण (Globalisation) की शुरुआत हुई। इस समय उदारवाद की विचारधारा एक बार पुनः नए रूप में उभरी जिसे नव-उदारवाद (Neo-liberalism) कहा गया। इसके सामान्य विचार इस प्रकार हैं-

- (1) मुक्त बाजार व्यवस्था (Free market system) समाज में वितरण (Distribution) करने के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है। व्यक्ति समाज के लिए कितना योगदान करता है, इसका सही मूल्यांकन करके बाजार उसे उतना ही लाभ प्रदान करता है। अतः वितरणमूलक न्याय (Distributive Justice) प्रदान करने हेतु एकमात्र निष्पक्ष प्रणाली (Neutral system) बाजार व्यवस्था है।
- (2) ये चिंतक सामाजिक न्याय (Social Justice) के विरोधी हैं। इनका स्पष्ट कहना है कि जब भी राज्य सामाजिक न्याय के नाम पर आरक्षण (Reservation) जैसी नीतियाँ थोपने का प्रयास करता है, तब राज्य की शक्तियाँ बढ़ने से व्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है। फिर, जिन व्यक्तियों से कुछ छीनकर अन्य वर्गों को वितरित किया जाता है, उनके हक का भी उल्लंघन होता है।
- (3) जहाँ तक राज्य का प्रश्न है, ये राज्य को अधिक शक्तियाँ देने के विरोधी हैं। इनके अनुसार राज्य के मुख्य कार्य हैं-
 - (i) कानून-व्यवस्था (Law and order) बनाए रखना।
 - (ii) वे नियम बनाना जो अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में लागू जाएँ तथा यह देखना कि उन नियमों का पालन होता रहे।
 - (iii) जो व्यक्ति मुक्त बाजार प्रतियोगिता में टिकने के काबिल नहीं है, उनके लिए कल्याणकारी उपाय करना।
 - (iv) वे सभी कार्य करना जिन्हें बाजार प्रणाली (Market system) करने में असमर्थ है।

4. फासीवाद (Fascism)

फासीवाद (Fascism) प्रथम विश्वयुद्ध के बाद दो देशों इटली और जर्मनी में पैदा हुई विचारधारा है जिसका नेतृत्व इटली में बेंनिटो मुसोलिनी ने किया और जर्मनी में एडोल्फ हिटलर ने। ये दोनों देश प्रथम विश्वयुद्ध में पराजित हुए थे तथा विजयी देशों ने इनके साथ मनमाना व्यवहार करते हुए इनके आर्थिक संसाधनों व राजनीतिक स्वाधीनता पर लगभग कब्जा जमा लिया था। इन स्थितियों में फासीवादी विचारधारा का उभरना आसान हो गया था। माना जाता है कि हीगेल तथा नीत्शे जैसे विचारकों का कुछ प्रभाव फासीवाद, विशेषतः जर्मनी के फासीवाद (जिसें नाजीवाद कहा जाता है) पर रहा। किंतु यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि फासीवादियों ने इन चिंतकों के गहरे विचारों को आत्मसात करने के स्थान पर सिर्फ उन विचारों को स्वीकार कर लिया था जो उनके लिए उपयोगी थे।

संक्षेप में, फासीवादी विचारधारा को प्रमुख आन्यताएँ निम्नलिखित हैं-

1. फासीवाद के अनुसार व्यक्ति स्वतंत्र प्राणी नहीं है बल्कि वह मूल प्रकृति में ही सामाजिक प्राणी है। वह राष्ट्र जैसी किसी व्यापक सामाजिक संरचना के अभाव में नहीं रह सकता। जब वह अपनी स्वतंत्रता के अनुसार जीने की बात करता है तो वस्तुतः अपने स्वार्थ के वशीभूत होता है। व्यक्ति की वास्तविक स्वतंत्रता यही है कि वह अपने राष्ट्र और समाज के सदस्य के रूप में खुद को देखे, एक पृथक् सत्ता के रूप में नहीं।
2. फासीवादियों ने राज्य और व्यक्ति का संबंध शरीर (Body) और कोशिका (Cell) के रूप में परिभाषित किया है। इस उपमा (Simile) के अनुसार राज्य शरीर है जबकि व्यक्ति उसकी एक कोशिका (Cell) है। चूँकि कोशिका (Cell) शरीर के अभाव में जीवित ही नहीं रह सकती, इसलिए व्यक्तियों की जिम्मेदारी बनती है कि वे राज्य के भीतर ही अपना अस्तित्व तलाशें। यह भी स्पष्ट है कि जिस तरह शरीर की रक्षा के लिए जरूरत पड़ने पर कोशिकाओं का जीवन दौब पर लगाया जा सकता है, वैसे ही राज्य की सुरक्षा के लिए व्यक्ति का जीवन भी दौब पर लगाया उचित है।

4. फासीवाद साम्यवाद (Communism) का विरोध करता है और राष्ट्रवाद (Nationalism) पर बल देता है। उसका मानना है कि यह जरूरी नहीं है कि मजदूरों और पूँजीपतियों में संघर्ष ही हो। यदि दोनों अपना-अपना काम उचित तरीके से करें तो संघर्ष की कोई आवश्यकता नहीं है। सही सिद्धांत राष्ट्रवाद है जो राष्ट्र के सभी लोगों को एक ही राष्ट्रीय चेतना में ढालकर उन्हें राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रेरित करता है।
5. फासीवाद शांति का नहीं, युद्ध का समर्थन करने वाला सिद्धांत है। हिटलर ने अपने कई भाषणों में यह कहा कि मनुष्यों और राष्ट्रों में निहित क्षमताओं की सबसे उष्कृष्ट अभिव्यक्ति युद्ध काल में ही होती है, स्थायी शांति तो मनुष्य की महान क्षमताओं को नष्ट कर देती है। माना जाता है कि हिटलर के इस विचार पर नीत्से का प्रभाव था क्योंकि उसने भी युद्ध को नैतिक बताया था।
6. जर्मन फासीवाद नस्लवाद (Racism) का भी समर्थक था, हालांकि इटली के फासीवाद में इसे स्वीकार नहीं किया गया। हिटलर ने न सिर्फ आर्य नस्ल की श्रेष्ठता का सिद्धांत प्रतिपादित किया बल्कि यहूदियों को नस्लीय शत्रु (Racial enemy) घोषित करके लगभग 60 लाख यहूदियों का जातिसंहार (Genocide) भी किया। उसने शिक्षा व्यवस्था में भी नस्लवादी विचारों को घुसपैठ कराया; यहाँ तक कि कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान भी कराए ताकि जीव-विज्ञान के स्तर पर आर्य जाति की श्रेष्ठता सिद्ध हो सके तथा सुजनिकी (Eugenics) के स्तर पर भी अनुसंधान कराए ताकि जर्मन नस्ल को श्रेष्ठतम बनाया जा सके।

फासीवाद दूसरे विश्वयुद्ध में जर्मनी और इटली की हार के साथ ही एक बड़े आंदोलन के रूप में खत्म हो गया। सीमित रूप से इसने जर्मनी और इटली की मदद भी की क्योंकि प्रथम विश्व युद्ध में हारने के बाद बाकी देशों का अन्याय झेल रहे इन देशों को अन्याय का प्रतिकार तथा आर्थिक विकास करने के लिए जैसी एकतावादी नीतिवादी सफ़ाई की जरूरत थी, वह फासीवाद ने पैदा कर दी थी। किंतु, चूंकि यह विचारों का मूलतः व्यापक और गहरा (thoroughgoing) का खिलाफ़ थी, मानवाधिकारों और शांतिपूर्ण जीवन की संभावनाओं को खारिज करती थी, समाज के सभी समूहों के जीवन की सामाजिक अधिकारों को अस्वीकार करती थी; इसलिए स्वाभाविक ही था कि यह बहुत लंबे समय तक सफल नहीं हो सकी। किंतु, आज भी यह प्रभाव समाप्त नहीं हुई है। अभी भी यूरोप के कुछ देशों में जिस तरह प्रखर राष्ट्रवाद (Intense Nationalism) की लहरें दिखती हैं और मुस्लिम विरोध या अश्वेतों का विरोध हरे लंगेन लगता है, वही फासीवाद की ही बीजबुलवाई पड़ती है।

जहाँ तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था (Indian Political System) का प्रश्न है, सामान्यतः वहाँ फासीवाद को स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि लोकतंत्र (Democracy), संविधानवाद (Constitutionalism) और समाजवाद (Socialism) पर बल देने वाली हमारी शासन प्रणाली में फासीवाद के लिए कोई जगह नहीं है। किंतु, भारतीय राजनीति (Indian Politics) में इसके लक्षण कभी-कभार दिख जाते हैं। जो राजनीतिक हट्ट-धर्म, ताल्लुका, पागलों की श्रेष्ठता, अपने-पुत्रादि प्रभार का आधार बनाते हैं, उन्हें बाकी दलों के लोग फासीवादी कहकर उनकी आलोचना करते हैं। शिवसेना, महाराष्ट्र नव निर्माण सेना, भारतीय जनता पार्टी और मुस्लिम लीग जैसे संगठनों को इस दृष्टि से फासीवादी कहा जा सकता है।

5. गांधीवाद (Gandhism)

गांधीवाद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर असर डालने वाली सबसे महत्वपूर्ण विचारधारा है। महात्मा गांधी, विनोबा भावे तथा जयप्रकाश नारायण आदि के विचार इसमें शामिल किये जाते हैं। यँ, महात्मा गांधी ने स्वयं अपने विचारों को गांधीवाद या कोई विचारधारा मानने से मना किया था, किंतु उनके विचारों में कई ऐसे मौलिक तत्व हैं जिन्हें जोड़कर गांधीवादी विचारधारा का खाका निर्मित किया जा सकता है। गांधीजी ने 'हिन्द-स्वराज' में अपने विचारों का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण किया है, बाकी स्थानों पर उनका लेखन कुछ बिखरा हुआ-सा है। उनके विचारों पर ईसा मसीह, जैन-दर्शन, हिन्दू-दर्शन, जॉन रस्किन आदि का पर्याप्त प्रभाव है और इसे उन्होंने खुलकर स्वीकार भी किया है।

गांधीवादी विचारधारा को प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. गांधी जो पश्चिमी सभ्यता तथा पश्चिमी विचारधाराओं को प्रायः अस्वीकार करते हैं। उनके समय में सोवियत संघ में समाजवादी प्रणाली चल रही थी किंतु उन्होंने उसे इसलिए खारिज कर दिया कि एक तो वह हिंसा (Violence) पर आधारित थी और दूसरे, तानाशाही (Dictatorship) के कारण उसने राज्य को इतनी शक्ति प्रदान कर दी थी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ गयी थी। उन्होंने अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में प्रचलित पूँजीवादी व्यवस्था को भी अनुचित

अंतिम समय में वे तकनीक के उदये विरोधी नहीं रहे थे। वे मानने लगे थे कि जो तकनीकें बेरोजगारी को नहीं बढ़ाती हैं, उन्हें स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं है।

2. राजनीतिक व्यवस्था के स्तर पर महात्मा गांधी सोवियत संघ की तानाशाही (Dictatorship) के भी विरोधी थे और जर्मनी व इटली में नाज़ीवाद व फासीवाद के नाम पर चल रहे अधिनायकवादी या तानाशाहीमूलक शासनतंत्र के भी खिलाफ थे क्योंकि ये सभी व्यवस्थाएँ व्यक्ति की स्वतंत्रता को जोत पहुँचाती हैं। इंग्लैंड और अमेरिका में प्रचलित उदार लोकतंत्र (Liberal Democracy) भी उन्हें अस्वीकार था क्योंकि उसमें 51% लोगों के समर्थन के आधार पर 49% की आवाज़ के दबने की संभावना बनी रहती है। गांधी जी ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिसमें समाज के सबसे कमज़ोर व्यक्ति की भी चिंता की जाए, उसे सिर्फ इसलिए न छोड़ दिया जाए कि वह बहुमत में नहीं है। उदार-लोकतंत्र के प्रति उनके विरोध की दूसरी वजह यह भी थी कि इसमें सभी दल सिर्फ अपने हितों को महत्व देते हुए सौदेबाजी (Bargaining) करते हैं। इस बात से उन्हें सरोकार नहीं रहता कि पूरे समाज के लिए क्या उचित है? इसलिए उन्होंने ब्रिटिश संसद को व्यंग्य की भाषा में 'मछली-बाज़ार' भी कहा था।

गांधी जी ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें राज्य की शक्ति कम-से-कम हो। वे जानते थे कि हर व्यक्ति का स्वधर्म अलग होता है और उसे आत्मिक उन्नति के लिए स्वतंत्रता की ज़रूरत होती है। जब राज्य की शक्तियाँ बढ़ती हैं तो राज्य ऐसे नियम थोपने का प्रयास करता है जिनसे सभी व्यक्तियों को कुछ यांत्रिक नियमों (Mechanical rules) के अनुसार एक जैसा या समरूप (Homogeneous) जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है, उन्हें अपने स्वधर्म के अनुरूप जीवन जीने का अवसर नहीं मिल पाता। इसलिए उनकी दृष्टि में सबसे बेहतर व्यवस्था तो वह होगी जब राज्य या राजनीतिक ढाँचे की ज़रूरत ही खत्म हो जाए और सभी लोग आपसी समझदारी से ही काम चलायें, किन्तु वे जानते थे कि राज्य का निषेध करना बहुत आसान या व्यावहारिक नहीं है। इसलिए व्यावहारिक तौर पर उन्होंने ऐसे राज्य की अवकालत को जो कम-से-कम शासन करता हो, उनका यह विचार अमेरिकी चिंतक हेनरी डेविड थोरो से प्रभावित था।

गांधी जी एक ऐसी राजनीतिक संरचना चाहते थे जो अधिक-से-अधिक विकेंद्रीकृत (Decentralised) हो। स्थानीय स्वशासन (Local self-government) उनकी दृष्टि में इसका सर्वश्रेष्ठ तरीका था। वे चाहते थे कि ग्रामीण पंचायतों को अधिक-से-अधिक शक्तियाँ मिलनी चाहिए तथा ऊपर की शक्ति संरचना नीचे से निर्धारित होनी चाहिए। आगे चलकर, जनप्रकाश, न्यायण तथा समसमोह आदिवा ने उनके इस विचार को विस्तृत रूप प्रदान किया। भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों में भी उनके इस विचार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

3. अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में गांधी जी के विचार अपने समय के अधिकांश विचारकों से अलग थे। ये विचार भारतीय आध्यात्मिक परंपरा (Indian spiritual tradition) और समाजवादी मूल्यों (Socialist Values) के समन्वय से बने हैं। उदाहरण के लिए वे मानते थे कि व्यक्ति को तब तक भोजन करने का अधिकार नहीं मिलता जब तक वह पर्याप्त श्रम न करे। वे आधुनिक उत्पादन प्रणाली (Industrial Production System) के स्थापन पर ग्रामीण स्वावलंबी (Self sufficient) अर्थव्यवस्था का उचित प्रतिरोध था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना श्रम करेगा। ग्रामीण समाज कुल उत्पादन में से उसकी ज़रूरतों के अनुसार संसाधन (Resources) उसे देगा तथा प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएँ बहुत कम होंगी।

गांधी जी ने मार्क्सवादियों की तरह निजी संपत्ति (Private Property) का विरोध नहीं किया और न ही उत्पादन के साधनों पर राज्य के स्वामित्व की अवकालत की क्योंकि इन प्रक्रियाओं में न सिर्फ अत्यधिक हिंसा शामिल होती है, बल्कि राज्य की शक्तियाँ भी बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। उनका विश्वास हृदय परिवर्तन के सिद्धांत में था और उसी के अनुरूप उन्होंने न्यासिता (Trusteeship) का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत के मुताबिक पूँजीपतियों को उनकी संपत्ति से वंचित तो नहीं किया जाएगा, किंतु पूँजीपतियों का अपना दायित्व बनता है कि वे खुद को अपनी संपदा (Wealth) का मालिक नहीं, सिर्फ न्यासी (Trustee) समझें और अपनी ज़रूरत-भर का उपभोग (Consumption) कर लेने के बाद शेष सारा धन समाज के वंचित वर्गों के कल्याण में लगायें। मार्क्सवादी विचारक इस सिद्धांत पर व्यंग्य करते हैं कि गांधी जी पूँजीपतियों की अति-स्वार्थी प्रवृत्ति को समझ नहीं सके, इसलिए उन्होंने 'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' दिया जो कि अत्यंत अव्यावहारिक है।

4. गांधी जी के समाज संबंधी विचार भी भारतीय राजनीति में काफी चर्चित रहे हैं। वे धर्म को अत्यधिक महत्व देते थे और

गांधी जी वर्णव्यवस्था के समर्थक थे और वे उसे प्राकृतिक (Natural) मानते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ण के अनुसार ही कार्य करना चाहिए क्योंकि वर्ण व्यवस्था श्रम-विभाजन (Division of labour) की एक आदर्श प्रणाली है। डॉ. अंबेडकर के मन में उनके इस विचार के प्रति ज़बर्दस्त विरोध था। ध्यातव्य है कि गांधी जी वर्णव्यवस्था के समर्थक होकर भी अस्पृश्यता (Untouchability) तथा जातिगत भेद-भाव (Caste Discrimination) के विरोधी थे। वे विभिन्न जातियों के सामूहिक भोजों तथा अंतर्जातीय विवाहों (Inter-caste marriages) का समर्थन करते थे ताकि जाति व्यवस्था हिन्दू समाज से खत्म हो जाये।

गांधी जी परिवार व्यवस्था के समर्थक थे और शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा (Basic Education) उनके विचारों का सारतत्व थी। उनका मानना था कि बच्चों को कोरी सैद्धांतिक शिक्षा देने के स्थान पर उनमें उचित मूल्यों (Values) तथा दक्षताओं (Skills) के विकास पर बल दिया जाना चाहिए। शिक्षा राष्ट्रभाषा (National Language) में ही होनी चाहिए, विदेशी भाषा में नहीं।

6. अम्बेडकरवाद (Ambedkarism)

अम्बेडकरवाद (Ambedkarism) स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान उत्पन्न हुई एक प्रमुख विचारधारा थी जिसने दलितों पर होने वाले शोषण व दमन के विरुद्ध काफी उग्र तेवर अपनाया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर, जिन्हें आधुनिक पश्चिमी शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिला था, ने अपने गहन तर्क और चिंतन के आधार पर एक नये सामाजिक आन्दोलन (Social movement) का सूत्रपात किया जिसे आगे चलकर उनके समर्थकों ने अम्बेडकरवाद नाम दिया। इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. अम्बेडकरवाद दलित समस्या को भारत की सबसे बड़ी समस्या मानता है। राष्ट्रीय एकता के नाम पर दलित समस्या को छल देने की प्रवृत्ति उस स्वीकार नहीं है। अम्बेडकर ने स्वयं कहा था कि दलित समस्या को सिर्फ देश के एक अंग के रूप में नहीं समझना सकारात्मक नहीं है। वह देश में अलग-थलग पड़ा हुआ अस्तित्व वंचित आसने। उन्होंने अपने एक भाषण में साफ तौर पर कहा था कि मेरे लिए मेरे व्यक्तिगत हितों से ज्यादा महत्वपूर्ण राष्ट्र के हित हैं किन्तु यदि दलितों को हित और राष्ट्र-हित के बीच कोई टकराव की स्थिति आयेगी तो मैं दलितों के हित को स्वीकार दूंगा।
2. अम्बेडकरवाद के अनुसार जाति व्यवस्था और वर्णव्यवस्था का पूरी तरह खत्म किया जाना आवश्यक है। समानता (Equality) का आदर्श ही पा सकता है। जाति के खत्म होने का मतलब सिर्फ यह नहीं है कि सभी जातियों के लोग समाज में एक-साथ उठने बैठने लगे। जब तक जाति की धारणा आम आदमी के दिमाग से पूर्णतः विलुप्त और नष्ट नहीं होगी तब तक समस्या का समाधान संभव नहीं हो सकेगा।
3. अम्बेडकरवाद मानता है कि जाति व्यवस्था का सबसे बड़ा धार्मिक मान्यताओं से है क्योंकि यह आगे कई धार्मिक ग्रंथ (Religious texts) जाति व्यवस्था को बढ़ावा देते हैं। इसलिए जाति व्यवस्था को खत्म करने की शुरुआत है कि हिन्दुओं का सिर्फ एक प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ स्वीकार किया जाना चाहिए जो जातिवाद जैसे दलित धारणाओं का समर्थन न करता हो। शेष सभी ग्रन्थों को कानूनी तौर पर प्रतिषिद्ध (legally prohibit) कर दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, धार्मिक पदों पर सिर्फ ब्राह्मणों के आसित होने की परंपरा को भी निषेध किया जाना चाहिए। शूद्राहित जैसे धार्मिक पदों के लिए समाज के सभी वर्णों को समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।
4. डॉ. अम्बेडकर ने यह भी कहा था कि यदि हिन्दू समाज दलितों को मानवोचित गरिमा (Humane Dignity) प्रदान नहीं करता है तो दलितों को हिन्दू धर्म छोड़ देना चाहिए। स्वयं उन्होंने 1956 ई. में अपनी मृत्यु से कुछ माह पूर्व अपने हजारों समर्थकों के साथ हिन्दू धर्म त्याग कर बौद्ध धर्म को अपना लिया था। यहीं से नव-बौद्ध आन्दोलन (Neo-Buddhist Movement) की शुरुआत हुई थी। उन्होंने कहा था कि बौद्ध धर्म सबसे बेहतर विकल्प है क्योंकि न तो इसमें मनुष्यों के बीच भेद-भाव है और न ही इस लोक से परे किसी दूसरे लोक की झूठी या नकली कल्पनाएँ।
5. अम्बेडकरवाद दलितों की ही मुक्ति की बात नहीं करता, यह महिलाओं तथा अन्य वंचित वर्गों की मुक्ति पर भी बल देता है। किन्तु, यह भावसवादियों की तरह यह नहीं मानता कि मानव-समाज की मूल समस्या गरीबी या आर्थिक शोषण की है; और न ही नारीवादियों (Feminists) की तरह इस विचार का पक्षधर है कि मूल समस्या लिंग-विभेद (Gender Discrimination) की है। इसका मानना है कि भारतीय समाज की मूल समस्या जातिगत भेद-भाव की है, शेष समस्याएँ उससे जुड़ी हुई हैं।

वर्तमान भारतीय राजनीति में अम्बेडकरवाद का प्रभाव काफी ज्यादा दिखाई पड़ता है। इसका पहला महत्वपूर्ण उदाहरण काशीराम द्वारा 1978 में स्थापित वामसेफ (BAMCEF-All India Backward and Minority Communities Employees' Federation) था जिसकी सीमाओं को देखते हुए 1981 में उन्होंने 'DS4' अर्थात् 'दलित, शोषित समाज संघर्ष समिति' (DSSSS) का गठन किया। 1984 में 'DS4' को ही भंग करके 'बहजन समाज पार्टी' (BSP) का निर्माण किया गया जो वर्तमान समय में अम्बेडकरवाद पर आध

उदाहरण हैं। महाराष्ट्र में रामदास आठवले की 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया' (Republican Party of India) भी इसी विचारधारा से प्रभावित है। हाल ही में डॉ. अम्बेडकर के पोते प्रकाश अम्बेडकर ने 'भारिया बहुजन महासंघ' नामक क्षेत्रीय दल (Regional Party) की स्थापना की है और यह दल भी अम्बेडकरवाद को अपनी विचारधारा घोषित करता है।

7. मनुवाद (Manuism)

वस्तुतः यह किसी राजनीतिक विचारधारा (Political Ideology) का औपचारिक नाम (Formal name) नहीं है। इसका प्रयोग प्रायः अम्बेडकरवादियों द्वारा अपने विराधी पक्ष के लिए किया जाता है। जिस प्रकार मार्क्सवादी और समाजवादी चिंतक सामाजिक समस्याओं की जड़ में पूंजीवादी विचारधारा (Capitalist Ideology) की भूमिका देखते हैं, उसी प्रकार अम्बेडकरवादियों का दावा है कि सामाजिक समस्याओं की मूल वजह मनुवादी विचारधारा में निहित है।

मनुवाद का तात्पर्य मनुसंहिता के रचनाकार मनु द्वारा बनाई गई उस सामाजिक व्यवस्था से है जो वर्णव्यवस्था को उचित ठहराती है। यह विचारधारा न सिर्फ जन्म से वर्णों के विभाजन को वैध ठहराती है, बल्कि शूद्र या दलित वर्ण को कई ऐसी नियोग्यताओं (Disqualifications) का शिकार भी बनाती है जो उनके मानवोचित जीवन (Humane Life) को छीन लेती हैं। इसलिए, वर्णव्यवस्था का समर्थन करने वाले किसी भी विचार को मनुवादी विचार कह दिया जाता है।

वर्तमान भारतीय राजनीतिक प्रणाली में कोई भी राजनीतिक दल औपचारिक रूप से मनुवाद का समर्थक नहीं है, हालाँकि कई दबाव समूह (Pressure groups) जैसे 'अखिल भारतीय ब्राह्मण सभा' या 'क्षत्रिय महासभा' इत्यादि इस विचारधारा का अनुसरण करते हुए प्रतीत होते हैं। चूँकि महात्मा गांधी भी सैद्धांतिक तौर पर वर्णव्यवस्था के समर्थक थे और आज भी कई गांधीवादी वर्णव्यवस्था का समर्थन करते हैं, इसलिए कुछ अम्बेडकरवादी या भाषावादियों को भी अनुवादी कहते हैं। इसके अलावा, जो भी दक्षिणपंथी दल (Right-wing parties) हिंदुओं की पारम्परिक संस्कृति की महानता पर बल देते हैं, उन्हें भी औपचारिक रूप से मनुवादी कह दिया जाता है। भारतीय जनता पार्टी, शिव-सेना जैसे दल इस वर्ग में शामिल हैं।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. द्वंद्वत्मक भौतिकवाद का संबंध निम्न में से किस विचारधारा से है?

- (1) उदारवाद। (2) समाजवाद।
(3) मार्क्सवाद। (4) फासीवाद।

2. मार्क्सवाद के अनुसार

- (i) द्वंद्वत्मक भौतिकवाद का संबंध प्रकृति और जगत के नियमों की व्याख्या से है।
(ii) ऐतिहासिक भौतिकवाद मनुष्य के सामाजिक इतिहास की व्याख्या है।

कूट -

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

3. निम्न में से किस देश में फेबियन समाजवाद की वैचारिक शुरुआत हुई थी?

- (1) सोवियत संघ। (2) चीन।
(3) ब्रिटेन। (4) अमेरिका।

4. मार्क्सवाद के संबंध में सत्य है/हैं -

- (i) यह धर्म को अफीम (Opium) के समान मानता है।
(ii) यह राष्ट्र को धर्म के समान एक मिथ्या चेतना (False consciousness) मानता है।
(iii) यह हिंसक क्रांति का समर्थन करता है।

कूट -

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) (i), (ii) और (iii)

5. मार्क्सवाद के अनुसार -

- (i) हिंसक क्रांति के बाद समाजवाद की अवस्था आएगी जिसमें सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होगी।
(ii) साम्यवाद मानव समाज के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था होगी जिसमें न राज्य होगा और न ही धर्म।

कूट -

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

- (i) समाजवाद निजी उद्यमशीलता (Private Entrepreneurship) को पूर्णतः अस्वीकार करने की बात करता है।
(ii) समाजवाद की मान्यता है कि उत्पादन के प्रमुख साधन सार्वजनिक स्वामित्व में हों तथा मुक्त बाजार को खुली कूट न दी जाए।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं -

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

- (i) फेबियन समाजवाद की वैचारिक शुरुआत मूलतः ब्रिटेन से हुई है।
(ii) फेबियन समाजवाद इस मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में प्रयत्न करते हुए समाज की चेतना में ऐसे परिवर्तन लाए जाने चाहिए कि पूरा

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्न में से किसे उदारवाद का जनक कहा जाता है?

- (1) एडम स्मिथ (2) जेरेमी बेन्थम
(3) हर्बर्ट स्पेंसर (4) जॉन लॉक

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) उदारवाद व्यक्ति के लिए अधिकतम स्वतंत्रता की मांग करता है।
(ii) उदारवाद अहस्तक्षेप के सिद्धांत (Laissez faire) का समर्थन करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. द्वितीय चरण के उदारवाद के संबंध में सत्य है/हैं-

- (i) इसने अहस्तक्षेप के सिद्धांत का विरोध किया और न्यूनतम हस्तक्षेप का सिद्धांत प्रस्तुत किया।
(ii) इसने 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) की आधारशिला प्रस्तुत की।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) नव-उदारवादियों की मान्यता है कि समाज में संसाधनों का वितरण करने के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था बाजार व्यवस्था है।
(ii) नव-उदारवाद चित्तक सामाजिक न्याय के लिए राज्य द्वारा किए जाने वाले प्रयासों के विरोधी है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

12. मुसोलिनी का संबंध निम्न में से किस विचारधारा से है?

- (1) नव-उदारवाद (2) फेबियन समाजवाद
(3) माओवाद (4) फासीवाद

13. फासीवादी विचारधारा के अनुसार-

- (i) व्यक्ति की वास्तविक स्वतंत्रता यही है कि वह अपने राष्ट्र और समाज के सदस्य के रूप में स्वयं को न देखकर एक पृथक् सत्ता के रूप में देखे।
(ii) जनसाधारण में इतनी योग्यता होती है कि वह सर्वश्रेष्ठ तरीके से शासन का संचालन कर सके।

कूट-

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) महात्मा गांधी पर जॉन रस्किन का व्यापक प्रभाव पड़ा था।
(ii) गांधी जी ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें राज्य के पास अत्यधिक शक्ति हो।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

16. गांधी जी के बारे में असत्य कथन है-

- (1) वे इंग्लैंड और अमेरिका में प्रचलित उदार लोकतंत्र का समर्थन करते थे।
(2) वे ग्रामीण स्वावलंबी अर्थव्यवस्था को उचित मानते थे।
(3) उन्होंने मार्क्सवादियों की तरह निजी संपत्ति का विरोध नहीं किया।
(4) वे राजनीतिक-विकेंद्रीकरण तथा स्थानीय स्वाशासन को प्रोत्साहित करते थे।

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) गांधी जी वंशानुवर्तित्व के समर्थक थे और वे उसे प्राकृतिक मानते थे।
(ii) गांधी जी अस्पृश्यता तथा जातिगत भेदभाव के विरोधी थे।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

18. डॉ. अबेडकर का संबंध निम्न में से सत्य कथन है/हैं-

- (i) उनके अनुसार दलित समुदाय को सिर्फ देश के अंग के रूप में नहीं समझा जा सकता क्योंकि वह देश से अलग-थलग अलग-थलग आत्मा तथा वांछित अंग है।
(ii) उनका मानना था कि जाति व्यवस्था का संबंध हिन्दू समाज की धार्मिक मान्यताओं से है क्योंकि हिन्दुओं के कई धार्मिक ग्रंथ जाति व्यवस्था को बढ़ावा देते हैं।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

19. डॉ. अबेडकर ने हिन्दू धर्म त्यागकर निम्न में से कौन-सा धर्म अपना लिया था?

- (1) इसाई (2) जैन
(3) इस्लाम (4) बौद्ध

20. निम्नलिखित में कौन-कौन से राजनीतिक दल अबेडकरवाद पर आधारित हैं?

संविधान सभा (Constituent Assembly)

आमतौर पर किसी भी प्रभुसत्तासंपन्न (Sovereign) लोकतांत्रिक (Democratic) देश में उसके संविधान के निर्माण का कार्य एक जनप्रतिनिधि संस्था द्वारा किया जाता है, जो संविधान के विभिन्न पक्षों, उद्देश्यों, प्रावधानों आदि पर विचार करती है तथा संविधान बन जाने के बाद उसे अपंगीकार (Adopt) भी करती है। इस प्रकार की संस्था को ही 'संविधान सभा' (Constituent Assembly) कहते हैं। भारत का संविधान बनाने के लिए ऐसी सभा का निर्वाचन जुलाई-अगस्त 1946 में हुआ था।

संविधान सभा की मांग (Demand for the Constituent Assembly)

स्मरणीय है कि सांकेतिक तौर पर पहली बार 1922 ई. में गांधी जी ने भारत के लिए एक संविधान सभा की मांग की थी, हालाँकि अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी मांग उनसे पहले 1895 ई. में लोकमान्य तिलक द्वारा निर्देशित 'स्वराज्य विधेयक' (Swarajya Bill) में तथा इसके पश्चात् 1906 ई. में दादाभाई नौरोजी द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में 'स्वराज' शब्द के प्रयोग के साथ हो चुकी थी। 1922 ई. में गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा - "स्वराज भारतीय लोगों की इच्छा की अभिव्यक्ति होगा, ब्रिटिश संसद का कोई उपहार नहीं होगा।" 1934 ई. में यही मांग प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक मानवेंद्र नाथ रॉय ने उठाई। 1935 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आधिकारिक रूप से संविधान सभा के गठन की मांग की। इसके उपरांत 1936, 1937 एवं 1938 के अधिवेशनों में भी इस मांग को दुहराया गया। 1938 के अधिवेशन में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जोर देकर कहा कि "स्वतंत्र भारत का संविधान बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के ऐसी संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए जो बयस्क मतदान के आधार पर निर्वाचित हो।" फलतः अंग्रेजों को अंततः स्वीकार करना पड़ा कि भारत का संविधान भारतवासी ही तैयार करेंगे। 1942 में ब्रिटिश सरकार के कैबिनेट मंत्री सर स्टेफर्ड क्रिप्स द्वारा प्रस्तुत 'क्रिप्स मिशन योजना' (Cripps Mission Plan) के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार ने आश्वासन दिया कि "भारत में एक निर्वाचित संविधान सभा होगी, जो युद्ध के बाद भारत का संविधान तैयार करेगी।" किंतु, मुस्लिम लीग ने क्रिप्स प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उसकी मांग थी कि भारत को दो स्वायत्त हिस्सों में बाँटकर दोनों हिस्सों के लिए अलग-अलग संविधान सभा बनाई जानी चाहिए। क्रिप्स मिशन के विफल होने के बाद 1946 में जब कैबिनेट मिशन (Cabinet Mission) भारत आया तो संविधान सभा के गठन का मांग तैयार हो गया क्योंकि कैबिनेट मिशन ने दो संविधान सभाओं की मांग को ठुकराने के बाद भी सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचन के सिद्धांत को मान लिया था, जिसने मुस्लिम लीग को काफी हद तक संतुष्ट कर दिया।

संविधान सभा का गठन (Formation of the Constituent Assembly)

कैबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझावों के अनुसार नवंबर, 1946 में संविधान सभा का गठन हुआ। मिशन की योजना के अनुसार संविधान सभा का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार का होना था—

- संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या 389 होनी थी। इनमें से 296 सीटें ब्रिटिश भारत के प्रांतों को और 93 सीटें देशी रियासतों (Princely states) को दी जानी थीं।
- हर ब्रिटिश प्रांत व देशी रियासत को उसकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें दी जानी थीं। आमतौर पर प्रत्येक दस लाख लोगों पर एक सीट का आवंटन होना था।
- प्रत्येक ब्रिटिश प्रांत को दी गई सीटों का निर्धारण तीन प्रमुख समुदायों के मध्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में किया जाना था। ये तीन समुदाय थे— मुस्लिम, सिख व सामान्य (मुस्लिम और सिख को छोड़कर)।
- प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रांतीय असेंबली (State Assembly) में उस समुदाय के सदस्यों द्वारा एकल

उपरोक्त योजना के अनुसार, ब्रिटिश भारत के लिए आबंटित 296 सीटों के लिए चुनाव जुलाई-अगस्त 1946 में संपन्न हुए। इस चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को 208, मुस्लिम लीग को 73 तथा छोटे दलों व निर्दलीय (Independent) सदस्यों को 15 सीटें मिलीं। देशी रियासतों (Princely states) को आबंटित की गई 93 सीटें नहीं भर पाई क्योंकि उन्होंने खुद को संविधान सभा से अलग रखने का निर्णय ले लिया था।

आक्षेप किया जा सकता है कि संविधान सभा का चुनाव भारत के वयस्क मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं हुआ था। तब भी, यह जानना महत्वपूर्ण है कि इसमें प्रत्येक समुदाय- हिंदू, मुस्लिम, सिख, पारसी, आंग्ल-भारतीय, भारतीय ईसाई, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधियों को स्थान प्राप्त हुआ था। इसमें पुरुषों के साथ पर्याप्त संख्या में महिलाएँ भी शामिल थीं। महात्मा गांधी और मोहम्मद अली जिन्ना को छोड़ दें तो सभा में उस समय के भारत के सभी प्रसिद्ध व्यक्तित्व शामिल थे।

संविधान सभा के प्रति स्वीकृति का बढ़ना

(Increase in acceptance of the Constituent Assembly)

9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई जिसमें सिर्फ 211 सदस्यों ने भाग लिया क्योंकि एक तो मुस्लिम लीग ने स्वतंत्र पाकिस्तान की मांग उठाते हुए इसका बहिष्कार कर दिया था, और दूसरे देशी रियासतों ने इसमें शामिल होने से पहले ही मना कर दिया था। किंतु, यह स्थिति लगातार नहीं चली। जैसे-जैसे संविधान सभा की कार्यवाही आगे बढ़ी, जैसे-जैसे देशी रियासतों के कई प्रतिनिधि इसका महत्व समझकर इसमें शामिल होने लगे। 3 जून, 1947 को जब लॉर्ड पाउण्डबेटन ने भारत के विभाजन की योजना प्रस्तुत कर दी तो उसके बाद देशी रियासतों के अधिकांश प्रतिनिधि संविधान सभा में शामिल हो गए। भारतीय हिस्से की मुस्लिम लीग के सदस्य भी संविधान सभा में शामिल हुए।

उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution)

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को वर्तमान संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में हुई। मुस्लिम लीग ने इस बैठक का बहिष्कार किया और अलग पाकिस्तान की मांग उठाई। सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष बनाया गया। दो दिन पश्चात् 11 दिसंबर, 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को सभा का स्थायी अध्यक्ष बनाया गया। दो दिन बाद 13 दिसंबर, 1946 को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' (Objective Resolution) सभा में प्रस्तुत किया जो 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा द्वारा स्वीकृत किया गया। संक्षेप में, इस प्रस्ताव की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं -

- (i) भारत को एक 'स्वतंत्र तथा संप्रभु गणराज्य' (Independent and Sovereign Republic) के रूप में स्थापित किया जाए।
- (ii) भारत की संप्रभुता (Sovereignty) का स्रोत भारत की जनता होगी।
- (iii) इस गणराज्य (Republic) में भारत के समस्त नागरिकों को राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समानता (Political, Economic and Social Equality) प्राप्त होगी।
- (iv) भारत के समस्त नागरिकों को विचार व अभिव्यक्ति (Thought and expression), संस्था (Organisation) बनाने, कोई व्यवसाय (Profession) करने, किसी भी धर्म (Religion) तथा मत (Sect) को मानने या न मानने की स्वतंत्रता होगी।
- (v) अल्पसंख्यकों (Minorities), अनुसूचित जातियों (Scheduled castes) तथा पिछड़े वर्गों (Backward class) के हितों की सुरक्षा के लिए उपयुक्त रक्षोपाय (Safety measures) किए जाएंगे।
- (vi) देश की एकता (Unity) को स्थायित्व प्रदान किया जाएगा।
- (vii) भारत की प्राचीन सभ्यता को उसका उचित स्थान व अधिकार दिलाया जाएगा तथा विश्व शांति (World peace) व मानव-कल्याण (Human welfare) में उसका योगदान सुनिश्चित किया जाएगा।

भिन्न-भिन्न समितियों की नियुक्ति (Appointment of Various Committees)

उद्देश्य प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद संविधान सभा का कार्य विधिवत् प्रारंभ हुआ। संविधान निर्माण से जुड़े अनेक पहलुओं पर विचार करने के लिए 15 समितियाँ गठित की गईं। इनमें कुछ प्रमुख समितियाँ निम्नलिखित थीं -

- (i) संघ संविधान समिति (Union Constitution Committee) - इस समिति के अध्यक्ष पंडित नेहरू थे।
- (ii) संघ शक्ति समिति (Union Powers Committee) - इस समिति के अध्यक्ष पंडित नेहरू थे।
- (iii) मूल अधिकार एवं अल्पसंख्यक समिति (Fundamental Rights and Minority Committee) - इस समिति के अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल थे।
- (iv) कार्य संचालन समिति - इस तीन सदस्यीय समिति के सदस्य थे - (i) डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (अध्यक्ष), (ii) श्री गोपाल स्वामी आयरंग और (iii) श्री विश्वनाथ दास।
- (v) प्रांतीय संविधान समिति (Provincial Constitution Committee) - इस समिति के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल थे।
- (vi) प्रारूप समिति (Drafting Committee) - यह संविधान सभा की सबसे महत्वपूर्ण समिति थी। भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार करने व उस पर विचार करने के लिए बनी इस 7 सदस्यीय समिति की नियुक्ति स्वाधीनता प्राप्ति के तुरंत बाद 29 अगस्त, 1947 को की गई। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को इस समिति का अध्यक्ष बनाया गया। सर बी. एन. राव, जो कि संविधान सभा के मुख्य सलाहकार थे, ने संविधान का मसौदा (Draft) तैयार किया था।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा आए परिवर्तन (Changes due to India's Independence Act)

ब्रिटिश संसद में भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के पारित होते ही संविधान सभा के महत्व तथा दायित्वों में व्यापक अंतर आ गया। ऐसे परिवर्तन मुख्यतः निम्नलिखित थे -

1. अब संविधान सभा पूरी तरह संप्रभुता (Sovereignty) से युक्त हो गई थी क्योंकि ब्रिटिश शासन किसी भी रूप में इसकी शक्तियों को सीमित नहीं कर सकता था। अब वह ब्रिटिश संसद द्वारा भारत के संबंध में बनाए गए किसी भी कानून को खारिज कर सकती थी।
2. अब संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 389 के बजाय 299 हो गई क्योंकि पाकिस्तान के हिस्से से संबंधित प्रतिनिधि इससे अलग हो गए थे।
3. अब संविधान सभा स्वतंत्र भारत की पहली संसद अर्थात् विधायिका (Legislature) भी बन गई थी। अब इसे न सिर्फ स्वतंत्र भारत के लिए संविधान निर्मित करना था बल्कि विधायिका (Legislature) के तौर पर नए कानूनों का निर्माण तथा उन्हें लागू करने की जिम्मेदारी भी निभानी थी। संविधान सभा ये दोनों कार्य अलग-अलग दिवसों पर करती थी। संविधान सभा के तौर पर इसकी अध्यक्षता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद करते थे जबकि विधायिका के तौर पर जी.बी. मावलंकर। 17 नवंबर, 1947 को विधायिका के तौर पर पहली बैठक से लेकर 24 जनवरी, 1950 अर्थात् संविधान सभा के रूप में अपनी अंतिम बैठक तक यह सभा दोनों काम करती रही। 26 जनवरी, 1950 से संविधान सभा के तौर पर इसका कार्य समाप्त हो गया और यह 1951-52 में संघटन हुए प्रथम आम चुनावों से बनने वाली संसद के निर्माण तक अंतरिम संसद (Interim Parliament) के रूप में काम करती रही।

संविधान-प्रारूप पर वाद-विवाद और अंतिम स्वीकृति

(Discussion on Draft Constitution and its Final Acceptance)

21 फरवरी 1948 को प्रारूप समिति (Draft Committee) ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें 315 अनुच्छेद (Articles) तथा 8 अनुसूचियाँ (Schedules) थीं। संविधान सभा के सदस्यों, प्रांतीय विधानमंडलों (Provincial Legislatures) तथा जनता को 'प्रारूप-संविधान' (Draft Constitution) पर विचार करने के लिए तकरीबन 8 महीने का समय दिया गया तथा उनसे प्राप्त सुझावों

और इस प्रकार स्वतंत्र भारत का संविधान पूर्ण रूप से तैयार हो गया। संविधान की चार व्यवस्थाओं-अंतरिम संसद (Interim Parliament), नागरिकता (Citizenship), चुनाव व संविधान के अस्थायी प्रावधानों (Temporary Provision) को तुरंत लागू कर दिया गया। शेष संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ।

24 जनवरी 1950 को संविधान सभा का अंतिम अधिवेशन हुआ। संविधान सभा ने सर्वसम्पत्ति से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारत का प्रथम राष्ट्रपति चुना। भारत के संविधान को पूरी तरह 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। 26 जनवरी का दिन संविधान को लागू करने के लिए इसलिए चुना गया क्योंकि संविधान निर्माता भारत के प्रथम 'पूर्ण स्वराज दिवस' (26 जनवरी, 1930) की स्मृति को संजोए रखना चाहते थे। ध्यातव्य है कि दिसंबर 1929 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पारित हुए संकल्प के आधार पर 1930 में 26 जनवरी को ही कांग्रेस द्वारा 'पूर्ण स्वराज दिवस' मनाया गया था।

इस प्रकार भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिनों में पूरी हुई। संविधान सभा की कार्यवाही को तकरीबन 53,000 व्यक्तियों ने देखा। संविधान सभा के गठन और संविधान बनाने के कार्य में तकरीबन 64 लाख रुपये खर्च हुए।

संविधान सभा द्वारा किए गए अन्य कार्य: (Other works done by the Constituent Assembly)

संविधान सभा ने अपनी उपरोक्त दोनों जिम्मेदारियाँ निभाने के अतिरिक्त भी कुछ ऐतिहासिक महत्व के कार्य किए जो इस प्रकार हैं-

- ① इसने 24 जनवरी, 1950 को 'जन-गण-मन' को राष्ट्रगान तथा 'वन्दे मातरम्' को राष्ट्रगीत के रूप में अपनाया।
- ② इसने 22 जुलाई 1947 को तिरंगे झंडे को राष्ट्रध्वज के रूप में मान्यता प्रदान की।
- ③ मई 1949 में इसने राष्ट्रमंडल (Commonwealth) में भारत की सदस्यता की औपचारिक तौर पर स्वीकृत किया।
4. 24 जनवरी, 1950 को अपनी अंतिम बैठक में इसने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारत के पहले राष्ट्रपति के रूप में चुना।

संविधान सभा के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ (Challenges before the Constituent Assembly)

भारत की संविधान सभा जिन ऐतिहासिक दायित्वों का निर्वहण कर रही थी, उनकी पूर्ति करना अत्यंत कठिन और चुनौतीपूर्ण था। इन चुनौतियों के संदर्भ में ही उसके महत्त्व को समझा जा सकता है। संक्षेप में, ये चुनौतियाँ इस प्रकार थीं-

1. सबसे पहली चुनौती विभिन्न विचारधाराओं (Ideologies) तथा हितों (Interests) में समन्वय साधने की थी। चूंकि संविधान सभा में विभिन्न विचारधाराओं जैसे गांधीवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, राष्ट्रवाद (Nationalism) तथा उदारवाद (Liberalism) के समर्थक शामिल थे और सभी अपने-अपने दृष्टिकोण को संविधान में प्रमुख भूमिका में रखना चाहते थे, इसलिए उनमें टकराव होना स्वाभाविक था। गांधीवादी विचारधारा के समर्थक जहाँ परंपरागत मान्यताओं व विकेंद्रीकरण (Decentralisation) पर बल दे रहे थे, वहीं नेहरू और उनके समर्थक समाजवाद (Socialism) पर बल दे रहे थे।
2. दूसरी चुनौती विकास के उचित मार्ग को चुनने की थी। एक ओर मार्क्सवादी और समाजवादी विचारक सोवियत संघ की विकास प्रणाली की वकालत कर रहे थे; दूसरी ओर गांधीवादी विचारक ग्राम स्वराज पर बल देते हुए भारी औद्योगीकरण (Heavy Industrialisation) के विरोध में खड़े थे जबकि एक तीसरा वर्ग ऐसा भी था जो अमेरिका और इंग्लैंड की पूंजीवादी (Capitalist) तथा मुक्त बाजार (Free market) पर आधारित आर्थिक प्रणाली का अनुकरण करने का इच्छुक था।
3. तीसरी चुनौती थी अल्पसंख्यकों (Minorities) को राष्ट्र की मुख्यधारा (Mainstream) से जोड़ने की। पाकिस्तान के निर्माण के बाद भारत में सांप्रदायिक तौर पर गहरे मतभेद महसूस किए जा रहे थे। अल्पसंख्यकों के मन में यह भय था कि भारत का बहुसंख्यक समाज उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा? इसलिए संविधान सभा के सामने एक ऐसा संविधान बनाने की चुनौती थी जो अल्पसंख्यकों को राष्ट्र की मुख्यधारा से सहजतापूर्वक जोड़ सके।
4. चौथी बड़ी चुनौती सांप्रदायिकता (Communalism) से जूझने की थी। अंग्रेजों ने अपने हितों को साधने के लिए सांप्रदायिकता को जो बीज बोये थे, वे अब पृथक् पाकिस्तान के रूप में खतरनाक परिणाम उत्पन्न करने लगे थे। आजादी की प्राप्ति के समय

गया था। इसलिए संविधान सभा के सामने चुनौती थी कि वह ऐसा संविधान बनाए जो इन रियासतों को भी भारत-संघ का हिस्सा बनने के लिए प्रोत्साहित कर सके।

6. छठी चुनौती यह तय करने की थी कि लोकतंत्र का कौन-सा मॉडल स्वीकार किया जाए- संसदीय (Parliamentary) या अध्यक्षीय (Presidential)? कुछ नेताओं की इच्छा अध्यक्षीय प्रणाली (Presidential system) को लागू करने की थी क्योंकि उन्हें देश की एकता और तीव्र विकास के लिए यह ज्यादा उचित जान पड़ती थी। दूसरी ओर, अधिकांश लोग संसदीय प्रणाली (Parliamentary system) के पक्ष में इस वजह से थे कि ब्रिटिश शासन के अनुभव के कारण भारतीय जनता को इसका पर्याप्त परिचय मिल चुका था। गांधीवादी विचारधारा के कुछ समर्थक तो इन दोनों ही व्यवस्थाओं को खारिज करते हुए एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिसमें पंचायती स्तर की संस्थाएँ ही अपने ऊपर की विधायिकाओं (Legislatures) का चयन करें और इसी प्रकार यह व्यवस्था केंद्र तक पहुँचे।
7. सातवीं चुनौती यह तय करने की थी कि संविधान अपनी मूल प्रकृति में केंद्रीकरण (Centralisation) की स्थापना का प्रयास करे या विकेंद्रीकरण (Decentralisation) का? गांधीवादी दर्शन के समर्थक ज्यादा से ज्यादा विकेंद्रीकरण (Decentralisation) के पक्ष में थे और गाँवों को राजनीतिक सत्ता का केंद्र बनाने के पक्ष में थे। दूसरी ओर, पंडित जवाहरलाल नेहरू और डॉ. भीमराव अम्बेडकर गाँवों को राजनीतिक सत्ता का केंद्र बनाने के पक्ष में नहीं थे। उन्हें लगता था कि शक्तिशाली केंद्रीय शासन ही राष्ट्रीय एकीकरण (National integration) तथा सामाजिक परिवर्तन (Social change) की बड़ी चुनौतियों का सफलतापूर्वक समाधान कर सकता है।

इसके अलावा, कुछ और मुद्दे भी संविधान सभा के समक्ष चुनौतियों के रूप में थे, जैसे- राष्ट्रपति का चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन की विधि से हो या अप्रत्यक्ष विधि से; नीति-निर्देशक सिद्धांतों को न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (Enforceable) बनाया जाए या नहीं; संघ के अधिकार को मूल अधिकारों का हिस्सा बनाया जाए या नहीं इत्यादि।

संविधान सभा ने इन चुनौतियों का समाधान कैसे किया?

(How did the Constituent Assembly solve these issues?)

संविधान सभा ने इन चुनौतियों का सामना अत्यंत परिपक्वता के साथ किया। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सभा ने मूलतः दो नीतियाँ अपनाईं- (क) सर्वसम्मति से निर्णय (Decision by Consensus), (ख) समायोजन का सिद्धांत (Principle of accommodation)।

सर्वसम्मति से निर्णय (Decision by Consensus) करने का अर्थ यह था कि जहाँ तक संभव हो सके, संविधान में वे ही प्रावधान शामिल किए जाएँ जिन पर संविधान सभा के सभी सदस्य सहमत हों। ध्यातव्य है कि सिद्धांततः संविधान सभा का नियम यही था कि निर्णय बहुमत (Majority) से होंगे और ऐसी स्थिति में स्पष्टतः बाजी कांग्रेस के हाथ में थी। किन्तु, कांग्रेस के नेताओं ने सर्वसम्मति के सिद्धांत को बरीयता दी जिसका प्रमाण यह है कि प्रारूप समिति के 9 सदस्यों में से सिर्फ एक क.एम. मुखर्जी ही कांग्रेस पार्टी से थे और इस समिति की अध्यक्षता डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे व्यक्ति को दी गई थी जो कि कांग्रेस के कटु आलोचक रहे थे। सर्वसम्मति की पद्धति का प्रयोग जिन प्रसंगों में विशेष रूप से किया गया, वे हैं- संविधान के संघीय (Federal) षटलू तथा अल्पसंख्यकों (Minorities) से संबंधित समस्याएँ।

समायोजन के सिद्धांत (Principle of accommodation) का अर्थ है- ऐसे दो सिद्धांतों के बीच समन्वय स्थापित करना जिन्हें परस्पर विपरीत समझा जाता हो। इसका लाभ यह था कि जिन प्रश्नों पर संविधान सभा में गहरे मतभेद उत्पन्न हुए, उनके बीच का रास्ता निकाल लिया गया। यह दृष्टिकोण बहुत से प्रावधानों में नज़र आता है, जैसे- संघात्मक (Federal) और एकात्मक (Unitary) व्यवस्था के बीच; गणतंत्रीय (Republican) व्यवस्था के साथ-साथ राष्ट्रमंडल (Commonwealth) की सदस्यता को ग्रहण करने में; केंद्रीय शासन को महत्वपूर्ण स्थान देने के बावजूद पंचायती राज को स्वीकार करने में; हिन्दी को राजभाषा बनाने के साथ-साथ प्रथम पंद्रह वर्षों के लिए अंग्रेज़ी को व्यावहारिक प्रयोग में बनाए रखने में; समाजवादी प्रणाली को महत्व देते हुए भी धार्मिक स्वातंत्र्य और वैयक्तिक उद्यमशीलता (Individual Entrepreneurship) को स्वीकार करने में, अल्पसंख्यकों को आरक्षण न देते हुए भी उन्हें विशेष सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार देने में इत्यादि।

संविधान सभा से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण विवाद

(Some important debates associated with the Constituent Assembly)

संविधान सभा के समय से ही कई लोगों ने उसकी संरचना, कार्यविधि आदि पर आक्षेप करने आरंभ कर दिए थे। ऐसे कुछ प्रमुख आक्षेप तथा विवाद निम्नलिखित हैं—

- (i) पहला विवाद था कि क्या संविधान सभा को प्रभुत्वसम्पन्न (Sovereign) संस्था माना जाना चाहिए? यह विवाद संविधान सभा के गठन के तुरन्त बाद ही संविधान सभा की स्थिति के सम्बन्ध में प्रारम्भ हो गया। ब्रिटिश संसद के एक वाद-विवाद में बिंस्टन चर्चिल ने संविधान सभा की वैधता को ही चुनौती दे दी थी। संविधान सभा के ही एक सदस्य एम.आर. जयकर ने भी यह विचार व्यक्त किया। उनके विचार का आधार यह था कि संविधान सभा कैबिनेट योजना के अधीन अस्तित्व में आई और यह ब्रिटिश संसद की सत्ता के ही अधीन है, अतः इसे 'संप्रभु' (Sovereign) नहीं माना जा सकता।

किंतु, संविधान सभा के अधिकांश सदस्यों ने इन आक्षेपों को अस्वीकार करते हुए संविधान सभा की प्रभुसत्ता पर बल दिया। जवाहरलाल नेहरू ने इस विचार की पुष्टि करते हुए कहा, "सरकारें राजकीय पत्रों से पैदा नहीं होतीं। वास्तव में वे जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होती हैं। हम आज यहाँ इसलिए एकत्रित हो पाए हैं क्योंकि हमारे पीछे जनता की शक्ति है। जहाँ तक जनता—कोई दल या वर्ग नहीं वरन् समूची जनता—चाहेगी, वहाँ तक हम यहाँ रहेंगे।" इस विचार के अनुसार ही संविधान सभा ने अपनी पूर्ण संप्रभुता को प्रदर्शित भी किया। प्रथमतः यह प्रस्ताव पारित किया गया कि ब्रिटिश सरकार या अन्य किसी भी सत्ता के आदेश से सभा का विघटन नहीं होगा। संविधान सभा तथा भी भाग लेगी जब कि इसके दो तिहाई या अधिक सदस्य स्वयं इस आशय का प्रस्ताव पारित करेंगे। द्वितीयतः, संविधान सभा ने सभा के संचालन की पूर्ण शक्ति अपने निर्वाचित सभापति को दे दी। इसके अलावा सभा ने अपने द्वारा बनाए गए किसी भी भाग या अनुच्छेद को ब्रिटिश सरकार की सहमति या अनुमोदन के लिए प्रस्तुत नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि भारतीय संविधान सभा ने संविधान निर्माण का कार्य पूर्ण संप्रभुता की भावना से किया। 15 अगस्त 1947 को भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित हो जाने के बाद संविधान सभा पर कैबिनेट मिशन द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध वैधानिक दृष्टि से भी समाप्त हो गए और संविधान सभा औपचारिक तौर पर पूर्णतः संप्रभु बन गई।

- (ii) दूसरा विवाद यह है कि क्या संविधान सभा को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था माना जा सकता है? यह प्रश्न मुख्यतः राष्ट्रीय कांग्रेस के समाजवादी वर्ग और अन्य कुछ दलों द्वारा उठाया गया। उनका तर्क था कि संविधान सभा के सदस्यों का परोक्ष निर्वाचन (Indirect election) होने के कारण इसे भारतीय जनता की प्रतिनिधि-सभा नहीं कहा जा सकता। इस वर्ग के नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने ऐसा ही मत व्यक्त करते हुए कहा कि संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मतधिकार और प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct election) के आधार पर किया जाना चाहिए था।

वस्तुतः यह आक्षेप भी कमजोर है। कांग्रेस के नेताओं ने ध्यान रखा था कि संविधान सभा देश का प्रतिनिधित्व करने वाला निकाय होनी चाहिए। उनके प्रयत्नों से वैधानिक और प्रशासनिक योग्यता की दृष्टि से ख्यातिप्राप्त अनेक ऐसे व्यक्तियों का संविधान सभा के लिए निर्वाचन हुआ था, जो कांग्रेस से सम्बद्ध नहीं थे। इनमें से प्रमुख थे—प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अब्नेडकर। प्रारूप समिति के सात सदस्यों में से केवल दो (पहले के एम. मुंशी और बाद में टी. टी. कृष्णामाचारी) ही कांग्रेस के सदस्य थे। दूसरे, संविधान सभा में अल्पसंख्यक वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त था। तीसरे, दलीय दृष्टि से भी संविधान सभा भारतीय जनता का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती थी। यद्यपि साम्यवादी दल का कोई सदस्य संविधान सभा के लिए निर्वाचित नहीं हुआ, लेकिन फॉरवर्ड ब्लॉक के सदस्य संविधान सभा के लिए निर्वाचित हुए थे। समाजवादी दल ने प्रतिनिधित्व अस्वीकार कर दिया था, लेकिन फिर भी समाजवादी विचारधारा रखने वाले अनेक व्यक्ति कांग्रेस दल की ओर से संविधान सभा के सदस्य थे। हिन्दू महासभा के दो भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. जयकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी भी संविधान सभा के सदस्य थे। इन सबके अतिरिक्त तत्कालीन कांग्रेस दल का आधार बहुत अधिक व्यापक था। सही अर्थों में वह एक राजनीतिक दल नहीं, वरन् राष्ट्रीय आन्दोलन की संचालन संस्था थी और स्वयं कांग्रेस के भीतर विभिन्न विचारधाराओं के प्रतिनिधि थे।

- (iii) तीसरा प्रश्न यह उठाया जाता है कि क्या संविधान सभा को लोक समर्थन (Public support) प्राप्त था? कुछ अलोचकों के अनुसार, जैसा कि संविधान के वक्तव्य संग्रह के दया चरण से अन्वयार्थित (—) नहीं बताया गया, इसलिए कहा जा सकता

- (iv) चौथा आक्षेप यह किया जाता है कि संविधान सभा के संगठन का आधार साम्प्रदायिक (Communal) था। इसके मूल में तर्क यह है कि प्रांतीय विधायिकाओं (Provincial Legislatures) के सदस्यों द्वारा साम्प्रदायिकता के आधार पर ही संविधान सभा के सदस्यों को चुना गया था। इसलिए यह सभा अपनी मूल प्रवृत्ति में ही स्वाधीनता संघर्ष के 'धर्मनिरपेक्ष' (Secular) चरित्र के विपरीत थी।

दरअसल, ऐसा होने के पीछे जिम्मेदार परिस्थितियों को समझना जरूरी है। यह इसलिए किया गया था ताकि साम्प्रदायिक सहयोग प्राप्त हो सके और संविधान सभा में किसी एक ही सम्प्रदाय का बहुमत न हो जाए। इसके अलावा, मुस्लिम लीग के मिथ्या प्रचार को खारिज करके संविधान निर्माण के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए भी यह सस्ता चुना गया था जो तत्कालीन स्थितियों की दृष्टि से व्यावहारिक और उचित ही था।

- (v) पाँचवा आक्षेप यह लगाया जाता है कि संविधान सभा में वकीलों का प्रभुत्व था, अतः यह सभा जनसाधारण की भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। आलोचकों का कहना है कि संविधान सभा में किसानों और मजदूरों को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला। भारत एक कृषि-प्रधान देश है और यहाँ के अधिकांश लोग कृषक हैं जबकि उनके जीवन को निर्धारित करने वाला यह संविधान वकीलों द्वारा बनाया गया है।

वस्तुतः यह आक्षेप भी तर्कसंगत नहीं है क्योंकि संविधान एक जटिल कानूनी दस्तावेज़ होता है और उसके निर्माण में कानून के जानकार लोग ही महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। सामान्य मजदूर और किसान संविधान तथा जटिल कानूनों की सूक्ष्मताओं को आसानी से नहीं समझ सकते।

- (vi) छठा आक्षेप यह था कि संविधान सभा ने संविधान की रचना के लिए आवश्यकता से अधिक समय खर्च किया। यह आलोचना करने वालों का तर्क था कि अमेरिका को संविधान सभा ने जहाँ सिर्फ कुछ महानों ने संविधान की रचना कर ली थी, वहीं भारतीय संविधान सभा को यही कार्य करने में लगभग तीन साल लग गए। अतः यह समय की बर्बादी का उदाहरण है।

यह आक्षेप भी ठोस नहीं है। अमेरिका और भारतीय परिस्थितियों के अंतरों पर ध्यान दिए बिना ही ऐसे आक्षेप किए जा सकते हैं। हमें भूलना नहीं चाहिए कि चार्लेस डी. ब्रॉडबेंट ने 600 रियासतों के एकीकरण की समस्या को या फिर विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं, भाषाओं और धर्मों के सदस्यों के बीच सहमति गढ़ने की चुनौती दी। ये सारी समस्याएँ जो भारतीय संविधान सभा के समक्ष थीं, वे अमेरिकी संविधान निर्माताओं के सामने नहीं थीं। फिर, अमेरिकी संविधान सिर्फ संघ (Federation) के बारे में निर्देश देता है और राज्यों के स्वतंत्र संविधानों की अनुमति देता है, जबकि भारतीय संविधान निर्माताओं को सिर्फ केंद्र संबंधी ही नहीं बल्कि सभी राज्यों के संबंध में भी उपबन्ध करने थे। इसके अलावा, चूंकि भारतीय संविधान निर्माताओं के सामने लगभग 60 देशों के संविधान उपलब्ध थे, इसलिए उन्होंने उनका पूरा अनुसंधान भी किया ताकि सभी संविधानों की उपयोगी विशेषताएँ इसमें शामिल हो सकें। इन सभी प्रक्रियाओं में समय लगना स्वाभाविक ही था, इसे समय की बर्बादी नहीं कहा जा सकता।

- (vii) सातवाँ आक्षेप यह किया जाता है कि संविधान सभा में हिंदुओं का वर्चस्व था, इसलिए यह संविधान सभा सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। यह आरोप मुख्यतः मुस्लिम लीग तथा कुछ अन्य द्वारा लगाया गया था। ब्रिटेन के कुछ राजनीतिकारों ने भी ऐसा आक्षेप किया था। विंस्टन चर्चिल ने दावा किया था कि भारतीय संविधान सभा भारत के सिर्फ एक बड़े समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है। 'लॉर्ड वाइकाउण्ट' (Lord Viscount) ने तो साफ शब्दों में कहा कि 'संविधान सभा तत्त्वतः हिंदुओं का निकाय' थी।

यह आक्षेप भी तार्किक दृष्टि से मजबूत नहीं है। ध्यातव्य है कि कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव साम्प्रदायिक निर्वाचन के आधार पर ही हुआ था और इसी का परिणाम था कि ब्रिटिश भारत के लिए आबंटित 296 सीटों में से 73 सीटें मुस्लिम लीग को मिलीं। सिख समुदाय को भी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व मिला था। विभाजन के बाद भारत में ही रह गए मुस्लिम लीग के निर्वाचित सदस्यों को भी संविधान सभा में भाग लेने का आमंत्रण दिया गया था। इन सभी बातों से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान सभा पर सिर्फ हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। वैसे भी, संविधान में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए जो व्यापक प्रावधान किए गए हैं, वे इस आरोप को मिथ्या साबित कर देते हैं।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. संविधान सभा की पहली बैठक के संबंध में सत्य है/हैं—
 (i) यह बैठक 9 दिसंबर, 1946 को लंदन में आयोजित हुई।
 (ii) मुस्लिम लीग ने इस बैठक का बहिष्कार किया और अलग पाकिस्तान की मांग उठाई।
 (iii) पंडित नेहरू ने सभा में 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया, जिसे संविधान सभा द्वारा स्वीकृत कर लिया गया।

कूट—

- (1) केवल (i) ✓(2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) उपरोक्त सभी

2. उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) को संविधान सभा द्वारा स्वीकृत किये जाने की तिथि है—

- (1) 11 दिसंबर, 1946 ✓(2) 13 दिसंबर, 1946
 ✓(3) 22 जनवरी, 1947 (4) 24 जनवरी, 1950

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) यद्यपि उद्देश्य प्रस्ताव संविधान सभा द्वारा पारित नहीं हो सका, तथापि यह भारतीय संविधान की प्रस्तावना का आधार बना।
 (ii) उद्देश्य प्रस्ताव में भारत के एक स्वतंत्र तथा संप्रभु गणराज्य होने की बात की गई थी।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
 (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों
 (4) न तो (i) और न ही (ii)

4. सूची I (समिति) को सूची II (अध्यक्ष) से सुमेलित कीजिए।

सूची I (समिति)	सूची II (अध्यक्ष)
(A) संघ संविधान समिति	(i) डॉ. के. एम. मुंशी
(B) मूल अधिकार एवं अल्पसंख्यक समिति	(ii) पंडित नेहरू
(C) प्रारूप समिति	(iii) डॉ. अम्बेडकर
(D) कार्य संचालन समिति	(iv) सरदार पटेल

कूट—

	A	B	C	D
(1)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(2)	(ii)	(iv)	(i)	(iii)
(3)	(iii)	(ii)	(iv)	(i)
(4)	(iv)	(iv)	(iii)	(i)

6. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के पारित होने के पश्चात् संविधान सभा के महत्व तथा दायित्वों में व्यापक अंतर आ गया। इस संदर्भ में सुमेलित कथन है/हैं—

- (i) ब्रिटिश राजसन किसी भी रूप में संविधान सभा की शक्तियों को सीमित नहीं कर सकता था।
 (ii) संविधान सभा स्वतंत्र भारत की पहली संसद अर्थात् विधायिका बन गई थी।
 (iii) संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 389 के बजाय 299 ही रह गई।

कूट—

- (1) केवल (ii) (2) केवल (iii)
 (3) (i) और (ii) ✓(4) (i), (ii) और (iii)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) संविधान की प्रारूप समिति का गठन 29 अगस्त, 1947 को किया गया।

- (ii) संविधान सभा ने कभी अंतरिम संसद (Interim Parliament) के रूप में कार्य नहीं किया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- ✓(1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित में से किस तिथि को संविधान सभा के अध्यक्ष तथा सदस्यों द्वारा प्रारूप संविधान (Draft Constitution) पर हस्ताक्षर किया गया?

- (1) 26 नवंबर, 1949 (2) 24 जनवरी, 1950
 (3) 29 अगस्त, 1947 (4) 26 जनवरी, 1950

9. सूची I को सूची II से सुमेलित कीजिए।

सूची I	सूची II
(A) राष्ट्रगान	✓(i) 22 जुलाई, 1947
(B) राष्ट्र-ध्वज	(ii) 24 जनवरी, 1950
(C) राष्ट्रमंडल में भारत की सदस्यता	(iii) 24 जनवरी, 1950
(D) भारत का प्रथम राष्ट्रपति	(iv) मई, 1949

कूट—

	A	B	C	D
(1)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(2)	(iv)	(ii)	(i)	(iii)
(3)	(ii)	(i)	(iv)	(iii)
(4)	(ii)	(iii)	(i)	(iv)

10. संविधान सभा के संबंध में सत्य है/हैं—

- (i) साम्यवादी दल का कोई सदस्य संविधान सभा के लिए

भारतीय संविधान के स्रोत (Sources of Indian Constitution)

जब भारतीय संविधान सभा (Constituent Assembly) ने संविधान के निर्माण की प्रक्रिया शुरू की तो उसके पास यह विकल्प उपलब्ध था कि जिन देशों के संविधान पहले से लिखे जा चुके हैं, उनके संविधानों में से उपयुक्त उपबंधों (Appropriate Provisions) का प्रयोग भारतीय संविधान के लिए कर लिया जाए। संविधान सभा ने इसी दृष्टिकोण से अमेरिका और ब्रिटेन सहित लगभग 60 देशों के संविधानों का गहन अध्ययन किया और भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल उसे जो भी प्रावधान लगे, उन्हें भारतीय संविधान में शामिल कर लिया। संविधान सभा के कुछ राष्ट्रवादी (Nationalist) सदस्यों ने आरोप लगाया कि संविधान का निर्माण इस तरह से करना दास मनोवृत्ति (Slave mentality) का उदाहरण है। वस्तुतः यह आरोप कमजोर है। कोई भी अनुसंधान या गंभीर विचार-विमर्श करते हुए पहले के ज्ञान-विज्ञान की आधार बनाया जाना समय, श्रम और धन बचाने के लिए तो ज़रूरी है ही, इस दृष्टि से भी ज़रूरी है कि कोई ऐसी बातें जो संभवतः हम न सोच पाते, वे भी विकल्पों के रूप में हमें उपलब्ध हो जाती हैं।

यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि भारतीय संविधान पर सबसे ज्यादा प्रभाव 1935 के भारत शासन अधिनियम (Government of India Act, 1935) का है। संविधान के लगभग 200 ऐसे प्रावधान हैं जो सीधे-तौर पर इस अधिनियम से लिए गये हैं। किंतु, इन्हें लेने का कारण भी यह नहीं था कि हम ब्रिटिश सरकार के संविधान विशेषज्ञों (Constitutional experts) के वैचारिक प्रभाव में थे। वास्तविक कारण यह था कि इस अधिनियम के प्रावधानों का अनुसार शासन की प्रथाएँ संचालन का हमें पर्याप्त अनुभव हो चुका था और उसके उपयोगी प्रावधानों को संविधान में शामिल करना हमें समर्थ था।

यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या भारतीय संविधान में कुछ भी मौलिक है या नहीं? इस प्रश्न पर संविधान सभा के सामने भी उठाया गया था। कुछ लोगो ने इसे उधार का संविधान (Borrowed Constitution) कहा था। किंतु, इस 'पैचवर्क' का काम (Work of patches) बताया था। डॉ. अम्बेडकर ने इस आरोप का जवाब देते हुए कहा था कि

“यह सवाल उठाया जा सकता है कि विश्व के इतिहास में आज निर्माण किए जाने वाले संविधान में क्या कोई नया चीज हो सकती है। जब पहला लिखित संविधान बनाया गया था तब से सौ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं। उसके बाद विश्व के देशों ने अपने संविधान को लेखबद्ध किया है। इन देशों के कारण सभी संविधानों में कुछ उपबंध एक से दिखाई पड़ते हैं। यदि कोई देश सोचता है तो वह यह है कि इतने संविधानों के लिए इस संविधान में उन देशों को संशोधन के लिए और अपने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ परिवर्तन किए जाएँ।”

1. भारत शासन अधिनियम, 1935 (Government of India Act, 1935)	(i) संघीय व्यवस्था (Federal System) (ii) राज्यपाल का कार्यालय (Governor's Office) (iii) न्यायपालिका का ढांचा (Structure of the Judiciary) (iv) लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) (v) आपातकालीन उपबंध (Emergency Provisions) (vi) शक्तियों के वितरण की तीन सूचियाँ (Three lists for distribution of powers)
2. ब्रिटेन का संविधान (British Constitution)	(i) संसदीय व्यवस्था (Parliamentary System) (ii) राज्याध्यक्ष का प्रतीकात्मक या नाममात्र का महत्त्व (Symbolic or nominal importance of the Head of State) (iii) विधायी प्रक्रिया (Legislative Process) (iv) एकल नागरिकता (Single Citizenship) (v) मंत्रिमंडल प्रणाली (Cabinet System) (vi) परमाधिकार रिटें (Prerogative Writs)

3. अमेरिका का संविधान (<i>American Constitution</i>)	(i) मूल अधिकार (Fundamental Rights) (ii) न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of Judiciary) (iii) न्यायिक पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन का सिद्धांत (The Principle of Judicial Review) (iv) उपराष्ट्रपति का पद (The Post of Vice-President) (v) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटाया जाना और राष्ट्रपति पर महाभियोग (Removal of the Judges of Supreme Court and High Courts and Impeachment of the President)
4. आयरलैंड का संविधान (<i>Ireland's Constitution</i>)	(i) राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) (ii) राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति (Method of President's election) (iii) राज्यसभा के लिए सदस्यों का नामांकन (Nomination of members to the Council of States)
5. कनाडा का संविधान (<i>Canada's Constitution</i>)	(i) संघातक केन्द्र के साथ संघीय व्यवस्था (Federal System with a Powerful Centre) (ii) अवशिष्ट शक्तियों का केंद्र में निहित होना (Vesting of Residuary powers in the centre) (iii) केंद्र द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति (Appointment of states' governors by the centre) (iv) उच्चतम न्यायालय का परामर्शी न्याय-निर्णय (Advisory jurisdiction of the Supreme Court)
6. ऑस्ट्रेलिया का संविधान (<i>Australia's Constitution</i>)	(i) समवर्ती सूची (Concurrent List) (ii) व्यापार, वाणिज्य और संचार की स्वतंत्रता (Freedom of trade, commerce and intercourse) (iii) संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint sitting of both house of parliament)
7. जर्मनी का वाइमर संविधान (<i>Weimar constitution of Germany</i>)	(i) आपत्काल के समय मूल अधिकारों का स्थगन (Suspension of Fundamentals Rights During Emergency)
8. सोवियत संघ (भूतपूर्व) का संविधान (<i>Erstwhile USSR's Constitution</i>)	(i) मूल कर्तव्य (Fundamental Duties) (ii) प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का आदर्श (Ideal of Social, Economic and Political justice in Preamble)
9. फ्रांस का संविधान (<i>French Constitution</i>)	(i) गणतंत्रात्मक ढाँचा (Republican Structure) (ii) स्वतंत्रता, समता और बंधुता के आदर्श (Ideals of Liberty, Equality and Fraternity)

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. भारतीय संविधान पर सर्वाधिक प्रभाव है—

- (1) अमेरिकी संविधान का।
- (2) ब्रिटिश संविधान का।
- (3) आयरलैंड के संविधान का।
- (4) 1935 के भारत शासन अधिनियम का।

2. सूची I का सूची II से मिलान कीजिए।

सूची I (भारतीय संविधान के उपबंध)	सूची II (वह देश जहाँ से लिया गया)
A. उपराष्ट्रपति का पद	(i) कनाडा
B. समवर्ती सूची	(ii) अमेरिका
C. संघीय व्यवस्था	(iii) फ्रांस
D. गणतंत्रात्मक ढाँचा	(iv) ऑस्ट्रेलिया

कूट—

	A	B	C	D
1.	(ii)	(i)	(iv)	(iii)
2.	(ii)	(iv)	(i)	(iii)
3.	(iv)	(iii)	(ii)	(i)
4.	(iv)	(ii)	(i)	(iii)

3. भारतीय संविधान संविधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure established by law) लिया गया है—

- (1) ऑस्ट्रेलिया से।
- (2) अमेरिका से।
- (3) जापान से।
- (4) जर्मनी से।

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान में आपातकालीन उपबंध का प्रावधान भारत शासन अधिनियम, 1935 से लिया गया है।
- (ii) आपातकाल में मूल अधिकारों का निलंबन जर्मनी के वाइमर संविधान से प्रेरित है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. निम्नांकित में कौन-कौन से संवैधानिक प्रावधान ब्रिटेन से लिये गये हैं?

- (i) एकल नागरिकता
- (ii) त्रिपंडस्तीय प्रणाली
- (iii) संसदीय विशेषाधिकार
- (iv) मूल कर्तव्य

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

6. निम्नांकित में कौन-कौन से संवैधानिक प्रावधान अमेरिका से लिये गये हैं?

- (i) मूल अधिकार।
- (ii) न्यायपालिका की स्वतंत्रता।
- (iii) राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया।
- (iv) न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धांत।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रावधान ऑस्ट्रेलिया से लिया गया है।
- (ii) नागरिकता प्रावधानों में स्वतंत्रता, समता और बहुता के आदर्श को लिया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया निम्न में किस देश के संविधान से प्राप्त है?

- (1) अमेरिका
- (2) जर्मनी
- (3) दक्षिण अफ्रीका
- (4) जापान

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) राज्य सभा के लिए सदस्यों के नामांकन (Nomination) का प्रावधान दक्षिण अफ्रीका से लिया गया है।
- (ii) राज्य सभा के सदस्यों के निर्वाचन का प्रावधान आयरलैंड से लिया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. भारतीय राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति प्रेरित है—

- (1) आयरलैंड के संविधान से।
- (2) अमेरिका के संविधान से।
- (3) ब्रिटेन के संविधान से।
- (4) दक्षिण अफ्रीका के संविधान से।

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता का उपबंध ऑस्ट्रेलिया के संविधान से लिया गया है।

(ii) भारतीय संविधान के लगभग 200 ऐसे प्रावधान हैं जो प्रत्यक्ष तौर पर 1935 के भारत शासन अधिनियम से लिए गए हैं। उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सिद्धांत अमेरिकी संविधान से लिया गया है।

(ii) न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया फ्रांस से ली गयी है। उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. निम्न में से किस देश के संविधान का प्रभाव है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में प्राधान्य अधिक एवं प्रजातन्त्रिक न्याय का आदर्श झलकता है?

- (1) सोवियत संघ
- (2) जर्मनी
- (3) फ्रांस
- (4) जापान

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) भारतीय न्यायपालिका का ढाँचा (Structure) भारत शासन अधिनियम, 1935 से लिया गया है।

(ii) लोक सेवा आयोग का उपबन्ध भी 1935 के भारत शासन अधिनियम से लिया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. भारतीय संसद के द्विसदनी होने की विशेषता ली गई है—

- (1) ब्रिटेन से।
- (2) फ्रांस से।
- (3) अमेरिका से।
- (4) जापान से।

भारतीय संविधान की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Constitution)

‘संविधान’ का अर्थ (Meaning of ‘Constitution’)

संविधान किसी देश के मौलिक कानून (Fundamental Law) को कहते हैं जो उसकी राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा (Basic structure) प्रस्तुत करता है। यह शासन के विभिन्न अंगों— विधायिका (Legislature), कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary) की शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधों को निर्धारित करता है।

यह जरूरी नहीं है कि हर देश का संविधान लिखित (Written) हो। जो देश किसी व्यवस्थित योजना के तहत संविधान बनाते हैं, उनका संविधान तो लिखित होता है किन्तु जिन देशों में संविधान एक बार में नहीं बनता बल्कि धीरे-धीरे विकसित होता रहता है, वहाँ संविधान अलिखित (Unwritten) होता है। अलिखित (Unwritten) होने का अर्थ सिर्फ इतना है कि ऐसे देशों में संविधान नामक कोई एक वृहद् कानूनी दस्तावेज (Detailed legal document) नहीं होता बल्कि विभिन्न कानूनों (Laws), परंपराओं (Traditions) तथा कानूनी व्याख्याओं (Legal interpretations) का समन्वित संग्रह संविधान माना जाता है। सामान्यतः संघात्मक (Federal) और परिसंघात्मक (Confederal) देशों का संविधान लिखित होता है क्योंकि लिखित संविधान के आधार पर ही ये व्यवस्थाएँ चलती हैं। ब्रिटेन जैसे देश, जो एकतात्मक (Unitary) तथा संसदीय (Parliamentary) प्रणाली का आधारभूत हैं, वहाँ लिखित संविधान की जरूरत प्रायः नहीं पड़ती।

भारतीय संविधान की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Constitution)

विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों एवं न्यायिक निर्णयों (Judicial Decisions) तथा संवैधानिक विशेषज्ञों के विचारों से प्रभावित ‘भारत का संविधान’ (Constitution of India) विश्व का सर्वाधिक व्यापक संविधान है। तब भी, यह विदेशी संविधानों या संविधानविदों के विचारों का अनुकरण मात्र न होकर अपने अंग में एक संस्था-अनुभव और नवन प्रयोग है। इसकी मुख्य विशेषताओं की चर्चा निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत की जा सकती है—

- (1) निर्मित, लिखित और विशाल संविधान (Enacted, Written and Most Comprehensive Constitution) - भारत का संविधान एक लिखित, तथा निर्मित संविधान है जिसका निर्माण एक विशेष संविधान सभा द्वारा किया गया है। यह ब्रिटिश संविधान की तरह ‘अलिखित’ (Unwritten) तथा विकसित (Evolved) नहीं है। यह आकार की दृष्टि से विश्व के अन्य सभी संविधानों से विशाल भी है। इसके मौलिक साधनों में 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियाँ थीं, किन्तु कई संशोधनों के बाद वर्तमान में इसमें 448 अनुच्छेद, 25 भाग और 12 अनुसूचियाँ हैं। ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान में सूची की दृष्टि से अभी भी 395 अनुच्छेद ही हैं क्योंकि संशोधनों (Amendments) के माध्यम से जो भी अनुच्छेद इसमें जोड़े गए हैं, वे किसी न किसी अनुच्छेद के विस्तार (Extension) के रूप में जोड़े गए हैं; जैसे- अनुच्छेद 21 ‘क’, 51 ‘क’, अनुच्छेद 300 ‘क’ इत्यादि। ऐसा इसलिए किया गया है ताकि अनुच्छेदों का मूल क्रम न बदले और उन्हें पढ़ने में बार-बार बाधाएँ पैदा न हों।

ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान के अत्यंत विशाल होने के पीछे कई महत्वपूर्ण कारण हैं, जैसे—

- (i) भारतीय संविधान निर्माताओं ने विश्व के लगभग 60 देशों के संविधानों का अध्ययन किया था और उनके उपयुक्त प्रावधानों (Appropriate provisions) को स्वीकार किया था। अमेरिका, ब्रिटेन, आयरलैंड और जर्मनी के संविधानों का प्रभाव विशेष रूप से स्वीकार किया गया। इससे संविधान का लंबा होना स्वाभाविक ही था।

अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes) में शामिल हैं। इसलिए संविधान निर्माताओं ने सभी को मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान करना चाहते थे।

- (iv) भारतीय संविधान में सिर्फ मूल सिद्धांतों (Basic principles) का वर्णन नहीं किया गया है बल्कि विस्तृत रूप से प्रशासनिक ढाँचे (Administrative structure) से जुड़े प्रावधान भी प्रस्तुत किए गए हैं।
- (v) चूंकि संविधान निर्माण के समय राष्ट्रीय एकता और अखण्डता (National unity and integrity) से जुड़ी बहुत सी समस्याएँ संभावित थीं, इसलिए संविधान निर्माताओं ने विशेष रूप से आपात्कालीन प्रावधानों (Emergency Provisions) को भी शामिल किया।
- (vi) मूल अधिकारों (Fundamental Rights) के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ विशिष्ट परिस्थितियों में उन पर लागू होने वाले युक्ति-युक्त प्रतिबंधों या निर्बंधनों (Reasonable Restrictions) को भी संविधान सभा ने अपनी दूर-दृष्टि का परिचय देते हुए संविधान में शामिल किया। इतना ही नहीं, उन्होंने राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों (Directive Principles of state policy) को भी शामिल किया जिससे संविधान संवा हो गया।

(2) **संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of Constitution)** - संविधान द्वारा भारत में संवैधानिक सर्वोच्चता स्थापित की गई है। इसका अर्थ है कि संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। कोई भी कानून या आदेश संविधान के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता। सरकार के सभी अंगों (Organs) को संविधान द्वारा निर्दिष्ट सीमाओं के अधीन रहकर ही कार्य करना पड़ता है। यदि विधायिका (Legislature) द्वारा निर्मित कोई कानून या अध्यादेश संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' (Basic structure) के विरुद्ध है तो न्यायाधिकार (Judicial) इसे खारिज कर सकता है। ये सारे लक्षण 'विधि के शासन' (Rule of Law) को संस्थापित करते हैं।

(3) **कठोरता व लचीलेपन का मिश्रण (Mixture of Rigidity and Flexibility)** - भारत का संविधान 'कठोर' या 'अनम्य' (Rigid) तथा 'लचीले' या 'सुनम्य' (Flexible) संविधानों का समन्वित रूप है। लचीला या सुनम्य (Flexible) संविधान वह होता है जिसके प्रावधानों को सरल प्रक्रिया द्वारा संशोधित (Amend) किया जा सकता है। इसके विपरीत 'कठोर' या अनम्य (Rigid) संविधान में संवैधानिक संशोधन के लिए अत्यंत जटिल प्रक्रिया को अपनाया जाता है जिसके परिणामतः संविधान में संशोधन लगभग असंभव हो जाता है। भारत में संविधान के अधिकांश उपबंधों (Provisions) को संशोधित करने के लिए संसद के सदस्यों के बहुमत के अतिरिक्त उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की भी आवश्यकता होती है; और कुछ उपबंधों (Provisions) जैसे राष्ट्रपति के चुनाव, उच्चतम न्यायालय की संरचना व संघीयता तथा अनुच्छेद 368 के उपबंधों (Provisions) में संशोधन के लिए तो इसके अलावा कम-से-कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। इसके बावजूद, इसमें बहुत से विधेय ऐसे भी हैं जिन्हें भारतीय संसद साधारण बहुमत (Simple Majority) द्वारा संशोधित कर सकती है। उदाहरण के लिए, राज्यों के विधान परिषदों का निर्माण तथा कुछ शासित प्रदेशों (Union territories) के विधानमंडलों से संबंधित प्रावधान इसी वर्ग में शामिल हैं। इस तरह भारत में संवैधानिक संशोधन की कठिन व सरल दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को अपनाया गया है। यह अमेरिका के अनम्य या कठोर (Rigid) संविधान तथा ब्रिटेन के सुनम्य या लचीले (Flexible) संविधान के बीच का रास्ता अपनाता है।

(4) **संघात्मक संविधान, किंतु एकात्मकता की ओर झुकाव (Federal Constitution With Unitary Bias)** - यूँ तो भारतीय संविधान का अनुच्छेद-1 भारत को एक एकात्मक राज्य (Union of states) घोषित करता है किंतु तत्त्वतः भारतीय संविधान संघवाद (Federalism) के मूल्यों के लेकर चला है। भारत में संघात्मक प्रणाली (Federal system) के तीनों प्रमुख लक्षणों को अपनाया गया है- (क) लिखित संविधान, (ख) सर्वोच्च व स्वतंत्र न्यायपालिका, तथा (ग) केन्द्र एवं इकाइयों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन। किंतु, भारत में केंद्र-राज्य संबंधों का निरूपण कुछ इस प्रकार किया गया है कि केन्द्र का पलड़ा व्यवहारतः काफी भारी हो गया है। राज्यपालों की नियुक्ति, आपात्काल (Emergency) संबंधी प्रावधानों, वित्तीय प्रणाली पर केंद्र के हावी होने जैसे लक्षणों के आधार पर केंद्र के अधिक ताकतवर होने को समझा जा सकता है।

(5) **संसदीय व्यवस्था (Parliamentary System)** - संसदीय व्यवस्था की स्थापना भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। यह विशेषता इंग्लैंड के संविधान से ली गई है क्योंकि स्वाधीनता प्राप्त से पहले भारतीय समाज इसका अध्यस्त हो चुका

हैं, जो अपनी नीतियों व कार्यों के लिए निम्न सदन अर्थात् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। लोकसभा अविश्वास प्रस्ताव (No Confidence Motion) पारित कर जब चाहे मंत्रिपरिषद् को अपदस्थ कर सकती है। इसका अभिप्राय है कि जब तक मंत्रिपरिषद् को लोकसभा में सदस्यों का बहुमत प्राप्त रहता है तब तक वह अपने पद पर बनी रहती है। लगभग ये सारी विशेषताएँ ब्रिटेन के संसदीय ढाँचे से प्रभावित होकर ग्रहण की गई हैं।

पिछले दो दशकों में भारत में यह विवाद कई बार उठा है कि संविधान निर्माताओं द्वारा संसदीय प्रणाली (Parliamentary System) का चयन करना उचित था या नहीं? 1990 के दशक में जिस तरह से बार-बार केंद्र सरकारें बनीं और गिरिं; उससे लगने लगा कि अब या तो अध्यक्षीय प्रणाली (Presidential system) को अपना लिया चाहिए अन्यथा बहुदलीय प्रणाली (Multi-party system) के स्थान पर द्विदलीय प्रणाली (Two party system) को। किंतु, पिछले एक दशक में राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability) की समस्या भारतीय जनमानस की परिपक्वता से अपने आप सुलझ गई क्योंकि जनसामान्य ने धीरे-धीरे द्विगठबंधनीय ढाँचे (Two coalition structure) को अपना लिया जो कि देश की संघात्मक (Federal) ज़रूरतों के अनुकूल भी था और अस्थिरता की समस्या का समाधान भी करता था।

- (6) स्वतंत्र न्यायपालिका (Independent Judiciary) - भारतीय संविधान एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करता है जो कि संघात्मक (Federal) शासन-प्रणाली की स्थापना के लिए ज़रूरी भी होता है। यह विशेषता अमेरिकी संविधान में दिखाई पड़ती है। भारतीय संविधान में उन सभी बातों का उल्लेख किया गया है, जो स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका के लिए आवश्यक हैं। इस हेतु संविधान में कई विशेष व्यवस्थाएँ की गई हैं जैसे- सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) और उच्च न्यायालयों (High Courts) के न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रभुत्व संसद के अध्यक्षों के पास होना; न्यायाधीशों की सुरक्षा प्राप्त होना; न्यायाधीशों के आचरण पर संसद और प्रभुत्व विधायिका के द्वारा विचार न कर सकना आदि। पिछले 52-53 वर्षों में भारतीय न्यायपालिका ने कई बार अमूल्य प्रभुत्व और निष्पक्षता का परिचय करवाया है। अपने प्रातःकालीन प्रभुत्व का प्रयोग करके कोरावचंद भारती बनाम केरल राज्य तथा शाहबानो जैसे मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा अश्वेतता का प्रमाण दिया है।

- (7) संसदीय प्रभुत्व और न्यायिक सर्वोच्चता में समन्वय (Co-ordination Between Parliamentary Sovereignty and Judicial Supremacy) - भारतीय संविधान के अंतर्गत ब्रिटेन की संसदीय सर्वोच्चता और अमेरिका की न्यायिक सर्वोच्चता की धारणाओं के बीच अदभुत ढंग से समन्वय स्थापित किया गया है। भारत में संसदीय व्यवस्था को अपनाकर संसदीय सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है तथा संसद को ही संविधान के अंतर्गत प्रभुत्व के प्रावधानों को संशोधित करने का व्यापक अधिकार दिया गया है। किंतु इसके साथ ही संघात्मक (Federal) प्रणाली के आदेश के अनुरूप सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की अंतिम व्याख्या करने तथा उन विधियों और आदेशों को अंतिम स्थापित करने का अधिकार दिया गया है जो संविधान की मूल भावना के विरुद्ध हों।

- (8) प्रभुत्वसंपन्न राज्य (Sovereign State) - भारत का संविधान प्रस्तावना (Preamble) भारत को एक प्रभुत्वसंपन्न राज्य घोषित करती है। इसका निहितार्थ यह है कि भारत पर आंतरिक एवं बाह्य दृष्टि से किसी विदेशी सत्ता का नियंत्रण नहीं है। किसी भी विदेशी शक्ति को इसकी गृह व विदेशी नीति में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है और वह किसी भी अंतर्राष्ट्रीय समझौते अथवा संधि को मानने के लिए बाध्य नहीं है। ध्यातव्य है कि कुछ लोग भारत द्वारा 'राष्ट्रमंडल' की सदस्यता लिये जाने की आलोचना करते हैं और इसे संप्रभुता के विरुद्ध बताते हैं किंतु पंडित जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता लेते समय स्पष्ट तौर पर घोषित किया था कि हम एक संप्रभु राष्ट्र की हैसियत से राष्ट्रमंडल के सदस्य बन रहे हैं। हम ब्रिटिश राजा को सांकेतिक तौर पर ही राष्ट्रमंडल का प्रमुख मानते हैं, किंतु हमारे लिए उसका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं है। यदि ब्रिटिश राजा भारत भी आता है तो उसे हमारे राष्ट्रपति की तुलना में कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं होगी।

- (9) लोकतांत्रिक गणराज्य (Democratic Republic) - संविधान की प्रस्तावना के अनुसार भारत एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। इसका निहितार्थ है कि शासन की शक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग-विशेष में निहित न होकर भारतीय जनता में निहित है और जनता निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से स्वयं शासक-वर्ग का चयन करती है। भारतीय राज्य का 'गणतंत्रात्मक' (Republican) स्वरूप इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत राज्य का सर्वोच्च अधिकारी अर्थात् राष्ट्रपति वंशानुगत राजा न होकर भारतीय जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति होता है। ध्यातव्य है कि ब्रिटेन आधुनिक लोकतंत्र का जनक होकर भी अभी तक

- (10) **समाजवादी राज्य (Socialist State)** - भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक समाजवादी राज्य घोषित करती है। ध्यातव्य है कि मूल संविधान की प्रस्तावना में यह शब्द (समाजवाद) नहीं था, इसे 42 वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है। प्रस्तावना में उल्लिखित 'समाजवादी राज्य' का तात्पर्य यह है कि भारत द्वारा लोक कल्याणकारी नीतियों के माध्यम से 'आर्थिक न्याय' उपलब्ध कराने की कोशिश की जाएगी। ध्यातव्य है कि भारत में अपनी परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद को अपनाया गया है जो गांधीवादी विचारधारा और लोकतंत्र के भी साथ लेकर चलता है। यह भूतपूर्व सोवियत संघ, चीन तथा अन्य चिरपरिचित समाजवादी प्रणालियों से अलग है। मोटे तौर पर इसे 'लोकतांत्रिक समाजवाद' (Democratic Socialism) की श्रेणी में रखा जा सकता है।
- (11) **पंथनिरपेक्ष राज्य (Secular State)** - भारत एक पंथनिरपेक्ष या धर्मनिरपेक्ष राज्य है। 42वें संशोधन द्वारा संशोधित भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक 'पंथनिरपेक्ष' (Secular) राज्य घोषित करती है। इस का निहितार्थ यह है कि भारत का अपना कोई राजधर्म नहीं है और यह सभी पंथों व धर्मों का समान रूप से आदर करता है। ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता (Secularism) के नकारात्मक (Negative) नहीं, सकारात्मक (Positive) रूप को अपनाया गया है। यही कारण है कि भारतीय राज्य सभी धर्मों को नकारने के स्थान पर सभी का आदर करता है तथा उनके विकास में सहायक भी होता है। संविधान के अनुच्छेद 25-28 भारतीय नागरिकों को विभिन्न प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रताएँ प्रदान करते हैं जो भारतीय राज्य के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का ठोस प्रमाण है।
- (12) **एकल नागरिकता (Single Citizenship)** - भारतीय संविधान ब्रिटेन की तरह एकल नागरिकता के सिद्धांत को अपनाता है, अमेरिका की तरह दोहरी नागरिकता को मानता नहीं है। अर्थात् नागरिकों का नागरिकता संबंध एवं राज्य के सभी लोगों को एक ही नागरिकता प्रदान की जाती है। इसका मुख्य कारण यह था कि भारतीय राज्य भाषा, जाति, धर्म, लिंग, वर्ण, जाति और अखंडता को बनाए रखने की चुनौतियों को लेकर अलग-अलग जातीय आधारों के बिना भारत को एकतापूर्ण और एकजुट अंतर्गत रहने वाले नागरिक सिर्फ 'भारतीय' कहलाते हैं, उनका नागरिकता की पहचान 'राज्य' के आधार पर नहीं होती है।
- (13) **मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)** - अमेरिका एवं आयरलैंड के संविधानों की तरह भारतीय संविधान में भी नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान किये गए हैं। संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 32 तक नागरिकों के छह प्रकार के मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये अधिकार हैं -
- (i) समानता (Equality) का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)।
 - (ii) स्वतंत्रता (Freedom) का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22)।
 - (iii) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24)।
 - (iv) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)।
 - (v) सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 से 30)।
 - (vi) संवैधानिक उपचारों (Constitutional Remedies) का अधिकार (अनुच्छेद 32)।
- (14) **नीति निर्देशक तत्व (Directive Principles)** - आयरलैंड के संविधान की तरह भारतीय संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि नीति निर्देशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यकारी रूप से लागू नहीं कराया जा सकेगा। किंतु, तब भी ये तत्व देश के शासन में मूलभूत महत्व रखते हैं। वस्तुतः नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से भारतीय राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।
- (15) **कल्याणकारी राज्य की स्थापना (Establishment of Welfare State)** - भारतीय संविधान को यदि समग्र रूप में देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि उसका मुख्य उद्देश्य देश में लोककल्याणकारी राज्य (Welfare state) की स्थापना करना है। चाहे पंडित नेहरू द्वारा प्रस्तावित 'उद्देश्य प्रस्ताव' (Objective resolution) रहा हो या संविधान की 'प्रस्तावना' (Preamble) को देखा जाए; मौलिक अधिकार हों या राज्य के नीति निर्देशक तत्व- इन सभी में भारतीय राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप पर बल दिया गया है।

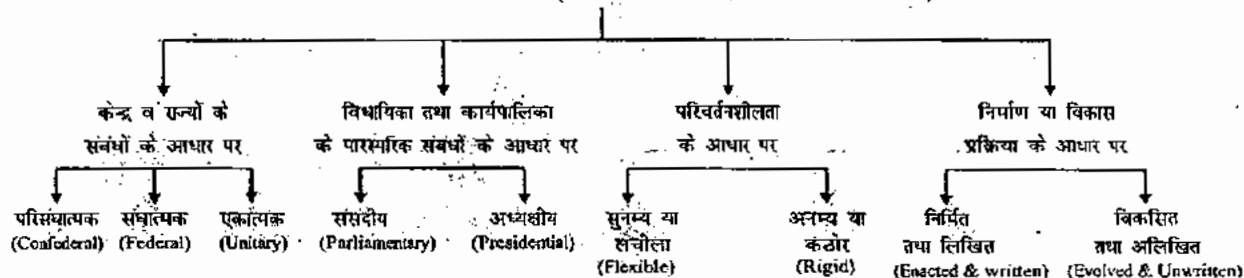
समग्रतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान की विशेषताएँ अद्भुत एवं अपने आप में अनूठी हैं। यद्यपि इन विशेषताओं में से अधिकांश विश्व के अन्य संविधानों में भी देखने को मिल जाती हैं, पर उनका जो विशिष्ट संयोजन भारतीय संविधान में किया गया है, वह इसे अलग बनाता है।

संविधानों का वर्गीकरण और भारतीय संविधान

(Classification of constitutions and Indian constitution)

विश्व के विभिन्न संविधानों को कुछ विशेष दृष्टियों से अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ऐसे ही कुछ वर्गीकरणों को आधार बनाकर भारतीय संविधान की प्रकृति को विस्तार में समझा जा सकता है। ऐसे प्रमुख वर्गीकरण इस प्रकार हैं-

संविधानों का वर्गीकरण (Classification of Constitutions)



जहाँ तक भारतीय संविधान का प्रश्न है, इसे इन वर्गीकरणों में से किस प्रकार समझा जा सकता है-

- (क) विधायिका (Legislature) और कार्यपालिका (Executive) के संबंधों की दृष्टि से भारतीय संविधान संसदीय (Parliamentary) प्रकार का है। इसी कारण भारत का राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद् या कार्यपालिका (Cabinet) अर्थात् संसद में बहुमत रखने वाले दल से ही निर्मित होती है। ब्रिटिश काल में प्राप्त हुए अनुभव तथा देश में विद्यमान ऐतिहासिक दृष्टिकोण रखते हुए यह निर्णय किया गया था।
- (ख) भारतीय संविधान को न तो पूर्णतः सुनम्य या लचीला (Flexible) कहा जा सकता है और न ही पूर्णतः कठोर (Rigid)। संविधान के कुछ प्रावधान इस प्रकार हैं: सुनम्य बराबर के जबकि कुछ प्रावधान, जिनमें संशोधन करने के लिए संसद के विशेष बहुमत (Special majority) के साथ-साथ आधे से अधिक राज्यों के विधानमण्डलों की भी सहमति चाहिए होती है, इस लक्षण अन्म्य या कठोर (Rigid) बना देते हैं।
- (ग) यदि निर्माण या विकास प्रक्रिया की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय संविधान निर्मित तथा लिखित (Enacted and written) संविधान है क्योंकि इस उद्देश्य हेतु निर्वाचित संविधान सभा ने इसका निर्माण किया और तथा इसका प्रत्येक प्रावधान लिखित रूप में उपलब्ध है।
- (घ) जहाँ तक भारतीय संविधान के परिसंघात्मक (Confederal), संघात्मक (Federal) या एकात्मक (Unitary) होने का प्रश्न है, इस पर काफी विवाद है। इस पर हम आगे विस्तार से बात करेंगे।

भारतीय संविधान परिसंघात्मक है, संघात्मक या एकात्मक?

(Is Indian Constitution Confederal, Federal or Unitary?)

केंद्र तथा प्रांतों के आपसी संबंधों के दृष्टिकोण से संविधान के तीन प्रकार माने जाते हैं- परिसंघात्मक (Confederal), संघात्मक (Federal) तथा एकात्मक (Unitary)।

परिसंघ (Confederation) का अर्थ होता है- वह राजनीतिक प्रणाली जिसमें केंद्र (Centre) का न तो महत्त्व होता है और न ही स्वतंत्र अस्तित्व। विभिन्न स्वतंत्र राज्य (States) या प्रांत (Provinces) मिलकर एक समझौता कर लेते हैं कि कुछ विषयों, जैसे विदेश नीति (Foreign policy), बाह्य सुरक्षा (External security) तथा संचार (Communication) आदि का प्रशासन वे लोग मिलकर करेंगे और इसके लिए केंद्रीय शासन की व्यवस्था बनाई जाती है। इन प्रांतों या निर्माणक इकाइयों (Constituent units) को यह स्वतंत्रता मिलती है कि यदि वे चाहें तो परिंघ (Confederation) से पन-अलग हो सकते हैं। अतः परिसंघात्मक संघ प्रणाली एक

तीसरे प्रकार की व्यवस्था एकात्मक व्यवस्था (Unitary System) कहलाती है। इस व्यवस्था में केंद्र को ही महत्व मिलता है, प्रांतों को नहीं। आमतौर पर छोटे देशों में, जहाँ केंद्रीय शासन पूरे देश की व्यवस्था का संचालन करने में समर्थ होता है, ऐसी व्यवस्था पाई जाती है। ऐसी व्यवस्था में राज्यों या प्रांतों को कोई विशेष अधिकार नहीं होता, न ही उनके पास निश्चित शक्तियाँ होती हैं; उन्हें सिर्फ केंद्रीय शासन द्वारा सौंपे गए कार्य ही करने होते हैं। इतना ही नहीं, केंद्र चाहे तो राज्यों की सीमाओं को बदल सकता है; उनके नाम बदल सकता है; नए राज्यों को निर्मित या पुराने राज्यों को नष्ट भी कर सकता है। ब्रिटेन इस प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। फ्रांस की राजनीतिक प्रणाली भी एकात्मक ढाँचे पर आधारित है।

अब, संविधानों के इन प्रकारों के आधार पर यह तय किया जा सकता है कि भारतीय संविधान इनमें से किस प्रकार का है? यह परिस्थायक (Confederal) तो एकदम नहीं है क्योंकि न तो यह कई प्रांतों के सशस्त्रों से बना है, और न ही उन्हें अपनी इच्छा से अलग होने की स्वतंत्रता (Freedom to secede) हासिल है। मूल विवाद यही है कि यह संघात्मक (Federal) है या एकात्मक (Unitary)?

संविधान निर्माताओं के अनुसार भारतीय संविधान संघात्मक (Federal) संविधान है। इस संबंध में संविधान प्रारूप-समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने कहा भी था कि "मेरे इस विचार से सभी सहमत हैं कि यद्यपि हमारे संविधान में ऐसे उपबंधों का समावेश है जो केन्द्र को ऐसी शक्ति प्रदान कर देते हैं जिससे प्रान्तों की स्वतन्त्रता समाप्त-सी हो जाती है, फिर भी वह 'संघात्मक संविधान' है।" किन्तु, कुछ परिचयी सतिभाष्यकारों को भारतीय संविधान को संघात्मक (Federal) मानने में आपत्ति है जिनमें से प्रमुख हैं— प्रोफेसर हियर और जस्टिस खन्ना।

भारतीय संविधान, संघात्मक (federal) है, यह निर्धारित करने के लिए भारत सरकार को चाहिए कि संघात्मक संविधान के लिए आवश्यक विशेषताएँ क्या होती हैं, ऐसी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- (i) **शक्तियों व कार्यों का विभाजन (Division of Powers and Responsibilities):**— केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच शक्तियों तथा कार्यों का विभाजन संघात्मक संविधान द्वारा एक परमावश्यक तत्व है क्योंकि इन्होंने विदेशों पर समझौते की प्रक्रिया में संघात्मक संविधान तैयार होता है।
- (ii) **संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of the constitution):**— संघात्मक संविधान को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है क्योंकि संविधान ही वह दस्तावेज होता है जिसमें प्रांतों तथा केंद्र के सभी समझौते उल्लिखित होते हैं। संविधान को सर्वोच्चता मिलती जाए तो यह समझौता कर्मजोरी हो जाता है।
- (iii) **लिखित संविधान (Written Constitution):**— संघात्मक संविधान आवश्यक रूप से लिखित संविधान होता है क्योंकि लिखित संविधान में ही शक्तियों तथा दायित्वों का बतुआण व्यवस्थित तरीके से हो पाता है और कम से कम सदेहों की संभावना बचती है।
- (iv) **संविधान की अनम्यता (Rigidity of Constitution):**— लिखित संविधान स्वभावतः अनम्य (Rigid) होता है। संघात्मक ढाँचे में देश की सर्वोच्च विधि का अनम्य होना आवश्यक भी है क्योंकि इसी से प्रांतों या राज्यों को अपनी शक्तियाँ अधुण्ण बने रहने की निश्चितता प्राप्त होती है।
- (v) **न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Freedom of Judiciary) :**— चूँकि संघीय संविधान में केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन एक लिखित संविधान द्वारा किया जाता है, इसलिए संविधान के उपबंधों का सही-सही निर्वचन करने के लिए ऐसी संस्था की आवश्यकता होती है जो स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष हो। संघीय संविधान में यह कार्य न्यायपालिका को सौंपा जाता है। अतः न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संघात्मक संविधानों की एक अनिवार्य व महत्त्वपूर्ण विशेषता माना जाता है। संघात्मक संविधान के उपर्युक्त वर्णित सभी आवश्यक तत्व भारतीय संविधान में विद्यमान हैं, जैसे—

(i) यह दोहरी शासन-पद्धति (Dual Government Structure) को स्थापना करता है- केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार।

(ii) भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है और संविधान देश की सर्वोच्च विधि (Highest law) भी है।

(iii) संविधान के वे प्रावधान (Provisions) जो संघीय व्यवस्था (Federal system) से सम्बन्ध रखते हैं : यहाँ मुख्य प्रावधानों

संघात्मक तत्व सहायक रूप में हैं; न कि यह एक संघात्मक संविधान है जिसमें एकात्मक तत्व सहायक कहे जा सकते हों।"

देखा जाए तो भारतीय संविधान में कुछ ऐसे तत्वों की उपस्थिति भी है जो इसे संघात्मक (Federal) नहीं बल्कि एकात्मक (Unitary) होने की ओर अप्रसर करते हैं। ऐसे प्रमुख तत्व हैं—

- (i) **राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of the Governor):**— भारतीय संविधान के अनुसार प्रान्तों के राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। राज्यपाल, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहता है। वह राज्य विधान-मंडल के प्रति नहीं, बल्कि राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होता है। व्यवहारतः यदि केंद्र सरकार किसी राज्य सरकार के खिलाफ होती है तो वह अपनी पसंद के राज्यपाल को वहाँ भेजकर उसके राजनीतिक हस्तक्षेप (Political Interference) के माध्यम से राज्य सरकार को परेशान कर सकती है। 1970-80 के दशकों में इस प्रावधान के दुरुपयोग के कई उदाहरण देखे भी गए थे।
- (ii) **राष्ट्रीय हित (National Interest) में राज्य-सूची (State List) के विषयों पर विधि बनाने की संसद की शक्ति:**— अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा यह घोषित कर दे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक तथा वांछनीय है कि संसद राज्य-सूची (State List) में उल्लिखित किसी विषय पर विधि बनाये, तो संसद को उस विषय पर विधि बनाने का अधिकार मिल जाता है। इसका अर्थ है कि राज्यसभा के चाहने मात्र से राज्यों की वैधानिक शक्ति समाप्त हो सकती है। यदि किसी दल का संसद के दोनों सदनों में प्रभावी बहुमत हो तो वह राज्यों की सत्ता को कुचलने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।
- (iii) **नये राज्यों के निर्माण एवं वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों के बदलने की संसद की शक्ति:**— अनुच्छेद 3 संसद को नये राज्यों का निर्माण (Creation) करने की तथा वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों के बदलने की शक्ति देता है। इसके लिए राज्यों की सहमति (Consent) जरूरी नहीं है। केंद्र का शायित्व सिर्फ उन्हें सूचित करने तथा उनके विधानमंडल की राय जानने तक सीमित है। प्रभावित होने वाले राज्यों को सीमित समय के भीतर अपनी राय बतानी होती है, हालाँकि उस राय का कोई बाध्यकारी (Binding) महत्व नहीं होता। इस प्रकार राज्यों का अस्तित्व ही केंद्र की इच्छा पर निर्भर है। इस व्यवस्था से निश्चय ही संघीय सिद्धान्त (Federal Principle) पर बहुत बड़ा आघात पहुँचता है।
- (iv) **आपात-उपबन्ध (Emergency Provisions):**— अनुच्छेद 352 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि युद्ध (War), बाह्य आक्रमण (External aggression) या सशस्त्र विद्रोह (Armed rebellion) से देश की सुरक्षा संकट में है तो वह आपात (Emergency) की उद्घोषणा (Declaration) कर सकता है। अनुच्छेद 356 के अधीन यदि राष्ट्रपति को किसी राज्य के राज्यपाल से रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा यह समाधान हो जाता है कि उस राज्य में सांविधानिक तन्त्र (Constitutional Machinery) विफल हो गया है तो वह उस राज्य में राष्ट्रपति शासन (President Rule) लागू कर सकता है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 360 के अनुसार जब भारत या उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व संकट में हो तो केंद्रीय शासन वित्तीय आपात (Financial Stability) की घोषणा कर सकता है। आपात घोषणा का परिणाम यह होता है कि देश का सम्पूर्ण प्रशासन केंद्र सरकार में निहित हो जाता है तथा संसद पूरे देश के लिए विधि बनाने हेतु सक्षम हो जाती है। इस अवस्था में राज्यों को केंद्र के निर्देशानुसार अपना प्रशासन चलाना होता है। इन उपबन्धों के परिणामस्वरूप हमारा संविधान एकात्मक (Unitary) रूप धारण कर लेता है। राज्यों को विशेष समस्या अनुच्छेद 356 से ही है क्योंकि केंद्रीय सरकारों ने कई बार दलीय हितों को साधने के लिए इसका दुरुपयोग किया है।
- (v) **अलग होने का अधिकार नहीं (No right to Secede)**— भारतीय संविधान में राज्यों को अलग होने का अधिकार नहीं दिया गया है, जो कि एकात्मक (Unitary) संविधान के अनुरूप है।
- (vi) **राज्यसभा में असमान प्रतिनिधित्व (Unequal Representation in Rajya Sabha)**— भारतीय संविधान विभिन्न राज्यों को राज्यसभा में समान प्रतिनिधित्व (Equal representation) प्रदान नहीं करता। सामान्यतः संघात्मक (Federal) प्रणाली में विभिन्न राज्यों की जनसंख्या चाहे जितनी भी अलग हो, राज्यसभा में उनका प्रतिनिधित्व बराबर होता है। उदाहरण के लिए, अमेरिकी सीनेट में प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि होते हैं। स्विट्जरलैंड में भी प्रत्येक कैंटन (Canton) के दो प्रतिनिधियों की व्यवस्था है। चूँकि भारत में सभी राज्यों का समान प्रतिनिधित्व (Equal representation) नहीं है, इसलिए इसे एकात्मक (Unitary) संविधान के नज़दीक माना जाता है। कुछ राज्यों, जैसे गोआ, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा का प्रतिनिधित्व एक-एक प्रतिनिधि राज्यसभा में है जबकि उत्तर प्रदेश के 31, महाराष्ट्र के 19 तथा तमिलनाडु व आंध्र प्रदेश के 18-18 सदस्य राज्यसभा में आते हैं। ऐसा कोई रक्षोपाय (Precautionary Measure) नहीं लिया गया है कि छोटे राज्यों के हितों पर बड़े राज्य हावी न हो जाएँ।
- (vii) **राज्यसभा में नामांकित सदस्यों की उपस्थिति (Presence of nominated members in Rajya Sabha)**— भारतीय राज्यसभा में राज्यों के 238 प्रतिनिधियों के अलावा 12 ऐसे सदस्य भी होते हैं जो केंद्र द्वारा नामांकित (Nominated) होते हैं। राज्यसभा में राज्यों के 238 प्रतिनिधियों के अलावा 12 ऐसे सदस्य भी होते हैं जो केंद्र द्वारा नामांकित (Nominated) होते हैं। राज्यसभा में राज्यों के 238 प्रतिनिधियों के अलावा 12 ऐसे सदस्य भी होते हैं जो केंद्र द्वारा नामांकित (Nominated) होते हैं।

- (viii) दोहरी नागरिकता नहीं (Absence of Dual Citizenship) – संघात्मक (Federal) संविधान प्रायः दोहरी नागरिकता (Dual Citizenship) का प्रावधान करते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका और कनाडा में ऐसी व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्थाओं में कोई भी नागरिक अपने राज्य का नागरिक तो होता ही है, साथ ही वह संघ का भी नागरिक होता है। भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है। हर नागरिक भारत का ही नागरिक होता है, किसी राज्य विशेष का नहीं।
- (ix) दोहरी न्यायपालिका नहीं (Absence of Dual Legal System) – संघात्मक व्यवस्थाओं में दोहरी न्यायपालिका (Dual Judiciary) भी होती है। उदाहरण के लिए, अमेरिका में ऐसी ही प्रणाली है। वहीं संघीय न्यायालय (Federal Courts) संघ (Federation) से संबंधित मामलों को देखते हैं, जबकि राज्य के न्यायालय (State Courts) राज्य से जुड़े विषयों को। भारत में दोहरी न्यायपालिका नहीं है। सभी राज्यों के उच्च न्यायालय (High Court) सीधे तौर पर सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के अधीन कार्य करते हैं। यह लक्षण भी एकात्मक प्रणाली (Unitary System) के नजदीक है।
- (x) लोक सेवाओं का स्पष्ट विभाजन नहीं (No clear division of Public Services) – संघात्मक व्यवस्थाओं में लोक सेवाएँ (Public Services) भी संघ और राज्यों में विभाजित होती हैं अर्थात् संघ के लोक सेवक (Public Servants) सिर्फ संघ के मामलों में कार्य करते हैं जबकि राज्यों के लोक सेवक (Public Servants) सिर्फ राज्यों के मामलों में। भारत में इन दोनों प्रकार की सेवाओं के साथ-साथ कुछ अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services) भी हैं जिनमें ऐसा अंतराल मिट जाता है। इसके अलावा, कुछ ऐसे प्रावधान (Provision) भी हैं जिनके तहत राज्य और केंद्र के लोक सेवक (Public Servants) प्रतिनियुक्ति (Deputation) पर एक-दूसरे के अधीन जा सकते हैं।
- (xi) अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र के पास (Residuary power with centre) – संघात्मक व्यवस्थाओं में प्रायः अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) राज्यों को प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका और कनाडा में ऐसी व्यवस्था है। इसका अर्थ है कि ऐसे मामलों में जहाँ केंद्र के दायित्व पूर्व निर्धारित नहीं हैं, वे केंद्र के पास आते हैं। भारत में अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) केंद्र के पास नहीं हैं। यह लक्षण भी एकात्मक प्रणाली (Unitary System) के नजदीक है। उदाहरण के लिए, कनाडा में भी अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) केंद्र के पास ही हैं। राज्यों के पास नहीं।
- (xii) राज्यों के लिए पृथक् संविधान नहीं (No Separate Constitutions for States) – अमेरिकन जैसे संघात्मक राज्यों (Federal states) में यह प्रावधान है कि संघ के संविधान के साथ-साथ प्रत्येक राज्य का अपना पृथक् संविधान होता है। किंतु, भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है। भारत का एक ही संविधान है जिसमें राज्यों से संबंधित विषय प्रस्ताव भी शामिल हैं। सिर्फ जम्मू-कश्मीर को विशिष्ट परिस्थितियों के कारण पृथक् संविधान की अनुमति दी गई है।
- (xiii) राज्यों की आर्थिक स्थिति केंद्र की तुलना में कमजोर (States with weak economic status in comparison to the centre) – संघात्मक संविधानों (Federal Constitutions) में राज्यों के आय के स्रोतों (Revenue sources) का विभाजन इस प्रकार होता है कि राज्य आर्थिक स्तर पर केंद्र पर निर्भर नहीं होते। किंतु, भारत में राज्यों की आर्थिक स्थिति कमजोर है। अधिकांश राजस्व (Revenue) केंद्र सरकार के पास है। योजना आयोग (Planning Commission) तथा अन्य संस्थाओं की अनुशंसाओं (Recommendations) के मुताबिक विभिन्न राज्यों को आर्थिक सहायता (Grants) इत्यादि प्रदान करती हैं। यों, इस प्रावधान के माध्यम से देश में संतुलित विकास (Balanced development) को साधना है किंतु इससे एकात्मकता (Unitariness) की प्रवृत्ति कुछ हावी तो हो ही जाती है।

दरअसल, यह समझ लेना जरूरी है कि संघवाद (federalism) की प्रकृति किसी देश के ऐतिहासिक विकास एवं तत्कालीन आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। प्रत्येक देश में एक ही पद्धति के संघवाद की आशा करना उचित नहीं है। किसी देश में इसका क्या स्वरूप होगा, यह उस देश की ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में संसार की संपन्न संघीय शासन-व्यवस्थाओं में केंद्रीकरण (Centralisation) की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड तथा कनाडा की संघीय (Federal) सरकारें प्रांतीय (Provincial) सरकारों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बन गयी हैं।

भारतीय संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य एक दृढ़ एवं शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना करने का रहा है जो किसी भी समय देश पर बाहरी आक्रमण (External aggression) को रोकने में समर्थ हो और आन्तरिक विघटनकारी तत्वों को दबाने में पूरी तरह सक्षम हो। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए केन्द्रीय सरकार को राज्य-सरकारों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गयी हैं। उच्चतम न्यायालय ने भारतीय संविधान को दोहरे स्वभाव (Dual Nature) से संपन्न कहा है। इसका आशय यह है कि भारत का संविधान सामान्यतः एक संघात्मक व्यवस्था (Federal system) को अपनाता है लेकिन राष्ट्र की एकात्मता व अखण्डता (Nation's unity and integrity) को सुरक्षित रखने हेतु यह एकात्मक (Unitary) भी हो जाता है।

अभ्यास हेतु चस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान का निर्माण संविधान सभा द्वारा किया गया है।
- (ii) इस संविधान के मौलिक संस्करण में 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियाँ थी।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार है—

- (1) न्यायिक सर्वोच्चता
- (2) संसदीय सर्वोच्चता
- ✓ (3) संवैधानिक सर्वोच्चता
- (4) एकात्मक शासन व्यवस्था

3. भारतीय संविधान की विशेषताएँ हैं—

- (i) कठोरता व लचीलेपन का समन्वय।
- (ii) संघीयता की सर्वोच्चता।
- (iii) संप्रत्यक्ष संविधान, किन्तु एकात्मकता की ओर भी झुकाव।
- (iv) संसदीय प्रभुता व न्यायिक सर्वोच्चता में समन्वय।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iv)
- ✓ (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान भी हैं जिन्हें संशोधित करने के लिए राज्य विधान मंडलों की स्वीकृति आवश्यक होती है।
- (ii) भारतीय संविधान में संशोधन करने की शुरुआत राज्य विधानमंडल भी कर सकती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के अंतर्गत ब्रिटेन की संसदीय सर्वोच्चता और अमेरिका की न्यायिक सर्वोच्चता की धारणाओं के बीच अद्भुत समन्वय स्थापित किया गया है।
- (ii) भारत द्वारा राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण करना इस बात की ओर इंगित करता है कि भारत आज भी प्रतीकात्मक रूप से ब्रिटेन का गुलाम है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- ✓ (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारत में एक राज्य के सभी लोगों को एक ही न्यायिक प्रभुता का अनुभव है।
- (ii) अमेरिका एवं ब्रिटेन में दोहरी प्रभुशक्ति का प्रावधान है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) नीति निर्देशक तत्वों को किसी भारतीय न्यायालय द्वारा बाध्यकारी रूप से लागू नहीं कराया जा सकता है।
- (ii) भारतीय संविधान के भाग-4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) परिसंघात्मक व्यवस्था में प्रांतों या इकाइयों को यह स्वतंत्रता हमेशा रहती है कि यदि वे चाहें तो परिसंघ के एक भाग में शामिल हो सकते हैं।

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) एकात्मक व्यवस्था में प्रांतों को विशेष अधिकार नहीं होता और न ही उनके पास निश्चित शक्तियाँ होती हैं।
- (ii) ब्रिटेन व फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था एकात्मक ढाँचे पर आधारित है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. निम्नांकित में ऐसे कौन-कौन से संवैधानिक प्रावधान हैं जो भारतीय शासन व्यवस्था के एकात्मक होने की ओर इंगित करते हैं?

- (i) राज्यपाल की नियुक्ति।
- (ii) राष्ट्रपति में राज्य-संघीयता के विधान की शक्ति।
- (iii) आपातकालीन उपबंध।
- (iv) अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

12. भारत की राजनीतिक व्यवस्था में सम्मिलित नहीं है।

- (i) दोहरी नागरिकता।
- (ii) दोहरी न्यायपालिका।
- (iii) अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास।
- (iv) सभी राज्यों के लिए पृथक् संविधान।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- ✓ (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान में अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) केंद्र के पास हैं।
- (ii) जम्मू-कश्मीर को विशिष्ट परिस्थितियों के कारण पृथक् संविधान की अनुमति दी गई है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारत की संविधान सभा न्याय एक संघात्मक व्यवस्था का स्वीकार करती है।
- (ii) राष्ट्र की एकता व अखंडता को सुरक्षित रखने हेतु यह एकात्मक भी हो जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- ✓ (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. भारत का संविधान है-

- (1) संघीय संघात्मक।
- (2) संघीय एकात्मक।
- ✓ (3) संघात्मक व एकात्मकता का समन्वय।
- (4) न तो संघात्मक और न ही एकात्मक।

भारतीय संविधान के विभिन्न भाग तथा विषय (Different Parts and Subjects of Indian Constitution)

भाग (Part)	विषय (Subject)	संबंधित अनुच्छेद (Related Articles)
I	संघ और उसका राज्य क्षेत्र (The Union and its Territory)	1-4
II	नागरिकता (Citizenship)	5-11
III	मूल अधिकार (Fundamental Rights)	12-35
IV	राज्य की नीति के निदेशक तत्व (Directive Principles of State Policy)	36-51
IVA/IV क	मूल कर्तव्य (Fundamental Duties)	51-A/ 51-क
V	संघ (The Union)	52-151
	अध्याय I - कार्यपालिका (The Executive)	52-78
	अध्याय II - संसद (Parliament)	79-122
	अध्याय III - संघ की कार्यपालिका (The Executive Power of the President)	123
	अध्याय IV - संघ की न्यायपालिका (The Union Judiciary)	124-147
	अध्याय V - भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India)	148-151
VI	राज्य (The States)	152-237
	अध्याय I - साधारण (General)	152
	अध्याय II - कार्यपालिका (The Executive)	153-167
	अध्याय III - राज्य का विधानमंडल (The State Legislature)	168-212
	अध्याय IV - राज्यपाल की विधायी शक्ति (Legislative Power of the Governor)	213
	अध्याय V - राज्यों के उच्च न्यायालय (The High Courts in the States)	214-232
	अध्याय VI - अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts)	233-237
VIII	संघ राज्य क्षेत्र (The Union Territories)	239-242
IX	पंचायतें (The Panchayats)	243-243 O (243 ण)
IXA/IX क	नगरपालिकाएँ (The Municipalities)	243 P-243 ZG (243 त-243 य छ)
IXB/IX ख	सहकारी समितियाँ (The Cooperative Societies)	243 ZH-243 ZT (243 य ज-243 य न)

XII	वित्त, संपत्ति, सविदाये और वाद (Finance, Property, Contracts and Suits) अध्याय I - वित्त (Finance) अध्याय II- ऋण लेना (Borrowing) अध्याय III- संपत्ति, सविदाये, अधिकार, दायित्व, बाध्यताएँ और वाद (Property, Contracts, Rights, Liabilities, Obligations and Suits) अध्याय IV- संपत्ति का अधिकार (Right to Property)	264 - 300 A 264 - 291 292 - 293 294 - 300 300 A (300 क)
XIII	भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य एवं संपागम (Trade, Commerce and Intercourse within the Territory of India)	301 - 307
XIV	संघ और राज्यों के अधीन सेवाएँ (Services under the Union and the States) अध्याय I - सेवाएँ (Services) अध्याय II- लोक सेवा आयोग (Public Service Commission)	308 - 323 308 - 314 315 - 323
XIVA/XIV क	अधिकरण (Tribunals)	323 A - 323 B (323 क - 323 ख)
XV	निर्वाचन (Elections)	324 - 329 A (329 क)
XVI	अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों एवं आंग्ल-भारतीयों के संबंध में विशेष उपबंध (Special Provisions Relating to Scheduled Castes, Scheduled Tribes, Backward Classes and Anglo-Indians)	330 - 342
XVII	राजभाषा (Official Language) अध्याय I - संघ की भाषा (Language of the Union) अध्याय II - प्रादेशिक भाषाएँ (Regional Languages) अध्याय III- सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि की भाषा (Language of Supreme Court, High Courts etc.) अध्याय IV- विशेष निर्देश (Special Directives)	343 - 351 343 - 344 345 - 347 348 - 349 350 - 351
XVIII	आपात उपबंध (Emergency Provisions)	352 - 360
XIX	प्रकीर्ण (Miscellaneous)	361 - 367
XX	संविधान का संशोधन (Amendment of the Constitution)	368
XXI	अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध (Temporary, Transitional and Special Provisions)	369 - 392
XXII	संक्षिप्त नाम, प्रारंभ, हिन्दी में प्राधिकृत पाठ और निरसन (Short Title Commencement, Authoritative Text in Hindi and Repeals)	393 - 395

ध्यान दें: भाग-VII (भाग-ख वाले राज्यों से संबंधित) को 7वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 द्वारा निरस्त (Repeal) कर दिया गया था। इसके विपरीत, भाग IV क (IVA) तथा भाग XIV क (XIVA) का समावेश 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा किया गया था। भाग IX क (IX A) को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया था जबकि भाग IX ख (IX B) को 97वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2012 द्वारा शामिल किया गया है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान में मूल अधिकार का वर्णन भाग-3 के अन्तर्गत अनुच्छेद 12-35 तक है।
(ii) संविधान के अनुच्छेद 1-4 संघ और उसके राज्य क्षेत्र के बारे में उपबंध करते हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) नागरिकता का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 5 से 11 तक वर्णित है।
(ii) मूल कर्तव्य का प्रावधान, जो भूतपूर्व संविधान संघ से लिया गया है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51-क में है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

3. अनुच्छेद-370 निम्न में से किस राज्य के अलग विचार उपबंध करता है?

- (1) मिजोरम (2) नागालैंड
(3) जम्मू-कश्मीर (4) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र

4. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-368 में कौन सा प्रावधान है?

- (1) वित्तीय आपात का।
(2) अखिल भारतीय सेवाओं का।
(3) राज्यपाल की नियुक्ति का।
(4) संविधान संशोधन का।

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संघ और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद-315 में है।
(ii) वित्त आयोग के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद-280 करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. संपत्ति का अधिकार, जिसे 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा मूल अधिकारों के वर्ग से हटा दिया गया था, वर्तमान में किस अनुच्छेद के अन्तर्गत 'व्यक्तिगत अधिकार' (Legal right) है?

- (1) अनुच्छेद 31 (2) अनुच्छेद 300(क)
(3) अनुच्छेद 323(क) (4) अनुच्छेद 51(क)

7. अन्तर्राज्यीय परिषद् (Inter-state Council) के संबंध में किस अनुच्छेद में उपबंध है?

- (1) अनुच्छेद 280 (2) अनुच्छेद 124
(3) अनुच्छेद 263 (4) अनुच्छेद 330

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) आपात उपबंध का प्रावधान संविधान में अनुच्छेद 352 से 360 तक है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

9. राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश (Ordinances) जारी करने की शक्ति का वर्णन किस अनुच्छेद में है?

- (1) अनुच्छेद 213 (2) अनुच्छेद 110
(3) अनुच्छेद 143 (4) अनुच्छेद 123

10. वार्षिक वित्तीय विवरण, जिसे बजट के नाम से भी पुकारा जाता है, किस अनुच्छेद से संबंधित है?

- (1) अनुच्छेद 112 (2) अनुच्छेद 212
(3) अनुच्छेद 312 (4) अनुच्छेद 412

11. सूची I का सूची II से मिलान कीजिए।

सूची I	सूची II
(अपवर्ग)	(संबंधित अनुच्छेद)
A. आचार्य	(i) 239-242
B. सचिव राज्य धन	(ii) 52-151
C. नीति निर्देशक तत्व	(iii) 343-351
D. संघ (The Union)	(iv) 36-51

कूट -

	A	B	C	D
1.	(i)	(iii)	(ii)	(iv)
2.	(i)	(ii)	(iv)	(iii)
3.	(ii)	(iv)	(i)	(i)
4.	(iii)	(i)	(iv)	(ii)

संविधान आयोग (Constitution Commission) का प्रावधान संविधान के किस अनुच्छेद में है?

- (1) अनुच्छेद 124 (2) अनुच्छेद 335
(3) अनुच्छेद 324 (4) अनुच्छेद 320

13. अन्तर्राज्यीय नदियों या नदी घाटियों के जल संबंधी विवादों का न्याय-निर्णयन किस अनुच्छेद से संबंधित है?

- (1) अनुच्छेद 265 (2) अनुच्छेद 262
(3) अनुच्छेद 324 (4) अनुच्छेद 263

14. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में अखिल भारतीय सेवाएँ (All-India Services) वर्णित हैं?

- (1) अनुच्छेद 312 (2) अनुच्छेद 320
(3) अनुच्छेद 315 (4) अनुच्छेद 311

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) अनुच्छेद 79 से 122 में संसद के बारे में प्रावधान है।
(ii) अनुच्छेद 52-78 में संघ की कार्यपालिका शक्ति का उपबंध है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेद (Important articles of Indian Constitution)

अनुच्छेद (Articles)	विषय (Subjects)
1	यूनियन का नाम और राज्यक्षेत्र (Territory)।
3	नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन (Formation of new States and alteration of areas, boundaries or names of existing States)।
13	मूल अधिकारों से असंगत (Inconsistent) या उनका अल्पीकरण (Derogation) करने वाली विधियाँ (Laws)।
14	विधि के समक्ष समता (Equality before law)।
15	धर्म, मूलवंश (Race), जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का प्रतिषेध।
16	लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (Equality of opportunity in matters of public employment)।
17	अस्पृश्यता (Untouchability) का अंत।
19	वाक् स्वातंत्र्य (Freedom of Speech) और अभिव्यक्ति के अधिकारों का संरक्षण।
21	प्राण और वैयक्तिक स्वतंत्रता का संरक्षण (Right to life and personal liberty)।
21क (21A)	शिक्षा का अधिकार (Right to Education)।
25	अंतःकरण (Conscience) की और धर्म (Religion) की अवधारणा से धर्मनिरपेक्षता और प्रचार करने (Propagation) की स्वतंत्रता।
30	शैक्षणिक संस्थानों (Educational Institutions) की स्थापना और प्रशासन करने वाले अल्पसंख्यक-वर्गों (Minorities) का अधिकार।
31क (31A)	जमींदारी उन्मूलन के पक्ष में बनाए गए कानूनों को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) से सुरक्षा।
31ख (31B)	नौवीं अनुसूची का निर्माण जिसमें शामिल अधिनियम इत्यादि न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) से मुक्त होंगे।
31ग (31C)	कुछ निर्देशक तत्वों (Directive Principles) को लागू करने वाली विधियों को कुछ मूल अधिकारों पर प्राथमिकता।
32	भौतिक अधिकारों को प्रवृत्ति (Enforcement) करने के लिए रिट-सहित उपचार (Remedies)।
38	राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा।
39 ख (39 B)	समाज के भौतिक संसाधनों का उचित स्वामित्व और वितरण।
39 ग (39 C)	अर्थव्यवस्था में धन तथा उत्पादन के साधनों के अहितकारी केंद्रीकरण का निषेध।
40	ग्राम पंचायतों के संगठन (Organisation of village panchayats) हेतु निर्देश।
43 क (43 A)	उद्योगों के प्रबंध में कर्मचारियों (Workers) के भाग लेने के लिए उपयुक्त विधान बनाना।
43 ख (43 B)	सहकारी समितियों (Cooperative Societies) के स्वैच्छिक गठन को प्रोत्साहित करना।
44	नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता (Uniform civil code for the citizens) के लिए निर्देश।
45	6 वर्ष से कम आयु वाले बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए निर्देश।
46	अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि के लिए निर्देश।
50	कार्यपालिका से न्यायपालिका के पथक्करण (Separation of judiciary from executive) के लिए निर्देश।

72	क्षमा (Pardon) आदि की और कुछ मामलों में, दंडादेशों (Sentences) के निलंबन (Suspension), परिहार (Remission) या लघुकरण (Commutation) की राष्ट्रपति की शक्ति।
74	राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers to aid and advise the President)।
75	राष्ट्रपति प्रधानमंत्री को नियुक्त करेगा तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर शेष मंत्रियों को नियुक्त करेगा। मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सप्ताहिक रूप से उत्तरदायी होगी।
78	राष्ट्रपति को जानकारी देने आदि के संबंध में प्रधानमंत्री के कर्तव्य।
110	धन विधेयक की परिभाषा (Definition of Money Bill)।
112	वार्षिक वित्तीय विवरण (Annual Financial Statement)।
123	संसद के विश्रुतिकाल (Recess) में अध्यादेश (Ordinances) प्रख्यापित (Promulgate) करने की राष्ट्रपति की शक्ति।
143	उच्चतम न्यायालय से परामर्श (Consult) करने की राष्ट्रपति की शक्ति।
155	राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of Governor)।
161	क्षमा आदि की और कुछ मामलों में, दंडादेशों के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राज्यपाल की शक्ति (Power of Governor to grant pardons, etc. and to commute sentences in certain cases)।
163	राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers to aid and advice Governor)।
167	राज्यपाल को जानकारी देने आदि के संबंध में मुख्यमंत्री (Chief Minister) के कर्तव्य।
169	राज्यों में विधानपरिषदों का उत्सादन या सृजन (Abolition or creation of Legislative Councils in States)।
200	विधेयकों पर अनुमति (Assent to Bills)।
213	विधानमंडल के विश्रुतिकाल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की राज्यपाल की शक्ति (Power of Governor to promulgate ordinances during recess of Legislature)।
226	कुछ रिट निकालने की उच्च न्यायालय (High Court) की शक्ति।
239कक (239AA)	दिल्ली के संबंध में विशेष उपबंध।
249	राज्य सूची (State List) के विषय के संबंध में राष्ट्रीय हित (National Interest) में कानून बनाने की संसद की शक्ति।
262	अंतर्राज्यीय नदियों या नदी-घाटियों के जल संबंधी विवादों का न्याय-निर्णयन (Adjudication of disputes relating to waters of the inter-state rivers or river valleys)।
263	अंतर्राज्यीय परिषद् के संबंध में उपबंध (Provisions with respect to an inter-state Council)।
265	विधि के प्राधिकार (Authority of Law) के बिना करों का अधिरोपण (Imposition of Taxes) न किया जाना।
275	कुछ राज्यों को संघ से अनुदान (Grants from the Union to certain States)।
280	वित्त आयोग (Finance Commission)।
300	वाद और कार्यवाहियाँ (Suits and proceedings)।
300क (300A)	संपत्ति का अधिकार (Right to Property)।

323क (323A)	प्रशासनिक अधिकरण (Administrative Tribunals)
324	निर्वाचनों के अधीक्षण (Superintendence), निर्देशन (Direction) और नियंत्रण (Control) का निर्वाचन आयोग (Election Commission) में निहित होना।
330	लोकसभा में अनुसूचित जातियों (Scheduled Castes) और अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes) के लिए स्थानों का आरक्षण (Reservation)।
335	सेवाओं और पदों के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के दावे।
352	आपात (Emergency) की घोषणा [राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency)]।
356	राज्यों में संवैधानिक तंत्र (Constitutional Machinery) के विफल हो जाने की दशा में उपबंध।
360	वित्तीय आपात (Financial Emergency) के बारे में उपबंध।
365	संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव।
368	संविधान का संशोधन (Amendment of Constitution) करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया।
370	जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबंध (Temporary Provisions)।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

- निम्नलिखित कथनों में कौन सा सत्य है?
 - अनुच्छेद 331 लोकसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण का प्रावधान करता है।
 - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में 'विधि के समक्ष समता' का प्रावधान वर्णित है।
 - भारतीय संविधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि विधि के अधिकार (Authority of Law) के बिना कृषि का अधिरोपण नहीं किया जाये।
 - अनुच्छेद 3 के संबंध में राज्यों के निर्माण से वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन हो सकता है।
- सूची I का सूची II से मिलान कीजिए—

सूची I	सूची II
(प्रावधान)	(संबंधित अनुच्छेद)
A. अखिल भारतीय सेवाएँ	(i) 365
B. संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव	(ii) 315
C. संघ और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग	(iii) 169
D. राज्यों में विधान परिषद का उत्सादन या सृजन	(iv) 312
- निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है?
 - भारत में अनुच्छेद 263 के अंतर्गत वित्त आयोग का गठन किया गया है।
 - अनुच्छेद 155 में राज्यपाल की निर्वाचन प्रक्रिया का उल्लेख है।
 - अस्पृश्यता के अंत का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 18 में है।
 - भारतीय संविधान में सेवाओं और पदों के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के दावे संबंधी प्रावधान है।
- संविधान को संशोधित और संशोध देने के लिए मंत्रिपरिषद का अधिकार भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में है?
 - (1) अनुच्छेद 54
 - (2) अनुच्छेद 74
 - (3) अनुच्छेद 78
 - (4) अनुच्छेद 52
- निम्नलिखित कथनों में सत्य है/हैं—
 - अनुच्छेद 112 में धन विधेयक की परिभाषा दी गयी है।
 - वार्षिक वित्तीय विवरण का उल्लेख अनुच्छेद 110 में है।
 - अनुच्छेद 32 उच्च न्यायालय को रिट जारी करने का अधिकार देता है।

कूट—

 - (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) केवल (iii)
 - (4) उपरोक्त में से कोई नहीं
- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
 - ग्राम पंचायतों के संगठन हेतु निर्देश अनुच्छेद 44 में है।

7. निम्न में से कौन सा विकल्प अनुच्छेद 213 से संबंधित है?

- (1) राज्यपाल की आस्थादेश संबंधी शक्ति।
- (2) उच्च न्यायालय के गठन से संबंधित प्रावधान।
- (3) उच्च न्यायालय की रिट की शक्ति।
- (4) राज्यपाल की वीटो शक्ति।

8. निम्नलिखित में से किस अनुच्छेद में शिक्षा का अधिकार (Right to Education) अन्तर्निहित है?

- (1) अनुच्छेद 19
- (2) अनुच्छेद 21
- (3) अनुच्छेद 22
- (4) अनुच्छेद 51(क)

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) कार्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक्करण के लिए निर्देश संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 50 में है।
- (ii) अनुच्छेद 249 के अनुसार राष्ट्रीय हित में राज्य सूची के विषय पर संसद कानून बना सकती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. निम्नलिखित में से किस अनुच्छेद के तहत जम्मू-कश्मीर राज्य को विशिष्ट स्थान प्राप्त है?

- (1) अनुच्छेद 370
- (2) अनुच्छेद 371
- (3) अनुच्छेद 372
- (4) अनुच्छेद 375

11. नीचे दिए गए कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (i) अनुच्छेद 352 में राष्ट्रीय आपातकाल का प्रावधान है।
- (ii) वित्तीय आपात के बारे में भारतीय संविधान में कोई उपबंध नहीं है।
- (iii) राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने का उदाहरण उपबंध से संबंधित अनुच्छेद 356 है।

कूट—

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii)
- (4) (i) और (iii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 38 में यह प्रावधान है कि राज्य लोक-कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा।
- (ii) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि के लिए निर्देश संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 50 में है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. निम्नलिखित में से किस अनुच्छेद में राष्ट्रपति को जानकारी देने संबंधी प्रधानमंत्री के कर्तव्य का उल्लेख है?

- (1) अनुच्छेद 74
- (2) अनुच्छेद 72
- (3) अनुच्छेद 75
- (4) अनुच्छेद 76

14. निम्नलिखित में से कौन-सा अनुच्छेद संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान करता है?

- (1) अनुच्छेद 361
- (2) अनुच्छेद 365
- (3) अनुच्छेद 362
- (4) अनुच्छेद 368

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 300(क) में संपत्ति का अधिकार एक विधिक (Legal Right) अधिकार है।
- (ii) इससे पूर्व यह अनुच्छेद 31 के तहत मूल अधिकार (Fundamental Right) की श्रेणी में शामिल था।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

संविधान की अनुसूचियाँ (Schedules of the Constitution)

क्रम (Sequence)	विषय (Subject)	संबंधित अनुच्छेद (Related Articles)
प्रथम अनुसूची (First Schedule)	1. राज्यों के नाम एवं उनके राज्यक्षेत्र (Territories) 2. संघ राज्य क्षेत्रों (Union Territories) के नाम और उनकी सीमाएँ	अनुच्छेद 1 तथा 4
दूसरी अनुसूची (Second Schedule)	निम्नलिखित पदाधिकारियों के वेतन, भत्तों तथा पेंशन आदि से जुड़े प्रावधान (i) भारत का राष्ट्रपति (ii) राज्यों के राज्यपाल (iii) लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष (iv) राज्यसभा के सभापति और उप-सभापति (v) राज्य विधानसभाओं के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष (vi) राज्य विधान-परिषदों के सभापति और उप-सभापति (vii) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश (viii) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (ix) भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक	अनुच्छेद 59(3), 65(3), 75(6), 97, 125, 148(3), 158(3), 164(5), 186 एवं 221
तीसरी अनुसूची (Third Schedule)	इसमें विभिन्न राज्यों के पदाधिकारियों तथा प्रत्यक्ष निर्वाचित प्रतिनिधियों (Affirmations) के शपथपत्र शामिल हैं। (i) संघ के मंत्री (ii) संसद के चुनावों के प्रत्याशी (iii) संसद के सदस्य (iv) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश (v) भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (vi) राज्यों के मंत्री (vii) राज्य विधानमंडल के चुनावों के प्रत्याशी (viii) राज्य विधानमंडल के सदस्य (ix) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश	अनुच्छेद 75(4), 84, 99, 124(6), 148(2), 164(3), 173, 188 एवं 219
चौथी अनुसूची (Fourth Schedule)	राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों (Union Territories) के लिए राज्यसभा में स्थानों का आवंटन।	अनुच्छेद 4(1) एवं 80(2)
पाँचवी अनुसूची (Fifth Schedule)	अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण से जुड़े प्रावधान।	अनुच्छेद 244(1)
छठी अनुसूची (Sixth Schedule)	असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध।	अनुच्छेद 244(2) एवं 275(1)
सातवी अनुसूची (Seventh Schedule) Comments Imp	संघ सूची (Union List), राज्य सूची (State List) तथा समवर्ती सूची (Concurrent List) में शामिल विषय। मूल संविधान में इन सूचियों में क्रमशः 97, 66 तथा 47 विषय थे; पर अब 100 (संघ सूची), 61 (राज्य सूची) तथा 52 (समवर्ती सूची) विषय हैं।	अनुच्छेद 246
आठवी अनुसूची (Eighth Schedule) Comments Imp	संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाओं की सूची। वर्तमान में ये 22 भाषाएँ हैं जो मूल संविधान में 14 थीं। ये भाषाएँ हैं- असमिया, बांग्ला, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु तथा उर्दू।	अनुच्छेद 344(1) एवं 351

M-IMP > Comments or Question

नौवीं अनुसूची (Ninth Schedule)	इस अनुसूची को पहले संविधान संशोधन अधिनियम (1951) द्वारा जोड़ा गया था। इसका उद्देश्य यह था कि भूमि सुधारों तथा जमींदारी उन्मूलन के लिए बनाए जाने वाले अधिनियमों, नियमों, विनियमों आदि को न्यायालय के पुनर्विलोकन की शक्ति से बाहर किया जा सके। इसमें वर्तमान में 282 प्रविष्टियाँ हैं जो कई संविधान संशोधनों द्वारा शामिल की गई हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि 24 अप्रैल, 1973 (केशवानंद भारती मामले के निर्णय की तिथि) के बाद नौवीं अनुसूची में शामिल किए जाने वाले अधिनियमों आदि की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।	अनुच्छेद 31(ख)
दसवीं अनुसूची (Tenth Schedule) Comments Imp	इसमें दल-बदल (Defection) के आधार पर संसद और विधानसभा के सदस्यों की निरुहता (Disqualification) से संबंधित उपबंध हैं। इस अनुसूची को 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा जोड़ा गया था। 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा इसमें संशोधन भी किया गया है। इसे 'दल-बदल विरोधी कानून' (Anti-defection Law) भी कहा जाता है।	अनुच्छेद 102(2) एवं 191(2)
ग्यारहवीं अनुसूची (Eleventh Schedule)	इसमें पंचायतों की शक्तियाँ व जिम्मेदारियाँ बताई गई हैं। इसमें 29 विषय हैं। इस अनुसूची को 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया था।	अनुच्छेद 243(छ) [Art. 243 (G)]
बारहवीं अनुसूची (Twelfth Schedule)	इसमें नगरपालिकाओं (Municipalities) की शक्तियाँ व जिम्मेदारियाँ बताई गई हैं। इसमें 18 विषय हैं। इस अनुसूची को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया था।	अनुच्छेद 243(ब) [Art. 243 (W)]

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

- निम्नलिखित में से किस अनुसूची को 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया?
 - आठवीं अनुसूची
 - दसवीं अनुसूची
 - ग्यारहवीं अनुसूची
 - बारहवीं अनुसूची
- सूची I का सूची II से मिलान कीजिए-

सूची I (प्रावधान)	सूची II (संबंधित अनुच्छेद)
A. राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के लिए राज्यसभा में स्थानों का आबंटन	(i) सप्तवीं
B. संघ सूची, राज्य सूची तथा सप्तावर्ती सूची	(ii) आठवीं
C. दल-बदल संबंधी प्रावधान	(iii) दसवीं
D. संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाओं की सूची	(iv) चौथी

 कूट-
 A B C D
 1. (i) (ii) (iii) (iv)
 2. (ii) (iii) (i) (iv)
 3. (iv) (i) (iii) (ii)
- निम्नलिखित कथनों में सत्य है/हैं-
 - मूल संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्यता प्राप्त भाषाओं की संख्या 16 थी।
 - वर्तमान में इन भाषाओं की संख्या 22 है।
 - केवल (i)
 - केवल (ii)
 - (i) और (ii) दोनों
 - न तो (i) और न ही (ii)
- असत्य कथन की पहचान कीजिए-
 - संविधान की तीसरी अनुसूची में विभिन्न पदाधिकारियों तथा प्रत्याशियों द्वारा ली जाने वाली शपथों (oaths) या प्रतिज्ञाओं (Affirmations) के प्रारूप दिए गए हैं।
 - छठी अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा और जम्मू-कश्मीर राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध हैं।
 - 92वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली को आठवीं अनुसूची में जोड़ा गया।
 - दल-बदल विरोधी कानून का संबंध दसवीं अनुसूची से है।
- निम्नलिखित में कौन-कौन से कथन नौवीं अनुसूची के संबंध में सत्य हैं?
 - नौवीं अनुसूची को पहले संविधान संशोधन अधिनियम (1951) द्वारा जोड़ा गया था।
 - इसका उद्देश्य यह था कि भूमि सुधारों तथा जमींदारी उन्मूलन के लिए बनाए जाने वाले अधिनियमों, नियमों, विनियमों आदि को न्यायालय के पुनर्विलोकन की शक्ति से बाहर किया जा सके।
 - इसमें वर्तमान में 282 प्रविष्टियाँ हैं जो कई संविधान संशोधनों द्वारा शामिल की गई हैं।
 - सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि 24 अप्रैल, 1973 (केशवानंद भारती मामले के निर्णय की तिथि) के बाद नौवीं अनुसूची में शामिल किए जाने वाले अधिनियमों आदि की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

- (ii) अनुच्छेद 31(ख) का संबंध इसी अनुसूची से है।
(iii) वर्तमान स्थिति यह है कि इस अनुसूची का न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) नहीं किया जा सकता।

कूट-

- (1) केवल (ii)
(2) केवल (iii)
(3) (i) और (ii)
(4) उपरोक्त सभी
6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
(i) भारत के मूल संविधान में कुल दस अनुसूचियों का समावेश था।
(ii) नौवीं अनुसूची मूल संविधान का ही अधिन हिस्सा था।
(iii) ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूची को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया।
उपरोक्त कथनों में सत्य हैं—

- (1) (i) और (ii)
(2) (ii) और (iii)
(3) (i), (ii) और (iii)
(4) उपरोक्त में कोई नहीं
7. ग्यारहवीं अनुसूची के संबंध में सत्य है—
(i) इसमें पंचायतों की शक्तियाँ व जिम्मेदारियाँ बताई गई हैं।
(ii) वर्तमान में इसमें 29 विषय हैं।
(iii) इसे 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया।

कूट-

- (1) (i) और (ii)
(2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii)
(4) (i), (ii) और (iii)
8. निम्नलिखित में से किस अनुसूची का संबंध 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 से है?
(1) ग्यारहवीं (2) बारहवीं
(3) दसवीं (4) नौवीं
9. बारहवीं अनुसूची के संबंध में सत्य कथन है/हैं—
(i) इसमें नगरपालिकाओं की शक्तियाँ व जिम्मेदारियाँ बताई गई हैं।
(ii) वर्तमान में इसमें 18 विषय हैं।
(iii) इसे 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया था।

- (1) केवल (i)
(2) केवल (iii)
(3) (i) और (ii)
(4) (i), (ii) और (iii)
10. सर्वोच्च न्यायालय ने किस मामले/वाद में यह अधिनिर्धारित किया कि नौवीं अनुसूची का न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है?
(1) गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य
(2) मिनर्वा मिल्स वाद
(3) केशवानंद भारती बनाम कर्नाट राज्य
(4) बुरुबारी प्रेमला

1971

* लागू राव भागले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया था
24 अप्रैल 1973 के बाद से ही अनुसूची में सम्मिलित
अधिनियमों का पुनर्विलोकन किया जा सकता है।
किंतु आगे पहले जो अधिनियम आदि इतने आ
हैं उनका पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता

के नौवीं अनुसूची का जो भी अधिनियम जोड़ा गया है
उसका पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता

संविधान की प्रस्तावना *उद्देशिका* (Preamble of the constitution)

प्रस्तावना या उद्देशिका (Preamble) किसी संविधान के दर्शन को सार-रूप में प्रस्तुत करने वाली संक्षिप्त अभिव्यक्ति होती है। सबसे पहले अमेरिकी संविधान निर्माताओं ने अपने संविधान में प्रस्तावना को सम्मिलित किया था। इसके बाद, जैसे-जैसे विभिन्न देशों ने अपने संविधान बनाए, उनमें से कई देशों ने प्रस्तावना को महत्वपूर्ण मानकर इसे संविधान में शामिल किया। भारतीय संविधान सभा ने भी प्रस्तावना को शामिल करने पर सहमति जताई। वस्तुतः यह प्रस्तावना संविधान सभा द्वारा 22 जनवरी, 1947 को स्वीकार किये गये उसी उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) का विकसित रूप है जिसे पण्डित नेहरू ने प्रस्तुत किया था और जिसमें निहित आदर्शों पर मूल स्वीकृति के आधार पर ही संविधान के विभिन्न उपबंध (Provisions) बनाए गए थे। उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) और प्रस्तावना (Preamble) मिलकर भारतीय संविधान के दर्शन को पूर्ण रूप प्रदान करते हैं।

प्रस्तावना के सन्दर्भ में कई बिंदुओं पर विचार किया जाना अपेक्षित है, जैसे—

- (क) प्रस्तावना की क्या उपयोगिता है?
- (ख) प्रस्तावना संविधान का अंग है या नहीं?
- (ग) क्या प्रस्तावना में अनुच्छेद 368 के उपबंध (Provisions) के तहत संशोधन (Amendment) किया जा सकता है?
- (घ) यदि भारतीय विधायिका (Legislature) या कार्यपालिका (Executive) को प्रस्तावना में उल्लिखित विचारों के अनुरूप न हों तो क्या प्रस्तावना में उल्लिखित विचारों को न्यायालय द्वारा प्रवर्तित (Enforce) किया जा सकता है?

प्रस्तावना की विषय-वस्तु (Content of the Preamble)

1976 में 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से प्रस्तावना में तीन शब्द— समाजवादी (Socialist), पथ-निरपेक्ष (Secular) तथा अखण्डता (Integrity) जोड़े गये थे। इन शब्दों के जुड़ने के बाद प्रस्तावना का वर्तमान रूप इस प्रकार है—

प्रस्तावना (उद्देशिका)

हम, भारत के लोग भारत के एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पथनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की
स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता
और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के
लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज
तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल
सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्वारा
इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और

Preamble

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having
solemnly resolved to constitute India into a
SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR
DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all
its citizens :

JUSTICE: social, economic and political;
LIBERTY of thought, expression, belief, faith
and worship;

EQUALITY of status and of opportunity;
and to promote among them all

FRATERNITY assuring the dignity of the
individual and the unity and integrity of the Nation;

IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this
twenty-sixth day of November, 1949, do
HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO
OURSELVES THIS CONSTITUTION

प्रस्तावना की उपयोगिता (Utility of the Preamble)

प्रस्तावना सिर्फ दिखावे की वस्तु नहीं है, न ही यह संविधान सभा द्वारा स्वीकृत राजनीतिक आदर्शों (Political Ideals) की औपचारिक उद्घोषणा भर है। वस्तुतः इससे कई महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध होते हैं जो निम्नलिखित हैं—

प्रस्तावना की उपयोगिता (Utility of Preamble)

संविधान के स्रोत का परिचय भारतीय राजव्यवस्था की प्रकृति का परिचय संविधान के उद्देश्यों का परिचय संविधान के अर्थ-निर्धारण के लिए उपयोगी रूप में उपयोगी ऐतिहासिक स्रोत के रूप में उपयोगी

1. संविधान के स्रोत का परिचय (Introduction of the source of constitution):

प्रस्तावना बताती है कि संविधान का स्रोत 'भारत के लोग' अर्थात् भारत की जनता है। प्रस्तावना की शुरुआत में ही प्रयुक्त वाक्यांश (Phrase) 'हम, भारत के लोग' (We, the people of India) इस प्रयोजन की पूर्ति करता है। यह वाक्यांश भारतीय राजव्यवस्था के लोकतांत्रिक (Democratic) पक्ष को भी प्रस्तुत करता है।

ध्यातव्य है कि इस बात पर कुछ विवाद है कि क्या संविधान सभा का स्रोत भारत की जनता ही है? कुछ लोग इसके विरोध में कहते हैं कि चूंकि संविधान सभा के सदस्यों का चयन जनता द्वारा वयस्क मतदाताधिकार (Adult Franchise) के माध्यम से नहीं हुआ था, इसलिए 'हम, भारत के लोग' वाक्यांश (Phrase) अपने अर्थ को व्यक्त करने में सक्षम नहीं हो सकता है। संविधान सभा तो ब्रिटिश संसद के एक अधिनियम (Act) द्वारा निर्मित हुई थी, इसलिए इसे लोक समर्थन (Popular support) हासिल नहीं था।

वस्तुतः यह मतभेद व्यावहारिक रूप से निरर्थक है। पहली बात तो यह है कि प्रस्तावना को संविधान निर्माण की प्रक्रिया के अंत में स्वीकृत किया गया था और उस समय तक भारत अंग्रेजों से स्वतंत्र हो जाने के कारण ब्रिटिश संसद की किसी भी अधिकार या नियंत्रण से मुक्त हो चुका था। दूसरे, यह संविधान सभा का चयन वयस्क मतदाताधिकार (Adult Franchise) से न हुआ हो, वास्तविकता यह है कि स्वाधीनता आन्दोलन के सभी महत्वपूर्ण नेता इसमें शामिल थे; और यदि चुनाव होता भी तो जनता प्रायः उन्हें ही चुनती। तीसरे, संविधान के निर्माण के बाद व्यावहारिक तौर पर यह स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय राज्य में संप्रभुता (Sovereignty) की वास्तविक हकदार जनता ही है। अतः वर्तमान में इस वाक्यांश (Phrase) को गलत नहीं उद्धारा जा सकता।

2. भारतीय राजव्यवस्था की प्रकृति का परिचय (Introducing of Indian Polity nature):

प्रस्तावना बताती है कि भारतीय राजव्यवस्था की प्रकृति क्या है? इसे स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना के निम्नलिखित पाँच शब्द विशेष महत्व के हैं—

- (i) **संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न (Sovereign):** इसका अर्थ है कि अर्थात् भारत अपने आंतरिक और विदेश संबंधों मामलों में कोई भी स्वतंत्र निर्णय करने की ताकत रखता है, वह किसी भी अन्य विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है।

इस संबंध में यह जानना महत्वपूर्ण है कि भारत के राष्ट्रकुल (Commonwealth) का सदस्य बनने पर यह प्रश्न उठाया गया था कि भारत संप्रभु (Sovereign) देश है या नहीं? ध्यातव्य है कि जिस तरह आयरलैंड ने 'रिपब्लिक ऑफ आयरलैंड एक्ट, 1948' बनाकर ब्रिटिश राष्ट्रकुल (British Commonwealth) से अपने सारे संबंध समाप्त कर लिए थे, वैसा भारत ने नहीं किया। पाकिस्तान 1956 तक ब्रिटिश डोमिनियन बना रहा, किन्तु भारत ने संविधान को लागू करने के साथ ही (26 जनवरी, 1950 को) खुद को गणराज्य (Republic) घोषित किया जिसका अर्थ था कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा नहीं रखता है और भारत का राज्याध्यक्ष (Head of state) अर्थात् राष्ट्रपति भी जनता में से ही निर्वाचित होगा। भारत के प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने लंदन में अप्रैल, 1949 में प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में घोषणा की थी कि भारत संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य (Sovereign Republic) बन जाने के बावजूद राष्ट्रकुल (Commonwealth) का सदस्य बना रहेगा। भारत राष्ट्रकुल को 'स्वाधीन राष्ट्रों के एक स्वतंत्र संगठन' (Independent Organisation of independent nations) के रूप में देखता है, न कि ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के रूप में। भारत ब्रिटिश साम्राज्य को राष्ट्रकुल के अध्यक्ष के रूप में सिर्फ प्रतीकात्मक (Symbolic) तौर पर स्वीकार करता है, उसकी यह शक्ति भारत गणराज्य (Republic) के आंतरिक मामलों पर लागू नहीं होगी।

(ii) **समाजवादी (Socialist):** इसका अर्थ है कि भारत की राजव्यवस्था की संरचना समाजवादी विचारधारा के अनुरूप बनाई गई है। ध्यातव्य है कि समाजवाद शब्द संविधान की मूल प्रस्तावना में नहीं था, वह 42वें संविधान संशोधन द्वारा 1976 ई. में प्रस्तावना में शामिल किया गया है। भारतीय समाजवाद यूरोप के समाजवाद से कुछ अलग तथा अपने खास ढंग का है। यह भूतपूर्व सोवियत संघ (Erstwhile USSR) या अन्य साम्यवादी (Communist) राज्यों की तरह निजी संपत्ति (Private property) व निजी उद्यमशीलता (Private Entrepreneurship) का उन्मूलन नहीं करता बल्कि आर्थिक न्याय (Economic Justice) की धारणा को लोकतंत्र (Democracy) के साथ मिलाकर चलता है। इस दृष्टि से इसे लोकतांत्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) कहा जा सकता है जिसमें अर्थव्यवस्था के स्तर पर निजी उद्यमशीलता (Private Entrepreneurship) और सरकारी नियंत्रण जैसे तत्व साथ-साथ अस्तित्व में होते हैं। इसके अलावा, यह कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित हिंसक संघर्ष (Violent struggle) के सिद्धांत को अस्वीकार करता है और अहिंसक (Non-violent) नीतियों के माध्यम से ही समाजवाद (Socialism) की उपलब्धि करना चाहता है। सर्वोच्च न्यायालय ने 'डी. एस. नकारा बनाम भारत संघ' (1982) मामले में स्पष्ट भी किया है कि "भारतीय समाजवाद गांधीवाद और मार्क्सवाद का अनोखा मिश्रण है जो निश्चित रूप से गांधीवाद की ओर झुका हुआ है।" इस व्याख्या का निहितार्थ यही है कि हमारा समाजवाद आर्थिक समानता (Economic Equality), आय के समान वितरण (Equal Distribution of Income), वंचित वर्गों (Deprived classes) के जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा उन्हें अधिकाधिक सामाजिक सुरक्षा (Social security) प्रदान करने पर बल देता है किन्तु इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह अहिंसक (Non-violent) और शांतिपूर्ण (Peaceful) साधनों का प्रयोग करता है तथा निजी संपत्ति (Private property) व उद्यमशीलता (Entrepreneurship) को खारिज किए बिना दोनों पक्षों में समन्वय साधने का प्रयास करता है।

1991 से भारतीय राज्य के समाजवादी ढांचे में एक गहरी परिवर्तन देखी गयी है। इस वर्ष से लागू हुई नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) के अंतर्गत निजीकरण (Privatisation), उदारिकरण (Liberalisation) तथा समुद्रीकरण (Globalisation) पर काफी अधिक बल दिया जाने लगा है। अब भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था के साथ काफी हद तक जुड़ चुकी है। समाजवादी दलों तथा चिंतकों का आक्षेप है कि अब भारतीय राज्य समाजवादी (Socialist) नहीं, नव-उदारवादी (Neo-liberal) हो गया है।

(iii) **पंथनिरपेक्ष (Secular):** पंथनिरपेक्ष राज्य (Secular state) तीन तरह के राज्यों से अलग होता है। प्रथमतः वह भूतपूर्व सोवियत संघ जैसे अन्य साम्यवादी राज्यों (Communist states) से अलग होता है जो धर्म-विरোধी (Anti-religious) होते हैं और अपने नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता (Religious freedom) का अधिकार नहीं देते। दूसरे वह वेदिकीय सिटी जैसे धर्मतंत्रीय (Theocratic) राज्यों से अलग होता है जिनमें धर्म का प्रमुख (Head of Religion) ही राज्याध्यक्ष (Head of State) होता है तथा धार्मिक प्रधान को ही संविधान माना जाता है। तीसरे वह पाकिस्तान जैसे धर्म प्रभावित राज्यों से भी अलग होता है जो एक धर्म विशेष को राजकीय धर्म (State religion) का दर्जा देते हैं तथा सभी धर्मों के नागरिकों को धार्मिक समानता की गारंटी नहीं देते।

पंथनिरपेक्ष राज्य (Secular state) की संज्ञा प्रमुख पहलुओं पर है कि यह न तो किसी धर्म को राजकीय धर्म (State Religion) का दर्जा देता है और न ही अपने नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता (Religious freedom) से वंचित करता है। ऐसा राज्य प्रायः सभी धर्मों के साथ बराबर दूरी बनाकर चलता है तथा राजकीय कार्यों के भीतर धर्म के प्रभाव को अस्वीकार करता है। ऐसे राज्यों में नागरिकों को व्यापक धार्मिक स्वाधीनता (Religious freedom) प्राप्त होती है जिसके तहत वे न सिर्फ अपने धर्म को मानने के लिए स्वतंत्र होते हैं बल्कि अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने, धर्मांतरण (Conversion) करने तथा किसी भी धर्म को न मानने के लिए भी स्वतंत्र होते हैं। राज्य विभिन्न धर्मों के नागरिकों में इस आधार पर विभेद नहीं करता कि उनके धर्म अलग-अलग हैं, उसकी निगाह में सभी नागरिक बराबर होते हैं।

यद्यपि भारत के संविधान में पंथनिरपेक्ष (Secular) शब्द को आपातकाल (Emergency) के दौरान '42वें संविधान संशोधन, 1976' के माध्यम से जोड़ा गया किन्तु वास्तविक अर्थों में भारत स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही लगातार पंथनिरपेक्ष (Secular) रहा है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भारतीय नेतृत्व में यह सहमति बन गयी थी कि भारतीय राज्य की प्रकृति पंथनिरपेक्ष (Secular) होगी। यही कारण है कि भारत का कोई राजकीय धर्म (State religion) नहीं है, यहाँ धर्म के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जाता (अनुच्छेद 14-16), भारत की आपराधिक विधि (Criminal law) तथा अधिकांश अन्य कानून सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करते हैं। इसके अलावा, मूल अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता (Religious freedom) का अधिकार अत्यंत व्यापक रूप में दिया गया है। उच्चतम न्यायालय ने भी 'पंथनिरपेक्षता' को भारतीय संविधान के आधारभूत लक्षणों (Basic structure) में निहित माना है।

(iv) **लोकतांत्रिक (Democratic):** इसका अर्थ है कि भारतीय राजव्यवस्था शासन के जिस प्रकार को स्वीकार करती है, वह लोकतंत्र

प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) चलाया जाना संभव नहीं है। जनता निर्वाचन (Elections) के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों (Representatives) को चुनती है और ये प्रतिनिधि विधायिका (Legislature) और कार्यपालिका (Executive) का संचालन करते हैं। ऐसे लोकतंत्र को प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र (Indirect Democracy) भी कहा जाता है। भारतीय जनता में विद्यमान क्षेत्रीय (Regional), भाषाई (Linguistic), धार्मिक (Religious) तथा नस्लीय (Racial) वैविध्य को देखते हुए यहाँ बहुदलीय लोकतंत्र (Multi party Democracy) को स्वीकार किया गया है। यह लोकतंत्र वैचारिक स्तर पर उदार लोकतंत्र (Liberal Democracy) की कार्यविधियों का समर्थन करता है, किन्तु आर्थिक न्याय के उद्देश्य के कारण समाजवादी लोकतंत्र (Socialist Democracy) के काफी नज़दीक पहुँच जाता है। भारत में निर्वाचन आयोग (Election Commission) के रूप में एक ऐसी महत्वपूर्ण संस्था है जो निर्वाचन प्रक्रिया (Electoral Process) को पारदर्शी बनाए रखने का प्रयास करती है। समय-समय पर भारत में निर्वाचन सुधार (Electoral reforms) भी होते रहे हैं जो लोकतंत्र के प्रति भारतीय राजव्यवस्था की प्रतिबद्धता (Commitment) दर्शाते हैं।

- (v) गणराज्य (Republic): भारत एक गणराज्य (Republic) है। गणराज्य या गणतंत्र (Republic) उस राज्य को कहते हैं जहाँ नागरिक किसी भी पद पर आसीन होने की अर्हता (Eligibility) रखते हैं। ऐसे राज्यों में राज्य प्रमुख (Head of state) भी वंशानुगत (Hereditary) न होकर जनता द्वारा प्रत्यक्षतः या परोक्षतः निर्वाचित होता है। अमेरिका और फ्रांस की तरह भारत ने इस प्रणाली को स्वीकार किया है। यही कारण है कि भारत का राष्ट्रपति वंशानुगत (Hereditary) न होकर भारत की जनता द्वारा परोक्ष (indirect) रूप से निर्वाचित होता है। इस दृष्टि से ब्रिटेन की स्थिति विशिष्ट है। यद्यपि आधुनिक लोकतंत्र का आरंभ वहीं हुआ था, तब भी वहाँ की राजव्यवस्था अभी तक गणतंत्रात्मक (Republican) नहीं हो सकी है क्योंकि अभी भी ब्रिटेन में 'राजमुकुट' (Crown) धारण करने वाले वंशानुगत राजा का राजा की संज्ञा प्राप्त और मान्य माना जाता है।

3. संविधान के उद्देश्यों का परिचय (Introduction of Constitution's Objectives):

प्रस्तावना यह भी बताती है कि भारतीय संविधान के उद्देश्य (Objectives) क्या हैं? इसके अंतर्गत भारतीय संविधान के चार उद्देश्य साफ तौर पर उल्लिखित हैं, जो इस प्रकार हैं—

- (i) पहला उद्देश्य है— जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय (Social, Economic and Political justice) उपलब्ध करना। यहाँ न्याय (Justice) शब्द का अर्थ तीनो न्याय (Legal justice), समता वितरण न्याय (Distributive justice) और जो कि न्याय का व्यापकत्व होता है। इसका अर्थ है कि समाज में जो आर्थिक संसाधन (Economic resources), राजनीतिक शक्ति (Political power) तथा सामाजिक प्रतिष्ठा (Social prestige) उपलब्ध है, उसका वितरण जनता के बीच न्यायपूर्ण तरीके से होना चाहिए।

सामाजिक न्याय (Social justice) में तात्पर्य है कि समाज की जो वर्ग सामाजिक कारणों से मुख्यधारा (Mainstream) से पीछे रह गये हैं, उनके समाजवादी मुख्यधारा में आने के लिए आरक्षण (Reservations) व अन्य सुविधाएँ दी जानी चाहिए। अनुसूचित जातियों (SCs- Scheduled Castes), अनुसूचित जनजातियाँ (STs- Scheduled Tribes), अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs- Other backward classes) तथा पिछड़ी जातियों (Untouchables) को भी आरक्षण इसी तर्क के तहत दिया जाता है।

राजनीतिक न्याय (Political justice) का अर्थ है कि राजनीतिक प्रक्रियाओं में भागीदारी के लिए जिन सहायक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, उनका वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि समाज का सामान्य नागरिक भी उनमें भागीदारी कर सके। वयस्क मताधिकार (Adult suffrage) के साथ-साथ वंचित वर्गों (Deprived classes) के लिए राजनीतिक आरक्षण जैसे प्रावधान इसी कारण किये गये हैं।

आर्थिक न्याय (Economic Justice) का अर्थ समाज की कुल संपदा (Social Wealth) को ऐसे वितरण से है कि समाज के समस्त आर्थिक संसाधन (Economic resources) किसी छेदे से वर्ग तक सीमित न रह जायें, विभिन्न वर्गों में आय और जीवन के स्तर का अंतराल कम से कम हो, मजदूरों की कार्यदशाएँ (Working conditions) ऐसी न हों कि उनका शोषण (Exploitation) किया जा सके, हर श्रमिक की मजदूरी (Wages) इतनी ज़रूर हो कि वह गरिमापूर्ण तरीके से जीवन निर्वाह कर सके। वर्तमान में चल रहे 'मनरेग' जैसे कार्यक्रम आर्थिक न्याय के आदर्श को ही साधने के प्रयत्न हैं।

order), शिष्टाचार (Decency), सदाचार (Morality), अपराध को भड़काने (Incitement to an offence), किसी की मानहानि (Defamation) करने या अदालत की अवमानना (Contempt of court) करने से संबंधित हैं। इस प्रकार, भारतीय संविधान में धर्म और अंतःकरण की स्वतंत्रता (Freedom of religion and conscience) भी अत्यंत व्यापक रूप में दी गई है जिसके तहत व्यक्ति अपनी रुचि और आस्था के अनुसार किसी भी धर्म के अनुसार आचरण करने को स्वतंत्र है। संविधान में अनुच्छेद 25-28 तक इसके विस्तृत प्रावधान किए गए हैं।

(iii) तीसरा उद्देश्य है प्रत्येक व्यक्ति को पद एवं अवसर की समानता (Equality of status and opportunity) उपलब्ध कराना। समानता का सामान्य अर्थ है—ऐसी स्थिति जिसमें किसी व्यक्ति अथवा समूह को पास विशेषाधिकार (Privileges) न हों, किंतु इसका यह अर्थ पर्याप्त नहीं है। इसका व्यापक या सकारात्मक (Positive) अर्थ यह है कि सभी व्यक्तियों को ऐसी परिस्थितियाँ मिलनी चाहिए कि वे मानवोचित गरिमा (Humane dignity) के साथ समाज में उपलब्ध अवसरों तक समान पहुँच बना सकें। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14-18 के बीच ये समानताएँ गारण्टी के रूप में दी गई हैं जिनमें विधि के समक्ष समानता (Equality before law) (अनुच्छेद-14), धर्म, लिंग आदि आधारों पर असमानताओं का निषेध (अनुच्छेद 15), लोक नियोजन (Public employment) के विषय में अवसर की समानता (अनुच्छेद-16), अस्पृश्यता (Untouchability) का अंत (अनुच्छेद-17), उपाधियों (Titles) का अंत (अनुच्छेद-18) जैसे प्रावधान प्रमुख हैं। इसके अलावा, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles of state policy) के अंतर्गत पुरुष और महिला के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन (Equal pay for equal work) (अनुच्छेद-39) जैसे प्रावधान भी समानता के आदर्श की उपलब्धि के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

(iv) चौथा उद्देश्य है बंधुत्व (Fraternity) की भावना का विकास करना। बंधुत्व का आदर्श फ्रांसीसी क्रांति का मुख्य नारा था जिसकी गूँज पूरे विश्व में फैली थी। भारतीय संविधान निर्माताओं ने इसे महत्व दिया और प्रस्तावना में शामिल किया। चूँकि अंग्रेजों की 'फूट डाली और राज करो' (Divide and rule) नीति के कारण भारतीय समाज में बंधुत्व की भावना का काफी हास हुआ था और भूमि की आधार पर देश का विभाजन भी हो चुका था; इसलिए जरूरी था कि राष्ट्र की एकता और अखण्डता (National unity and integrity) को सुनिश्चित करने के लिए देश के भीतर 'हम की भावना' (We feeling) का समुचित विकास हो सके। यही कारण है कि प्रस्तावना में 'व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता व अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता' (Fraternity assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the nation) बचने पर जोर दिया गया है। यहाँ व्यक्ति की गरिमा (Dignity of individual) से आशय है कि रूढ़िवादी (Orthodox) तथा परंपरावादी किसी की उस बंधुता से बचने की जरूरत है जो व्यक्ति की गरिमा और स्वाधीनता को अस्वीकार करता है तथा उसे समुदाय के दबावों के अनुसार आचरण करने के लिए बाध्य करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए निर्धारित किया है कि 'गोपनीय जीवन का अधिकार' (Right to dignified life) मूल अधिकार है। दूसरी ओर, राष्ट्र की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करने वाली बंधुता से तात्पर्य है कि जो एकता या बंधुता राष्ट्र विरोधी भावनाओं पर आधारित होती है, उससे बचने की जरूरत है। वही बंधुता वांछनीय है जो देश की एकता को प्रज्वलित करती हो। उदाहरण के लिए, हरियाणा राजस्थान की खाप पंचायतों में दिखने वाली एकता अथवा उत्तराखंडीयों के विरोध में महाराष्ट्र में उभरने वाली एकता वांछनीय नहीं है क्योंकि इनमें से पहली व्यक्ति की गरिमा (Individual dignity) की खिलाफत है जबकि दूसरी 'राष्ट्र की एकता' (National unity) के खिलाफ। बंधुत्व के इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 51(क) द्वारा संविधान में शामिल किए गये मूल-कर्तव्यों (Fundamental Duties) में भी इसे शामिल किया गया है और कहा गया है कि प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह 'भारत के सभी लोगों में समरसता (Harmony) और समान भ्रातृत्व (Common Brotherhood) की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेद-भावों से परे हो।'।

4. संविधान के अर्थ-निर्धारण के लिए उपयोगी (Useful for Constitution's Interpretation):

प्रस्तावना का एक अन्य उपयोग यह भी है कि जहाँ कहीं संविधान के किसी प्रावधान का अर्थ निर्धारित करना कठिन होता है, वहाँ वह मददगार होता है। 'बेल्जारी यूनियन मामले' (1960) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया था कि प्रस्तावना का मूल महत्व संविधान के अर्थ निर्धारण में है। वह संविधान की कुंजी (Key) है। जहाँ कहीं भी संविधान की भाषा अस्पष्ट (Vague) या सदिग्ध (Ambiguous) होती है, वहाँ उसके अर्थ के निर्वचन (Interpretation) के लिए प्रस्तावना की मदद ली जानी चाहिए।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. बयालीसवें संविधान संशोधन के माध्यम से प्रस्तावना में जोड़े गये शब्द हैं-
 - (i) अवसर की समता (Equality of opportunity)
 - (ii) समाजवादी (Socialist)
 - (iii) एकता (Unity)
 - (iv) पंथनिरपेक्ष (Secular)
 - (v) अखंडता (Integrity)
 कूट-
 - (1) (i), (ii) और (iv)
 - (2) (ii), (iii) और (iv)
 - (3) (ii), (iv) और (v)
 - (4) (iii), (iv) और (v)
2. 'पंथनिरपेक्ष राज्य' (Secular state) से आशय यह है कि-
 - (i) यह किसी धर्म को राजकीय धर्म का दर्जा नहीं देता है।
 - (ii) अपने नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं करता है।
 - (iii) राजकीय कार्यों के भीतर धर्म के प्रभाव को अस्वीकार करता है।
 कूट-
 - (1) (i) और (ii)
 - (2) (ii) और (iii)
 - (3) (i) और (iii)
 - (4) (i), (ii) और (iii)
3. भारत एक गणराज्य है, क्योंकि-
 - (i) यहाँ के नागरिक किसी भी पद पर आसीन होने की अधिकार रखते हैं।
 - (ii) यहाँ का प्रशासन जनता द्वारा अपेक्ष रूप से निर्वाचित होता है।
 - (iii) यहाँ के संविधान में नागरिकों को शक्ति संसद को प्राप्त है।
 कूट-
 - (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii)
 - (4) उपरोक्त सभी
4. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित 'न्याय' के अंतर्गत समाविष्ट तत्व कौन-सा/से हैं/हैं?
 - (i) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों को दिया जाने वाला आरक्षण।
 - (ii) महिलाओं को दिया जाने वाला आरक्षण।
 - (iii) वयस्क मताधिकार के साथ-साथ वंचित वर्गों के लिए राजनीतिक आरक्षण।
 - (iv) आर्थिक संसाधनों का समान वितरण।
 कूट-
 - (1) केवल (iii)
 - (2) केवल (iv)
6. निम्नलिखित में से किस वाद में सर्वप्रथम यह स्वीकार किया गया कि प्रस्तावना संविधान का अंग है।
 - (1) बेलबारी यूनिथन वाद
 - (2) केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य
 - (3) एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ
 - (4) एल.आई.सी. ऑफ इंडिया वाद
7. प्रस्तावना के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
 - (i) यह संविधान का अंग है।
 - (ii) यह न तो विधायिका को कोई विशेष शक्ति प्रदान करती है, न ही उस पर कोई सीमा आरोपित करती है।
 - (iii) यह न्यायालय द्वारा लागू नहीं करायी जा सकती है।
 - (iv) इसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को अप्रत्यक्ष रूप से न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त होती है।
 उपरोक्त कथनों में सत्य हैं-
 - (1) (i), (ii) और (iii)
 - (2) (ii), (iii) और (iv)
 - (3) (i), (ii) और (iv)
 - (4) (i), (ii), (iii) और (iv)
8. संविधान के मूल ढाँचे (Basic structure) को निर्धारित करने का शक्ति किसे प्राप्त है?
 - (1) राष्ट्रपति को
 - (2) संसद को
 - (3) सर्वोच्च न्यायालय को
 - (4) लोकसभा की सहमति पर राष्ट्रपति को
9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
 - (i) संविधान में हुए संशोधन को चुनौती नहीं दी जा सकती है।
 - (ii) संविधान संशोधन को चुनौती दी जा सकती है, यदि उससे मूल ढाँचा प्रभावित हो रहा हो।
 - (iii) मूल ढाँचे को देखने का कार्य सर्वोच्च न्यायालय का है, लेकिन राष्ट्रपति की सलाह पर ही वह ऐसा कर सकता है।
 उपरोक्त कथनों में सत्य हैं/हैं-
 - (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) केवल (iii)
 - (4) उपरोक्त सभी
10. प्रस्तावना संविधान का भाग है या नहीं, यह प्रश्न सर्वप्रथम किस वाद में आया ?
 - (1) बेलबारी यूनिथन वाद
 - (2) केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद
 - (3) एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ वाद
 - (4) मिनर्वा मिल्स वाद

नागरिकता (Citizenship)

भारतीय संविधान अनुच्छेद 1-4 (भाग-1) तक भारत के राज्यक्षेत्र से संबंधित उपबंध देने के बाद अनुच्छेद 5-11 (भाग-11) में स्पष्ट करता है कि इस राज्यक्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों में से नागरिक (Citizens) कौन होंगे? संविधान में नागरिकता से संबंधित बहुत कम प्रावधान देते हुए सिर्फ यह बताया गया है कि संविधान लागू होने के दिन किन व्यक्तियों को भारत का नागरिक माना जाएगा? बाद की स्थितियों के लिए नागरिकता संबंधी कानून बनाने की पूर्ण शक्ति संसद को दी गई है। इस शक्ति के आधार पर संसद ने सर्वप्रथम 1955 में 'नागरिकता अधिनियम' (Citizenship Act) पारित किया था। उसके बाद, उसने समय-समय पर इस अधिनियम में प्रासंगिक संशोधन भी किए हैं।

व्यक्तियों के विभिन्न वर्ग (Different Categories of Persons)

किसी देश में रहने वाले व्यक्तियों को उनके कानूनी दर्जे (Legal status) के आधार पर साधारणतः 4 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) नागरिक (Citizens) — नागरिक किसी देश के 'पूर्ण सदस्य' होते हैं। वे राज्य तथा संविधान के प्रति निष्ठा (Allegiance) रखते हैं। उनके सभी मूल अधिकार व बहुत से कानूनी अधिकार प्राप्त होते हैं तथा उनसे राज्य द्वारा घोषित कर्तव्यों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। कोई व्यक्ति किस देश का नागरिक है, इसकी सामान्य कसौटी यह है कि उसके पास किस देश का पासपोर्ट है या वह किस देश का पासपोर्ट प्राप्त करने की अहता रखता है?

(ii) अन्यदेशीय व्यक्ति (Aliens) — वे वे व्यक्ति हैं जो किसी अन्य देश के नागरिक हैं। तकनीकी तौर पर इन्हें 'विदेशी' (Foreigner) भी कहा जाता है। अन्यदेशीय व्यक्तियों (Aliens) को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— 'मित्र अन्यदेशीय' (Friendly aliens) तथा 'शत्रु अन्यदेशीय' (Enemy aliens)। जिन देशों के साथ हमारा युद्ध चल रहा होता है, उनके नागरिकों को 'शत्रु अन्यदेशीय' कहते हैं जबकि शेष देशों के नागरिक 'मित्र अन्यदेशीय' कहलाते हैं।

अन्यदेशीय व्यक्तियों (Aliens) को वे सभी अधिकार प्राप्त नहीं होते जो नागरिकों के पास होते हैं। देश के संविधान तथा अन्य अधिनियमों में स्पष्ट किया जाता है कि उनके पास कौन से अधिकार नहीं होंगे। उदाहरण के लिए, भारत में अन्यदेशीय व्यक्तियों को अनुच्छेद 21 के तहत 'जीवन का अधिकार' प्राप्त है किंतु अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त 'स्वतंत्रता का अधिकार' प्राप्त नहीं है। शत्रु अन्यदेशीय व्यक्तियों (Enemy aliens) को कुछ अन्य अधिकारों से भी वंचित किया जा सकता है जो मित्र अन्यदेशीय व्यक्तियों (Friendly aliens) को दिए गए हों। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 22 में गिरफ्तारी से संरक्षण के संबंध में जैसे विस्तृत अधिकार भारत के नागरिकों तथा मित्र अन्यदेशीय व्यक्तियों को प्राप्त हैं, वैसे शत्रु अन्यदेशीय व्यक्तियों को नहीं।

(iii) राज्यविहीन व्यक्ति (Stateless Persons) — यह एक अत्यन्त छोटा वर्ग है जिसमें विरल (Rare) उदाहरण ही शामिल होते हैं। कई देशों में इस वर्ग में एक भी व्यक्ति नहीं होता। साधारणतः अवैध आप्रवासियों (Illegal immigrants) की नई पीढ़ियाँ इस स्थिति में होती हैं। कभी-कभी यह भी हो सकता है कि नागरिकता संबंधी दस्तावेजों के अभाव में कोई व्यक्ति राज्यविहीन घोषित कर दिया जाए।

भारत में देखें तो असम में रहने वाले बहुत से अवैध आप्रवासियों (Illegal immigrants) के बच्चे ऐसी स्थिति में हैं। वे न तो वंश के आधार पर बांग्लादेश के नागरिक बन पाए हैं और न ही देशीयकरण के आधार पर भारत के।

(iv) शरणार्थी (Refugees) — शरणार्थी उन व्यक्तियों को कहा जाता है जिन्होंने अपने मूल देश में नस्ल, धर्म, भाषा, राष्ट्रीयता, राजनीतिक विचारधारा या सामाजिक पहचान के आधार पर उत्पीड़न सहने या उत्पीड़न के भय के कारण किसी अन्य देश

नागरिकों के विशेष अधिकार (Special Rights of citizens)

प्रायः सभी देश अपने नागरिकों को शेष व्यक्तियों की तुलना में कुछ विशेषाधिकार देते हैं। राष्ट्र की सुरक्षा से जुड़े विषयों में ऐसा प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। भारतीय संविधान में भी कुछ ऐसे अधिकार रेखांकित किए गए हैं जो सिर्फ नागरिकों को ही प्राप्त हैं, शेष व्यक्तियों को नहीं। संविधान के अलावा कुछ अधिनियम भी ऐसा वर्गीकरण करते हैं। ऐसे अधिकार निम्नलिखित हैं—

- (i) अनुच्छेद 15 द्वारा दिया गया भेदभाव के प्रतिषेध (Prohibition) का अधिकार।
- (ii) अनुच्छेद 16 द्वारा दिया गया लोक नियोजन (Public appointment) में अवसर की समता का अधिकार।
- (iii) अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व अन्य अधिकार।
- (iv) अनुच्छेद 29 द्वारा दिया गया सांस्कृतिक व शैक्षिक संरक्षण का अधिकार।
- (v) कुछ सवैधानिक पदों पर नियुक्ति का अधिकार। ये पद हैं—उच्चपति (अनुच्छेद 58), उपउच्चपति (अनुच्छेद 66), सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश (अनुच्छेद 124), उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश (अनुच्छेद 217), राज्यों के राज्यपाल (अनुच्छेद 157), भारत का महान्यायाधीश (अनुच्छेद 76), राज्यों के महाधिवक्ता (अनुच्छेद 165)।
- (vi) संसद की सदस्यता (अनुच्छेद 84) तथा राज्य विधानमंडलों की सदस्यता (अनुच्छेद 191) की अर्हता।
- (vii) 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950' (Representation of people act, 1950) के तहत मतदान करने का अधिकार।

भारतीय नागरिकता का स्वरूप (Nature of Indian Citizenship)

भारतीय नागरिकता के स्वरूप के संबंध में 3 महत्वपूर्ण बातों पर विचार किया जाना जरूरी है—(i) भारत राज्य एकल नागरिकता (Single Citizenship) अर्थात् राष्ट्रीय नागरिकता को ही मान्यता देता है, दोहरी नागरिकता (Dual Citizenship) अर्थात् देश तथा राज्यों की अलग-अलग नागरिकता को नहीं; (ii) भारत राज्य अपने नागरिकों को सिर्फ भारतीय नागरिकता धारण करने की अनुमति देता है, एक साथ एकाधिक देशों की नहीं। इस सिद्धांत को भी दोहरी नागरिकता की बजाय एकल नागरिकता का समर्थन करना कहा जाता है; हालाँकि यहाँ 'एकल' तथा 'दोहरी' नागरिकता का अर्थ अलग है, तथा (iii) भारत में सिर्फ प्राकृतिक व्यक्तियों (Natural Persons) को नागरिकता दी जाती है, विधिक व्यक्तियों (Legal Persons), जैसे—कंपनी, निगम आदि को नहीं।

(i) एकल नागरिकता (Single Citizenship)

एकल नागरिकता का अर्थ है कि देश के सभी व्यक्ति सिर्फ देश के ही नागरिक हैं, वे किसी राज्य या प्रांत विशेष के नागरिक नहीं हैं। इंग्लैण्ड जैसे एकात्मक (Unitary) देशों में एकल नागरिकता की धारणा प्रचलन में है जबकि अमेरिका एवं स्विट्ज़रलैंड जैसे संघात्मक (Federal) देशों में दोहरी नागरिकता का नियम लागू है। इन देशों के नागरिक देश के नागरिक भी होते हैं और अपने प्रांत के भी। दोनों नागरिकताओं के तहत उन्हें कुछ अधिकार व कर्तव्य प्राप्त होते हैं।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यहाँ एकल नागरिकता स्वीकार की गई है। इस विषय में भारतीय संविधान एकात्मकता के पक्ष में झुका है, न कि संघात्मकता के पक्ष में।

एकल नागरिकता के अपवाद (Exceptions of Single Citizenship)

यद्यपि भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था लागू है किंतु कुछ ऐसे प्रावधान अवश्य हैं जो विभिन्न राज्यों के नागरिकों में भेदभाव को संभावना पैदा करते हैं। ऐसे प्रावधान निम्नलिखित हैं—

- (i) संविधान का अनुच्छेद 15(1) विभिन्न व्यक्तियों के बीच धर्म, मूलवंश (Race), जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी आधार पर भेदभाव करने का निषेध करता है किंतु इन आधारों में निवास-स्थान (Place of residence) शामिल नहीं है। इसका अर्थ है कि यदि कोई राज्य सरकार चाहे तो अपनी शिक्षा संस्थाओं में अपने राज्य के निवासियों को विशेष सुविधाएँ (जैसे दाखिले में आरक्षण या शुल्क में छूट) दे सकती है।
- (ii) अनुच्छेद 16(3) संसद को अधिकार देता है कि वह किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र से संबंधित पदों पर नियुक्ति के लिए उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में निवास संबंधी अर्हता लागू कर सकती है। वर्तमान में आंध्र प्रदेश को छोड़कर किसी भी राज्य

कि. साधारण जनता या अनुसूचित जनजातियों के हित में इन स्वतंत्रताओं को सीमित किया जा सकता है।

- (iv) अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू-कश्मीर राज्य को विशेष दर्जा (Special status) दिया गया है। इस अनुच्छेद के तहत जारी किए गए आदेशों के अनुसार जम्मू-कश्मीर विधानमंडल के पास यह शक्ति है कि—(क) वह परिभाषित करे कि जम्मू कश्मीर के स्थायी निवासी कौन हैं; तथा (ख) जम्मू-कश्मीर के स्थायी निवासियों को राज्य सरकार की नौकरियों, अचल संपत्तियों की खरीद, राज्य में निवास तथा उनके बच्चों को शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति एवं अन्य सुविधाएँ प्रदान करे।

(ii) सिर्फ एक देश की नागरिकता (Citizenship of one country only)

इस अवधारणा को भी 'एकल नागरिकता' (Single citizenship) कहे जाने का प्रचलन है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति एक समय में सिर्फ एक ही देश का नागरिक हो सकता है, एकाधिक देशों का नहीं। ज्ञातव्य है कि कुछ देश दोहरी नागरिकता (Dual citizenship) के सिद्धांत का समर्थन करते हैं अर्थात् वे अपने नागरिकों को अपने साथ-साथ किसी अन्य देश का भी नागरिक होने की अनुमति प्रदान करते हैं। इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा आदि देश दोहरी नागरिकता को स्वीकारते हैं।

जहाँ तक भारत का सवाल है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 9 में स्पष्टतः कहा गया है कि यदि भारत का कोई नागरिक किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर लेता है तो वह भारतीय नागरिक नहीं रहेगा। इसका अर्थ है कि भारत राज्य एकल नागरिकता का समर्थन करता है, दोहरी नागरिकता को स्वीकार नहीं करता।

(iii) विधिक व्यक्ति नागरिक नहीं है (Legal persons are not citizens)

नागरिकता के संबंध में एक विवाद यह भी है कि 'विधिक व्यक्ति' अर्थात् कोई संस्था या निगम इत्यादि नागरिक होने का दावा कर सकता है या नहीं? सर्वोच्च न्यायालय ने 1963 में 'स्टेट बैंडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम कमिश्नल टैक्स ऑफिसर' के मामले में घोषित किया है कि किसी कम्पनी/निगम या विधिक व्यक्ति को मूल अधिकार नहीं दिए जा सकते। उसने स्पष्ट किया कि निगम को नागरिक का दर्जा प्राप्त नहीं है।

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)

संविधान के भाग-II का शीर्षक 'नागरिकता' (Citizenship) है। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 5-11 शामिल हैं। इनमें सिर्फ यह बताया गया है कि संविधान के लागू होने के समय किन व्यक्तियों को भारत का नागरिक माना जाएगा। अनुच्छेद 5-8 में नागरिकों के 4 वर्गों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 9 बताता है कि किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वीकार करने पर कोई व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं रहेगा। अनुच्छेद 10 तथा 11 संसद को नागरिकता से संबंधित विधि बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं।

(I) संविधान के आरंभ पर नागरिकों के वर्ग (Categories of citizens in the beginning of Constitution)

अनुच्छेद 5 से 8 तक प्रत्येक में नागरिकों के एक विशेष वर्ग का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है—

- (i) अधिवास द्वारा नागरिकता (Citizenship by domicile)— इसकी चर्चा अनुच्छेद 5 में की गई है। इस अनुच्छेद के अनुसार ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो संविधान के प्रारंभ के समय भारत के राज्यक्षेत्र में अधिवास करता है, वह भारत का नागरिक होगा यदि वह निम्नलिखित तीन में से कोई एक शर्त पूरी करता हो—

(क) वह भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा हो; अथवा

(ख) उसके माता-पिता में से कोई एक भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा हो, अथवा

(ग) वह संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले कम से कम 5 वर्षों तक साधारण तौर पर भारत का निवासी रहा हो।

- (ii) पाकिस्तान से प्रव्रजन (Migration) करके आए व्यक्तियों की नागरिकता— संविधान के अनुच्छेद 6 में बताया गया है कि पाकिस्तान से प्रव्रजन करके आए व्यक्तियों में से किन्हें भारत का नागरिक समझा जाएगा? ऐसे व्यक्तियों को दो वर्गों में बांटा गया है।

वह दो शर्तें पूरी करता हो—

(क) उसका या उसके माता-पिता अथवा उसके दादा-दादी/नाना-नानी में से किसी का जन्म 'भारत शासन अधिनियम, 1935' द्वारा परिभाषित भारत के राज्यक्षेत्र में हुआ हो;

(ख) दूसरी शर्त 19 जुलाई, 1948 से पहले और बाद में प्रव्रजन करने वालों के लिए अलग-अलग है। इस तिथि से पहले आने वाले व्यक्तियों के लिए सिर्फ इतनी शर्त है कि वे आने के बाद से साधारणतः भारत में रह रहे हों। किंतु, इस तिथि को या उसके पश्चात् आने वाले व्यक्तियों के लिए जरूरी है कि उन्होंने सक्षम अधिकारी के पास स्वयं को भारत के नागरिक के तौर पर पंजीकृत करा लिया हो। यह पंजीकरण तभी हो सकता है, जब ऐसा व्यक्ति नागरिकता के लिए आवेदन करने की तिथि के 6 महीने पहले से भारत में रह रहा था।

(iii) पाकिस्तान को प्रव्रजन (Migration) करने वाले लोगों की नागरिकता-संविधान के अनुच्छेद 7 में बताया गया है कि जिस व्यक्ति ने 1 मार्च, 1947 के पश्चात् भारत से पाकिस्तान के लिए प्रव्रजन कर लिया है, वह भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगा; किंतु यदि वह स्थायी रूप से भारत लौटने के लिए अनुमति (Permit) लेकर वापस आ गया है, तो उसकी नागरिकता के संबंध में वही नियम लागू होंगे जो अनुच्छेद 6 में 19 जुलाई, 1948 के बाद भारत आने वाले व्यक्तियों पर लागू होते हैं। इसका अर्थ है कि ऐसे व्यक्ति को पंजीकरण (Registration) के लिए आवेदन करना होगा और ऐसा आवेदन कम से कम 6 महीने तक भारत में रहने के बाद ही किया जा सकेगा।

(iv) भारत से बाहर रहने वाले भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता-अनुच्छेद 8 उन व्यक्तियों की नागरिकता का उपबंध करता है जो संविधान के प्रारंभ के समय भारत के निवासी नहीं थे किंतु वे भारतीय मूल के हैं। इसके अनुसार, जिस व्यक्ति का जन्म अथवा जिसके माता-पिता दादा-दादी या नाना-नानी में से किसी का जन्म 1935 के 'भारत शासन अधिनियम' द्वारा परिभाषित भारत में हुआ था और जो वर्तमान में साधारणतः भारत में किसी अन्य देश में रह रहा है; वह भारत का नागरिक समझा जाएगा यदि वह अपने निवास के देश में भारत के राजनयिक या कौंसलरी प्रतिनिधि के समक्ष नागरिकता का आवेदन प्रस्तुत करता है और उसके आवेदन पर उसकी नागरिकता का पंजीकरण कर लिया जाता है।

(2) नागरिकता की समाप्ति (Termination of Citizenship)

अनुच्छेद 9 स्पष्ट करता है कि यदि किसी भारतीय नागरिक ने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता अर्जित कर ली है तो वह अनुच्छेद 5, 6 या 8 के आधार पर भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगा। इसमें निहित है कि भारत का संविधान एकल नागरिकता को ही मान्यता प्रदान करता है; एकाधिक देशों की नागरिकता की अनुमति नहीं देता।

(3) संसद का विधियाँ बनाने का अधिकार (Parliament's right to enact laws)

अनुच्छेद 10 तथा 11 में बताया गया है कि नागरिकता के विषय में संसद के पास क्या अधिकार होंगे? अनुच्छेद 10 में कहा गया है कि जो व्यक्ति अनुच्छेद 5-8 के प्रावधानों के अनुसार भारत का नागरिक है या समझा जाता है, वह संसद द्वारा बनाई जाने वाली विधियों के अधीन रहते हुए भारत का नागरिक बना रहेगा। इसका अर्थ है कि संविधान लागू होने के बाद नागरिकता से संबंधित प्रावधान संसद द्वारा निर्धारित होंगे। संविधान के आरंभ में जिन व्यक्तियों को भारत का नागरिक मान लिया गया है, वे नागरिक बने रहेंगे किंतु इसके लिए उन्हें संसद द्वारा पारित विधियों का पालन करना होगा।

अनुच्छेद 11 में यही बात ज्यादा स्पष्ट रूप में कही गई है। इसमें कहा गया है कि अनुच्छेद 5-10 तक कही गई कोई भी बात नागरिकता के अर्जन (Acquisition) तथा समाप्ति (Termination) या नागरिकता से संबंधित अन्य सभी विषयों के संबंध में उपबंध बनाने की संसद की शक्ति को कम नहीं करेगी। इस कथन का सीधा सा अर्थ यह है कि नागरिकता से संबंधित किसी भी विषय पर कानून बनाने की पूर्ण शक्ति अनुच्छेद 11 के तहत संसद के पास है तथा उसे संविधान के भाग-II (अनुच्छेद 5-11) के उपबंधों के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है।

(1) नागरिकता का अर्जन (Acquisition of Citizenship)

'नागरिकता अधिनियम, 1955' की धारा 3-7 के अंतर्गत 5 ऐसे तरीके बताए गए हैं जिनके आधार पर कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है। ये इस प्रकार हैं-

(i) **जन्म से नागरिकता (Citizenship by birth):** 'नागरिकता अधिनियम' की धारा 3 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति निम्नलिखित में से किसी वर्ग में शामिल है तो वह जन्म के आधार पर भारत का नागरिक माना जाएगा-

(क) जिसका जन्म 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद किंतु 1 जुलाई, 1987 से पहले भारत के राज्यक्षेत्र में हुआ हो।

(ख) जिसका जन्म 1 जुलाई, 1987 को या उसके बाद किंतु 3 दिसंबर, 2004 से पहले भारत के राज्यक्षेत्र में हुआ हो तथा उसके माता-पिता में से कम से कम एक व्यक्ति उसके जन्म के समय भारत का नागरिक रहा हो। ध्यातव्य है कि 1 जुलाई, 1987 को 1986 का नागरिकता संशोधन लागू हुआ था, जबकि 3 दिसंबर, 2004 को 2003 का संशोधन लागू हुआ था।

(ग) जिसका जन्म 3 दिसंबर, 2004 को या उसके बाद भारत में हुआ हो तथा वह निम्नलिखित 2 में से कोई एक शर्त पूरी करता हो- (अ) उसके माता और पिता दोनों भारत के नागरिक हों, अथवा (ब) उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो तथा दूसरा अवैध आप्रवासी (Illegal immigrant) न हो।

(घ) गौरतलब है कि दो तरह के व्यक्तियों को जन्म के आधार पर नागरिकता प्रदान नहीं की जाती है- (अ) यदि जन्म लेने वाले बच्चे के माता या पिता भारत में विदेशी राजनयिक (Foreign diplomat) की हैसियत से रह रहे हों और भारत के नागरिक न हों। (ब) यदि जन्म लेने वाले बच्चे के माता या पिता किसी शत्रु देश के नागरिक (Enemy Alien) हों और बच्चे के जन्म के समय उसके जन्म का क्षेत्र शत्रु देश के नियंत्रण में रहा हो।

(ii) **वंश के आधार पर नागरिकता (Citizenship by Descent):** नागरिकता अधिनियम की धारा 4 के अनुसार, भारत के बाहर जन्म लेने वाला भारतीय मूल का व्यक्ति निम्नलिखित आधारों पर भारत की नागरिकता के लिए आवेदन कर सकता है-

(क) यदि उसका जन्म 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद किंतु 10 दिसंबर, 1992 से पहले हुआ हो तथा उसका पिता उसके जन्म के समय भारत का नागरिक रहा हो। ध्यातव्य है कि 10 दिसंबर, 1992 को 1992 का नागरिकता संशोधन लागू हुआ था।

(ख) यदि उसका जन्म 10 दिसंबर, 1992 को या उसके बाद हुआ हो तथा उसके माता-पिता में से कोई एक उसके जन्म के समय भारत का नागरिक हो।

गौरतलब है कि 3 दिसंबर, 2004 को या उसके बाद भारत के बाहर जन्म कोई भी व्यक्ति वंश के आधार पर भारत का नागरिक नहीं हो सकता है, यदि उसके जन्म के एक वर्ष के भीतर भारतीय दूतावास में उसके जन्म का पंजीकरण करा दिया गया हो।

(iii) **पंजीकरण द्वारा नागरिकता (Citizenship by registration):** नागरिकता अधिनियम की धारा 5 में पंजीकरण द्वारा नागरिकता देने का उपबंध किया गया है। इसके अनुसार, कोई व्यक्ति, जो अवैध आप्रवासी (Illegal immigrant) नहीं है, भारत का नागरिक बनने के लिए भारत सरकार के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है और यदि वह निम्नलिखित वर्गों में से किसी एक में शामिल होता है तो भारत सरकार नागरिक के तौर पर उसका पंजीकरण कर सकती है-

(क) भारतीय मूल का ऐसा व्यक्ति जो पंजीकरण का आवेदन करने से ठीक पहले 7 वर्षों से साधारणतः भारत में रह रहा है; अथवा

(ख) भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो साधारणतः अविभाजित भारत (1935 के भारत शासन अधिनियम के अनुसार) से बाहर किसी देश में रह रहा है; अथवा

(ग) वह व्यक्ति जिसका विवाह भारतीय नागरिक से हुआ है और वह पंजीकरण हेतु आवेदन करने से ठीक पहले 7 वर्षों

चुके हैं और अब पंजीकरण का आवेदन प्रस्तुत करने से ठीक पहले एक वर्ष से भारत में रह रहे हैं; अथवा

- (छ) पूरी आयु व क्षमता के वे व्यक्ति जो 5 वर्षों से 'समुद्रपारीय भारतीय नागरिक' (OCI-Overseas Citizen of India) के रूप में पंजीकृत हैं और नागरिकता हेतु पंजीकरण का आवेदन देने से ठीक पहले एक वर्ष से भारत में रह रहे हैं।

पंजीकरण द्वारा नागरिकता प्राप्ति की एक शर्त यह भी है कि इच्छुक व्यक्ति भारत के संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ (Oath of Allegiance) ले। इस शपथ का प्रारूप 'नागरिकता अधिनियम, 1955' की दूसरी अनुसूची में दिया गया है।

- (iv) **देशीयकरण द्वारा नागरिकता (Citizenship through Naturalisation):** नागरिकता अधिनियम की धारा 6 में देशीयकरण द्वारा नागरिकता प्राप्ति का प्रावधान स्पष्ट किया गया है। देशीयकरण द्वारा नागरिक बनने का अर्थ लंबे निवास के आधार पर किसी देश का नागरिक बन जाने से है। जो व्यक्ति जन्म, वंश, वैवाहिक संबंध तथा भारतीय मूल जैसे आधारों के अभाव में पहले तीनों वर्गों में शामिल नहीं हो पाते, उनके लिए देशीयकरण का विकल्प है। केंद्र सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी व्यक्ति, जो अवैध आप्रवासी (Illegal immigrant) नहीं है, को देशीयकरण का प्रमाण-पत्र जारी कर सकती है, यदि वह निम्नलिखित सभी शर्तें पूरी करता हो—

- (क) वह किसी ऐसे देश का नागरिक या प्रजा (Subject) नहीं है जहाँ भारतीय नागरिकों के देशीयकरण द्वारा नागरिक बनने पर रोक लगाई गई है;
- (ख) यदि वह किसी अन्य देश का नागरिक है तो चयन देता है कि भारत में नागरिकता का आवेदन स्वीकृत होने पर वह उस देश की नागरिकता को त्याग देगा;
- (ग) वह पिछले 12 महीनों से भारत में निवास कर रहा है या भारत सरकार की सेवा में है या आंशिक तौर पर दोनों स्थितियों में रहा है;
- (घ) उक्त 12 महीनों की अवधि से एकदम पहले के 14 वर्षों में वह कम से कम 11 वर्ष भारत में रहा है या भारत सरकार की सेवा में रहा है या आंशिक तौर पर दोनों स्थितियों में रहा है;
- (ङ) वह अच्छे चरित्र का है;
- (च) वह संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट भाषाओं में से किसी एक का पर्याप्त ज्ञान रखता है;
- (छ) वह देशीयकरण द्वारा नागरिकता प्राप्त करने के बाद भारत में रहने या भारत सरकार की सेवा में रहने का इरादा रखता है; या किसी ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन में कार्य करने का इरादा रखता है जिसकी सदस्यता भारत के पास है।

भारत सरकार को अधिकार है कि यदि किसी व्यक्ति ने विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, विश्व शांति या मानव प्रगति (Human progress) जैसे किसी क्षेत्र में विशिष्ट योगदान दिया हो, तो वह उपरोक्त शर्तों में से किसी या सभी के अभाव में भी उसे देशीयकरण द्वारा नागरिकता का प्रमाण-पत्र दे सकती है।

ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेने का नियम देशीयकरण के मामले में भी लागू होता है। यह शपथ वही है जो पंजीकरण वाले मामलों के लिए निर्धारित है।

- (v) **राज्य क्षेत्र के समावेशन द्वारा नागरिकता (Citizenship by Incorporation of Territory):** नागरिकता अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, यदि कोई भू-भाग भारत के राज्यक्षेत्र में शामिल होता है तो भारत सरकार अपने राजपत्र (Official Gazette) में अधिसूचित आदेश के माध्यम से घोषणा कर सकती है कि उस भू-भाग से संबंधित कौन से व्यक्ति भारत के नागरिक होंगे तथा उन्हें किस तिथि से भारत का नागरिक माना जाएगा। उदाहरण के लिए, जब भारत ने पॉण्डिचेरी को अपना हिस्सा बनाया था, तो केंद्र सरकार ने 'नागरिकता (पॉण्डिचेरी) आदेश, 1962' [Citizenship (Pondicherry) Order, 1962] जारी किया था।

(2) नागरिकता की समाप्ति (Termination of Citizenship)

'नागरिकता अधिनियम, 1955' में नागरिकता की समाप्ति से संबंधित उपबंध भी स्पष्ट किए गए हैं। इसकी धाराएँ 8, 9 तथा 10 बताती हैं कि निम्नलिखित तीन परिस्थितियों में नागरिकता समाप्त हो सकती है—

जब तक वह उचित समझे।

जब कोई भारतीय नागरिक अपनी नागरिकता का परित्याग करता है तो उसके अवयस्क बच्चे स्वतः भारतीय नागरिकता छो देते हैं। किंतु, यदि वे बच्चे वयस्क होने के एक वर्ष के भीतर निर्धारित प्रारूप के तहत भारतीय नागरिकता पुनः प्राप्त करने की इच्छा पोषित करते हैं तो उन्हें भारत की नागरिकता प्रदान कर दी जाती है।

- (ii) **नागरिकता की समाप्ति (Termination of Citizenship):** यदि भारत का कोई नागरिक स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता देशीयकरण (Naturalisation), पंजीकरण (Registration) या किसी अन्य तरीके से स्वीकार कर लेता है तो उसकी भारतीय नागरिकता स्वतः समाप्त हो जाती है। किंतु, यदि कोई व्यक्ति किसी देश की नागरिकता ऐसे समय स्वीकार करता है जब कोई युद्ध चल रहा है और भारत भी उस युद्ध में शामिल है तो उसकी नागरिकता तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक केंद्र सरकार इस संबंध में सहमति प्रदान न कर दे।
- (iii) **नागरिकता से वंचित किया जाना (Deprivation of Citizenship):** 'नागरिकता अधिनियम' की धारा 10 के अनुसार केंद्र सरकार को अधिकार है कि यदि वह इस बात से संतुष्ट हो कि देशीयकरण (Naturalisation), पंजीकरण (Registration), अधिवास (Domicile) या निवास (Residence) के आधार पर भारत का नागरिक बने किसी व्यक्ति का भारतीय नागरिक बने रहना सार्वजनिक हित (Public good) में नहीं है, तो वह उसे नागरिकता से वंचित कर सकती है। गौरतलब है कि जो व्यक्ति जन्म के आधार पर भारत का नागरिक है, उसे किसी भी स्थिति में नागरिकता से वंचित नहीं किया जा सकता। शेष नागरिकों को नागरिकता से वंचित करने के लिए निम्नलिखित में से कोई कारण होना ज़रूरी है—
- (क) उस व्यक्ति ने नागरिकता प्राप्त करने के लिए कोई छल किया हो, झूठे तथ्य दिए हों या वास्तविक तथ्य छिपाए हों; अथवा
- (ख) उसने भारत के संविधान के प्रति अन्याय या अनिष्ठा की अभिव्यक्ति की हो; अथवा
- (ग) उसने किसी युद्ध के दौरान (जिसमें भारत शामिल रहा हो) शत्रु देश के साथ अवैध रूप से कोई व्यापार किया हो या उसे कोई ऐसी जानकारी दी हो जो देश को नुकसान पहुंचा सकती थी; अथवा
- (घ) नागरिक के रूप में पंजीकरण (Registration) या देशीयकरण (Naturalisation) के बाद आरंभिक 5 वर्षों में वह व्यक्ति किसी भी देश में 2 वर्षों या उससे अधिक अवधि के लिए कारावास में रहा हो; अथवा
- (ङ) वह नागरिक पिछले 7 वर्षों से सधारणतः भारत से बाहर रह रहा हो और इस दौरान वह न तो किसी शिक्षा संस्था में पढ़ा हो, न ही भारत सरकार या किसी ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सेवा में रहा हो जिसमें भारत भी एक सदस्य है।

(3) नागरिकता से जुड़े कुछ अन्य पक्ष (Other aspects related with Citizenship)

'नागरिकता अधिनियम, 1955' में कुछ और महत्वपूर्ण पक्ष हैं जिन पर ध्यान दिया जाना ज़रूरी है। ऐसे कुछ प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं—

- (i) 'जन्म से प्राप्त' व 'अन्य आधारों पर प्राप्त' नागरिकता में भेद: कुछ देश अपने सभी नागरिकों को बसबरे अधिकार देते हैं जबकि कुछ देशों में जन्म से नागरिकता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को शेष नागरिकों की तुलना में कुछ विशेषाधिकार दिए जाने का प्रचलन है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, भारतीय संविधान तो इस संबंध में कोई भेद नहीं करता, किंतु 'नागरिकता अधिनियम, 1955' की धारा 10 एक अंतर पैदा करती है। इस धारा के अनुसार, भारत सरकार सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों को नागरिकता से वंचित कर सकती है जो पंजीकरण (Registration) या देशीयकरण (Naturalisation) के माध्यम से नागरिक बने हों। जन्म के आधार पर नागरिकता प्राप्त करने वालों को किसी भी स्थिति में नागरिकता से वंचित नहीं किया जा सकता।

अमेरिका में नागरिकों को इन दोनों वर्गों में एक विशेष अंतर रखा गया है। वहाँ राष्ट्रपति वही व्यक्ति बन सकता है जो जन्म से अमेरिकी नागरिक है।

- (ii) **राष्ट्रमंडल नागरिकता (Commonwealth Citizenship):** 'कॉमनवेल्थ नागरिकता' एक विशेष दर्जा (Status) है जो ब्रिटेन द्वारा कॉमनवेल्थ देशों के सदस्यों को दिया जाता है, हस्तांतरित इस आधार पर कोई ब्रिटेन की नागरिकता (या पासपोर्ट) का दावा नहीं कर सकता। विभिन्न कॉमनवेल्थ देश एक-दूसरे के नागरिकों को भी यह दर्जा देते हैं तथा इसके तहत वीजा संबंधी नियमों व अन्य मामलों में कुछ सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

(Supplemental) में की गई थी। धारा 11 का शीर्षक था- 'कॉमनवेल्थ नागरिकता' (Commonwealth Citizenship)। इसके तहत भारत सरकार ने कॉमनवेल्थ के उन देशों के नागरिकों को 'कॉमनवेल्थ नागरिक' का दर्जा तथा विशेष सुविधाएँ दी थीं, जिन्होंने भारतीय नागरिकों के लिए समान सुविधाएँ घोषित की हुई थीं। 2003 के संशोधन द्वारा इस धारा को निरस्त (Repeal) कर दिया गया है।

- (iii) **राष्ट्रीय पहचान पत्र (National Identity Card):** 2003 के संशोधन के माध्यम से (जो 2004 में पारित तथा लागू हुआ) संसद ने 'नागरिकता अधिनियम, 1955' में एक नयी धारा 14(क) जोड़ी, जिसके तहत केंद्र सरकार को शक्ति दी गई है वह भारत के प्रत्येक नागरिक का अनिवार्य पंजीकरण कर सकती है तथा इस आशय से प्रत्येक नागरिक के लिए 'राष्ट्रीय पहचान पत्र' (National Identity Card) जारी कर सकती है। इस धारा में यह भी स्पष्ट किया गया है कि नागरिकों को अनिवार्य पंजीकरण के लिए केंद्र सरकार द्वारा एक निश्चित प्रक्रिया निर्धारित की जाएगी।

यह संशोधन इसलिए किया गया था क्योंकि तत्कालीन केंद्र सरकार 'आधार कार्ड' की व्यवस्था लागू करना चाहती थी जिसके तहत देश के प्रत्येक व्यक्ति को एक 'विशिष्ट पहचान संख्या' (Unique Identification Number) दिए जाने की योजना थी। 'आधार कार्ड योजना' का एक उद्देश्य वास्तविक लाभार्थियों तक सब्सिडी राशि पहुँचाने की अचूक व्यवस्था निर्मित करना है तो दूसरा अंतर्निहित उद्देश्य अवैध आप्रवासियों तथा आतंकवाद जैसी समस्याओं से निपटने के लिए हर व्यक्ति की पहचान करना भी है।

2009 में 'आधार योजना' को लागू करने के लिए 'भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण' (Unique Identification Authority of India) की स्थापना की गई। यह प्राधिकरण तभी से इस दिशा में कार्य कर रहा है। वर्तमान में यह योजना सकार होने लगी है क्योंकि केंद्र सरकार ने कुछ जिलों में सरकार की कुछ योजनाओं की सब्सिडी राशि आधार कार्ड से जुड़े लाभार्थियों के बैंक खातों में जमा करने की प्रक्रिया शुरू कर दी है।

विदेशी निवासियों के विशेष दर्जे (Special statuses of Foreign residents)

विदेशों में रहने वाले कुछ व्यक्तियों को भारत सरकार नागरिकता से अलग विशेष दर्जा देती है, जिसका संबंध उस व्यक्ति को भारत सरकार की ओर से मिलने वाली सुविधाओं से होता है। ऐसे तीन दर्जे प्रमुख हैं- (i) 'अनिवासी भारतीय' (NRI - Non-Resident Indians), (ii) 'भारतीय मूल के व्यक्ति' (PIO - Persons of Indian Origin), तथा (iii) 'भारत के समुद्रपारीय नागरिक' (OCI - Overseas Citizens of India)। इन तीनों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(1) अनिवासी भारतीय (NRI - Non-Resident Indians)

अनिवासी भारतीय भारत के ही नागरिक होते हैं और भारतीय पासपोर्ट धारण करते हैं; किंतु ये नौकरी या व्यवसाय के लिए साधारणतः भारत से बाहर रहते हैं। यदि कोई भारतीय नागरिक लंबे समय तक विदेश में निवास करता है और उसके व्यवहार से प्रतीत होता है कि उसकी मंश अनिश्चित काल तक भारत से बाहर रहने की है, तो उसे भी अनिवासी भारतीय (NRI) का दर्जा दिया जाता है। भारत सरकार द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) तथा अन्य विदेशी नियुक्तियों पर भेजे गए व्यक्तियों को भी अनिवासी भारतीय का दर्जा दिया जाता है।

अनिवासी भारतीयों की मांग रही है कि उन्हें भारत के चुनावों में डाक या इंटरनेट द्वारा मतदान करने की अनुमति दी जाए क्योंकि चुनाव के समय उनका भारत में होना प्रायः संभव नहीं होता। अभी उन्हें यह सुविधा नहीं दी गई है, पर इस संबंध में सरकार विचार कर रही है। लोकसभा में 2010 में 'लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक' (Representation of the people (Amendment) Bill) पेश किया गया है जो डाक या इंटरनेट द्वारा मतदान का अधिकार तो नहीं देता; पर भारत में 6 महीनों से अधिक समय तक न रहने के बावजूद अनिवासी भारतीयों को मतदाता के रूप में पंजीकरण करने तथा मतदान करने की सुविधा प्रदान करता है। 2011 में इस संबंध में सरकार ने अधिसूचना जारी करके अनिवासी भारतीयों को मतदाता के रूप में पंजीकृत होने की सुविधा प्रदान कर दी है।

(2) भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO - Persons of Indian Origin)

में कुछ और देशों का नाम भी जोड़ सकती है।

भारतीय मूल के व्यक्तियों को 2002 में एक कार्ड जारी करने की प्रक्रिया शुरू की गई थी जिसे 'भारतीय मूल का व्यक्ति कार्ड' या 'भारतवंशी कार्ड' (PIO Card) कहा जाता है। इस कार्ड के धारकों को कई विशेष सुविधाएँ दी गई हैं, जैसे-

- (क) इस कार्ड के धारक कार्ड जारी होने की तिथि से 15 वर्षों तक बिना वीज़ा के भारत आ सकते हैं;
- (ख) भारत में प्रवास (Stay) के दौरान 180 दिनों की अवधि तक उन्हें 'विदेश क्षेत्रीय पंजीकरण अधिकारी' (FRRO - Foreign Regional Registration Officer) या 'विदेश पंजीकरण अधिकारी' (FRO - Foreign Registration Officer) के पास पंजीकरण कराने से छूट दी गई है;
- (ग) अनिवासी भारतीयों को प्राप्त लगभग सभी आर्थिक, वित्तीय तथा शैक्षिक सुविधाएँ इन्हें भी दी गई हैं। इसका एकमात्र अपवाद यह है कि ये कृषि-भूमि या कृषि-संपत्ति नहीं खरीद सकते। इसके अलावा, इनके लिए पर्वतारोहण, अनुसंधान कार्य तथा मिशनरी गतिविधियों के लिए सरकार की अनुमति लेना अनिवार्य है। इन्हें मतदान करने या चुनाव लड़ने जैसे राजनीतिक अधिकार नहीं दिए गए हैं, क्योंकि ये अधिकार सिर्फ भारत के नागरिकों को दिए जाते हैं। संवैधानिक पक्षों, जैसे राष्ट्रपति, राज्यपाल आदि पर नियुक्त होने का अधिकार भी इनके पास नहीं है।

'नागरिकता अधिनियम' के तहत व्यवस्था की गई है कि यदि कोई 'भारतीय मूल का व्यक्ति' (PIO) भारत का नागरिक बनना चाहता है तो वह कम से कम 7 वर्षों तक भारत में निवास करने के बाद इस आशय का आवेदन कर सकता है।

(3) भारत के समुद्रपारीय नागरिक (OCI - Overseas Citizens of India)

यह एक विशेष दर्जा है जो भारत सरकार ने 2005 से देना शुरू किया है। इससे संबंधित प्रावधान 'नागरिकता अधिनियम, 1955' में विशेष अनुच्छेद 7(क), 7(ख), 7(ग) तथा 7(घ) जोड़कर शामिल किए गए हैं। इसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं-

- (i) कोई भी व्यक्ति जो पाकिस्तान या बांग्लादेश (तथा भारत सरकार द्वारा इस प्रयोजन के लिए घोषित किसी अन्य देश) का नागरिक नहीं है और न ही कभी रहा है; यदि वह निम्नलिखित में से कोई शर्त पूरी करता है तो वह समुद्रपारीय भारतीय नागरिकता के लिए अर्ह (Eligible) माना जाएगा-

- (क) पूरी आयु व क्षमता का वह व्यक्ति जो अभी किसी अन्य देश का नागरिक है किंतु भारतीय संविधान लागू होने के समय या उसके पश्चात कभी भी भारत का नागरिक रह चुका है; अथवा
- (ख) यदि वह किसी अन्य देश का नागरिक है किंतु संविधान का प्रारंभ होने के समय भारत का नागरिक होने की अर्हता रखता था; अथवा
- (ग) यदि वह किसी अन्य देश का नागरिक है किंतु किसी ऐसे क्षेत्र से संबंध रखता है जो 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत का अंग बन गया है; अथवा
- (घ) यदि वह उपरोक्त तीनों में से किसी वर्ग में शामिल किसी व्यक्ति का बेटा/बेटी या पोता/पोती/नाती/नातिन है।

गौरतलब है कि उपरोक्त वर्गों में शामिल व्यक्तियों के अव्यस्क बच्चे भी यह दर्जा प्राप्त करने के लिए अर्हित हैं, हालाँकि अभी तक उनके वैवाहिक संबंधियों (Spouses) को यह सुविधा नहीं दी गई है।

- (ii) समुद्रपारीय भारतीय नागरिकों को कई विशेष अधिकार तथा सुविधाएँ दी जाती हैं, जैसे-

- (क) उन्हें 'बहुउद्देश्यीय जीवनपर्यंत वीज़ा' (Multipurpose Lifelong VISA) दिया जाता है जिसके तहत वे जितनी बार चाहे भारत आ सकते हैं।
- (ख) वे भारत में किसी भी अवधि तक रह सकते हैं और इसके लिए उन्हें 'विदेश क्षेत्रीय पंजीकरण अधिकारी' (FRRO - Foreign Regional Registration Officer) या 'विदेश पंजीकरण अधिकारी' (FRO - Foreign Registration Officer) के पास पंजीकरण कराने से छूट दी गई है।

के नागरिकों के लिए आरक्षित किया गया है। ऐसे पदों में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सर्वोच्च व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, संसद तथा राज्य विधानमंडलों की सदस्यता इत्यादि शामिल हैं। भारत सरकार तथा राज्यों के अधीन नौकरियों के लिए भी वे साधारणतः अर्ह (Eligible) नहीं हैं, हालाँकि केंद्र सरकार विशेष आदेश द्वारा उन्हें किन्हीं सेवाओं या पदों के लिए अर्हता प्रदान कर सकती है।

(iii) नागरिकता अधिनियम में यह भी बताया गया है कि किन स्थितियों में समुद्रपारीय भारतीय नागरिकता रद्द की जा सकती है? केंद्र सरकार यदि निम्नलिखित में से किसी बात से संतुष्ट हो तो वह किसी व्यक्ति की समुद्रपारीय नागरिकता रद्द कर सकती है—

- (क) यदि उसने छल या झूठे तथ्यों की मदद से या कोई तथ्य छिपाकर समुद्रपारीय नागरिकता हासिल की है; अथवा
- (ख) यदि उसने विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार किया है; अथवा
- (ग) यदि किसी ऐसे युद्ध के दौरान जिसमें भारत भी शामिल था, उसने शत्रु देश के साथ अवैध रूप से व्यापार या संचार किया है या उसे कोई ऐसी जानकारी दी है जिसने शत्रु देश को लाभ पहुँचाया है; अथवा
- (घ) यदि वह समुद्रपारीय भारतीय नागरिक बनने के बाद 5 वर्षों की अवधि में कम से कम 2 वर्षों तक कारावास में रहा है; अथवा
- (ङ) यदि सरकार की राय में भारत की संप्रभुता या अखंडता, भारत की सुरक्षा, किसी अन्य देश के साथ भारत के मित्रतापूर्ण संबंधों या साधारण जनता के हित में उसकी समुद्रपारीय नागरिकता को रद्द किया जाना जरूरी है।

(iv) यदि कोई समुद्रपारीय नागरिक स्वयं यह दर्जा छोड़ना चाहे तो वह इस संबंध में निधारित प्रारूप के तहत घोषणा कर सकता है। केंद्र सरकार द्वारा इस घोषणा का पंजीकरण किए जाने के साथ ही उसकी समुद्रपारीय नागरिकता समाप्त हो जाती है। ऐसा होते ही उसके अवयस्क बच्चे भी भारत के समुद्रपारीय नागरिक नहीं रहते।

(4) वर्तमान स्थिति (Current Status)

2011 में भारत सरकार ने घोषणा की है कि भारतीय मूल के व्यक्तियों को जारी होने वाला कार्ड (PIO कार्ड) अब समुद्रपारीय नागरिक कार्ड (OCI कार्ड) से अलग नहीं रहेगा। सरकार इस योजना पर कार्य कर रही है कि दोनों कार्डों की भिन्नता को समाप्त करके एक ही कार्ड रखा जाए ताकि प्रशासनिक अड़चनें कम हो जाएँ। दोनों कार्डों के कई प्रावधान ऐसे थे जो मिलते-जुलते होने के कारण भ्रम उत्पन्न करते थे। भारतीय मूल के कई विदेशी व्यक्तियों ने इन कार्डों के अंतर को समाप्त करने की मांग की थी। आसूचना ब्यूरो (Intelligence Bureau) ने भी सरकार को सलाह दी थी कि यह अंतर समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

अभी तक इस संबंध में 'नागरिकता अधिनियम, 1955' में संशोधन नहीं किया जा सका है। संभवतः निकट भविष्य में दोनों कार्डों का अंतर समाप्त हो जाएगा।

(5) तीनों दर्जों की तुलना (Comparison of the three statuses)

निम्नलिखित तालिका में तीनों दर्जों— 'अनिवासी भारतीय' (NRIs), 'भारतीय मूल के व्यक्ति' (PIO) तथा 'समुद्रपारीय भारतीय नागरिक' (OCI) की समानताएँ तथा भिन्नताएँ देखी जा सकती हैं—

तुलना का आधार	अनिवासी भारतीय (NRI)	भारतीय मूल का व्यक्ति (PIO)	समुद्रपारीय भारतीय नागरिक (OCI)
1. नागरिकता	भारतीय नागरिक	विदेशी नागरिक	विदेशी नागरिक
2. साधारण निवास	विदेश में	विदेश में	विदेश में
3. अर्हता	विदेशों में लंबे समय तक रहने वाले भारतीय नागरिक	(i) वह विदेशी नागरिक जिसने कभी भारतीय पासपोर्ट धारण किया हो; या (ii) जिसके माता-पिता या दादा-दादी/नाना-नानी में से कोई 1935 के	(i) वह विदेशी नागरिक जो 26.1.1950 को भारत का नागरिक होने के लिए अर्ह (eligible) था; या इस तिथि या उसके बाद कभी भी

तुलना का आधार	अनिवासी भारतीय (NRJ)	भारतीय मूल का व्यक्ति (PIO)	समुद्रपारीय भारतीय नागरिक (OCI)
		स्थायी नागरिक रहा हो; या ऐसे स्थान का स्थायी नागरिक रहा हो जो 15.8.1947 के बाद भारत का अंग बन गया हो। (iii) ऐसे व्यक्तियों के विवाह-संबंधी (spouses) भी अर्ह (eligible) हैं। (iv) पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, चीन तथा अफगानिस्तान के नागरिक इसमें शामिल नहीं हो सकते। केंद्र सरकार इस सूची में कुछ और देशों को शामिल कर सकती है।	ऐसे क्षेत्र का नागरिक था जो 15.8.1947 के बाद भारत का अंग बन गया हो; वह तथा उसके पुत्र, पुत्री, पोता/पोती, नाती/नातिन इस दर्जे के लिए अर्ह हैं। उनके अवयस्क बच्चे भी अर्ह हैं, पर विवाह-संबंधी (spouses) नहीं। (ii) शर्त यह है कि वे ऐसे देश के नागरिक हों जो किसी न किसी रूप में दोहरी नागरिकता स्वीकार करता हो। (iii) पाकिस्तान और बांग्लादेश के नागरिकों तथा उनके परिवारजनों को यह दर्जा नहीं दिया जाता है। केंद्र सरकार इस सूची में और देशों को भी शामिल कर सकती है।
4. सुविधाएँ	नागरिकों को प्राप्त लक्ष्यपूर्ण सभी सुविधाएँ जो केंद्र सरकार द्वारा घोषित की गई हो।	(i) 15 वर्षों तक वीजा की जरूरत नहीं। (ii) एक यात्रा के दौरान 180 दिनों तक विदेश पंजीकरण अधिकारी (FRO- Foreign Registration Officer) के पास पंजीकरण करने से छूटी यह अवधि बीस जून पर 30 दिनों के भीतर पंजीकरण जरूरी। (iii) अनिवासी भारतीयों (NRIs) को मिलने वाली सभी आर्थिक, वित्तीय तथा शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध; किंतु कृषि-भूमि/कृषि-संपत्ति या बागान आदि खरीदने की छूट नहीं।	(i) जीवनपर्यंत वीजा। (ii) एक यात्रा की अवधि चाहे जितनी लंबी हो, विदेश पंजीकरण अधिकारी (FRO- Registration Officer) के पास पंजीकरण करने की जरूरत नहीं। (iii) अनिवासी भारतीयों को मिलने वाली सभी आर्थिक, वित्तीय तथा शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध; किंतु कृषि-भूमि/कृषि-संपत्ति या बागान आदि खरीदने की छूट नहीं।
5. किन कार्यों की अनुमति	कोई भी ऐसा कार्य करने की अनुमति जो नागरिक को मिलने	पर्वतारोहण, मिशनरी-कार्य, अनुसंधान-कार्य या प्रतिबंधित क्षेत्रों की यात्रा के लिए विशेष	पर्वतारोहण, मिशनरी-कार्य, अनुसंधान-कार्य या प्रतिबंधित क्षेत्रों की यात्रा के लिए विशेष अनुमति

तुलना का आधार	अनिवासी भारतीय (NRI)	भारतीय मूल का व्यक्ति (PIO)	संयुद्धप्रायी भारतीय नागरिक (OCI)
7. भारत में मतधिकार	दे दिया गया है	नहीं	नहीं
8. चुनाव लड़ने का अधिकार	साधारणतः नहीं	नहीं	नहीं
9. संवैधानिक पदों या सरकारी नौकरियों पर नियुक्ति की अर्हता	हाँ	नहीं	नहीं
10. भारत में शिक्षा सुविधा	हाँ (अनिवासी भारतीय कोटा में)	हाँ (अनिवासी भारतीय कोटा में)	हाँ (अनिवासी भारतीय कोटा में)
11. भारत में भारतीय मुद्रा में बैंक खाता खोलने की सुविधा	हाँ	हाँ	हाँ

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित में कौन-सा कथन सत्य है?

- (1) अन्यदेशीय व्यक्ति (Aliens) वे व्यक्ति हैं जो नागरिकता संबंधी दस्तावेजों के अभाव में राज्यविहीन घोषित कर दिये गये हैं।
- (2) भारत में सिर्फ विधिक व्यक्तियों को नागरिकता दी जाती है, प्राकृतिक व्यक्तियों को नहीं।
- (3) इंग्लैण्ड में दोहरी नागरिकता की धारणा प्रचलन में है जबकि अमेरिका एवं स्विट्जरलैंड जैसे संघात्मक देशों में एकल नागरिकता का नियम लागू है।
- (4) भारत के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया है कि किसी विधिक व्यक्ति को मूल अधिकार नहीं दिए जा सकते हैं।

2. यद्यपि भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था लागू है किंतु कुछ ऐसे प्रावधान हैं जो एकल नागरिकता के अपवाद कहे जा सकते हैं। ऐसे प्रावधानों में सम्मिलित हैं—

- (i) अनुच्छेद 370

कूट—

- (1) केवल (i)
- (2) (ii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) उपरोक्त सभी

3. निम्नलिखित में कौन-सा सुमेलित नहीं है?

- (1) अधिवास द्वारा नागरिकता— अनुच्छेद 5
- (2) भारत से बाहर रहने वाले भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता— अनुच्छेद 8
- (3) नागरिकता की समाप्ति— अनुच्छेद 10
- (4) पाकिस्तान को प्रव्रजन करने वाले लोगों की नागरिकता— अनुच्छेद 7

4. निम्नलिखित में सत्य कथन कौन-सा/से है/हैं?

- (i) नागरिकता से संबंधित किसी भी विषय पर कानून बनाने की पूर्ण शक्ति अनुच्छेद 11 के तहत संसद के पास है।

(iii) 3 दिसंबर, 2004 को या उसके बाद भारत के बाहर जन्मा कोई भी व्यक्ति वंश के आधार पर भारत का नागरिक हो सकता है, यदि उसके जन्म के एक वर्ष के भीतर भारतीय दूतावास में उसके जन्म का पंजीकरण करा दिया गया हो।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) केवल (i)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

5. सूची-I को सूची-II से सुपेलित कीजिए-

सूची-I (आवेदन करने योग्य व्यक्ति)	सूची-II (नागरिकता का अर्जन)
(A) यदि उसका जन्म 10 दिसंबर, 1992 को या उसके बाद हुआ हो तथा उसके माता-पिता में से कोई एक उसके जन्म के समय भारत का नागरिक हो।	(i) देशीकरण द्वारा नागरिकता
(B) भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो साधारणतः अविभाजित भारत (1935 के भारत शासन अधिनियम के अनुसार) से बाहर किसी देश में रह रहा हो।	(ii) जन्म से नागरिकता
(C) लंबे निवास के आधार पर किसी देश का नागरिक बन जाना।	(iii) वंश के आधार पर नागरिकता
(D) जिसका जन्म 26 जनवरी 1950 को या उसके बाद किंतु 1 जुलाई, 1987 से पहले भारत के राज्यक्षेत्र में हुआ हो।	(iv) पंजीकरण द्वारा नागरिकता

कूट-

A	B	C	D
(1) (iv)	(ii)	(i)	(iii)
(2) (i)	(ii)	(iii)	(iv)
(3) (iii)	(iv)	(ii)	(i)
(4) (iii)	(iv)	(i)	(ii)

6. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

(1) जब कोई भारतीय नागरिक अपनी नागरिकता का परित्याग करता है तो उसके अवशेषक बच्चे स्वतः

(2) यदि कोई व्यक्ति किसी देश की नागरिकता ऐसे समय स्वीकार करता है जब कोई युद्ध चल रहा है और भारत भी उस युद्ध में शामिल है तो उसकी नागरिकता स्वतः समाप्त हो जाती है।

(3) जो व्यक्ति जन्म के आधार पर भारत का नागरिक है, उसे किसी भी स्थिति में नागरिकता से वंचित नहीं किया जा सकता।

(4) उपरोक्त में से कोई नहीं।

7. भारत में कौन से पदों के लिए जरूरी है कि अभ्यर्थी जन्म से भारत का नागरिक हो-

- (1) राष्ट्रपति (2) प्रधानमंत्री
(3) सांसद व विधायक (4) कोई नहीं

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) जो व्यक्ति पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान या चीन के नागरिक हैं या कभी रहे हैं वे भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO) वर्ग में शामिल नहीं हो सकते।

(ii) 'नागरिकता अधिनियम' के तहत व्यवस्था की गई है कि यदि कोई 'भारतीय मूल का व्यक्ति' (PIO) भारत का नागरिक बनना चाहता है तो वह कम से कम 7 वर्षों तक भारत में निवास करने के बाद इसे आशय का आवेदन कर सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

9. समुद्रपारीय भारतीय नागरिकों (OCI) के संबंध में सुपेलित कथनों का चयन कीजिए-

(i) वे भारत में किसी भी अवधि तक रह सकते हैं और इसके लिए उन्हें पंजीकरण कराने से छूट दी गई है।

(ii) वे मतदान तो नहीं कर सकते, लेकिन उम्मीदवार बनकर चुनाव लड़ सकते हैं।

(iii) यदि कोई समुद्रपारीय नागरिक स्वयं यह दर्जा छोड़ना चाहे तो वह इस संबंध में निर्धारित प्रारूप के तहत घोषणा कर सकता है।

(iv) केन्द्र सरकार द्वारा इस घोषणा का पंजीकरण किए जाने के साथ ही उसकी समुद्रपारीय नागरिकता समाप्त हो जाती है।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iv)
(2) (i), (iii) और (iv)
(3) (ii), (iii) और (iv)

10. निम्नलिखित में सत्य कथन का चयन कीजिए—

- (i) नागरिकता के आधार पर अनिवासी भारतीय (NRI) भारतीय नागरिकों की श्रेणी में आते हैं जबकि भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO) विदेशी नागरिक होते हैं।
- (ii) नागरिकता की दृष्टि से समुद्रपारीय भारतीय नागरिक (OCI) विदेशी नागरिक होते हैं।
- (iii) पाकिस्तान और बांग्लादेश के नागरिकों तथा उनके परिवारजनों को समुद्रपारीय भारतीय नागरिक (OCI) का दर्जा नहीं दिया जाता है।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

11. निम्नलिखित में असत्य कथन कौन-सा/से है/हैं?

- (i) अनिवासी भारतीयों (NRIs) को भारत में मताधिकार दे दिया गया है।
- (ii) भारतीय मूल के व्यक्तियों (PIOs) और समुद्रपारीय भारतीय नागरिकों (OCIs) को भारत में मताधिकार नहीं दिया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/है?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनिवासी भारतीय कोटा के तहत अनिवासी भारतीय (NRI), भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO) तथा समुद्रपारीय भारतीय नागरिक (OCI) भारत में शिक्षा सुविधा प्राप्त कर सकते हैं।
- (ii) अनिवासी भारतीय (NRI), भारतीय मूल के व्यक्ति (PIO) तथा समुद्रपारीय भारतीय नागरिक (OCI) तीनों को भारत में भारतीय मुद्रा में बैंक खाता खोलवाने की सुविधा प्राप्त है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/है?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. निम्नलिखित में कौन-कौन से अनुच्छेद भारत की संसद को नागरिकता से संबंधित विधि बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं?

- (i) अनुच्छेद 8 (ii) अनुच्छेद 9
- (iii) अनुच्छेद 10 (iv) अनुच्छेद 11

कूट—

- (1) (i) और (ii)
- (2) केवल (iii)
- (3) (iii) और (iv)
- (4) (ii), (iii) और (iv)

14. 'नागरिकता अधिनियम, 1955' की धारा 3-7 के अंतर्गत ऐसे कितने तरीके बताए गए हैं जिनके आधार पर कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है?

- (1) 3 (2) 4
- (3) 5 (4) 6

15. 'नागरिकता अधिनियम, 1955' में नागरिकता की समाप्ति से संबंधित स्थितियाँ बताई गई हैं। इन स्थितियों में सम्मिलित हैं—

- (i) नागरिकता का परित्याग।
- (ii) नागरिकता की समाप्ति (termination)।
- (iii) नागरिकता से वंचित किया जाना।

कूट—

- (1) केवल (i) (2) (i) और (iii)
- (3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

भारत संघ और उसका राज्य-क्षेत्र (Union of India and Its Territory)

भारतीय संविधान के भाग-1 (अनुच्छेद 1 से 4) में इस बात की चर्चा की गई है कि भारत के राज्य-क्षेत्र (Indian territory) में किस-किस प्रकार की इकाइयाँ होंगी और उनका भारत संघ (Union of India) के साथ क्या संबंध होगा? इस भाग को ठीक से समझने के लिए हम सभी अनुच्छेदों पर क्रमशः विचार करेंगे—

अनुच्छेद 1 (Article 1)

अनुच्छेद 1(1) [Article 1(1)]

अनुच्छेद 1(1) में कहा गया है कि “इंडिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ (Union) होगा” (India, that is Bharat, shall be a union of states)।

यह कथन दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है—

1. इसमें ‘इण्डिया, दैट इज भारत’ का उल्लेख किया गया है, उससे एक प्रश्न उठता है कि संविधान निर्माताओं को एक ही देश के दो नामों का उपयोग करने की क्या आवश्यकता थी? वस्तुतः भारत नाम से ही देश के नाम के मुद्दे पर काफी चर्चा हुई थी। जो लोग भारत का प्राचीन परम्परा और संस्कृति का बल दे रहे थे उनकी इच्छा थी कि देश का नाम ‘भारत’ होना चाहिए। दूसरी ओर, कुछ नेताओं की राय थी कि ‘इण्डिया’ नाम से भारत को पूरे विश्व में पहचाना जाता है तथा यह आधुनिक नाम है इसलिए देश का नाम ‘इण्डिया’ ही होना चाहिए। प्रत्यक्ष है कि संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation) में भी उस समय भारत का नाम ‘इंडिया’ था तथा हमारे देश के सभी अंतर्राष्ट्रीय समझौते भी ‘इंडिया’ नाम से हुए थे। चूंकि संविधान सभा विवाद के मामले में संवत्समिति (Consensus) की नीति को देश में समायोजन (Accommodation) के सिद्धांत के अनुसरण करती थी इसलिए उसने दोनों ही नामों को शामिल कर लेना उचित समझा। विवाद इस पर भी था कि ‘इण्डिया, दैट इज भारत’ कहना ज्यादा उचित है या ‘भारत, दैट इज इंडिया’। किन्तु, इस विवाद पर ज्यादा बल देने के बजाय ‘इण्डिया, दैट इज भारत’ अभिव्यक्ति को चुन लिया गया। इसका अर्थ यह है कि देश का औपचारिक नाम ‘इण्डिया’ है।
2. इस कथन में प्रयुक्त शब्द ‘यूनियन’ भी व्याख्या की अपेक्षा रखता है। संविधान सभा के समक्ष यह प्रश्न काफी महत्वपूर्ण था कि भारत की शासन प्रणाली की एकमात्र ढांचे (Unitary structure) के अनुसार रखा जाए या संघात्मक (Federal structure) ढांचे के अनुसार? ज्यादा सहमति इस पर थी कि केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का वितरण प्रायः वैसा ही होना चाहिए जैसा संघात्मक (Federal) शासन प्रणाली में होता है। किन्तु, उस समय भारत स्वतंत्र हुआ ही था तथा विभिन्न रियासतों (Princely states) से मिलकर बने भारत देश के समक्ष एक बड़ी चुनौती राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाये रखने की थी। इसके लिए जरूरी था कि राज्यों को इतनी स्वाधीनता न दी जाए कि भविष्य में किसी भी तनाव की स्थिति में राष्ट्रीय एकता पर खतरा उपस्थित हो जाए। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने ‘यूनियन’ शब्द का प्रयोग करने के पीछे दो स्पष्ट कारण गिनाये हैं—

(क) भारत विभिन्न राज्यों के मध्य किसी समझौते का परिणाम नहीं है,

(ख) किसी भी राज्य को भारत संघ से पृथक् होने का कोई अधिकार नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर ने इस संबंध में संविधान सभा में कहा भी था कि “अमेरिकियों को यह सिद्ध करने के लिए गृहयुद्ध छेड़ना पड़ा था कि राज्यों को फेडरेशन से अलग होने का कोई अधिकार नहीं है तथा उनका फेडरेशन अविनाशी है। ग्राहप समिति (Drafting committee) का विचार था कि इस प्रश्न को अटकलवाजी या विवाद के लिए छोड़ देने की बजाय बेहतर यही है कि इसे आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया जाए।”

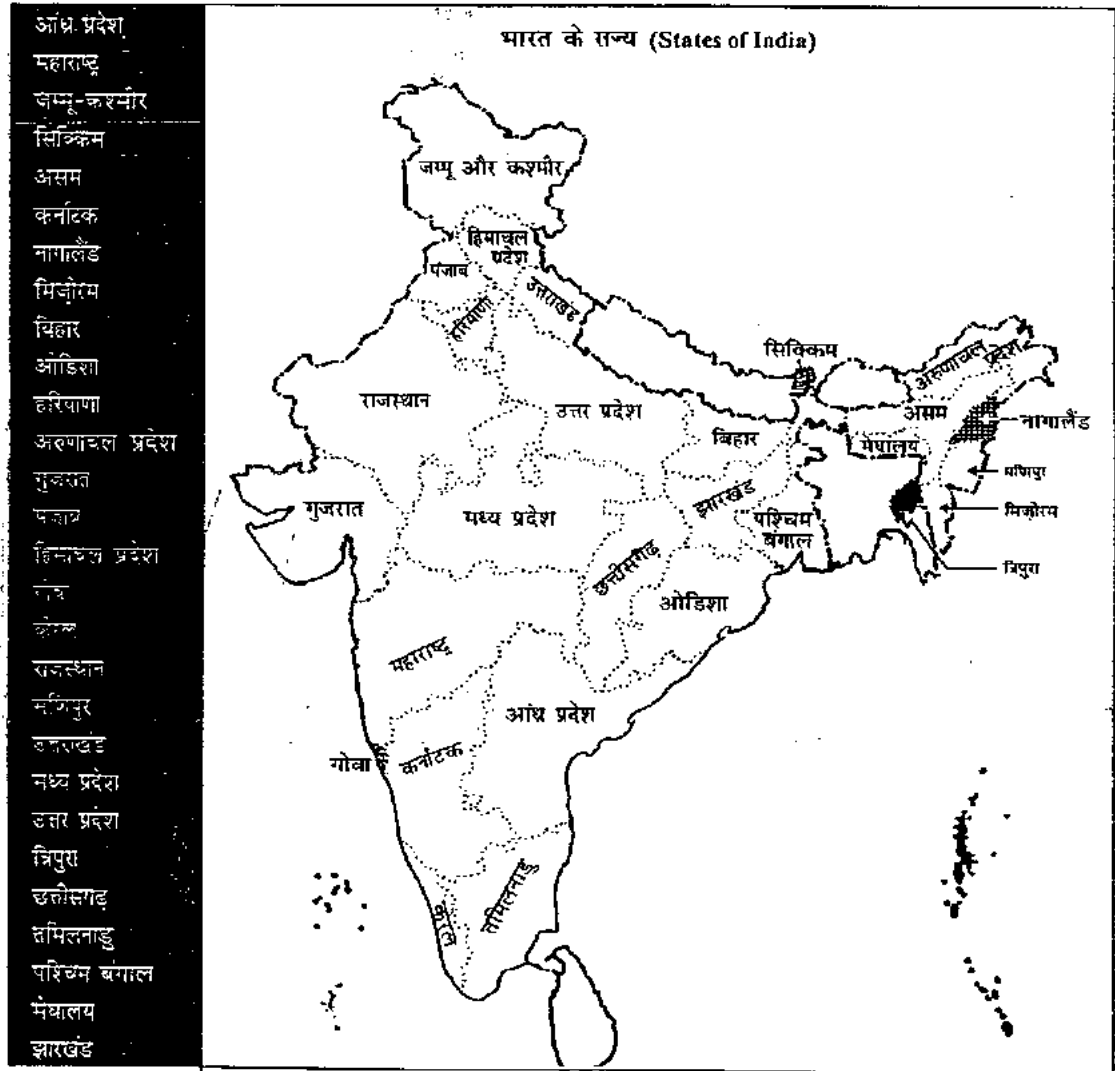
अनुच्छेद 1(3) [Article 1(3)]

(ग) ऐसे अन्य राज्य-क्षेत्र जो अर्जित किये जाएँ (Such other territories as may be acquired)।

संविधान की प्रथम अनुसूची में सभी राज्यों (States) तथा संघ राज्य-क्षेत्रों (Union territories) आदि के नाम दिये गये हैं। इस अनुसूची के तहत वर्तमान में 28 राज्य हैं तथा 7 संघ राज्य-क्षेत्र। भारत द्वारा अर्जित (Acquired) राज्य-क्षेत्रों की सूची में वर्तमान में कोई क्षेत्र शामिल नहीं है। जब भारत ने पांडिचेरी, कर्गुल, माहे और यनम को फ्रेंस से अर्जित किया था तो 1954 से 1962 तक उन क्षेत्रों को अर्जित राज्य-क्षेत्रों (Acquired territories) के रूप में प्रशासित किया जाता रहा था क्योंकि फ्रेंसीसी संसद ने तब तक अध्यापन की संधि (Treaty of cession) को अनुमोदित (ratify) नहीं किया था। 1962 के बाद ये क्षेत्र संघ राज्य-क्षेत्र (Union territories) बन गये। इनके अलावा, भारत ने समय-समय पर कुछ और भी विदेशी क्षेत्रों को अर्जित किया है, जैसे- गोवा, दमन व दीव, दादरा और नागर हवेली, सिक्किम इत्यादि। किन्तु, अब ये सारे क्षेत्र राज्यों (States) या संघ राज्य-क्षेत्रों (Union territories) की सूची में हो शामिल हो चुके हैं, कोई भी अर्जित राज्य-क्षेत्रों (Acquired territories) में शामिल नहीं है।

(क) राज्य (States):

वर्तमान में प्रथम अनुसूची में जिन 28 राज्यों का उल्लेख है, उनकी सूची इस प्रकार है-



सामान्यतः संघ राज्य-क्षेत्र (Union territories) केन्द्रशासित (Centrally administered) होते हैं किंतु दो मामलों में इसका अपवाद दिखाई पड़ता है— दिल्ली और पाण्डिचेरी। संसद ने 1962 में 14वें संविधान-संशोधन के आधार पर अनुच्छेद 239(क) के तहत 'पाण्डिचेरी (प्रशासन) अधिनियम' बनाया था, जिसके तहत पाण्डिचेरी में विधानमंडल (Legislature) का प्रावधान किया गया था। इसी प्रकार, 1991 में संविधान का 69वाँ संशोधन करके अनुच्छेद 239(क क) तथा (क ख) को शामिल किया गया, जिनके तहत दिल्ली में विधान सभा और भविष्यमंडल का प्रावधान किया गया (239 क क) तथा दिल्ली का नाम बदलकर 'दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र' (Delhi National Capital Territory) कर दिया गया (239 क ख)। ये दोनों संघ राज्य-क्षेत्र (Union territory) ऐसे हैं जहाँ का शासन अंशतः वहाँ के विधानमंडल एवं सरकार द्वारा चलता है और अंशतः इसमें केन्द्र सरकार की भूमिका रहती है। शेष पाँचों संघ राज्य-क्षेत्र (Union territories) केन्द्रशासित प्रदेश (Centrally administered territories) हैं अर्थात् उनका प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रशासक चलाता है। अनुच्छेद 239-40 के अन्तर्गत केन्द्रशासित संघ संबंधित नियम भी राष्ट्रपति द्वारा ही बनाए जाते हैं।

'भारत का क्षेत्र' तथा 'भारत संघ' में अंतर (Difference between 'Territory of India' and 'Union of India')

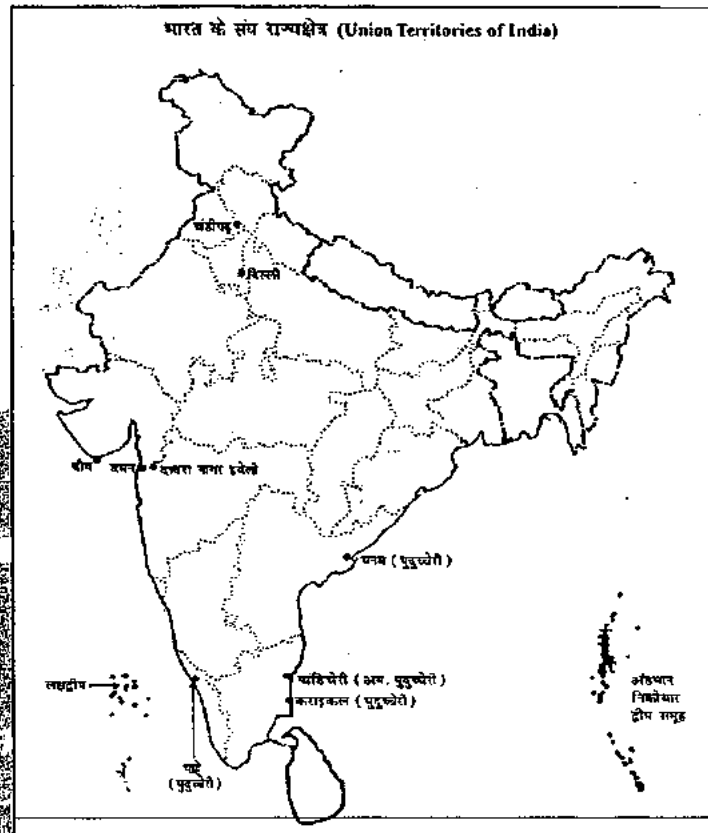
अनुच्छेद 1 के संबंध में ध्यान रखने की एक बात यह भी है कि भारत का क्षेत्र (Territory of India) तथा भारत संघ (Union of India) समानार्थक शब्द नहीं हैं। भारत संघ अर्थात् 'यूनियन ऑफ इण्डिया' में सिर्फ वह क्षेत्र शामिल होता है जो राज्यों का क्षेत्र है जबकि भारत के राज्य-क्षेत्र (Territory of India) में राज्यों और संघ राज्य-क्षेत्रों सहित वह सारा भू-भाग शामिल होता है जिस पर भारत की संप्रभुता का विस्तार होता है।

कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान (Special Provisions for some states):

संविधान की अनुसूची 1 में राज्यों की जो सूची दी गयी है, उनमें जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर शेष सभी राज्यों पर संविधान के उपबंध समान रूप से लागू होते हैं। किंतु, संविधान के भाग 21 में कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। इनमें अनुच्छेद 370 का संबंध जम्मू कश्मीर से जुड़े विशेष प्रावधानों से है जबकि अनुच्छेद 371 के अन्तर्गत कई राज्यों, जैसे— महाराष्ट्र, गुजरात (अनुच्छेद 371), नागालैण्ड [अनुच्छेद 371(क)], असम [371(ख)], मणिपुर [371(ग)], आंध्र प्रदेश [371(घ, ङ)], सिक्किम [371(च)], मिजोरम [371(छ)], अरुणाचल प्रदेश [371(ज)] तथा गोवा [371(झ)] के संबंध में प्रावधान किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त, पाँचवी और छठी अनुसूचियों में कुछ अनुसूचित क्षेत्रों (Schedule areas) और जनजातीय क्षेत्रों (Tribal areas) के प्रशासन के लिए कुछ विशेष उपबंध भी किए गये हैं।

अनुच्छेद 2 (Article 2)



अनुच्छेद 2 में भी राज्यों की तुलना में केन्द्र का अधिक महत्व साफ़ नज़र आता है। नये राज्यों को भारत संघ (Union of India) में शामिल करने के लिए संसद को राज्यों के समर्थन की ज़रूरत नहीं है। यदि उसे उचित लगे तो उसे ऐसा करने की पूरी छूट है।

अनुच्छेद 3 (Article 3)

अनुच्छेद 3 में बताया गया है कि संसद के पास विभिन्न राज्यों की सीमाओं या नाम आदि में परिवर्तन की क्या शक्ति है। इसमें कहा गया है कि—

“संसद, विधि द्वारा—

- (क) किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्यक्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी;
- (ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी;
- (ग) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी;
- (घ) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी;
- (ङ) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।”

स्पष्ट है कि भारतीय संसद की शक्ति राज्यों की तुलना में बहुत ज्यादा है क्योंकि राज्यों का अस्तित्व ही संसद की इच्छा पर टिका हुआ है। खास बात यह है कि राज्यों की सीमाओं को बदलने या उनके नाम बदलने के लिए संसद को विशेष बहुमत (Special majority) की भी ज़रूरत नहीं है, वह ऐसा साधारण बहुमत (Simple majority) से होकर सकती है।

राज्यों के नाम, सीमा या क्षेत्र बदलने की प्रक्रिया (Procedure for changing names, boundaries or areas of the states)

अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत राज्यों की सीमाओं या नामों आदि में परिवर्तन करने के लिए संसद को एक निश्चित प्रक्रिया को पूरा करना होता है जिसके विभिन्न चरण इस प्रकार हैं—

1. किसी नये राज्य के निर्माण या वर्तमान सीमा को साधारण बदलने के लिए कोई भी विधेयक (Bill) संसद में तभी पेश किया जा सकता है जब राष्ट्रपति उसके लिए सिफारिश करे।
2. विधेयक द्वारा यदि किसी राज्य के क्षेत्र, नाम या सीमा में परिवर्तन होने वाला है तो राष्ट्रपति को वह विधेयक उस राज्य या उन राज्यों के विधानमंडलों को विचारित भेजना होगा। राष्ट्रपति इस विचार प्रक्रिया के लिए समूह सीमा भी निर्धारित करेगा। ध्यातव्य है कि राज्य विधानमंडलों को विधेयक भेजने का यह उपबंध मूल संविधान में नहीं था। इसे '5वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1955' द्वारा संविधान में जोड़ा गया था।
3. राज्य के विधानमंडल को राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित समय-सीमा के भीतर अपने विचारों को व्यक्त करते हुए वह विधेयक वापस भेजना होगा। राष्ट्रपति यदि चाहे तो निर्दिष्ट समय-सीमा को बढ़ा भी सकता है।
4. यदि राज्य का विधानमंडल निर्धारित समय-सीमा के भीतर अपने विचारों या राय के साथ विधेयक वापस नहीं भेजता है तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद में प्रस्तुत कर सकता है।
5. यदि राज्य का विधानमंडल निर्धारित या पुनः बढ़ाई गई समय-सीमा के भीतर अपने विचार राष्ट्रपति को भेज देता है तो भी संसद उन विचारों को मानने के लिए बाध्य नहीं है। यदि वह चाहे तो अपने साधारण बहुमत से राज्य के विधानमंडल की राय के विरुद्ध जाकर उसके भू-भाग या नाम आदि को बदल सकती है।

इसमें अपवाद सिर्फ जम्मू कश्मीर राज्य है। जम्मू कश्मीर के राज्य क्षेत्र को बढ़ाने-घटाने या उसके नाम या सीमा में कोई भी परिवर्तन करने वाला विधेयक वहाँ के विधानमंडल की सहमति के बिना संसद में पेश नहीं किया जा सकता।

स्पष्ट है कि अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत किये गये उपबंध केन्द्र के अत्यंत शक्तिशाली तथा राज्यों के कमज़ोर होने की ओर संकेत करते हैं। वस्तुतः, संविधान निर्माताओं द्वारा ऐसा किये जाने के पीछे ठोस कारण विद्यमान थे। जिस समय सभी रियासतें भारतीय संघ में विलय कर रही थीं उस समय उनकी सीमाएँ अप्राकृतिक (Unnatural), अवैतनिक (Irrational) तथा अस्थायी (Temporary)

(Federal) संविधानों से काफी अलग है क्योंकि इन देशों में संघीय शासन अपनी इच्छा से राज्यों के नामों या सीमाओं में परिवर्तन नहीं कर सकता।

क्या संसद के पास भारतीय राज्यक्षेत्र का कोई हिस्सा किसी अन्य देश को अर्पित करने का अधिकार है?

(Does the Parliament have the right to cede a part of Indian territory to any other country?):

अनुच्छेद 3 के संबंध में 1960 ई. में एक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। वह प्रश्न यह था कि संसद अनुच्छेद 3 के तहत कोई भारतीय भू-भाग किसी विदेशी राज्य को दे सकती है या नहीं?

इस विवाद का संबंध भारत और पाकिस्तान के मध्य 1958 में हुए एक समझौते से था। यह समझौता दोनों देशों ने अपने सीमा संबंधी विवादों को निपटाने के उद्देश्य से किया था। इसके अनुसार 'बेरबारी संघ' (पश्चिम बंगाल में 9 वर्गमील का एक क्षेत्र जिसको जनसंख्या 12000 थी) भारत द्वारा पाकिस्तान को दिया जाना था और कूच बिहार को कुछ क्षेत्रों की आपस में अदला-बदली की जानी थी ताकि दोनों देशों की सीमाएँ तर्कसंगत हो सकें। जब भारत सरकार इस समझौते को क्रियान्वित करने के लिए आगे बढ़ी तो इसके विरुद्ध एक सशक्त जन-आंदोलन उठ खड़ा हुआ। स्थिति की गंभीरता को भाँपते हुए भारत के राष्ट्रपति ने यह मामला अनुच्छेद 143 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को भेजा ताकि इस मुद्दे पर उसकी राय जानी जा सके। सर्वोच्च न्यायालय से जो प्रश्न पूछे गये थे, वे इस प्रकार हैं—

1. बेरबारी संघ पाकिस्तान को सौंपने के लिए क्या कोई संवैधानिक कार्यवाही आवश्यक है या इसके लिए कार्यपालिका (Executive) की शक्ति ही पर्याप्त है?
2. यदि संवैधानिक कार्यवाही आवश्यक है तो इसके लिए अनुच्छेद 3 के अंतर्गत या अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन करना जरूरी है या नहीं?

इन प्रश्नों पर अपनी राय व्यक्त करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 3 भारत के राज्यों के क्षेत्रों के आंतरिक पुनर्गठन (Internal re-organisation) से संबंधित है। उसे यह निर्धारित नहीं है कि देश का कोई भाग विदेशी राज्य को अर्पित किया जा सकता है। अतः बेरबारी संघ को सौंपित समझौते का क्रियान्वयन अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन के माध्यम से ही किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय की सलाह को मानते हुए भारतीय संसद ने 1960 में '9वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' पारित किया ताकि पाकिस्तान के साथ हुए समझौते को क्रियान्वित किया जा सके।

किंतु, इसका अर्थ यह नहीं है कि संसद को 'अन्य विदेशी क्षेत्र' अर्जित (acquire) करने या अपने भू-भाग का कोई अंश किसी अन्य देश को अर्पित (cede) करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। क्योंकि सीमाओं के पास ये दोनों शक्तियाँ होनी आवश्यक हैं। इसलिए भारत राज्य भी उपयुक्त विधि के द्वारा (अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार) अपने भू-भाग को अर्पित (cede) तथा अन्य भू-भागों को अर्जित (acquire) कर सकता है।

इस संबंध में एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया है कि यदि सरकार सीमा विवाद को सुलझाने के लिए किसी देश के साथ समझौता करती है कि वह विवाद किसी अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण (International Tribunal) को सौंप दिया जाए तो ऐसे समझौते को लागू करने के लिए (अर्थात् विवाद को अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण के पास ले जाने के लिए) संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं होगी। 1969 में 'मदन भाई बनाम भारत संघ' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत प्रस्तुत किया था। इसके अन्तर्गत मामला यह था कि भारत और पाकिस्तान के बीच कच्छ क्षेत्र की सीमाओं से संबंधित विवादों के उपयुक्त समाधान के लिए दोनों देशों ने समझौता किया था कि इस मामले को एक अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण (International Tribunal) को सौंप दिया जाए। सरकार चाहती थी कि उसे बिना कोई विधि (Law) बनाये या संविधान संशोधन किये इस समझौते को क्रियान्वित करने की शक्ति मिलनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के मत को उचित माना क्योंकि इस समझौते में भारतीय भू-भाग का किसी विदेशी राज्य द्वारा अध्यर्पण (Cession) नहीं किया जा रहा था, इसलिए इसे क्रियान्वित करने के लिए संविधान संशोधन की जरूरत नहीं थी।

अनुच्छेद-4 (Article-4)

अनुच्छेद-4 में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि यदि संसद अनुच्छेद-2 के तहत नए राज्यों की स्थापना करती है या

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1(1) में वर्णित है-
(1) भारत अर्थात् इंडिया (Bharat, that is India) राज्यों का संघ होगा।
(2) इंडिया अर्थात् भारत (India, that is Bharat) राज्यों का संघ होगा।
(3) भारत या इंडिया (Bharat or India) राज्यों का संघ होगा।
(4) इंडिया या भारत (India or Bharat) राज्यों का संघ होगा।

- वर्तमान में भारत द्वारा अर्जित राज्य-क्षेत्रों (acquired territories) की सूची में शामिल क्षेत्र हैं-

- (i) पांडिचेरी (ii) कराइकल
(iii) माहे (iv) यनम

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
(3) उपरोक्त सभी (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

- राज्यों (States) और संघ राज्य-क्षेत्रों (Union territories) सहित वह समस्त भू-भाग जिस पर भारत की संप्रभुता का विस्तार है, कहलाता है-

- (i) भारत संघ (Union of India)
(ii) भारत का राज्य-क्षेत्र (Territory of India)

कूट-

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii)
(4) न तो (i) और न ही (ii)

- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।
(i) संसद के पास नये राज्यों की स्थापित करने की शक्ति तो है, लेकिन वह नये राज्यों को संघ में शामिल नहीं कर सकती।
(ii) संसद की नये राज्यों की स्थापना से संबंधित शक्ति का संबंध उन राज्यों से है जो अभी स्थापित नहीं हैं, किन्तु भविष्य में उन्हें स्थापित किया जा सकता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों
(4) न तो (i) और न ही (ii)

- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।
(i) संसद को विभिन्न राज्यों की सीमाओं या नाम में परिवर्तन की शक्ति प्राप्त है।
(ii) किसी राज्य की सीमा अथवा नाम में परिवर्तन के लिए संसद को विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) राज्य के निर्माण या राज्य के नाम में परिवर्तन से संबंधित विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही संसद में पेश किया जा सकता है।
(ii) राज्य विधानमंडल द्वारा ऐसे विधेयक पर दी गयी राय को पानना संसद के लिए अनिवार्य है।
(iii) यदि राज्य विधानमंडल ऐसे विधेयक को अपनी राय के साथ वापस नहीं भेजता है तो यह विधेयक स्वतः समाप्त हो जाएगा।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) किसी राज्य क्षेत्र को बढ़ाने, घटाने या उसके नाम या सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयक संबद्ध राज्य विधानमंडल को संसद में पेश करना संसद में पेश नहीं किया जा सकता।
(ii) ऐसे मामलों में जम्मू-कश्मीर अन्य राज्यों के समान है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) यदि भारत सरकार सीमा विवाद को सुलझाने के लिए किसी देश के साथ समझौता करती है तो ऐसे समझौते को लागू करने के लिए संविधान संशोधन अनिवार्य होता है।
(ii) संसद के पास भारतीय राज्य क्षेत्र का कोई हिस्सा किसी अन्य देश को अर्पित करने का कोई अधिकार नहीं है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

- किसी नए राज्य के निर्माण अथवा सीमाओं में परिवर्तन से संबंधित विधेयक पर राय प्रदान करने के लिए राज्य विधान मंडल को दी जाने वाली समय-सीमा का निर्धारण किसके द्वारा किया जाता है?

- (1) संसद द्वारा
(2) राष्ट्रपति द्वारा
(3) राज्यपाल द्वारा

भारतीय राज्यक्षेत्र का एकीकरण तथा तार्किकीकरण (Integration and Rationalisation of Indian Territory)

सभी आधुनिक देशों को किसी न किसी दौर में अपनी भौगोलिक सीमाओं के निर्धारण व आंतरिक क्षेत्रों के तार्किक विभाजन में समस्याओं का सामना करना पड़ा है और उन्हीं समस्याओं के प्रत्युत्तर में उन्होंने राष्ट्र के एकीकरण के ढाँचे विकसित किए हैं। जब भारत आजाद हो रहा था, तब का भारत आज के भारत की तरह न तो व्यवस्थित था और न ही एकीकृत। यह विभिन्न रियासतों, विदेशी (फ्रांसीसी व पुर्तगाली) उपनिवेशों तथा ब्रिटिश भारत के क्षेत्रों का ढोला-ढाला समुच्चय मात्र था।

भारत के एकीकरण के लिए चार स्तरों पर गंभीर प्रयास किए जाने की जरूरत थी—

- (i) रियासतों का एकीकरण।
- (ii) यूरोपीय (फ्रांसीसी व पुर्तगाली) उपनिवेशों का भारत में विलय।
- (iii) कुछ अन्य क्षेत्रों का भारत में विलय।
- (iv) तार्किक आधारों पर राज्यों का सुवर्णित।

पहले भारत की संविधान सभा ने तथा बाद में जनता द्वारा विमित साक्षरता व संसदों ने इस समस्या का समुचित समाधान निकालने के लिए कदम-कदम पर प्रयास किए हैं। उपरोक्त चारों पक्षों का विस्तृत विवेचन निम्नलिखित है—

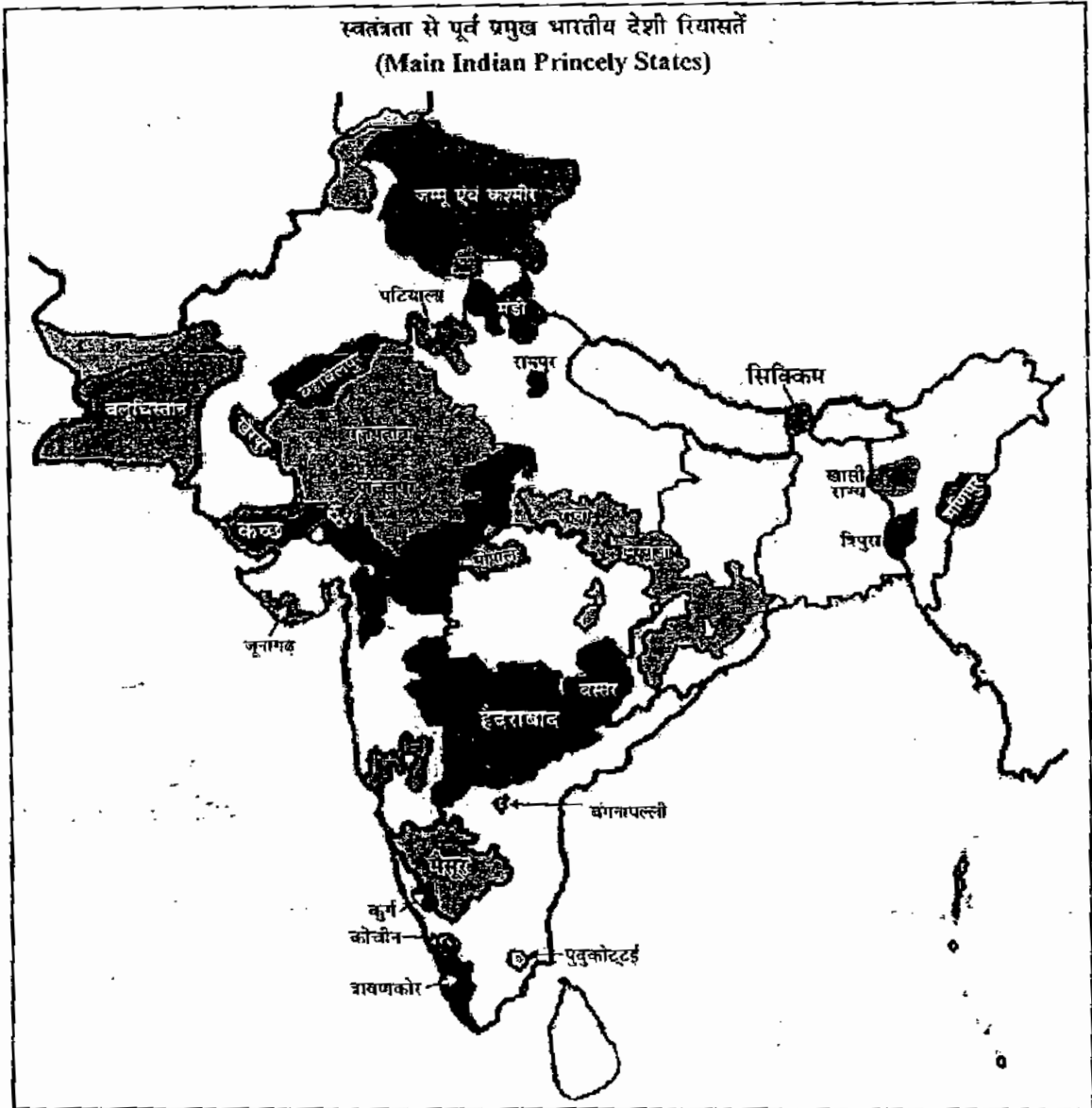
(i) रियासतों का एकीकरण (Integration of Princely States)

भारत की स्वतंत्रता के समय भारतीय भू-भाग में देशी राज्यों या रियासतों (Princely states) का अंश लगभग 40% था। इन देशी राज्यों पर ब्रिटिश सरकार का अप्रत्यक्ष शासन (Indirect rule) रहा था। इन राज्यों में सरकारों का स्वरूप पूरी तरह अलोकतांत्रिक (Undemocratic) था तथा बाह्य आक्रमण (External Aggression) एवं आंतरिक विद्रोह (Internal Rebellion) के विरुद्ध इन देशी राज्यों को ब्रिटिश सुरक्षा छतरी प्राप्त थी।

भारत की स्वतंत्रता से संबंधित एक महत्वपूर्ण प्रश्न देशी रियासतों के भविष्य का भी था। इनके शासकों में से अधिकांश ने स्वतंत्र रहने की अपनी महत्वाकांक्षा को संजो रखा था। इन शासकों को 20 फरवरी 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लिमेंट एटली द्वारा की गई उद्घोषणा से भी प्रोत्साहन मिला। एटली की सरकार ने स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों (Princely states) पर अपनी सर्वोच्च सत्ता तथा अपने दायित्व को भारत तथा पाकिस्तान को डोमिनियन राज्यों के सुपुर्द नहीं कर सकती। इस प्रकार यह स्पष्ट संकेत था कि भारत की स्वतंत्रता के साथ देशी रियासतें भी स्वतंत्र हो जाएंगी। अतः इस उद्घोषणा से प्रोत्साहित होकर कई देशी राज्यों, जैसे त्रावणकोर, भोपाल और हैदराबाद ने स्वतंत्र रहने का निर्णय ले लिया। इन देशी रियासतों में ब्रिटिश सरकार के कुछ आर्थिक (Economic) और सामरिक (Strategic) हित निहित थे और वह भारत की स्वतंत्रता के बाद भी इन हितों को बनाए रखना चाहती थी। उदाहरण के लिए, त्रावणकोर में कुछ ऐसे खनिजों (Minerals) का उत्पादन होता था जिनका उपयोग परमाणु अस्त्र (Nuclear weapons) बनाने में होता था। इसके अलावा, देशी रियासतों (Princely states) की महत्वाकांक्षा को मोहम्मद अली जिन्ना के दृष्टिकोण से भी प्रोत्साहन मिला। जिन्ना ने 18 जून, 1947 को यह राय जाहिर की थी कि जो देशी राज्य स्वतंत्र रहना चाहें, उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए।

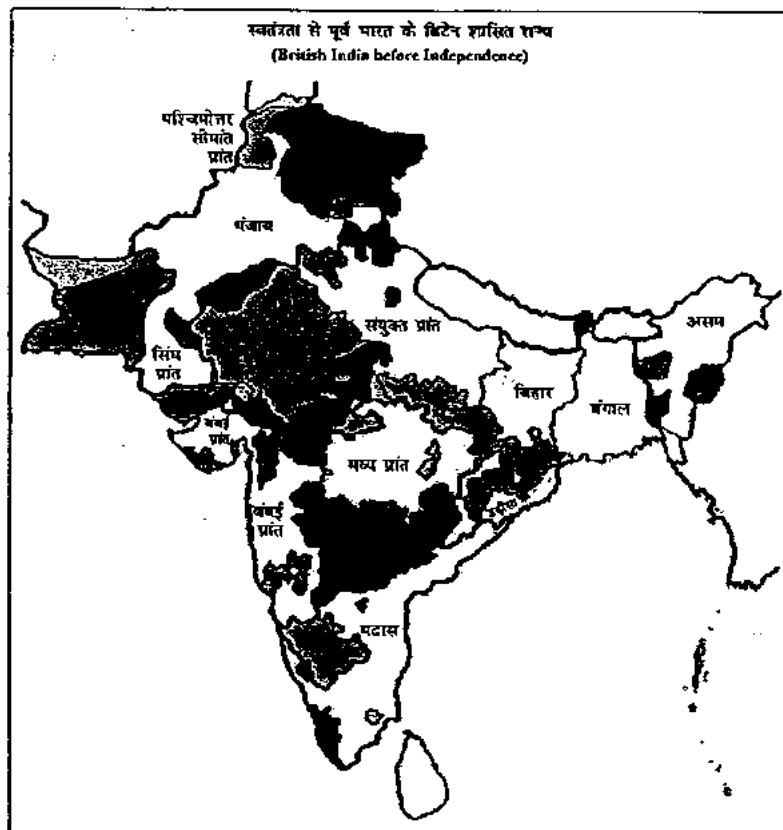
किन्तु, कुछ समय बाद ब्रिटिश सरकार ने देशी रियासतों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल लिया। उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता की उद्घोषणा में एटली की सरकार ने यह स्पष्ट किया कि देशी राज्य बहुत शीघ्र भारत अथवा पाकिस्तान यूनिन के साथ अपना विलय भंडूक कर लेंगे। इसके अलावा, भारत का विकास अब एक आधुनिक राष्ट्र (Modern nation) के रूप में हो रहा था तथा राष्ट्र निर्माण (Nation building) की इस प्रक्रिया में देशी रियासतों की जनता ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अतः अब इन रियासतों की जनता अपने को आधुनिक राष्ट्र का अभिन्न अंग मान रही थी। इसलिए, स्वयं जनता के द्वारा इन रियासतों के शासकों पर भारतीय संघ (Indian union) में विलय के लिए निरंतर दबाव पड़ रहा था। अब मुख्य प्रश्न यह था कि इन देशी राज्यों के भविष्य

वल्लभभाई पटेल ने अपना कठोर रूप भी दिखाया तथा इस बात की चेतावनी दी कि अगर 15 अगस्त, 1947 से पहले ये देशी रियासतें भारतीय यूनियन के साथ विलय करने का निर्णय नहीं लेती तो इन राज्यों को स्वयं अपनी जनता के आन्दोलन का सामना करना होगा और फिर इन राज्यों के प्रति भारत की दृष्टि कठोर हो जाएगी। अतः अधिकतर देशी राज्यों ने 15 अगस्त से पहले ही भारत में अपने विलय को स्वीकार कर लिया। किन्तु, तीन ऐसी रियासतें बच गयीं जो विलय के लिए तैयार नहीं थीं। ये रियासतें थीं- कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद।



कश्मीर की समस्या तथा समाधान:

कश्मीर की समस्या हैदराबाद और जूनागढ़ से अलग थी। यहाँ की जनसंख्या का बहुसंख्यक भाग (77.11%) मुस्लिम था तथा शेष में से 20.12% भाग हिन्दू तथा 2.77% भाग सिख एवं बौद्ध संप्रदायों का था। कश्मीर के शासक हरि सिंह हिन्दू थे। हरि सिंह जहाँ एक तरफ भारत के लोकतंत्रीकरण (Democratisation) से भयभीत थे तो दूसरी तरफ पाकिस्तान के सांप्रदायिकरण (Communalisation) से। अतः उन्होंने स्वतंत्र रहने का निर्णय लिया। किन्तु, 22 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान के सैनिकों द्वारा पार्थिव अन्धकार का ये देश में कालावर्ती राजशाही ने कालावर्ती राज शुरू कर दिया। इस समय कश्मीर में लोकतंत्र विनाश हो चुका था।



(International Legal System) के अनुसार भारत तब तक कश्मीर को सैन्य सहायता नहीं दे सकता जब तक औपचारिक रूप से कश्मीर का विलय भारत के साथ नहीं हो जाता। चूँकि जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार वल्लभभाई पटेल जनता की इच्छा को तरजीह देते थे, अतः उनके विचार से इस पर कश्मीर की जनता का अनुमोदन भी होना चाहिए था। भारत सरकार से सहायता प्राप्त करने के लिए कश्मीर के मुख्यमंत्री मेहरचन्द्र महाजन ने नेहरू से भेंट की किंतु नेहरू तब तक सहायता देने के लिए सहमत नहीं हुए, जब तक राज्य के प्रमुख राजनीतिक दल 'नैशनल कॉन्फ्रेंस' के नेता शेख अब्दुल्ला ने नेहरू को यह आश्वासन नहीं दे दिया कि राज्य में पृथक् संविधान (Separate Constitution) तथा उसके तहत संवैधानिक शासन (Constitutional Government) की शर्त पर वह और उनका दल कश्मीर को भारत के साथ सम्मिलित किए जाने के पक्ष में है। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए नेहरू ने सैन्य सहायता प्रदान करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही

26 अक्टूबर, 1947 को हरिसिंह ने विलय पत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर कर दिये। किन्तु, इस सन्दर्भ में भारत की आधिकारिक दृष्टि (Formal standpoint) यह थी कि स्थिति सुधरने तथा कानून व्यवस्था की स्थिति बहाल होने के पश्चात् इस पर कश्मीर की जनता का भी अनुमोदन लिया जाएगा। इस समझौते के शीघ्र बाद भारत ने कश्मीर में अपनी सेना भेजी और श्रीनगर को आक्रमणकारियों से खाली करा लिया गया। भारत की सेना ने कश्मीर दरियासत के लगभग 2/3 भू-भाग पर कब्जा कर लिया, किन्तु 1/3 भू-भाग पर पाकिस्तान का कब्जा बना रहता था। भारत की सरकार ने यह महसूस किया कि कहीं कश्मीर के मुद्दे पर यह तनाव पाकिस्तान और भारत के बीच भूतल स्तर पर न बढ़ने लगे। अतः भारत सरकार ने 30 दिसम्बर, 1947 को यह मामला संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) में उठाया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 31 दिसम्बर, 1947 को युद्धबंदी की घोषणा लागू कर दी। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ का विस्तृत निर्णय 1951 में आया जो इसके विवादास्पद निर्णयों में से एक है। इस निर्णय के अनुसार भारत के द्वारा कश्मीर में जनमतसंग्रह (Plebiscite) कराया जाना था। किन्तु, जनमतसंग्रह (Plebiscite) से पूर्व दो शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक था- प्रथम, पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (POK- Pakistan Occupied Kashmir) से पाकिस्तान की सेना वापस बुलाई जानी थी; द्वितीय, यह जनमतसंग्रह (Plebiscite) श्रीनगर के प्रशासन के अंतर्गत कराया जाना था। किन्तु, चूँकि पाकिस्तान ने ये शर्तें पूरी नहीं कीं, अतः भारत के द्वारा भी जनमतसंग्रह (Plebiscite) नहीं कराया गया।

जम्मू कश्मीर राज्य में संविधान निर्माण हेतु जनता द्वारा प्रभुत्वसंपन्न संविधान सभा (Sovereign Constituent Assembly) का निर्वाचन हुआ और 1951 में जम्मू कश्मीर संविधान सभा की बैठक शुरू हुई। फरवरी, 1954 में राज्य का भारत संघ में विलय संविधान सभा द्वारा पुष्ट कर दिया गया। 17 नवंबर, 1957 को इस संविधान सभा ने राज्य के लिए एक पृथक् संविधान अंगीकार किया जिसे 26 नवंबर, 1957 से लागू किया गया। इस नये संविधान के लागू हो जाने के पश्चात् संविधान सभा ने अपने को भंग कर लिया। इस बीच, 26 जुलाई, 1957 को बख्शी गुलाम मुहम्मद को जम्मू एवं कश्मीर के प्रधानमंत्री (बखीर ए-आजम) के रूप में शपथ दिलाई गई थी तथा युवराज कर्ण सिंह को दूसरी अवधि के लिए निर्विरोध राष्ट्रपति (सदर ए-रियासत) चुन लिया गया।

हुकूमत' (Independent temporary rule) की स्थापना कर ली। मजबूर होकर नवाब पाकिस्तान भाग गया। तत्पश्चात् जूनागढ़ के दोबान 'शाहनवाज़ भुट्टो' (जुल्फिकार अली भुट्टो के पिता) ने 8 नवम्बर, 1947 को जूनागढ़ के भारत में विलय से संबंधित एक पत्र भारत सरकार को लिखा। श्री भुट्टो की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और 9 नवम्बर, 1947 को भारत ने जूनागढ़ का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। बाद में 20 जनवरी, 1948 को जनमत-संग्रह (Plebiscite) द्वारा जूनागढ़ रियासत को भारत संघ में शामिल कर लिया गया। जनमत-संग्रह में 99% से अधिक मत भारत के पक्ष में पड़े। कुल 190870 मतों में से पाकिस्तान के पक्ष में केवल 91 मत पड़े। जूनागढ़ को 1 नवंबर, 1956 तक 'सौराष्ट्र' राज्य में रखा गया जो 1956 में मुंबई का हिस्सा बन गया। 1960 में मुंबई से महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्य बने। तब से जूनागढ़ गुजरात का अंग है।

हैदराबाद की समस्या तथा समाधान:

देशी रियासतों में हैदराबाद की एक विशेष स्थिति थी। यह भारत की सबसे बड़ी रियासत थी जिसका निज़ाम (शासक) मुसलमान था, जबकि राज्य की अधिकांश जनता हिन्दू थी। प्रारम्भ में पाकिस्तान ने हैदराबाद को इस भ्रम में रखा कि वह मुसीबत के समय उसका साथ देगा, फलतः निज़ाम एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का सपना संजोये था। 29 नवम्बर, 1947 को निज़ाम ने हैदराबाद में भारतीय संघ से एक वर्ष के लिए 'यथास्थिति संधि' (Stand Still Agreement) नामक अस्थायी समझौता किया। इसके अनुसार हैदराबाद को नवाब द्वारा हैदराबाद में प्रतिनिधि संस्थाओं (Representative Institutions) के विकास के लिए काम किया जाना था, किन्तु नवाब ने इस दिशा में काम नहीं किया; बल्कि उसके द्वारा क्रूर दमन को प्रोत्साहन दिया गया। उसने कई वर्ष पूर्व स्वयं द्वारा स्थापित इस्लामिक संगठन 'मजलिस-ए-इत्तेहाद-उल-मुसलिमीन (MIM)' का उपयोग किया तथा आंदोलनकारियों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए 'रज़ाकार' सैनिकों का उपयोग किया। 'रज़ाकार' (अर्थात् 'बॉलिटियर' या स्वैच्छिक कार्यकर्ता) एक मुस्लिम सैन्य संगठन (Muslim Paramilitary Organisation) था जिसमें 150,000 सैनिक थे। ये निज़ाम तथा 'मजलिस-ए-इत्तेहाद-उल-मुसलिमीन' (MIM) के पक्ष में काम करते थे तथा हैदराबाद के भारत के साथ एकीकरण के खिलाफ थे। रज़ाकारों ने राज्य की हिन्दू जनता पर भयंकर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया और भार-काट, लूटमार तथा हत्याओं के माध्यम से इस क्षेत्र में भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी जिससे हैदराबाद में एक प्रकार की अव्यवस्था पैदा हो गई। ऐसी स्थिति में भारत सरकार ने सैन्य कार्यवाही (Military action) को आवश्यक समझा और 13 सितम्बर, 1948 को भारतीय सैनिक हैदराबाद रियासत में प्रवेश कर गये। निज़ाम ने सुरक्षा परिषद (Security Council) में पुनार लगाई। संयुक्त राष्ट्र के दबाव के कारण भारत सरकार ने घोषणा की कि यह 'लड़ाई की क्रिया' (Action of war) नहीं बल्कि केवल एक 'पुलिस कार्यवाही' (Police action) थी जिसका उद्देश्य 'रियासत के भीतर शान्ति और स्थिरता स्थापित करना' था। पाँच दिनों की कार्यवाही के बाद 18 सितम्बर, 1948 को हैदराबाद रियासत को फौज के कमाण्डर मेजर जनरल एल. एण्ड्रू ने भारतीय सेना के कमाण्डर मेजर जनरल जी.एन. चौधरी के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। हैदराबाद के मामले को मेजर जनरल जे.एन. चौधरी के नियंत्रण में रख दिया गया और उन्हें वहाँ का सैनिक गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। रज़ाकारों का संगठन तोड़ दिया गया और लायक अली मोत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार हैदराबाद को भारतीय संघ में मिला लिया गया। भारत सरकार ने इस गुप्त सैन्य कार्यवाही का नाम 'ऑपरेशन पोलो' रखा क्योंकि उस समय हैदराबाद में शेष भारत के किसी भी राज्य या रियासत की तुलना में पोलो खेलने के मैदान (Polo grounds) अधिक मात्रा में थे।

26 जनवरी, 1950 को स्वतंत्र भारत के संविधान में हैदराबाद को भाग-ख के अंतर्गत राज्य की स्थिति प्रदान की गई तथा निज़ाम को उसका 'राज्य प्रमुख' (Head of state) बना दिया गया। 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम (State Reorganisation Act) के तहत राज्य प्रमुख (Head of state) का पद समाप्त कर दिया गया तथा इसका पगड़ी भाषी भाग (मराठवाड़ा) बंबई में, कन्नड़भाषी भाग मैसूर में तथा तेलुगूभाषी भाग (तेलंगाना) आंध्र प्रदेश में मिला दिया गया।

(ii) यूरोपीय उपनिवेशों का भारत में विलय (Accession of European Colonies to India)

जिस समय विभिन्न रियासतों (Princely states) का भारत में विलय हो रहा था, तब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी था कि ब्रिटेन के अलावा जिन अन्य यूरोपीय देशों के उपनिवेश (Colonies) भारतीय भू-भाग में हैं, उन उपनिवेशों (Colonies) का भविष्य क्या होगा? उस समय दो देशों फ्रांस और पुर्तगाल के उपनिवेश भारत में थे। भारत सरकार ने कोशिश की कि इन देशों के साथ सहमति कायम करके औपनिवेशिक शासन को समाप्त कराया जाए ताकि ये क्षेत्र भारत को मिल सकें।

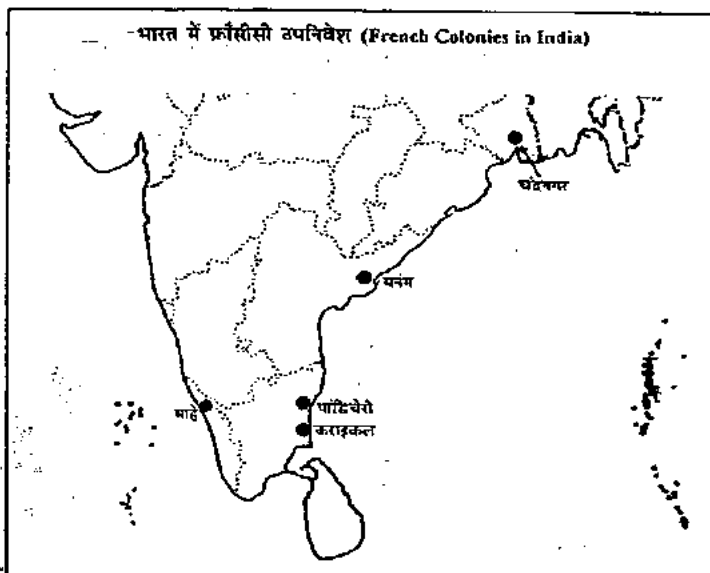
फ्राँसीसी उपनिवेशों का विलय (Accession of French Colonies):

फ्राँस के पास भारत के कई क्षेत्र थे। उनमें से कुछ, जैसे मछलीपट्टनम, कोझीकोड तथा सूरत अक्टूबर, 1947 में भारत को प्राप्त हो गए थे। बंबई, मद्रास और उड़ीसा में जो फ्राँसीसी कारखाने तथा व्यापारिक प्रतिष्ठान थे, वे भी अक्टूबर, 1947 में भारत को मिल गए थे। इसके बाद भी, पाँच ऐसे क्षेत्र थे जो फ्राँस के नियंत्रण में थे। ये पाँच क्षेत्र थे—पांडिचेरी, कराइकल, यनम, माहे तथा चंद्रनगर।

फ्राँस के साथ भारत का एक समझौता 1948 में हुआ, जिसके तहत फ्राँसीसी उपनिवेश-क्षेत्रों में जनमतसंग्रह (Plebiscite)

1949 को व्यावहारिक तौर पर (De-facto) चन्द्रनगर भारत का हिस्सा बन गया। 2 मई, 1950 को यह वैधानिक तौर पर (De-jure) भी भारत में शामिल हो गया क्योंकि फ्रांसीसी संसद ने इस विलय का अनुसमर्थन (Ratification) कर दिया। 2 अक्टूबर, 1955 को इसे पश्चिम बंगाल राज्य का हिस्सा बना दिया गया।

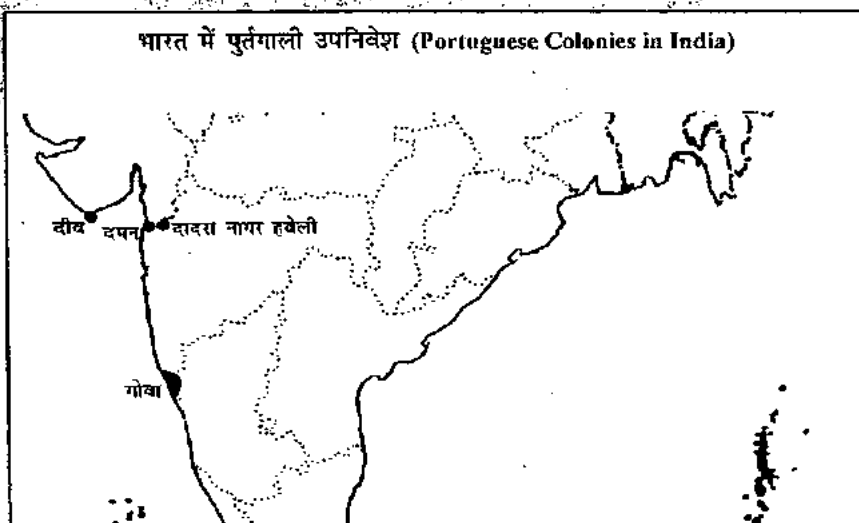
किन्तु, फ्रांस के शेष उपनिवेशों में स्थिति उतनी सहज नहीं रही। कुछ फ्रांस समर्थक अधिकारियों ने अपनी प्रशासनिक ताकत का दुरुपयोग करते हुए उन समूहों का दमन करना शुरू कर दिया जो भारत के साथ विलय के पक्ष में थे। इस दमनकारी प्रक्रिया के विरुद्ध जनता में भारी आक्रोश पैदा हुआ जिसके परिणामस्वरूप 1954 में यनम और माहे में भारत समर्थक समूहों ने प्रशासन पर कब्जा कर लिया। इसी वर्ष अक्टूबर में कराइकल और पाण्डिचेरी में जनमतसंग्रह कराया गया जिसका परिणाम भारत के पक्ष में रहा। 1 नवम्बर, 1954 को इन चारों क्षेत्रों का व्यावहारिक (De-facto) नियंत्रण भारत को प्राप्त हो गया। 1956 में भारत और फ्रांस के मध्य विलय संबंधी संधि हुई और मई 1962 में इस संधि के फ्रांसीसी संसद द्वारा अनुसमर्थित (Ratify) हो जाने पर भारत को इन क्षेत्रों का वैधानिक (De-jure) नियंत्रण भी प्राप्त हो गया।



पुर्तगाली उपनिवेशों का विलय (Accession of Portuguese Colonies):

पुर्तगाल के पास दमन एवं दीव, दादरा और नागर हवेली तथा गोवा के क्षेत्र थे। पुर्तगाल इतनी आसानी से अपने उपनिवेश छोड़ने को तैयार नहीं था क्योंकि वह इन उपनिवेशों को राष्ट्रीय सम्मान का प्रतीक मानता था। स्थितियों को तेजी से बदलते हुए देखकर 1951 में पुर्तगाल ने अपने संविधान में संशोधन करके इन उपनिवेश-क्षेत्रों को अपने राज्यों (Provinces) का दर्जा दे दिया ताकि इन पर उसका नियंत्रण वैधानिक (Legitimate) हो जाए।

किन्तु, इन क्षेत्रों की जनता को पुर्तगाली शासन स्वीकार नहीं था। सबसे पहले, जुलाई 1954 में दादरा और नागर हवेली में जनआक्रोश भड़का और जनता ने पुर्तगाल के शासन को उखाड़ फेंका। पुर्तगाल ने 'दमन' से अपनी सेना 'दादरा और नागर हवेली' भेजने का प्रयास किया किन्तु भारतीय सेना ने उसे ऐसा करने से रोक दिया क्योंकि दोनों क्षेत्रों के बीच भारतीय भू-भाग पड़ता था। पुर्तगाल ने इससे नाराज होकर भारत के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (Inter-



प्रयोग करते हुए उसके क्षेत्रों तक पहुँचने दिया जाए। अखिल ने 1960 में पुर्तगाल की मांग को खारिज कर दिया और फैसला दिया कि भारत की कार्यवाही अपने अधिकारों के अनुरूप हो थी और उसे पुर्तगाल की सेनाओं को अपने क्षेत्र में घुसने से मना करने का पूरा अधिकार था। इसके बाद, 1961 में भारत के संविधान में संशोधन किया गया तथा दादरा और नागर हवेली को संघ राज्य क्षेत्र (Union Territory) के रूप में शामिल कर लिया गया।

गोवा, दमन और दीव का प्रश्न ज्यादा जटिल था। 15 अगस्त 1955 को 5 हजार अहिंसक प्रदर्शनकारियों ने पुर्तगाली शासन के खिलाफ एक जुलूस निकाला, जिस पर पुर्तगाली अधिकारियों ने गोलिएँ बरसाईं और इस घटना में 22 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। दिसम्बर, 1960 में संयुक्त राष्ट्र महासभा (United Nations General Assembly) ने पुर्तगाल का यह दावा खारिज कर दिया कि उसके समुद्रपारीय इलाके (Overseas possessions) उसके प्रांत (Province) हैं तथा उन क्षेत्रों को 'नैर-स्वशासित राज्य क्षेत्रों' (Non self governing territories) के रूप में सूचीबद्ध किया। नेहरू जी की इच्छा थी कि इस समस्या का समाधान बातचीत के जरिए ही निकलना चाहिए किन्तु 1961 में पुर्तगालियों द्वारा अंगोला में क्रांतिकारियों का क्रूर दमन किए जाने से भारतीय जनता की भावनाएँ भड़क गई तथा भारत सरकार पर सैनिक कार्यवाही करने का दबाव बढ़ गया। अफ्रीकी नेताओं ने भी नेहरू जी से सैनिक कार्यवाही करने का निवेदन किया क्योंकि उन्हें लगता था कि ऐसा करने से अफ्रीका को भी शोषण तंत्र से मुक्ति की राह मिलेगी। अमेरिका कोशिश कर रहा था कि बातचीत के जरिए ही इस समस्या का समाधान निकल जाए किन्तु जब उसका प्रयास भी विफल हो गया तो 18 दिसम्बर, 1961 को भारतीय सेना पुर्तगाली क्षेत्रों में प्रविष्ट हो गई। पुर्तगाल इस मामले को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् (United Nations Security Council) में ले गया किन्तु भारत को अपनी सेनाएँ तुरन्त वापस बुलाने का आदेश देने के लिए प्रस्तुत किया गया संकल्प (Resolution) सोवियत संघ के वीटो की वजह से अंगीकारित हो गया। एक ही दिन बाद 19 दिसम्बर, 1961 को पुर्तगाल ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रक्रिया ने भारत में साम्यवादी-उपनिवेशवाद (Colonialism) के अंतिम चिह्न को भी हटा दिया। ध्यातव्य है कि पुर्तगालियों ने भारत में सबसे पहले उपनिवेश स्थापित किए थे (1510 में गुजरात में) और वे सबसे अंत में (1961 में) भारत से गए। शुरु में गोवा, दमन और दीव को केंद्रशासित प्रदेशों (Centrally administered territories) के रूप में रखा गया। आगे चलकर, 1987 में गोवा को राज्य (State) बना दिया गया जबकि दमन और दीव संघ राज्यक्षेत्र (Union territories) ही बने रहे।

(iii) कुछ अन्य क्षेत्रों का भारत में विलय (Accession of some other territories to India)

वर्तमान में जो भारत का राज्यक्षेत्र है, उसमें कुछ हिस्सा ऐसे क्षेत्रों का भी है जो सीधे तौर पर भारत से जुड़े हुए नहीं थे। ऐसे कुछ क्षेत्रों को भारत सरकार ने धीरे-धीरे अर्जित किया है और भारतीय राज्यक्षेत्र का हिस्सा बनाया है। ऐसे क्षेत्रों में प्रमुख हैं—

(क) सिक्किम, (ख) लक्षद्वीप, (ग) अंडमन व निकोबार द्वीप समूह।

सिक्किम का विलय (Accession of Sikkim):

सिक्किम का भारतीय संघ में विलय शेष क्षेत्रों से काफी अलग तरीके से हुआ तथा इसने भारतीय राजव्यवस्था को काफी प्रभावित किया।

ब्रिटिश शासन के दौरान सिक्किम भारतीय रियासत (Princely state) था। इसका शासक वंशानुगत (Hereditary) होता था जिसे 'चोग्याल' (Chogyal) कहा जाता था। भारत की स्वाधीनता के समय सिक्किम की जनता का एक बड़ा भाग भारत के साथ विलय चाहता था किन्तु राजा के शासन तथा कुछ अन्य कारणों से ऐसा नहीं हो सका। ब्रिटिश साम्राज्य खत्म होने के बाद सिक्किम और भारत सरकार के बीच एक सीध हुई जिसके तहत भारत सरकार ने सिक्किम के विदेशी मामलों (External Affairs), प्रतिरक्षा (Defence) तथा संचार (Communication) के उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लिए।

मई, 1974 में सिक्किम कांग्रेस ने लोकतंत्र की ओर एक बड़ा कदम उठाते हुए चोग्याल के शासन की समाप्ति का निर्णय किया। इसके अनुरूप सिक्किम की विधान सभा ने 'सिक्किम शासन अधिनियम, 1974' पारित किया। चोग्याल पर दबाव डाला गया कि वह इस अधिनियम (Act) को स्वीकृति प्रदान करे। इस अधिनियम के आधार पर सिक्किम राज्य की प्रभावी शक्ति विधानसभा के पास चली गई तथा चोग्याल सिर्फ सांविधानिक अध्यक्ष (Constitutional head) रह गया। सिक्किम विधानसभा ने सभी राज्य

- (i) सिक्किम भारत राज्यक्षेत्र (State territory) का भाग नहीं होगा बल्कि एक 'सहयोगी राज्य' ('Associate state') होगा।
- (ii) सिक्किम राज्य भारतीय संसद के दोनों सदनों में अपने दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकारी होगा जिन्हें भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में वोट डालने का अधिकार छोड़कर वे सभी अधिकार व विशेषाधिकार (Privileges) प्राप्त होंगे जो भारत के सांसदों के पास हैं।
- (iii) सिक्किम सरकार के पास उन सभी विषयों के लिए अवशिष्ट शक्ति (Residuary power) होगी जिनका प्रावधान भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में नहीं किया गया है।
- (iv) सिक्किम के विदेशी मामलों (External affairs), प्रतिरक्षा (Defence) तथा समाज कल्याण (Social welfare) का दायित्व भारत सरकार का होगा। सिक्किम के लोगों को अधिकार होगा कि वे भारत की उच्च शिक्षा संस्थाओं, राजनीतिक संस्थाओं तथा अखिल भारतीय सेवाओं (All India Services) में शामिल हो सकें।

जब भारतीय संसद '35वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' पारित करने की प्रक्रिया में थी, तब चोग्याल ने इसका विरोध करते हुए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से आग्रह किया कि वे भारत की इस कार्यवाही का विरोध व हस्तक्षेप करें। इससे सिक्किम की जनता बेहद नाराज हुई और परिणामस्वरूप सिक्किम विधानसभा ने 10 अप्रैल, 1975 को एक संकल्प (Resolution) पारित करके चोग्याल की संस्था को पूर्णतः समाप्त कर दिया तथा सिक्किम को भारत की संघटक इकाई (Constituent unit) बनाने की प्रतिबद्धता दर्शाई। विधानसभा का यह संकल्प सिक्किम की जनता के अनुमोदन के लिए पेश किया गया, जिसे जनता ने भारी बहुमत से स्वीकार किया। इसके बाद सिक्किम के मुख्यमंत्री ने भारत सरकार से औपचारिक अनुरोध किया कि वह इस जनमत संग्रह (Referendum) के परिणाम को क्रियान्वित करे। इसके उत्तर में भारत की संसद ने '36वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1975' पारित किया, जिसके तहत सिक्किम को भारत के अन्य राज्यों के समकक्ष बनाया गया। इसके साथ ही अनुच्छेद 371(च) भी संविधान में शामिल किया गया जिसमें सिक्किम के प्रशासन के संबंध में कुछ विशेष प्रावधान (Special provisions) किए गए हैं।

सिक्किम के भारतीय संघ में विलय को लेकर एक संवैधानिक प्रश्न ध्यान देने योग्य है। 35वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत इसे 'सहयोगी राज्य' (Associate state) का दर्जा दिया गया था, किंतु यह दर्जा संविधान की प्रथम अनुसूची में उल्लिखित नहीं था। प्रथम अनुसूची के अनुसार इसे या तो राज्य (State) का दर्जा दिया जा सकता था या संघ राज्यक्षेत्र (Union Territory) का; किंतु संसद ने इन दोनों से प्रथम 'सहयोगी राज्य' (Associate State) का दर्जा दिया। उस समय कई संविधानविदों ने संसद के इस निर्णय की आलोचना की। अब यह आलोचना महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि संसद ने अगले ही साल 1975 में संविधान के 36वें संशोधन के अंतर्गत 'सहयोगी राज्य' (Associate State) का दर्जा समाप्त करके सिक्किम को राज्यों की सूची में शामिल कर लिया था।

लक्षद्वीप का विलय (Accession of Lakshadweep):

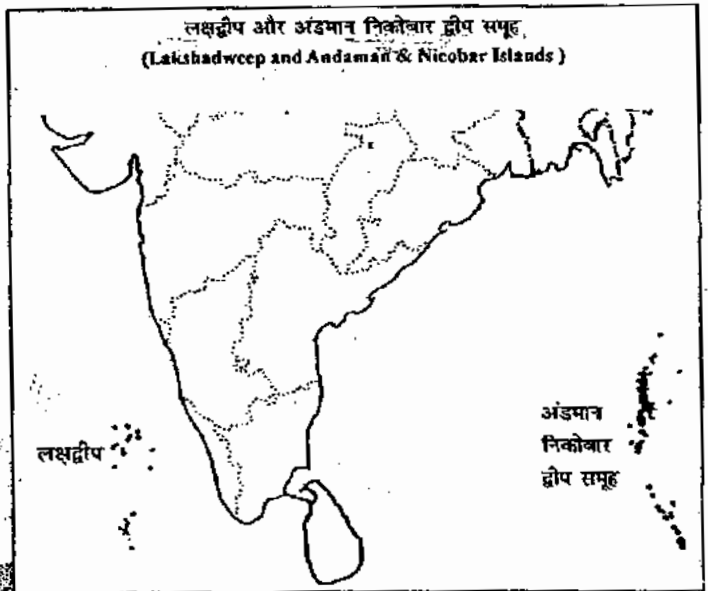
'लक्षद्वीप' द्वीप-समूह का भारत के साथ विलय एक महत्वपूर्ण तथा रोचक घटना है। यह द्वीप समूह भारत की मुख्यधारा (Mainstream) से कटा हुआ था तथा इसे 15 अगस्त, 1947 के कई दिनों बाद तक भारत की स्वाधीनता की सूचना भी प्राप्त नहीं हुई थी। हालाँकि लक्षद्वीप पाकिस्तान से काफी दूर था, किंतु बल्लभभाई पटेल को आशंका हुई कि मुस्लिम जनता के बहुसंख्यक होने के आधार पर कहीं पाकिस्तान इस क्षेत्र पर अपना दावा न ठोक दे। इसलिए, पटेल ने भारतीय नौसेना का एक जहाज लक्षद्वीप भेजा ताकि वहाँ भारतीय ध्वज फहराया जा सके। भारतीय ध्वज फहराये जाने के कुछ ही घंटों बाद उस क्षेत्र में कुछ पाकिस्तानी जहाज देखे गए किंतु वे भारतीय ध्वज को देखकर बिना संघर्ष किए करौंची की ओर लौट गए।

लक्षद्वीप को आरंभ में मद्रास राज्य का हिस्सा बनाया गया था। आगे चलकर, 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम में इसे संघ राज्यक्षेत्र का दर्जा दिया गया। ध्यातव्य है कि लक्षद्वीप का मूल नाम 'लक्कादीव, मिनिक्कोय तथा अमीनदीवी द्वीपसमूह' (Laccadive, Minicoy and Amindivi Islands) था। 1 नवंबर, 1973 को इसका नाम 'लक्षद्वीप' कर दिया गया।

अंडमान व निकोबार द्वीप समूह का विलय (Accession of Andaman and Nicobar Islands):

अंडमान-निकोबार द्वीप समूह भारत की मुख्यधारा से प्रायः कटा हुआ था। ऐतिहासिक रूप से राजेंद्र चोल-1 (1014-1042 ई.) द्वारा इन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने के बाद से इस स्थान की संस्कृति पर भारत का कुछ प्रभाव दिखाई पड़ता था, हालाँकि यह प्रभाव प्रायः सीमित ही था। आधुनिक काल में डेनमार्क ने 1755 में सबसे पहले इन क्षेत्रों पर कब्जा किया। आगे चलकर, 1868 ई. में डेनमार्क ने ये अधिकार ब्रिटेन को बेच दिए तथा तब से यह क्षेत्र ब्रिटिश भारत का हिस्सा बन गया। अंग्रेजों

कुछ समय के लिए इस पर शासन किया किंतु ब्रिटेन ने युद्ध की समाप्ति के बाद अक्टूबर 1945 में इन क्षेत्रों पर पुनः नियंत्रण कर लिया। जब भारत स्वाधीन हुआ तो अंग्रेजों ने घोषणा की कि वे आंग्ल-भारतीयों (Anglo-Indians) तथा आंग्ल-बर्मियों (Anglo-Burmese) के लिए इन क्षेत्रों पर एक स्वतंत्र राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं। किंतु, भारतीय जनता व नेताओं के भारी दबाव के कारण उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। भारतीय संविधान सभा ने शुरु से ही अंडमान व निकोबार को भारत का हिस्सा बनाने पर बल दिया। 26 जनवरी, 1950 को लागू हुए संविधान में अंडमान निकोबार की विशेष स्थिति को देखते हुए इसे 'भाग-घ' राज्यों में रखा गया। आगे चलकर, 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम में इसे संघ राज्यक्षेत्र अर्थात् केंद्रशासित प्रदेश (Union Territory) का दर्जा दे दिया गया।



(iv) तार्किक आधारों पर राज्यों का पुनर्गठन (Reorganisation of states on rational grounds)

पृष्ठभूमि (Background):

अंग्रेजों को भारत विजय कोई आकस्मिक सट्टा न होकर सीधे-सीधे से अधिक समय तक चलने वाली एक क्रमिक प्रक्रिया थी। इसलिए अंग्रेजों ने संप्रदाय के सुदृढीकरण के लिए जो 'भौगोलिक सीमाएँ खींचीं', वे अस्वाभाविक और अतार्किक थीं। उन्होंने प्रदेशों के सीमा निर्धारण में सिर्फ अपनी सुविधाओं तथा निहित हितों पर ध्यान दिया, जनता की दृष्टि से भाषा या संस्कृति की समरूपता का कोई ध्यान नहीं रखा। इसलिए, उनके द्वारा बनाए गए ज्यादातर राज्य बहुभाषी (Multilingual) और बहुसंस्कृतियुक्त (Multicultural) थे। बीच-बीच में पड़ने वाली दशोत्तरियाँ (Frontier States) में प्रादेशिक विभाजनों को और बेमेल बना दिया था।

आज़ादी मिलते ही देश के सामने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन (Reorganisation of states) का सवाल आ खड़ा हुआ। भाषायी आधार पर प्रांतों या प्रशासनिक इकाइयों के गठन के पक्ष में काफी मजबूत तर्क थे। चूँकि भाषा लोक-संस्कृति से बहुत गहरे तौर पर जुड़ी होती है, इसलिए जनता के भावों, विचारों एवं रीतिरिवाजों पर भी इसका गहरा असर होता है। आम जनता के लिए लोकतंत्र तभी यथार्थ बन सकता है जब राजनीति और प्रशासन उस भाषा के माध्यम से संचालित हों, जिसे वह ठीक से समझती हों। यही कारण था कि 1919 के बाद जब आम जनता बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने लगी, तब कांग्रेस ने अपना कामकाज राष्ट्रीय भाषा में करना आरंभ कर दिया। 1921 में कांग्रेस ने अपने संविधान में संशोधन किया और अपनी क्षेत्रीय शाखाओं को भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया। उसी समय से कांग्रेस ने बार-बार यह दुहराया कि वह भाषायी आधार पर प्रादेशिक सीमाओं के पुनर्निर्धारण के लिए कटिबद्ध है।

लेकिन आज़ादी के बाद राष्ट्रीय नेतृत्व ने इस मुद्दे पर नये सिरे से सोचना शुरू किया। कई कारणों, जैसे विभाजन के बाद उत्पन्न हुई गंभीर प्रशासनिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के कारण कांग्रेसी नेतृत्व अपने वायदे को तुरंत लागू करने से कतराने लगा था। नेतृत्व का विचार था कि अभी कुछ समय के लिए पहला काम राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना होना चाहिए क्योंकि देश की आंतरिक सीमाओं के पुनर्निर्धारण के जटिल कार्य को अभी हाथ में लेने का कोई भी प्रयास प्रशासनिक और आर्थिक

शामिल किया गया था जिनमें गवर्नर की नियुक्ति की जाती थी। 'भाग-ख' में उन देशी रियासतों को रखा गया जिनमें विधानमंडल पहले से मौजूद थे। 'भाग-ग' में उन केंद्रशासित प्रदेशों को शामिल किया गया जो ब्रिटिश शासन के अंतर्गत मुख्य आयुक्त (Chief Commissioner) के अधीन प्रशासित होते थे। 'भाग-घ' का निर्माण विदेशों से अर्जित राज्यक्षेत्रों (Acquired territories) के लिए किया गया था और आरंभ में इसमें सिर्फ अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को उसकी विशिष्ट स्थिति के कारण शामिल किया गया था। उस समय के राज्यों की सूची निम्नलिखित तालिका में देखी जा सकती है—

मूल संविधान (1949 ई.) में भारत का राज्य क्षेत्र

भाग 'क' राज्य (Part 'A' states)	भाग 'ख' राज्य (Part 'B' states)	भाग 'ग' राज्य (Part 'C' states)	भाग 'घ' राज्य (Part 'D' states)
(1) असम	(1) हैदराबाद	(1) अजमेर	(1) अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह
(2) बिहार	(2) जम्मू-कश्मीर	(2) भोपाल	(2) अर्जित राज्य क्षेत्र (यदि कोई हो)
(3) बंबई	(3) मध्य भारत	(3) बिलासपुर	
(4) मध्य प्रांत	(4) मैसूर	(4) कूच बिहार	
(5) मद्रास	(5) पटियाला व पूर्वी पंजाब	(5) कुर्ग	
(6) उड़ीसा	(6) राजस्थान	(6) दिल्ली	
(7) पंजाब	(7) सीकंदर	(7) त्रिमाचल प्रदेश	
(8) संयुक्त प्रांत	(8) त्रावणकोर-कोचीन	(8) कच्छ	
(9) पश्चिम-बंगाल	(9) विध्य प्रदेश	(9) पणपुर	
		(10) त्रिपुरा	

दर आयोग (Dar Commission):

संविधान सभा में भारत के भाषायी पुनर्गठन के प्रश्नको बहुत पहले उठा दिया गया था। इसके संदर्भ में संविधान सभा ने 1948 में एस. के. दूर के नेतृत्व में दर आयोग की नियुक्ति की थी। इस आयोग से भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की वांछनीयता का मूल्यांकन करने को कहा गया था। दर आयोग ने उस समय ऐसा काम उठाने के खिलाफ अपनी सलाह दी क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता को खतरा एवं प्रशासन के लिए भारी असुविधा उत्पन्न हो सकती थी। परिणामस्वरूप, संविधान सभा ने संविधान के भीतर राज्यों के संदर्भ में भाषायी सिद्धान्त को लागू नहीं करने का निर्णय लिया।

जे.वी.पी. समिति (J.V.P. Committee):

दर आयोग की अनुशंसा से जनता संतुष्ट नहीं थी, खास तौर पर दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश की मांग को लेकर यह समस्या राजनीतिक रूप से जीवंत बनी रही। भाषायी राज्यों के उग्र समर्थकों को शांत करने के लिए कांग्रेस ने दिसम्बर, 1948 में एक समिति (जे.वी.पी. समिति) नियुक्त कर दी जिसके सदस्य जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल और पट्टाभि सीतारमैया थे। इस समिति ने अप्रैल, 1949 में अपनी रिपोर्ट सौंपी जिसमें कहा गया था कि अभी कुछ वर्षों के लिए भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को स्थगित कर दिया जाना चाहिए। समिति ने तर्क दिया कि पहले देश की सुरक्षा, एकता और आर्थिक संपन्नता पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके बावजूद, इस समिति ने कहा कि यदि आंध्र प्रदेश की मांग करने वाले मद्रास शहर की मांग न करें तो 'आंध्र प्रदेश' का गठन किया जा सकता है।

जे. वी. पी. रिपोर्ट के बाद पूरे देश में राज्यों के पुनर्गठन के लिए व्यापक जनोदोलन शुरू हो गये। खासतौर पर तेलुगूभाषी लोगों ने आंध्र राज्य की मांग को और बुलंद तरीके से उठाया। यह मांग करीब पचास वर्षों से लोकप्रिय थी और इसे सभी राजनीतिक दलों का समर्थन भी प्राप्त था।

नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को ही मुख्यमंत्री बनाया। इस पूरी प्रक्रिया में कांग्रेस को महसूस हो गया कि जन-आकांक्षाओं के विरुद्ध जाकर उसे काफी नुकसान उठाना पड़ सकता है।

इसी बीच, 19 अक्टूबर, 1952 को विख्यात स्वतंत्रता सेनानी और दिग्गज कांग्रेसी कार्यकर्ता पोर्टी श्रीरामुलु ने अलग आंध्र राज्य की मांग पर आमरण अनशन कर दिया और 58 दिनों के उपवास के बाद उनकी मृत्यु ने पूरे आंध्र क्षेत्र में व्यापक आक्रोश भड़का दिया जिसकी परिणति प्रदर्शनों, हिंसा, दंगों और हड़तालों में हुई। इसके तीन दिन बाद केंद्र सरकार ने आंध्र राज्य की मांग को (बिना मद्रास शहर के) स्वीकार कर लिया। 1 अक्टूबर, 1953 को अंततः आंध्रप्रदेश अस्तित्व में आ गया। इसके बाद मद्रास प्रांत के बचे हुए क्षेत्र को तमिल-भाषी राज्य के रूप में रखा गया। 1969 में इसका नाम तमिलनाडु कर दिया गया।

राज्य पुनर्गठन आयोग (State Reorganisation Commission):

आंध्र संघर्ष की सफलता ने अन्य भाषाई समूहों को अपने राज्यों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण के लिए आंदोलन करने हेतु प्रोत्साहित किया। पंडित नेहरू इस बात के बिल्कुल पक्ष में नहीं थे कि भारत की आंतरिक प्रशासनिक सीमाओं को लगातार बदला जाता रहे, लेकिन लोकतांत्रिक जन-भावनाओं को कठोरता से कुचलना उन्हें अनुचित प्रतीत होता था; खासकर इसलिए कि यदि परिस्थितियाँ सामान्य होतीं तो वे स्वयं इन मांगों का समर्थन कर सकते थे।

इस मांग को थोड़ा मानते और थोड़ा टालते हुए नेहरू जी ने अगस्त 1953 में 'राज्य पुनर्गठन आयोग' (States Reorganization Commission-SRC) नियुक्त कर दिया, जिसके सदस्य जस्टिस फजल अली, के. एम. पणिकर और हृदयनाथ कुंजरू बनाए गये। इस आयोग से वस्तुनिष्ठ एवं तटस्थ आधार पर सभी राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित प्रश्नों की पड़ताल करने को कहा गया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर 1955 में दी। राज्य पुनर्गठन आयोग ने दो वर्षों तक गहन चिंतन व अनुसंधान किया तथा वह निम्नलिखित सिद्धांतों पर पहुंचा-

- (i) केवल भाषा (और संस्कृति) के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन नहीं किया जाना चाहिए बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security), वित्तीय व प्रशासनिक कुशलता (Financial and Administrative Efficiency) को प्रमुखता मिलनी चाहिए।
- (ii) भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन तर्क भी व्यावहारिक नहीं है। वस्तुतः ऐसा कोई भी राज्य बनाया जाय: असंभव है जो पूर्णतः एकभाषी (Unilingual) हो क्योंकि-
 - (क) एक भाषा को बोलने वाले सभी व्यक्ति भौगोलिक रूप से इस तरह इकट्ठे नहीं रहते हैं कि उस स्थान को राज्य बनाया जा सके।
 - (ख) एक भाषा का अधिक उपयोग करने वाले क्षेत्रों में भी कुछ ऐसी जनसंख्या जरूर रहती है जो किसी अन्य भाषा का प्रयोग करती है। इस कारण अधिकांश क्षेत्र 'मिश्रित भाषा क्षेत्र' (Mixed Language areas) हैं।
 - (ग) किन्हीं भी दो भाषायी क्षेत्रों के मध्य में एक ऐसा क्षेत्र जरूर पड़ता है जहाँ दोनों भाषाओं के प्रयोक्ता मिश्रित रूप में रहते हैं। ऐसे स्थानों को एकभाषी राज्यों के तर्क के अनुसार बाँटना असंभव है।
- (iii) तब भी, यदि किसी स्थान पर रहने वाली जनसंख्या का 70% या अधिक भाग एक ही भाषा का प्रयोग करता हो तो उसे 'एकभाषी राज्य' (Unilingual state) के रूप में पुनर्गठित किया जा सकता है। किंतु, यदि किसी क्षेत्र में दूसरी भाषा बोलने वाले या भाषायी अल्पसंख्यक (Linguistic minorities) जनसंख्या के 30% से अधिक हों, तो उस राज्य को 'एकभाषी राज्य' (Unilingual state) के रूप में पुनर्गठित करने के स्थान पर प्रशासनिक सुविधा के अनुसार पुनर्गठित करना चाहिए तथा उसे 'द्विभाषी राज्य' (Bilingual state) के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।
- (iv) जिलों के स्तर पर भी यही भाषायी अनुपात लागू किया जाना चाहिए।
- (v) राज्यों का वर्गीकरण भाग 'क', 'ख', 'ग', 'घ' में करने की आवश्यकता नहीं है। सभी राज्यों को एक ही सूची में शामिल किया जाना चाहिए।

आयोग ने उपरोक्त आधारों पर भारत सरकार को राज्यों के पुनर्गठन की विस्तृत योजना सौंप दी जिसमें भाषाई राज्यों को प्रायः स्वीकार कर लिया गया था। बंबई और पंजाब को भाषायी आधार पर बाँटने का इस आयोग ने विरोध किया था और इन्हें द्विभाषी

- (क) यदि किसी राज्य में 30% या अधिक लोग प्रमुख भाषा से अलग कोई एक भाषा प्रयुक्त करते हैं तो इस दूसरी भाषा को सभी प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए प्रथम भाषा के समतुल्य (Equivalent) समझा जाएगा तथा ऐसे राज्य को द्विभाषी राज्य (Bilingual state) के रूप में मान्यता दी जाएगी।
- (ख) यदि भाषायी अल्पसंख्यकों की संख्या 15-20% हो तो सरकार के सभी नियम, आदेश, कानून आदि उस भाषा में भी प्रस्तुत किए जाएंगे।
- (ग) भाषायी अल्पसंख्यकों को यह अधिकार होगा कि वे अपने राज्य की सरकार या केंद्र सरकार को अपनी भाषा में कोई आवेदन या प्रस्तुति (Presentation) दे सकें, चाहे वह भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हो या नहीं।

इस रिपोर्ट पर देश के कई भागों में तीखी प्रतिक्रिया होने के बावजूद आयोग की संस्तुतियों को मोटे तौर पर स्वीकार कर लिया गया और थोड़े बहुत फेर-बदल के बाद शीघ्र लागू कर दिया गया। 1 नवम्बर, 1956 को संसद द्वारा पारित 'राज्य पुनर्गठन अधिनियम' (States Reorganization Act) लागू कर दिया गया। इसके माध्यम से मुख्यतः निम्नलिखित परिवर्तन हुए-

- (i) इसमें 14 राज्यों एवं 6 संघ राज्यक्षेत्रों/केन्द्रशासित प्रदेशों की व्यवस्था की गई। पहले जो 29 राज्य (भाग 'क', 'ख', 'ग' व 'घ' में सम्मिलित राज्य) थे, वे अब कुल 20 प्रशासनिक इकाइयों में व्यवस्थित किए गए। इनमें से 14 राज्य थे और 6 संघ राज्यक्षेत्र।
- (ii) 'भाग क', 'भाग ख', 'भाग ग' तथा भाग 'घ' के राज्यों की विभेद समाप्त कर दिया गया। अब सभी राज्यक्षेत्रों को 'राज्य' (State) या संघ राज्यक्षेत्र (Union Territory) वर्गीकृत हो शामिल कर लिया गया।
- (iii) राज्यों का गठन प्रायः भाषाई आधार पर किया गया, हालांकि अन्य नियमों के मामले में लागू नहीं किया गया। उदाहरण के लिए, बंबई तथा पंजाब को भाषाई आधार पर गठित नहीं किया गया।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के लागू हो जाने पर भारत के सभी राज्य व संघ राज्यक्षेत्र इस प्रकार थे-

(क) राज्य (States)

1. आंध्रप्रदेश: आंध्र का नाम बदलकर आंध्र प्रदेश कर दिया गया और पूर्ववर्ती हैदराबाद राज्य के तेलंगाना क्षेत्र को जोड़कर इसका क्षेत्र विस्तार किया गया।
2. असम: 1956 में इसकी सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।
3. बिहार: 1956 में इसकी सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।
4. बंबई: सौराष्ट्र, कच्छ तथा मध्य प्रदेश के नागपुर मंडल के मराठीभाषी भाग और हैदराबाद के मराठवाड़ा क्षेत्र को जोड़कर इसका क्षेत्र विस्तृत किया गया। बंबई राज्य को दक्षिणी जिला मेसूर राज्य में स्थानांतरित कर दिया गया। (आगे चलकर, सन् 1960 में बंबई राज्य का विभाजन वर्तमान महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों में कर दिया गया)।
5. जम्मू और कश्मीर: 1956 में सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।
6. केरल: मद्रास राज्य के मालाबार जिले के साथ त्रावणकोर-कोचीन राज्य को मिलाकर, दक्षिण कनारा (दक्षिण कन्नड़) और त्रावणकोर (कन्याकुमारी) के दक्षिणी भाग को मद्रास राज्य से जोड़कर केरल राज्य का गठन किया गया।
7. मध्य प्रदेश: मध्य भारत, विंध्य प्रदेश और भोपाल का विलय मध्य प्रदेश में किया गया। साथ ही, इसके नागपुर मंडल के मराठी भाषी जिलों को बंबई राज्य को हस्तांतरित कर दिया गया।
8. मद्रास: मालाबार जिले को नवगठित राज्य केरल को हस्तांतरित करके राज्य की तात्कालिक सीमाओं को कम कर दिया गया। त्रावणकोर के दक्षिणी हिस्से (कन्याकुमारी जिला) को मद्रास राज्य में जोड़ दिया गया। (1969 में मद्रास राज्य का नाम बदलकर तमिलनाडु कर दिया गया)।
9. मेसूर: कुर्ग राज्य और दक्षिणी बंबई तथा पश्चिमी हैदराबाद राज्य को जोड़कर राज्य का क्षेत्र विस्तार किया गया। (1973 में राज्य का नाम बदलकर कर्नाटक कर दिया गया)।
10. उड़ीसा: 1956 में सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।
11. पंजाब: पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्यों के यूनियन का विलय पंजाब में किया गया।

13. उत्तर प्रदेश: 1956 में इसकी सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।
14. पश्चिम बंगाल: 1956 में इसकी सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

(ख) संघ राज्यक्षेत्र अथवा केंद्र शासित प्रदेश (Union Territories)

1. अंडमान निकोबार द्वीप समूह- इसे भाग 'घ' राज्यों की सूची से निकालकर संघ राज्यक्षेत्र बनाया गया।
2. दिल्ली- इसे भाग 'ग' राज्यों की सूची से निकालकर संघ राज्यक्षेत्र बनाया गया।
3. हिमाचल प्रदेश- इसे भाग 'ग' राज्यों की सूची से निकालकर संघ राज्यक्षेत्र बनाया गया।
4. लक्कादिव, मिनिकोय तथा अमीनदीवी द्वीपसमूह- यह लक्षद्वीप का 1973 से पूर्व का नाम है। इसे 1956 में मद्रास राज्य (भाग क) से अलग करके संघ राज्यक्षेत्र बनाया गया।
5. मणिपुर- इसे भाग 'ग' राज्यों की सूची से निकालकर संघ राज्यक्षेत्रों में शामिल किया गया।
6. त्रिपुरा- इसे भाग 'ग' राज्यों की सूची से निकालकर संघ राज्यक्षेत्रों में शामिल किया गया।

1956 के बाद भारतीय राज्यक्षेत्र का पुनर्गठन (Reorganisation of Indian Territory after 1956):

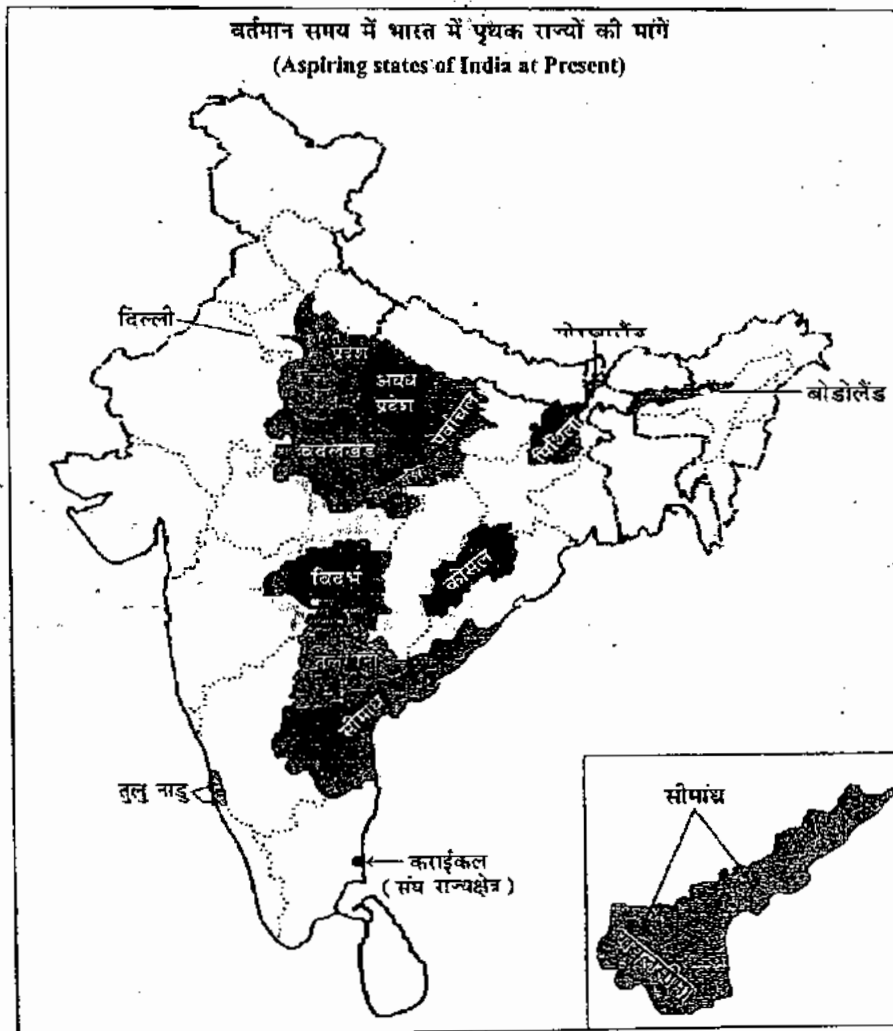
राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 की राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न का स्थायी समाधान नहीं कर सका। उसके बाद से राज्यों की संख्या बढ़ते-बढ़ते 14 से 28 हो गई है तथा अभी भी कई राज्यों की सीमाएँ अस्पष्ट और अनिश्चित हैं। संघ राज्यक्षेत्र भी अब 6 से बढ़कर 7 हो गए हैं। 1956 से अभी तक इस संबंध में जो कानून पारित हुए हैं, वे इस प्रकार हैं-

- (i) 1960 (महाराष्ट्र तथा गुजरात): राज्य पुनर्गठन आयोग और अधिनियम के खिलाफ सर्वाधिक विरोध बंबई में हुआ था क्योंकि आयोग ने बंबई को विभाजन भाषायी आधार पर करने का समर्थन नहीं किया था। बंबई में मराठी तथा गुजराती भाषी समुदायों की पर्याप्त संख्या थी और दोनों भाषाओं के प्रयोक्ताओं को एक बड़ा वर्ग स्वतंत्र भाषायी राज्यों के पक्ष में था। आखिरकार, जनता के दबाव में झुककर भारत सरकार ने 1960 में यह निर्णय लिया कि बंबई राज्य को महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यों में बाँट दिया जाए। बंबई नगर महाराष्ट्र को मिले तथा अहमदाबाद को गुजरात की राजधानी बना दिया जाए। 'बंबई पुनर्गठन अधिनियम, 1960' के माध्यम से यह किया गया।
- (ii) 1962 (नागालैंड): 1962 में 'नागालैंड राज्य अधिनियम' के तहत नागालैंड को स्वतंत्र राज्य बनाया गया। इसे असम राज्य से अलग किया गया। पहले यह छठी अनुसूची में शामिल जनजाति-क्षेत्र था।
- (iii) 1966 (हरियाणा): पंजाब एक अन्य राज्य था, जहाँ पुनर्गठन के लिए प्रांतीय आधार लागू नहीं किया गया था। अकाली दल के नेतृत्व में कुछ सिक्ख समूहों और जनसंघ के नेतृत्व में कुछ हिन्दू संगठनों ने भाषा के मुद्दे पर आंदोलन चलाया। अन्ततः 1966 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गान्धी पंजाबी और हिन्दी भाषी दो राज्यों के विभाजन के लिए तैयार हो गई। 'पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966' के माध्यम से पंजाब और हरियाणा दो अलग-अलग राज्य बना दिये गये। संयुक्त पंजाब की राजधानी और नवनिर्मित शहर चण्डीगढ़ को संघ राज्यक्षेत्र अथवा केंद्रशासित प्रदेश (Union territory) बना दिया गया तथा इसी को पंजाब और हरियाणा की संयुक्त राजधानी बना दिया गया।
- (iv) 1970 (हिमाचल प्रदेश): 1970 में 'हिमाचल प्रदेश अधिनियम' के तहत इसे संघशासित क्षेत्रों (Union territories) की सूची से निकालकर राज्य का दर्जा दिया गया।
- (v) 1971 (मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा): 'पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971' द्वारा मणिपुर, त्रिपुरा तथा मेघालय को राज्यों की सूची में शामिल किया गया। इससे पूर्व मणिपुर तथा त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्र थे जबकि मेघालय को 1970 में असम के भीतर 'स्वायत्त राज्य' (Autonomous state) का दर्जा दिया गया था। इसी अधिनियम के तहत अरुणाचल प्रदेश तथा मिज़ोरम को संघ शासित क्षेत्रों (Union territories) का दर्जा दिया गया।
- (vi) 1974-75 (सिक्किम): 1974 में '35वें संविधान संशोधन' के तहत सिक्किम को 'सहयोगी राज्य' (Associate state) के रूप में भारतीय राज्य क्षेत्र में शामिल किया गया। '36वें संविधान संशोधन, 1975' के तहत इसे पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
- (vii) 1986 (मिज़ोरम): 1986 में 'मिज़ोरम राज्य अधिनियम' के तहत मिज़ोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया। इससे पहले, 1971 के 'पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम' के तहत इसे संघ-शासित क्षेत्र बनाया गया था।
- (viii) 1986 (अरुणाचल प्रदेश): 'अरुणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम' (1986) के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश को 1986 में पूर्ण राज्य बनाया गया। इससे पहले, 1971 के 'पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम' के तहत इसे संघ शासित क्षेत्र बनाया

- (ix) 1987 (गोवा): 1987 में 'गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम' के माध्यम से गोवा को दमन और दीव से अलग करके राज्य का दर्जा दिया गया।
- (x) 2000 (छत्तीसगढ़): 2000 में 'मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम' के माध्यम से छत्तीसगढ़ को मध्य प्रदेश के 16 जिलों को मिलाकर स्वतंत्र राज्य बनाया गया।
- (xi) 2000 (उत्तराखंड): 2000 में ही 'उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम' के तहत 9 नवंबर को उत्तराखंड को उत्तर प्रदेश के 13 जिले मिलाकर स्वतंत्र राज्य बनाया गया।
- (xii) 2000 (झारखंड): 2000 में ही झारखंड को 'बिहार पुनर्गठन अधिनियम' के तहत 15 नवंबर को बिहार के 18 जिले मिलाकर बनाया गया।

वर्तमान में नए राज्यों के गठन की मांगें

(Demands for formation of New states at present)



वर्तमान में भी कई क्षेत्रों के लोग नए राज्यों के निर्माण की मांग उठा रहे हैं। ऐसी प्रमुख मांगें इस प्रकार हैं—

(i) तेलंगाना: तेलंगाना आंध्र प्रदेश का एक हिस्सा है जो शेष आंध्र प्रदेश से कम विकसित है। संसाधनों की दृष्टि से शेष आंध्र प्रदेश से ज्यादा सम्पन्न होने के बावजूद यह विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इसके अंतर्गत उत्तरी आंध्र प्रदेश के गैर-तटीय जिले शामिल हैं। 'हैदराबाद' को भी तेलंगाना समर्थक अपने प्रस्तावित राज्य का हिस्सा मानते हैं। छोटे तौर पर, राज्यसीमा न तटीय आंध्र प्रदेश को छोड़ दें तो आंध्र प्रदेश का शेष हिस्सा तेलंगाना कहलाता है।

पृथक् तेलंगाना की मांग स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही प्रारंभ हो गई थी। राज्य पुनर्गठन आयोग इस प्रश्न पर काफी द्वन्द्व में था कि तेलंगाना को पृथक् राज्य बनाया जाए या नहीं? अंततः

उसने अपनी अनुशंसाओं में कुछ खास प्रावधानों के साथ पृथक् 'हैदराबाद' बनाने का सुझाव दिया। किंतु, कांग्रेस के तत्कालीन केंद्रीय नेतृत्व ने तय किया कि तेलंगाना को आंध्र प्रदेश के भीतर ही रखा जाए। इससे तेलंगाना के लोगों में नायज़गी उत्पन्न हुई जो 1968-69 में उस्मानिया विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा किये गए आंदोलन के रूप में व्यक्त हुई। इस आंदोलन में 350 से अधिक विद्यार्थियों की भृत्य हुई।

था। 1969 में 'तेलंगाना प्रजा समिति' (TPS) नामक राजनीतिक दल बना जिसने 1971 के लोकसभा चुनाव में 13 में से 11 स्थानों पर विजय हासिल की। 2001 में एक नया दल 'तेलंगाना राष्ट्र समिति' (TRS) का गठन के. चंद्रशेखर राव की अध्यक्षता में हुआ। इस दल का एकसूत्रीय कार्यक्रम यही था कि तेलंगाना को पृथक् राज्य बनाया जाये तथा हैदराबाद को तेलंगाना की राजधानी बनाया जाए।

2004 के विधानसभा व लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी का गठबंधन तेलंगाना राष्ट्र समिति (TRS) से हुआ और कांग्रेस ने पृथक् तेलंगाना राज्य बनाने का वादा किया। इससे पहले, 1990 में ही भारतीय जनता पार्टी पृथक् तेलंगाना के निर्माण का वायदा कर चुकी थी। तेलंगाना राष्ट्र समिति ने 2004 के चुनावों के बाद गठबंधन सरकार में भाग लिया तथा पृथक् तेलंगाना राज्य को 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम' (CMP- Common Minimum Programme) के अंतर्गत शामिल कराने में सफलता प्राप्त की। किंतु, जब सरकार ने तबे समय तक इस संबंध में कोई रुचि व सक्रियता नहीं दिखाई तो सितंबर 2006 में 'तेलंगाना राष्ट्र समिति' (TRS) ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया। 29 नवंबर, 2009 को 'तेलंगाना राष्ट्र समिति' के अध्यक्ष के. चंद्रशेखर राव तेलंगाना राज्य की मांग को लेकर आमरण अनशन पर बैठ गए और अगले एक सप्ताह तक पूरे तेलंगाना में विद्रोह व प्रदर्शन होते रहे। 9 दिसंबर, 2009 को गृहमंत्री पी. चिंदबरम ने पृथक् तेलंगाना राज्य के निर्माण की प्रक्रिया शुरू करने की घोषणा की जिससे तेलंगाना समर्थकों में खुशी की लहर दौड़ गई। किंतु, रायलसीमा तथा आंध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्रों की जनता और राजनीतिक दलों ने केन्द्र सरकार की इस घोषणा का विरोध किया। इन विरोधों को देखते हुए 23 दिसंबर को भारत सरकार ने घोषणा की कि तेलंगाना राज्य के मामले पर तब तक कोई कदम नहीं उठाया जाएगा जब तक सभी दलों में सहमति बन जाये।

3 फरवरी, 2010 को केन्द्र सरकार ने एक 15 सदस्यीय समिति 'श्रीकृष्ण समिति' (Srikrishna Committee) का गठन किया जिसे तेलंगाना के मुद्दे से जुड़े सभी प्रश्नों पर विस्तृत विचार करना था। 30 नवंबर, 2010 को समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें तेलंगाना मुद्दे के 6 संभावित समाधानों की चर्चा की गई थी। ये संभावित समाधान इस प्रकार थे—

1. यथास्थिति को ही बना रहने दिया जाए। हालाँकि समिति ने खुद माना कि यह सबसे कमजोर विकल्प है।
2. तेलंगाना तथा सीमांश को पृथक् राज्य बनाया जाए तथा हैदराबाद को केन्द्र शासित प्रदेश (Union Territory) बना दिया जाए। धीरे-धीरे दोनों राज्य अपनी राजधानियों का विकास करें।
3. आंध्र प्रदेश के दो हिस्से किये जाएं। पहला हिस्सा रायलसीमा हो, जिसमें रायलसीमा और तेलंगाना के क्षेत्र शामिल हों तथा हैदराबाद इसकी राजधानी हो। तटीय आंध्र प्रदेश को स्वतंत्र राज्य बनाया जाए।
4. आंध्र प्रदेश को सीमांश एवं तेलंगाना दो राज्यों में विभाजित कर दिया जाए तथा हैदराबाद मेट्रोपोलिस का क्षेत्रफल बढ़ाकर उसे केन्द्रशासित प्रदेश बनाया जाए। हैदराबाद की राजधानी इस प्रकार की जाए कि उसका भौगोलिक संपर्क सीमांश एवं तेलंगाना दोनों से बना रहे।
5. आंध्र प्रदेश के दो भाग कर दिए जाएं। पहला भाग 'तेलंगाना' हो तथा उसकी राजधानी हैदराबाद हो। दूसरा भाग 'सीमांश' हो जिसमें रायलसीमा तथा आंध्र के तटीय क्षेत्र शामिल हों। इस हिस्से अर्थात् 'सीमांश' के लिए नई राजधानी बनाई जाए।
6. तेलंगाना क्षेत्र को आंध्र प्रदेश से संयुक्त ही रहने दिया जाए किन्तु उसके विकास के लिए विधायी (Statutory) अधिकारों से युक्त तेलंगाना क्षेत्रीय परिषद (Telangana Regional Council) का गठन किया जाए।

श्रीकृष्ण समिति ने सबसे बेहतर समाधान यह माना कि तेलंगाना क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास तथा राजनीतिक संशक्तीकरण के लिए वैधानिक अधिकारों से युक्त तेलंगाना क्षेत्रीय परिषद (Telangana Regional Council) का गठन किया जाए। दूसरी ओर, तेलंगाना के समर्थकों का दावा था कि बताए गए छः संभावित समाधानों में सबसे बेहतर समाधान यही है कि तेलंगाना को पृथक् राज्य बनाया जाये तथा हैदराबाद को उसकी राजधानी का दर्जा दिया जाए।

यह रिपोर्ट आने के बाद से तेलंगाना में विरोध प्रदर्शन जारी हैं। फरवरी, 2011 में वहाँ असहयोग आंदोलन शुरू किया गया जिसमें 3 लाख सरकारी कर्मचारियों ने भाग लिया। 16 दिनों तक चले इस आंदोलन में सरकार को राजस्व का भारी घाटा हुआ। वर्तमान स्थिति यह है कि तेलंगाना के सभी दल इस मुद्दे पर एक हो गये हैं तथा 'ऑल पार्टी तेलंगाना ज्वानत मोर्चा' (All Party Telangana Janat Morcha) का गठन किया गया है।

रायलसीमा का क्षेत्र शामिल है। यहाँ के कुछ लोगों की मांग है कि उन्हें तेलंगाना से अलग करके पृथक् सीमांश राज्य का निर्माण किया जाए।

- (iii) **विदर्भ:** विदर्भ क्षेत्र पूर्वी महाराष्ट्र के अमरावती और नागपुर मंडलों से मिलकर बनता है। अंग्रेजों के समय से ही इस स्थान को काफी महत्व मिलता रहा है। राज्य पुनर्गठन आयोग (States Reorganisation Commission) द्वारा पृथक् विदर्भ राज्य बनाए जाने का सुझाव दिया गया था जिसकी राजधानी नागपुर होनी थी, लेकिन पश्चिमी महाराष्ट्र के राजनेताओं के दबाव के चलते ऐसा नहीं हो सका। तब से विदर्भ पर शेष महाराष्ट्र का प्रभुत्व जारी है।

1970 के दशक में विदर्भ राज्य के समर्थन में लोकप्रिय जन आंदोलन खड़ा किया गया। इस मांग का मूल आधार आर्थिक पिछड़ापन था। एन.के.पी. साल्वे तथा वसंत साठे इस आंदोलन के प्रमुख समर्थक नेता हैं जो कांग्रेस पार्टी से जुड़े रहे हैं। हाल ही में नागपुर के राजनेता नितिन गडकरी को भारतीय जनता पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाया गया है जो स्वयं पृथक् विदर्भ राज्य के गठन के पक्षधर रहे हैं। इससे इस मांग के और तीव्र होने की संभावना बढ़ गई है।

इस संदर्भ में जटिल बिंदु यह है कि विदर्भ के आंदोलनकर्ता अमरावती मंडल (अमरावती, अकोला, यवतमाल आदि जिलों) को भी प्रस्तावित विदर्भ राज्य में शामिल करना चाहते हैं जो पूर्ववर्ती बरार प्रांत में थे। समस्या यह है कि इन हिस्सों की सांस्कृतिक विशेषताएँ खानदेश और मराठावाड़ा क्षेत्रों से ज्यादा मिलती हैं, न कि विदर्भ के क्षेत्रों से।

- (iv) **हरित प्रदेश:** पश्चिमी उत्तर प्रदेश को उत्तर प्रदेश से अलग करके एक नये राज्य हरित प्रदेश के निर्माण की मांग भी विगत कुछ वर्षों से उठायी जा रही है। कुछ लोग इसे 'पश्चिमी प्रदेश' भी कहते हैं। इसके अंतर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश के 6 मंडलों—मेरठ, सहारनपुर, मुरादाबाद, बरेली, आगरा और अलीगढ़ के 22 जिले आते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी एवं पश्चिमी भागों में पायी जाने वाली सांस्कृतिक भिन्नता इस मांग का एक प्रमुख कारण है क्योंकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वी उत्तर प्रदेश की अपेक्षा हरियाणा एवं राजस्थान से अधिक साम्य रखता है। राष्ट्रीय लोकदल (RLD) के नेता अजीत सिंह इस मांग के प्रबल समर्थक हैं।

- (v) **बुंदेलखण्ड:** 1947 से पहले बुंदेलखंड एक रियासत थी जिसे पहले बिन्ध्य प्रदेश का हिस्सा बनाया गया तथा 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम में इसे मध्य प्रदेश में शामिल कर दिया गया। वर्तमान में यह क्षेत्र देश के सबसे पिछड़े इलाकों में से एक है। 'खनिजों की दृष्टि से संपन्न होने के बावजूद शिक्षा व आर्थिक संसाधनों की कमी तथा बंजर भूमि के कारण यहाँ पिछड़ापन ज्यादा है। इसलिए, यहाँ के कुछ राजनीतिक संगठन जैसे 'बुंदेलखण्ड एकीकृत पार्टी' तथा 'बुंदेलखंड मुक्ति मोर्चा' पृथक् राज्य की मांग कर रहे हैं। उनके द्वारा प्रस्तावित बुंदेलखंड राज्य में उत्तर-प्रदेश के झाँसी, चित्रकूट, महोबा व ललितपुर तथा मध्य प्रदेश के दतिया, पन्ना, टीकमगढ़ व सागर आदि जिले शामिल होंगे। ललितपुर इसकी प्रस्तावित राजधानी है। कुछ आंदोलनकर्ता मुरैना, भिण्ड, खालियर एवं शिवपुरी को भी बुंदेलखण्ड में शामिल करने के पक्षधर हैं। नवम्बर 2011 में उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश राज्य को जिन चार राज्यों में विभाजित करने की अनुशंसा की है, उनमें से एक बुंदेलखण्ड भी है; हालाँकि स्वाभाविक तौर पर इस राज्य में सिर्फ उत्तर प्रदेश के हिस्से हैं, मध्य प्रदेश के नहीं।

- (vi) **अवध प्रदेश:** अवध प्रदेश उत्तर प्रदेश का केंद्रीय भाग है जहाँ अवधीभाषी जनता निवास करती है। इसके पक्ष में आंदोलन करने वालों की मांग है कि लखनऊ को राजधानी के रूप में स्वीकार करते हुए इसे पृथक् राज्य का दर्जा दिया जाए। नवंबर 2011 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अनुशंसित चार राज्यों में से एक यह भी है।

- (vii) **ब्रज प्रदेश:** यह मांग ब्रज क्षेत्र के कुछ राजनीतिक दलों की है। इनका मानना है कि ब्रजभाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाना चाहिए तथा ब्रजभाषी क्षेत्र को स्वतंत्र राज्य के रूप में गठित किया जाना चाहिए। प्रस्तावित ब्रज प्रदेश में उत्तर प्रदेश के आगरा और अलीगढ़ मंडल शामिल हैं। इनके अलावा राजस्थान के भरतपुर एवं मध्य प्रदेश के खालियर क्षेत्रों को भी शामिल किए जाने की योजना है। आगरा इस प्रस्तावित राज्य की राजधानी होगी।

- (viii) **पूर्वांचल:** पूर्वांचल उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग से मिलकर बनता है। पूर्वांचल में तीन भाषायी क्षेत्र सम्मिलित हैं—पश्चिम में अवधी क्षेत्र, पूर्व में भोजपुरी क्षेत्र और दक्षिण में बघेली क्षेत्र। भोजपुरी इस क्षेत्र में बोली जाने वाली सबसे प्रसिद्ध बोली है। पूर्वांचल क्षेत्र के अंतर्गत पूर्वी उत्तर प्रदेश के आजमगढ़, बलिया, देवरिया, गाजीपुर, गोरखपुर, जौनपुर, कुशीनगर, महाराजगंज, मऊ, मिर्जापुर, संत कबीर नगर, संत रविदास नगर, सिद्धार्थ नगर और वाराणसी जिले आते हैं। उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती ने 13 दिसंबर 2009 को पूर्वांचल राज्य के निर्माण का प्रस्ताव रखा था। 2011 में उन्होंने उत्तर प्रदेश को चार राज्यों में विभाजित करने की जो अनुशंसा की है, उनमें भी पूर्वांचल शामिल है।

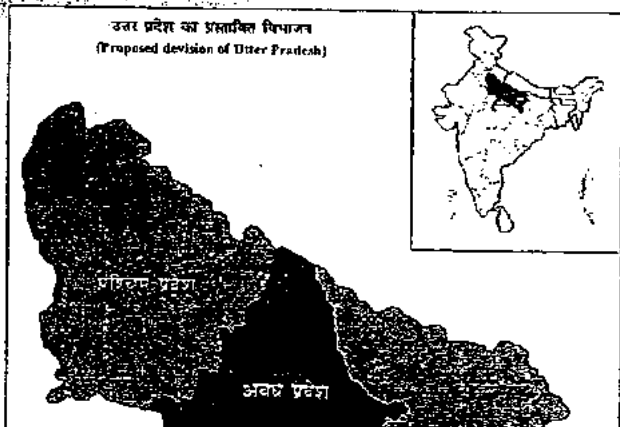
- (ix) **मिथिलांचल:** पृथक् मिथिलांचल राज्य की मांग मिथिलाभाषी क्षेत्र में शामिल कम विकसित जिलों में प्रायः उठती रही है। इस क्षेत्र में दरभंगा, भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया, भुवनेश्वरी, समस्तीपुर, सुपौल, सहरसा, मधेपुरा आदि शामिल हैं। संविधान निर्माण के समय मैथिली को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं में नहीं रखा गया था, लेकिन 2003 में इस आंदोलन को सफलता मिली तथा मैथिली को संविधान के '92वें संशोधन अधिनियम, 2003' के माध्यम से संविधान की

से शेष असम से भिन्नता रखता है। 1980 के आसपास से पृथक् बोडोलैंड राज्य की मांग साफ़ तौर पर उठने लगी थी। भारत सरकार, असम की राज्य सरकार और 'बोडो लिबरेशन टाइगर फोर्स' के मध्य 10 फरवरी 2003 को हुई सहमति के आधार पर असम के चार जिलों के 3082 बोडो बहुल गाँवों के शासन के लिए 'बोडोलैंड टैरिटोरियल काउंसिल' (BTC-Bodoland Territorial Council) का गठन किया गया। 'कोकराझार' इसकी राजधानी है। 'बोडो लिबरेशन टाइगर फोर्स' के प्रमुख 'हगयमा माहिली' को 46 सदस्यीय बोडोलैंड टैरिटोरियल काउंसिल (BTC) का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है।

- (xi) गोरखालैंड : सुभाष घीसिंग के नेतृत्व में गठित 'गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट' द्वारा 1980 के दशक में स्वतंत्र गोरखा राज्य की मांग को लेकर आंदोलन चलाया गया था। इसके परिणामस्वरूप 1988 में 'दार्जीलिंग गोरखा पर्वतीय काउंसिल' का गठन किया गया। दार्जीलिंग और आसपास के क्षेत्रों द्वारा पुनः 2007 में इस मांग को उठाया गया और इस बार 'गोरखा जनमुक्ति मोर्चा' इसके पीछे प्रमुख संगठन था। पश्चिम बंगाल विधानसभा के 2011 के निर्वाचन के उपरान्त 'गोरखा जनमुक्ति मोर्चा' ने राज्य सरकार के साथ दार्जीलिंग गोरखा पर्वतीय काउंसिल (DGHC) के स्थान पर गोरखालैंड क्षेत्रीय प्रशासन (Gorkhaland Territorial Administration) की स्थापना से संबंधित सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं।
- (xii) कोसल : वर्तमान ओडिशा एवं छत्तीसगढ़ राज्यों के क्षेत्र का प्राचीन नाम कोसल है। कोसल क्षेत्र वर्तमान में ओडिशा राज्य के पश्चिमी क्षेत्र के कुछ जिलों जैसे- सुंदरगढ़, बेतानगिरि, कालाहारी तथा अन्य, एवं उत्तर में झारखण्ड राज्य और पश्चिम में छत्तीसगढ़ राज्य के कुछ हिस्सों को सम्मिलित करता है। पिछड़ापन ही यहाँ के लोगों की पृथक् राज्य की मांग का प्रमुख कारण है। इस भौगोलिक क्षेत्र की पहचान ओडिशा सरकार द्वारा 'पश्चिमी ओडिशा विकास काउंसिल' के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र के रूप में की गई है।
- (xiii) विंध्य प्रदेश : विंध्य प्रदेश मध्य प्रदेश का एक हिस्सा है जिसका क्षेत्र में बोना है। यह राज्य उत्तर में उत्तर प्रदेश, दक्षिण में छत्तीसगढ़ एवं पश्चिम में शिव मध्य प्रदेश द्वारा घेरा हुआ है। सन् 2000 में मध्य प्रदेश विधान सभा के पूर्व स्पीकर श्रीनिवास तिवारी ने मध्य प्रदेश से दो जिले अलग करके एक नया राज्य विंध्य प्रदेश के गठन की मांग सम्प्रेषित की थी। 'विंध्य एकता परिषद' और 'विंध्य पुनर्सेवक समिति' जैसे कई संगठन पृथक् विंध्य प्रदेश निर्माण के लिए सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।
- (xiv) तुलुनाडु : पृथक् तुलुनाडु राज्य की मांग कर्नाटक और केरल राज्यों के मध्य एक समृद्ध क्षेत्र में एक भिन्न भाषा (तुलु) के आधार पर उठाई जा रही है। तुलु लोग जोष कर्नाटक से सांस्कृतिक रूप से घिने हैं। कर्नाटक तथा केरल, दोनों राज्य सरकारों ने तुलु संस्कृति को संरक्षित और प्रोत्साहित करने तथा पृथक् राज्य की मांग की दबाने के लिए तुलु साहित्य अकादमी का निर्माण किया है।
- (xv) दिल्ली : दिल्ली के निवासियों की मांग पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त करने की है। ध्यातव्य है कि 1992 में पारित अधिनियम में दिल्ली को राज्य तो बनाया गया था किन्तु पूर्ण राज्य की दर्जा नहीं दिया गया था। राज्य सरकार द्वारा दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा देने संबंधी विधेयक संसद में पेश किया गया था, लेकिन इससे संबंधित विधेयक को अभी तक पारित नहीं किया गया है।
- (xvi) कराईकल : यह मांग पृथक् राज्य की नहीं बल्कि पृथक् संघ राज्य क्षेत्र (Union Territory) की है। कराईकल पुदुच्चेरी का एक जिला है जो भौगोलिक रूप से पुदुच्चेरी से 150 कि.मी. दूर है। यहाँ के निवासियों की मांग है कि उन्हें पुदुच्चेरी से पृथक् संघ राज्य क्षेत्र (Union Territory) का दर्जा दिया जाए।

उत्तर प्रदेश के विभाजन का प्रस्ताव (Resolution to divide Uttar Pradesh):

उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री द्वारा राज्य को चार अलग-अलग राज्यों में विभाजित करने का निर्णय नवंबर, 2011 में राष्ट्रीय परिदृश्य में काफी चर्चित रहा है। प्रदेश का विभाजन कर बनाए जाने वाले चार प्रस्तावित प्रदेश- पश्चिमी उत्तर प्रदेश, अवध प्रदेश, पूर्वांचल व बुंदेलखण्ड



धाम मंडल शामिल करने की सरकार की योजना है।

उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। इसके विभिन्न हिस्सों में विकास की दृष्टि से काफी भिन्नताएँ विद्यमान हैं। साथ ही, इसके विविध भागों की सांस्कृतिक भिन्नता भी विभाजन के लिए महत्वपूर्ण तर्क बनती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश (प्रस्तावित पूर्वांचल एवं अवध प्रांत), पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं बुंदेलखण्ड क्षेत्रों में भाषायी भिन्नता तो विद्यमान है ही; साथ ही सांस्कृतिक रूप से भी ये क्षेत्र परस्पर एक-दूसरे की अपेक्षा अपने पड़ोसी राज्यों से समानता रखते हैं। आर्थिक दृष्टि से जहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश काफी समृद्ध है, वहीं बुंदेलखण्ड अत्यंत पिछड़ा क्षेत्र है।

यद्यपि विभाजन के उपरोक्त आधार सुदृढ़ हैं, लेकिन विश्लेषकों द्वारा इसके राजनीतिक पक्ष को अधिक महत्व दिया जा रहा है क्योंकि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अपने कार्यकाल के पाँच वर्ष लगभग पूरे करने के बाद इस निर्णय का लिया जाना एवं विधानसभा में इस अशय का प्रस्ताव जल्दबाजी में पारित करवाना इस निर्णय के चोट बैंक की राजनीति से प्रेरित होने की तरफ संकेत करते हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश को चार राज्यों में विभाजित करने का संकल्प 21 नवंबर, 2011 को विधानसभा से पारित करवाया और केंद्र सरकार को भेजा। इस प्रस्ताव को विधानसभा चुनावों से तुरंत पहले जिस जल्दबाजी में भेजा गया, उसे देखते हुए केंद्र सरकार ने कोई त्वरित कार्यवाही नहीं की। केंद्र सरकार के गृह मंत्रालय ने दिसंबर 2011 में उत्तर प्रदेश सरकार को एक पत्र लिखा तथा कुछ प्रश्न पूछे, जैसे- विभाजन के बाद राज्यों की सीमाएँ क्या होंगी, सभी राज्यों की राजधानियाँ क्या होंगी, उत्तर प्रदेश का कर्ज इन राज्यों में किस प्रकार विभाजित होगा, इत्यादि। केंद्र सरकार ने यह भी संकेत किया कि संविधान के अनुसार विभाजन संबंधी प्रस्ताव राष्ट्रपति को भेजा जाता चाहिए था, कि केंद्र सरकार को। इस पर उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री ने टिप्पणी की कि केंद्र सरकार इस मुद्दे को टालना चाहती है।

अद्यतन स्थिति यह है कि 2012 मार्च में विधानसभा चुनावों के बाद समाजवादी पार्टी की जेबगठित सरकार उत्तर प्रदेश को विभाजन के प्रश्न पर पूर्ववर्ती सरकार से सहमत नहीं है। ऐसा नहीं लगता कि निकट भविष्य में उत्तर प्रदेश का विभाजन होगा।

विभिन्न क्षेत्रों के नामों में परिवर्तन (Changes in names of different regions)

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जिस प्रकार राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों की सीमाएँ कई बार बदली गई हैं, वैसे ही कई बार राज्यों, संघ राज्यक्षेत्रों या उनकी राजधानियों के नाम भी बदले गए हैं। ऐसे प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार हैं—

1. 24 जनवरी, 1950 को संयुक्त प्रांत (United Province) का नाम उत्तर प्रदेश कर दिया गया।
2. 1968 में मद्रास राज्य का नाम बदलकर तमिलनाडु रखा गया। 14 जनवरी 1969 से यह परिवर्तन लागू हुआ।
3. 1973 में मैसूर का नाम बदलकर कोर्नाटक कर दिया गया।
4. 1973 में ही लक्कादीव, मिनिक्ॉय तथा अमीनदीवी का नाम लक्षद्वीप कर दिया गया।
5. 1992 में केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली का नाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली (NCT Delhi) रखा गया।
6. 2006 में उत्तरांचल का नाम बदलकर उत्तराखंड कर दिया गया।
7. 2006 में ही पांडिचेरी का नाम बदलकर पुदुच्चेरी कर दिया गया।
8. 2011 में उड़ीसा का नाम बदलकर ओडिशा कर दिया गया।
9. 1999 में पश्चिम बंगाल विधानसभा ने अपने राज्य का नाम 'बांग्ला' रखने का संकल्प पारित किया था किंतु यह अभी तक लागू नहीं हो सका है क्योंकि यह राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। हाल ही में सुश्री ममता बैनर्जी की सरकार ने पश्चिम बंगाल के लिए 'पश्चिमबंगा' नामक नया नाम प्रस्तावित किया है जिस पर राज्य के लोगों की मिश्रित प्रतिक्रियाएँ हैं। अधिकांश का मानना है कि पश्चिम बंगाल नाम में से 'पश्चिम' को हटाया जाना चाहिए क्योंकि यदि कोई 'पूर्वी बंगाल' नहीं है तो राज्य को 'पश्चिम बंगाल' कहने का कोई अर्थ नहीं निकलता। तर्क यह भी है कि जब 'पूर्वी बंगाल' ने अपना नाम बदलकर 'बांग्लादेश' कर लिया है तो अब राज्य को पश्चिम बंगाल कहने की क्या आवश्यकता है?

कुछ राज्यों के नामकरण को लेकर सांविधानिक इतिहास में कुछ रोचक विवाद भी हुए हैं। इनमें से कुछ विवाद इस प्रकार हैं—

थे क्योंकि वह नाम परंपरा से चला आ रहा था। किंतु, 'राजस्थान' नाम इसलिए चुना गया क्योंकि 'राजपूताना' नाम में एक जाति विशेष को महत्व मिल रहा था जबकि 'राजस्थान' तटस्थ नाम था।

2. 'महाराष्ट्र' नाम को लेकर कुछ लोग आपत्ति व्यक्त करते हैं कि यह नाम अनुचित है क्योंकि 'महाराष्ट्र' शब्द से प्रतीत होता है कि यह राज्य 'राष्ट्र' से भी बड़ा या महत्वपूर्ण है।
3. जब 'उत्तराखंड' राज्य बनाने की बात हुई थी तो आंदोलनकारियों द्वारा सुझाए गए नाम 'उत्तरखंड' को तत्कालीन राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) सरकार ने इस आधार पर खारिज कर दिया था कि इस नाम में शामिल 'खंड' शब्द राष्ट्र की एकता और 'अखंडता' के विपरीत है। इस तर्क के आधार पर उसका नाम 'उत्तरांचल' कर दिया गया।
4. एक विवाद 'झारखंड' को लेकर भी था। इसमें शामिल 'खंड' शब्द पर भी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की सरकार को वही आपत्ति थी जो उत्तरखंड नाम पर थी। केंद्र सरकार ने इसके लिए 'जनांचल' नाम सुझाया था किंतु जनता के भारी दबाव को देखते हुए वह 'झारखंड' नाम पर सहमत हो गई।

पिछले कुछ समय में कई राज्यों में राजधानियों का नाम बदलने की प्रवृत्ति भी देखी गई है। ऐसी प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. 1991 में केरल की राजधानी का नाम त्रिवेन्द्रम से बदलकर तिरुवनंतपुरम कर दिया गया।
2. 1996 में तमिलनाडु की राजधानी का नाम मद्रास से बदलकर चेन्नई कर दिया गया।
3. 1996 में ही महाराष्ट्र की राजधानी का नाम बंबई से बदलकर मुंबई कर दिया गया।
4. 2001 में पश्चिम बंगाल की राजधानी का नाम कलकत्ता से बदलकर कोलकाता कर दिया गया।
5. 2006 में कर्नाटक की राजधानी बंगलूर का नाम बंगलुरु कर दिया गया।

ध्यातव्य है कि राजधानियों के नाम बदलना संसद का नहीं, विधानसभा का कार्य है, हालाँकि इसके लिए केंद्र सरकार की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होता है। इन सभी नाम परिवर्तनों में एक सामान्य प्रवृत्ति यह है कि जनता और उसके प्रतिनिधि अंग्रेजों द्वारा दिए गए नामों के स्थान पर जन परंपरागत नामों को स्वीकार कर रहे हैं जो उनके क्षेत्र के लिए काफी पहले से प्रयुक्त होते रहे हैं। लोकतंत्र की दृष्टि से नामों का यह परिवर्तन उचित की प्रतीत होता है क्योंकि यह जन-भावंदाओं को केंद्र में रखकर किया जा रहा है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित में ऐसी कौन-कौन सी रियासतें थीं जो भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय राज्यक्षेत्र में शामिल नहीं थीं?

- (i) कश्मीर (ii) जूनागढ़
(iii) हैदराबाद (iv) त्रावणकोर

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iv)
(2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (iii) और (iv)
✓(4) (i), (ii) और (iii)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) जम्मू-कश्मीर संविधान सभा द्वारा भारत संघ में इस राज्य के विलय की पुष्टि 26 जनवरी, 1950 को की गयी।
(ii) जम्मू-कश्मीर संविधान सभा ने 17 नवंबर, 1957 को इस राज्य के लिए एक पृथक संविधान अधीकार किया जिससे 26 नवंबर, 1957 से लागू किया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों
(4) न तो (i) और न ही (ii)

3. निम्नांकित में से किस देशी रियासत के विलय का संबंध भारत सरकार की गुप्त सैन्य कार्यवाही 'ऑपरेशन पोले' से है?

- (1) पांडिचेरी का विलय
(2) जम्मू-कश्मीर का विलय
✓(3) हैदराबाद का विलय
(4) गोवा, दमन, दीव का विलय

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के समय सिक्किम भारत का अधिन राज्य था।
(ii) भारतीय संसद द्वारा छत्तौसवें संविधान संशोधन अधिनियम के तहत सिक्किम को भारत के अन्य राज्यों के समकक्ष बनाया गया।
(iii) पैंतीसवें संविधान संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत सिक्किम को सहयोगी राज्य (Associate state) का दर्जा दिया गया था।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से असत्य है/हैं?

(ii) 26 जनवरी, 1950 को लागू हुए संविधान में अंडमान निकोबार की विशेष स्थिति को देखते हुए इसे 'भाग-घ' राज्यों में रखा गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. 1949 ई. में संविधान सभा ने भारत का जो राज्यक्षेत्र निर्धारित किया, उसमें चार प्रकार के राज्य थे। इस संबंध में सत्य है-

- (i) 'भाग क' में भूतपूर्व ब्रिटिश भारत के प्रांतों को शामिल किया गया था जिनमें गवर्नर की नियुक्ति की जाती थी।
(ii) 'भाग ख' में देशी रियासतों को रखा गया था।
(iii) 'भाग ग' में उन केंद्र शासित प्रदेशों (Centrally administered territories) को शामिल किया गया था जो ब्रिटिश शासन के अंतर्गत मुख्य आयुक्त के अधीन प्रशासित होते थे।
(iv) 'भाग घ' में नवगठित विदेशों से अर्जित राज्यक्षेत्रों (acquired territories) को मिला-किया गया था।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (iii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

7. दर आयोग के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) इस आयोग की नियुक्ति भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की वांछनीयता का मूल्यांकन करने के लिए की गयी थी।
(ii) इस आयोग ने भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के खिलाफ अपनी राय दी।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों
(4) न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) दिसंबर, 1948 में गठित जे. वी. पी. समिति के सदस्य जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और फोर्टी श्रीरामुल्लु थे।
(ii) जे. वी. पी. समिति ने सिफारिश की कि शीघ्रतिशीघ्र भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया जाना चाहिए।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)

9. राज्य पुनर्गठन आयोग के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) इस आयोग की नियुक्ति अगस्त, 1956 में की गयी।
- (ii) इस आयोग द्वारा भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को स्वीकार कर लिया गया।
- (iii) इस आयोग ने बंबई और पंजाब को भाषायी आधार पर बाँटने का विरोध किया।

उपरोक्त कथनों में सत्य हैं—

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

10. 1 नवंबर, 1956 को संसद द्वारा पारित 'राज्य पुनर्गठन अधिनियम' के अन्तर्गत—

- (i) चौदह राज्यों एवं छः संघ राज्यक्षेत्रों की व्यवस्था की गयी।
- (ii) विभिन्न वर्गों में विभक्त राज्यों की विभेद समाप्त कर सभी राज्यक्षेत्रों को 'राज्य' या 'संघ राज्यक्षेत्र' वर्गों में ही शामिल कर लिया गया।
- (iii) राज्यों का गठन प्रायः भाषाई आधारों पर किया गया लेकिन बंबई तथा पंजाब को भाषाई आधार पर बाँटित नहीं किया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

11. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 में जिन चौदह राज्यों की व्यवस्था की गई, उनमें शामिल नहीं थे—

- (i) गुजरात
- (ii) महाराष्ट्र
- (iii) हरियाणा
- (iv) मध्य प्रदेश

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) उपरोक्त में से कोई नहीं

12. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) जम्मू और कश्मीर की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं किया

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न का स्थायी समाधान नहीं कर सका।
- (ii) राज्य पुनर्गठन आयोग और अधिनियम के खिलाफ सर्वाधिक विरोध बंबई में हुआ था क्योंकि आयोग ने बंबई को विभाजन भाषायी आधार पर करने का समर्थन नहीं किया था।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) बंबई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 के माध्यम से बंबई राज्य का महाराष्ट्र तथा गुजरात में बाँट दिया गया।
- (ii) 1962 में नागालैंड को स्वतंत्र राज्य बनाया गया, जिसे असम राज्य से अलग किया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 के माध्यम से पंजाब और हरियाणा दो अलग-अलग राज्य बनाए गए।
- (ii) 1970 से पूर्व तमिलनाडु प्रदेश संघशासित क्षेत्रों की सूची में था, जिसे इस सूची से निकालकर राज्य का दर्जा दिया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

16. निम्नलिखित में से किसे 36वें संविधान संशोधन, 1975 के तहत पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।

- (1) मिज़ोरम
- (2) सिक्किम
- (3) अरुणाचल प्रदेश
- (4) मेघालय

18. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के तहत संघशासित क्षेत्र में शामिल थे-

- (i) दिल्ली (ii) हिमाचल प्रदेश
(iii) मणिपुर (iv) त्रिपुरा

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
(2) (ii), (iii) और (iv)
(3) उपरोक्त में से कोई नहीं
(4) उपरोक्त सभी

19. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) पृथक् राज्य के रूप में मांगे जा रहे 'तेलंगाना' क्षेत्र का संबंध आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी भाग से है, जो संसाधनों की दृष्टि से अत्यंत विपन्न है।
(ii) पृथक् तेलंगाना की मांग सर्वप्रथम नब्बे के दशक में उभरी गयी।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों
(4) न तो (i) और न ही (ii)

20. 'श्री कृष्ण समिति' का संबंध निम्नांकित में किस भूदे से है?

- (1) तेलंगाना भूदे से
(2) बुंदेलखण्ड भूदे से
(3) मिथिलांचल भूदे से
(4) बोडोलैंड भूदे से

21. वर्तमान समय में भारत में पृथक् राज्यों की मांग एक ज्वलंत मुद्दा रही है। इस संदर्भ में सूची I का सूची II से मिलान कीजिए।

सूची I

(पृथक् राज्य की मांग के रूप में)

- A. हरित प्रदेश
B. विन्ध्य प्रदेश
C. विदर्भ
D. बोडोलैंड

सूची II

(संबंधित मूल राज्य)

- (i) असम
(ii) उत्तर प्रदेश
(iii) मध्य प्रदेश
(iv) महाराष्ट्र

कूट-

A B C D

1. (i) (ii) (iii) (iv)
2. (ii) (iv) (i) (iii)
3. (i) (iii) (ii) (iv)
4. (ii) (iii) (iv) (i)

22. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) हरित प्रदेश के रूप में एक नये राज्य की मांग का संबंध उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग से है।
(ii) उत्तर प्रदेश के पूर्वी एवं पश्चिमी भागों में पायी जाने वाली सांस्कृतिक भिन्नता इस मांग का एक प्रमुख कारण है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों
(4) न तो (i) और न ही (ii)

23. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संविधान निर्माण के समय मैथिली को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं में रखा गया था।
(ii) संविधान के 92वें संशोधन अधिनियम, 2003 के माध्यम से मैथिली को आठवीं अनुसूची से बाहर कर दिया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

24. पृथक् गुजरात राज्य की मांग का संबंध है-

- (1) कर्नाटक तथा केरल से
(2) तमिलनाडु तथा केरल से
(3) आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु से
(4) तमिलनाडु से

25. निम्नांकित में से किस क्षेत्र के निवासियों की मांग है कि उन्हें पृथक् संघ राज्यक्षेत्र (union territory) का दर्जा दिया जाए।

- (1) गोरखालैंड (2) बोडोलैंड
(3) कर्णैकल (4) कोसल

26. उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री मायावती द्वारा उत्तर प्रदेश का विभाजन कर बनाए जाने वाले प्रस्तावित राज्यों में शामिल हैं-

- (1) पश्चिमी प्रदेश, अवध प्रदेश, पूर्वांचल, कोसल
(2) अवध प्रदेश, पूर्वांचल, बुंदेलखंड, पश्चिमी प्रदेश
(3) विन्ध्य प्रदेश, अवध प्रदेश, पूर्वांचल, बुंदेलखंड
(4) बुंदेलखंड, पश्चिम प्रदेश, अवध प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश

27. निम्नांकित में से किस राज्य का नाम 24 जनवरी, 1950 के पूर्व 'संयुक्त प्रान्त' था?

- (1) उत्तर प्रदेश (2) मध्य प्रदेश
(3) पश्चिम बंगाल (4) उड़ीसा

28. राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की सरकार ने निम्न में से किस राज्य का नाम 'बनांचल' रखने का सुझाव दिया था?

- (1) उत्तराखंड (2) झारखंड
(3) छत्तीसगढ़ (4) गोरखालैंड

29. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- राजधानियों के नाम में परिवर्तन करना संसद का नहीं, अपितु राज्य विधानमंडलों का कार्य है।
- राजधानियों के नाम में परिवर्तन के लिए केन्द्र सरकार की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

30. निम्नांकित में से किसे जून, 1947 में गठित 'रियासती मंत्रालय' का अतिरिक्त प्रभार दिया गया था-

- सरदार वल्लभभाई पटेल
- पंडित जवाहरलाल नेहरू
- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
- डॉ. भीमराव अम्बेडकर

31. निम्न में से किस तिथि को कश्मीर के शासक हरि सिंह ने विलय पत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर किया था?

- 15 अगस्त, 1947
- 26 जनवरी, 1950
- 26 अक्टूबर, 1947
- 30 दिसंबर, 1947

32. कश्मीर का मुद्दा भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में सर्वप्रथम कब उठाया था?

- दिसंबर, 1947
- दिसंबर, 1950
- दिसंबर, 1962
- दिसंबर, 1971

33. अगस्त, 1953 में गठित 'राज्य पुनर्गठन आयोग' के सदस्य थे-

- फजल अली
- के. एम. पणिककर
- पट्टाभि सीतारमैया
- हृदयनाथ कुंजरू

कूट-

- (i), (ii) और (iii)
- (ii), (iii) और (iv)
- (i), (iii) और (iv)
- (i), (ii) और (iv)

34. अगस्त, 1953 में गठित 'राज्य पुनर्गठन आयोग' द्वारा सिफारिश की गई थी-

- 25 राज्यों व 6 संघ राज्यक्षेत्रों के निर्माण की
- 18 राज्यों व 7 संघ राज्यक्षेत्रों के निर्माण की

35. निम्नलिखित को कालक्रमानुसार व्यवस्थित क्रम में रखिए तथा सही विकल्प का चयन कीजिए।

- दर आयोग
- जे. बी. पी. समिति
- राज्य पुनर्गठन आयोग

कूट-

- (i), (ii) और (iii)
- (i), (ii) और (iii)
- (iii), (i) और (ii)
- (iii), (ii) और (i)

36. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- 'पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966' के माध्यम से चण्डीगढ़ को पंजाब और हरियाणा की संयुक्त राजधानी बना दिया गया।
- 1986 में मिज़ोरम की पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया, जिसे पहले संघ शासित क्षेत्र बताया गया था।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

37. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निम्नांकित में से किस राज्य का गठन क्रमशः सबसे पहले तथा सबसे बाद में किया गया?

- आन्ध्र प्रदेश तथा झारखंड
- आन्ध्र प्रदेश तथा छत्तीसगढ़
- तमिलनाडु तथा छत्तीसगढ़
- तमिलनाडु तथा उत्तराखंड

38. फरवरी, 2011 में हुए 'असहयोग आन्दोलन' का संबंध निम्न में से किस पृथक राज्य की मांग से है?

- मिथिलांचल
- तेलंगाना
- बोडोलैंड
- गोरखालैंड

39. फ्रांसीसी उपनिवेश चन्द्रनगर का विलय किस राज्य में किया गया?

- केरल
- तमिलनाडु
- आन्ध्र प्रदेश
- पश्चिम बंगाल

40. निम्नांकित में से किस क्षेत्र के विलय का मुद्दा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तक पहुँचा था?

- यनम और माहे
- दादरा और नागर हवेली
- कराकल और पांडिचेरी
- लक्षद्वीप

मूल अधिकार : पृष्ठभूमि
(*Fundamental Rights : A background*) निर्वचन- व्याख्या

मूल अधिकारों का अर्थ (Meaning of Fundamental Rights)

मूल अधिकारों की पूर्णतः निश्चित विशेषताएँ बताना संभव नहीं है क्योंकि विभिन्न देशों में उनकी प्रकृति भिन्न है। मोटे तौर पर, भारतीय राजव्यवस्था की दृष्टि से मूल अधिकारों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित मानी जा सकती हैं—

1. मूल अधिकार वे आधारभूत स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं जो व्यक्ति के पूर्ण मानसिक, भौतिक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक होती हैं। शेष अधिकारों के संबंध में यह हमेशा नहीं कहा जा सकता।
2. मूल अधिकार देश की मौलिक विधि (Fundamental law) अर्थात् संविधान में उल्लिखित होते हैं। ये संविधान द्वारा रक्षित और प्रवृत्त होते हैं।
3. मूल अधिकार सिर्फ कार्यपालिका (Executive) की शक्ति को मर्यादित नहीं करते बल्कि विधानमंडल (Legislature) की शक्ति को भी नियंत्रित करते हैं। यदि विधायिका इन अधिकारों की उल्लंघन करने वाली कोई विधि (Law) बनाती है तो वह उस सीमा तक निष्प्रभाव या शून्य (Void) हो जाती है। इस प्रकार वह मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है।
4. मूल अधिकार में परिवर्तन करने के लिए संविधान में संशोधन करना जरूरी होता है जबकि शेष कानूनी या विधिक (Legal or statutory) अधिकारों के मामले में संविधान संशोधन की आवश्यकता नहीं होती।

ध्यातव्य है कि सभी कानूनी अधिकार मूल अधिकार नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता अधिकार (Consumer Rights) कानूनी अधिकार तो है लेकिन मूल अधिकार नहीं है। इसी प्रकार, निवास का अधिकार (Right to property), जो पहले मूल अधिकार था, अब कानूनी अधिकार है और मूल अधिकार नहीं है। व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 301) भी कानूनी अधिकार का उदाहरण है।

मूल अधिकार नकारात्मक (Negative) भी हो सकते हैं और सकारात्मक (Positive) भी; उनका स्वरूप प्राकृतिक अधिकारों (Natural rights) की तरह भी हो सकता है और सामान्य गवर्नर या विधिक अधिकारों (Legal rights) की तरह भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि संबंधित देश की राज्यव्यवस्था की प्रकृति क्या है? कहाँ तक राष्ट्रीय संधिधान व राज्यव्यवस्था का प्रश्न है, उसमें दिए गए मूल अधिकार इन सभी वर्गों में अलग-अलग मात्रा में प्रमाणीकृत किए जा सकते हैं।

भारत में मूल अधिकारों की आवश्यकता (Need of Fundamental Rights in India)

भारत में मूल अधिकारों की आवश्यकता महसूस करने के कुछ विशेष कारण थे, जैसे—

1. भारत की अधिकांश जनता निरक्षर होने के कारण अपने राजनीतिक हितों और अधिकारों को नहीं समझती थी। इसलिए, यह खतरा लगातार विद्यमान था कि कहीं राज्य उसके मूल अधिकारों का हनन न कर दे।
2. संसदीय शासन प्रणाली (Parliamentary System) में यह खतरा और ज्यादा बढ़ जाता है क्योंकि कार्यपालिका (Executive) का विधायिका (Legislature) में बहुमत होता है जिसका अर्थ है कि सरकार संसदीय बहुमत का प्रयोग करते हुए मूल अधिकारों को छीने वाला कानून बना सकती है।
3. भारत में धार्मिक और नस्लीय वैविध्य काफी ज्यादा है तथा अल्पसंख्यक वर्ग अपनी कम जनसंख्या के कारण सरकार के निर्माण में प्रायः कमजोर सिद्ध होते हैं। यह खतरा भी महसूस किया जा रहा था कि यदि बहुसंख्यक लोग किसी एक तानाशाही के अधीन आ जाएंगे तो वे अल्पसंख्यकों के अधिकारों का हनन कर सकते हैं। यह मत की ऐसी तानाशाही

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार (Fundamental Rights conferred by Indian Constitution)

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 12-35 तक मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है। इनमें अनुच्छेद 14-32 तक विशिष्ट मूल अधिकार वर्णित हैं जबकि शेष अनुच्छेदों का संबंध मूल अधिकारों से संबंधित कुछ अन्य उपबंधों से है। मूल संविधान में अधिकारों के सात वर्ग थे, किंतु '44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' द्वारा 'संपत्ति का अधिकार' (Right to property) हटा दिए जाने के कारण अब मूल अधिकारों के छः वर्ग रह गए हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

1. संपत्ति का अधिकार (Right to equality) (अनुच्छेद 14-18)	अनुच्छेद 14- 'विधि के समक्ष समता' (Equality before law) एवं 'विधियों का समान संरक्षण' (Equal protection of laws)। अनुच्छेद 15- धर्म, भूलवंश (race), जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद (discrimination) का प्रतिषेध (prohibition)। अनुच्छेद 16- लोक-नियोजन (Public employment) के विषय में अवसर की समता। अनुच्छेद 17- अस्पृश्यता (untouchability) का उन्मूलन। अनुच्छेद 18- उपाधियों का अंत (abolition of titles)।
2. स्वतंत्रता का अधिकार (Right to Freedom) (अनुच्छेद 19-22)	अनुच्छेद 19- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित 6 अधिकार- (I) भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, (II) शांतिपूर्ण सम्मेलन का अधिकार, (III) सभा संगठन या सहकारी समिति बनाने का अधिकार, (IV) भारत में कहीं भी आवाज संचरण का अधिकार, (V) भारत में कहीं भी निवास का अधिकार, (VI) कोई वृत्ति (profession), व्यापार (business) आदि करने का अधिकार। अनुच्छेद 20- अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण। अनुच्छेद 21- जीवन (life) एवं दैहिक स्वतंत्रता (personal liberty) का अधिकार। अनुच्छेद 21(क)- प्राथमिक शिक्षा (6-14 वर्ष की आयु तक) का अधिकार। अनुच्छेद 22- कड़े दशाओं में गिरफ्तारी (arrest) और ज़िरोध (detention) से संरक्षण।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right Against Exploitation) (अनुच्छेद 23-24)	अनुच्छेद 23- मानव के दयापार (human trafficking), बलात् श्रम (forced labour) तथा बंगार का प्रतिषेध। अनुच्छेद 24- कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध।
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (Right to freedom of Religion) (अनु. 25-28)	अनुच्छेद 25- अंतःकरण (conscience) की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार (propagate) करने की स्वतंत्रता। अनुच्छेद 26- धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता। अनुच्छेद 27- किसी धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर नहीं देने की स्वतंत्रता। अनुच्छेद 28- कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना (worship) में उपस्थित होने से स्वतंत्रता।
5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (Cultural and Educational Rights) (अनुच्छेद 29-30)	अनुच्छेद 29- भाषा, लिपि और संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार। अनुच्छेद 30- शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों (minorities) का अधिकार।
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)	अनुच्छेद 32- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to constitutional remedies)

इन अधिकारों के अलावा, संविधान के भाग 3 में शामिल शेष अनुच्छेदों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

- अनु. 12- संविधान के भाग 3 के प्रयोजन के लिए 'राज्य' की परिभाषा।
 अनु. 13- संविधान-पूर्व या संविधान-परचात् निर्मित अन्य विधियों से मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी।
 अनु. 33- सेना, पुलिस, सुरक्षा बलों, आसूचना (intelligence) संगठनों आदि के मूल अधिकारों को सीमित करने की संसद की शक्ति।
 अनु. 34- सेना विधि (Martial law) लागू होने की स्थिति में मूल अधिकारों को सीमित करने की संसद की शक्ति।
 अनु. 35- इस भाग (भाग 3) में अपराध घोषित किए गए कार्यों के लिए दंड निर्धारित करने हेतु (law) विधि बनाने की संसद की शक्ति।

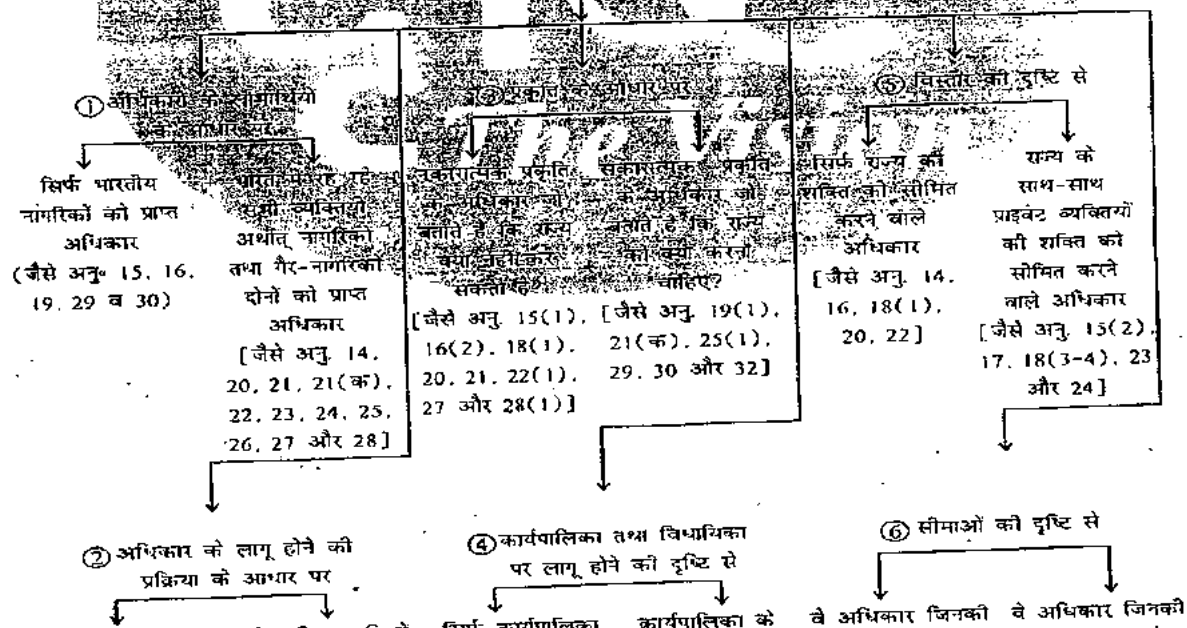
ध्यातव्य है कि 'अनुच्छेद 31' में पहले 'संपत्ति का अधिकार' (Right to property) था जो उपरोक्त वर्णित छः वर्गों से अलग अर्थात् सातवाँ अधिकार था। इसे '44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' द्वारा संविधान से हटा दिया गया था। अब अनुच्छेद 31(1) तथा 31(2) के विलोपन के बाद अनुच्छेद 31(क), 31(ख), तथा 31(ग) ही संविधान में शेष हैं पर उनका संबंध कोई मूल अधिकार देने से नहीं, बल्कि कुछ विधियों को सुरक्षा प्रदान करने से है। ये वे विधियाँ हैं जो राज्य के कल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मूल अधिकारों को सीमित करने का उपबंध करती हैं।

अनुच्छेद 14, 19 और 21 में दिए गए अधिकार सबसे महत्वपूर्ण मूल अधिकार हैं। इन तीनों के समूह को 'मूल अधिकारों का स्वर्णिम त्रिभुज' (Golden Triangle of Fundamental Rights) कहा जाता है।

मूल अधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Fundamental Rights)

मूल अधिकारों को कई आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे-

मूल अधिकार (Fundamental Rights)



क्या मूल अधिकार आत्यंतिक हैं? (Are Fundamental Rights Absolute?)

आत्यंतिक (Absolute) होने का अर्थ है किन्हीं भी सीमाओं या मर्यादाओं (Limitations or restrictions) से न बंधे होना। यदि मूल अधिकार बिना किसी नियंत्रण या निर्बंधन (Restriction) के दिए जाएँ तो उन्हें आत्यंतिक (Absolute) कहा जाता है।

अमेरिका के संविधान में मूल अधिकार आत्यंतिक थे अर्थात् उन पर कोई सीमा या मर्यादा आरोपित नहीं थी। किंतु, धीरे-धीरे अमेरिकी राज्य ने महसूस किया कि सीमारहित मूल अधिकार राज्य के समुचित संचालन में बाधक हैं। चूँकि अमेरिका में संविधान संशोधन की प्रक्रिया अत्यंत जटिल है, इसलिए मूल अधिकारों पर उचित सीमाएँ आरोपित करने की जिम्मेदारी अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय को उठानी पड़ी। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान का निर्वचन (Interpretation) करते हुए 'पुलिस शक्ति का सिद्धांत' (Doctrine of Police Power) प्रतिपादित किया जिसमें स्पष्ट किया गया कि शक्ति व्यवस्था और सुरक्षा बनाए रखने के लिए तथा समाज कल्याण करने के लिए सरकार को मूल अधिकारों पर निर्बंधन (Restriction) लगाने की शक्ति प्राप्त है। 'पुलिस शक्ति' (Police power) की यह धारणा बड़ी व्यापक है जिसे वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार व्याख्यायित किया है और सामाजिक कल्याण (Social welfare) को बढ़ावा देने वाली सभी नीतियों को इसमें शामिल कर लिया है, जैसे-राष्ट्र की औद्योगिक क्षमता की वृद्धि, साधनों का विकास इत्यादि।

दूसरी ओर, इंग्लैंड में मूल अधिकार एकदम कमजोर स्थिति में हैं। वहाँ की संसद इतनी शक्तिशाली है कि वह किन्हीं भी अधिकारों को किन्हीं भी सीमाओं तक मर्यादित कर सकती है। चूँकि इंग्लैंड में लिखित संविधान नहीं है, इसलिए मूल अधिकारों को संवैधानिक गारंटी मिलने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वहाँ संविधान (Constitution) और 'विधान' (Legislation) में कोई अंतर नहीं है। वहाँ मूल अधिकारों को कोई निश्चित सूची भी नहीं दी जाती, बल्कि माना जाता है कि जब तक संसद कानून बनाकर न रोक दे, हर नागरिक अपनी इच्छा से कुछ भी कर सकता है। किंतु संसद की सहमति यदि किसी भी व्यक्ति को व्यापारिक भी नागरिकों को मूल अधिकारों को सुरक्षा की आवश्यकता नहीं हो सकती।

भारतीय संविधान निर्माताओं को अमेरिकी अनुभव से इस बात का अंदाजा हो चुका था कि यदि मूल अधिकार आत्यंतिक (Absolute) हों तो व्यक्तियों द्वारा स्वतंत्रता को असंमित मात्रा में अराजकता (Anarchy) उत्पन्न कर देंगे। दूसरी ओर, यदि ब्रिटेन की तरह राज्य की शक्ति मिल जाय तो वह व्यक्तियों की स्वाधीनता पर जितने चाहे अंकुश लगा सके, तो व्यक्तियों का परिमार्पूर्ण जीवन खतरा में पड़ जाएगा। निश्चित यह है कि व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य साधा जाए। भारतीय संविधान निर्माताओं ने इसे ध्यान में रखते हुए मूल अधिकारों के साथ 'युक्तियुक्त निर्बंधन' (Reasonable Restrictions) भी स्पष्ट कर दिए हैं जो व्यक्तियों के मूल अधिकारों को सीमित करते हैं। स्पष्ट है कि भारत ने अमेरिका की तरह निर्बंधनों (Restrictions) को निर्धारित करने का इरादा नहीं रखा था। तब भी यह ध्यान रखना जरूरी है कि कौन-सा निर्बंधन (Restriction) युक्तियुक्त (Reasonable) है और कौन-सा नहीं। यह तय करने की शक्ति शक्ति न्यायपालिका के पास ही है क्योंकि यह संविधान के निर्वचन (Interpretation) का क्षेत्र होता है और संविधान का निर्वचन करना न्यायपालिका की व्यावर्तक (Exclusive) शक्ति है।

मूल अधिकारों का निलंबन व निर्बंधन (Suspension of and Restrictions on Fundamental Rights)

मूल अधिकारों के निलंबन (Suspension) का अर्थ है- विशेष स्थितियों में मूल अधिकारों को नागरिकों से वापस ले लेने की राज्य की शक्ति। निलंबन प्रायः अस्थायी होता है तथा स्थितियाँ सामान्य होने पर नागरिकों को पुनः अपने अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार, मूल अधिकारों पर निर्बंधन (Restriction) लगाने का अर्थ है- राज्य के पास विशेष स्थितियों में मूल अधिकारों को सीमित करने की शक्ति।

अमेरिका के संविधान में मूल अधिकारों के निलंबन या निर्बंधन की कोई व्यवस्था नहीं है किंतु भारतीय संविधान सभा जानती थी कि भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के सुचारु रूप से चलने के लिए जरूरी है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में मूल अधिकारों को निलंबित या निर्बंधित करने की शक्ति राज्य के पास हो। इसलिए भारतीय संविधान में ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख स्पष्ट रूप में किया गया है। निम्नलिखित स्थितियों में मूल अधिकारों को निलंबित (Suspend) या निर्बंधित (Restrict) किया जा सकता है-

(Restrictions of rights) Act, 1966] तथा सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968' (Border Security Force Act, 1968) बनाकर इस संबंध में नियम बनाए हैं। प्रायः इन अधिकारों के तहत इन संगठनों के सदस्यों को 'ट्रेड यूनियन' बनाने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि के अधिकार से वंचित किया गया है, जो अनुच्छेद 19 द्वारा सभी नागरिकों को दिये गए हैं।

2. सेना विधि (Martial Law) के आधार पर: अनुच्छेद 34 संसद को शक्ति प्रदान करता है कि यदि भारत के किसी क्षेत्र में सेना विधि (Martial law) लागू हो तो संसद विधि द्वारा मूल अधिकारों पर पूर्णतः या अंशतः निर्बंधन (Restrictions) आरोपित कर सकती है। वस्तुतः सेना विधि के प्रवर्तन के साथ ही मूल अधिकार निलंबित (Suspend) हो जाते हैं तथा नागरिक न्यायालयों (Civil courts) के स्थान पर सैन्य न्यायालय (Military courts) काम करने लगते हैं। संसद चाहे तो 'क्षतिपूर्ति अधिनियम' (Indemnity Act) पारित करके सेना विधि द्वारा दिए गए दण्डों से नागरिकों को मुक्त कर सकती है। गौरतलब है कि सेना विधि (Martial law) अनुच्छेद 352(1) के अधीन की गई आपात उद्घोषणा से भिन्न होती है।

3. आपात उद्घोषणा (Emergency declaration) के माध्यम से: संविधान के अनुच्छेद 358 तथा 359 में स्पष्ट किया गया है कि यदि अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रपति देश में आपातकाल लागू होने की उद्घोषणा करता है तो कुछ मूल अधिकार निलंबित किए जा सकते हैं। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं—

(क) अनुच्छेद 352 के अधीन आपातकाल की घोषणा होते ही राज्य अनुच्छेद 358 के अनुसार उन सभी बंधनों या पर्यादाओं से मुक्त हो जाता है, जो अनुच्छेद 19 अर्थात् स्वतंत्रता के अधिकार में बताई गई हैं। इस स्थिति में, अनुच्छेद 19 में दी गई स्वतंत्रताएं निलंबित हो जाती हैं। आपातकाल में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही या विधायिका द्वारा पारित विधियों को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि इनसे अनुच्छेद 19 द्वारा दिए गए अधिकारों का प्रवर्तन बाधित होता है। इसके अलावा, आपातकाल के दौरान राज्य के द्वारा की गई कार्यवाहियों के विरुद्ध आपातकाल के बाद भी कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है।

(ख) अनुच्छेद 359 द्वारा राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई है कि वह संविधान के भाग 3 में उल्लिखित मूल अधिकारों को न्यायालय से प्रवर्तित करने का अधिकार भी निलंबित कर सकता है। ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 352 के तहत आपात की उद्घोषणा होते ही अनुच्छेद 358 तो स्वतः लागू हो जाता है, किंतु अनुच्छेद 359 तभी लागू होता है जब राष्ट्रपति इस आशय का विशेष आदेश निकालता है। इस आदेश में राष्ट्रपति को बताना पड़ता है कि कौन-कौन से मूल अधिकारों का प्रवर्तन न्यायालय से नहीं कराया जा सकता।

(ग) 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 के द्वारा इन प्रावधानों में कुछ परिवर्तन किए गए हैं क्योंकि 1975 में लागू हुई आपात उद्घोषणा के दौरान देखा गया था कि इन प्रावधानों के दुरुपयोग से सज्जव्यवस्था पर संकट उत्पन्न हो जाता है। संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा तीन बातें स्पष्ट की गई—

(i) अनुच्छेद 359 में दी गई स्वतंत्रताओं को सिर्फ तभी निलंबित किया जा सकेगा जब आपातकाल की उद्घोषणा 'युद्ध' (War) या 'बाह्य आक्रमण' (External Aggression) के कारण देश की सुरक्षा पर संकट उत्पन्न होने की वजह से की गई हो। 'सशस्त्र विद्रोह' (Armed rebellion) के आधार पर की गई आपात-उद्घोषणा की स्थिति में अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को निलंबित नहीं किया जा सकता।

(ii) अनुच्छेद 359 के तहत राष्ट्रपति को यह शक्ति अब नहीं है कि वह अनुच्छेद 20 और 21 को निलंबित कर सके। अनुच्छेद 20 का संबंध 'अपराधों के लिए दोष-सिद्धि से संरक्षण' (Protection in respect of conviction for offences) से है जबकि अनुच्छेद 21 'प्राण तथा दैहिक स्वतंत्रता' (Protection of life and personal liberty) के संरक्षण की गारंटी प्रदान करता है।

(iii) आपात की उद्घोषणा के दौरान अनुच्छेद 358 केवल उन विधियों को संरक्षण प्रदान करेगा जिनका सीधा संबंध आपात की घोषणा के साथ हो। इसके लिए, उस विधि में यह कथन होना चाहिए कि यह विधि आपात से संबंधित है। शेष विधियों को आपातकाल में भी न्यायालय में चुनौती दी जा

संविधान संशोधन के माध्यम से सीमित कर सकती है, पर ऐसा कोई संशोधन यदि संविधान के आधारभूत ढाँचे (Basic structure) को प्रभावित करता है तो न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। संसद ने अपनी इसी शक्ति के प्रयोग के आधार पर संपत्ति के अधिकार (अनुच्छेद 31) को मूल अधिकारों की सूची से बाहर करके विधिक अधिकार (अनुच्छेद 300क) बना दिया है। इसके अलावा, कुछ अन्य मूल अधिकारों में भी संशोधन करके कुछ निबंधन आरोपित किए गए हैं।

मूल अधिकारों की संशोधनीयता (Amendability of Fundamental Rights)

भारतीय संसद और न्यायापालिका में इस प्रश्न पर बार-बार टकराव होता रहा है कि क्या मूल अधिकारों को अनुच्छेद 368 द्वारा संशोधित किया जा सकता है? इस संबंध में प्रमुख तथ्य कालक्रमिक रूप से इस प्रकार हैं—

- (i) स्वाधीनता प्राप्ति के तुरंत बाद जब सरकार ने जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि पुनर्वितरण (Land redistribution) जैसे भूमि सुधार (Land reforms) करने शुरू किए और भूमिपतियों की अधिकतम कानूनी सीमा से अधिक भूमि का अधिग्रहण करने की शुरुआत की तो कुछ भूमिपतियों ने सर्वोच्च न्यायालय में इस आधार पर याचिका दायर की कि 'संपत्ति का अधिकार' भारतीय संविधान के अनुसार मूल अधिकार है और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में उल्लिखित समाजवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मूल अधिकारों को छीना जाना असंवैधानिक है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस याचिका को उचित नहाने हुए सरकार के भूमि सुधार संबंधी प्रयासों को असंवैधानिक बताया।
- (ii) इसके उत्तर में भूमि सुधार को लागू करने के उद्देश से संसद ने 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' पारित किया जिसके माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 31 (क) एवं 31 (ख) जोड़े गए। अनुच्छेद 31 (क) के अनुसार भूमि सुधार (Land reforms) तथा सामाजिक न्याय (Social justice) से संबंधित कुछ अधिनियमों के लिए बताई गई विधियों को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे अनुच्छेद 14 (समता का अधिकार) और अनुच्छेद 19 (स्वतंत्रता का अधिकार) में उल्लिखित मूल अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। अनुच्छेद 31 (ख) में कहा गया है कि यदि कोई अधिनियम (Act) संविधान की नौवीं अनुसूची (9th schedule) में सम्मिलित किया गया है तो ऐसे अधिनियम को संविधान के भाग 3 में दिए गए किसी भी मूल अधिकार के उल्लंघन के आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता।
- (iii) **श्रीकां प्रसाद बनाम भारत राश्ट्र (1957)** मामले में प्रथम संशोधन अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई। अधिनियमों ने यह तर्क दिया कि अनुच्छेद 13(2) के अनुसार राज्य द्वारा कोई भी ऐसी विधि नहीं बनाई जा सकती जो संविधान के भाग 3 में दिए गए मूल अधिकारों को छेड़ती या सीमित करती हो। चूंकि संविधान संशोधन का संविधान के अनुच्छेद 13(2) के अन्तर्गत बनाई गई एक विधि ही है अतः यह भी अनुच्छेद 13(2) में उल्लिखित विधि को पारित भी शामिल करते हैं और इस दृष्टि से प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम अवैध है।

उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी के तर्कों को खारिज करते हुए निर्धारित किया कि यदि अनुच्छेद 368 का प्रयोग करते हुए संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया जाता है तो वह अनुच्छेद 13(2) के अधीन विधि नहीं माना जाएगा। अनुच्छेद 13(2) में वर्णित विधि का आशय सामान्य विधियों से है, संविधान संशोधन अधिनियमों से नहीं। दूसरे शब्दों में कहें तो सामान्य विधि से मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता है किंतु अनुच्छेद 368 के अधीन संवैधानिक विधियों द्वारा किया जा सकता है।

- (iv) किंतु, **'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' (1967)** मामले में उच्चतम न्यायालय की धारणा बदल गई। इस मामले में संविधान के '17वें संशोधन, 1964' की वैधता पर प्रश्न उठाया गया था। इस निर्णय में 11 न्यायाधीशों की पीठ ने 6:5 के बहुमत से यह फैसला किया कि अनुच्छेद 368 के तहत भी संसद को यह शक्ति नहीं है कि वह मूल अधिकारों को छीन सके या न्यून कर सके। न्यायालय के बहुमत का निर्णय सुनाते हुए मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि संविधान के भाग 3 में दिए गए मूल अधिकारों को संशोधन के माध्यम से सीमित कर सकते हैं, पर ऐसा कोई संशोधन यदि संविधान के आधारभूत ढाँचे (Basic structure) को प्रभावित करता है तो न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। संसद ने अपनी इसी शक्ति के प्रयोग के आधार पर संपत्ति के अधिकार (अनुच्छेद 31) को मूल अधिकारों की सूची से बाहर करके विधिक अधिकार (अनुच्छेद 300क) बना दिया है। इसके अलावा, कुछ अन्य मूल अधिकारों में भी संशोधन करके कुछ निबंधन आरोपित किए गए हैं।

prospective overruling) प्रस्तुत किया, जिसके आधार पर गोलकनाथ मामले के निर्णय द्वारा वे संशोधन अधिनियम खारिज नहीं किए गए जो उससे पहले किए गए थे; किंतु यह स्पष्ट कर दिया गया कि भविष्य में संसद के पास मूल अधिकारों को न्यून या नष्ट करने की शक्ति नहीं होगी।

- (v) तत्कालीन केंद्र सरकार को सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय अपने प्रतिकूल प्रतीत हुआ। कई संसद सदस्यों को लगने लगा कि इस निर्णय के कारण संसद की शक्तियाँ काफी कम हो गई हैं। इसी बीच, 1969-70 में कांग्रेस का विभाजन हुआ, सत्तारूढ़ कांग्रेस दल कांग्रेस (आई) ने साम्यवादियों का समर्थन प्राप्त किया तथा इसके तुरंत बाद हुए निर्वाचन में विशेष बहुमत (Special majority) प्राप्त कर लिया। इस विशेष बहुमत के आधार पर संसद ने '24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' पारित किया जिसमें अनुच्छेद 13(2) में संशोधन करते हुए यह वाक्यांश जोड़ा गया कि संसद द्वारा अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित कोई भी विधि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द में सम्मिलित नहीं मानी जाएगी। इसी संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 368(3) भी अंतःस्थापित किया गया जो यही बात दोहराता था। इसी वर्ष संसद ने '25वाँ संशोधन अधिनियम, 1971' भी पारित किया जिसमें स्पष्ट किया गया था कि यदि संसद अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) को प्रभावी बनाने के लिए कोई कानून बनाती है तो उसे इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकेगा कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 में दिए गए मूल अधिकारों को सीमित करता है।

- (vi) 1973 में एक बहुत महत्वपूर्ण मामले 'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य' उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ। इस मामले में 13 न्यायाधीशों की बेंच (Bench) गठित की गई जो अपने आप में एक कीर्तिमान है। 7-6 के बहुमत से इस न्यायाधीशों ने निर्धारित किया कि:

(क) '24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' वैध है। संसद अनुच्छेद 368 के तहत मूल अधिकारों का संशोधन करने के लिए उतनी ही सक्षम है, जितनी वह संविधान के किसी अन्य भाग का। स्पष्ट है कि इससे गोलकनाथ मामले में दिया गया निर्णय उलट दिया गया जिसके अनुसार संसद मूल अधिकारों को नष्ट नहीं कर सकती और न ही न्यून कर सकती है।

(ख) किंतु संसद संविधान का संशोधन करके संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' (Basic Structure) को अप्रभावित नहीं कर सकती। वह संविधान के आधारभूत ढाँचे को न तो काट-छाट सकती है, न ही नष्ट कर सकती है। स्पष्ट है कि इस निर्णय के माध्यम से उच्चतम न्यायालय ने 'संविधान के आधारभूत ढाँचे' की धारणा (Doctrine of the Basic structure of constitution) प्रस्तुत की जिसका आधार यह था कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति देता है, न कि नया संविधान बनाने की। संशोधन का अर्थ ही है कि मूल ढाँचा बना रहे और ऊपरी स्तर पर उसी परिवर्तन कर दिए जा सकें। विचार: अमेरिका के 'संविधान की मूल भावना' (Basic Spirit of Constitution) के विचार से मिलता-जुलता है।

- (vii) इसके उत्तर में, आपातकाल के दौरान '25वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' (31.12.1977 से लागू) पारित किया गया जो एक प्रकार से संविधान की व्यापक पुनरीक्षण था। यह अभी तक का सबसे व्यापक संविधान संशोधन है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 368 में खंड 4 एवं खंड 5 जोड़े गए जिनमें कहा गया कि संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति पर किसी प्रकार का कोई निर्बंधन (Restriction) नहीं होगा [368(5)] तथा संसद द्वारा किए गए किसी भी संविधान संशोधन को किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा [368(4)]।

- (viii) 1980 में 'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 368 के खंड 4 एवं खंड 5 को अवैध घोषित कर दिया क्योंकि ये दोनों खंड संसद को संविधान संशोधन की असीमित शक्ति देकर न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति का विनाश करते थे जबकि 'न्यायिक पुनरीक्षण' संविधान के आधारभूत लक्षणों में शामिल है।

- (x) 'कोइल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य' (2007) मामले में उच्चतम न्यायालय ने सभी संदेहों का निराकरण कर दिया और कहा कि संविधान सभा तथा संविधान के आधार पर निर्वाचित संसद की शक्तियाँ समान नहीं हैं। संविधान सभा के पास संविधान की रचना करने की शक्ति थी जो कि असौम्य व अपर्यादित (Unrestrained) थी। संसद के पास संविधान का 'संशोधन' करने की शक्ति है जो संविधान की 'रचना' करने के समकक्ष नहीं है। संशोधन करने की यह शक्ति संविधान से ही प्राप्त होती है। इसमें निहित है कि इसका प्रयोग करने के लिए संविधान की मूल धारणाओं को स्वीकार किया जाए। अतः संविधान का आधारभूत ढाँचा असंशोधनीय है।

निष्कर्ष:

इस सारी प्रक्रिया के बाद वर्तमान में मूल अधिकारों की संशोधनीयता (Amendability) की स्थिति संक्षेप में इस प्रकार है—

- संसद मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है।
- न्यायालय को यह तय करने की शक्ति है कि मूल अधिकारों में किया गया संशोधन संविधान के किसी आधारभूत लक्षण के विरुद्ध है या नहीं। यदि ऐसा है तो वह संशोधन उस सीमा तक खारिज कर दिया जाएगा जिस सीमा तक वह किसी आधारभूत लक्षण को नुकसान पहुँचाता है।
- आधारभूत लक्षणों के आधार पर न्यायालय उन्हीं अधिनियमों या संशोधनों को खारिज कर सकता है जो 24 अप्रैल, 1973 के बाद पारित किए गए हैं। इसका अर्थ है कि आधारभूत लक्षणों का सिद्धांत 'भूतलक्षी प्रभाव' (Retrospective effect) से नहीं, 'भविष्यलक्षी प्रभाव' (Prospective effect) से लागू किया गया है।
- यदि मूल अधिकारों का कोई संशोधन 9वीं अनुसूची में शामिल कर लिया जाए तो भी न्यायपालिका को न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial review) की शक्ति समाप्त नहीं होगी। 24 अप्रैल, 1973 के बाद तृतीय अनुसूची में शामिल किए जाने वाले किसी भी विषय पर न्यायालय न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial review) कर सकता है। न्यायालय इस विधि को लगभग सीमा तक अवैध घोषित कर देगा जब तक वह संविधान के आधारभूत लक्षणों के विरुद्ध है।
- इस स्थिति में परिवर्तन हो सकता है जब तक न्याय अधिक न्यायाधीशों की कोई न्यायपीठ केशवानंद भारती मामले का निर्णय पलट दे तथा संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत को अवैध घोषित कर दे। यह संख्या इसलिए चाहिए कि केशवानंद भारती मामले में 13 न्यायाधीशों की पीठ थी और उसके फैसले को उसके बराबर या उससे बड़ी न्यायपीठ ही पलट सकती है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

- भारत की राजनीतिक व्यवस्था में मूल अधिकारों की प्रमुख विशेषताएँ मानी जा सकती हैं—
 - मूल अधिकार में परिवर्तन के लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता होती है।
 - ये भारतीय संविधान द्वारा रक्षित और प्रवृत्त होते हैं।
 - ये आत्यंतिक नहीं हैं, अपितु इन पर युक्तियुक्त निर्बंध लगाये गये हैं।
 - ये अधिकार वे आधारभूत स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं जो व्यक्ति के पूर्ण मानसिक, भौतिक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक होती हैं।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

(1) केवल (ii)

(2) (ii) और (iii)

(3) (i) और (ii)

(4) (i), (ii) और (iii)

3. संबोधित देश की राजव्यवस्था के स्वरूप के अनुसार—

- मूल अधिकार नकारात्मक भी हो सकते हैं और सकारात्मक भी।
- मूल अधिकारों का स्वरूप प्राकृतिक अधिकारों की तरह भी हो सकता है और सामान्य कानूनी अधिकारों की तरह भी।

कूट—

(1) केवल (i)

(2) केवल (ii)

(3) (i) और (ii) दोनों

(4) न तो (i) और न ही (ii)

4. भारत में एक व्यक्ति

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के भाग-3 में मूल अधिकारों का वर्णन किया गया है।
 (ii) भारतीय संविधान में अनुच्छेद 12-51 तक मूल अधिकारों का वर्णन किया गया है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. सूची I का सूची II से मिलान कीजिए।

सूची I

(मूल अधिकार)

A. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

B. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

C. स्वतंत्रता का अधिकार

D. समता का अधिकार

सूची II

(अनुच्छेद)

(i) 29-30

(ii) 25-28

(iii) 12-14

(iv) 15-22

कूट-

	A	B	C	D
(1)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(2)	(ii)	(i)	(iv)	(iii)
(3)	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
(4)	(iv)	(ii)	(iii)	(i)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) मूल अधिकारों में मौलिक अधिकारों के अंतर्गत वर्ग था।
 (ii) 42वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत मौलिक अधिकारों का वर्णन रद्द कर दिया गया।
 (iii) 44वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत मौलिक अधिकारों का वर्णन रद्द कर दिया गया।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) केवल (iii) (4) उपरोक्त सभी

8. सूची I का सूची II से मिलान कीजिए।

सूची I

(मूल अधिकार)

A. उपाधियों का अंत

B. अस्पृश्यता का उन्मूलन

C. धर्म, मूलवंश, लिंग, जाति या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध

सूची II

(अनुच्छेद)

(i) अनु-15

(ii) अनु-16

(iii) अनु-17

(iv) अनु-18

9. अनु-19 के अन्तर्गत सम्मिलित हैं-

- (i) भारत में कहीं भी अबाध संचरण का अधिकार।
 (ii) संघ, संगठन या सहकारी समिति बनाने के अधिकार।
 (iii) 'विधि के समक्ष समता' एवं विधियों का समान संरक्षण।
 (iv) शांतिपूर्ण सम्मेलन का अधिकार।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (iii), (iii) और (iv)
 (3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के संबंध में संरक्षण का प्रावधान अनु-22 में है।
 (ii) अनु-20 कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण प्रदान करता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. अनु-14 के अन्तर्गत स्वतंत्रता के अधिकार का वर्णन निम्नलिखित में से किस अनुच्छेद में है?

- (1) अनुच्छेद-19 (2) अनुच्छेद-20
 (3) अनुच्छेद-21 (4) अनुच्छेद-22

12. अनु-21 (क) के तहत प्राथमिक शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में आयु का प्रावधान है-

- (1) 0-12 वर्ष की आयु तक
 (2) 3-14 वर्ष की आयु तक
 (3) 5-12 वर्ष की आयु तक
 (4) 6-14 वर्ष की आयु तक

13. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-23 में प्रावधान है/हैं-

- (i) कारखाना आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध
 (ii) पालक के दुस्सागर, बेलात, श्रम तथा बेगार का प्रतिषेध

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) किसी धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर न देने की स्वतंत्रता का प्रावधान भारतीय संविधान में है।
 (ii) अनुच्छेद-27 में कुछ शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थिति होने से स्वतंत्रता का प्रावधान है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

16. सेना विधि (Martial Law) लागू होने की स्थिति में मूल अधिकारों को सीमित करने की शक्ति किसे प्राप्त है?

- (1) राष्ट्रपति को
(2) संसद को
(3) कैबिनेट की सलाह पर राष्ट्रपति को
(4) संबन्धित राज्य के राज्यपाल को

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संविधान के भाग-3 के प्रयोजन के लिए 'राज्य' की परिभाषा अनुच्छेद-12 में दी गयी है।
(ii) भारतीय संविधान, संविधान-पूर्व या संविधान-पश्चात् निर्मित अन्य विधियों से मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

18. निम्नांकित में कौन-कौन से अनुच्छेद सिर्फ भारतीय नागरिकों को प्राप्त अधिकार से संबंध रखते हैं?

- (i) अनु-15, 16 (ii) अनु-17, 20
(iii) अनु-29, 30 (iv) अनु-19, 31

कूट—

- (1) (i) और (iii) (2) (ii) और (iv)
(3) (i), (ii) और (iii) (4) उपरोक्त सभी

19. नीचे दिये गये विकल्पों में कौन-सा विकल्प भारत में रह रहे सभी व्यक्तियों (नागरिकों तथा गैर-नागरिकों) से संबंध रखता है?

- (i) अनु-15, 16, 24 (ii) अनु-29, 30
(iii) अनु-20, 21, 22 (iv) अनु-23, 24, 26

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (iii) और (iii)
(3) (i) और (iv) (4) (iii) और (iv)

20. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अमेरिका के संविधान में मूल अधिकारों के निलंबन या निर्बंधन की कोई व्यवस्था नहीं है।
(ii) भारतीय संविधान में ऐसी परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख है जब मूल अधिकारों को निलंबित या निर्बंधित किया जा सकता है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

21. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) यदि भारत के किसी क्षेत्र में सेना विधि (Martial Law)

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

22. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संसद चाहे तो 'क्षतिपूर्ति अधिनियम' पारित करके सेना विधि द्वारा दिए गए दण्डों से नागरिकों को मुक्त कर सकती है।
(ii) सेना विधि, अनु-352(1) के तहत उद्घोषित आपात के समान होती है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

23. 44वें संविधान संशोधन अधिनियम से सुमेलित तथ्य हैं—

- (i) अनुच्छेद 359 के तहत राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं है कि वह अनुच्छेद 20 और 21 को निलंबित कर सके।

- (ii) अनुच्छेद 19(क) में दी गई स्वतंत्रताओं को सिर्फ तभी निलंबित किया जा सकेगा, जब आपातकाल की उद्घोषणा 'युद्ध, या बाह्य आक्रमण' के कारण देश की सुरक्षा पर संकट उत्पन्न होने की वजह से की जायेगी।

- (iii) सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion) के आधार पर की गई आपात उद्घोषणा की स्थिति में अनुच्छेद 19 को निलंबित नहीं किया जा सकता।

- (iv) आपात की उद्घोषणा के दौरान अनुच्छेद 358 केवल उन विधियों को सुरक्षण प्रदान करेगा जिनका सीधा संबंध आपात की घोषणा के साथ हो।

कूट—

- (1) (ii) और (iv) (2) (i) और (iii)
(3) (iii), (iii) और (iv) (4) (i), (iii), (iii) और (iv)

24. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संसद मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है।
(ii) न्यायालय को यह तय करने की शक्ति है कि मूल अधिकारों में किया गया संशोधन संविधान के किसी आधारभूत लक्षण के विरुद्ध है या नहीं।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

25. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) यदि मूल अधिकारों का कोई संशोधन 9वाँ अनुसूची में शामिल कर लिया जाए तो भी न्यायपालिका की न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति सीमित नहीं होगी।

मूल अधिकार : अनुच्छेद 12 और 13

(Fundamental Rights : Article 12 & 13)

संविधान का भाग-3, जिसमें मूल अधिकारों का विस्तृत वर्णन किया गया है, अनुच्छेद 12 से शुरू होकर अनुच्छेद 35 तक फैला है। इसमें अनुच्छेद 12 और 13 का संबंध किसी विशिष्ट मूल अधिकार से न होकर मूल अधिकारों की परिधि तय करने से है। अनुच्छेद 12 राज्य की निश्चित परिभाषा देता है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि मूल अधिकारों का प्रवर्तन करना किस-किस संस्था या निकाय के लिए बाध्यकारी है? अनुच्छेद 13 यह स्पष्ट करता है कि कोई भी ऐसा कानून नहीं बनाया जाएगा जो मूल अधिकारों को सीमित या नष्ट करता हो। वह न्यायपालिका को यह शक्ति भी देता है कि यदि कोई ऐसा कानून बनाया जाए तो न्यायपालिका उसे असंवैधानिक घोषित कर सकती है। इसी शक्ति को न्यायिक पुनर्विलोकन या न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial review) की शक्ति कहा जाता है।

अनुच्छेद 12 : राज्य की परिभाषा (Article 12 : Definition of state)

अनुच्छेद 12 में राज्य (State) की परिभाषा दी गई है। राज्य की यह परिभाषा सिर्फ भाग-3 के प्रयोजन के लिए है, संविधान के अन्य भागों में प्रयुक्त 'राज्य' शब्द का अर्थ परिभाषा लागू नहीं होता।

अनुच्छेद 12 के अनुसार राज्य शब्द के अंतर्गत निम्नलिखित निकाय (Bodies) शामिल हैं:

1. भारत की सरकार अथवा समस्त
2. सभी राज्यों की सरकार व विधानमण्डल
3. सभी स्थानीय प्राधिकारी (Local authorities)
4. अन्य प्राधिकारी (Other authorities)

स्पष्ट है कि इनमें संसद के अंगों को लेकर कोई संदेह नहीं हो सकता किन्तु दो सार्वजनिक स्थानों पर जिन निकायों को रखा गया है, उनके सटीक अर्थ को लेकर संशय हो सकता है। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के पास समय-समय पर ऐसे कई मामलों आते हैं जिनमें कुछ निकायों के संबंध में विवाद था कि इन राज्य माना जाए या नहीं?

जहां तक स्थानीय प्राधिकारी (Local authorities) शब्द का प्रश्न है, इसका अर्थ उन सभी व्यक्तियों से लिया जाता है, जिन्हें कोई विधि (Law) वाचन-अध्यादेश (Order) या अधिसूचना (Notification) जारी करने और लागू करवाने की शक्ति प्राप्त है। जिस भी अधिकार को ऐसी शक्ति प्राप्त है, वह राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आता है। उदाहरण के लिए, नगरपालिकाएँ, नगर नियम, ग्राम पंचायतें, जिला बोर्ड इत्यादि इसके अंतर्गत शामिल हैं।

वास्तविक समस्या 'अन्य प्राधिकारी' (Other authorities) वाक्यांश को लेकर है। इसके सटीक अर्थ के संबंध में काफी ज्यादा विवाद हुए हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मामलों में इस शब्दावली के क्षेत्र को पर्याप्त विस्तार प्रदान किया है और बहुत से ऐसे निकायों को राज्य की परिधि में शामिल किया है जिन्हें सामान्यतः सरकारी निकाय (Government body) नहीं माना जाता। कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसी कसौटियाँ निर्धारित की हैं जिनके आधार पर किसी निकाय के राज्य होने या न होने का फैसला किया जा सकता है। ऐसी प्रमुख कसौटियाँ हैं—

1. निकाय वित्तीय (Financial) रूप से सरकार के नियंत्रण में है या नहीं अथवा निकाय को राज्य से प्रभावी वित्तीय सहायता मिलती है या नहीं?
2. निकाय द्वारा किये जाने वाले कार्य सार्वजनिक महत्व (Public importance) के हैं या नहीं? यदि वे सार्वजनिक महत्व के हैं और राज्य से जुड़े हैं तो उस निकाय को राज्य माना जाएगा।
3. निकाय पर राज्य का प्रशासनिक नियंत्रण (Administrative control) या प्रभाव है या नहीं?
4. क्या निकाय को कोई राजकीय विभाग या उसके कार्य स्थानान्तरित किये गये हैं?

1. सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट द्वारा स्थापित ऐसी सोसाइटी जिसका व्यव केन्द्र सरकार या राज्य सरकार वहन करती है।
2. सभी राष्ट्रीयकृत बैंक (Nationalised banks)
3. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR— Indian Council of Agricultural Research)
4. वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR— Council for Scientific and Industrial Research)
5. भारतीय खाद्य निगम (IFC— Indian Food Corporation)
6. भारतीय सांख्यिकी संस्थान (ISI— Indian Statistical Institute)
7. भारतीय इस्पात प्राधिकरण (SAIL— Steel Authority of India Ltd.)
8. राजस्थान विद्युत बोर्ड (Rajasthan Electricity Board)
9. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC— Oil and Natural Gas Commission)
10. अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण (IAA— International Airports Authority)
11. मुंबई पोर्ट ट्रस्ट (Mumbai Port Trust)

अनुच्छेद 13 : अन्य विधियों से मूल अधिकारों की सुरक्षा (Article 13 : Protection of Fundamental Rights from other laws)

- अनुच्छेद 13 संविधान के सर्वप्रधान प्राणी अनुच्छेदों में से है क्योंकि यह न्यायापालिका को न्यायिक पुनरीक्षण अर्थात् न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) को शक्ति प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के तीन खण्ड हैं 13(1), 13(2) तथा 13(3)।

अनुच्छेद 13(1) संविधान पूर्व विधियों (Pre-constitution laws).

अनुच्छेद 13(1) में घोषणा की गई है कि "इस संविधान के लागू होने के ठीक पहले भारत में प्रवृत्त सभी विधियाँ उस मात्रा तक शून्य होगी, जिससे कि वे भाग 3 के उपबंधों से असंगत हैं।"

स्पष्ट है कि संविधान के लागू होते ही भारत को प्रत्येक नागरिक को इस अनुच्छेद से यह गारंटी प्राप्त हो जाती है कि पहले से प्रवृत्त कोई भी कानून उनके मूल अधिकारों पर हानि नहीं हो सकता। इस संबंध में न्यायालय के सामने एक जटिल प्रश्न उठा। प्रश्न यह था कि यदि किसी व्यक्ति ने संविधान के लागू होने से पहले कोई ऐसा काम किया हो, जो उस समय लागू किसी विधि के अनुसार अपराध रहा हो और मुकदमे की सुनवाई पूरी होने से पहले ही संविधान लागू हो गया हो तथा उसमें उल्लिखित मूल अधिकारों के आधार पर वह कृत्य अपराध न माना हो तो क्या वह व्यक्ति यह दावा कर सकता है कि उसे दण्ड नहीं मिलना चाहिए क्योंकि यह संविधान द्वारा उसे दिया गया मूल अधिकारों के खिलाफ है? न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 13 का प्रभाव भूतलक्षी (Restrospective) नहीं है। यह उसी दिनांक से प्रभावशाली होता है जिस दिन से संविधान लागू किया गया है। यदि किसी ने उससे पहले कोई विधि विरुद्ध कार्य किया है तो उस पर संविधान-पूर्व विधियाँ (Pre-constitutional laws) ही लागू होंगी।

संविधानपूर्व विधियों के अर्थ और परिधि को स्पष्ट करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ सिद्धांत बनाये हैं, जो अब संविधानोत्तर या संविधान पश्चात् विधियों (Post-constitution laws) पर भी लागू होते हैं। ऐसे प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं—

1. पृथक्करणीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability)— इस सिद्धांत का संबंध इस प्रश्न से है कि यदि किसी अधिनियम का कोई भाग मूल अधिकारों से असंगत होने के कारण असंवैधानिक सिद्ध होता है तो उस पूरे अधिनियम को शून्य (Void) घोषित किया जाना चाहिए या उसके सिर्फ उसी भाग को जो मूल अधिकारों से असंगत है? इस प्रश्न के उत्तर में ही पृथक्करणीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability) विकसित हुआ है।

इस सिद्धांत के अनुसार यदि किसी अधिनियम का असंवैधानिक भाग ऐसा है जिसे अधिनियम के मूल उद्देश्य अर्थात् विधायकत्व के उद्देश्य (Intention) को पूरा करने के लिए बनाया गया था, तो उसे खाली नहीं छोड़ा जाता है।

किंतु, इसके अपवाद के रूप में एक विशेष स्थिति हो सकती है। यदि किसी अधिनियम का असंवैधानिक भाग उसके संवैधानिक भाग से इस तरह जुड़ा हो कि असंवैधानिक भाग को निकाल देने से अधिनियम का उद्देश्य ही विफल हो जाता हो तो न्यायालय पूरे अधिनियम को ही असंवैधानिक घोषित कर देगा। अधिनियम का उद्देश्य या विधानमण्डल का आशय (Intention) ही इस बात की निर्णायक कसौटी होगा कि अधिनियम के वैध और अवैध अंशों को एक-दूसरे से पृथक् किया जा सकता है या नहीं?

2. ग्रहण या आच्छादन का सिद्धान्त (Doctrine of Eclipse)– इस सिद्धान्त का सीधा संबंध अनुच्छेद 13(1) में बताई गई संविधान-पूर्व विधियों से है, हालाँकि पिछले कुछ समय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई कुछ व्याख्याओं ने इसकी परिधि का विस्तार संविधान पश्चात् विधियों पर भी कर दिया है। इसके अंतर्गत न्यायालय ने कहा है कि संविधान-पूर्व विधियाँ मूल अधिकारों से असंगत होने के कारण पूर्णतः मृत या नष्ट नहीं हो जाती बल्कि मूल-अधिकारों द्वारा ग्रहण लग जाने के कारण वे ढक जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि—

(क) संविधान लागू होने के पूर्व के सभी मामलों के लिये उनका प्रयोग वैध बना रहता है अर्थात् जिन मामलों पर मूल अधिकार लागू नहीं होते, वहाँ यह ग्रहण या आच्छादन (Eclipse) हट जाता है।

(ख) यदि किसी मूल अधिकार में ऐसा संशोधन हो जाये कि कोई संविधान पूर्व विधि जो उसी मूल अधिकार के अन्तर्गत प्रावधानों के कारण आच्छादित या ढकी हुई थी, तो वह आच्छादन हट जाएगा और वह विधि फिर से सजीव होकर प्रवर्तन-योग्य (Enforceable) बन जाएगी। ऐसी विधि को फिर से पारित करने की आवश्यकता नहीं होगी।

3. अधित्याग का सिद्धान्त (Doctrine of Waiver)– संविधान का अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति संविधान द्वारा दिये गये मूल अधिकारों को अपनी इच्छा से त्याग नहीं सकता है। धातुगतिक अमेरिका में अधित्याग का सिद्धान्त लागू है, जिसके अनुसार यदि कोई नागरिक स्वेच्छा से अपने मूल अधिकार छोड़ना चाहे तो वह ऐसा कर सकता है।

न्यायालय का विचार था कि भारत का अधिकांश जनसंख्या निरक्षर और गरीब है और उसे अपने मूल अधिकारों की पर्याप्त जानकारी और चेतना नहीं है। ऐसी स्थिति में मूल अधिकारों के अधित्याग का सिद्धान्त लागू करना खतरनाक हो सकता है क्योंकि कोई लोग अपने स्वार्थों के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं। अतः न्यायालय का दायित्व बनता है कि वह जनता के अधिकारों की सुरक्षा रक्षित नहीं करे। अतः अधित्याग का अमेरिकी सिद्धान्त भारतीय संविधान की व्याख्या में लागू नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 13(2): संविधानोत्तर विधियाँ (Post-constitution laws)

अनुच्छेद 13(2) का संबंध संविधान पश्चात् या संविधानोत्तर विधियों (Post-constitution laws) से है। इसमें कहा गया है कि "यदि राज्य कोई ऐसी विधि बनाता है जो भाग 3 में वर्णित मूल अधिकारों से असंगत है तो वह विधि उस मात्रा तक शून्य होगी जिस मात्रा तक वह मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है।"

इस अनुच्छेद का प्रभाव यह है कि संसद या राज्य के विधानमण्डल यदि मूल अधिकारों को सीमित या नष्ट करने वाली कोई विधि बनाते हैं तो सर्वोच्च या उच्च न्यायालय उस विधि को अवैध घोषित कर सकते हैं। न्यायिक पुनरीक्षण या न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की वास्तविक शक्ति न्यायपालिका को इसी अनुच्छेद से प्राप्त होती है।

इस संबंध में यह ध्यान रखना जरूरी है कि मूल अधिकारों से असंगत संविधान-पूर्व विधियों (Pre-constitution laws) और संविधानोत्तर विधियों (Post constitution laws) में एक विशेष अंतर है। अंतर यह है कि संविधानोत्तर विधियाँ मूल अधिकारों से असंगत होने पर प्रारंभ से ही शून्य (Void) अर्थात् मृत होती हैं जबकि संविधान-पूर्व विधियाँ संविधान लागू होने से पहले के मामलों के लिए जीवित बनी रहती हैं और संविधान लागू होने के बाद के मामलों के लिए ही शून्य होती हैं।

अनुच्छेद 13(3): 'विधि' का अर्थ (Meaning of 'law')

अनुच्छेद 13(3) में अनुच्छेद 13 के प्रयोजन के लिए विधि (Law) शब्द का अर्थ स्पष्ट किया गया है। इसमें बताया गया है कि सभी अध्यादेश (Ordinances), आदेश (Orders), उपविधियाँ (Bye-laws), नियम (Rules), विनियम (Regulations),

- (ख) कार्यपालिका (Executive) के अधिकारियों द्वारा जारी किये गये प्रशासनिक आदेश (Administrative orders) भी विधि में शामिल हैं, यदि वे प्राधिकार (Authority) के अधीन जारी किये गये हैं।
- (ग) मुस्लिम पर्सनल लॉ या हिंदुओं या ईसाइयों की वैयक्तिक विधि (Personal law) इस विधि में शामिल नहीं है अर्थात् संविधान का भाग-3 किसी वैयक्तिक विधि को खारिज नहीं करता है।
- (घ) ध्वज संहिता (Flag code), जिसमें हमारे राष्ट्रीय ध्वज को फहराये जाने से संबंधित मार्गदर्शन दिया गया है; वह मार्गदर्शन या निर्देश (Instruction) है, विधि नहीं।

क्या 'संविधान संशोधन अधिनियम' अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त 'विधि' शब्द के अंतर्गत शामिल है?

(Is a 'Constitutional amendment act' included in the term 'Law' as per Article 13?)

मूल अधिकारों की संशोधनीयता से संबंधित चर्चा में इस प्रश्न पर विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। संक्षेप में, इससे संबंधित विवादों का इतिहास इस प्रकार है—

- (1) 'शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ' (1951) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि अनुच्छेद 368 के अधीन संसद द्वारा बनायी गई विधि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द की परिभाषा में शामिल नहीं है।
- (2) 'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' (1968) मामले में न्यायालय ने अपना मत बदल दिया और कहा कि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' के अंतर्गत सभी विधियाँ शामिल हैं जिनमें अनुच्छेद 368 भी अपवाद नहीं है।
- (3) '24वाँ संविधान संशोधन, 1971' के माध्यम से अनुच्छेद 13(2) में संशोधन करते हुए यह वाक्य जोड़ा गया कि संसद द्वारा अनुच्छेद 368 के अंतर्गत भारत को आधार विधि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द में शामिल नहीं मानी जाएगी।
- (4) 'केशवानंद बनाम भारत संघ' (1973) मामले में न्यायालय ने निर्धारित किया कि '24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' वैध है अर्थात् अनुच्छेद 368 के अंतर्गत भारत विधियाँ अनुच्छेद 13(2) के अनुसार 'विधि' नहीं मानी जाएगी। किंतु इसी निर्णय में न्यायालय ने 'संविधान के आधारभूत ढाँचे का सिद्धांत' (Doctrine of the Basic Structure of Constitution) विकसित किया, जिसके अनुसार न्यायपालिका ऐसी किसी भी विधि को असंवैधानिक घोषित कर सकती है जो संविधान के आधारभूत ढाँचे को उल्लंघन करती हो।

न्यायिक पुनरीक्षण / न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review)

न्यायिक पुनरीक्षण या न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) भारतीय संविधान के सबसे महत्वपूर्ण लक्षणों में से एक है। इसका अर्थ है कि यदि विधायिका (Legislature) द्वारा पारित कोई कानून संविधान के उपबंधों (Provisions) या संविधान की मूल भावना (Basic spirit) से असंगत है तो न्यायालय उसे कानून को असंवैधानिक घोषित करके उसके प्रवर्तन को रोक सकता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13, 32 तथा 226 के माध्यम से न्यायपालिका को यह शक्ति प्राप्त होती है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की मूल संबंध शक्तियों के पृथक्करण (Separation of powers) के सिद्धांत से है। व्यावहारिक रूप में, अमेरिका में ही इस सिद्धांत को पहली बार लागू किया गया।

शक्तियों के पृथक्करण के संदर्भ में जरूरी होता है कि शासन के तीनों अंग एक-दूसरे से स्वतंत्र तो रहें किंतु साथ ही उनका एक-दूसरे पर नियंत्रण और प्रभाव भी हो। ऐसी व्यवस्थाओं में विधि के दो स्तर होते हैं— साधारण विधि तथा सर्वोच्च विधि। सर्वोच्च विधि के रूप में लिखित संविधान होता है तथा साधारण विधियाँ संविधान के उपबंधों के अनुसार बनाई जाती हैं। यदि विधायिका कोई ऐसी विधि बनाती है जो संविधान अर्थात् सर्वोच्च विधि से असंगत हो तो उसे असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है।

ध्यातव्य है कि अमेरिका के मूल संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को स्पष्ट करने वाला कोई उपबंध नहीं था। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान का निर्वचन (Interpretation) करते हुए स्वयं इस शक्ति को धारित किया है। मुख्य रूप से यह सिद्धांत 'मार्बरी बनाम मेडिसन' (1803) मामले में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जॉन मार्शल ने प्रतिपादित किया था। अमेरिकी संविधान के पाँचवें संविधान संशोधन में प्रयुक्त शब्दावली 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due Process of law) की व्याख्या के माध्यम से न्यायिक पुनर्विलोकन की धारणा विकसित हुई। आगे चलकर, अमेरिकी संविधान के चौदहवें संशोधन (1868) में भी 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) शब्दावली का प्रयोग किया गया। अमेरिकी न्यायपालिका ने प्रायः इसी शब्दावली के आधार पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त की है।

जहाँ तक भारतीय संविधान का प्रश्न है, इसमें अनुच्छेद 13, 32 और 226 में घोषित तौर पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति न्यायपालिका को दी गई है। 1950-80 के दौरान जब भारतीय संसद और सर्वोच्च न्यायालय के बीच न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को लेकर बार-बार संघर्ष हुए और संसद ने न्यायपालिका से यह शक्ति को लेने का प्रयास किया तो सर्वोच्च न्यायालय ने 1952

(Basic structure) का हिस्सा है जिसे संसद अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन करके भी नहीं हटा सकती। उसके बाद, 'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' (1980) तथा कई और मामलों में निर्णय देते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय ने यह दोहराया है कि न्यायिक पुनर्विलोकन भारतीय संविधान का आधारभूत लक्षण है।

प्रश्न उठता है कि यदि संविधान के अनुच्छेद 13, 32 और 226 में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति स्पष्टतः न दी गई होती तो क्या भारतीय न्यायपालिका इस शक्ति से वंचित होती? इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि यदि ये उपबंध संविधान में न होते, तो भी न्यायपालिका के पास पुनर्विलोकन की शक्ति होती क्योंकि यह शक्ति संवैधानिक विधि (Constitutional law) की प्रकृति में ही शामिल है।

ध्यातव्य है कि भारतीय न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति असीमित नहीं है। अनुच्छेद 31(ग) के अनुसार यदि अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) में निहित नीति निदेशक तत्वों की उपलब्धि के लिए संसद कोई विधि बनाती है तो उस विधि को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि वह विधि अनुच्छेद 14 या 19 में दिए गए मूल अधिकारों से असंगत है। यह प्रावधान '25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' के माध्यम से किया गया था। इसके अलावा, संसद ने 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से यह प्रावधान भी किया था कि यदि कोई अधिनियम नवीं अनुसूची में सम्मिलित कर दिया गया हो तो उसे संविधान के भाग-3 में दिए गए किसी अधिकार के उल्लंघन के आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकेगा।

किंतु, 'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य' (1973) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 'संविधान के आधारभूत ढाँचे का सिद्धांत' (Doctrine of the Basic Structure of Constitution) प्रस्तुत किया जिसमें उसने घोषित किया कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति भी संविधान के आधारभूत ढाँचे में शामिल है। इसका अर्थ यह है कि संसद किसी भी संविधान संशोधन के माध्यम से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रतिबंध या निर्वन्धन असीमित नहीं कर सकती है। किंतु, न्यायालय को अनुमान था कि इस निर्णय को अतलक्षणी प्रभाव (Retrospective effect) से लागू करने पर अनेक कानूनी प्रश्न उठ खड़े होंगे, इसलिए उसने इसे भविष्यलक्षी प्रभाव (Prospective effect) से लागू किया जिसका अर्थ है कि 24 अप्रैल 1973 (केशवानंद भारती मामले में निर्णय की तारीख) से पहले संसद ने जिन प्रावधानों को न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि से बाहर किया था, उन पर न्यायालय अपनी इस शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा; किंतु उसके बाद का हर विधान इसकी परिधि में शामिल होगा। वर्तमान में यदि संसद कोई कानून नवीं अनुसूची में सम्मिलित करना चाहे तो भी न्यायपालिका के पास उसके पुनर्विलोकन की शक्ति बनी रहती है।

ध्यातव्य है कि भारत और अमेरिका के न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति बराबर नहीं है। हालाँकि अमेरिकी संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की चर्चा नहीं की गई थी जबकि भारतीय संविधान में इसकी स्पष्ट वही की गई है; तथा भी भारतीय न्यायपालिका के पास अमेरिकी न्यायपालिका की तुलना में यह शक्ति बहुत कम है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं-

- (क) भारतीय संविधान अमेरिकी संविधान की तुलना में बहुत लंबा है क्योंकि अधिकांश प्रापलों में इसमें संवैधानिक प्रावधान स्पष्ट भाषा में लिखे गए हैं। अतः भारत संविधान के निर्वचन का प्रश्न बार-बार नहीं उठता है। इसके विपरीत, अमेरिकी संविधान में सिर्फ मूल सिद्धांत ही बताए गए हैं, विस्तृत उपबंध नहीं किए गए हैं; इसलिए वहाँ संविधान के निर्वचन का प्रश्न बार-बार उठता है और न्यायपालिका शक्तिशाली हो जाती है।
- (ख) भारतीय संविधान अमेरिकी संविधान की तुलना में बहुत लचीला है, इसलिए संसद संशोधन करके संविधान के प्रावधानों को स्पष्ट तथा सीमित कर सकती है। अमेरिकी संविधान में संशोधन करना अत्यंत कठिन है, इसलिए न्यायपालिका की शक्ति मजबूत बनी रहती है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. निम्नलिखित में से किस वाद में निर्णय के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने 'संविधान के आधारभूत ढाँचे की अवधारणा' (Doctrine of the basic structure of constitution) प्रस्तुत की?
 - (i) शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ (1951)
 - (ii) सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1965)
 - (iii) गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967)
 - (iv) अनुच्छेद 13 से न्यायपालिका को यह शक्ति प्राप्त होती है कि यदि कोई ऐसा कानून बनाया जाता है, जो मूल अधिकारों को सीमित या नष्ट करता हो, तो न्यायपालिका उसे असंवैधानिक घोषित कर सकती है।
- उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-
 - (1) केवल (i)
 - (2) केवल (ii)
 - (3) (i) और (ii) दोनों
 - (4) न तो (i) और न ही (ii)

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) स्थानीय प्राधिकारियों (Local authorities) से आशय उन व्यक्तियों से है, जिन्हें कोई विधि बनाने अथवा आदेश या अधिसूचना जारी करने और लागू करवाने की शक्ति प्राप्त है।

(ii) सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों को न्यायपालिका ने राज्य की परिभाषा में शामिल किया है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. भारतीय संविधान में वर्णित 'मूल अधिकार' के संबंध में निम्न में से कौन-कौन से सिद्धांत लागू होते हैं?

- (i) पृथक्करणता का सिद्धांत (Doctrine of severability)
(ii) ग्रहण या आच्छादन का सिद्धांत (Doctrine of eclipse)
(iii) अधिव्याप का अमेरिकी सिद्धांत (American Doctrine of waiver)

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

6. "यदि राज्य कोई ऐसी विधि बनाता है जो भाग 3 में वर्णित मूल अधिकारों से असंगत है तो वह विधि उस मात्रा तक राज्य होगी जिस मात्रा तक वह मूल अधिकारों को उल्लंघन करती है।" यह कथन वर्णित है-

- (i) अनुच्छेद 13(1) में (ii) अनुच्छेद 13(2) में
(iii) अनुच्छेद 13(3) में (iv) अनुच्छेद 31(1) में

7. सर्वोच्च न्यायालय को अनुसार 'विधि' के अंतर्गत शामिल है-

- (i) ऐसी रूढ़िशास्त्रिक विधियाँ जिनमें कानून का बल है।
(ii) कार्यपालिका के अधिकारों द्वारा जारी किए गए आदेशों, आदेशों, यदि वे प्राधिकार के अधीन जारी किए गए हों।
(iii) ध्वज संहिता।
(iv) मुस्लिम पर्सनल लॉ या हिंदुओं या ईसाइयों की वैयक्तिक विधि (Personal law)।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (iii) और (iv)
(3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

8. भारतीय संविधान के निम्न में से किन अनुच्छेदों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के स्रोत के रूप में माना जा सकता है?

- (i) अनुच्छेद 13 (ii) अनुच्छेद 32
(iii) अनुच्छेद 226

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

(ii) भारतीय न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति असंमित नहीं है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति भारतीय संविधान के आधारभूत ढाँचे में शामिल है।

(ii) संसद किसी भी संविधान संशोधन के माध्यम से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति पर कोई प्रतिबंध या निर्बंधन आरोपित नहीं कर सकती है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) 24 अप्रैल, 1973 से पहले संसद ने जिन प्रावधानों को न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि से बाहर किया था, उन पर न्यायालय अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा।

(ii) वर्तमान में यदि संसद कोई कानून नवों अनुसूची में सम्मिलित करना चाहती है तो न्यायपालिका को पास उसके न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति बनी रहती है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) भारत और अमेरिका के न्यायपालिकाओं की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति समान नहीं है।

(ii) भारतीय न्यायपालिका को पास अमेरिकी न्यायपालिका की तुलना में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति कम है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. भारतीय न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति अमेरिकी न्यायपालिका की तुलना में कम है, क्योंकि-

(i) भारतीय संविधान अमेरिकी संविधान की तुलना में बहुत लचीला है, इसलिए संसद संशोधन करके संविधान के प्रावधानों को स्पष्ट तथा सीमित कर सकती है।

(ii) अमेरिकी संविधान में संशोधन करना अत्यंत कठिन है, इसलिए न्यायपालिका की शक्ति मजबूत बनी रहती है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. भारतीय संविधान में अनुच्छेद 31(क) एवं 31(ख) किस संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़े गए?

समता का अधिकार: अनुच्छेद 14-18

(Right to Equality: Article 14-18)

भारतीय संविधान के भाग-3 के अंतर्गत अनुच्छेद 14-18 तक 'समता के अधिकार' के विभिन्न उपबंध दिये गये हैं। इन पाँच अनुच्छेदों के समूह को संविधान में 'समता का अधिकार' शीर्षक दिया गया है। मौटे तौर पर इन अनुच्छेदों में निम्नलिखित अधिकार शामिल हैं-

- अनुच्छेद-14: विधि के समक्ष समता (Equality before law) तथा विधियों का समान संरक्षण (Equal protection of laws)
- अनुच्छेद-15: धर्म, मूलवंश (Race), जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद (Discrimination) का प्रतिषेध (Prohibition)
- अनुच्छेद-16: लोक-नियोजन (Public Employment) के विषय में अवसर की समानता
- अनुच्छेद-17: अस्पृश्यता का उन्मूलन (Abolition of untouchability)
- अनुच्छेद-18: उपाधियों का अन्ति (Abolition of titles)

इन पाँचों अनुच्छेदों में पारस्परिक संबंध यह है कि अनुच्छेद 14 में समानता का मूल आदर्श बताया गया है जबकि अनुच्छेद 15, 16, 17 और 18 में समानता के उसी आदर्श को विशिष्ट क्षेत्रों में लागू किया गया है।

अनुच्छेद 14 (Article 14)

अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि "भारत राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता (Equality before law) से अथवा विधियों के समान संरक्षण (Equal protection of laws) से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।"

इस कथन में दो प्रमुख वाक्यांश हैं- (क) विधि के समक्ष समता (Equality before law), तथा (ख) विधियों का समान संरक्षण (Equal protection of laws)। इनमें से पहला वाक्यांश 'विधि के समक्ष समता' ब्रिटिश संविधान से लिया गया है जबकि दूसरा वाक्यांश 'विधियों का समान संरक्षण' अमेरिकी संविधान से लिया गया है।

गौरतलब है कि संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणापत्र (United Nations Human Rights Charter) के अनुच्छेद 7 में भी उपरोक्त दोनों वाक्यांश शामिल हैं। उसमें कहा गया है कि "विधि के समक्ष सभी समान हैं और बिना किसी विभेद के सभी विधि के संरक्षण के अधिकारी हैं।"

विधि के समक्ष समता (Equality before law):

विधि के समक्ष समता एक नकारात्मक (Negative) अभिव्यक्ति है जिसका अर्थ है कि कानून के सामने विभिन्न व्यक्तियों में किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जाएगा अर्थात् कुछ व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों की तुलना में किसी प्रकार के विशेषाधिकार (Privileges) नहीं दिए जाएंगे। कोई व्यक्ति आर्थिक संसाधनों या सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की दृष्टि से चाहे कितना भी ऊँचा हो, वह देश की कानून व्यवस्था से ऊपर नहीं है और सामान्य न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर आता है।

'विधि के समक्ष समता' का विचार ब्रिटेन के विख्यात विधिवेत्ता प्रोफेसर डायसी (Prof. Dicey) के 'विधि के शासन' (Rule of Law) की संकल्पना के अंतर्गत दूसरे लक्षण के रूप में शामिल है। 'विधि के शासन' का अर्थ एक ऐसी शासन प्रणाली से है जिसमें अतिशय शक्ति किसी भी व्यक्ति, संस्था या पद के पास न होकर विधि (Law) के पास हो अर्थात् हर व्यक्ति, संस्था

- (ख) **विधि के समक्ष समता (Equality before Law)** अर्थात् कोई भी व्यक्ति विधि के समक्ष असमान नहीं है। सभी व्यक्ति समान कानूनों और सामान्य न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर आते हैं। इसका एकमात्र अपवाद सम्राट है (इंग्लैंड के संदर्भ में)। शेष सभी व्यक्ति, चाहे वे सामान्य नागरिक हों या अधिकारी, एक ही विधि को मानने को बाध्य हैं।
- (ग) **संविधान सामान्य विधि का परिणाम है** अर्थात् विभिन्न व्यक्तियों को मिलने वाले अधिकार संविधान पर नहीं बल्कि न्यायालय द्वारा विधियों की व्याख्या पर निर्भर हैं। न्यायालयों के निर्णयों से ही संविधान का निर्माण होता चलता है।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, भारत में 'विधि के शासन' की पहली दो विशेषताएँ पूर्णतः लागू होती हैं। यहाँ दूसरी विशेषता तो इंग्लैंड से ज्यादा प्रभावी रूप में लागू होती है क्योंकि भारत में विधियों से परे कोई 'सम्राट' नहीं है, भारत का राज्याध्यक्ष भी विधियों के अधीन है। तीसरी विशेषता भारत में लागू नहीं होती क्योंकि भारत में व्यक्तियों के अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त हैं, न कि न्यायालयों द्वारा। यहाँ न्यायालय संविधान के अनुसार कार्य करते हैं, संविधान न्यायालयों के निर्णयों का परिणाम नहीं है। प्रोफेसर डायसी द्वारा बताया गया तीसरा लक्षण इंग्लैंड को ध्यान में रखकर बनाया गया है क्योंकि वहाँ लिखित संविधान नहीं है, वहाँ संविधान न्यायालयों के निर्णयों आदि से ही बनता गया है।

विधियों का समान संरक्षण (Equal protection of Laws):

'विधियों का समान संरक्षण' एक सकारात्मक (Positive) अधिव्यक्ति है क्योंकि इसमें 'संरक्षण' शब्द के माध्यम से बताया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति की कानूनों तक पहुँच बराबर होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि सभी व्यक्तियों पर लागू होने वाले ऐसे नियम नहीं बनाए जाने चाहिए जो पूर्णतः समान हों। इसका कारण है कि विभिन्न व्यक्तियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ अलग-अलग होती हैं, इसलिए सभी पर कानून लागू करते समय उन अंतरों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। वस्तुतः समान कानून उन्हीं व्यक्तियों के संदर्भ में बनाए जाने चाहिए जिनकी परिस्थितियाँ समान हों। यदि दो व्यक्तियों की परिस्थितियों में काफी बड़ा अंतर हो तो उनके लिए समान कानून बनाना वस्तुतः असमावता को पैदा करना है। किंतु यदि समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के लिए असमान कानून बनाए जाते हैं तो यह भी समानता के सिद्धांत के विरुद्ध होगा। ध्यातव्य है कि 'विधि का समान संरक्षण' अमेरिकी संविधान के 14वें संशोधन से ली गई शब्दावली है और इस पर अमेरिकी दृष्टिकोण का प्रभाव देखा जा सकता है।

अनुच्छेद 14 के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातें (Some important aspects related with Article 14):

- (क) अनुच्छेद 14 का संरक्षण भारत के नागरिकों के साथ-साथ गैर-नागरिकों को भी प्राप्त है। इसमें 'नागरिक' (Citizen) नहीं, 'व्यक्ति' (Person) शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है कि भारत के राज्यक्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समता का अधिकार उपलब्ध है।
- (ख) सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया है कि अनुच्छेद 14 में निहित 'विधि का शासन' (Rule of law) संविधान के 'आधारभूत लक्षणों' (Basic structure of constitution) में शामिल है जिसका तात्पर्य है कि संसद अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन करके भी इस अधिकार को नहीं छीन सकती।
- (ग) सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अनुच्छेद 14 में 'प्राकृतिक न्याय' अर्थात् 'नैसर्गिक न्याय' (Natural Justice) का सिद्धांत निहित है। इसका अर्थ है कि यदि राज्य अनुच्छेद-14 के आधार पर कोई मनमाना व्यवहार करता है तो उसे अनुच्छेद-14 का उल्लंघन माना जाएगा।
- (घ) अनुच्छेद-14 में उल्लिखित 'व्यक्ति' (Person) शब्द में 'विधिक व्यक्ति' (Legal Persons) भी शामिल हैं, जैसे कोई कंपनी या निगम इत्यादि। अतः 'विधिक व्यक्ति' भी समानता के अधिकार को मांग कर सकते हैं।

व्यक्तियुक्त वर्गीकरण का सिद्धांत (Principle of Reasonable Classification):

अनुच्छेद-14 में दी गई समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि देश के सभी व्यक्तियों पर पूर्णतः समान कानून लागू किये जाएंगे। इसका अर्थ मात्र इतना है कि राज्य मनमाने तरीके से व्यक्तियों में विभेद नहीं करेगा। चूँकि विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियों की आवश्यकताएँ विभिन्न व्यवहारों की अपेक्षा रखती हैं, इसलिए उन पर लागू होने वाली विधियों में भी आवश्यक असमानताएँ होनी

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कुछ फैसलों में स्पष्ट किया है कि किसी वर्गीकरण को युक्तियुक्त होने की दो शर्तें हैं—

- (क) वर्गीकरण (Differentia) का आधार बोधगम्य (Intelligible) होना चाहिए अर्थात् किसी वर्ग में कुछ व्यक्तियों को शामिल करने और शेष को उसके बाहर रखने के लिए बोधगम्य या तार्किक (Rational) आधार होना चाहिए।
- (ख) किए गए वर्गीकरण (Differentia) का तर्कसंगत संबंध (Rational relation) उस उद्देश्य के साथ होना चाहिए जिसे अधिनियम के माध्यम से प्राप्त किया जाना है।

उदाहरण के लिए, आयकर नीति के अंतर्गत यदि व्यक्ति की आय बढ़ने के साथ-साथ आयकर की दर बढ़ा दी जाए तो ऐसा विधान दोनों शर्तों को पूरा करेगा। इसमें वर्गीकरण उचित है क्योंकि आयकर के संदर्भ में अमीर और गरीब व्यक्तियों को अलग वर्गों में रखना बोधगम्य है। इसके अलावा, इस वर्गीकरण का विधि के उद्देश्य के साथ तर्कसंगत संबंध भी है क्योंकि उच्च आय वालों से अधिक कर लेना एवं निम्न आय वालों से कम कर लेना युक्तियुक्त सिद्धांत है। इसके विपरीत, यदि व्यक्तियों की लंबाई के अनुसार उनके आयकर का निर्धारण किया जाए तो यह युक्तियुक्त नहीं होगा क्योंकि व्यक्ति की लंबाई तथा उसकी आय में कोई तर्कसंगत संबंध नहीं होता।

समता के अधिकार के अपवाद (Exceptions to the Right to Equality):

अनुच्छेद-14 में निहित समता का अधिकार आत्यंतिक (Absolute) नियम नहीं है। इसके कई ऐसे अपवाद हैं जो संविधान द्वारा स्वीकार किये गये हैं—

- I. विदेशी राजनयिकों (Foreign diplomats), शासकों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) व उसकी एजेंसियों को भारतीय न्यायालयों की सिविल (Civil) व आपराधिक (Criminal) अधिकारिता से उन्मुक्त प्राप्त है।
- II. अनुच्छेद 361 के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति तथा राज्यों के राज्यपालों को अपने दायित्व निभाने के लिए कुछ विशेष विमुक्तियाँ दी गई हैं, जैसे इन पदों पर आसीन व्यक्ति अपने कार्यकाल के दौरान लिए गए कार्य-संबंधी निर्णय के लिए किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होते; इनके खिलाफ पद पर रहने के दौरान किसी भी न्यायालय में किसी भी प्रकार की आपराधिक कार्यवाही (Criminal procedure) नहीं चलाई जा सकती, इत्यादि।
- III. अनुच्छेद-105 के तहत संसद सदस्यों को भी कुछ विशेषाधिकार दिये गए हैं जिनका संबंध संसद में उनके द्वारा कही गई बातों के लिए न्यायपालिका के प्रति जवाबदेह नहीं होने से है। ऐसी ही उन्मुक्ति अनुच्छेद 194 के तहत राज्यों के विधानमंडलों के सदस्यों को भी प्राप्त है।
- IV. अनुच्छेद-31(ग) के अधीन पारित विधियों को भी अपवाद की श्रेणी में रखा जाता है। संविधान के 25वें संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा संविधान में अनुच्छेद 31(ग) अंतः स्थापित किया गया था जिसके अनुसार यदि राज्य अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में दिये गए उद्देश्यों को उपलब्ध करने के लिए कोई विधि बनाता है तो उस विधि को इस आधार पर शून्य (Void) घोषित नहीं किया जा सकता कि वह अनुच्छेद-14 में वर्णित समता के अधिकार का अतिक्रमण करती है। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा इस अपवाद को बढ़ाकर अनुच्छेद 14 की परिधि से उन सभी विधियों को मुक्त कर दिया गया जो किसी भी नीति-निर्देशक तत्व को हासिल करने के लिए बनाई गई हों। 'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' मामले (1980) में उच्चतम न्यायालय ने 42वें संशोधन द्वारा किये गये विस्तार को शून्य घोषित कर दिया किन्तु 25वें संशोधन का प्रभाव अभी भी जारी है। अतः यदि कोई विधि अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में दिए गए निर्देशक तत्वों के पक्ष में बनाई गई है तो उसे अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता।
- V. अनुच्छेद-361(क) में गीडिया को एक विशेष अधिकार दिया गया है। इसके तहत, यदि कोई भी व्यक्ति संसद के किसी सदन या राज्य विधानमंडल के किसी सदन की कार्यवाही का सत्य प्रकाशन करता है तो उस पर देश के किसी न्यायालय में सिविल (Civil) या आपराधिक (Criminal) मुकदमा नहीं चलाया जा सकेगा।

अनुच्छेद 15 (Article 15)

अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 14 में दिये गए समता के अधिकार को विशिष्ट क्षेत्र में लागू करता है। यह धर्म (Religion), मूलवंश (Race), जाति (Caste), लिंग (Sex) तथा जन्मस्थान (Place of birth) के आधार पर किसी भी विभेद (Discrimination) का प्रतिषेध (Prohibition) करता है। गौरतलब है कि अनुच्छेद 15 तथा अनुच्छेद 16 में दिए गए मूल अधिकार सिर्फ भारतीय नागरिकों को उपलब्ध हैं, अनुच्छेद 14 की तरह वे नागरिकों तथा गैर-नागरिकों दोनों को प्राप्त नहीं हैं। यदि कोई विधि अनुच्छेद

वैध नहीं बनाया जा सकता। न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि यदि कोई विभेद अनुच्छेद 15 या 16 के उपबंधों के अंतर्गत शामिल होता है तो उसे उसी अनुच्छेद का निर्देश करते हुए चुनौती दी जानी चाहिए। अनुच्छेद 14 के अधीन उसी विभेद को चुनौती दी जानी चाहिए जो अनुच्छेद 15 या 16 की परिधि में नहीं आ पाता।

अनुच्छेद 15 के पाँच खण्ड हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है-

अनुच्छेद-15(1) [Article 15(1)]:

अनुच्छेद 15(1) में राज्य को आदेश दिया गया है कि वह केवल धर्म (Religion), मूलवंश (Race), जाति (Caste), लिंग (Sex), जन्मस्थान (Place of birth) या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 15(1) में दिए गए प्रतिषेध (Prohibitions) केवल राज्य के लिए हैं, वह प्राइवेट व्यक्तियों पर लागू नहीं होते।

इस अनुच्छेद में 'केवल' (Only) शब्द विशेष महत्व का है। इसका अर्थ है कि विभेद केवल उपर्युक्त आधारों पर ही वर्जित है, अन्य आधारों पर नहीं। यदि कोई विभेद इस अनुच्छेद में वर्णित आधारों से भिन्न किसी आधार पर किया गया हो तो वह असंवैधानिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए, इस सूची में जन्म-स्थान (Place of birth) का वर्णन है, किन्तु यदि विभेद निवास-स्थान (Place of residence) के आधार पर हो तो वह अवैध नहीं होगा। इसके अलावा, यदि विभेद इस प्रकार से किया जाए कि उपर्युक्त वर्णित सूची में से तो कोई एक आधार हो ही, पर साथ-साथ कोई अन्य आधार भी निहित हो तो वह असंवैधानिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए, महिलाओं को मातृत्व अवकाश (Maternity leave) दिया जाता है जो केवल उनके लिंग तक सीमित है, किन्तु वह अवैध नहीं है क्योंकि इसमें केवल लिंग के साथ-साथ पुरुषों और महिलाओं के जैविक अंतर (Biological differences) व उनसे उत्पन्न होने वाले परिणाम भी निहित हैं।

अनुच्छेद 15(2) [Article 15(2)]:

अनुच्छेद 15(2) में राज्य के साथ-साथ प्राइवेट व्यक्तियों को भी आदेश दिया गया है कि कोई भी नागरिक केवल धर्म, मूलवंश (Race), जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर-

- (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या
- (ख) पूर्णतः या अंशतः राज्यनिधि (State fund) से पोषित अथवा साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों और सार्वजनिक समागम (Public resort) के स्थानों के उपयोग के संबंध में किसी भी नियोग्यता (Disability) के अधीन नहीं होगा।

अनुच्छेद 15(2) का मूल उद्देश्य जाति व्यवस्था से उत्पन्न अस्पर्श्यता (Untouchability) जैसी क्रूरतियों को समाप्त करना है। चूँकि आज़ादी से पहले कई सार्वजनिक स्थानों पर हरिजनों तथा कुछ अन्य पिछड़े वर्गों को जाने से रोका जाता था, अतः उसी भेदभाव को दूर करने के लिए यह प्रावधान किया गया है। ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 15(2) में उन्हीं कुओं, तालाबों या सार्वजनिक समागम (Public resort) के स्थानों को शामिल किया गया है जो पूर्णतः या अंशतः राज्य की निधि से पोषित हों या साधारण जनता द्वारा प्रयोग में लाए जाते हों। यदि कोई कुआँ या तालाब किसी व्यक्ति की निजी संपत्ति है तो उस पर अनुच्छेद 15(2) के प्रावधान लागू नहीं होते।

अनुच्छेद 15(3) [Article 15 (3)]:

यह अनुच्छेद, अनुच्छेद 15(1) तथा 15(2) में दिए गए सामान्य नियमों का अपवाद (Exception) है। इसमें कहा गया है कि अनुच्छेद-15 में कही गई कोई बात राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान (Special provisions) करने से नहीं रोकेंगे।

स्पष्ट है कि अनुच्छेद 15(3) का उद्देश्य महिलाओं और बच्चों को विशेष संरक्षण प्रदान करना है क्योंकि उनकी शारीरिक वृद्धि और सामाजिक स्थिति ऐसी होती है कि वे आसानी से कोट-ऑफ (Caste-off) हो सकते हैं। अतः उन्हें विशेष प्रावधान देने की आवश्यकता है।

अनुच्छेद 15(3) के तहत सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने कई महत्वपूर्ण फैसले दिए हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

1. अनुच्छेद 42 के अनुसार महिलाओं को विशेष प्रसूति अवकाश (Maternity leave) व सुविधाएँ देना न्यायसंगत है और इससे अनुच्छेद 15(1) का अतिक्रमण नहीं होता क्योंकि यह विभेद केवल लिंग पर आधारित न होकर स्त्रियों की विशिष्ट शारीरिक स्थिति पर भी आधारित है।
2. राज्य को अधिकार है कि वह ऐसी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर सकता है जो केवल महिलाओं के लिए संचालित की जाएँ। इसके अलावा, वह अन्य शिक्षण संस्थाओं में भी महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर सकता है।
3. अपने एक अन्य निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि राज्य को सरकारी नौकरियों के मामले में पुरुष और नारी उम्मीदवारों के समान रूप से अर्ह (Eligible) होने की स्थिति में महिलाओं को प्राथमिकता या वरीयता (Preference) देने का अधिकार है और इस प्राथमिकता को राज्य की 'सकारात्मक कार्यवाही' (Affirmative action) माना जाएगा, न कि आरक्षण (Reservation)।

1990 ई. में संसद ने 'राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990' पारित किया जिसके प्रावधानों के अनुसार 'राष्ट्रीय महिला आयोग' (National Commission for Women-NCW) की स्थापना की गई। इसकी स्थापना के मूल में संविधान का अनुच्छेद 15 तथा कुछ अन्य अनुच्छेदों के प्रावधान निहित हैं।

अनुच्छेद 15(4) [Article 15(4)]

अनुच्छेद 15(4) अनुच्छेद 15(1) और 15(2) का दूसरा अपवाद है। यह मूल-संविधान में विद्यमान नहीं था। इसे 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से जोड़ा गया। इसका कारण यह था कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'मद्रास राज्य बनाम चंपकम दोराइराजन' मामले (1951) में दिए गये निर्णय ने केन्द्र सरकार को ऐसा करने के लिए प्रेरित किया था। इस मामले में हुआ यह था कि मद्रास सरकार ने अपने एक आदेश के तहत राज्य के मैट्रिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में विभिन्न जातियों तथा समुदायों के विद्यार्थियों के लिए कुछ स्थानों का विशिष्ट अनुपात निर्धारित कर दिया था। सरकार का तर्क था कि यह प्रावधान अनुच्छेद 46 में वर्णित इस नीति-निदेशक तत्व के अनुरूप है कि राज्य जनता के कमजोर वर्गों के शिक्षा संबंधी हितों की सुरक्षा और अभिवृद्धि के लिए प्रयास करेगा। किंतु, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि मद्रास सरकार का यह आदेश अवैध है क्योंकि इसमें सिर्फ धर्म और जाति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है न कि विद्यार्थियों की योग्यता के आधार पर। समता का अधिकार मूल अधिकार है, राज्य के नीति-निदेशक तत्व मूल अधिकारों पर प्रभावी नहीं हो सकते।

इस निर्णय के प्रभाव को हटाने के लिए संसद ने 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से अनुच्छेद 15(4) को संविधान में समाविष्ट किया। इसके तहत राज्य को यह शक्ति दी गई कि वह 'सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि' से पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकेगा और ऐसे विशेष प्रावधानों को अनुच्छेद 15 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

अनुच्छेद 15(5) [Article 15(5)]

अनुच्छेद 15(5) संविधान के '93वें संशोधन अधिनियम 2005' के माध्यम से अंतःस्थापित किया गया है। इसे प्रभाव देने के लिए संसद ने 2006 में एक अधिनियम पारित किया जिसे 'केंद्रीय शिक्षा संस्था (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम, 2006' [Central Educational Institutions (Reservation in admission) Act, 2006] के नाम से जाना जाता है।

अनुच्छेद 15(5) राज्य को अधिकार देता है कि वह अल्पसंख्यक वर्गों (Minorities) की शिक्षा संस्थाओं को छोड़कर अन्य सभी सरकारी या निजी शिक्षण संस्थाओं में, चाहे वे सहायता प्राप्त हों या नहीं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों या अन्य पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों को दाखिले में आरक्षण दे सकता है और अनुच्छेद 15 या अनुच्छेद 19(1)(छ) की कोई बात राज्य को ऐसा करने से नहीं रोकेंगी।

दरअसल, सरकारी शिक्षण संस्थाओं में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए 22.5% आरक्षण का नियम पहले से लागू था। सरकार चाहती थी कि मण्डल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के परिणामस्वरूप जिस तरह केंद्रीय सेवाओं में अन्य पिछड़े

पर भी लागू होनी चाहिए? कुछ राज्य सरकारें-इससे पहले निजी संस्थाओं पर आरक्षण की बाध्यता लागू करने की कोशिश कर चुकी थीं किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने अपने तीन प्रमुख निर्णयों में राज्यों के इस कदम को अवैध ठहराया था। ये तीन मामले थे- (i) 'टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य' (2002), (ii) 'इस्लामिक एकेडमी बनाम कर्नाटक राज्य' (2003) तथा (iii) 'पी.ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य' (2005)। इन मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि राज्य गैर-सहायता प्राप्त व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए स्थानों का आरक्षण नहीं कर सकता है।

इन तीनों निर्णयों के प्रभाव को दूर करने के लिए ही तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने संविधान के 93वें संशोधन का विधेयक तैयार किया था। रोचक तथ्य यह है कि जब उन्होंने इसे प्रस्तावित किया तो संसद में सभी दलों ने इसे सर्वसम्मति से पारित किया।

'अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारत संघ' (2008) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के सामने यह प्रश्न उठा कि उक्त संविधान संशोधन अधिनियम वैध है अथवा नहीं? उच्चतम न्यायालय के 5 न्यायाधीशों की संविधान पीठ (Constitutional bench) ने सर्वसम्मति से इस अधिनियम को संवैधानिक घोषित किया, किंतु उसने यह प्रश्न अनुत्तरित छोड़ दिया कि सरकारी सहायता नहीं पाने वाली निजी संस्थाओं पर यह अधिनियम लागू होगा या नहीं? उसने यह शर्त लगा दी कि पिछड़े वर्गों की मल्टीटैर परत (Creamy layer) को इस आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा तथा प्रत्येक 5 वर्ष पर इस कानून के सामाजिक प्रभाव की पूर्ण समीक्षा करना अनिवार्य होगा। उसने यह आदेश भी दिया कि पिछड़े वर्गों का निर्धारण केंद्र सरकार द्वारा 1993 में जारी किए गए 'ऑफिस मैमोरेण्डम' के आधार पर किया जाएगा।

अनुच्छेद 16 (Article 16)

अनुच्छेद 16 संविधान के सर्वाधिक विस्तृत तथा विवाहित अनुच्छेदों में से एक है। यह अनुच्छेद 15 में दिए गए अधिकार को ही एक विशिष्ट क्षेत्र अर्थात् लोक-नियोजन (Public employment) में लागू करता है। अनुच्छेद 16 के 5 खण्ड हैं जिनमें से पहले दो अर्थात् 16(1) और 16(2) में लोकनियोजन के विषय में अवसर की समानता (Equality of opportunity) की गारंटी दी गई है जबकि 16(3), 16(4) व 16(5) में इस साधारण नियम के अपवाद दिए गये हैं। संसद ने 27वें तथा 81वें संशोधनों के माध्यम से अनुच्छेद 16(4) में 4(क) तथा 4(ख) उपखंडों को अंतःस्थापित भी किया है।

अनुच्छेद 16(1) तथा 16(2) [Article 16(1) & 16(2):

अनुच्छेद 16(1) तथा 16(2) में लोक-नियोजन के मामले में अवसर की समानता की गारंटी इन शब्दों में दी गई है-

- 16(1) "राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन (Employment) या नियुक्ति (Appointment) से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।"
- 16(2) "कोई नागरिक केवल धर्म (Religion), मूलवंश (Race), जाति (Caste), लिंग (Sex), वंशक्रम (Descent), जन्मस्थान (Place of birth), निवास (Residence) या इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन (Employment) या पद (Office) के संबंध में अपात्र नहीं होगा या उससे विभेद नहीं किया जाएगा।"

अनुच्छेद 16(1) तथा 16(2) के संबंध में कुछ विशेष बातें ध्यान देने योग्य हैं जो निम्नलिखित हैं-

- (1) अनुच्छेद 16 का विस्तार सिर्फ उन पदों तक है जो राज्य के अधीन हैं। गैर-सरकारी संस्थाओं या निजी क्षेत्र की कंपनियों द्वारा दिए जाने वाले पदों के संबंध में यह अधिकार लागू नहीं होता।
- (2) अनुच्छेद 16 का अधिकार केवल उन मामलों में लागू होता है जहाँ राज्य द्वारा 'नौकरी' (Employment) दी जा रही है। यह 'संविदा संबंधी सेवाओं' (Contractual Services) के मामले में लागू नहीं होता।
- (3) अनुच्छेद 16 में निहित वाक्यांश 'अवसर की समता' (Equality of opportunity) का अर्थ योग्यताओं (Abilities) या अर्हताओं (Eligibilities) के उन्मूलन से नहीं है। राज्य को पूरा हक है कि वह उम्मीदवारों के लिए मानसिक योग्यता, शारीरिक सक्षमता, नैतिक स्तर, अनुशासन में रहने की योग्यता जैसे अर्हताएँ (Eligibilities) निर्धारित करे। यदि संदर्भित पद के लिए उम्मीदवारों को किसी विशेष गुण (Qualification) के अभाव में अपात्र ठहराया जा सकता है तो वह उम्मीदवारों के लिए अर्हताओं (Eligibilities) के अभाव में अपात्र ठहराया जा सकता है।

- (4) अनुच्छेद 16 के संबंध में एक सामान्य विवाद यह रहा है कि इसमें वर्णित 'नियोजन' (Employment) शब्द के अंतर्गत सिर्फ आरंभिक नियुक्ति शामिल है या उसके साथ-साथ प्रोन्नति (Promotion) और आगे की सेवा शर्तें भी शामिल हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि 'नियोजन' के अंतर्गत प्रारंभिक नियुक्ति के साथ-साथ प्रोन्नति तथा सेवा से जुड़े अन्य पक्ष भी शामिल हैं।
- (5) अनुच्छेद 16(2) में ध्यान देने की विशिष्ट बात यह है कि इसमें अनुच्छेद 15 में विभेद का प्रतिषेध (Prohibition of discrimination) करने वाले पाँच आधारों (धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग तथा जन्मस्थान) के अलावा दो अन्य आधार वंशक्रम (Descent) तथा निवास स्थान (Residence) भी शामिल किए गए हैं। इस दृष्टि से अनुच्छेद 16 की परिधि अनुच्छेद 15 से ज्यादा व्यापक है। इस उपबंध को शामिल करने का मूल कारण यह था कि सरकारी नौकरियों के मामले में विभिन्न राज्यों के मध्य क्षेत्रवाद (Regionalism) की प्रवृत्ति या विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य वंशवाद की प्रवृत्ति न फैले।

अनुच्छेद 16(3) [Article 16(3)]:

अनुच्छेद 16(3) अनुच्छेद 16(2) का एक अपवाद है। अनुच्छेद 16(2) जिन 7 आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है, उनमें 'निवास स्थान' (Place of residence) भी शामिल है। किंतु अनुच्छेद 16(3) यह प्रावधान करता है कि संसद विधि बनाकर लोक नियोजन के मामले में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में निवास संबंधी शर्त लागू कर सकती है।

यह उपबंध करने का मूल कारण यह था कि देश के विभिन्न राज्यों में सामाजिक, आर्थिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न था और कुछ विशेष राज्यों के निवासियों को विकास की मुख्यधारा में लाने के लिए ऐसे प्रावधानों की जरूरत महसूस की जा रही थी। किंतु, संविधान निर्माताओं को इस बात की चिंता भी थी कि कहीं इस प्रावधान का दुरुपयोग न होने लगे। यही कारण है कि यह शक्ति सिर्फ संसद को दी गई है, राज्यों के विधानमंडलों को नहीं।

अनुच्छेद 16(3) से प्राप्त हुई शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने 1957 में 'लोक नियोजन (निवास संबंधी शर्त) अधिनियम, [Public employment (Requirement as to residence) Act]' बनाया। इस अधिनियम के माध्यम से कुछ क्षेत्रों जैसे हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र आदि को अनुच्छेद 16(2) से छूट दी गई जिसका तात्पर्य था कि इन क्षेत्रों से जुड़ी सरकारी सेवाओं में चयन के लिए निवास स्थान एक अर्हता हो सकती है। यह अपवाद शुरू में सिर्फ पाँच वर्षों के लिए था किंतु आगे चलकर इसे 1974 तक के लिए लागू कर दिया गया। 1974 में यह अधिनियम समाप्त हो गया। इसके बाद से ऐसा कोई अधिनियम (Act) नहीं बनाया गया है जो लोक नियोजन के लिए किसी राज्य में निवास की शर्त लागू करता हो। सिर्फ आंध्र प्रदेश के मामले में कुछ विशेष प्रावधान संविधान में अनुच्छेद 371(घ) को अंतःस्थापित करके लागू किए गए हैं।

1957 में पारित उपरोक्त अधिनियम के तहत आंध्र प्रदेश सरकार ने 1969 में एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार 1 नवम्बर, 1956 के बाद ऐसे पदों पर नियुक्त व्यक्तियों को नौकरी छोड़ने का आदेश दिया गया जो पद तेलंगाना क्षेत्र के निवासियों के लिए आरक्षित थे किंतु उन पर अन्य व्यक्ति चुने गए थे। इस आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। 'नरसिंह राव बनाम आंध्रप्रदेश' (1970) नामक इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि तेलंगाना क्षेत्र के निवासियों के लिए लोकपदों को आरक्षित करने की अनुमति देने वाला अधिनियम असंवैधानिक है क्योंकि वह पूरे राज्य में लागू नहीं होता। अनुच्छेद 16(3) में राज्य (State) तथा संघ राज्यक्षेत्र (Union territory) शब्दों का प्रयोग है और इन शब्दों का अर्थ पूरे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र से है, न कि उसके किसी खास हिस्से से। यदि संसद चाहे तो कुछ पदों को आंध्र प्रदेश के निवासियों के लिए आरक्षित कर सकती है, किंतु केवल तेलंगाना क्षेत्र के निवासियों के लिए नहीं, जो कि आंध्र प्रदेश का एक भाग है।

अनुच्छेद 16(4) [Article 16(4)]:

अनुच्छेद 16(4) अनुच्छेद 16(1) और 16(2) का दूसरा अपवाद है। इसमें राज्य को यह शक्ति दी गई है कि वह पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध कर सकेगा।

अनुच्छेद 16(4) संविधान के दून अनुच्छेदों में शामिल है जिन पर न्यायालयों में सबसे अधिक प्रश्न उठे हैं। ऐसे प्रमुख प्रश्न तथा उनसे संबंधित निर्णयों की अद्यतन स्थिति इस प्रकार है—

- I. पहला प्रश्न यह है कि 'पिछड़ा वर्ग' (Backward class) शब्दावली से क्या अर्थ निकलता है? संविधान में 'पिछड़े वर्ग' की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी गई है। अनुच्छेद 340 के तहत यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिए एक आयोग का गठन करेगा। आयोग विस्तृत अध्ययन करके राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश देगा कि किन वर्गों को पिछड़े वर्गों में शामिल किया जाना चाहिए। आयोग की रिपोर्ट के आधार पर सरकार घोषणा करेगी कि पिछड़े वर्गों में कौन से वर्ग शामिल हैं? न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि सरकार का यह निर्णय न्यायिक पुनरीक्षण या न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) से परे नहीं है। न्यायालय इस बात की जाँच कर सकता है कि कहीं यह वर्गीकरण अयुक्तियुक्त (Unreasonable) या मनमाना (Arbitrary) तो नहीं है?
- II. दूसरा प्रश्न यह है कि पिछड़े वर्गों के तहत कितने उपवर्ग (Sub-classes) बनाए जा सकते हैं? इनमें अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ तो निर्विवाद रूप से शामिल मानी गई हैं। इसके अलावा, अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs- Other backward classes) की एक कोटि भी बनाई गई है। मूल विवाद इस बात पर था कि क्या 'पिछड़े वर्गों' (Backward classes) तथा 'अधिक पिछड़े वर्गों' (More backward classes) में उपवर्गीकरण (Sub-classification) किया जा सकता है? 'बालाजी बनाम मैसूर राज्य' (1963) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे उप-वर्गीकरण को असंवैधानिक ठहराया था किंतु 'मंडल के मामले' अर्थात् 'इन्ड्रा साहनी बनाम भारत संघ' (1993) मामले में उसने निर्धारित किया कि पिछड़े वर्गों में से मलाईदार परत (Creamy Layer) को निकालने के लिए 'पिछड़े वर्ग' और 'अधिक पिछड़े वर्ग' का वर्गीकरण जरूरी है ताकि अधिक पिछड़े वर्गों को ही आरक्षण का लाभ दिया जा सके।

- III. तीसरा प्रश्न यह था कि क्या महिलाओं को पिछड़े वर्गों में शामिल करके आरक्षण दिया जा सकता है? इस संबंध में अद्यतन स्थिति यही है कि अनुच्छेद 16(4) स्त्रियों के पक्ष में आरक्षण लागू करने की अनुमति नहीं देता। इसका मूल तर्क यह है कि सभी स्त्रियों को एक समरूपी समूह (Homogeneous Group) नहीं माना जा सकता अर्थात् कुछ महिलाएँ यदि पिछड़ेपन की शिकार हैं तो कुछ ऐसी भी हैं जिन्होंने पिछड़ेपन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को नहीं झेला है। अतः, जिन वर्गों को पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल किया जाता है, उनकी महिलाएँ तो पिछड़े वर्ग का आरक्षण ले सकती हैं; शेष महिलाएँ नहीं।

नारीवादी (Feminist) संगठनों तथा कई गैर-सरकारी संस्थाओं (NGOs- Non governmental organisations) ने इस बात पर बल दिया है कि स्त्रियाँ अपने-आप में एक पिछड़ा वर्ग हैं क्योंकि प्राचीन काल से ही समाज में उन्हें समान अधिकार नहीं मिलते रहे हैं। अतः उन्हें विशेष वर्ग मानकर आरक्षण दिया जाना चाहिए। अभी कई राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान आदि की लोक सेवाओं में उन्हें विशेष आरक्षण दिया भी जाने लगा है जिसे न्यायालय ने अवैध घोषित नहीं किया है। इसके अतिरिक्त, पंचायती राज संस्थाओं में उन्हें 33% आरक्षण 1993-94 से ही दिया जा रहा था जिसे 2009 के कैबिनेट निर्णय के बाद 50% करने का प्रस्ताव रखा गया है। कई राज्यों जैसे बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश आदि में उन्हें 50% आरक्षण देने की व्यवस्था की जा चुकी है। उत्तराखंड में तो पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को 55% आरक्षण दिया जा रहा है।

- IV. कुछ मामलों में कोशिश की गई कि आरक्षण का लाभ उच्च जातियों या विशेष धार्मिक समुदायों को दिया जाए। न्यायालय ने ऐसे सभी प्रयासों को असंवैधानिक घोषित किया है।

दिसंबर 2011 में केंद्र सरकार ने धार्मिक अल्पसंख्यकों के पिछड़े वर्गों के लिए 4.5% आरक्षण की घोषणा की है जो अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) के लिए निर्धारित 27% के भीतर ही एक उप-वर्ग के रूप में होगा। ऐसा मुख्यतः 'सन्तूर समिति' तथा 'रंगनाथ मिश्रा' आयोग की रिपोर्टों के आधार पर किया गया है।

गौरतलब है कि आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल आदि राज्यों में धार्मिक अल्पसंख्यकों, विशेषतः मुसलमानों के लिए आरक्षण की व्यवस्था पहले से ही की गई है। किंतु, न्यायालय की राय सामान्यतः धार्मिक आधार पर आरक्षण देने को खिलाफ रही है।

भी आधार बनाया जाना चाहिए। तब भी, यदि किसी विशेष जाति के 90 प्रतिशत या अधिक सदस्य सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हों तो उसे पिछड़े वर्ग में शामिल किया जा सकता है।

किंतु, 'मण्डल के मामले' अर्थात् 'इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ' (1993) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि पिछड़े वर्गों का निर्धारण जाति के आधार पर किया जा सकता है। जाति भी एक 'सामाजिक वर्ग' (Social class) है और यदि वह पिछड़े वर्गों की कसौटियों को पूरा करता है तो अनुच्छेद 16(4) के प्रयोजन के लिए उसे पिछड़ा वर्ग माना जा सकता है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जाति व्यवस्था भारत में सिर्फ हिंदुओं तक सीमित नहीं है, वह अन्य समुदायों जैसे मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों में भी विद्यमान है। यदि इन समुदायों में कोई जाति पिछड़ेपन के मानकों पर खरी उतरती है तो उसे भी अनुच्छेद 16(4) के तहत आरक्षण के लिए अर्ह (Eligible) माना जाएगा।

इसी निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि 'आर्थिक आधार' पर आरक्षण की धारणा उचित नहीं मानी जा सकती अर्थात् किसी समूह के गरीब होने को आरक्षण का पर्याप्त आधार नहीं माना जा सकता। गौरतलब है कि श्री पी.वी. नरसिंह राव की सरकार ने 13 अगस्त, 1991 को एक कार्यपालिका आदेश (Executive order) जारी करके 10% पद उच्च जातियों के आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए भी आरक्षित कर दिए थे। जब यह मामला उच्च न्यायालय में उठा तो इसमें निहित संवैधानिक महत्व के प्रश्नों को देखते हुए इसे 9 न्यायाधीशों की संविधानपीठ (Constitutional bench) को सौंप दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बार-बार स्थगन दिए जाने के बावजूद केंद्र सरकार ने आधार स्पष्ट नहीं कर पाई जो 'आर्थिक आरक्षण' को न्यायोचित सिद्ध कर सके। इसके अलावा, आर्थिक आधार पर आरक्षण देने में बहुत सी व्यावहारिक समस्याएँ भी उठ सकती थीं। संभवतः इन सभी कारणों ने सर्वोच्च न्यायालय को बाध्य किया कि वह 'सिर्फ आर्थिक आधार' पर आरक्षण के औचित्य को अस्वीकार करे।

VI. अनुच्छेद 16(4) से जुड़ा संवैधानिक विवाद स्पष्ट प्रश्न यह रहा है कि आरक्षण की अधिकतम सीमा क्या हो सकती है? इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने 'बालाजी बनाम मैसूर राज्य' (1963) के मामले में मैसूर राज्य द्वारा दिए गए 68% आरक्षण को असंवैधानिक घोषित करते हुये निर्धारित किया था कि आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत तक होनी चाहिए। न्यायालय का विचार था कि आरक्षण सामान्यतः 40 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, किन्तु यह 50 प्रतिशत से कितना कम हो, इसका निर्णय किसी भी मामले की विशिष्ट परिस्थितियों और तथ्यों के अनुसार होगा। 'मण्डल के मामले' अर्थात् 'इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ' (1993) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सामान्यतः इसी विचार पर कायम रहते हुए निर्धारित किया कि आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए किन्तु यह मान लिया कि विशिष्ट परिस्थितियों विशेषतः दूर-दराज के राज्यों जैसे मणिपुर, नागालैंड आदि में 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण लागू किया जा सकता है।

किंतु, कई राज्यों ने आरक्षण की अधिकतम सीमा को स्वीकार करने में अरुचि का प्रदर्शन किया है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में आरक्षण तब सीमा से ज्यादा था किन्तु उसने आरक्षण को कम करने के स्थान पर 'तमिलनाडु (आरक्षण आदि) अधिनियम, 1994' को लागू करके आरक्षण 69 प्रतिशत तक करने का विधेयक प्रारित कर दिया। राष्ट्रपति ने इस अधिनियम को अपनी सहमति भी दे दी तथा '76वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1994' पारित करके तमिलनाडु के उक्त अधिनियम को 9वीं अनुसूची में शामिल कर दिया ताकि उसे न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सके।

VII. आरक्षण की अधिकतम सीमा से जुड़ा हुआ एक और विवाद 'आगे ले जाने के नियम' या 'अग्रनयन नियम' (Carry forward rule) से संबंधित है। सरकार ने पिछड़े वर्गों के आरक्षण के संबंध में एक नियम बनाया था कि यदि पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित पदों को भरने के लिए पर्याप्त संख्या में उम्मीदवार नहीं मिलते हैं तो इन रिक्त स्थानों को 'सामान्य वर्ग' (General category) से नहीं भरा जाएगा, बल्कि इन्हें अगले वर्ष पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित पदों की संख्या में जोड़ दिया जाएगा। ऐसा दो वर्षों तक किया जा सकेगा और यदि उसके बाद भी ये पद नहीं भर पाते तो इन्हें 'अनारक्षित' (Unreserved) या 'सामान्य श्रेणी' (General category) में बदल दिया जाएगा। इसी नियम को 'आगे ले जाने का नियम' या 'अग्रनयन नियम' (Carry forward rule) कहा गया। इस नियम की वैधता पर 'देवदासन बनाम भारत संघ' (1964) के मामले में विचार किया गया। वादी का आरोप था कि पिछड़े वर्गों को मिलने वाला 17.5% आरक्षण यदि 'अग्रनयन नियम' (Carry forward rule) के तहत लाया जाता है तो व्यावहारिक स्तर पर आरक्षण लगभग 68% हो जाएगा जो कि अनुच्छेद 16(4) के अंतर्गत आरक्षण की सीमा से अधिक है। सर्वोच्च न्यायालय ने 'देवदासन बनाम भारत संघ' (1964) के निर्णय में यह स्पष्ट कर दिया कि 'अग्रनयन नियम' (Carry forward rule) के तहत लाया गया आरक्षण अनुच्छेद 16(4) के अंतर्गत आरक्षण की सीमा से अधिक नहीं हो सकता है।

किंतु, 'मंडल के मामले' अर्थात् 'इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ मामले' (1993) में सर्वोच्च न्यायालय ने 'देवदासन बनाम भारत संघ' (1964) मामले के निर्णय को पलटते हुए घोषित किया है कि 'अग्रनयन नियम' (Carry forward rule) संवैधानिक है किंतु अग्रनयन सहित कुल आरक्षण किसी एक वर्ष में कुल रिक्तियों के 50% से अधिक नहीं होना चाहिए। 50% का नियम कुल संख्याबल या किसी काठर की कुल संख्या पर नहीं बल्कि प्रत्येक वर्ष होने वाली नियुक्तियों पर लागू होता है।

संसद ने सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय को शून्य करने के लिए '81वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2000' पारित किया तथा उसके माध्यम से संविधान के अनुच्छेद 16(4) के भीतर एक नया उपखंड 16(4-ख) अंतःस्थापित किया। इस संशोधन के माध्यम से यह उपबंध किया गया कि आरक्षित वर्गों के लिए घोषित किए गए किन्हीं पदों पर यदि नियुक्ति नहीं हो पाती है तो इन बकाया नियुक्तियों को एक अलग वर्ग माना जाएगा तथा अगले वर्षों में इन्हें कुल रिक्तियों की 50% सीमा की गणना से अलग रखा जाएगा, चाहे इनके कारण कुल आरक्षण 50% से अधिक हो जाए।

VIII. विवाद का अगला मुद्दा यह है कि आरक्षण देते समय संबंधित वर्ग में शामिल उन व्यक्तियों के साथ क्या व्यवहार किया जाना चाहिए जो शेष व्यक्तियों से बेहतर स्थिति में हैं। ऐसे व्यक्तियों के समूह को ही मलाईदार परत (Creamy Layer) कहा जाता है। 'बालाजी बनाम मैसूर राज्य' (1963) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पिछड़े वर्गों के भीतर उप-वर्गीकरण (Sub-classification) को अवैध घोषित किया था किंतु 'मंडल के मामले' अर्थात् 'इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ' (1993) में उसने उपवर्गीकरण को जरूरी बताया क्योंकि ऐसा नहीं करने पर पिछड़े वर्गों में शामिल संपन्न लोग आरक्षण का सरा लाभ उठा सकते हैं। न्यायालय ने घोषित किया है कि मलाईदार परत (Creamy Layer) को बाहर निकाले बिना यदि आरक्षण दिया जाता है तो वह अवैध माना जाएगा।

इसके बाद प्रायः प्रही स्थिति है कि अन्य पिछड़े वर्गों में से मलाईदार परत को बाहर निकालना जरूरी है। किंतु, एक प्रश्न बचा ही था कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के मामले में मलाईदार परत का नियम लागू होगा या नहीं? आपत्त पर सरकार ने यह नियम अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के मामले में लागू नहीं किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने 'ई.वी. वेङ्गैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' (2005) के मामले में निर्धारित किया था कि अनुसूचित जातियों में उपवर्गीकरण नहीं किया जा सकता। किंतु, हाल ही में 'एम. नागराज बनाम भारत संघ' (2006) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने निर्धारित किया है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों की राजकीय सेवाओं में प्रोन्नति में आरक्षण देते समय मलाईदार परत को बाहर निकालना जरूरी होगा। इस प्रश्न पर गतिरोध अभी भी जारी है।

IX. अनुच्छेद 16(4) से जुड़ा एक विवादस्पद मुद्दा यह भी था कि इस अनुच्छेद के आधार पर राजकीय सेवकों की प्रोन्नति (Promotion) के मामले में भी आरक्षण दिया जा सकता है या नहीं? न्यायालय ने कई मामलों में निर्धारित किया था कि अनुच्छेद 16(4) सिर्फ प्रारंभिक नियुक्ति (Initial appointment) तक ही सीमित नहीं है, इसके अंतर्गत प्रोन्नति (Promotion) में भी आरक्षण दिया जाना शामिल है।

किंतु, 'इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ मामले' (1993) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पहले के निर्णयों को पलटते हुए निर्धारित किया है कि आरक्षण सिर्फ आरंभिक नियुक्ति तक ही सीमित है, प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता। इसका तर्क यह था कि प्रोन्नति में आरक्षण देने से संविधान के अनुच्छेद 335 में बताए गए 'प्रशासनिक कार्यकुशलता' (Administrative efficiency) के उद्देश्य को नुकसान पहुँचता है।

सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के बावजूद केंद्र सरकार प्रोन्नतियों में आरक्षण की व्यवस्था को बनाए रखना चाहती थी। इसलिए उसने इस निर्णय की व्याख्या इस प्रकार की कि यह निर्णय सिर्फ अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) के मामले में लागू होता है, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के मामले में नहीं।

अपने इसी रुख पर कायम रहते हुए संसद ने '77वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1995' पारित किया तथा इसके माध्यम से अनुच्छेद 16(4) के अंतर्गत एक नया उपखंड 16(4)(क) अंतःस्थापित किया। इस संशोधन अधिनियम में व्यवस्था की गई कि अनुच्छेद 16 में कही गई कोई भी बात राज्य को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रोन्नति में आरक्षण का प्रावधान करने से नहीं रोकेंगी।

सर्वोच्च न्यायालय ने 'एम. नागराज बनाम भारत संघ' मामले (2006) में निर्धारित किया है कि संविधान का 77वाँ संशोधन अधिनियम संवैधानिक है। न्यायालय ने कहा है कि राज्य अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के 'प्रोन्नति' से जुड़े मामलों में आरक्षण कर सकता है किंतु उसे ऐसे हर मामले में निश्चित तथा गणनीय आँकड़े

- X. प्रोन्नतियों से जुड़े आरक्षण के संबंध में एक विवाद यह भी था कि यदि किसी कर्मचारी को आरक्षण के माध्यम से प्रोन्नति मिलती है तो क्या उसे उसके साथ पारिणामिक ज्येष्ठता (Consequential seniority) भी प्राप्त होगी? 'भारत संघ बनाम वीरपाल सिंह चौहान' (1995) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया कि प्रोन्नतियों में आरक्षण सिर्फ इसलिए दिया जाता है ताकि सभी स्तरों के पदों पर विभिन्न वर्गों का अनुपात समुचित रहे। इसका यह अर्थ नहीं है कि आरक्षण के आधार पर प्रोन्नति मिलने पर वह व्यक्ति अपने समकक्षों (Equivalents) या ज्येष्ठों (Seniors) से आगे निकल जाता है। ज्येष्ठता (Seniority) का निर्धारण प्रोन्नति की तिथि (Date of promotion) से नहीं होगा बल्कि आरंभिक नियुक्ति की तिथि (Date of initial appointment) से होगा।

संसद इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से सहमत नहीं थी। इसलिए उसने '85वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2001' पारित किया तथा अनुच्छेद 16(4)(क) जिसे 77वें संशोधन के माध्यम से अंतःस्थापित करके अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गई थी; में 'पारिणामिक ज्येष्ठता (Consequential seniority) के साथ' चाक्यांश को अंतःस्थापित कर दिया। इस संशोधन को भूतलक्षी प्रभाव (Retrospective effect) से लागू करते हुए 17 जून, 1995 से प्रवृत्त किया गया जिस दिन '77वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' लागू हुआ था।

'एम. नागराज बनाम भारत संघ' (2007) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया है कि 85वाँ संविधान संशोधन अधिनियम संवैधानिक (Constitutional) है।

- XI. कुछ मामलों में यह प्रश्न उठा कि क्या राज्य के अधीन सभी तरह के पदों को आरक्षण के अनुसार भरे जाने की बाध्यता है या कुछ विशेष क्षेत्रों में आरक्षण को खारिज करके सिर्फ योग्यता को आधार बनाया जा सकता है? सर्वोच्च न्यायालय ने 'डॉ. पी.वी. श्रीवास्तव बनाम मध्य प्रदेश राज्य' (1999) के मामले में निर्धारित किया है कि मैडिकल तथा इंजीनियरिंग कॉलेजों के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों (Postgraduate courses) में प्रवेश सिर्फ योग्यता के आधार पर ही दिया जा सकता है। आरक्षण के आधार पर नहीं। इसी प्रकार, कुछ अन्य मामलों में भी सर्वोच्च न्यायालय ने सलाह दी है कि विज्ञान तकनीक के अनुसंधानपूर्ण अध्ययन या उच्च तकनीकी प्रकृति वाले क्षेत्रों में आरक्षण दिया जाना उचित नहीं है। नाभिकीय विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, प्रतिरक्षा (Defence) से संबंधित अनुसंधान आदि इसी तरह के क्षेत्र हैं। वर्तमान में उच्च शिक्षा, उच्च न्यायपालिका, सेना, खेल आदि क्षेत्रों में प्रायः आरक्षण नहीं दिया जाता है।

अनुच्छेद 16(5) [Article 16(5)]:

अनुच्छेद 16(5) अनुच्छेद 16(1) और (2) का तीसरा अपवाद है। अनुच्छेद 16(2) में जिन सात आधारों पर भेदभाव वर्जित किया गया है, उनमें से एक 'धर्म' (Religion) है। अनुच्छेद 16(5) यह प्रावधान करता है कि राज्य किन्हीं धार्मिक या सांप्रदायिक संस्थाओं (Religious Institutions) के प्रबंधन के लिए उस धर्म या संप्रदाय के अनुयायियों की ही नियुक्ति का उपबंध कर सकता है और शेष धर्मों तथा संप्रदायों के अनुयायियों को ऐसे नियोजन में अवसर की समानता से वंचित कर सकता है।

अनुच्छेद 17 (Article 17)

अनुच्छेद 17 समता के अधिकार को एक विशेष क्षेत्र में लागू करता है। इसके माध्यम से हिंदू समाज में बहुत समय से चली आ रही अस्पृश्यता (Untouchability) की कुरीति के अंत की घोषणा की गई है। अनुच्छेद 17 में की गई घोषणा इस प्रकार है—

“अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता (Disability) को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।”

अनुच्छेद 17 के साथ पढ़े जाने पर अनुच्छेद 35 संसद को यह शक्ति देता है कि वह अस्पृश्यता के आचरण हेतु दण्ड निर्धारित करने के लिए विधि का निर्माण करे। इस शक्ति का प्रयोग करते हुये संसद ने 1955 में 'अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955' [The Untouchability (offences) Act, 1955] का निर्माण किया। 1976 में इस अधिनियम का संशोधन किया गया तथा इसका नाम 'सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955' (Civil Rights Protection Act, 1955) कर दिया गया।

3. किसी दुकान, भोजनालय या सार्वजनिक मनोरंजन के किसी स्थान पर किसी व्यक्ति को प्रवेश से रोकना।

4. किसी पार्क, जलाशय, नल या सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करने वाले किसी अन्य स्थान के प्रयोग से किसी व्यक्ति को वंचित करना।

1976 में इस अधिनियम का संशोधन करते हुए इसका क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया तथा निम्नलिखित आचरणों को भी इसके अंतर्गत अपराध घोषित किया गया—

1. अनुसूचित जाति के किसी सदस्य का अस्पृश्यता के आधार पर अपमान करना।
2. प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अस्पृश्यता का उपदेश देना।
3. इतिहास, दर्शन या धर्म को आधार बनाकर या किसी अन्य आधार पर अस्पृश्यता को न्यायोचित ठहराना।

1976 के संशोधन के बाद इस अपराध हेतु दण्ड भी बढ़ा दिया गया है। पहले ऐसे अपराध के लिए अधिकतम 6 महीने के कारावास का प्रावधान था जबकि अब इसकी सीमा 1-2 वर्ष है। यह उपबंध भी किया गया है कि जो व्यक्ति अस्पृश्यता के आचरण का दोषी सिद्ध होगा, वह संसद या किसी भी राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अर्ह (Eligible) नहीं होगा। इसके अलावा, लोकसेवक (Public servant) की यह जिम्मेदारी होगी कि वह ऐसे अपराधों की जाँच करे एवं समुचित कार्यवाही करे। यदि कोई लोकसेवक उक्त अधिनियम के अंतर्गत किए गए अपराधों की जाँच करने में जान-बूझकर कोताही बरतता है तो यह माना जाएगा कि वह ऐसे अपराध को प्रेरित करता है।

इस संबंध में एक विशिष्ट बात यह भी है कि यदि अनुसूचित जाति का कोई सदस्य अस्पृश्यता पर आधारित किसी विभेद का शिकार होता है तो न्यायालय ऐसे मामले को सुनवाई करते हुए यह पूर्वमान्यता (Presumption) लेकर चलेगा कि उक्त कृत्य अस्पृश्यता के आधार पर ही किया गया है। यह सिद्ध करने का दायित्व अभियुक्त (Accused) पर होगा कि उसने अस्पृश्यता पर आधारित आचरण नहीं किया है। कर्त्तव्य यहाँ यह कहें तो सिद्ध करने का दायित्व (Onus of Proof) अभियुक्त पर होगा, न कि वादी (Complainant) पर। यह भारतीय न्यायप्रणाली की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रावधान है क्योंकि भारत में सामान्यतः 'सिद्ध करने का दायित्व' (Onus of proof) वादी (Complainant) पर होता है और न्यायालय पूर्वमान्यता (Presumption) लेकर चलता है कि अपराध नहीं हुआ है। अस्पृश्यता से जुड़े मामलों में इस नियम को छोड़ दिया गया है ताकि वंचित वर्गों (Deprived classes) को विशेष सुरक्षा प्रदान की जा सके।

अनुच्छेद 18 (Article 18)

अनुच्छेद 18 उपाधियों के अंत (Abolition of titles) की घोषणा करता है। उपाधि (Title) एक ऐसी संज्ञा होती है जो किसी व्यक्ति के नाम के साथ जुड़ी होती है और उसे जनसाधारण की तुलना में विशिष्ट सिद्ध करती है। इंग्लैंड जैसे देशों में 'लॉर्ड', 'ड्यूक', 'नाइट', 'अल' तथा 'बैरन' जैसी उपाधियाँ दी जाती रही हैं क्योंकि इंग्लैंड लंबे समय तक एक 'राजतंत्र' (Monarchy) रहा है और 17वीं सदी के अंत में संवैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) बन जाने के बाद भी वहाँ राजतंत्र (Monarchy) और सामंतवाद (Feudalism) के कई अवशेष बचे हुए हैं। भारत में भी स्वतंत्रता-पूर्व के दौर में कई उपाधियाँ दिए जाने का प्रचलन था, जैसे— 'सर', 'हिज्र हाइनस', 'राय बहादुर', 'रायसाहब', 'राज' और 'दीवान-बहादुर'। ऐसी उपाधियाँ आमतौर पर वंशानुगत (Hereditary) होती हैं तथा समाज में विभक्तता पैदा करती हैं। चूँकि अंग्रेजों ने उपाधियों का मनमाना उपयोग करते हुए भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को कथजोर करने का प्रयास किया था, इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ही भारतीय जनमानस में सहमति बन गई थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उपाधियों का अंत कर दिया जाए। अनुच्छेद 18 इसी पूर्व-सहमति की घोषणा है।

अनुच्छेद 18 के अंतर्गत चार खंड हैं जिनमें निम्नलिखित उपबंध दिए गए हैं—

1. अनुच्छेद 18(1) : राज्य, सेना या विद्या संबंधी सम्मान (Military or academic distinction) के सिवाय कोई अन्य उपाधि प्रदान नहीं करेगा।
2. अनुच्छेद 18(2) : भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई भी उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

अनुच्छेद 18 के विभिन्न खंडों को ध्यान से पढ़कर यह समझा जा सकता है कि—

1. उपाधियाँ देने से संबंधित प्रतिबंध केवल राज्य पर लागू होता है। अन्य सार्वजनिक संस्थाएँ उपाधियाँ या सम्मान दे सकती हैं।
2. राज्य को सेना या विद्या के क्षेत्र में उपाधियाँ देने से नहीं रोका गया है, चाहे उनका प्रयोग नाम के साथ ही क्यों न किया जाए।
3. राज्य को किसी व्यक्ति के सामाजिक योगदान को देखते हुए उसे सम्मान देने से नहीं रोका गया है। शर्त यह है कि उस सम्मान का प्रयोग उपाधि की तरह न हो।

स्वतंत्रता के कुछ वर्षों के पश्चात् 1954 ई. में भारत सरकार ने 4 अलंकरण देने की व्यवस्था शुरू की जिन्हें 'भारत रत्न', 'पद्म विभूषण', 'पद्म भूषण' तथा 'पद्मश्री' कहा जाता है। इनमें 'भारत रत्न' कला, साहित्य या विज्ञान की अभिवृद्धि के लिए की गई विशिष्ट सेवा के लिए दिया जाता है जबकि शेष तीनों किसी भी क्षेत्र में की गई विशिष्ट सेवाओं, जिनमें सरकारी सेवकों द्वारा की गई सेवाएँ भी शामिल हैं, के लिए दिये जाते हैं। यद्यपि ये अलंकरण सिर्फ सम्मान के रूप में थे और यह माना जा रहा था कि इन्हें उपाधियों की तरह नाम के साथ प्रयुक्त नहीं किया जाएगा, तब भी कुछ लोगों ने ऐसे सम्मानों का विरोध इस आधार पर किया कि इनसे संविधान के अनुच्छेद 18 का उल्लंघन होता है। जब 1977 में मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्रित्व में जनता पार्टी की सरकार बनी तो इन सभी अलंकरणों को देना बंद कर दिया गया। 1980 में श्रीमती इंदिरा गांधी के सत्ता में लौटने पर यह परंपरा फिर शुरू हो गई।

इस मुद्दे पर न्यायालयों में भी बहस हुई। *बालाजी बनाम भारत संघ* मामले (1996) में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि भारत रत्न आदि राष्ट्रीय अलंकरण अनुच्छेद 18(1) में प्रयुक्त 'उपाधि' के अर्थ के अनुसार उपाधियाँ नहीं हैं, इसलिए केंद्र सरकार द्वारा ऐसी उपाधियाँ देना संवैधानिक है। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि इन अलंकरणों से सम्मानित व्यक्तियों को यह अधिकार नहीं है कि वे इन सम्मानों को उपाधि की तरह अपने नाम के पहले या बाद में प्रयुक्त करें।

गौरतलब है कि संविधान में अनुच्छेद 18 के उपबंधों का उल्लंघन करने वाले के विरुद्ध किसी प्रकार के दंड का प्रावधान नहीं किया गया है। संसद को अनुच्छेद 35 के तहत यह शक्ति प्राप्त है कि वह दंड निर्धारित करने के लिए विधि बनाए, किंतु अभी तक संसद ने ऐसी कोई विधि नहीं बनाई है।

अभी 2011 के अंत में 'भारत रत्न' सम्मान देने की कसौटियाँ बंदली गई हैं ताकि कला, साहित्य और विज्ञान के अलावा अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले व्यक्तियों को भी इस सम्मान के लिए अर्ह (Eligible) बनाया जा सके। माना जा रहा है कि यह परिवर्तन कुछ प्रहान खिलाड़ियों जैसे ध्यानचंद और सचिन तेंदुलकर को भारत रत्न देने के लिए किया गया है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

Unit: 6.3

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14 में प्रयुक्त वाक्यांश 'विधि के समक्ष समता' कहाँ से लिया गया है?

- (1) अमेरिका।
- (2) आयरलैंड।
- (3) ब्रिटेन।
- (4) स्विट्जरलैंड।

2. 'विधियों का समान संरक्षण' वाक्यांश, जिसका वर्णन भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14 में किया गया है, लिया गया है-

- (1) अमेरिकी संविधान से।
- (2) ब्रिटिश संविधान से।
- (3) दक्षिण अफ्रीका के संविधान से।
- (4) ऑस्ट्रेलिया से।

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) 'विधि के समक्ष समता' एक नकारात्मक अभिव्यक्ति है जिसका अर्थ कानून के सामने विभिन्न व्यक्तियों में विभेद नहीं करना है।
- (ii) 'विधियों का समान संरक्षण' एक सकारात्मक अभिव्यक्ति है जो व्यक्तियों की विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर कानून बनाने व लागू करने की सकालत करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

4. 'विधि के शासन' की अवधारणा दी गयी है-

- (1) अब्राहम लिंकन द्वारा।
- (2) मॉन्टेस्क्यू द्वारा।
- (3) जॉर्ज वाशिंगटन द्वारा।
- (4) डायसी द्वारा।

5. विधि के शासन के लक्षण के अन्तर्गत सम्मिलित तत्व हैं-

- (i) विधि की सर्वोच्चता

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान में भारत के राज्य क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वे नागरिक हों या गैर-नागरिक, को विधि के समक्ष समता का अधिकार उपलब्ध है।
- (ii) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में 'प्राकृतिक न्याय' अथवा 'नैसर्गिक न्याय' (Natural justice) का सिद्धांत निहित है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अनुच्छेद-14 में निहित 'विधि का शासन' भारतीय संविधान के आधारभूत लक्षणों में शामिल है।
- (ii) भारत की संसद अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन करके अनुच्छेद-14 में निहित विधि के शासन के मूल भाव को न्यून नहीं कर सकती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14 में वर्णित 'समानता' में निहित तत्व हैं-

- (i) राज्य द्वारा मनमाने तरीके से व्यक्तियों में विभेद पर प्रतिबंध।
- (ii) राज्य द्वारा व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों में व्यक्तिगत वर्गीकरण पर निषेध।
- (iii) देश के सभी व्यक्तियों पर पूर्णतः समान कानून लागू किया जाना।
- (iv) प्रत्येक व्यक्ति को कानूनों तक समान पहुँच।

कट-

(4) (i), (ii), (iii) और (iv)

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) विदेशी राजनयिकों, शासकों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ व उसकी एजेंसियों को भारतीय न्यायालयों की सिविल व आपराधिक अधिकारिता से उन्मुक्ति प्राप्त है।
- (ii) भारत के राष्ट्रपति के खिलाफ, उनके कार्यकाल के दौरान, किसी भी न्यायालय में आपराधिक मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता परन्तु वे अपने कार्यकाल के दौरान लिए गए कार्य संबंधी निर्णय के लिए न्यायालय के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) यदि कोई विधि अनुच्छेद-39(ख) या 39(ग) में दिए गए निर्देशक तत्वों के पक्ष में बनाई गई है तो उसे अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता।
- (ii) यदि कोई पीठिया संसद के किसी सदन या राज्य विधानमंडल के किसी सदन की कार्यवाही का सत्य प्रकाशन करता है तो उस पर देश के किसी न्यायालय में सिविल या आपराधिक मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. संसद सदस्यों को दिये गए विशेषाधिकार का संबंध है—

- (1) अनुच्छेद-361 से।
- (2) अनुच्छेद-105 से।
- (3) अनुच्छेद-174 से।
- (4) अनुच्छेद-361(क) से।

12. अनुच्छेद 15(1) के अनुसार राज्य निम्नांकित में से किस आधार पर विभेद नहीं करेगा?

- (i) धर्म।
- (ii) जाति।

(iii) निवास-स्थान

(iv) मूलवंश।

(v) लिंग

कूट—

- (1) (i), (ii), (iii), (iv)
- (2) (ii), (iii), (iv), (v)
- (3) (ii), (iii), (iv), (v)
- (4) (i), (ii), (iii), (iv), (v)

13. यदि कोई राज्य सरकारी नौकरियों में पुरुष और नारी डम्मीद्वारा के समान रूप से अर्ह (Eligible) होने की स्थिति में महिलाओं को प्राथमिकता या वरीयता देता है, तो उच्चतम न्यायालय के अनुसार राज्य का वह कार्य माना जाएगा—

- (1) आरक्षण।
- (2) सकारात्मक कार्यवाही।
- (3) समता के अधिकार का उल्लंघन।
- (4) भेद-भाव पूर्ण व्यवहार।

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अनुच्छेद 15(5) के अनुसार राज्य अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षण संस्थाओं सहित सभी सरकारी या निजी शिक्षण संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों या अन्य पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों को दाखिले में आरक्षण दे सकता है।
- (ii) अनुच्छेद 15(5) को संविधान के 93वें संशोधन अधिनियम 2007 के माध्यम से अंतः स्थापित किया गया है।

उपरोक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद-16 का विस्तार सरकारी सहित गैर-सरकारी संस्थाओं या निजी क्षेत्र की कंपनियों द्वारा दिये जाने वाले पदों तक है।
- (ii) अनुच्छेद-16 का अधिकार केवल उन मामलों में लागू होता

है जहाँ राज्य द्वारा 'नौकरी' (Employment) दी जा रही है।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

16. अनुच्छेद-16 में विभेद को निषेधित करने वाले आधार हैं—

- (i) वंशक्रम (Descent)।
- (ii) निवास-स्थान।
- (iii) जन्म-स्थान।
- (iv) मूलवंश (Race)।

कूट—

- (1) (i) और (ii)
- (2) (iii) और (iv)
- (3) (ii) और (iv)
- (4) उपरोक्त सभी

17. अनुच्छेद 16(4) लागू होने के लिए शर्तें हैं—

- (i) वर्ग पिछड़ा हुआ होगा चाहिए।
- (ii) राज्य की राय में उस वर्ग को राज्य के अधीन पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व न मिला हो।

कूट—

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद-340 के तहत यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिए एक आयोग का गठन करेगा।

- (ii) आयोग की रिपोर्ट के आधार पर सरकार पिछड़े वर्गों में शामिल वर्ग की घोषणा करेगी तथा सरकार का यह निर्णय

न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर होगा।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

19. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) 'सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955' का संबंध संविधान के अनुच्छेद-17 से है।
- (ii) इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि जो व्यक्ति अस्पृश्यता के आचरण का दोषी सिद्ध होगा, वह संसद या किसी भी राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अर्ह (Eligible) नहीं होगा।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

20. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-18 के अन्तर्गत समाविष्ट तत्व हैं—

- (i) भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई भी उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।
- (ii) राज्य, सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाय कोई अन्य उपाधि प्रदान नहीं करेगा।

कूट—

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

स्वतंत्रता का अधिकार: अनुच्छेद 19-22

(Right to Freedom: Article 19-22)

संविधान के अनुच्छेद 19-22 के सपूह को 'स्वातंत्र्य-अधिकार' (Right to freedom) शीर्षक के अंतर्गत रखा गया है। इन चारों अनुच्छेदों की विषयवस्तु संक्षेप में इस प्रकार है-

- अनुच्छेद 19 - अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित छह अधिकार (Six rights including the freedom of expression)
- अनुच्छेद 20 - अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण (Protection in respect of conviction for offences)
- अनुच्छेद 21 - प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (Protection of life and personal liberty)
- अनुच्छेद 22 - कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (Protection against arrest and detention in certain cases)

अनुच्छेद 19: अभिव्यक्ति व अन्य स्वतंत्रताएँ (Article 19: Expression & other freedoms)

अनुच्छेद 19 भारतीय संविधान के सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेदों में से एक है। इसमें नागरिकों को प्रदान की गई छह स्वतंत्रताओं का उल्लेख है। संविधान के निर्माण के समय इसमें सात स्वतंत्रताएँ शामिल की गई थीं, किंतु 'असह संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' द्वारा अनुच्छेद 19(1)(च) में वर्णित 'संपत्ति के अर्जन, धारण और व्यय के अधिकार' (Right to acquire, hold and dispose off property) को हटा दिया गया था।

अनुच्छेद 19 के अंतर्गत छह खण्ड हैं: 19(1) से 19(6) तक। इनमें से 19(1) में छह उपखण्ड हैं: 19(1)(क) से 19(1)(छ) तक। ये मूलतः 7 थे किंतु इनमें से 19(1)(च) को 44वें संशोधन द्वारा हटा दिया गया था। अनुच्छेद 19(1) के विभिन्न उपखण्डों में 6 प्रकार की स्वतंत्रताएँ घोषित की गई हैं जबकि 19(2) से 19(6) तक वे 'युक्तियुक्त निबंधन' (Reasonable Restrictions) घोषित किये गये हैं जिनके आधार पर राज्य अनुच्छेद 19(1) के अंतर्गत दी गई स्वतंत्रताओं पर रोक लगा सकता है।

अनुच्छेद 19(1) के अंतर्गत दिए गए मूल अधिकार तथा उन पर लगाए गए युक्तियुक्त निबंधन (Reasonable restrictions) का वर्गीकरण इस प्रकार है-

अनुच्छेद व खंड	अधिकार का नाम	युक्तियुक्त निबंधन हेतु प्रयुक्त खंड
19(1)(क) [(19(1)(A))]	भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of speech and expression)	19(2)
19(1)(ख) [(19(1)(B))]	शांतिपूर्ण तथा हथियाररहित सम्मेलन का अधिकार (Right to assemble peaceably and without arms)	19(3)
19(1)(ग) [(19(1)(C))]	संगम या संघ या सहकारी समिति बनाने का अधिकार (Right to form associations or unions or cooperative societies)	19(4)
19(1)(घ) [(19(1)(D))]	भारत के राज्यक्षेत्र में अबाध संचरण का अधिकार (Right to move freely throughout Indian territory)	19(5)
19(1)(ङ)	भारत के किसी भाग में निवास करने व आने जाने का अधिकार	19(6)

युक्तियुक्त निर्बंधन की धारणा (Concept of Reasonable Restrictions):

युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable Restrictions) वे समुचित सीमाएँ हैं जो स्वतंत्रता के अधिकार पर राज्य द्वारा लागू की जा सकती हैं।

भारतीय संविधान निर्माता न तो इंग्लैंड की तरह संसद को ऐसी आत्यंतिक शक्ति देना चाहते थे कि व्यक्ति की स्वतंत्रता कभी भी छीनी जा सके और न ही अमेरिका की तरह व्यक्ति के अधिकारों को ऐसा आत्यंतिक रूप देना चाहते थे कि राज्य लोकहित (Public interest) में भी व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सीमित न कर सके। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में इन निर्बंधनों की आवश्यकता को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया था—

“हम मूल अधिकारों को आत्यंतिक शब्दावली में रखकर उच्चतम न्यायालय से यह अपेक्षा कर सकते हैं कि वह संसद की सहायता करने के लिए 'पुलिस शक्ति के सिद्धांत' का आविष्कार करे। किंतु, हमने यह मार्ग नहीं अपनाया। हमारा संविधान राज्य को मूल अधिकारों पर मर्यादाएँ लगाने की अनुमति सीधे-सीधे प्रदान करता है।”

कोई निर्बंधन युक्तियुक्त है या नहीं— यह एक जटिल प्रश्न है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों ने कई महत्वपूर्ण मामलों में इस प्रश्न पर विचार करते हुए कुछ आधारभूत सिद्धांत निश्चित किए हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. युक्तियुक्तता (Reasonableness) को कोई सामान्य परिभाषा या ऐसी कसौटी नहीं बनाई जा सकती जो हर मामले में वस्तुनिष्ठ (Objective) रूप से लागू हो सके। इसका फैसला प्रत्येक मामले में तथ्यों के आधार पर ही हो सकता है।
2. कोई निर्बंधन युक्तियुक्त है या नहीं— यह अंतिम रूप से न्यायालय ही निर्धारित कर सकता है, विधानमंडल नहीं।
3. अनुच्छेद 19(1) में दत्त स्वतंत्रताओं पर कोई भी निर्बंधन अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) से (6) तक दिए गए प्रावधानों के आधार पर ही लगाया जा सकता है, किसी और आधार पर नहीं।
4. निर्बंधन तभी युक्तियुक्त होगा जब उसमें तथा उसे उद्देश्य में, जिसे विधानमंडल उसके द्वारा हासिल करना चाहता है, एक तर्कपूर्ण संबंध हो।
5. निर्बंधन की जितनी न्यूनतम मात्रा से लोकहित को हासिल किया जा सकता है, वह उतनी ही मात्रा में होना चाहिए। यदि निर्बंधन की मात्रा उससे ज्यादा है तो वह अनावश्यक रूप से नागरिकों की स्वतंत्रता सीमित करने के कारण असंवैधानिक माना जाएगा।
6. न्यायालय को 'युक्तियुक्तता' (Reasonableness) के निर्धारण में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण (Objective point of view) का प्रयोग करना चाहिए। न्यायाधीशों को अपनी व्यक्तिगत विचारधारा (Personal ideology) के अनुसार युक्तियुक्तता का फैसला करने से बचना चाहिए।
7. विशिष्ट स्थितियों में 'युक्तियुक्त निर्बंधन' का अर्थ 'निषेध' (Prohibition) भी हो सकता है अर्थात् विशेष परिस्थितियों में किसी अधिकार को पूर्णतः भी छीना जा सकता है। उदाहरण के लिए, श्चिंत्र्यों की खरीद-फरोख्त को व्यापार की स्वतंत्रता के अंतर्गत अनुज्ञात नहीं हो जा सकता, उसका संपूर्ण निषेध करना ही युक्तियुक्त है।
8. निर्बंधनों को मौलिक विधि (Substantive Law) तथा प्रक्रियात्मक विधि (Procedural Law) दोनों के अनुसार युक्तियुक्त होना जरूरी है अर्थात् 'प्रतिबंध क्या है' की युक्तियुक्तता के साथ 'प्रतिबंध लगाने की प्रक्रिया' भी युक्तियुक्त होनी चाहिए।
9. यदि कोई निर्बंधन 'राज्य नीति के निर्देशक तत्वों' (Directive principles of state policy) को हासिल करने के लिए लागू किया गया है तो इसे भी युक्तियुक्त माना जा सकता है।

गौरतलब है कि सर्वोच्च न्यायालय स्वतंत्रता पर लगाए जाने वाले निर्बंधनों की युक्तियुक्तता पर काफी कड़ा दृष्टिकोण अपनाता रहा है। इसलिए उसने यह भी स्पष्ट किया है कि युक्तियुक्त निर्बंधन की परीक्षा करते समय त्रिधि के 'प्रत्यक्ष और आवश्यक प्रभावों' को ही ध्यान में रखा जाएगा, न कि 'अप्रत्यक्ष, दूरगामी या संभावित प्रभावों' को।

अनुच्छेद 19(1)(क): भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

[Article 19(1)(a): Freedom of speech and expression]:

भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली का प्राणतत्व है। इसका अर्थ है— बोलकर, लिखकर,

सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के समक्ष जिन अनुच्छेदों से संबंधित सबसे अधिक मामले आए हैं, उनमें से एक अनुच्छेद 19(1)(क) भी है। न्यायालय की विभिन्न व्याख्याओं के माध्यम से इस अधिकार का अर्थ ज्यादा स्पष्ट होता गया है। ऐसे प्रमुख मामले तथा उनमें न्यायालय द्वारा की गई व्याख्याएँ इस प्रकार हैं—

1. पहला प्रश्न यह था कि 'अभिव्यक्ति' के अधिकार में 'अनभिव्यक्ति' का अधिकार अर्थात् 'चुप रहने का अधिकार' निहित है या नहीं? 'इमैनुअल बनाम केरल राज्य' (1986) के मामले में, जिसे 'शष्पगान मामले' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है, उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया है कि अनुच्छेद 19(1)(क) में प्रदत्त अभिव्यक्ति के अधिकार में अभिव्यक्ति नहीं करने अर्थात् चुप रहने का अधिकार भी शामिल है।
2. राष्ट्रीय ध्वज को अपने घर या कार्यालय परिसर में फहराना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अंतर्गत शामिल है— यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय ने 'भारत संघ बनाम नवीन जिंदल' (2008) के मामले में दिया। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि यह अधिकार आत्यंतिक (Absolute) नहीं है अर्थात् अनुच्छेद 19(2) में वर्णित आधारों पर इस पर व्यक्तिगत निर्बंधन (Reasonable restriction) लगाया जा सकता है।
3. अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के संबंध में एक रोचक सवाल यह भी उठा कि क्या 'बंद' (Bandh) या 'हड़ताल' (Strike) आदि का आह्वान करना किसी व्यक्ति या राजनीतिक दल को प्राप्त 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का ही एक रूप माना जा सकता है? इससे जुड़े हुए कई मामले न्यायालय को पास आए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण मामले अर्थात् 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) बनाम भारत सरकार' (1998) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि राजनीतिक दलों द्वारा 'बंद' की आह्वान करना अर्थात् राजकीय कम्युनिस्ट पार्टी का दावा था कि अनुच्छेद 19(1)(क) के अंतर्गत 'बंद' का आह्वान करना उसका मूल अधिकार है। करते उच्च न्यायालय ने 'बंद' और 'हड़ताल' में अंतर करके निर्धारित किया कि 'हड़ताल' से अन्य नागरिकों को मूल अधिकारों का शांति नहीं पहुँचती है जबकि 'बंद' से अन्य नागरिकों को अधिकारों में बाधा पड़ती है। सर्वोच्च न्यायालय ने करते उच्च न्यायालय के निर्णय को सही माना क्योंकि 'बंद' के आह्वान में सभी नागरिकों को प्रत्यक्षतः या परोक्षतः यह धमकी दी जाती है कि वे अपना कार्य न करें। इसके अलावा आतंजी और सौवर्जनिक संपत्ति को जो नुकसान पहुँचता है, उसको भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्रेस की स्वतंत्रता (Freedom of Press)

भारत में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए दो विशिष्ट प्रावधान उठाए जा चुके हैं जैसे अमेरिका तथा कुछ अन्य देशों में हैं। भारतीय प्रेस या मीडिया को अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अंतर्गत ही 'प्रेस की स्वतंत्रता' प्राप्त है। उसे कोई विशेषाधिकार (Privileges) नहीं दिए गए हैं। 'सकल प्रेस लिमिटेड बनाम भारत संघ' (1962) के मामले में स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद 19(1)(क) में दत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में ही प्रेस की स्वतंत्रता निहित है और प्रेस को साधारण नागरिकों से अलग विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है।

प्रेस की स्वतंत्रता को निम्न न्यायालयों में कई मामले आते रहे हैं जिनके माध्यम से इस संबंध में उठने वाले संशय और संदेह प्रायः खत्म हो गए हैं। प्रेस की स्वतंत्रता से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं—

1. प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि प्रेस को कर संबंधी विधियाँ (Tax laws) या औद्योगिक नियमों से संबंधित विधियों (Industrial laws) से छूट मिली हुई है। प्रेस पर भी वे सारे कर संबंधी व उद्योग संबंधी कानून लागू होते हैं जो अन्य व्यवसायों पर।
2. एक दूसरे मामले में न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया कि प्रेस अपने कर्मचारियों की सेवा शर्तों के निर्धारण आदि से भी मुक्त नहीं है अर्थात् यदि सरकार प्रेस में काम करने वाले कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए कोई कानून बनाती है तो वह प्रेस पर भी बाध्यकारी होगा।
3. प्रेस की स्वतंत्रता पर एक निर्बंधन यह भी है कि अखबार संसद की कार्यवाही का प्रकाशन करते समय संसदीय विशेषाधिकारों (Parliamentary Privileges) की मर्यादा को नहीं लांघ सकते हैं। यदि स्पीकर के आदेश द्वारा सदन के किसी सदस्य के भाषण का कोई हिस्सा सदन की कार्यवाही से निकाल दिया गया है तो प्रेस को यह हक नहीं रह जाता है कि वह उस हिस्से को प्रकाशित करे।
4. न्यायालय ने कई मामलों में स्पष्ट किया है कि प्रेस पर पूर्व-अवरोध (Pre-censorship) लागू करना अनुच्छेद 19(1)(क) का उल्लंघन है।

5. कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया है कि प्रेस की स्वतंत्रता में घटनाओं, विचारों तथा सूचनाओं को जानने का अधिकार (Right to Know) भी शामिल है। यदि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से प्रेस को कुछ बताना चाहता है तो उसे ऐसा करने की अनुमति प्राप्त होनी चाहिए।

जानने का अधिकार तथा सूचना का अधिकार (Right to know and Right to Information):

न्यायालय ने अनुच्छेद 19(1)(क) के द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अर्थ का पर्याप्त विस्तार करते हुए निर्धारित किया है कि इस अधिकार में 'जानने का अधिकार' (Right to Know) भी निहित है। 'इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ' (1985) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिकों को यह अधिकार भी होता है कि वे सरकार के संचालन से संबंधित तथ्यों को जान सकें। ऐसी सूचनाएँ देने से इनकार केवल उन स्थितियों में किया जा सकता है जिनमें देश की सुरक्षा (Nation's security) या लोकहित (Public interest) के लिए कुछ सूचनाओं को गोपनीय रखना अनिवार्य हो।

ऐसे फैसलों से धीरे-धीरे स्थापित होता गया कि लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूल्यों के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक को यह जानने का अधिकार होना चाहिए कि उसके द्वारा चुनी गई सरकार किस प्रकार अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही है। इसके प्रभाव से दो प्रमुख अधिकार नागरिकों को प्राप्त हुए जो निम्नलिखित हैं—

सूचना का अधिकार (Right to Information):

भारत में ब्रिटिश शासन के समय से ही कई ऐसे कानून चले आ रहे थे जो सरकारी सूचनाओं को पारदर्शी न बनाकर गोपनीय बनाए रखने का प्रयास करते थे ताकि सरकार पर जनता का दबाव न बढ़े। कहा जाता था कि यह गोपनीयता देश की सुरक्षा के हित में है। जबकि वास्तविकता यह थी कि इसका असली उद्देश्य सरकारी कर्मचारियों को उत्तरदायित्व से बचना था। 'ऑफिशियल्स सीक्रेट्स ऐक्ट' ऐसा ही एक कानून था जो अंग्रेजों के समय से चला आ रहा था।

लोकतंत्र की स्थापना के बाद यह स्वाभाविक ही था कि जनता सरकार से जुड़ी सूचनाओं को मांग करे। दिसंबर, 2002 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की सरकार ने 'सूचना की स्वतंत्रता का अधिनियम, 2002' (Freedom of information act, 2002) पारित किया। 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) की सरकार बनने के बाद इस सरकार ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) द्वारा पारित अधिनियम को निरस्त करके एक नया अधिनियम पारित किया जिसे 'सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005' (Right to Information Act, 2005) कहा जाता है। इस अधिनियम के अंतर्गत कई महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

- (i) अधिनियम की धारा 4 के अनुसार प्रत्येक सरकारी कार्यालय अपने सभी रिकॉर्ड्स इस तरह से वर्गीकृत (Classify) तथा व्यवस्थित (Organise) करेगा कि मांगे जाने पर कोई भी सूचना दी जा सके। अधिनियम लागू होने के 120 दिनों के भीतर वह अपने संगठन से संबंधित प्रमुख सूचनाएँ (जैसे अधिकारियों व कर्मचारियों के नाम, उनके अधिकार व उत्तरदायित्व, कामजातों के प्रकार आदि) सार्वजनिक रूप से विवरणिका या वेबसाइट आदि के माध्यम से प्रकाशित करेगा।
- (ii) प्रत्येक कार्यालय में अधिनियम लागू होने के 100 दिनों के भीतर आवश्यक संख्या में जन सूचना अधिकारियों (Public Information Officers-PIOs) की नियुक्ति की जाएगी जो मांगे जाने पर सूचना देने के लिए जिम्मेदार होंगे।
- (iii) अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति, जो कोई सूचना प्राप्त करना चाहता है, अंग्रेजी या हिंदी या क्षेत्र की अन्य राजभाषा (Official language) में लिखित रूप में या इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से सूचना प्राप्त करने के लिए आवेदन कर सकता है। यह आवेदन जन सूचना अधिकारी (PIO—Public Information Officer) को संप्रेषित किया जाएगा।
- (iv) यदि मांगी गई सूचना किसी व्यक्ति के प्राण व स्वतंत्रता (Life and Liberty) से संबंधित है तो 48 घंटे के भीतर, और यदि साधारण प्रकार की है तो 30 दिनों के भीतर दिया जाना आवश्यक होगा।
- (v) अधिनियम की धारा 8 और 9 में व आधार बताए गए हैं, जिनके कारण किसी विशेष सूचना को देने से मना किया जा सकता है।

- (vi) धारा 12-14 में केंद्रीय सूचना आयोग (Central Information Commission) से संबंधित सभी उपबंध दिए गए हैं जिनमें आयोग के सदस्यों की नियुक्ति, आयोग के अधिकारों आदि का वर्णन है। इसी प्रकार, धारा 15-17 में राज्य सूचना आयोगों (State Information Commissions) से जुड़े उपबंध दिए गए हैं।
- (vii) यदि बिना समुचित कारण के सूचना देने से मना किया गया है तो केंद्रीय सूचना आयोग (Central Information Commission) संबंधित अधिकारी पर 250 रुपये प्रतिदिन की दर से जुर्माना लगा सकता है।
- (viii) अधिनियम की धारा 23 में यह उपबंध है कि इस अधिनियम के अंतर्गत दिये गये किसी भी आदेश के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकेगा। इस धारा को न्यायालय ने असंवैधानिक घोषित करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) संविधान का मूल लक्षण है जिसे किसी भी अधिनियम के माध्यम से समाप्त नहीं किया जा सकता।
- (ix) अधिनियम की धारा 24 में कुछ ऐसे संगठनों का उल्लेख है जिनसे संबंधित सूचनाओं के लिए यह अधिनियम लागू नहीं होता। इसके अंतर्गत मुख्यतः गुप्तचर तथा सुरक्षा संगठन शामिल हैं।

इस अधिनियम के आने से भारतीय लोकतंत्र में पारदर्शिता (Transparency) का स्तर काफी बढ़ा है। हाल के वर्षों में, कई सरकारी कर्मचारियों ने सरकार पर दबाव बनाया है कि इस अधिनियम की कठोरता को कम किया जाए जबकि 'सूचना के अधिकार' के आंदोलन से जुड़े कई व्यक्तियों को शिकायत है कि जन सूचना अधिकारी (Public Information Officers) सूचनाएँ छिपाने का प्रयास ज्यादा करते हैं, उन्हें घोषित करने को कसा।

मतदाता का सूचना का अधिकार (Voter's Right to Information)

जानने के अधिकार का आधार पर ही सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि प्रत्येक मतदाता को अपने उम्मीदवारों के बारे में इतनी सूचनाएँ प्राप्त होनी चाहिये कि वह चुनाव में सही विकल्पों का चयन कर सकें। इस मामले में हुआ यह था कि सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्देश देकर प्रत्येक उम्मीदवार के लिए अपना नामांकन-पत्र (Nomination paper) भरते समय अपनी संपत्ति, देनदारी, शिक्षा तथा आपराधिक रिकॉर्ड से जुड़ी जानकारी देना अनिवार्य कर दिया था। संसद ने एक अध्यादेश (Ordinance) के माध्यम से 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम' (Representation of the people act) की धारा 33 में संशोधन करके धारा 33(ख) अंतर्स्थापित की तथा स्पष्ट किया कि चुनाव आयोग तथा न्यायालय के आदेशों के बावजूद ये सूचनाएँ देना अनिवार्य नहीं है। इसके बाद यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा। 'प्रिपल्स यूनिन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ' (2004) नामक इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मतदाताओं को 'सूचना का अधिकार' संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के तहत प्राप्त है। चूंकि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33(ख) उसका उल्लंघन करती है, अतः वह अवैध है।

इस आदेश के बाद अब किसी भी उम्मीदवार के लिए जरूरी है कि वह नामांकन पत्र भरते समय निम्नलिखित 5 सूचनाएँ दे-

- (i) स्वयं अपनी, अपने पति या पत्नी की तथा अपने आश्रितों की चल व अचल संपत्ति का ब्यौरा।
- (ii) यदि उम्मीदवार की कोई देनदारी (Liability) शेष हो, विशेषकर सरकारी देनदारी, तो उसका ब्यौरा।
- (iii) उम्मीदवार की शैक्षिक योग्यता।
- (iv) उम्मीदवार का आपराधिक रिकॉर्ड।
- (v) पिछले 6 महीनों में यदि उसे किसी ऐसे मामले में आरोपी ठहराया गया हो जितमें दो वर्ष या अधिक के कारावास की सजा का प्रावधान हो।

अनुच्छेद 19(2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बंधन के आधार

[Article 19(2) Basic of restrictions on the right to freedom]

अनुच्छेद 19(2) में वे सभी आधार बताए गए हैं जो अनुच्छेद 19(1)(क) में प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) आरोपित करते हैं। ये सभी आधार निम्नलिखित हैं-

- 1. राज्य की सुरक्षा (Security of state):

2. विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध (Friendly relations with foreign states):

यह आधार मूल संविधान में नहीं था। इसे 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा अनुच्छेद 19(2) में जोड़ा गया था। इस प्रावधान का उद्देश्य यह था कि कोई व्यक्ति किसी देश के संबंध में ऐसी झूठी अफवाहें न फैला सके जो उस देश के साथ हमारे संबंधों को नुकसान पहुंचा सकती हों।

3. लोक व्यवस्था (Public order):

यह वाक्यांश भी मूल संविधान में नहीं था। इसे भी 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा जोड़ा गया था। इसमें निहित है कि यदि कोई व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग समाज में अव्यवस्था फैलाने के लिए करता है तो राज्य उसकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रतिबंधित कर सकता है।

4. शिष्टाचार या सदाचार (Decency or Morality):

इसके अंतर्गत राज्य ऐसी अभिव्यक्तियों पर रोक लगा सकता है जो अश्लील (Obscene or indecent) प्रकृति की हैं।

5. न्यायालय की अवमानना (Contempt of Court):

न्यायालय की अवमानना के अंतर्गत दीवानी (Civil) और आपराधिक (Criminal) दोनों प्रकार की अवमाननाएँ शामिल हैं। दीवानी या सिविल अवमानना का अर्थ है न्यायालय के आदेशों या निर्देशों का जान बूझकर अवहेलना करना; जबकि आपराधिक या क्रिमिनल अवमानना का अर्थ है न्यायालय या न्यायाधीशों को नुकीला करना, उन्मत्त होना या अश्लील आरोप लगाना या न्यायालय के कार्यों को अवरुद्ध करना। किंतु यदि कोई न्यायिक कार्यवाहियों का वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रदर्शन करता है, किसी न्यायिक निर्णय (Judgement) या कृत्य (Action) की आलोचना करता है या किसी न्यायाधीश की इमानदारीपूर्वक प्रशंसा करता है तो इन्हें न्यायालय की अवमानना की परिधि में शामिल नहीं किया जाएगा।

6. मानहानि (Defamation):

इसका अर्थ है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के सम्मान को उस पहचाने वाली अभिव्यक्ति करता है तो उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

7. अपराध-उद्दीपन (Incitement to an offence):

यह आधार मूल संविधान में नहीं था। इसे भी 'संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से जोड़ा गया। इसका अर्थ है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को कोई अपराध करने के लिए उकसाता है या प्रेरित करता है तो उसकी ऐसी अभिव्यक्ति अनुच्छेद 19(1)(क) के अंतर्गत अनुमति (Permitted) नहीं मानी जाएगी।

8. भारत की संप्रभुता और अखण्डता (Sovereignty and Integrity of India)

यह आधार भी मूल संविधान में शामिल नहीं था। इसे संविधान के '16वें संशोधन अधिनियम, 1963' के माध्यम से जोड़ा गया। इसके अंतर्गत वे अभिव्यक्तियाँ आती हैं जो भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर भारत राज्य की सर्वोच्चता को चुनौती दें या भारत के किसी क्षेत्र को संघ से पृथक् होने के लिए उकसाएँ।

अनुच्छेद-19(1)(ख) और 19(3): शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार

[Article 19(1)(b) and 19(3): Right to assemble peaceably and without arms]]

अनुच्छेद 19(1)(ख) भारत के सभी नागरिकों को शांतिपूर्वक (Peaceably) तथा बिना हथियार के (Without arms) सम्मेलन करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। सम्मेलन के अधिकार में सभा (Meeting) आयोजित करना, प्रदर्शन (Demonstration) करना और जुलूस (Procession) निकालना शामिल है। चूंकि जुलूस एक 'चलती हुई सभा' ही होता है, इसलिए उसके लिए अलग से प्रावधान करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। लोकतंत्र की दृष्टि से यह अधिकार अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि लोकतंत्र में असहमति (Dissent) व्यक्त करने का अधिकार बेहद आवश्यक होता है।

अनुच्छेद 19(3) में बताया गया है कि अनुच्छेद 19(1)(ख) में दिए गए सम्मेलन के अधिकार पर क्या-क्या प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं? ऐसे दो आधार हैं— (1) लोक व्यवस्था (Public order), तथा (2) भारत की संप्रभुता और अखंडता (Sovereignty and Integrity of India)। इसके अलावा, जैसा कि अनुच्छेद 19(1)(ख) में निहित है—कोई भी सभा या सम्मेलन उसी स्थिति में अनुमत (Permitted) होगा यदि वह (क) शांतिपूर्ण (Peaceful) हो, तथा (ख) बिना हथियारों के (Without arms) हो।

भारतीय दंड संहिता (India Penal Code) के अध्याय 8 में वे स्थितियाँ बताई गई हैं जिनकी उपस्थिति में कोई सभा गैर-कानूनी (Illegal) रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के लिए, धारा 144 के तहत भजिस्टूट लोक-व्यवस्था (Public order) को बनाए रखने के लिए किसी सम्मेलन या जुलूस को आयोजित करने की अनुमति देने से मना कर सकता है। इस अधिनियम के तहत किसी भी जुलूस को निकालने से पहले पुलिस अधिकारी की पूर्व अनुमति लेना बाध्यकारी है।

अनुच्छेद 19(1)(ग) तथा 19(4): संगम, संघ या सहकारी समिति बनाने का अधिकार

[Article 19(1)(c) & 19(4): Right to form Associations, Unions or Cooperative Unions]

अनुच्छेद 19(1)(ग) के अंतर्गत भारत के प्रत्येक नागरिक को संगम, संघ या सहकारी समिति (Associations, Unions or Cooperative Unions) बनाने की स्वतंत्रता दी गई है तथा अनुच्छेद 19(4) के अंतर्गत बताया गया है कि इस अधिकार पर कौन-कौन से 'युक्तियुक्त निर्बंधन' (Reasonable restrictions) लागू होते हैं। ध्यातव्य है कि 'सहकारी समिति' बनाने का अधिकार '97वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2011' द्वारा शामिल किया गया है जबकि शेष हिस्सा संविधान में आरंभ से है।

संगम, संघ या सहकारी समिति बनाने के अधिकार के अंतर्गत कंपनी (Company), स्वैच्छिक संगठन (Voluntary organisation), साझेदारी फर्म (Partnership firm), सोसाइटी (Society), क्लब (Club), व्यावसायिक संघ (Professional Association), मजदूर संगठन (Trade Union), राजनीतिक दल (Political party), दबाव समूह (Pressure group) आदि बनाने के अधिकार शामिल हैं। यह अधिकार सिर्फ संगठन बनाने तक सीमित नहीं है, उसे चालू रखने का अधिकार भी इसमें निहित है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कुछ फैसलों में स्पष्ट कर चुका है। कोई नागरिक किसी संगठन में शामिल होना चाहे या नहीं, यह उसका व्यक्तिगत निर्णय होगा और इसके लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता। कुल मिलाकर, इस अधिकार में संगठन बनाने या न बनाने का; उसकी सदस्यता लेने या न लेने का; तथा उसे चालू रखने या न रखने का अधिकार अंतर्निहित है।

संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता पर तीन आधारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन लगाए जा सकते हैं— (क) लोक व्यवस्था (Public order), (ख) सदाचार (Morality), तथा (ग) भारत की संप्रभुता और अखंडता (Sovereignty & Integrity of India)।

(अनुच्छेद-19(1)(घ) तथा अनुच्छेद-19(5): भारत के राज्यक्षेत्र में अबाध संचरण का अधिकार

[Article 19(1)(D) & 19(5): Right to move freely throughout the territory of India]

अनुच्छेद 19(1)(घ) भारत के प्रत्येक नागरिक को अधिकार देता है कि वह भारत के किसी भी भाग में बिना किसी बाधा के संचरण, भ्रमण या आवागमन (Movement) कर सकता है। यह अधिकार देने का उद्देश्य यही था कि विभिन्न राज्यों या क्षेत्रों के मध्य क्षेत्रवाद (Regionalism) को प्रवृत्ति न फैले और भारत के नागरिक देश के विभिन्न भागों में अबाध संचरण या भ्रमण के माध्यम से देश के सभी भागों के प्रति लगाव महसूस करें। गौरतलब है कि अनुच्छेद 19(1)(घ) सिर्फ देश के भीतर संचरण या भ्रमण का अधिकार देता है, देश के बाहर नहीं। देश के बाहर संचरण या भ्रमण का अधिकार अनुच्छेद-21 के तहत आता है जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कुछ क्रांतिकारी निर्णयों के अंतर्गत स्पष्ट किया है।

अनुच्छेद 19(5) में बताया गया है कि राज्य संचरण या भ्रमण की स्वतंत्रता पर दो आधारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) आरोपित कर सकता है— (क) सार्वजनिक जनता (General public) के हित में तथा (ख) किसी

movement) की स्वतंत्रता दे दी जाएगी तो उनकी लोक-संस्कृति, लोक-भाषा इत्यादि का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। इससे यह भी हो सकता है कि वे जनजातियाँ शेष भारत के साथ अलगाव (Alienation) या तनाव महसूस करने लगें जो कि राष्ट्र की एकता व अखंडता (Unity and Integrity of nation) को बनाए रखने की दृष्टि से उचित नहीं होगा।

(अनुच्छेद 19(1)(ड) और अनुच्छेद 19(5): भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार [Article 19(1)(E) and 19(5): Right to reside and settle in any part of the territory of India])

अनुच्छेद 19(1)(ड) भारत के प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भी हिस्से में 'निवास करने तथा बसने' (To reside and to settle) का अधिकार प्रदान करता है और ऐसा करने के लिए उसे किसी पूर्व-अनुमति की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः अबाध संचरण (Free movement) की स्वतंत्रता तथा निवास (Residence) की स्वतंत्रता एक दूसरे की पूरक हैं और दोनों का उद्देश्य यही है कि किसी भी प्रांत के लोग देश में कहीं भी जाकर बस सकें। यही कारण है कि निवास की स्वतंत्रता के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन वही हैं जो संचरण की स्वतंत्रता के संबंध में हैं। अनुच्छेद 19(5) में दिये गए निर्बंधन ही अनुच्छेद 19(1)(घ) तथा (19)(1)(ड) पर लागू होते हैं। तात्पर्य यह कि राज्य दो ही कारणों से निवास की स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है- (क) साधारण जनता के हित में, तथा (ख) अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण के लिए।

अनुच्छेद-19(1)(च): संपत्ति का अधिकार (अब निरसित)

[Article 19(1)(F): Right to property (Now omitted)]

मूल संविधान में अनुच्छेद 19(1)(च) में निरसित था। इसका अर्थ है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को संपत्ति (Property) अर्जित करने, धारित करने तथा त्याग करने का अधिकार (Right to acquire, hold and dispose off property) दिया गया था। किंतु, संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1978 के माध्यम से 'संपत्ति का अधिकार' को मूल अधिकारों की सूची से हटा दिया गया है। इसी संशोधन के माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 300A अंतर्स्थापित किया गया तथा उसमें संपत्ति के अधिकार को 'विधिक अधिकार' या 'कानूनी अधिकार' (Legal or Statutory Right) का दर्जा दिया गया।

संपत्ति का अधिकार को मूल अधिकारों की सूची से निकालकर विधिक अधिकारों (Legal rights) की सूची में शामिल करने से जो परिवर्तन आया है, वह इस प्रकार है-

- (i) यदि सरकार किसी व्यक्ति की संपत्ति विधि के प्राधिकार के बिना अधिग्रहित (Acquire) कर लेती है तो पीड़ित व्यक्ति को अब यह अधिकार नहीं है कि वह उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के अधीन याचिका (Writ) दायर कर सके।
- (ii) यदि विधानमंडल (Legislature) कोई विधि पारित करके विधि के अनुसार किसी व्यक्ति की संपत्ति का अधिग्रहण कर लेता है तो वह व्यक्ति ऐसा विधिक संबंध में यह प्रश्न नहीं खड़ा सकता कि वह 'संपत्ति का अधिकार' (Right to property) का विरुद्ध युक्तियुक्त नहीं, अयुक्तियुक्त निर्बंधन (Unreasonable restriction) है। इसका कारण यह है कि मूल अधिकार विधानमंडल की शक्तियों पर भी नियंत्रण लगाते हैं जबकि विधिक अधिकार (Legal rights) संसदीय कार्यपालिका पर ही नियंत्रण लगाते हैं। विधानमंडल पर नहीं।
- (iii) अब संपत्ति का अधिग्रहण के मामले में पीड़ित व्यक्ति कार्यपालिका (Executive) के विरुद्ध हस्तक्षेप की मांग तो न्यायालय से कर सकता है, विधायिका (Legislature) के विरुद्ध नहीं।

(अनुच्छेद 19(1)(छ) तथा 19(6): कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार

[Article 19(1)(g) and 19(6): Right to practice any profession, or to carry on any occupation, trade or business]

अनुच्छेद 19(1)(छ) भारत के हर नागरिक को उसकी इच्छा के अनुसार व्यवसाय आदि करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसमें चार मिलते-जुलते शब्दों वृत्ति (Profession), उपजीविका (Occupation), व्यापार (Trade) और कारोबार (Business) का प्रयोग इसीलिए किया गया है कि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका (Livelihood) चलाने के सारे रूप इसमें शामिल हो जायें।

अनुच्छेद 19(6) में इस अधिकार से संबंधित युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) बताये गये हैं जो कि संख्या में 3 हैं- (1) साधारण जनता के हित से जुड़े निर्बंधन, (2) किसी वृत्ति या व्यापार के लिये तकनीकी अर्हताएँ (Technical eligibilities) निर्धारित करना, तथा (3) नागरिकों को पूर्णतः या भागतः किसी व्यापार या कारोबार से इसलिये वर्जित करना कि राज्य किसी व्यवसाय पर एकाधिकार (Monopoly) या नियंत्रण करने के पक्ष में है। ध्यान देने योग्य तथ्य है कि पहला निर्बंधन ही मूल संविधान में उल्लिखित था, शेष दोनों निर्बंधन 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से जोड़े गए थे।

1. व्यवसाय की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति जो चाहे व्यवसाय करे। न्यायालय ने कई मामलों में निर्धारित किया है कि व्यवसाय का अर्थ 'वैध व्यवसाय' (Legal profession) से है, 'अवैध व्यवसाय' (Illegal profession) से नहीं। कई मामलों में स्पष्ट किया है कि शराब, गांजा और अफीम जैसे मादक पदार्थों का व्यापार करना अनुच्छेद 19(1)छ के अनुसार मूल अधिकार नहीं है।
2. व्यवसाय की स्वतंत्रता का यह अर्थ भी नहीं है कि व्यक्ति किसी भी स्थान पर व्यवसाय करने के लिए स्वतंत्र है। राज्य युक्तियुक्त आधारों पर कुछ स्थानों पर व्यवसाय करने की अनुमति देने से इंकार कर सकता है।
3. राज्य को यह हक है कि वह विशेष प्रकार के व्यवसायों के लिए तकनीकी ज्ञान (Technical knowledge) या प्रशिक्षण (Training) की अर्हता (Eligibility) निश्चित कर सकता है, जैसे अध्यापक बनने के लिए बी० एड० की डिग्री, डॉक्टर बनने के लिए एम० बी० बी० एस० और वकील बनने के लिए एल० एल० बी० की डिग्री। मूल संविधान में इस निर्बंधन का उल्लेख नहीं था। इसे 1951 में संविधान के प्रथम संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया था।

अनुच्छेद 19 का निलंबन (Suspension of Article 19)

स्वतंत्रता का अधिकार सामान्यतः दो स्थितियों में निलंबित हो जाता है—

- (i) जब अनुच्छेद 352 के अधीन आपात की उद्घोषणा की जाती है तो अनुच्छेद 358 के अनुसार अनुच्छेद 19 स्वतः निलंबित हो जाता है। आपातकाल को संसद द्वारा प्रारित किसी विधि या सरकार द्वारा की गई किसी कार्यवाही को अनुच्छेद 19 के उल्लंघन के आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। 25 जून, 1975 को 'आंतरिक अशांति' (Internal disturbance) के आधार पर जो आपात की उद्घोषणा की गई थी, उसके अंतर्गत स्वतंत्रताओं को लागू पुरी तरह निलंबित कर दिया गया था। बाद में चुनौती पार्सी की सरकार ने '44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' से उद्घोषित किया कि अनुच्छेद 39(1)(क) में मुद्दे पर स्वतंत्रताओं को सफा-तभी निलंबित किया जा सकेगा जब आपातकाल की उद्घोषणा युद्ध (War) अथवा बाह्य आक्रमण (External aggression) के कारण हुई हो; 'सशस्त्र विद्रोह' (Armed rebellion) के आधार पर की गई उद्घोषणा में अनुच्छेद 19(1) निलंबित नहीं होगा। गौरतलब है कि 'आंतरिक अशांति' (internal disturbance) के आधार पर अब आपात की उद्घोषणा नहीं की जा सकती है।

- (ii) अनुच्छेद 19 उन मामलों में भी लागू नहीं होता जिनका संबन्ध अनुच्छेद 31(क), 31(ख) और 31(ग) से है। अनुच्छेद 31(क) और 31(ख) संविधान के प्रथम संशोधन के माध्यम से जोड़े गए थे जबकि 31(ग) '25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' के माध्यम से जोड़ा गया था।

अनुच्छेद 31(क) के अनुसार यदि कोई विधि भूमि सुधार (Land reforms) या सामाजिक न्याय (Social justice) से संबंधित कुछ अन्य विषयों के लिए बनाई गई है तो उसे अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 के उल्लंघन के आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

अनुच्छेद 31(ख) में व्यवस्था है कि यदि कोई विधि नवौं अनुसूची (9th schedule) में शामिल कर दी गई है तो उसे किन्हीं भी मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकेगा। ध्यातव्य है कि 'केशवानंद भारती बनाम कर्नाट राज्य' मामले के निर्णय की तारीख 24 अप्रैल, 1973 के बाद से यदि संसद किसी कानून को नवौं अनुसूची (Ninth schedule) में शामिल करके न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) से मुक्त कराना चाहे तो भी ऐसा नहीं कर सकती है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में 'न्यायिक पुनर्विलोकन' (Judicial review) को संविधान के आधारभूत ढाँचे (Basic structure of constitution) का हिस्सा मान लिया है। न्यायालय ने स्वयं ही यह घोषणा की है कि 24 अप्रैल, 1973 से पूर्व के ऐसे मामलों पर न्यायालय पुनर्विचार नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने से कई न्यायिक विवाद अनावश्यक रूप से पुनः उठ खड़े होंगे।

अनुच्छेद 31(ग) को '25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' के द्वारा संविधान में शामिल किया गया था। इसमें प्रावधान था कि यदि कोई विधि संविधान के अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में दिये गये नीति-निर्देशक तत्वों को उपलब्ध करने के लिये बनाई जाती है तो उसे इस आधार पर शून्य घोषित नहीं किया जा सकेगा कि वह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करती है। गौरतलब है कि अनुच्छेद 39(ख) तथा 39(ग) में भौतिक संसाधनों तथा अर्थव्यवस्था का प्रबंधन इस प्रकार करने का निर्देश दिया गया है कि समाज में आर्थिक संसाधनों के वितरण में विषमता न बढ़े और यथासंभव समता का स्थिति आ सके।

अनुच्छेद 20: अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण (Article 20: Protection in respect of conviction for offences)

अनुच्छेद 20 का संबंध इस बात से है कि राज्य किसी व्यक्ति को मनमाने तरीके से दंडित न कर सके। अनुच्छेद 20 के तीन खंड हैं और तीनों में इसी से जुड़े तीन संरक्षण दिए गए हैं जो निम्नलिखित हैं—

अनुच्छेद खंड

दिया गया संरक्षण

अनुच्छेद 20(1) भूतलक्षी दांडिक विधियों से संरक्षण (Protection from ex-post facto criminal laws)

अनुच्छेद 20(2) दोहरे दंड से संरक्षण (Protection from Double Jeopardy)

अनुच्छेद 20(3) अपने विरुद्ध गवाही देने से संरक्षण (Protection from self incrimination or being witness against oneself)

अनुच्छेद 20(1): भूतलक्षी दांडिक विधियों से संरक्षण (Protection from ex-post facto criminal laws):

अनुच्छेद 20(1) का मूल पाठ इस प्रकार है—

“कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष (Convicted) नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि (Law in force) का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक दंड का सामना नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि (Law in force) के अधीन अधिरोपित किया जा सकता था।”

गौरतलब है कि विधियाँ दो प्रकार की होती हैं— भूतलक्षी (Retrospective) तथा भविष्यलक्षी (Prospective)। सामान्यतः विधियाँ भविष्यलक्षी (Prospective) होती हैं अर्थात् वे जिस नदिन प्रारित की जाती हैं, उसके तुरंत बाद या किसी परवर्ती तिथि से लागू होती हैं। इसके विपरीत, कभी-कभी विधानमंडल विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ विधियाँ भूतकालिक (Retrospective) प्रभाव से अर्थात् किसी बीत चुके तिथि से लागू करता है। ऐसी विधियों को ‘भूतलक्षी विधि’ (Ex-post facto law or Retrospective law) कहते हैं। भूतलक्षी विधियाँ भी दो प्रकार की हो सकती हैं— (i) सिविल विधियाँ (Civil laws), जैसे कोई कर लगाने से संबंधित विधि; तथा (ii) आपराधिक विधियाँ (Criminal laws), जैसे किसी कृत्य के संबंध में दंड लागू करने या दंड को सजा बंटाने से संबंधित विधि।

अनुच्छेद 20 का संबंध सिर्फ आपराधिक विधियों (Criminal laws) से है, सिविल विधियों से नहीं। इसका तात्पर्य है कि यदि विधानमंडल किसी सिविल विधि को भूतलक्षी प्रभाव से लागू करना चाहे तो उस पर कोई मनाही नहीं होगी। उदाहरण के लिए, यदि आयकर स्लैब दरें बदली जाएँ और उन्हें दो साल पूर्व से लागू कर दिया जाए तो इसे अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

अनुच्छेद 20(1) के माध्यम से दो अधिकार प्राप्त होते हैं—

(क) यदि किसी व्यक्ति ने कोई कार्य किया हो और किए जाने के समय वह कार्य विधि द्वारा ‘अपराध’ के रूप में घोषित न हो तो बाद में विधि बनाकर उस व्यक्ति द्वारा किए जा चुके कार्य को अपराध घोषित नहीं किया जा सकेगा। सरल भाषा में कहें तो कोई कार्य अपराध है या नहीं, यह कार्य करने के समय लागू विधि के अनुसार ही निर्धारित होगा, बाद में बनाई गई विधि के अनुसार नहीं। उदाहरण के लिए, यदि किसी खिलाड़ी ने किसी दिन विदेशी टीम के कुछ खिलाड़ियों के साथ मिलकर ‘मैच फिक्सिंग’ कर ली हो; पर उस मैच के दिन तक ‘मैच फिक्सिंग’ का कृत्य विधि द्वारा अपराध के रूप में घोषित न हो, तो बाद में विधि बनाकर उस ‘मैच’ की घटना के संबंध में उक्त खिलाड़ी को अभियोजित (Prosecute) नहीं किया जा सकेगा।

(ख) अनुच्छेद 20(1) का दूसरा हिस्सा यह प्रावधान करता है कि कोई आपराधिक कृत्य करने के समय विधि उस कृत्य के लिए जो दंड प्रस्तावित करती है, किसी भी व्यक्ति को उससे अधिक दंड नहीं दिया जा सकेगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति ने किसी की जेब काटो और जेब काटने के दिन इस अपराध के लिए अधिकतम सजा 6 महीने की थी; किंतु उसके मामले का निर्णय होने से पहले ही विधानमंडल इस कृत्य के लिए दो साल की अधिकतम सजा का निर्धारण कर देता है, तो वह सजा उस व्यक्ति को नहीं दी जा सकेगी।

अनुच्छेद 20(2): दोहरे दंड से संरक्षण (Protection from double jeopardy)

अनुच्छेद 20(2) यह प्रावधान करता है कि "किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित (Prosecute) और दंडित (Punish) नहीं किया जाएगा।"

यह व्यवस्था इंग्लैंड और अमेरिका दोनों देशों में प्रचलित है। इंग्लैंड के कॉमन लॉ में प्रचलित इस व्यवस्था को अमेरिका में अधिक व्यापक रूप में स्वीकार किया गया है। अमेरिकी संविधान का 5वाँ संशोधन यह व्यवस्था करता है कि किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध करने के आरोप में दो बार दंड का भागी नहीं बनाया जा सकेगा। गौरतलब है कि इस संबंध में अमेरिकी और ब्रिटिश संविधानों द्वारा दिए गए अधिकार भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिकार से व्यापक हैं। इन दोनों देशों की विधि किसी व्यक्ति को दूसरे विचारण (Trial) से भी बचाती है जबकि भारतीय संविधान ऐसी छूट नहीं देता। तात्पर्य यह कि यदि किसी व्यक्ति पर किसी अपराध के आरोप के आधार पर विचारण (Trial) किया गया हो और विचारण में वह व्यक्ति दोषी सिद्ध न हुआ हो तो उस पर अमेरिका और इंग्लैंड में फिर से विचारण भी नहीं किया जा सकता, किंतु भारत में यह छूट तभी मिलती है जब किसी व्यक्ति पर अभियोग चलाने के साथ-साथ उसे दंड भी दिया गया हो। यदि किसी व्यक्ति पर अभियोग चलाया गया हो किंतु दंड न दिया गया हो तो उसे उसी मामले में, उन्हीं तथ्यों के आधार पर पुनः अभियुक्त बनाया जा सकता है।

अनुच्छेद 20(2) के तहत उन मामलों में सुरक्षा प्राप्त नहीं होती जिनमें अभियोग किसी दूसरे मामले में चलाया गया है। यह अनुच्छेद एक ही कृत्य के लिए दो बार अभियोजन (Prosecution) को वर्जित करता है, किंतु दूसरे कृत्य के लिए अभियोजन को नहीं रोकता। ऐसा अलग-अलग अधिनियमों के आधार पर भी हो सकता है और एक ही अधिनियम की दो भिन्न धाराओं के आधार पर भी।

इसी तरह, यदि दूसरी कार्यवाही पहली कार्यवाही की ही उत्तरवर्ती कार्यवाही हो तो दोहरे दंड से सुरक्षा प्राप्त नहीं होती है। कुछ मामलों में अपराधी को एक ही कृत्य-एक से अधिक प्रकार के अपराध उत्पन्न करता है। यदि एक ही कृत्य से एकाधिक अपराध उत्पन्न होंगे तो ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए अथक दंड दिया जाना अनुच्छेद 20(2) का उल्लंघन नहीं है।

अनुच्छेद 20(3): अपने विरुद्ध गवाही देने से संरक्षण (Protection from self incrimination or being witness against oneself):

अनुच्छेद 20(3) के अंतर्गत प्रावधान है कि "किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।"

वस्तुतः इस अधिकार का उद्देश्य यह है कि अभियोजन (Prosecution) की प्रक्रिया में किसी व्यक्ति पर क्रूर, अमानवीय या यातनापूर्ण प्रक्रियाओं जैसी प्रक्रियाओं का प्रयोग न किया जाए।

अनुच्छेद 20(3) को ध्यान से पढ़ें तो स्पष्ट होता है कि इसका संरक्षण निम्नलिखित 3 शर्तें पूरी होने पर ही प्राप्त होता है—

- (क) किसी व्यक्ति को आपराधिक कृत्य (Criminal act) के मामले में अभियुक्त (Accused) बनाया गया हो।
- (ख) विचारण (Trial) की प्रक्रिया में उसे अपने ही विरुद्ध गवाही देनी हो।
- (ग) उसे अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य (Compel) किया गया हो।

पहली शर्त है कि व्यक्ति को 'आपराधिक कृत्य के लिए अभियुक्त' बनाया गया हो। इसका अर्थ है कि अनुच्छेद 20(3) से मिलने वाली सुरक्षा सिविल कार्यवाहियों (या ऐसी कार्यवाहियों जो दंडिक प्रकृति की नहीं हैं) पर लागू नहीं होती।

दूसरी शर्त अर्थात् 'अपने विरुद्ध गवाही देने' का अर्थ है कि अभियुक्त अपने विरुद्ध कोई ऐसी सूचना, तथ्य या प्रमाण देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा जो उसे अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर देना हो।

तीसरी शर्त यह है कि अभियुक्त को अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य किया गया हो। अनुच्छेद 20(3) में प्रयुक्त वाक्यांश 'बाध्य नहीं किया जाएगा' में निहित है कि यदि कोई अभियुक्त स्वप्रेरणा (Self inspiration) से अपने विरुद्ध गवाही देना चाहें तो यह वर्जित नहीं है। यह अनुच्छेद केवल उन स्थितियों में लागू होता है जहाँ अभियुक्त पर अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए कोई दबाव डाला गया हो। दबाव का अर्थ सिर्फ 'शारीरिक दबाव या यंत्रणा' (Physical pressure or torture) नहीं है, उसमें 'मानसिक दबाव या यंत्रणा' (Mental pressure or torture) भी शामिल है।

अनुच्छेद 20(3) के संबंध में न्यायालय ने कुछ और बातें स्पष्ट की हैं। प्रथमतः यदि कोई अभियुक्त किसी आपराधिक मामले में अपनी पहचान के लिए अपने बाल के नमूने न देना चाहें तो उसे नमूने देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

1. सूची I का सूची II से मिलान कीजिए।

सूची I (अनुच्छेद)	सूची II (संबंधित मूल अधिकार)
A. अनुच्छेद 19	(i) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और विरोध से संरक्षण
B. अनुच्छेद 22	(ii) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित छह अधिकार
C. अनुच्छेद 20	(iii) अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण
D. अनुच्छेद 21	(iv) प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण

कूट -

	A	B	C	D
1.	(ii)	(iii)	(iv)	(i)
2.	(ii)	(iv)	(i)	(iii)
3.	(ii)	(i)	(iv)	(iii)
4.	(ii)	(i)	(iii)	(iv)

2. 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकार की श्रेणी से हटा दिया गया। हटाने से पूर्व यह निम्न में से किस अनुच्छेद के अन्तर्गत सम्मिलित था?

- 19 (1)(ग)
- 19 (1)(ख)
- 19 (1)(च)
- 19 (1)(ड)

3. सूची I को सूची II से सुमेलित कीजिए।

सूची I (मूल अधिकार)	सूची II (संबंधित अनुच्छेद)
A. भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध संचरण का अधिकार	(i) 19 (1)(क)
B. भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	(ii) 19 (1)(ख)
C. भारत के किसी भाग में निवास करने व बस जाने का अधिकार	(iii) 19 (1)(घ)
D. शांतिपूर्वक तथा हथियार रहित सम्मेलन का अधिकार	(iv) 19 (1)(ड)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- राज्य द्वारा व्यक्तिगत निर्बंधनों (Reasonable Restrictions) के आधार पर अनुच्छेद 19 (1) के अंतर्गत दी गई स्वतंत्रताओं पर रोक नहीं लगायी जा सकती है।
- इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 19 (1) के संदर्भ में व्यक्तिगत निर्बंधनों का प्रावधान संविधान में नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- संविधान में अनुच्छेद 19 (1) के संदर्भ में व्यक्तिगत निर्बंधन का प्रावधान अनुच्छेद 19 (2) से 19 (6) तक है।
- व्यक्तिगत निर्बंधन वे समुचित सोमाएँ हैं जो स्वतंत्रता के अधिकारों पर राज्य द्वारा लागू की जा सकती हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

6. कोई निर्बंधन व्यक्तिगत है या नहीं, इसका निर्धारण अंतिम रूप से करता है-

- संसद
- न्यायालय
- राष्ट्रपति
- मंत्रिमंडल

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- भारत में प्रेस या मीडिया की स्वतंत्रता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं है।
- अतः प्रेस या मीडिया पर व्यक्तिगत निर्बंधन के आधार पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अखबार या समाचार पत्र संसद की कार्यवाही का प्रकाशन करते समय संसदीय विशेषाधिकारों (Parliamentary Privileges) की भर्थाद को नहीं लांघ सकते हैं।
- (ii) प्रेस पर पूर्व-अवरोध (Pre-censorship) लागू करना अनुच्छेद 19 (1) (क) का उल्लंघन है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. भारत में सूचना का अधिकार (Right to Information) अस्तित्व में कब आया?

- (1) सन् 2002
- (2) सन् 2004
- (3) सन् 2005
- (4) सन् 2014

11. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (Right to Information Act, 2005) के अन्तर्गत सम्मिलित प्रावधान है-

- (i) प्रत्येक सरकारी व निजी कार्यालय अपने सभी रिकॉर्ड्स इस तरह से वर्गीकृत तथा व्यवस्थित करेगा कि माना जाने पर कोई भी सूचना दी जा सके।
- (ii) प्रत्येक सरकारी कार्यालय में अधिनियम लागू होने के सौ दिनों के भीतर आवश्यक संख्या में जन सूचना अधिकारियों (Public Information Officers) की नियुक्ति की जाएगी जो सूचना देने के लिए जिम्मेदार होंगे।
- (iii) यदि मांगी गई सूचना किसी व्यक्ति के प्राण व स्वतंत्रता से संबंधित है तो 48 घंटे के भीतर सूचना दिया जाना आवश्यक होगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

12. सूचना के अधिकार के अन्तर्गत कितने दिनों के भीतर मांगी गई साधारण प्रकार की सूचनाओं को दिया जाना आवश्यक है?

- (1) 10 दिन
- (2) 20 दिन
- (3) 30 दिन
- (4) 40 दिन

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) सूचना के अधिकार के अन्तर्गत ऐसे उपबन्ध भी हैं जिनके संबंध में विशेष सूचना को देने से मना किया जा सकता है।
- (ii) सूचना के अधिकार के अन्तर्गत ऐसे कोई उपबन्ध नहीं हैं जिनके बारे में सूचना नहीं दी जा सकती।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) सूचना के अधिकार के तहत सिर्फ केन्द्रीय सूचना आयोग (Central Information Commission) के संबंध में उपबन्ध है, राज्य सूचना आयोग (State Information Commission) के संबंध में नहीं।
- (ii) सूचना के अधिकार के स्रोत के रूप में अनुच्छेद 19(1) (क) को माना जा सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. यदि बिना समुचित कारण के सूचना देने से मना किया गया है तो केन्द्रीय सूचना आयोग संबंधित अधिकारी पर क्या जुर्माना लगा सकता है?

- (1) 250 रुपये प्रतिदिन।
- (2) 500 रुपये प्रतिदिन।
- (3) 50 रुपये प्रति घंटा।
- (4) 6 माह का कारावास।

16. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) सूचना के अधिकार का अधिनियम न्यायिक पुनर्विचार (Judicial Review) की सीमा से बाहर है।
- (ii) गुप्तचर तथा सुरक्षा संबंधी कुछ संगठनों से संबंधित सूचनाओं के लिए यह अधिनियम लागू नहीं होता।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) किसी उम्मीदवार के द्वारा नामांकन पत्र भरते समय यह आवश्यक है कि वह अपनी शैक्षणिक योग्यता संबंधी सूचना प्रदान करे।
- (ii) उम्मीदवारों को नामांकन पत्र भरते समय सिर्फ आपराधिक रिकॉर्ड देना पड़ता है न कि शैक्षिक योग्यता संबंधी विवरण।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित में से किस आधार पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर व्यक्तिगत निर्बंधन लगाया जा सकता है?

- (i) राज्य की सुरक्षा
(ii) लोक व्यवस्था
(iii) न्यायालय की अवमानना
(iv) भारत की संप्रभुता और अखण्डता

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (iii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

9. निम्नलिखित में से कौन-कौन से व्यक्तिगत निर्बंधन के आधार हैं, जिन्हें प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा जोड़ा गया था?

- (i) विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध
(ii) लोक व्यवस्था
(iii) अपराध-उद्योग (Incitement to an offence)
(iv) भारत की संप्रभुता और अखण्डता

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
(2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (iii) और (iv)
(4) (i), (ii), (iii) और (iv)

20. भारत की संप्रभुता और अखण्डता को व्यक्तिगत निर्बंधन के आधार के रूप में कब जोड़ा गया?

- (1) मूल संविधान में
(2) प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 में
(3) 16वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1963 में
(4) 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 में

21. न्यायालय या न्यायाधीशों की निंदा व उत्र परंप्रभात का आरोप लगाना, न्यायालय को किस प्रकार की अवमानना है?

- (i) दीवानी या सिविल अवमानना
(ii) आपराधिक या क्रिमिनल अवमानना
(iii) अवमानना की परिधि में शामिल नहीं।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) केवल (iii) (4) इनमें से कोई नहीं

22. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर भारत राज्य की सर्वोच्चता को

(ii) भारत के किसी क्षेत्र को संघ से पृथक् होने के लिए उकसाने से संबंधित अभिव्यक्ति पर व्यक्तिगत निर्बंधन नहीं लगाया जा सकता।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

23. अनुच्छेद 19 (3) के अनुसार शांतिपूर्वक और निराश्रय सम्मेलन के अधिकार पर व्यक्तिगत निर्बंधन के आधार हैं-

- (i) लोक व्यवस्था
(ii) भारत की संप्रभुता और अखण्डता
(iii) विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध
(iv) मानहानि

कूट-

- (1) (i) और (ii)
(2) (iii) और (iv)
(3) (i), (ii) और (iv)
(4) (i), (ii), (iii) और (iv)

24. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को संगम, संघ या सहकारी समिति बनाने का अधिकार प्रदान करता है।
(ii) सहकारी समिति बनाने का अधिकार '97वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2011' द्वारा शामिल किया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
(2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों
(4) न तो (i) और न ही (ii)

25. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता पर कोई व्यक्तिगत निर्बंधन नहीं लगाये गये हैं।
(ii) अनुच्छेद 19 (i) (घ) के तहत विदेश भ्रमण का अधिकार भी शामिल है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

26. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए भारत में अवाध संचरण के अधिकार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं।
(ii) साधारण जनता के हितों में भ्रमण की स्वतंत्रता पर निर्बंधन का प्रावधान नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

27. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भी हिस्से में निवास करने तथा बसने का अधिकार प्रदान करता है।
- (ii) निवास की स्वतंत्रता के संबंध में व्यक्तिगत निर्बंधन वही है जो संचरण की स्वतंत्रता के संबंध में है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

28. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) राज्य व्यक्तिगत आधारों पर कुछ स्थानों पर व्यवसाय करने की अनुमति देने से इंकार कर सकता है।
- (ii) मूल संविधान में यह वर्णित था कि राज्य किसी विशेष प्रकार के व्यवसायों के लिए तकनीकी ज्ञान या प्रशिक्षण की अहंता निश्चित कर सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

29. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अनुच्छेद 352 के अधीन आपात की उद्घोषणा होने पर अनुच्छेद 19 स्वतः निलंबित हो जाता है।
- (ii) सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion) के आधार पर की गई आपात उद्घोषणा में अनुच्छेद 19 (1) निलंबित नहीं होगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

30. अनुच्छेद 20 के अन्तर्गत शामिल हैं-

- (i) भूतलक्षी दंडिक विधियों से संरक्षण।
- (ii) दोहरे दंड से संरक्षण।
- (iii) अपने विरुद्ध गवाही देने से संरक्षण।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

32. किसी लड़के ने किसी अन्य लड़के से मारपीट की और मारपीट करने के दिन इस अपराध के लिए अधिकतम सजा 6 महीने की थी, किन्तु उसके मामले का निर्णय होने से पहले ही विधानमंडल इस कृत्य के लिए दो साल की अधिकतम सजा का प्रावधान कर देता है, तो व्यक्ति की सजा अनुच्छेद 20 के अनुसार होगी-

- (1) 2 साल।
- (2) 6 माह।
- (3) 2 साल 6 माह।
- (4) पहले 6 माह, फिर 2 साल।

33. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान में यह उपबंध है कि किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक दंड नहीं दिया जा सकता।
- (ii) यदि एक ही कृत्य से एक से अधिक अपराध उत्पन्न होंगे तो ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए पृथक् दण्ड दिया जाना अनुच्छेद 20 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

34. अपने विरुद्ध गवाही देने से संरक्षण के लिए निम्नलिखित शर्तें हैं-

- (i) किसी व्यक्ति को आपराधिक कृत्य के लिए अभियुक्त बनाया गया हो।
- (ii) विचारण (Trial) की प्रक्रिया में उसे अपने ही विरुद्ध गवाही देनी हो।
- (iii) उसे अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य (compel) किया गया हो।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

35. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) सर्वोच्च न्यायालय ने नार्को विश्लेषण, पॉलीग्राफी, वैन किंगर प्रिंटिंग आदि परीक्षण तकनीकों से होने वाले परीक्षण को अनुच्छेद 20(3) का उल्लंघन माना है।
- (ii) आपराधिक मामलों के प्रत्येक अभियुक्त को अनुच्छेद 20(3) के तहत यह अधिकार प्राप्त है कि वह उन प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार कर दे जिन्हें उत्तर देने से वह फँस सकता

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

अनुच्छेद 21: प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (Article 21: Right to life and Personal Liberty)

अनुच्छेद 21 संविधान का सबसे अधिक वर्धित एवं गत्यात्मक (Dynamic) अनुच्छेद है। इसके अर्थ का निर्वचन (Interpretation) करने में सर्वोच्च न्यायालय ने जितनी उदारता बरती है, उतनी किसी और अनुच्छेद में नहीं। वस्तुतः मानवाधिकारों की सूची में शामिल वे सभी अधिकार जो हमारे संविधान में मूल अधिकारों के अंतर्गत शामिल नहीं किये गये थे, अनुच्छेद 21 की व्यापक व्याख्याओं के माध्यम से अब प्राप्त हो गये हैं।

अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को उसके प्राण (Life) या दैहिक स्वतंत्रता (Personal Liberty) से 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 21 में 'व्यक्ति' (Person) शब्द का प्रयोग किया गया है, 'नागरिक' (Citizen) का नहीं। इसका अर्थ है कि यह अनुच्छेद भारतीय नागरिकों के साथ-साथ विदेशियों पर भी लागू होता है।

**'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' तथा 'यथोचित विधि प्रक्रिया' में अंतर
(Difference between 'Procedure established by Law' and 'Due process of law'):**

अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त वाक्यांश 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by Law) विशेष महत्व का है। इसकी व्याख्या को लेकर अक्सर यह विवाद होता रहा है कि यह अमेरिकी की 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) के अनुरूप है या ब्रिटिश संविधान की पद्धति के अनुरूप?

'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) का मूल संबंध ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था से है। ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता (Parliamentary supremacy) है और संसद द्वारा पारित की गई विधियों के औचित्य का निर्धारण करने की शक्ति वहाँ की न्यायपालिका को नहीं है। यदि ब्रिटिश संसद बहुमत से कोई ऐसी विधि पारित कर दे जिसमें बताया गया हो कि किन आधारों पर व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वतंत्रता (Life and personal liberty) से वंचित किया जा सकेगा तो वह विधि अंतिम होगी; उसके औचित्य या अनौचित्य का निर्धारण करने की शक्ति न्यायालय या किसी अन्य निकाय के पास नहीं होगी। 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) वाक्यांश से स्पष्ट है कि यदि विधि के अनुसार प्रक्रिया निश्चित की गई है तो उस प्रक्रिया के अनुसार व्यक्तियों की प्राण और दैहिक स्वतंत्रता (Life and personal liberty) को सीमित किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रिटेन में नागरिकों की प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार कार्यपालिका (Executive) अर्थात् सरकार के विरुद्ध ही प्राप्त है, विधायिका (Legislature) या संसद के विरुद्ध नहीं। कार्यपालिका यदि कोई ऐसा आदेश निकाले जो व्यक्ति को प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करता हो किंतु वह आदेश संसद द्वारा पारित विधि में निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन न करता हो तो ब्रिटिश न्यायालय उस आदेश को निरस्त करने की शक्ति रखते हैं।

अमेरिकी व्यवस्था इससे कुछ भिन्न है। वहाँ के संविधान में 5वें तथा 14वें संशोधनों के माध्यम से 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due Process of Law) वाक्यांश को जोड़ा गया था। पाँचवें संविधान संशोधन में यह प्रावधान किया गया कि "कोई भी व्यक्ति 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) के बिना अपनी दैहिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।" 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) का निर्वचन अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने अत्यंत विस्तृत रूप में किया है और इस वाक्यांश की व्याख्या प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के आधार पर की है। 'यथोचित विधि प्रक्रिया' में 'यथोचित' (Due) का अर्थ सिर्फ इतना नहीं है कि संदर्भित विधि संसद द्वारा पारित की जानी चाहिए; बल्कि यह भी है कि उसे 'न्याय के मूल सिद्धांतों' के अनुसार युक्तियुक्त (Reasonable) तथा उचित (Justified) होना चाहिए। इसलिए, यदि अमेरिकी विधानमंडल कोई ऐसी विधि बनाता है जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार औचित्यपूर्ण नहीं है तो अमेरिकी न्यायपालिका उस विधि को अरावैधानिक घोषित कर सकती है। दूसरे शब्दों में, 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of Law) के अंतर्गत न्यायपालिका की शक्ति सिर्फ कार्यपालिका (Executive) के आदेशों को जाँचने तक सीमित नहीं होती, वह विधायिका (Legislature) द्वारा पारित विधियों की संवैधानिकता का परीक्षण भी कर सकती है।

भारतीय संविधान निर्माता इस बात को लेकर पसोपेश में थे कि इन दोनों वाक्यांशों में से किसका प्रयोग करें? ध्यान देने योग्य बात है कि संविधान के प्रारूप (Draft) में अश्लिखित वाक्य का प्रयोग किया गया था, "किसी व्यक्ति को उसके प्राण या

की दैहिक स्वतंत्रता को संमित करना जरूरी होने पर भी संभवतः वह ऐसा न कर सके। चूंकि भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी और राष्ट्र को तोड़ने वाली विध्वंसक तथा अटिल स्थितियाँ बार-बार उभर सकती थीं, इसलिए संविधान सभा ने काफी विचार-विमर्श के बाद अंततः 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) वाक्यांश को हटाकर 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) वाक्यांश को स्वीकार किया। इस परिवर्तन का सीधा सा मतलब यही है कि संविधान सभा प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मामले में न्यायपालिका को सिर्फ यह शक्ति देना चाहती थी कि वह कार्यपालिका द्वारा दिए गए आदेशों में यह निरीक्षण करे कि वे संसद द्वारा पारित विधि के अनुरूप हैं या नहीं; न कि यह शक्ति कि वह संसद द्वारा पारित विधि का परीक्षण इस आधार पर करे कि उस विधि की अंतर्वस्तु (Content) या उस विधि का मूल उद्देश्य (Intent) अपने आप में प्राकृतिक न्याय (Natural justice) के सिद्धांतों के अनुरूप है या नहीं। रोचक बात यह है कि अनुच्छेद 13 में सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) की जो शक्ति दी गई है, वह सम्पूर्ण भाग-3 में प्रदत्त अधिकारों के संबंध में है किंतु अनुच्छेद 21 में 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) वाक्यांश के माध्यम से विशेष तौर पर न्यायालय की यह शक्ति सीमित की गई है।

संविधान लागू होने के बाद इस वाक्यांश की व्याख्या में हुए परिवर्तनों को दो चरणों में समझा जा सकता है। पहला चरण 1975 से पहले का है। इस चरण में न्यायालय ने इस वाक्यांश की व्याख्या प्रायः ब्रिटिश ढाँचे के अनुसार ही की तथा संसद द्वारा बनाई गई विधियों का पुनर्विलोकन करने से स्वयं को रोका। 'ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य' (1950) का मामला इस दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। किंतु, 1975 में इंदिरा गांधी की तत्कालीन सरकार ने जिस तरह से आपातकाल घोषित किया और व्यक्तियों को प्राण व दैहिक स्वतंत्रता से वंचित किया, उसने न्यायालय को दृष्टिकोण को परिवर्तित किया। इस परिवर्तन का सबसे पहला और महत्वपूर्ण उदाहरण 'मेनका गांधी बनाम भारत सभ' (1978) के मामले में दिखता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) वाक्यांश को 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) का समानार्थक घोषित किया और स्पष्ट किया कि न्यायालय व्यक्तियों को प्राण व दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करने वाली विधियों की संवैधानिकता पर भी विचार कर सकता है और यदि वह विधि युक्तियुक्त (Reasonable) नहीं है तो उसे खारिज भी कर सकता है। तब से आज तक 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) का यही व्यापक अर्थ लिया जाता रहा है।

अनुच्छेद 21 की विभिन्न व्याख्याएँ (Different Interpretations of Article 21):

'मेनका गांधी बनाम भारत सभ' (1978) के मामले के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कई निर्णयों के माध्यम से अनुच्छेद 21 का विस्तार अत्यंत व्यापक बना दिया है। ऐसी प्रमुख व्याख्याएँ तथा उन व्याख्याओं द्वारा प्राप्त हुए अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. शिक्षा पाने का अधिकार (Right to education):

अनुच्छेद 21 के तहत दिए गए अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण 'शिक्षा का अधिकार' है। इससे संबंधित ऐतिहासिक महत्व के कुछ प्रसंग निम्नलिखित हैं—

पहला मामला 'मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य' (1992) का है। इसमें हुआ यह था कि कर्नाटक राज्य के विधानमंडल ने 'कर्नाटक एजुकेशनल इंस्टीट्यूशंस' (प्रोहिबिशन ऑफ कैपिटेशन फीस) ऐक्ट, 1984 पारित करके तय कर दिया था कि राज्य के प्राइवेट मैडिकल कॉलेज विभिन्न वर्गों के विद्यार्थियों से कितना शुल्क लेंगे। इसके अंतर्गत सरकारी कोटे के विद्यार्थियों के लिए 2 हजार रुपये, कर्नाटक राज्य के विद्यार्थियों के लिए 25 हजार रुपये तथा कर्नाटक से बाहर के विद्यार्थियों के लिए 60 हजार रुपये प्रतिवर्ष का शुल्क निर्धारित किया गया था। मोहिनी जैन उत्तर प्रदेश राज्य की निवासी थी। उसने न्यायालय में याचिका दायर करके दावा किया कि शिक्षा पाने का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत प्राण के अधिकार के अंतर्गत एक मूल अधिकार है और कॉलेजों द्वारा इतनी अधिक फीस लिया जाना प्राण के अधिकार से वंचित करना है। सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण के अधिकार में शिक्षा पाने का अधिकार निहित है क्योंकि शिक्षा गरिमापूर्ण जीवन (Dignified life) की आवश्यक शर्त है। प्रत्येक नागरिक को शिक्षा प्रदान करना राज्य का संवैधानिक उत्तरदायित्व है। अतः मैडिकल कॉलेज द्वारा ली जाने वाली कैपिटेशन फीस संविधान-विरुद्ध है।

इस निर्णय से बड़े पैमाने पर अफरा-तफरी फैली क्योंकि राज्य के पास इतने संसाधन नहीं थे कि वह प्रत्येक नागरिक को शिक्षा प्रदान करने की गारंटी दे सके और निजी कॉलेजों के प्रबंधक लाभ न होने की स्थिति में कॉलेज चलाने को तैयार नहीं थे। कॉलेजों के प्रबंधकों ने 'उन्नोकृष्ण बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' (1993) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय से निवेदन किया कि वह मोहिनी जैन के मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए निर्णय पर पुनर्विचार करे। प्रबंधकों का तर्क था कि यदि मोहिनी जैन मामले के निर्णय को लागू किया जाता है तो उन्हें अपने कॉलेज बंद करने पड़ेंगे। पाँच

दिया। उसने निर्धारित किया कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत एक मूल अधिकार तो है किंतु यह अधिकार 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए ही लागू किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिक्षा को मूल अधिकार घोषित किए जाने के बाद सरकार पर दबाव पड़ने लगा कि वह इस मूल अधिकार को संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान में शामिल करे। 'संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम, 2002' के माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 21 के साथ एक नया अनुच्छेद 21(क) जोड़ा गया जो शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 21(क) में कहा गया है कि "राज्य, छः से चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा (Free and compulsory education) इस प्रकार प्रदान करेगा जिस प्रकार राज्य विधि के अधीन निर्धारित करे।"

86वें संशोधन के द्वारा ही संविधान के अनुच्छेद 45 और अनुच्छेद 51(क) में भी संशोधन किया गया है। अनुच्छेद 45 में पहले प्रावधान था कि राज्य बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। अब, चूँकि छः से चौदह वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा मूल अधिकार के अंतर्गत शामिल हो गई थी, अतः अनुच्छेद 45 में छः वर्ष से कम आयु के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करने की घोषणा की गई है। अनुच्छेद 51(क) में एक नया मूल कर्तव्य (Fundamental duty) यह जोड़ दिया गया है कि प्रत्येक माता-पिता या संरक्षक छः से चौदह वर्ष के बीच की आयु के अपने बच्चों या पालितों (Wards) को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करेंगे।

2002 में यह संविधान संशोधन करने के बावजूद सरकार ने लंबे समय तक शिक्षा के अधिकार को वास्तविक रूप देने के लिए आवश्यक कानून नहीं बनाया। जब समाज की ओर से दबाव बढ़ता गया तो संविधान संशोधन के सात वर्षों बाद संसद में 'निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009' (Free and compulsory education act, 2009) पारित किया गया। इस अधिनियम के पारित हो जाने पर अब शिक्षा का अधिकार छः से चौदह वर्ष के बच्चों के लिए एक वास्तविक अधिकार बन गया है। यदि किसी बच्चे को किसी भी विद्यालय में प्रवेश में मिले तो वह न्यायालय के माध्यम से अपने अधिकार का प्रवर्तन (Enforcement) करा सकता है। किंतु, देश में बच्चों की अत्यधिक संख्या को शिक्षा देने के लिए आर्थिक संसाधन कैसे जुटाए जाएंगे, यह केंद्र और राज्य सरकारों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

2. एकांतता का अधिकार (Right to privacy):

सर्वोच्च न्यायालय ने कई मामलों में निर्धारित किया है कि अनुच्छेद 21 में निहित प्राण या जीवन के अधिकार में 'एकांतता का अधिकार' (Right to privacy) भी शामिल है क्योंकि मानवोचित गरिमा के साथ जीने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को एकांतता की आवश्यकता होती है। इससे जुड़े कुछ पक्ष इस प्रकार हैं—

- (i) 'मीटल्स यूनिन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनिन ऑफ इंडिया (1997)' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि किसी व्यक्ति का टेलीफोन टेप करना 'एकांतता के अधिकार' का उल्लंघन है।
- (ii) रात के समय किसी व्यक्ति के घर में पुलिस का आना एकांतता के अधिकार का उल्लंघन है।
- (iii) किसी बच्चे की पैतृकता (Parentage) के निर्धारण के लिए किसी व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना रक्त परीक्षण करने के लिए बाध्य करना अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

3. आजीविका का अधिकार (Right to Livelihood):

कई मामलों में न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठा है कि अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण के अधिकार में आजीविका का अधिकार (Right to livelihood) या काम का अधिकार (Right to work) शामिल है या नहीं? ध्यातव्य है कि संविधान निर्माताओं ने 'काम के अधिकार' (Right to work) को नीति निर्देशक तत्वों (Directive principles) के अंतर्गत अनुच्छेद 41 में रखा था क्योंकि वे जानते थे कि राज्य के पास इतने संसाधन नहीं हैं कि काम के अधिकार को गारंटी के रूप में दिया जा सके। किंतु, न्यायालयों ने कुछ मामलों में काम के अधिकार से जुड़े कुछ सकारात्मक निर्णय दिए हैं जो इस प्रकार हैं—

- (i) 'ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्युनिसिपल कॉरपोरेशन' (1986) (Olga Tellis v/s Bombay Municipal Corporation, 1986) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि 'आजीविका का अधिकार' प्राण के अधिकार के अंतर्गत समाविष्ट है। अतः मूल अधिकार है। किंतु, यह आत्म्यतिक (Absolute) नहीं है और इस पर युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) लगाए जा सकते हैं। इस मामले में बंबई के फुटपाथों और झगगे झोपड़ियों में रहने वाले कुछ व्यक्तियों ने तर्क दिया था कि उन्हें फुटपाथों सड़कों तथा अन्य

के अधिकार को तो स्वीकार नहीं किया किंतु बंबई नगर निगम को निर्देश दिया कि वह उन्हें लिए वैकल्पिक व्यवस्था सुनिश्चित करे।

- (ii) 'पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ' (1981) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि न्यूनतम मजदूरी से कम वेतन दिया जाना अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त 'मानवोचित गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार' का उल्लंघन है।

4. पर्यावरण प्रदूषण के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार (Right to protection from environmental pollution):

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को लेकर पिछले कुछ दशकों में जिस गति से वैज्ञानिक अनुसंधान हुए हैं और विश्व में चिंता बढ़ी है, उसी गति से भारतीय न्यायालयों ने भी नए दृष्टिकोण को अपनाया है। उन्होंने कई मामलों में निर्धारित किया है कि प्रदूषणमुक्त वातावरण (Pollution free environment) में रहना गरिमापूर्ण जीवन की आवश्यक शर्त है, अतः यह भी अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त 'प्राण की स्वतंत्रता' का एक अनिवार्य पक्ष है। इससे संबंधित दो-तीन मामले बहुत महत्वपूर्ण हुए हैं जो इस प्रकार हैं—

- (i) 'एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ' (1991) के मामले में प्राथी ने जनहित याचिका (Public interest litigation) के माध्यम से निवेदन किया कि दिल्ली में पेट्रोल और डीजल से चलने वाले वाहनों से फैलने वाले वायु प्रदूषण को रोकने के लिए विशेष कदम उठाए जाने चाहिए। न्यायालय ने निर्धारित किया कि ऐसे विषयों पर जनहित याचिका (Public interest litigation) को स्वीकार किया जा सकता है और दिल्ली सरकार को आदेश दिया कि वह 'केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989' (Central Motor Vehicles Rules, 1989) के प्रावधानों को कठोरता से लागू करे। इसी आदेश के बाद दिल्ली में 45 साल पुराने वाहनों को प्रतिबंधित किए जाने तथा उत्सर्जन मानकों (Emission norms) को कठोरतापूर्वक लागू किए जाने की प्रक्रिया शुरू हुई थी।
- (ii) एक-दूसरे मामले 'एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ' (1996) में प्राथी ने पुनः एक जनहित याचिका के माध्यम से निवेदन किया कि दिल्ली में स्थित ऐसे कारखानों को जो पर्यावरण को खतरनाक तरीके से प्रदूषित करते हैं, शहर से हटाकर दिल्ली के गैर-रिहायशी बाहरी क्षेत्रों में पुनर्स्थापित कराया जाए। ऐसे कारखानों की संख्या 168 थी। इन कारखानों के मालिकों की ओर से तर्क दिया गया कि यह उनकी 'व्यवसाय की स्वतंत्रता' तथा 'आजीविका के अधिकार' के विरुद्ध होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि शहर के निवासियों का शुद्ध हवा में सांस लेने का अधिकार कारखानों के मालिकों के अपनी इच्छा के स्थान पर व्यवसाय करने के अधिकार से ज्यादा महत्वपूर्ण है। न्यायालय ने दिल्ली सरकार को आदेश दिया कि गैर-रिहायशी क्षेत्रों में ऐसे कारखानों को भूखंड आवंटित किए जाएं तथा 30 नवंबर, 1996 तक इन्हें रिहायशी क्षेत्रों से हटा दिया जाए। इसी निर्णय में न्यायमूर्ति श्री कुलदीप सिंह ने सुझाव दिया कि उच्च न्यायालयों में हरित पीठों (Green Benches) की स्थापना की जानी चाहिए। इन पीठों में ऐसे न्यायाधीश हों जो पर्यावरण से जुड़े पक्षों को ठीक से समझते हों। विशेष पीठों को बनाने से यह लाभ भी होगा कि ऐसे मामलों का फैसला जल्द से जल्द होगा तथा समाज का काफी नुकसान रोका जा सकेगा।

5. अभियुक्तों तथा दोषसिद्ध अपराधियों के अधिकार (Rights of accused and convicted persons):

न्यायालय ने कई मामलों में स्पष्ट किया है कि अभियुक्तों तथा दोषसिद्ध अपराधियों को भी गरिमापूर्ण जीवन से जुड़े कई अधिकार उपलब्ध हैं। ऐसे कुछ अधिकार निम्नलिखित हैं—

- (i) प्रत्येक अभियुक्त या कैदी को हथकड़ी (Handcuffing) सिर्फ तभी लगाई जा सकती है जब उसके भाग जाने का स्पष्ट और वर्तमान खतरा (Clear and present danger) हो। यदि पुलिस अधिकारी हथकड़ी लगाते हैं तो उन्हें इसके स्पष्ट कारणों का उल्लेख करना होगा।
- (ii) प्रत्येक अभियुक्त को निःशुल्क कानूनी सहायता (Free legal aid) प्राप्त करने का मूल अधिकार है, जब तक कि अभिक्त स्वयं उसके लिए इन्कार न कर दे।

- (v) जो व्यक्ति पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा (Police or Judicial custody) में होते हैं, उनके मूल अधिकारों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति को शारीरिक चोट पहुँचती है या उसकी मृत्यु हो जाती है तो राज्य को ऐसे व्यक्ति को क्षतिपूर्ति (Compensation) देने का आदेश दिया जा सकता है।

इसी प्रकार, अभियुक्त से पूछताछ के दौरान यदि पुलिस किसी भी प्रकार का उत्पीड़न या दमन करती है तो वह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना जाएगा।

6. महिलाओं से संबंधित कुछ अधिकार (Some Rights related with Women):

सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन के अधिकार की व्याख्या करते हुए कई ऐसे निर्णय दिये हैं जो महिलाओं की सामाजिक स्थिति को मजबूत बनाते हैं। ऐसे कुछ प्रमुख अधिकार निम्नलिखित हैं—

- (i) 'विशाखा बनाम राजस्थान राज्य' (1997) का मामला महिलाओं के अधिकारों की दृष्टि से सर्वाधिक दूरगामी महत्व का माना जाता है। 'विशाखा' नामक गैर-सरकारी संस्था (Non-governmental organisation) ने जनहित याचिका (Public interest litigation) के तौर पर यह मामला न्यायालय के समक्ष रखा था क्योंकि उसी समय राजस्थान में सामाजिक कार्य करने वाली एक महिला के साथ बलात्कार की घटना घटी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि कामकाजी महिलाओं के साथ कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (Sexual harassment) न हो सके, इसके लिए विधानमंडल को समुचित विधि बनानी चाहिए। जब तक ऐसी विधि न बनाई जाए, तब तक के लिए न्यायालय ने स्वयं कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत स्पष्ट किए, जैसे— (क) यौन उत्पीड़न का अर्थ, अर्थात् विस्तृत है जिसमें यौन संबंध के लिए प्रस्ताव देना तो शामिल है ही, यौन संबंधी छोटकरी कृत्यों, अश्लील साहित्य प्रदर्शना या अश्लील संकेत करना आदि भी शामिल है। (ख) प्रत्येक कार्यालय के प्रमुख के लिए अनिवार्य होगा कि किसी भी महिलाकर्मि द्वारा यौन उत्पीड़न की शिकायत किए जाने पर त्वरित कार्यवाही करे। (ग) यौन-उत्पीड़न की शिकायत महिला को यह अधिकार मिलनी चाहिए कि वह अपना या उत्पीड़नकर्ता का स्थानांतरण करवा सके, इत्यादि।
- (ii) 'दिल्ली डोमेस्टिक वर्कर्स फोरम बनाम यूनियन ऑफ इंडिया' (1995) का मामला एक जनहित याचिका (Public Interest Litigation) के माध्यम से उठाया गया था। इसमें जिस मूल मुद्दा की आधार बनाया गया था, वह यह था कि रात्री से दिल्ली आते समय चार घरेलू श्रमिक महिलाओं (Domestic workers) को सेना के साथ आठ जवानों ने यौन-उत्पीड़न व बलात्कार का शिकार बना लिया था। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने न सिर्फ उन महिलाओं को न्याय दिया बल्कि ऐसे सभी मामलों में महिलाओं को क्षतिपूर्ति (Compensation) प्रदान करने तथा उनके पुनर्वास (Rehabilitation) के संबंध में कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत भी निर्धारित किए, जैसे— (क) यौन शोषण की शिकायत हर महिला को नि:शुल्क विधिक सहायता (Free legal aid) के तौर पर ऐसा वकील दिया जाता चाहिए जो आपराधिक विधि (Criminal law) से भली-भाँति अवगत हो। (ख) जब वह महिला पुलिस थाने में हो तो उसका वकील उस समय उपस्थित होना चाहिए ताकि महिला भयमुक्त माहौल में रह सके। (ग) बलात्कार से पीड़ित महिलाओं की पहचान अनिवार्यतः गोपनीय रखी जाए। (घ) अपराधी चाहे दोषसिद्ध (Convict) हो या नहीं, बलात्कार की शिकायत महिला को क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए। (ङ) ऐसे मामलों में परीक्षण करते समय महिला के आत्मसम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा मानसिक स्थिति जैसे पक्षों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए क्योंकि अधिकांश मामलों में देखा जाता है कि बलात्कार का परीक्षण (Trial) बलात्कार से ज्यादा अपमानजनक सिद्ध होता है।

7. प्राण तथा दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार में निहित अन्य अधिकार

(Other Rights included in the Right to life and Personal Liberty):

न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए कई अन्य अधिकार भी व्यक्तियों को दिए हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

- (i) 'भोजन का अधिकार' (Right to food) गरिमापूर्ण जीवन का एक अनिवार्य पक्ष होने के कारण 'प्राण के अधिकार' में निहित है।

- (ii) जीवन के अधिकार में 'आश्रय का अधिकार' (Right to Shelter) भी निहित है। राज्य का दायित्व है कि वह प्रत्येक दलित और आदिवासी को आश्रय की सुविधा प्रदान करे। आश्रय का अर्थ सिर्फ छत महीया कर

- (iii) 'स्वास्थ्य का अधिकार तथा चिकित्सा सुविधा पाने का अधिकार' (Right to health and medical facility) भी जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य पक्ष है। न्यायालय ने कई मामलों में इसके पक्ष में निर्णय दिए हैं। उदाहरण के लिए, 'परमानंद कटारा बनाम भारत संघ' (1989) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 के अनुसार सरकारी और निजी अस्पतालों में कार्यरत सभी चिकित्सकों का दायित्व बनता है कि वे घायल व्यक्ति को शीघ्रतिशीघ्र चिकित्सा सुविधा प्रदान करें, पुलिस कार्यवाही का इंतजार करके समय व्यर्थ न करें क्योंकि यह जिलाब सीधे तौर पर घायल व्यक्ति के जीवन के अधिकार का उल्लंघन है।
- (iv) 'बिजली पाने का अधिकार' (Right of get electricity) भी अनुच्छेद 21 के अंतर्गत शामिल है क्योंकि आज के समय में बिजली के बिना मानवोचित जीवन जीना सम्भव नहीं है।
- (v) 'सुरक्षित यात्रा का अधिकार' (Right of safe Journey) भी अनुच्छेद 21 के अंतर्गत समाहित है।
- (vi) 'विदेश यात्रा करने का अधिकार' (Right to travel abroad) भी अनुच्छेद 21 में शामिल है। इसे केवल पर्याप्त कानूनी आधारों पर ही प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- (vii) 'नींद का अधिकार' या 'सोने का अधिकार' (Right to sleep) भी अनुच्छेद 21 के तहत मूल अधिकार घोषित किया गया है।

आपात उद्घोषणा और अनुच्छेद 21 (Emergency declaration and Article 21)

आपातकाल की स्थिति में अनुच्छेद 21 की स्थिति को लेकर काफी विवाद होता रहा है। ध्यातव्य है कि संविधान में राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई है कि यदि अनुच्छेद 352 के तहत देश में आपात की घोषणा की गई है तो वह अनुच्छेद 359 के अंतर्गत विशेष आदेश निकालकर संविधान के भाग-3 में दिए गए मूल अधिकारों में से जिन्हें उचित समझे न्यायालय से प्रवर्तित कराए जाने का अधिकार निलंबित कर सकता है। अतः अनुच्छेद 21 का निलंबन अनुच्छेद 359 में दी गई शक्ति के आधार पर किया जा सकता है। 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान पहली बार तथा 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में दूसरी बार अनुच्छेद 21 को निलंबित किया गया था। तीसरी बार यह तब हुआ जब 1975 में 'आंतरिक अशांति' (Internal Disturbance) के आधार पर आपात की उद्घोषणा होने के बाद राष्ट्रपति ने इस आशय की घोषणा की।

आपातकाल की समाप्ति के बाद 1977 के चुनाव में जनता पार्टी की सरकार बनी जिसने चुनावी घोषणाओं में वायदा किया था कि वह वैहिक स्वतंत्रता के अधिकार की सुरक्षा के लिए उस कदम उठाएगी। जनता पार्टी की सरकार के प्रयासों से संसद ने '44वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' पारित किया जिसमें अनुच्छेद 359 का संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी गई कि अनुच्छेद 20 और 21 द्वारा दिये गये अधिकारों को राष्ट्रपति के आदेश द्वारा भी निलंबित नहीं किया जा सकेगा।

अनुच्छेद 22: कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण

(Article 22: Protection against Arrest and detention in certain cases)

अनुच्छेद 22 अनुच्छेद 21 से गहरे तौर पर संबंधित है। अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता' की गारंटी देता है तथा प्रावधान करता है कि 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) के बिना किसी भी व्यक्ति को इन अधिकारों से वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 22 स्पष्ट करता है कि यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार (Arrest) या निरुद्ध (Detain) किया जाता है, जो कि उसे 'दैहिक स्वतंत्रता' (Personal liberty) से वंचित करना ही है, तो विधानमंडल द्वारा इस संबंध में बनाई गई प्रक्रिया-विधि (Procedural law) में कौन-कौन सी शर्तों का पूरा होना जरूरी है। 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 22 अपने आप में संपूर्ण नहीं है, वह अनुच्छेद 21 का पूरक (Complimentary) है। अतः इन दोनों को एक साथ पढ़ा जाना जरूरी है।

वस्तुतः, गिरफ्तारी (Arrest) या निरोध (Detention) के दो प्रकार होते हैं— दण्डात्मक निरोध (Punitive detention) तथा निवारक निरोध (Preventive detention)। दण्डात्मक निरोध या गिरफ्तारी (Punitive detention or arrest) इसलिए की जाती है कि किसी व्यक्ति पर कोई अपराध करने का संदेह है या उस पर अपराध सिद्ध हो गया है, अतः उसे कारावास में रखे जाने की जरूरत है। 'निवारक निरोध' (Preventive detention) इससे भिन्न है। इसमें किसी अनुचित कृत्य को किए जाने के कारण व्यक्ति को निरुद्ध नहीं किया जाता बल्कि इसलिए किया जाता है कि वह अनुचित कृत्य न कर सके। जिस व्यक्ति के संबंध में यह संभावना होती है कि वह कानून व्यवस्था को ध्वस्त कर सकता है, उसे अपराध करने से पहले ही निरुद्ध (detain) कर लेना 'निवारक निरोध' (Preventive detention) है।

अनुच्छेद 22 के अंतर्गत सात उपखण्ड हैं जो 22(1) से 22(7) तक हैं। इनमें से 22(1) और 22(2) का संबंध सामान्य गिरफ्तारी (General arrest) या दण्डात्मक निरोध (Punitive Detention) से है जबकि 22(4) से 22(7) तक का संबंध 'निवारक निरोध' (Preventive Detention) से है। अनुच्छेद 22(3) में अनुच्छेद 22(1) और 22(2) से विमुक्तियाँ बताई गई हैं किंतु इसका आंशिक संबंध 22(4) से 22(7) तक के अनुच्छेदों से भी है।

अनुच्छेद 22(1), 22(2) तथा 22(3): सामान्य विधि के अंतर्गत गिरफ्तारी से संरक्षण

(Article 22(1), 22(2) and 22(3): Protection against arrest under general law):

अनुच्छेद 22(1) तथा 22(2) में बताया गया है कि यदि किसी व्यक्ति को सामान्य दण्ड विधि के अधीन गिरफ्तार किया जाता है तो उसे कौन-कौन से अधिकार प्राप्त होंगे, ऐसे तीन अधिकार व्यक्तियों को दिये गये हैं—

- (क) अपनी गिरफ्तारी का कारण जानने का अधिकार।
- (ख) अपनी रुचि के वकील से अपना मामला प्रस्तुत कराने का अधिकार।
- (ग) 24 घण्टों में मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुति का अधिकार।

सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा है कि बहुत से व्यक्तियों को कानून की जानकारी न होने के कारण पुलिस के मनमाने व्यवहार से परेशानी उठानी पड़ती है। कुछ ऐतिहासिक निर्णयों में गिरफ्तारी के संबंध में विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत स्पष्ट किए हैं। जो इस प्रकार हैं—

- (क) किसी व्यक्ति को सिर्फ इसलिए गिरफ्तार नहीं किया जाएगा कि पुलिस अधिकारी को उसके अपराध में सहयोगी होने की आशंका है। जब तक उसके विरुद्ध प्राथमिक जाँच के आधार पर संदेह के पर्याप्त कारण मौजूद न हों, पुलिस को उसकी गिरफ्तारी नहीं करनी चाहिए।
- (ख) गिरफ्तार व्यक्ति को अधिकार है कि यदि वह निवेदन करे तो उसके द्वारा बताए गए व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी की सूचना यथाशीघ्र दी जाए।
- (ग) पुलिस डायरी में यह प्रविष्टि (Entry) करना अनिवार्य होगा कि गिरफ्तारी की सूचना किस व्यक्ति को दी गई थी।

-(छ) यदि गिरफ्तारी 15 दिनों से आगे बढ़ती है तो उस व्यक्ति को सिर्फ न्यायिक अभिरक्षा (Judicial custody) में ही रखा जा सकेगा, पुलिस अभिरक्षा (Police custody) में नहीं।

(ज) यदि 90 दिनों के भीतर अन्वेषण (Investigation) की प्रक्रिया पूरी नहीं होती है तो अभियुक्त को अपराध प्रक्रिया संहिता (Criminal procedure code) की धारा 167 के अंतर्गत जमानत पर छोड़ना अनिवार्य होगा। इस उद्देश्य के लिए 90 दिनों की गिनती मजिस्ट्रेट के आदेश के दिन से शुरू की जाएगी।

अनुच्छेद 22(3) में दो अपवाद बताए गए हैं जो अनुच्छेद 22(1) और 22(2) के संबंध में हैं। इसमें बताया गया है कि अनुच्छेद 22(1) और 22(2) द्वारा प्रदत्त अधिकार निम्नलिखित दो प्रकार के व्यक्तियों को उपलब्ध नहीं हैं—

(क) शत्रु देशों के व्यक्तियों को (जो देश उस समय शत्रु देशों की सूची में शामिल हैं); तथा

(ख) यदि उस समय 'निवारक निरोध अधिनियम' (Preventive detention act) की कोई विधि लागू हो और किसी व्यक्ति को उसके अंतर्गत गिरफ्तार किया गया हो।

ध्यातव्य है कि शत्रु देश के व्यक्ति अनुच्छेद 22(4) और (5) के अधीन 'निवारक निरोध' (Preventive detention) के मामले में संरक्षण का दावा कर सकते हैं किंतु अनुच्छेद 22(1) और 22(2) के अधीन नहीं।

अनुच्छेद 22(4)-(7) : निवारक निरोध (Preventive Detention):

निवारक निरोध (Preventive detention) से जुड़े उपबन्ध भारतीय संविधान के सर्वाधिक विवादास्पद हिस्सों में शामिल हैं। सामान्यतः माना जाता है कि किसी भी लोकतन्त्र में निवारक निरोध (Preventive detention) की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए, और यदि उसे रखना जरूरी हो तो भी सिर्फ आपातकाल तक सीमित रखा जाना चाहिए। अमेरिकी संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो शांतकाल में निवारक निरोध की व्यवस्था करता हो। इंग्लैंड में भी सामान्य स्थितियों में निवारक निरोध की व्यवस्था नहीं है।

भारत की स्थिति इन दोनों देशों से अलग है। अंग्रेजी शासन के दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारत में निवारक निरोध की व्यवस्था बना रखी थी जिसका अनुभव हमारे संविधान निर्माताओं को था। चाहे 1818 का 'बंगाल विनियम 311' (Bengal regulation III- Bengal state prisoners regulation) रहा हो, चाहे 'भारत रक्षा अधिनियम, 1939' (Defence of India act, 1939) के अंतर्गत नियम 26 - इनमें स्पष्ट प्रावधान था कि देश की रक्षा और आंतरिक सुरक्षा को बनाए रखने के लिए यदि सरकार की राय में किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जाना आवश्यक हो तो सरकार ऐसा कर सकती है।

भारतीय संविधान निर्माताओं के समक्ष दोहरी चुनौती थी। एक ओर उन्हें कठिन संघर्षों से प्राप्त हुई स्वतंत्रता की रक्षा करनी थी और प्रत्येक व्यक्ति को परिपूर्ण जीवन के लिए आवश्यक प्रत्येक स्वतंत्रता प्रदान करनी थी तो दूसरी ओर उन पर राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाए रखने का दबाव भी था। वे जानते थे कि भारत में जितनी तरह का धार्मिक, भाषायी, जातीय तथा नस्लीय वैविध्य है, उसमें राष्ट्रीय चेतना को बनाए रखना आसान नहीं होगा। भारत की आजादी के समय हुए सांप्रदायिक दंगों तथा देश के विभाजन ने उनकी चिंताओं को और बढ़ा दिया था। इन विशिष्ट स्थितियों की गंभीरता को समझते हुए उन्होंने तय किया कि संविधान में निवारक निरोध के उपबन्ध कर दिए जाएं ताकि विध्वंसक गतिविधियों को समय रहते रोक जा सके। किंतु, इसके साथ-साथ उन्होंने कुछ रक्षोपाय (Safety measures) भी निर्धारित कर दिये ताकि ऐसे प्रावधानों का सामान्यतः दुरुपयोग न हो सके। ध्यातव्य है कि निवारक निरोध संबंधी उपबन्ध आत्यंतिक नहीं हैं, इनके लिए अनुच्छेद 22(4) से 22(7) तक दिए गए रक्षोपायों से सुसंगत होना जरूरी है।

अनुच्छेद 22(4) से 22(7) के अंतर्गत निवारक निरोध के अंतर्गत निरुद्ध किए गए व्यक्ति को तीन संरक्षण दिए गए हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. निरोध का सलाहकार बोर्ड (Advisory Board) द्वारा पुनर्विलोकन - मूल संविधान में अनुच्छेद 22(4) के अंतर्गत प्रावधान था कि किसी भी व्यक्ति को निवारक निरोध के अंतर्गत तीन पहलों से ज्यादा समय तक तभी निरुद्ध किया जा सकेगा यदि सलाहकार बोर्ड इन तीन पहलों की सफाई से पहले ही रिपोर्ट दे दे कि उसकी राय में निरोध के पर्याप्त कारण हैं। यह सलाहकार बोर्ड (Advisory Board) उच्च न्यायालय के वर्तमान या भूतपूर्व न्यायाधीशों अथवा उच्च न्यायालय में न्यायाधीश बन चुकने की अवस्था में न्यायाधीशों के समूह के रूप में नियुक्त किए जा सकते हैं।

न्यायाधीश ही हो सकेगा तथा शेष दो सदस्य भी उच्च न्यायालय के वर्तमान या भूतपूर्व न्यायाधीश ही होंगे।

44वें संविधान संशोधन में यह व्यवस्था की गई थी कि केंद्र सरकार एक अधिसूचना (Notification) निकालकर अनुच्छेद 22 से जुड़े परिवर्तनों को लागू कर सकेगी। किंतु, यह अधिसूचना निकाले जाने से पहले ही जनता पार्टी की सरकार गिर गई और 1980 के चुनावों में श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में पुनः कांग्रेस की सरकार बनी। नई सरकार ने अधिसूचना जारी ही नहीं की जिसके कारण आज तक व्यवहार में वही प्रावधान चल रहे हैं जो 44वें संविधान संशोधन से पहले लागू थे।

2. गिरफ्तारी के कारण जानने का अधिकार – अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत निरुद्ध व्यक्ति को यह अधिकार दिया गया है। इस अनुच्छेद में निवारक निरोध का आदेश जारी करने वाले प्राधिकारी को निर्देश दिया गया है कि वह निरुद्ध व्यक्ति को यथाशीघ्र वे आधार संप्रेषित (communicate) करे जिनके कारण उसे निरुद्ध किया गया है।
3. अभ्यावेदन (Presentation) देने का अधिकार – यह अधिकार भी अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत दिया गया है। इसमें प्रावधान है कि निरुद्ध व्यक्ति को अपने निरोध आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र (Earliest) अवसर प्रदान किया जाएगा। इसमें यह भी निहित है कि उसके अभ्यावेदन पर शीघ्रातिशीघ्र विचार किया जाना चाहिए। न्यायालय ने कई मामलों में निर्धारित किया है कि यदि सरकार ऐसे अभ्यावेदन पर विचार करने या प्रतिक्रिया देने में चिलंब करती है तो निरोध अवैध घोषित कर दिया जाएगा।

निवारक निरोध विधियों का इतिहास (History of Preventive detention laws)

अनुच्छेद 22 में प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करते हुए संसद ने निवारक निरोध से संबंधित कई कानून बनाए हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) : यह अधिनियम 1950 में पारित किया गया था। इसकी खास बात यह थी कि इसमें सलाहकार बोर्ड को निरोध आदेश के 10 सप्ताह के भीतर सरकार को रिपोर्ट भेजने का प्रावधान था। इसकी धारा 4 विवादास्पद थी क्योंकि यह इस बात को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) से परे करती थी कि निरुद्ध व्यक्ति को निरोध के आधारों से संबंधित सूचना दी गई है या नहीं? ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य (1950) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस धारा को असंवैधानिक घोषित कर दिया था। इस अधिनियम को 1 अप्रैल 1951 तक समाप्त हो जाना था, किंतु बार-बार इसकी अवधि बढ़ाई जाती रही और अंततः दिसंबर, 1969 तक यह लागू रहा।
2. आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (MISA- Maintenance of Internal Security Act) : 1971 में कांग्रेस की सरकार ने यह अधिनियम पारित किया और इसके माध्यम से निवारक निरोध की व्यवस्था पुनः लागू कर दी। इसके प्रावधान प्रायः वही थे जो 'निवारक निरोध अधिनियम, 1950' के थे। आगे चलकर, यह अधिनियम जनता पार्टी सरकार द्वारा 1978 में निरस्त किया गया।
3. विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम (कोफेपोसा) (COFEPOSA- Conservation of foreign exchange and prevention of smuggling activities act) : यह अधिनियम संसद ने 1974 में पारित किया था। वस्तुतः यह 1971 के 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम' (MISA) के पूरक के तौर पर बनाया गया था। जहाँ 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम' (MISA) का उद्देश्य आंतरिक सुरक्षा (Internal Security) से जुड़े प्रश्नों पर निवारक निरोध की व्यवस्था लागू करना था, वहीं 'कोफेपोसा' (COFEPOSA) का उद्देश्य तस्करी (Smuggling) तथा विदेशी मुद्रा (Foreign currency) से जुड़े अपराधों के संबंध में निवारक निरोध की व्यवस्था लागू करना था।
4. चोरबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अधिनियम, 1980 (The Prevention of Blackmarketing and Maintenance of Essential Commodities act, 1980) : यह अधिनियम जनता पार्टी सरकार द्वारा पारित किया गया था। जनता पार्टी सरकार ने मीसा (MISA) अधिनियम को तो निरस्त कर दिया था किंतु कुछ समय बाद उसे लागू लगा कि निवारक निरोध की व्यवस्था बनाए रखना आवश्यक है। इसलिए, इस सरकार ने 'चोरबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अधिनियम' का निर्माण किया जो निवारक निरोध की व्यवस्था करता था। किंतु इस कानून के

5. **राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, 1980 (National Security Act, 1980):** श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार 1980 में पुनः बनी। जनता पार्टी की सरकार 1978 में 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम' (MISA) को निरस्त कर चुकी थी। श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने 1980 में सत्ता संभालने के तुरंत बाद 'राष्ट्रीय सुरक्षा कानून' ('रासुका' नाम से प्रसिद्ध) या 'राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम' (National Security Act) पारित कराया जो एक अर्थ में 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम' (MISA) का ही नया रूप था।

6. **आतंकवादी एवं विध्वंसक गतिविधियाँ (निवारक) अधिनियम, 1987 [TADA- (The Terrorist And Disruptive Activities (Prevention) Act, 1987)]:** 'टाडा' (TADA) के नाम से प्रसिद्ध यह अधिनियम पहला ऐसा प्रयास था जिसमें केंद्र सरकार ने 'आतंकवादी गतिविधियों' को परिभाषित किया था और उनसे निपटने के लिए विशेष प्रावधान किए थे। 1980 के दशक में पंजाब में आतंकवाद के बढ़ने के कारण इस अधिनियम की ज़रूरत महसूस की गई थी। 'टाडा' (TADA) पहली बार 1985 में लागू हुआ। इसमें प्रावधान था कि यह दो वर्षों की अवधि पूरी होने पर स्वतः समाप्त हो जाएगा। इसलिए, सरकार के लिए ज़रूरी था कि यदि वह इसे बनाए रखना चाहती है तो हर दो वर्ष में इसे संसद से पुनः पारित कराए। 1987 में इसे कुछ संशोधनों के साथ पुनः पारित करके लागू किया गया। 1989, 1991 और 1993 में इसे यथावत रूप में पुनः लागू किया गया किंतु 1995 में इसे समाप्त हो जाने दिया गया क्योंकि मानवाधिकार कार्यकर्ताओं तथा विपक्षी दलों द्वारा इसकी व्यापक आलोचना की जा रही थी।

टाडा में 1994 तक लगभग 76000 लोग गिरफ्तार किए गए जिनमें से 2% से भी कम मामलों में अभियुक्तों का अपराध सिद्ध हुआ। देश भर में इस कानून ने सरकार की निरंकुशता के प्रति नागरिकों का माहौल पैदा किया जिसका परिणाम था कि 1995 में इस अधिनियम को विस्तार नहीं दिया गया।

7. **आतंकवाद निवारक अधिनियम, 2002 [(The Prevention of Terrorism Act, 2002)]:** 1995 में नरसिंह राव की कांग्रेस सरकार ने टाडा को समाप्त हो जाने दिया था और उसके बाद से आतंकवाद से लड़ने के लिए कोई विशेष कानून अस्तित्व में नहीं था। 1999 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA- National Democratic Alliance) की सरकार बनी जो आतंकवाद के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने के पक्ष में थी। 11 सितंबर, 2001 को अमेरिका में हुई आतंकवादी घटना, जिसमें वर्ल्ड ट्रेड सेंटर को ध्वस्त कर दिया गया था, को देखते हुए सरकार ने तय किया कि आतंकवादी घटनाओं से निपटने के लिए विशेष कानून बनाया जाना चाहिए। इस दिशा में पहला कदम 2001 में उठाया गया जब 'पोटो' अर्थात् 'आतंकवाद निवारक अध्यादेश, 2001' (Prevention of Terrorism Ordinance, 2001) जारी किया गया। 2002 में इसी अध्यादेश को संसद द्वारा पारित कराया गया और तब से 'पोटो' (POTO) 'पोटा' (POTA) में रूपांतरित हो गया।

वाजपेयी सरकार का दावा था कि 'पोटा' आतंकवाद से लड़ने के लिए भारत का सबसे मजबूत कदम है। यह कानून 'टाडा' की तुलना में कुछ कम आक्रामक था। उदाहरण के लिए, इसमें निरुद्ध व्यक्ति को 180 दिनों तक अदालत में आरोप-पत्र दीखल किए बिना रखा जा सकता था जबकि 'टाडा' में यह अवधि 1 साल थी। शेष प्रावधान इसमें भी प्रायः वैसे ही थे जैसे 'टाडा' में। यह कानून सिर्फ दो सालों तक ही लागू रह सका क्योंकि 2004 के लोकसभा चुनावों में राजग (NDA) के विरोधी दल कांग्रेस ने अपनी चुनावी घोषणाओं में वायदा किया था कि सरकार बनने की स्थिति में वह पोटो को निरस्त कर देगी। चुनावों के बाद कांग्रेस नेतृत्व में 'संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन' (United Progressive Alliance) का निर्माण हुआ तथा सरकार बनी जिसने पोटो को निरस्त कर दिया।

8. **गैर-कानूनी गतिविधियाँ (निवारण) संशोधन अधिनियम, 2008 [The Unlawful Activities (Prevention) Amendment Act, 2008]:** पोटो को समाप्त कर देने के बाद संग्रम सरकार के पास कोई ऐसा कानून नहीं था जिसके तहत वह आतंकवादी गतिविधियों से प्रभावी तौर पर निपट पाती। इसलिए उसने कोई नया कानून बनाकर आलोचनाएँ झेलने की बजाय एक पुराने कानून में ही संशोधन करके काम चलाने का निर्णय किया। भारत सरकार ने 'गैर-कानूनी गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम, 1967' [The Unlawful Activities (Prevention) Act, 1967] पारित किया था जिसका उद्देश्य राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों को नियंत्रित करना था। यह अधिनियम 1969 में संशोधित किया गया था।

Unit: 6.4 (2)

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार सिर्फ नागरिकों को 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से वंचित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।
- (ii) अनुच्छेद 21 मूल संविधान में नहीं था, वरन् प्रथम संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
 (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों
 (4) न तो (i) और न ही (ii)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) ब्रिटेन में नागरिकों को प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार कार्यपालिका अर्थात् सरकार को मिलता ही प्राप्त है, विधायिका या संसद को विलंब नहीं।
- (ii) अमरीकी संविधान में प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति यथोचित विधि प्रक्रिया (Due process of Law) के बिना अपनी दैहिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
 (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों
 (4) न तो (i) और न ही (ii)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वतंत्रता से 'यथोचित विधि प्रक्रिया' के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।
- (ii) 'मेनका गांधी बनाम भारत-संघ' (1978) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by Law) वाक्यांश को 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of Law) का समानार्थक घोषित किया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

4. निम्न में से कौन-सा संविधान संशोधन अधिनियम को दया शिक्षा

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में सभी उम्र के भारतीय नागरिकों को शिक्षा का अधिकार, मूल अधिकार के रूप में, प्रदान किया गया है।
- (ii) संविधान में अनुच्छेद 21(क) में शिक्षा के अधिकार का प्रावधान किया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अनुच्छेद 21(क) में 'निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा' का प्रावधान है।
- (ii) अनुच्छेद 21(क) में शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में 6 से 14 वर्ष की आयु का प्रावधान है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

7. निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम कब पारित किया गया है?

- (1) 2002 में (2) 2004 में
 (3) 2006 में (4) 2009 में

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम के पारित हो जाने से अब शिक्षा का अधिकार 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए एक वास्तविक अधिकार बन गया है।
- (ii) यदि किसी बच्चे को किसी भी विद्यालय में प्रवेश न मिले तो वह न्यायालय के माध्यम से अपने अधिकार का प्रवर्तन (Enforcement) कर सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

9. एकांतता का अधिकार (Right to Privacy) का संबंध निम्न में किस अनुच्छेद से है?

- (1) अनुच्छेद 19 (2) अनुच्छेद 20
 (3) अनुच्छेद 21 (4) अनुच्छेद 22

10. सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार 'एकांतता के अधिकार' का उल्लंघन माना जा सकता है—

- (i) किसी व्यक्ति का टैलीफोन टेप करना।

11. एकांतता के अधिकार का संबंध है—

- (1) अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण से।
- (2) प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार से।
- (3) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से।
- (4) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण से।

12. निम्नलिखित में कौन-कौन से अधिकार प्राण तथा दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार में निहित हैं?

- (i) भोजन का अधिकार।
- (ii) नींद या सोने का अधिकार।
- (iii) चिकित्सा सुविधा पाने का अधिकार।
- (iv) विदेश भ्रमण का अधिकार।

कूट—

- (1) (i) और (iii)
- (2) (ii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) आपात्काल में अनुच्छेद 20 और 21 को निलंबित किया जा सकता है।
- (ii) अनुच्छेद 20 और 21 के निलंबन के लिए राष्ट्रपति को आदेश निकालना अनिवार्य है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अनुच्छेद 20 और 21 का निलंबन आपात्काल में भी नहीं किया जा सकता है।
- (ii) उपरोक्त प्रावधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा किया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) 44वें संविधान संशोधन से पूर्व यह व्यवस्था थी कि आपात्काल (अनुच्छेद 352 के तहत) में अनुच्छेद 21 का निलंबन किया जा सकता है।

16. भारत में अब तक कितनी बार अनुच्छेद 21 का निलंबन किया जा चुका है?

- (1) एक बार।
- (2) दो बार।
- (3) तीन बार।
- (4) कभी नहीं।

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 में है।
- (ii) 'भेनका गांधी बनाम भारत संघ' (1978) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 22, अनुच्छेद 21 के पूरक के रूप में है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

18. 'निवारक निरोध' (Preventive detention) से आशय है—

- (1) अपराध के लिए दण्ड देना।
- (2) अपराधियों को न्यायालय में प्रस्तुत करना।
- (3) किसी व्यक्ति को अमराध करने से पहले ही निरुद्ध (detain) करना।
- (4) गिरफ्तार व्यक्तियों को न्यायालय के आदेश पर रिहा करना।

19. 'निवारक निरोध' (Preventive detention) का प्रावधान है—

- (1) अनुच्छेद 22(1) से 22(7) तक
- (2) अनुच्छेद 22(1) से 22(2) तक
- (3) अनुच्छेद 22(4) से 22(7) तक
- (4) अनुच्छेद 22(2) से 22(3) तक

20. यदि किसी व्यक्ति को सामान्य दण्ड विधि के अधीन गिरफ्तार किया जाता है तो उसे निम्नलिखित कौन-कौन से अधिकार प्राप्त होंगे?

- (i) अपनी गिरफ्तारी का कारण जानने का अधिकार।
- (ii) अपनी रुचि के वकील से अपना मामला प्रस्तुत करने का अधिकार।
- (iii) 24 घंटों में मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुति का अधिकार।

कूट—

- (1) केवल (i)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

21. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

22. सामान्य दण्ड विधि के अधीन किसी अभियुक्त को न्यायिक मजिस्ट्रेट अधिकतम कितने दिनों की अवधि के लिए पुलिस की न्यायिक अभिरक्षा (Judicial Custody of Police) में रखे जाने का आदेश दे सकता है?

- (1) 15 दिनों की अवधि के लिए।
- (2) 24 घंटे के लिए।
- (3) 90 दिनों की अवधि के लिए।
- (4) मजिस्ट्रेट की इच्छा पर निर्भर है।

23. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) अमेरिका में सामान्य परिस्थितियों अर्थात् शांति काल में निवारक निरोध की व्यवस्था नहीं है।
- (ii) भारत में आपातकाल एवं शांति काल दोनों में निवारक निरोध की व्यवस्था है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

25. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) मूल सविधान में यह प्रावधान था कि किसी भी व्यक्ति को निवारक निरोध के अन्तर्गत तीन महीने से ज्यादा समय तक तभी निरुद्ध किया जा सकता है, जब सलाहकार बोर्ड इन तीन महीनों का समाप्ति से पहले ही निरोध के पर्याप्त कारणों को रिपोर्ट में प्रस्तुत करे।
- (ii) 42वें संविधान संशोधन, 1976 के माध्यम से यह प्रावधान किया गया है कि 2 माह से अधिक अवधि के लिए निरोध तभी लागू होगा जब सलाहकार बोर्ड उसके पक्ष में अपनी संस्तुति दे।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

26. निवारक निरोध के सलाहकार बोर्ड (Advisory Board) के संदर्भ में सत्य है-

- (i) बोर्ड में कम से कम एक अध्यक्ष और दो सदस्य अवश्य होंगे।
- (ii) तीनों सदस्यों का चयन उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से किया जाएगा।

(iii) बोर्ड का अध्यक्ष उच्च न्यायालय का कोई वर्तमान न्यायाधीश ही होगा तथा शेष दो सदस्य भी उच्च न्यायालय के वर्तमान या भूतपूर्व न्यायाधीश ही होंगे।

कूट-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

27. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

- (i) निवारक निरोध के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्तियों को गिरफ्तारी के कारण जानने का अधिकार नहीं है।
- (ii) निवारक निरोध के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्तियों को अपने निरोध आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन (Presentation) प्रस्तुत करने का भी अधिकार नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

28. निम्नलिखित में से किस अधिनियम में सरकार ने 'आतंकवादी गतिविधियों' को परिभाषित करने का पहला प्रयास किया था?

- (1) आतंकवाद निवारक अधिनियम, 2002
- (2) आतंकवादी एवं विध्वंसक गतिविधियों (निवारक) अधिनियम, 1987
- (3) गैर-कानूनी गतिविधियों (निवारण) संशोधन अधिनियम, 2008
- (4) राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, 1980

29. राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (रासुका) किसके शासनकाल में बना?

- (1) जनता पार्टी की सरकार।
- (2) इंदिरा गांधी की सरकार।
- (3) वाजपेयी की सरकार।
- (4) सप्रग (यूपीए) सरकार।

30. निम्नलिखित में कौन-कौन से अधिनियम वर्तमान में भारत में क्रियाशील हैं?

- (i) निवारक निरोध अधिनियम।
- (ii) आंतरिक सुरक्षा अधिनियम।
- (iii) आतंकवाद निवारक अधिनियम।
- (iv) टाडा (TADA)

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) उपरोक्त सभी।
- (4) उपरोक्त में से कोई नहीं।

शोषण के विरुद्ध अधिकार: अनुच्छेद 23 और 24

(Right Against Exploitation: Article 23 and 24)

संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो समाज के वंचित वर्गों को किसी भी तरह के शोषण से बचाने की व्यवस्था करते हैं। भारतीय समाज में स्त्री, दलित, जनजातियाँ, भूमिहीन मजदूर, अत्यंत गरीब किसान तथा गरीब व अनाथ बच्चों जैसे कई दुर्बल वर्ग थे जिन्हें ताकतवर वर्गों के शोषण से बचाने के लिए विशेष संरक्षण की आवश्यकता थी। इन आवश्यकताओं को समझते हुए संविधान सभा ने संविधान में अनुच्छेद 23 और 24 की व्यवस्था की। इन दोनों अनुच्छेदों की विषय-वस्तु इस प्रकार हैं—

अनुच्छेद 23— मानव के दुर्व्यापार (Trafficking), बेगार और बलात् श्रम (Forced labour) का प्रतिषेध (Prohibition)।

अनुच्छेद 24— कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध।

अनुच्छेद 23: मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध

(Article 23: Prohibition of Traffic in Human beings and forced Labour)

अनुच्छेद 23 के अंतर्गत दो खण्ड हैं— 23(1) और 23(2)। इन दोनों का मूल पाठ इस प्रकार है—

23(1)— "मानव का दुर्व्यापार (Human trafficking) और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम (Forced labour) प्रतिषिद्ध (Prohibit) किया जाता है और इस उपबन्ध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।"

23(2)— "इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों (Public purposes) के लिए अनिवार्य सेवा (Compulsory service) अधिरोपित करने से निवारित (Prevent) नहीं करेगी। ऐसी सेवा अधिरोपित करने में राज्य केवल धर्म (Religion), मूलवंश (Race), जाति (Caste) या वर्ग (Class) या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।"

अनुच्छेद 23(1) में स्पष्ट किया गया है कि मानव का दुर्व्यापार (Human trafficking), बेगार (Bonded labour) तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम (Forced labour) प्रतिषिद्ध होगा। ध्यातव्य है कि व्यक्ति को यह संरक्षण सिर्फ राज्य के विरुद्ध प्राप्त नहीं है बल्कि प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भी प्राप्त है। यह जरूरी भी है क्योंकि व्यक्तियों के क्रय-विक्रय का खतरा राज्य की ओर से कम है, प्राइवेट व्यक्तियों की ओर से ज्यादा। नूनः यह संरक्षण सिर्फ नागरिकों को ही नहीं, अनागरिकों को भी प्राप्त है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस अधिकार का संबंध प्रत्येक मानव के लिए जरूरी 'मानवाधिकारों' से है; भारत की एकता, अखंडता या संप्रभुता से इसका कोई सीधा संबंध नहीं है।

'मानव का दुर्व्यापार' (Trafficking in human being) शब्दावली का अर्थ सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में स्पष्ट किया है। इसका सामान्य अर्थ तो मनुष्यों का क्रय-विक्रय है, जैसा यूरोप और अमेरिका के इतिहास में मिलने वाली दास-प्रथा (Slavery system) में दिखाई पड़ता था। भारतीय इतिहास के किसी काल में यूरोपीय ढाँचे से मिलती-जुलती दास प्रथा थी या नहीं, इस पर इतिहासकारों में मतभेद है। यही कारण है कि अनुच्छेद 23 में 'दास प्रथा' (Slavery) का उल्लेख नहीं किया गया है जबकि अमेरिकी संविधान के 13वें संशोधन में स्पष्ट शब्दों में 'दास प्रथा' के प्रतिषेध की बात कही गई है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अमेरिका में दास-प्रथा बहुत बड़ी समस्या थी और 19वीं शताब्दी में इस समस्या से मुक्त होने के लिए वहाँ दासों को एक गृह-युद्ध (Civil war) लड़ना पड़ा था।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यहाँ औपचारिक रूप में चाहे दास व्यवस्था न रही हो, पर व्यावहारिक रूप में ऐसे उदाहरण दिख जाते हैं जहाँ वेश्यावृत्ति जैसे कार्यों के लिए महिलाओं और बच्चियों को बेचा जाता है तथा कई मामलों में छोटे और गरीब बच्चों को भी भिक्षावृत्ति (Beggary), बालश्रम (Child labour) या बाल-यौन-दुराचार (Paedophilia) के लिए बेचा जाता है। यही कारण है कि सर्वोच्च न्यायालय ने 'मानव दुर्व्यापार' (Trafficking in human beings) शब्दावली की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित

अनुच्छेद 23(1) में 'बेगार' (Bonded labour) तथा अन्य 'बलात् श्रम' (Forced labour) का भी प्रतिषेध किया गया है। बेगार (Bonded labour) सामंतवादी-समाजों का एक शोषणपरक प्रणाली का नाम है जिसमें सामंत या ज़मींदार वर्ग के लोग गरीबों से काम लेते थे किंतु उनकी सेवा के लिए कोई मूल्य नहीं चुकाते थे। गरीबों को बेगार इसलिए करनी पड़ती थी क्योंकि ऐसा नहीं करने की स्थिति में उन्हें यातनाएँ दी जाती थीं। सर्वोच्च न्यायालय ने 'बेगार' तथा 'बलात् श्रम' का अर्थ कुछ निर्णयों में विस्तृत कर दिया है जिसके कुछ प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं—

- (1) 'पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ' (1982) के मामले में, जो 'एशियाई खेलों के मामले' (Asian games case) के नाम से प्रसिद्ध है, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि 'बलात् श्रम' शब्दावली में 'बल' (Force) का अर्थ सिर्फ 'शारीरिक बल' (Physical force) या 'कानूनी बल' (Legal force) तक सीमित नहीं है, इसमें वह बल भी शामिल है जो किसी गरीब व्यक्ति की मजबूरी के कारण सम्पन्न व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है और वह उन मजबूरियों का फायदा उठाकर कम पारिश्रमिक पर काम करवा सकता है।
- (2) 'बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ' (1983) के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने इसी दृष्टिकोण को अपनाया और अमानवीय स्थितियों में कार्य कर रहे खदान मजदूरों को अनुच्छेद 23 के तहत शोषण का शिकार माना।

अनुच्छेद 23(1) के अंतिम हिस्से में कहा गया है कि "इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा और विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।" इसमें निहित है कि अनुच्छेद 23 पर्याप्त नहीं है, उसके अनुरूप दंड की व्यवस्था करने के लिए कोई विधि बनाए जाने की भी ज़रूरत है। अनुच्छेद 35 में संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह मूल अधिकारों का प्रवर्तन करने के लिए आवश्यक विधियाँ बनाए। इस शक्ति के आधार पर संसद ने दो विशेष कानून बनाए हैं जो मानव दुर्व्यापार तथा बंधुआ मजदूरी या बेगार से संबंधित कृत्यों के लिए दण्ड की व्यवस्था करते हैं। ये हैं—

- (i) अनैतिक दुर्व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (The Immoral traffic (prevention) act, 1956)
- (ii) बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 (The Bonded labour system (abolition) act, 1976)

अनुच्छेद 23(2) में अनुच्छेद 23(1) का विशिष्ट अपवाद (Exception) दिया गया है। अपवाद यह है कि राज्य 'सार्वजनिक प्रयोजन' (Public purpose) के लिए अनिवार्य सेवाएँ (Compulsory services) लागू कर सकता है और किसी भी व्यक्ति को उक्त कार्य के लिए बाध्य कर सकता है। उदाहरण के लिए, राज्य-युद्ध जैसी स्थितियाँ होने पर अनिवार्य सैनिक-सेवा (Compulsory military service) लागू कर सकता है तो किसी प्राकृतिक आपदा (Natural disaster) या सामाजिक संकट (Social crisis) के समय अनिवार्य सामाजिक सेवा (Compulsory social service) लागू कर सकता है। विश्व के 60 से अधिक देशों में अनिवार्य सैनिक सेवा का नियम वर्तमान में भी लागू है, जैसे इज़राइल, क्यूबा, वियतनाम आदि में। भारत में अभी तक अनिवार्य सेवा लागू नहीं की गई है।

इस संबंध में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अनुच्छेद 23(2) के अनुसार राज्य पर यह बाधता है कि अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने की प्रक्रिया में वह केवल धर्म (Religion), मूलवंश (Race), जाति (Caste) या वर्ग (Class) या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता है। तात्पर्य यह कि यदि राज्य 'अनिवार्य सेवा' लागू करता है तो किसी धर्म या जाति विशेष के लोगों तक उसे सीमित नहीं कर सकता। गौरतलब है कि इन आधारों में 'लिंग' (Sex), 'आयु' (Age), 'जन्म स्थान' (Place of birth) तथा 'निवास स्थान' (Place of residence) जैसे आधार शामिल नहीं हैं अर्थात् इन आधारों पर अनिवार्य सेवा लागू की जा सकती है।

अनुच्छेद 24: कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिबंध

(Article 24: Prohibition of Employment of Children in Factories etc.)

संविधान के अनुच्छेद 39(ङ) तथा 39(च) में दिए गए नीति-निर्देशक तत्वों में बच्चों के प्रति जैसी चिंता व्यक्त की गई है, उसी की ज़्यादा ठोस अभिव्यक्ति अनुच्छेद 24 में दिखाई पड़ती है। अनुच्छेद 24 विशेष तौर पर 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को ऐसे कार्य करने से बचाता है जो उनकी आयु की दृष्टि से उचित नहीं हैं। इसमें तीन तरह के कार्यों का प्रतिषेध (Prohibition) किया गया है—

- (क) कारखानों (Factories) में काम करने का प्रतिषेध;
- (ख) खानों (Mines) में काम करने का प्रतिषेध; तथा
- (ग) किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन (Hazardous employment) में काम करने का प्रतिषेध।

जहाँ तक 'कारखाने' (Factory) या 'खान' (Mine) का संबंध है, उनके अर्थ का विनिश्चय करना कठिन नहीं है; किंतु 'अन्य परिसंकटमय नियोजन' (Any other hazardous employment) के अर्थ की विभिन्न व्याख्याएँ हो सकती हैं। 'पीपल्स

(Construction work) में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों का काम करना संवैधानिक है अथवा नहीं? अदालत में यह तर्क दिया गया कि 'बालक नियोजन अधिनियम, 1938' (Employment of Children Act, 1938) की अनुसूची में जिन कार्यों को बच्चों हेतु वर्जित किया गया है, उनमें भवन-निर्माण कार्य शामिल नहीं है। किंतु, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि चाहे उक्त अधिनियम में भवन निर्माण कार्य को शामिल न किया गया हो, वस्तुतः यह एक जोखिम भरा कार्य है, इसलिए अनुच्छेद 24 के अंतर्गत प्रतिषिद्ध (Prohibited) है। न्यायालय ने केंद्र व राज्य सरकारों को सलाह भी दी कि वे यथाशीघ्र भवन-निर्माण कार्य को अधिनियम की अनुसूची में शामिल करने के लिए कदम उठाएँ।

अनुच्छेद 24 से संबंधित एक अत्यंत महत्वपूर्ण न्यायिक मामला 'एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य' (1996) का है। जनहित याचिका (Public interest litigation) के माध्यम से प्रस्तुत किये गये इस मामले में प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री एम. सी. मेहता ने तमिलनाडु के शिवकाशी शहर में माचिस और पटाखे बनाने वाले कारखानों में काम कर रहे हजारों बच्चों की हालत पर विचार करने का आग्रह किया। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले की गंभीरता को देखते हुए इसकी परिधि को व्यापकता प्रदान की और भारत के किसी भी क्षेत्र में हो रहे बाल-श्रम को इसमें शामिल कर लिया। न्यायालय ने बाल-श्रमिकों के संरक्षण हेतु कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत तय किए जो इस प्रकार हैं—

- (i) बच्चों को जोखिम भरे कार्य में नियोजित करने वाले सभी नियोजकों को अपने यहाँ काम करने वाले प्रत्येक बच्चे के लिए 20 हजार रुपये की राशि क्षतिपूर्ति (Compensation) के तौर पर जमा करनी होगी। इस संचित राशि से 'बाल श्रमिक पुनर्वास-सह-कल्याण कोष' (Child labour rehabilitation-cum-welfare fund) की स्थापना की जाएगी जिसका प्रयोग बाल श्रमिकों के पुनर्वास के लिए होगा।
- (ii) जो बच्चे इन कारखानों से मुक्त होंगे, उनके नियोजकों का दायित्व होगा कि वे मुक्त किए गए प्रत्येक बच्चे के स्थान पर उसके परिवार के किसी वयस्क सदस्य को रोजगार प्रदान करें।
- (iii) यदि कुछ मामलों में बच्चे के संरक्षक को रोजगार दिया जाना सम्भव नहीं हो तो राज्य सरकार अपनी ओर से प्रत्येक बच्चे के लिए 5-हजार रुपये की राशि जोड़कर कुल 25 हजार रुपये की राशि उक्त 'वैलफेयर फण्ड' में जमा करेगी।
- (iv) इस 25 हजार रुपये की राशि के ब्याज से बच्चे की 14 वर्ष की आयु तक की शिक्षा का खर्च चलाया जाएगा। बच्चे के संरक्षक का दायित्व होगा कि वह सुनिश्चित करे कि संबंधित बच्चा विद्यालय में शिक्षा ग्रहण कर रहा है।
- (v) जिन कारखानों में कार्य की प्रकृति जोखिम भरी (Hazardous) नहीं है, वहाँ काम करने वाले बच्चों के दैनिक कार्य की अधिकतम अवधि 4-6 घंटों के बीच होगी तथा उसे प्रतिदिन दो घंटे शिक्षा प्राप्त करने के लिए अवश्य दिए जाएंगे। ऐसे बच्चों की शिक्षा का पूरा खर्च नियोजक (Employer) द्वारा वहन किया जाएगा।
- (vi) न्यायालय ने केंद्र सरकार को सबसे पहले 9 क्षेत्रों के कारखानों पर ये निर्देश लागू करने का आदेश दिया। ये हैं— (क) शिवकाशी के माचिस व पटाखों के कारखाने, (ख) फिरोजाबाद के काँच उद्योग से जुड़े कारखाने, (ग) मिर्जापुर, भदोही के कालीन उद्योग के कारखाने, (घ) गुजरात के हीरे तराशने के कारखाने, (ङ.) मुरादाबाद के तांबे के बर्तनों के कारखाने, (च) अलीगढ़ के ताले बनाने के कारखाने, (छ) जयपुर के पहंगे पत्थर पॉलिश करने के कारखाने, (ज) मंदसौर (मध्य प्रदेश) के स्लेट बनाने के कारखाने; तथा (झ) मर्कापुर (आंध्र प्रदेश) के स्लेट बनाने के कारखाने।
- (vii) न्यायालय ने इन निर्देशों के उपयुक्त पालन की गारंटी के लिए केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के सचिव को निर्देश दिया कि वह एक महीने के भीतर शपथ-पत्र द्वारा सूचित करें कि इन निर्देशों का पालन किस मात्रा तक हुआ है।

यह निर्णय बच्चों के हितों के संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्व का है। इसे लेकर व्यावहारिक समस्या यह है कि चूँकि निर्दिष्ट उद्योगों में से अधिकांश असंगठित क्षेत्र (Unorganised sector) के थे और इनमें काम करने वाले बच्चों का नियोजकों के साथ कोई औपचारिक अनुबंध (Formal contract) नहीं था, इसलिए नियोजकों से धन लेकर पुनर्वास कोष बनाना अत्यंत कठिन कार्य था। इसके अलावा, चूँकि लाभार्थी बच्चे प्रायः निरक्षर थे और उनमें अपने अधिकारों के प्रति जानकारी व जागरूकता नहीं थी, इसलिए वे भी ऐसी हालत में नहीं थे कि इन निर्देशों का समुचित लाभ उठा सकें। तब भी, इस निर्णय का यह असर जरूर हुआ कि बच्चों का शोषण करना अब उतना आसान नहीं रहा है जितना कि पहले था। 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए 'शिक्षा का अधिकार' (Right to education) मूल अधिकार बन जाने के बाद बच्चों के हितों का संरक्षण अब और ज्यादा बेहतर तरीके से हो पा रहा है।

ध्यातव्य है कि संसद ने बहुत से ऐसे कानून पारित किए हैं जो 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को जोखिम भरे कार्यों में शामिल होने से बचाते हैं— जैसे— 'कारखाना अधिनियम, 1948' (The Factories Act, 1948); 'ज्वेलरी श्रम अधिनियम, 1967'

अनुच्छेद 25-28: धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (Article 25-28: Right to Freedom of Religion)

संविधान के अनुच्छेद 25-28 तक के समूह को 'धर्म की स्वतंत्रता' (Freedom of religion) शीर्षक दिया गया है। इन चारों अनुच्छेदों की अंतर्वस्तु (Content) का सामान्य परिचय इस प्रकार है—

अनुच्छेद 25— अंतःकरण (Conscience) की स्वतंत्रता और धर्म को मानने, आचरण करने व प्रचार (Propagate) करने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 26— धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 27— किसी विशेष धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर नहीं देने की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 28— कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा (Religious instruction) या धार्मिक उपासना (Religious worship) में उपस्थित होने से स्वतंत्रता।

धर्मनिरपेक्षता की धारणा (Notion of Secularism):

'सैकुलरिज्म' शब्द ने भारतीय राजव्यवस्था में जितनी प्रातिपदियाँ पैदा की हैं, उतनी शायद किसी और शब्द ने नहीं। सभी राजनीतिक दलों ने अपने-लोभ को देखते हुए सैकुलरिज्म को परिभाषाएँ बनाई हैं।

धातव्य है कि हमारे मूल संविधान में 'धर्मनिरपेक्षता' या 'धर्मनिरपेक्षता' (Secularism) शब्द शामिल नहीं था। संविधान सभा को इस शब्द के उल्लेख की ज़रूरत महसूस नहीं हुई हालाँकि उसने संविधान के कई हिस्सों में ऐसे प्रावधान कर दिए जो भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular State) बनाते हैं। इन प्रावधानों में सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद 25-28 हैं। इसके अलावा, अनुच्छेद 15, 16, 29, 30, 44, 51(क)(ड) तथा 51(क)(च) आदि भी भारतीय राज्य की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति को प्रमाणित करते हैं।

आपातकाल के दौरान श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने '42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' के माध्यम से 'सैकुलर' शब्द को संविधान की प्रस्तावना या उद्देशिका (Preamble) में शामिल कर दिया। संविधान की प्रस्तावना में यह संशोधन करना उचित था या नहीं, इस पर पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोगों का मानना है कि यह एक निरर्थक कवायद थी, जबकि कुछ अन्य के अनुसार इससे भारतीय राजव्यवस्था का सैकुलर चरित्र और निखरकर सामने आ गया। सही बात यह है कि इस संशोधन का प्रतीकात्मक महत्व चाहे बहुत अधिक हो, किंतु तात्त्विक दृष्टि से संविधान के छाँड़ पर इसका प्रभाव शून्य है क्योंकि इस संशोधन से पहले भी संविधान के अनुसार भारत राज्य का चरित्र सैकुलर ही था।

जहाँ तक 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' (Secular state) का प्रश्न है, उसकी कुछ खास विशेषताएँ होती हैं। इसे समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि राज्य और धर्म के आपसी संबंध की दृष्टि से राज्य निम्नलिखित चार प्रकार के हो सकते हैं—

1. धर्मराज्य (Theocracy)— ये वे राज्य हैं जहाँ राजनीतिक व्यवस्था का संचालन धर्म के अधीन ही किया जाता है। ऐसे राज्यों में या तो चर्च का प्रधान ही राज्य प्रमुख होता है या फिर राज्य प्रमुख चर्च के प्रधान के अधीन होता है। वर्तमान में वेटिकन सिटी तथा तिब्बत इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
2. धर्मप्रभावित राज्य (Religious State)— ये वे राज्य हैं जिनकी राजव्यवस्था चर्च के अधीन तो नहीं होती किंतु जो किसी धर्म विशेष को राजकीय धर्म (State religion) घोषित करते हैं तथा जिनके कानून उस धर्म के अनुयायियों को विशेष अधिकार व सुविधाएँ प्रदान करते हैं। वर्तमान में पाकिस्तान, ईरान, ईराक तथा इज़राइल जैसे देश इस वर्ग के उदाहरण हैं।
3. धर्मविरोधी राज्य (Anti Religious State)— ये वे राज्य हैं जो धर्म का विरोध करते हैं। ऐसे राज्यों में व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती, न ही धार्मिक संस्थाओं को धर्म के प्रचार आदि का अधिकार होता है। धर्म का पालन करने पर कुछ मामलों में दंड का प्रावधान भी होता है। यह स्थिति साम्यवादी राज्यों (Communist States) में ही पाई जाती है, जैसे भूतपूर्व सोवियत संघ तथा चीन।

- (iii) ऐसे राज्यों में प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता (Religious freedom) प्राप्त होती है। धार्मिक स्वतंत्रता के अंतर्गत कई पक्ष शामिल होते हैं जैसे, अपने धर्म को मानने की स्वतंत्रता, अपने धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता, धार्मिक संस्थाओं के प्रबंधन की स्वतंत्रता, धर्मान्तरण (Conversion) करने की स्वतंत्रता, कोई भी धर्म नहीं मानने की स्वतंत्रता, नये धार्मिक मत स्थापित करने की स्वतंत्रता इत्यादि। इन राज्यों में प्रायः ये सभी स्वतंत्रताएँ उपलब्ध होती हैं।
- (iv) ऐसे राज्यों में राज्य प्रायः धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता है, वह केवल आपवादिक परिस्थितियों (Exceptional conditions) में हस्तक्षेप करता है जब लोक-व्यवस्था (Public order) या राज्य की सुरक्षा के लिए ऐसा करना जरूरी हो जाता है।
- (v) धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म के 'धार्मिक' मसलों में हस्तक्षेप नहीं करता है किंतु धर्म के 'गैर-धार्मिक' या 'सांसारिक' मसलों में हस्तक्षेप कर सकता है। उदाहरण के लिए, धार्मिक मेलों या सम्मेलनों में सुरक्षा की व्यवस्था या धार्मिक संस्थाओं की संपत्ति से संबंधित पक्ष धर्म के 'गैर-धार्मिक' पक्ष हैं। इसी प्रकार, यदि धर्म का कोई नियम या कर्मकाण्ड नागरिकों या नागरिकों के किसी वर्ग के मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है तो राज्य उसमें अवश्य हस्तक्षेप कर सकता है क्योंकि किसी नागरिक के अधिकारों का दमन या वंचन यदि धर्म द्वारा समर्थित है तो वह भी धर्म का 'धार्मिक' पक्ष न होकर 'गैर-धार्मिक' या 'सांसारिक' पक्ष है।

धर्मनिरपेक्ष राज्य के पास धर्मनिरपेक्षता के दो विकल्प होते हैं— 'नकारात्मक धर्मनिरपेक्षता' (Secularism in negative sense) तथा 'सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता' (Secularism in positive sense)। 'नकारात्मक धर्मनिरपेक्षता' में राज्य धर्म से पूर्णतः विमुख रहता है। दूसरी ओर, 'सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता' में राज्य धर्म से पूर्णतः विमुख नहीं होता। वह किसी धर्म विशेष के पक्ष में तो नहीं होता किंतु सभी धर्मों के समतुल्य विकास में सहायक होने का प्रयास करता है। जिन धर्मों के सामने अपना अस्तित्व बनाए रखने या विकास करने के संबंध में कठिन परिस्थितियाँ होती हैं, उन धर्मों के विशेष संरक्षण के लिए भी राज्य कदम उठाता है।

जहाँ तक भारतीय राज्य का प्रश्न है, वह धर्मनिरपेक्षता की सकारात्मक धारणा का समर्थक है, नकारात्मक धारणा का नहीं। इसका अर्थ यह है कि राज्य न तो धर्म का विरोध करता है, और न ही अधार्मिकता का प्रतिपादन। वह सिर्फ इस बात का ध्यान रखता है कि राज्य किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के पक्ष में इस तरह न झुक जाए कि राज्य की तटस्थता खतरे में पड़ जाए। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण 'अथीस्ट (Atheist) सोसाइटी ऑफ इण्डिया बनाम गवर्नमेन्ट ऑफ आंध्र प्रदेश' (1992) के मामले में दिखाता है। इस मामले में प्राची नास्तिक व्यक्तियों का समूह था और उसका दावा था कि सरकारी भवनों के शिलान्यास या सरकारी कार्यक्रमों के उद्घाटन के अवसर पर राज्य द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन तथा धार्मिक प्रतीकों के प्रदर्शन से राज्य के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को चोट पहुँचती है। अतः न्यायालय द्वारा राज्य को ऐसे कार्य करने से रोका जाना चाहिए। आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने प्राची को खारिज करते हुए निर्धारित किया कि राज्य के धर्मनिरपेक्ष होने का अर्थ राज्य का नास्तिक एवं धर्मविरोधी होना नहीं है। न्यायल तोड़ना, मंत्रोच्चारण करना, पूजा-पाठ करना आदि प्रतीक भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के महत्वपूर्ण हिस्से हैं। इनको अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति के धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध नहीं है। यदि प्राची को प्रार्थना को औचित्यपूर्ण मानकर स्वीकार कर लिया जाये तो यह एक प्रकार से नास्तिकता को 'राजकीय विश्वास' घोषित करने के बराबर होगा तथा अनुच्छेद 25 द्वारा देश के सभी व्यक्तियों को प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन होगा।

'एस. आर. बोमोई बनाम भारत संघ' (1994) का मामला भी धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह मामला प्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेद 256 के दुरुपयोग के संबंध में था, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के अंतर्गत धर्मनिरपेक्षता से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष भी दिये। ऐसे प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

- (i) धर्मनिरपेक्षता संविधान के मूल ढाँचे (Basic Structure) में शामिल है। इसका तात्पर्य है कि संविधान संशोधन के माध्यम से भी इस लक्षण को संविधान से नहीं हटाया जा सकता।
- (ii) धर्मनिरपेक्षता एक सकारात्मक अवधारणा (Positive concept) है। इसका अर्थ सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार करना है, न कि यह कि राज्य धर्म के प्रति शत्रुता का भाव रखे।
- (iii) धर्मनिरपेक्षता के सकारात्मक अर्थ में यह भी निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को मानने व उसके अनुसार आचरण करने के लिए स्वतंत्र है। यदि कोई व्यक्ति अपने धर्म का पालन करता है तो उसके संबंध में यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह धर्मनिरपेक्ष नहीं है।
- (iv) राज्य के मामलों में धर्म की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। राज्य का व्यवहार सभी धर्मों के अनुयायियों के साथ एक जैसा होना चाहिए। अतः यदि कोई राज्य सरकार धर्मनिरपेक्षता का उल्लंघन करती है तो वस्तुतः वह संविधान के विरुद्ध कार्य करती है और ऐसी स्थिति में उसके विरुद्ध अनुच्छेद 32 के तहत याचिका दायर की जा सकती है।

से मत देने की अपील करता है तो इससे राज्य की सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार की गारंटी कमजोर पड़ती है। अतः धर्म आधारित चुनाव प्रचार भी संविधान के विरुद्ध है।

धर्मनिरपेक्षता की इसी अवधारणा को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 25-28 पर विचार किया जा सकता है।

अनुच्छेद 25: अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता (Article 25: Freedom of Conscience and Religion)

अनुच्छेद 25 के अंतर्गत 2 खंड हैं- 25(1) तथा 25(2)। अनुच्छेद 25(1) में धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है जबकि 25(2) में उससे जुड़े युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) बताए गए हैं। इसके अलावा, अनुच्छेद 25(2) के बाद दो स्पष्टीकरण भी दिए गए हैं जो सिख धर्म तथा हिंदू धर्म के बारे में हैं।

अनुच्छेद 25(1) का मूल पाठ इस प्रकार है-

“लोक व्यवस्था (Public order), सदाचार (Morality) और स्वास्थ्य (Health) तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता (Freedom of Conscience) का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण (Practice) करने और प्रचार (Propagation) करने का समान हक होगा।”

इस अनुच्छेद में वर्णित कुछ शब्द विशेष महत्व के हैं- ‘अंतःकरण’ (Conscience), ‘धर्म’, ‘आचरण’ तथा ‘प्रचार’ इत्यादि। ‘अंतःकरण की स्वतंत्रता’ (Freedom of conscience) का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत विचारधारा, सोच, आस्था तथा चेतना के अनुसार जीवन जीने का अधिकार रखता है। व्यावस्थित है कि ‘अंतःकरण की स्वतंत्रता’ सिर्फ धर्मनिष्ठ जीवन (Religious life) से नहीं जुड़ी है, वह धर्म से तटस्थ व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी समेट लेती है। जहां तक ‘धर्म’ (Religion) शब्द की बात है, संविधान में उसकी कोई परिभाषा नहीं दी गई है। धर्म जैसी बटिल संकल्पना को परिभाषित करना वस्तुतः संभव भी नहीं है। मोटे तौर पर, इसमें अपने धार्मिक विश्वासों को मानने की स्वतंत्रता ही है। धर्म का आचरण (Practice of religion) करने का अर्थ है कि कोई धर्म विशेष जिन कर्मकाण्डों (Rituals) या अनुष्ठानिक कृत्यों को करने की सलाह देता है, प्रत्येक व्यक्ति को वे कर्मकाण्ड और कृत्य करने की स्वतंत्रता है। ‘धर्म के प्रचार’ (Propagation of religion) के अधिकार का अर्थ है कि व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों की प्रशंसापूर्ण अभिव्यक्ति दूसरों के सामने कर सकता है तथा उन्हें प्रेरित भी कर सकता है कि वे उसके धर्म को अपनाएं। स्पष्ट है कि भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 प्रत्येक व्यक्ति को अत्यंत विस्तृत अर्थ में धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है।

किंतु, अनुच्छेद 25(2) में दो ऐसे युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) बताए गए हैं जो धार्मिक स्वतंत्रता को सीमित करते हैं। इसके अलावा, अनुच्छेद 25(1) में भी 3 निर्बंधनों की जर्ची की गयी है। ये सभी निर्बंधन इस प्रकार हैं-

1. अनुच्छेद 25(1) में संकेत किया गया है कि व्यक्ति को प्राप्त धार्मिक स्वतंत्रता ‘लोक व्यवस्था’ (Public order), ‘सदाचार’ (Morality) और ‘स्वास्थ्य’ (Health) के अधीन है अर्थात् राज्य इन तीनों में से किसी पर खतरा उपस्थित होने पर धार्मिक स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है। उदाहरण के लिए, धार्मिक स्वतंत्रता के नाम पर कोई ऐसा जुलूस नहीं निकाला जा सकता जिससे सार्वजनिक तनाव बढ़कर की आशंका हो या जो लोक-जीवन में प्रचलित नैतिकता के विरुद्ध हो। ‘आचार्य जगदीश्वरानन्द अवधूत बनाम पुलिस कमिश्नर, कलकत्ता’ (1983) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आनन्दमार्गियों के ऐसे जुलूस निकालने या सभा आयोजित करने के अधिकार को खारिज कर दिया जिसमें तलवार, बरछी, भाले जैसे खतरनाक हथियारों, मातुल-कपालों और जलती हुई मशालों के साथ सार्वजनिक स्थानों पर तांडव नृत्य किया जाता था क्योंकि इन अभिव्यक्तियों के साथ जुलूस निकालने में ‘लोक व्यवस्था’ और ‘सदाचार’ का खतरा उपस्थित होता है।

2. अनुच्छेद 25(2)(क) में बताया गया है कि राज्य धार्मिक आचरण से संबंधित किसी ‘गैर-धार्मिक पक्ष’ जैसे आर्थिक, वित्तीय या राजनीतिक पक्ष को विनियमित करने के लिए विधि बना सकता है।

वस्तुतः धार्मिक क्रियाओं के दो पक्ष होते हैं- ‘धार्मिक’ तथा ‘गैर-धार्मिक’। धार्मिक पक्ष का अर्थ है- धार्मिक क्रिया का वह हिस्सा जो धर्म की मूल भावना का प्रतिनिधित्व करता है और जिसके बिना धार्मिक क्रिया या धार्मिक आचरण का अर्थ नहीं रहता है। इसके विपरीत, धार्मिक क्रिया के ‘गैर-धार्मिक पक्ष’ में वे सभी हिस्से शामिल हैं जो सारभूत रूप में धार्मिक भावना का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि उसके राजनीतिक, आर्थिक या वित्तीय पक्ष से जुड़े होते हैं। ये हिस्से

सविधान में अनुच्छेद 25 के साथ दो स्पष्टीकरण दिये गए हैं। पहले स्पष्टीकरण में बताया गया है कि सिखों द्वारा कृपाण धारण किया जाना सिखों के धार्मिक आचरण का एक आवश्यक पक्ष है। इसका अर्थ है कि 'लोक व्यवस्था' (Public order) के आधार पर सिखों को कृपाण धारण करने से मना नहीं किया जाएगा। दूसरे स्पष्टीकरण में बताया गया है कि अनुच्छेद 25(2)(ख) के प्रयोजन के लिए 'हिन्दू' शब्द में सिख, जैन व बौद्ध धर्मों के अनुयायी भी शामिल हैं अर्थात् राज्य जिस तरह हिन्दू पन्थियों को सभी के लिए खोलने की बाध्यता आरोपित कर सकता है, वैसे ही इन तीनों समुदायों को उपासना स्थलों को भी जनता के सभी वर्गों के लिए खुलवाने का आदेश दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 25 में दी गयी धार्मिक स्वतन्त्रता तथा उस पर लगाए गए निर्बंधनों (Restrictions) को लेकर न्यायालय के सामने कई प्रश्न आते रहे हैं। सबसे ज्यादा विवाद 'धर्म के प्रचार' (Propagation of religion) के अधिकार के संबंध में हुआ है। 1977 में यह प्रश्न 'स्टेनिसलास बनाम मध्य प्रदेश राज्य' के मामले में प्रभावी ढंग से उठा था। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने धर्म के प्रचार के अधिकार की सीमाएँ स्पष्ट कर दीं जो सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं—

1. अनुच्छेद 25(1) में वर्णित धर्म के प्रचार की स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि यह धर्मान्तरण कराने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है।
2. अनुच्छेद 25(1) में वर्णित 'अन्तःकरण की स्वतन्त्रता' में निहित है कि व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी भी धर्म को अपना सकता है। इसका अर्थ है कि अन्तःकरण की स्वतन्त्रता में अपना धर्म बदलने की स्वतन्त्रता निहित है।
3. 'धार्मिक प्रचार' का अर्थ है कि व्यक्ति दूसरों को अपने धर्म की विशेषताओं का परिचय दे सकता है, उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर सकता है। यदि उसके तर्कों या उसके द्वारा दी गई जानकारीयों से प्रभावित होकर कोई दूसरा व्यक्ति स्वच्छ से अपना धर्म छोड़कर उसके धर्म में दीक्षित होता है तो उसे भी 'अन्तःकरण की स्वतन्त्रता' की अभिव्यक्ति माना जाएगा।
4. किन्तु यदि कोई व्यक्ति बल, 'कपट', 'लालच' या 'प्रलोभन' से किसी व्यक्ति को धर्मान्तरण करने के लिए प्रेरित करता है तो इसे धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लंघन समझा जाएगा क्योंकि ऐसे अनुचित दबावों से घिरे व्यक्ति के पास सही अर्थों में 'अन्तःकरण की स्वतन्त्रता' नहीं बच पाती है।
5. यदि यह मान भी लें कि धर्म का प्रचार करने में धर्मान्तरण कराने का अधिकार निहित है तो यह अधिकार सभी धर्मों के पास होगा। यदि सभी धर्म ऐसी कोशिश करें तो 'लोक व्यवस्था' (Public order) बिगड़ने का खतरा पैदा होना तय है। ऐसी स्थिति में राज्य को हक है कि वह इस स्वतन्त्रता को सीमित कर सके क्योंकि अनुच्छेद 25(1) में दी गई धार्मिक स्वतन्त्रता 'लोक व्यवस्था' (Public order) जैसे निर्बंधनों के अधीन ही है।

अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतन्त्रता (Article 26: Freedom to manage religious affairs)

अनुच्छेद 25 में धार्मिक स्वतन्त्रता का जो अधिकार व्यक्तियों को दिया गया है, अनुच्छेद 26 में वही अधिकार धार्मिक संप्रदायों या उनके वर्गों को दिया गया है। अनुच्छेद 26 का मूल पाठ इस प्रकार है—

"लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके अनुभाग को—

- (क) धार्मिक और पूर्ण (Charitable) प्रयोजनों के लिए संस्थानों को स्थापना और पोषण का,
- (ख) अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का,
- (ग) जंगम (Movable) और स्थावर (Immovable) संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का, और
- (घ) ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का, अधिकार होगा।"

इस अनुच्छेद को लेकर न्यायालय में कुछ रोचक प्रश्न उठते रहे हैं जिनमें प्रमुखता इस बात की रही है कि कोई समूह अनुच्छेद 26 के अंतर्गत 'धार्मिक संप्रदाय' माना जा सकता है या नहीं? उदाहरण के लिए, एक सवाल यह उठा कि हिंदुओं को एक धार्मिक संप्रदाय माना जाए या हिंदुओं के भीतर अपनी पृथक् विचारधारा और उपासना विधि रखने वाले उप-संप्रदायों को? सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि विस्तृत अर्थ में हिंदू तथा सीमित अर्थ में शैव, वैष्णव आदि समुदायों को अनुच्छेद 26 के अनुरूप धार्मिक संप्रदाय माना जा सकता है।

'एस पी मित्तल बनाम भारत संघ' (1982) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि कोई धार्मिक संस्था अनुच्छेद

(ii) उस समूह का एक संगठनिक ढाँचा (Organisational structure) होना चाहिए।

(iii) समूह का एक विशिष्ट नाम (Specific name) होना चाहिए।

अनुच्छेद 26(ख) के अंतर्गत सभी 'धार्मिक संप्रदायों' को अपने धार्मिक कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार दिया गया है। इसे लेकर भी न्यायालय में कई प्रश्न उठते रहे हैं। एक विवाद यह था कि धार्मिक मामलों के प्रबंध की कोई सीमा है या नहीं? सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि धार्मिक मामलों के प्रबंध की यह स्वतंत्रता अनुच्छेद 26 में वर्णित तीन सीमाओं 'लोक व्यवस्था' (Public order), 'सदाचार' (Morality) और 'स्वास्थ्य' (Health) के अधीन तो है ही, इसके अलावा यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि प्रबंध की यह स्वतंत्रता धर्म के 'धार्मिक विषयों' तक ही सीमित है, धर्म के 'गैर-धार्मिक पक्षों' पर लागू नहीं होती।

अनुच्छेद 27: किसी विशेष धर्म की उन्नति के लिए कर न देने की स्वतंत्रता

(Article 27: Freedom as to payment of taxes for promotion of any particular religion)

अनुच्छेद 27 में किया गया प्रावधान राज्य की धर्मनिरपेक्षता का महत्वपूर्ण प्रमाण है। मध्यकालीन इतिहास में ऐसे कुछ प्रसंग मिलते हैं जहाँ राजाओं ने कुछ विशेष धर्मों के अनुयायियों पर कर लगाये या राज्य का धन किसी धर्म विशेष की उन्नति के लिए खर्च किया। ऐसी नीतियाँ समाज में असंतोष और तनाव पैदा करती हैं। संविधान निर्माताओं ने विभिन्न धार्मिक समुदायों को समान अधिकार देने की दृष्टि से अनुच्छेद 27 का प्रावधान किया है। अनुच्छेद 27 का मूल पाठ इस प्रकार है—

"किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का संदाय (Payment) करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनके आगम (Proceeds) किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि (Promotion) या पोषण (Maintenance) में व्यय करने के लिए विनिरिष्ट रूप से विनियोजित (Specifically appropriate) किए जाते हैं।"

न्यायालय ने इस अनुच्छेद का निर्वचन करते हुए इसके दो अर्थों पर विशेष बल दिया है—

- (i) किसी भी व्यक्ति को किसी विशेष धर्म या संप्रदाय की उन्नति या पोषण के लिए कर देने को बाध्य नहीं किया जाएगा।
- (ii) जो कर राज्य ने साधारण रीति से एकत्रित किये हैं, उनका प्रयोग भी किसी विशेष धर्म या संप्रदाय की उन्नति या पोषण के लिए नहीं किया जाएगा।

ध्यातव्य है कि कर (Tax) और शुल्क (Fee) समानार्थक नहीं हैं। अनुच्छेद 27 कर (Tax) लगाने का ही निषेध करता है, शुल्क (Fee) लगाने का नहीं। कर राज्य द्वारा निर्धारित कर संरचना के अनुसार वसूले जाते हैं, जैसे आय कर, बिक्री कर, सेवा कर इत्यादि। करों से प्राप्त राशि का उपयोग सार्वजनिक हित में होता है। कर देने वाले व्यक्ति विशेष के पक्ष में नहीं। इसके विपरीत, शुल्क (Fee) का सीधा संबंध किसी विशेष सेवा या कार्य से होता है क्योंकि उसका भुगतान उस सेवा के लिए ही होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी मंदिर में प्रवेश के लिए कुछ शुल्क निर्धारित कर दिया जाए तथा उस शुल्क से प्राप्त धन को उस मंदिर के समुचित प्रशासन व रख-रखाव जैसे कार्यों के लिए खर्च किया जाए तो यह अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं होगा।

भूलना नहीं चाहिए कि भारतीय राज्य धर्मनिरपेक्षता को सकारात्मक नीति का पालन करता है, नकारात्मक नीति का नहीं। इसका अर्थ है कि राज्य विशिष्ट स्थितियों में विभिन्न धर्मों के महत्वपूर्ण मामलों में वित्तीय (Financial) भूमिका निभा सकता है। अनुच्छेद 27 जिस बात के लिए मंता करता है, वह सिर्फ यह है कि राज्य किसी धर्म विशेष की उन्नति के लिए राजस्व या धन का प्रयोग नहीं करेगा। किंतु, यदि राज्य विभिन्न धर्मों को समान महत्व देते हुए धन खर्च करता है तो अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं होता। इसी प्रकार, यदि राज्य धर्म से जुड़े गैर-धार्मिक कार्यों या धर्म से जुड़े लोक व्यवस्था (Public order) संबंधी कार्यों पर खर्च करता है तो अनुच्छेद 27 का अतिक्रमण नहीं होता। उदाहरण के लिए, कुंभ के मेले या मुहर्रम के जुलूस में लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य द्वारा पुलिस व चिकित्सा आदि पर किया गया खर्च अनुच्छेद 27 के विरुद्ध नहीं है।

अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने से स्वतंत्रता
(Article 28: Freedom as to attendance at religious instruction or religious worship in certain educational institutions)

अनुच्छेद 28 भी राज्य की धर्म-निरपेक्षता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें यह प्रावधान किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को अपनी शिक्षा संस्था द्वारा आयोजित ऐसी धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिए मजबूर न होना पड़े जो उसके अंतःकरण के विरुद्ध है। इस आशय से बनाए गए अनुच्छेद 28 के तीन खण्ड हैं। उनका मूल पाठ इस प्रकार है—

28(1) — "राज्य-निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

28(2) — खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था को लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किंतु जो किसी ऐसे विन्यास (Endowment) या न्यास (Trust) के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।

में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क हो तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी है।"

अनुच्छेद 28 के प्रावधानों को सरल रूप में समझने के लिए सभी शैक्षिक संस्थाओं को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—

- (क) राज्य द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित (Wholly financed) संस्थाएँ;
- (ख) राज्य से अंशतः वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली संस्थाएँ;
- (ग) राज्य से मान्यता प्राप्त संस्थाएँ (चाहे वे वित्तीय सहायता न लेती हों); तथा
- (घ) ऐसी संस्थाएँ जो राज्य द्वारा प्रशासित (Administered) हों किंतु जिनकी स्थापना किसी धार्मिक न्यास (Trust) आदि के अधीन हुई है और जहाँ धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।

नियम यह है कि वर्ग (क) की शिक्षा संस्थाओं में किसी भी स्थिति में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि धर्मनिरपेक्ष राज्य में राज्य सामान्यतः धर्म से दूरी बनाकर चलता है और यदि राज्य द्वारा पूर्णतः वित्त पोषित संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जाएगी तो धर्मनिरपेक्षता पर प्रश्न उठना तब है।

वर्ग (ख) और वर्ग (ग) में वे संस्थाएँ आती हैं जो राज्य से अंशतः प्रभावित हैं अर्थात् या तो कुछ वित्तीय सहायता लेती हैं या मान्यता। इनके संबंध में नियम यह है कि इनमें धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है किंतु यदि कोई व्यक्ति किसी भिन्न धर्म को मानता हो तो उसकी (या यदि वह अवयस्क नहीं है तो उसके संरक्षक की) सहमति के बिना उसे धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

वर्ग (घ) में वे संस्थाएँ आती हैं जो राज्य द्वारा प्रशासित हैं किंतु किसी धार्मिक न्यास (Religious trust) आदि के तहत स्थापित की गई हैं। उदाहरण के लिए, मदरसा बोर्ड की शिक्षा संस्थाएँ इसके अंतर्गत शामिल हैं। ऐसी संस्थाएँ धार्मिक शिक्षा देने के लिए स्वतंत्र हैं। अन्य धर्मों के व्यक्ति ऐसी संस्थाओं में इसी शर्त पर प्रवेश ले सकते हैं कि उन्हें उक्त धर्म की धार्मिक शिक्षाओं से कोई आपत्ति नहीं है। उदाहरण के लिए, बिहार में हाल ही में देखा गया है कि कई हिंदू बच्चे भी मदरसा बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित हो रहे हैं।

क्या भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है? (Is India a Secular State?)

धर्म की स्वतंत्रता के प्रावधानों के संदर्भ में अंतिम विचारणीय प्रश्न यही है कि क्या भारतीय राज्य को धर्मनिरपेक्ष माना जा सकता है? संविधानविदों की सामान्य राय यही है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है हालाँकि भारतीय राज्य की कुछ विशेषताएँ इस संबंध में कुछ समस्याएँ भी पैदा करती हैं। सर्वप्रथम, ऐसे कुछ लक्षणों की सूची बनाई जा सकती है जो भारतीय राज्य को धर्मनिरपेक्ष सिद्ध कर सकते हैं—

- (i) भारत के संविधान में किसी भी धर्म को राजकीय धर्म (State religion) का दर्जा नहीं दिया गया है और न ही राज्य के प्रतीकों जैसे राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत इत्यादि में धार्मिक मान्यताओं को शामिल किया गया है।
- (ii) भारत में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार बेहद प्रभावी ढंग से दिया गया है जिसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति न केवल अपने धर्म का पालन कर सकता है बल्कि उसे अपने धर्म का प्रचार करने की भी पूरी स्वतंत्रता है।
- (iii) भारत में धर्म और राज्य के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग हैं। राज्य धर्म से संबंधित धर्मनिरपेक्ष या गैर-धार्मिक कार्यों में ही अपनी भूमिका निभाता है, धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता। उदाहरण के लिए, कुल्ह का मेला हो या मुहर्रम का जुलूस, राज्य पूरी व्यवस्था करता है कि शांति व्यवस्था भंग न हो; किंतु, वह धार्मिक आस्थाओं व विधि-विधानों में हस्तक्षेप नहीं करता। जब कभी कुछ स्वार्थी तत्वों ने धर्म की आड़ लेकर शांति व्यवस्था पर खतरा उत्पन्न किया है, तब राज्य ने अपनी सर्वोच्चता भी साबित की है, जैसे स्वर्ण मंदिर के 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' में।
- (iv) भारतीय राज्य शिक्षा के स्तर पर भी धर्मनिरपेक्षता का ध्यान रखता है। राज्य द्वारा संचालित किसी भी शिक्षण संस्थान में किसी अभ्यर्थी को धार्मिक आधार पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता। इसी प्रकार, राज्य द्वारा पूर्णतः वित्त-पोषित (Wholly financed) शिक्षा संस्थानों में किसी धर्म-विशेष की प्रार्थना आयोजित नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, राज्य से सहायता या मान्यता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में भी किसी भिन्न धर्म के विद्यार्थी को किसी धर्म विशेष की प्रार्थना या उपासना में भाग लेने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।
- (v) सामान्यतः भारतीय राज्य सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार करता है। संविधान के अनुच्छेद 15 तथा 16 में स्पष्टतः कहा गया है कि किसी भी नागरिक को धर्म के आधार पर भेदभाव का पात्र नहीं बनाया जाएगा। अनुच्छेद 25-28 तो प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता की विस्तृत गारंटी प्रदान करते ही हैं।

(vi) भारत के अल्पसंख्यक कानून भी सभी नागरिकों के लिए समान हैं। भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code)

किंतु, भारतीय राज्य में कुछ ऐसे लक्षण भी हैं जो इसके धर्मनिरपेक्ष चरित्र पर प्रश्न खड़ा कर देते हैं। ऐसे कुछ लक्षण इस प्रकार हैं—

- (i) भारतीय राज्य अल्पसंख्यक धर्मों की शिक्षण संस्थाओं को विशेषाधिकार (Privilege) प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 30 में कहा गया है कि यदि राज्य किसी अल्पसंख्यक धर्म की शिक्षण संस्था का अधिग्रहण करता है तो उसे 'क्षतिपूर्ति' (Compensation) अर्थात् बाजार मूल्य (Market value) के अनुसार धन देना होगा। इसके विपरीत, यदि बहुसंख्यकों की शिक्षा संस्था का अधिग्रहण होता है तो राज्य विधि के अनुसार निर्धारित राशि (Amount) देगा, किंतु बाजार मूल्य के अनुसार क्षतिपूर्ति (Compensation) देने के लिए बाध्य नहीं होगा। बहुसंख्यक धर्मों के कई अनुयायी इसे धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध मानते हैं।
- (ii) भारत में 'समान आपराधिक संहिता' (Uniform Criminal Code) तो लागू है किन्तु 'समान नागरिक संहिता' (Uniform Civil Code) नहीं। इस कारण, 'सिविल' प्रकृति के प्रमुख विषयों जैसे विवाह, तलाक और उत्तराधिकार (Succession) आदि का निर्णय प्रत्येक धर्म के अपने विधानों के अनुसार होता है।
- (iii) भारतीय राज्य 'हज' जैसी धार्मिक यात्राओं के लिए सब्सिडी देता है। चूंकि धर्मनिरपेक्ष राज्य में धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला होता है, इसलिए राज्य द्वारा धार्मिक यात्राओं के लिए सब्सिडी दिया जाना धर्मनिरपेक्षता की नीति से सुसंगत नहीं दिखता। न्यायपालिका ने भी इस व्यवस्था पर गंभीर सवाल खड़े किए हैं।
- (iv) एक अन्य आक्षेप है कि भारतीय राज्य के अधिकांश अवकाश धार्मिक त्यौहारों के अवसरों पर होते हैं जो कुछ लोगों की राय में धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ है।
- (v) कुछ आलोचकों के अनुसार भारतीय राजनीति भी धर्म से मुक्त नहीं है। बहुत सारे दल किसी धर्म विशेष को आधार बनाकर राजनीति करते हैं और चुनाव के समय धार्मिक आधार पर मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। कई नेता तो धर्मनिरपेक्ष पदों पर रहते हुए भी धार्मिक प्रक्रियाओं में सक्रिय सहभागिता करते हैं।

प्रश्न उठता है कि इन सारी सीमाओं के बावजूद क्या भारतीय राज्य को धर्मनिरपेक्ष कहा जा सकता है? दरअसल, उपरोक्त सीमाओं में से कुछ वास्तविक हैं जबकि कुछ प्रापक। यह ध्यान रखना जरूरी है कि भारतीय राज्य नकारात्मक नहीं, सकारात्मक अर्थ में धर्मनिरपेक्ष है। दूसरे शब्दों में, वह 'धर्मनिरपेक्ष' न होकर 'प्रथमनिरपेक्ष' है अर्थात् वह धर्म से दूर नहीं रहता, सिर्फ पथ विशेष का समर्थन करने से बचता है। इसी दृष्टि से उपरोक्त सीमाओं पर विचार करने की जरूरत है—

- (i) जहाँ तक अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं की बात है, वह विशेषाधिकार संरक्षणत्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति का हिस्सा है। चूंकि अल्पसंख्यकों के लिए अपनी संस्कृति की रक्षा करना तुलनात्मक रूप से ज्यादा कठिन होता है, इसलिए उन्हें यह छूट दी गई है। यदि यह छूट युक्तियुक्त सीमाओं (Reasonable limitations) के भीतर दी जाती है तो इससे धर्मनिरपेक्ष चरित्र कमजोर नहीं होता।
- (ii) जहाँ तक हज यात्रा का प्रश्न है, इसमें भी विशेष समस्या नहीं है क्योंकि राज्य किसी एक धर्म का पक्ष नहीं लेता। श्रद्धालु सभी धर्मों के गरीब व्यक्तियों को उनकी धार्मिक इच्छाएँ पूरी करने में सहायता करता है। उदाहरण के लिए, 'मानसरोवर यात्रा' के लिए भी गुजरात तथा दिल्ली जैसे कुछ राज्य सब्सिडी प्रदान करते हैं।
- (iii) समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) का न होना सचमुच एक समस्या है क्योंकि इसके अभाव के कारण राज्य सभी धर्मों के नागरिकों के साथ बराबरी का व्यवहार नहीं कर पाता है। कोशिश की जानी चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके, इसे लागू किया जाए। शुरुआत में इसे वैकल्पिक तौर पर भी लागू किया जा सकता है।
- (iv) जहाँ तक राजकीय छुट्टियों का प्रश्न है, कुछ लोगों की राय है कि पाँचवे वेतन आयोग की सिफारिश के अनुसार राष्ट्रीय अवकाश केवल तीन होने चाहियें— 15 अगस्त, 26 जनवरी तथा 2 अक्टूबर। इसके अतिरिक्त, सभी कर्मचारियों को लगभग 15 छुट्टियाँ मिलें जिन्हें वे अपने-अपने त्यौहारों के अनुसार ले सकें और यदि कोई धर्म से तटस्थ व्यक्ति हो तो वह अपने तरीके से छुट्टियों का लाभ ले सके। किंतु, धर्मनिरपेक्षता की सकारात्मक धारणा के समर्थक मानते हैं कि अवकाशों की वर्तमान व्यवस्था ही ठीक है क्योंकि इससे सभी व्यक्तियों को अपने-व-अन्य धर्मों के त्यौहारों में शामिल होने का अवसर प्राप्त होता है जो अंततः धार्मिक सहिष्णुता की भावना को बढ़ाने में सहायक है।

कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि कुछ सीमाओं के बावजूद भारत दुनिया के सफल धर्मनिरपेक्ष राज्यों में से एक

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए--

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-23 में मानव के दुर्व्यापार (Trafficking) और बलात् श्रम (Forced labour) के प्रतिषेध संबंधी उपबंध हैं।
- सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा हेतु राज्य द्वारा बलात् श्रम का सहारा लिया जा सकता है।
- राज्य अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने में वर्ग (Class) के आधार विभेद कर सकता है, किंतु धर्म के आधार पर नहीं।

उपरोक्त कथनों में सत्य है/हैं--

- (i) और (ii)
- (ii) और (iii)
- (i) और (iii)
- (i), (ii) और (iii)

2. निम्नलिखित में से किस-किस आधार पर राज्य द्वारा अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने में विभेद नहीं किया जा सकता?

- धर्म
- मूलवंश
- जाति
- वर्ग

कूट--

- (i), (ii) और (iii)
- (ii), (iii) और (iv)
- (i), (ii) और (iv)
- (i), (ii), (iii) और (iv)

3. व्यक्ति को मानव दुर्व्यापार बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य बलात् श्रम से संरक्षण दिया गया है--

- सिर्फ राज्य के विरुद्ध
- सिर्फ प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध
- राज्य एवं प्राइवेट व्यक्तियों दोनों के विरुद्ध
- न ही राज्य और न ही प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध

4. निम्नलिखित में सत्य कथन है/हैं--

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-23 में 'दास प्रथा' शब्द का स्पष्ट उल्लेख है।
- सर्वोच्च न्यायालय ने दास प्रथा के किसी भी रूप को 'मानव दुर्व्यापार' शब्दावली के अंतर्गत समाविष्ट किया है।
- अमेरिकी संविधान में दास प्रथा के प्रतिषेध का स्पष्ट उल्लेख है।

कूट--

- (i) और (ii)
- (ii) और (iii)
- (i) और (iii)
- (i), (ii) और (iii)

5. किस अनुच्छेद के तहत संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह मूल अधिकारों का प्रवर्तन करने के लिए कानून बना सकती है?

- अनुच्छेद 12
- अनुच्छेद 32
- अनुच्छेद 223
- अनुच्छेद 35

6. भारतीय संविधान में प्रावधान है कि--

- अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने की प्रक्रिया में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता है।
- लिंग, आयु, जन्म स्थान तथा निवास स्थान जैसे आधारों पर अनिवार्य सेवा लागू की जा सकती है।

कूट--

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

7. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 का संबंध है--

- कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन पर प्रतिबंध से।
- कारखानों आदि में महिलाओं के नियोजन पर प्रतिबंध से।

कूट--

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए--

- भारतीय संविधान में राज्य की तटस्थता को ध्यान में रखते हुए धर्मनिरपेक्षता की नकारात्मक अवधारणा को अपनाया गया है।
- नकारात्मक धर्मनिरपेक्षता में राज्य किसी धर्म विशेष के पक्ष में नहीं होता, बल्कि सभी धर्मों के संतुलित विकास में सहायक होने का प्रयास करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) यदि कोई राज्य सरकार धर्मनिरपेक्षता का उल्लंघन करती है तो उसके खिलाफ अनुच्छेद 356 का प्रयोग वैध माना जाएगा।
- (ii) धर्म के आधार पर चुनाव प्रचार करना भारतीय संविधान के विरुद्ध माना गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 प्रत्येक व्यक्ति को अत्यंत विस्तृत अर्थ में धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है।
- (ii) अनुच्छेद 25 के तहत दिये गये धार्मिक आधार पर कोई व्यक्तिपुक्त निर्बंधन नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से असत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 25(1) के अनुसार व्यक्ति को प्राप्त धार्मिक स्वतंत्रता लोक व्यवस्था (Public Order), सदाचार (Morality) तथा स्वास्थ्य (Health) के अधीन है।
- (ii) उपरोक्त तीनों में से किसी पर खतरा उपस्थित होने की स्थिति में धार्मिक स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से असत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारत में सिखों द्वारा कृपाण धारण करना व्यावहारिक आधार पर वैध है, किंतु संवैधानिक आधार पर नहीं।
- (ii) हमारे देश में अन्तःकरण की स्वतंत्रता में अपने धर्म को बदलने की स्वतंत्रता भी नीहित है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) यदि किसी व्यक्ति द्वारा दिये गये तर्कों या जानकारी से प्रभावित होकर कोई दूसरा व्यक्ति स्वेच्छा से अपना धर्म छोड़कर उसके धर्म को ग्रहण करता है तो इसे अन्तःकरण की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति माना जाएगा।
- (ii) यदि कोई व्यक्ति लालच या प्रलोभन से किसी व्यक्ति को धर्मान्तरण करने के लिए प्रेरित करता है तो इसे धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन माना जाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 26 में धार्मिक संप्रदायों को अपने धार्मिक कार्यों के प्रबंध की अधिकार दिया गया है।
- (ii) धार्मिक मामलों के प्रबंध की यह स्वतंत्रता गैर-धार्मिक पक्षों पर लागू नहीं होती।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. अनुच्छेद 27 के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) किसी व्यक्ति को किसी विशेष धर्म या संप्रदाय की उन्नति या प्रोषण के लिए कर देने का बोध्य नहीं किया जाएगा।
- (ii) इस अनुच्छेद को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए इसमें कर (Tax) व शुल्क (Fee) दोनों को लगाने का निषेध किया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

16. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 27 में प्रावधान है कि राज्य किसी धर्म विशेष की उन्नति के लिए राजकीय धन का प्रयोग नहीं करेगा।
- (ii) यदि राज्य विभिन्न धर्मों को समान पद्धत देते हुए धन खर्च करता है तो अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

17. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 28 के तहत राज्य द्वारा पूर्णतः अथवा अंशतः वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में किसी भी स्थिति में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- (ii) राज्य से अंशतः वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षण संस्थाएँ धार्मिक शिक्षा दे सकती हैं, किंतु किसी की सहपति के बिना उसे धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित रहने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

18. निम्नलिखित कथनों में असत्य है—

- (1) भारतीय संविधान में किसी भी धर्म को राजकीय धर्म का दर्जा नहीं दिया गया है।
- (2) भारत में धर्म और राज्य के कार्यक्षेत्र आपस में मिले हुए हैं।
- (3) राज्य द्वारा संचालित शिक्षण संस्थानों में किसी अभ्यर्थी को धार्मिक आधार पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता।
- (4) भारत में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार बेहद प्रभावी ढंग से दिया गया है।

19. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) तथा आपराधिक प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) धर्म के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं करते।
- (ii) भारतीय राज्य अल्पसंख्यक धर्मों की शिक्षण संस्थाओं को विशेषाधिकार (Privilege) प्रदान करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

20. भारत में लागू है—

(i) समान आपराधिक संहिता (Uniform Criminal Code)

(ii) समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code)

कट

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

41

42

43

44

45

46

अनुच्छेद 29-30: संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (Article 29-30: Cultural and Educational Rights)

संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 का भारतीय राज्य के बहुसंस्कृतिवादी (Multiculturalist) चरित्र की दृष्टि से अनूठा महत्व है। संविधान निर्माण के समय देश में न सिर्फ सांप्रदायिकता (Communalism) एक बड़ी समस्या थी बल्कि विभिन्न भाषायी समूहों को भी इस बात की चिंता थी कि स्वतंत्र भारत में कहीं उनकी स्थिति वंचित समूहों जैसी न हो जाये। पाकिस्तान के निर्माण के बाद यह प्रश्न और महत्वपूर्ण हो गया था कि भारत में रहने की इच्छा रखने वाले अल्पसंख्यकों की इस चिंता को कैसे दूर किया जाए कि कहीं उन्हें बहुसंख्यकों के प्रभुत्व (Dominance) और दबाव का सामना तो नहीं करना पड़ेगा?

इसलिए संविधान सभा ने तय किया कि अल्पसंख्यकों की विशेष सुरक्षा को मूल अधिकारों में गारंटी के तौर पर रखा जाये। अनुच्छेद 29 और 30 इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

अनुच्छेद 29 व 30 का मूल पाठ (Original text of Articles 29 and 30)

अनुच्छेद 29 व 30 को अलग-अलग पढ़ने से प्राप्ति पैदा होती हैं। ये दोनों अनुच्छेद भीतरी स्तर पर इस तरह जुड़े हैं कि उन्हें साथ मिलाकर ही पढ़ा जाना चाहिए। अनुच्छेद 29 के दो खण्ड हैं— 29(1) तथा 29(2)। अनुच्छेद 30 के भी मूल संविधान में दो ही खण्ड थे— अनुच्छेद 30(1) तथा 30(2)। 41वें संविधान संशोधन (1978) के माध्यम से अनुच्छेद 30(1) में एक उपखण्ड जोड़ा गया था जिसकी प्रविष्टि अनुच्छेद 30(1)(क) के रूप में है। वर्तमान में अनुच्छेद 29 और 30 में यही पाँच खण्ड या उपखंड हैं जिनका मूल पाठ इस प्रकार है—

अनुच्छेद 29: अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों का संरक्षण

- (1) "भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।"
- (2) "राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश (Race), जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।"

अनुच्छेद 30: शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक-वर्गों का अधिकार

- (1) "धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।"
- [1(क)] "खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाते समय, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी संपत्ति के अर्जन के लिए विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम इतनी हो कि उस खण्ड के अधीन प्रत्याभूत अधिकार निर्बन्धित (Restrict) या निराकृत (Abrogate) न हो जाए।"
- (2) "शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था को विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबंध में है।"

अनुच्छेद 29 व 30 से जुड़े प्रमुख प्रश्न

(Main questions associated with Articles 29 and 30)

इन अनुच्छेदों के संबंध में न्यायालयों में कई प्रश्न उठते रहे हैं। सबसे पहले 'केरल ऐजुकेशन बिल' से संबंधित मामले (1958) में कुछ आधारभूत प्रश्न उठे और उसके बाद तो ऐसे विवादों की झड़ी ही लग गई। अभी तक चार-पाँच बार ऐसा हुआ है कि सर्वोच्च न्यायालय की बड़ी पीठों ने अनुच्छेद 29-30 में दिये गये प्रावधानों की विस्तृत व्याख्या की है। ऐसे प्रमुख मामले

(4)- 'पी.ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य' (2005) (7 न्यायाधीशों की पीठ)।

स्पष्ट है कि अभी तक की सबसे बड़ी पीठ 'टी. एम. ए. पाई फाउंडेशन' के मामले में गठित की गई थी, इसलिए उस पीठ द्वारा दिये गये निर्णय सामान्यतः स्वीकार किये जाते हैं। किंतु, जिन प्रश्नों का उत्तर उक्त पीठ ने नहीं दिया था, उनके संबंध में छोटी पीठों के निर्णयों को स्वीकार किया जाता है। इनके अलावा भी कई मामलों में अनुच्छेद 29-30 के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय दिये गये हैं, जिनकी चर्चा संदर्भ के अनुसार होगी।

अल्पसंख्यक वर्गों के इन अधिकारों के संबंध में जो 7-8 प्रश्न न्यायालयों में उठे हैं, उन पर क्रमशः विचार करते हुए देखा जा सकता है कि वर्तमान में उनकी क्या स्थिति है और उस स्थिति तक पहुँचने की क्या प्रक्रिया रही है? वैसे, यह जान लेना जरूरी है कि इस खण्ड से जुड़े कुछ प्रश्नों का उत्तर न्यायालय ने आज तक नहीं दिया है जो संभवतः भविष्य में किसी बृहत् संविधान पीठ द्वारा दिया जाएगा।

(1) पहला प्रश्न यह है कि अनुच्छेद 29 और 30 की दृष्टि से 'अल्पसंख्यक' (Minority) किसे माना जाएगा अर्थात् अल्पसंख्यक वर्ग के निर्धारण की कसौटी क्या होगी? इस संबंध में 'टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन' तथा 'पी.ए. इनामदार' के मामलों में न्यायालय द्वारा कुछ आधारभूत सिद्धांत बताये गए हैं जो इस प्रकार हैं—

(क) अल्पसंख्यकों का निर्धारण 'धर्म' और 'भाषा' दो आधारों पर ही होगा जैसा कि अनुच्छेद 30 में स्पष्ट किया गया है। भाषा में 'लिपि' (Script) भी अंतर्निहित है जो कि अनुच्छेद 29 से सुसंगत है।

(ख) कोई वर्ग अल्पसंख्यक है या नहीं, इसका निर्धारण 'देश' नहीं, 'राज्य विशेष' की जनसंख्या में उसकी स्थिति के आधार पर होगा।

(ग) राज्य की कुल जनसंख्या के 50 प्रतिशत से कम जनसंख्या वाले सभी समुदाय अल्पसंख्यक माने जाएंगे।

(2) दूसरा प्रश्न है कि कोई संस्था 'अल्पसंख्यक संस्था' (Minority institution) है या नहीं, यह कैसे तय होगा? 'पी. ए. इनामदार' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि किसी राज्य में अल्पसंख्यक वर्गों के सदस्यों द्वारा बनाई गई वे संस्थाएँ इस वर्ग में शामिल होंगी जो दो कसौटियों को पूरा करती हों—

(क) वह अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा या उसके धर्म के संरक्षण का प्रयास करती हो; तथा

(ख) वह उस अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराती हो।

(3) तीसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं को दिया गया विशेषाधिकार सिर्फ विद्यालयों आदि पर लागू होता है या प्रोफेशनल शिक्षा (जैसे— इंजीनियरिंग, चिकित्सा विज्ञान आदि) देने वाली संस्थाओं पर भी? इस पर विरोधी पक्ष का तर्क यह था कि तकनीक या व्यावसायिक शिक्षा का संबंध भाषा, धर्म या लिपि के संरक्षण से नहीं होता, इसलिए इसे अनुच्छेद 30 के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त नहीं होना चाहिए। किंतु, सर्वोच्च न्यायालय ने 'टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन' के मामले में स्पष्ट किया कि प्रोफेशनल शिक्षा देने वाली संस्थाएँ भी अनुच्छेद 30 के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त करने की हकदार हैं।

(4) चौथा महत्वपूर्ण सवाल, जो बहुत से मामलों में उठता रहा है, यह है कि 'अपनी रुचि की' शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने और उनका प्रशासन करने में वस्तुतः कौन-कौन से अधिकार निहित हैं? क्या राज्य ऐसी संस्थाओं को विनियमित (Regulate) कर सकता है या नहीं? यदि हाँ, तो उस विनियमन की क्या सीमाएँ होंगी? सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं को अनुच्छेद 30(1) के तहत निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं—

(क) ऐसे लोगों को प्रशासनिक निकाय (Administrative Body) में चुनना जिनकी योग्यता तथा प्रतिबद्धता पर संस्था के प्रवर्तकों को विश्वास है।

(ख) अध्यापन (Teaching) तथा अध्यापनेतर (Non-teaching) कार्य के लिए अपनी रुचि के ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना जो अर्हता (Eligibility) संबंधी शर्तों को पूरा करते हों।

(ग) अपनी रुचि के ऐसे विद्यार्थियों को प्रवेश देना जो प्रवेश हेतु अर्हता (Eligibility) रखते हैं।

(घ) अल्पसंख्यक संस्थाओं को 'युक्तियुक्त शुल्क संरचना' (Reasonable fee structure) निर्धारित करने का अधिकार भी है।

50 प्रतिशत स्थान अल्पसंख्यक संस्था अपने समुदाय के अध्यक्षों को दे सकती है। 'टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन' के मामले में न्यायालय ने निर्धारित किया कि सेंट स्टीफेंस मामले में दिये गये निर्णय का तार्किक आधार उपयुक्त है किंतु 50 प्रतिशत की संख्या निश्चित करना उचित नहीं है। जो अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाएँ राज्य से सहायता प्राप्त करती हैं, राज्य उनसे यह अपेक्षा कर सकता है कि वे 'युक्तियुक्त संख्या' में अन्य समुदायों के विद्यार्थियों को भी दाखिला दें। 'युक्तियुक्त संख्या' का निर्धारण अल्पसंख्यक वर्ग की जरूरतों, शिक्षण संस्था तथा पाठ्यक्रम की प्रकृति आदि के आधार पर होगा।

6. विचार का अगला प्रश्न यह था कि अनुसूचित जातियों (Scheduled Castes), अनुसूचित जनजातियों (Scheduled tribes) तथा अन्य पिछड़े वर्गों (Other backward classes) के लिए दिया जाने वाला आरक्षण अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं पर लागू होता है या नहीं? 'पाई फाउंडेशन' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने तय किया कि जो अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाएँ राज्य से सहायता प्राप्त करती हैं, उनमें समाज के पिछड़े वर्गों के आरक्षण के लिए राज्य निर्देश दे सकता है। इसमें निहित था कि गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं पर ऐसी बाध्यता आरोपित नहीं की जा सकती। 'पी.ए. इनामदार' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ आगे बढ़कर निर्णय दिया कि आरक्षण की नीति सिर्फ राज्य द्वारा सहायता प्राप्त संस्थाओं पर ही लागू की जा सकती है। गैर-सहायता-प्राप्त संस्था चाहे अल्पसंख्यक हो या गैर-अल्पसंख्यक, उस पर आरक्षण की नीति लागू नहीं की जा सकती।
7. एक महत्वपूर्ण प्रश्न संविधान के लागू होने के बाद से ही बार-बार उठाया गया था कि शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने के मामले में अल्पसंख्यकों व बहुसंख्यकों के अधिकारों में कितना अंतर है? ये अधिकार सिर्फ अल्पसंख्यकों को प्राप्त हैं या बहुसंख्यक भी इनका दावा कर सकते हैं? शुरु में ऐसा माना जाता था कि ये अधिकार अल्पसंख्यकों को अलग से दिये गये हैं। किंतु, 'पाई फाउंडेशन' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने तथा उनका प्रशासन करने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। अनुच्छेद 19(1)(छ) में दी गई 'व्यवसाय की स्वतंत्रता' तथा अनुच्छेद 26 में प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को दिये गये 'अपनी संस्थाओं की स्थापना व पोषण के अधिकार' में निहित है कि शिक्षा संस्था चलाने का अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त है।

⇒ अल्पसंख्यक होने का निर्धारण केन्द्र नहीं राज्य करता है।

⇒ किसी भी राज्य के सभी लोग अल्पसंख्यक हो सकते हैं।

⇒ राजा निर्णय या दावा के आधार पर संख्या में कम हैं तो वह अल्पसंख्यक हैं।

अनुच्छेद 31: संपत्ति का अधिकार (अब विलोपित) तथा कुछ विधियों की व्यावृत्ति या सुरक्षा

(Article 31: Right to property (Now Omitted) and Saving of Certain laws)

अनुच्छेद 31 का इतिहास अत्यंत रोचक तथा विशिष्ट है। यह संविधान के मूल अधिकारों के भाग का अकेला अनुच्छेद है जिसे संविधान से हटा दिया गया है। इसके महत्व को ठीक से समझने के लिये मूल संविधान के स्तर से शुरू करके देखना होगा कि कब-कब इस अनुच्छेद में क्या परिवर्तन किये गये हैं और वर्तमान में इसकी क्या स्थिति है?

मूल संविधान में अनुच्छेद 31 (Article 31 in the Original Constitution)

1949 के मूल संविधान में अनुच्छेद 31 का संबंध 'संपत्ति के अधिकार' (Right to property) से था और इसके दो खंड 31(1) तथा 31(2) थे। ये प्रावधान इस प्रकार थे—

1. अनुच्छेद 31(1) में प्रावधान था कि किसी व्यक्ति को 'विधि के प्राधिकार' (Authority of law) के बिना संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। इसका अर्थ है कि यदि राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिए किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करना जरूरी हो जाए तो सिर्फ कार्यपालिका या सरकार के आदेश से ऐसा नहीं किया जा सकेगा बल्कि इसके लिये सक्षम विधानमंडल द्वारा विधि बनाया जाना जरूरी होगा।
2. अनुच्छेद 31(2) में प्रावधान था कि यदि राज्य किसी व्यक्ति की निजी संपत्ति का अधिग्रहण करना चाहता है तो उसे दो शर्तें पूरी करनी होंगी—(क) यह अधिग्रहण लोक प्रयोजन (Public purpose) के लिये होना चाहिए, तथा (ख) व्यक्ति को संपत्ति से वंचित करने वाली विधि में यह उपबंध किया जाएगा कि संपत्ति के बदले उसे क्षतिपूर्ति (Compensation) के तौर पर कितनी रकम (Amount) दी जायेगी या वह सिद्धांत बताया जायेगा जिसके आधार पर संपत्ति के स्वामी को दी जाने वाली रकम का निर्धारण होगा।

संपत्ति के अधिकार से जुड़े विवाद (Debates Associated with the Right to property)

संपत्ति का अधिकार संविधान लागू होने के साथ ही विवादों के घेरे में आ गया। संविधान लागू होने के तुरंत बाद सरकार के सामने दो तरह की समस्याएँ आईं। पहली यह कि जैसे ही भूमि के पुनर्वितरण के लिये कानून बनाए गए, वैसे ही भूमिपतियों ने अपनी भूमि छीने जाने के विरुद्ध न्यायालय से प्रार्थना की कि उनके संपत्ति के मूल अधिकार का अतिक्रमण किया जा रहा है। न्यायालय ने स्वाभाविक तौर पर नीति निर्देशक तत्वों की तुलना में संपत्ति के अधिकार को वरीयता दी क्योंकि संविधान में ऐसा ही प्रावधान था। दूसरी समस्या अनुच्छेद 31(2) के संबंध में थी। इसमें क्षतिपूर्ति (Compensation) शब्द का प्रयोग था। सरकार ने इसका अर्थ यह लिया था कि वह व्यक्तियों को उनकी संपत्ति से वंचित करने के लिए विधि बनाकर किसी ऐसी रकम का प्रावधान कर सकती है जो राज्य की वित्तीय क्षमताओं के अनुरूप हो तथा वंचित किये गये व्यक्ति के नुकसान की कुछ भरपाई कर सके। किंतु, जब इससे जुड़े प्रश्न न्यायालय में उठे तो न्यायालय ने 'क्षतिपूर्ति' का अर्थ 'पूर्ण क्षतिपूर्ति' (Full Compensation) बताया। इस दोनों समस्याओं ने सरकार को संविधान में संशोधन करने के लिए प्रेरित किया।

अनुच्छेद 31 में किए गए संशोधन (Amendments made in Article 31)

अनुच्छेद 31 में कई बार परिवर्तन किये गये हैं। संविधान के पहले, चौथे, 17वें, 25वें, 42वें, 43वें तथा 44वें संशोधनों के द्वारा इसमें कुछ न कुछ परिवर्तन किया गया है। मूल संविधान में अनुच्छेद 31 के दो खंड 31(1) और 31(2) थे। 'पहले संविधान में संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा मूल अनुच्छेद 31(1) और 31(2) को दो खंडों में विभाजित किया गया था। 'संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा मूल अनुच्छेद 31(1) को दो खंडों में विभाजित किया गया था। 'संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा मूल अनुच्छेद 31(1) को दो खंडों में विभाजित किया गया था। 'संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा मूल अनुच्छेद 31(1) को दो खंडों में विभाजित किया गया था।

अनुच्छेद 31(क), (ख), (ग) का निर्माण इसलिए किया गया था ताकि सामाजिक न्याय (Social Justice) के पक्ष में बनाई गई कुछ विधियों को सुरक्षा दी जा सके। '42वें संविधान संशोधन, 1976' के माध्यम से अनुच्छेद 31(घ) जोड़ा गया तथा अनुच्छेद 31(क), (ख), (ग) और (घ) के समुच्चय को 'कुछ विधियों की व्यावृत्ति' (Saving of Certain Laws) शीर्षक दिया गया। वर्तमान स्थिति यह है कि '44वें संविधान संशोधन, 1978' के द्वारा 'संपत्ति का अधिकार' शीर्षक, 'अनुच्छेद 31(1)' तथा '31(2)' का विलोपन कर दिये जाने के कारण तथा '43वें संविधान संशोधन' द्वारा 'अनुच्छेद 31(घ)' का विलोपन किये जाने के कारण अब संविधान में अनुच्छेद 31(क), 31(ख) और 31(ग) ही बचे हैं और इन तीनों के ऊपर शीर्षक है- 'कुछ विधियों की व्यावृत्ति' (Saving of certain laws)।

अनुच्छेद 31(क) से 31(घ) तक के खंडों को समझने से पूर्व अनुच्छेद 31(2) में हुए कुछ परिवर्तनों पर ध्यान देना जरूरी है। अनुच्छेद 31(2) का यह प्रावधान कि 'किसी व्यक्ति को संपत्ति से वंचित करने पर राज्य को उसे क्षतिपूर्ति देनी होगी'- सरकार के लिये कठिनाइयाँ पैदा कर रहा था। वस्तुतः अनुच्छेद 31(क) से 31(ग) तक के तीनों उपबंध इसीलिए बनाए गए थे कि राज्य को सामाजिक न्याय की नीतियों का पालन करने के मामलों में अनुच्छेद 31(2) में वर्णित 'क्षतिपूर्ति' (Compensation) की बाध्यता से बचाया जा सके। गौरतलब है कि संसद ने अनुच्छेद 31(2) के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिये कुछ और भी प्रावधान किये थे। पहले उन प्रावधानों को तथा उसके बाद अनुच्छेद 31(क), (ख), (ग) और (घ) को देखा जा सकता है।

अनुच्छेद 31(2) में किए गए संशोधन [Amendments made in Article 31(2)]:

सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान लागू होने के कुछ ही समय बाद यह व्याख्या की कि अनुच्छेद 31(2) में दिये गये शब्द 'क्षतिपूर्ति' (Compensation) का अर्थ बाजार मूल्य के अनुसार वास्तविक और पूरी क्षतिपूर्ति से है, न कि संसद द्वारा निर्धारित की गई किसी भी राशि से। इस व्याख्या का प्रभाव समाप्त करने के लिये संसद ने 'चौथा संविधान संशोधन अधिनियम, 1955' पारित किया जिसमें प्रावधान था कि यदि राज्य 'लोक प्रयोजन' (Public purpose) के लिये किसी व्यक्ति की भूमि या संपत्ति का अधिग्रहण करता है और विधि बनाकर क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित कर देता है तो ऐसी विधि को क्षतिपूर्ति के अपर्याप्त होने के आधार पर किसी भी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा।

इस संशोधन के बावजूद न्यायालय का हस्तक्षेप पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। न्यायालय ने कई मामलों, जैसे 'आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ' (1970) में निर्धारित किया कि अनुच्छेद 31(2) में विद्यमान अभिव्यक्ति 'क्षतिपूर्ति' का भावार्थ यही है कि राज्य किसी व्यक्ति की संपत्ति के छीने जाने पर उसे पूरा बाजार-मूल्य देगा।

ऐसे निर्णयों के प्रभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने संविधान का '25वाँ संशोधन अधिनियम, 1971' पारित कराया जिसमें अनुच्छेद 31(2) में शामिल 'क्षतिपूर्ति' (Compensation) शब्द को हटाकर उसके स्थान पर 'रकम' (Amount) शब्द रखा गया। इसका तात्पर्य यही था कि राज्य किसी व्यक्ति की संपत्ति का अधिग्रहण करने पर उसे हुए नुकसान को पूरी भरपाई करने को बाध्य नहीं होगा बल्कि अपने विवेक के अनुसार कुछ रकम देगा।

सर्वोच्च न्यायालय ने 'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य', (1973) के मामले में निर्धारित किया कि अनुच्छेद 31(2) के अंतर्गत राज्य द्वारा दी गई 'रकम' (Amount) नाममात्र की या पनपानी नहीं हो सकती है। इसी के साथ न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि 'रकम' (Amount) के निर्धारण का प्रश्न न्यायालय के परीक्षण से परे नहीं हो सकता अर्थात् न्यायालय इस बात की जाँच कर सकता है कि संपत्ति से वंचित किये गये व्यक्ति को दी गई रकम न्यायोचित है या नहीं?

'42वें संविधान संशोधन, 1976' के माध्यम से संसद ने पुनः स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 31 के प्रावधानों को लागू करने के लिए बनाई गई विधियों का न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) नहीं किया जा सकेगा।

1977 में जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार ने बहुत बड़ा कदम उठाते हुए '44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' के माध्यम से अनुच्छेद 31(1) और 31(2) को [अनुच्छेद 19(1)(घ) सहित] संविधान से ही निकाल दिया अर्थात् 'संपत्ति के अधिकार' को मूल अधिकारों की श्रेणी से बाहर कर दिया और एक नया अनुच्छेद 300(क) बनाकर उसमें 'संपत्ति के अधिकार' को एक विधिक या कानूनी अधिकार (Legal right) का दर्जा दे दिया। किंतु, इसी संविधान संशोधन में संपत्ति से वंचित किये जाने के दो आपवादिक मामलों में क्षतिपूर्ति (Compensation) का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया-

(क) अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत एक नया उपखण्ड (30)(1)(क) जोड़ा गया और उसमें उपबंध किया गया कि यदि राज्य द्वारा अधिग्रहित संपत्ति किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा संचालित शिक्षा संस्था की है तो ऐसी संपत्ति का अर्जन करने के लिए

(ख) 44वें संविधान संशोधन में ही इसका उपबंध यह किया गया कि यदि राज्य किसी ऐसी कृषि-भूमि (Agricultural land) का अर्जन करना चाहता है जिस पर उसका मालिक स्वयं कृषि करता है तथा वह भूमि हदबंदी कानून (Land ceiling act) द्वारा निर्धारित अधिकतम भूमि-सीमा के भीतर है तो राज्य ऐसी भूमि के मालिक को भूमि तथा भूमि पर निर्मित भवन इत्यादि का पूरा बाजार मूल्य चुकाएगा।

अनुच्छेद 31(क) [Article 31(A)]:

अनुच्छेद 31(क) संविधान के 'प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से संविधान में शामिल किया गया था। इसका उद्देश्य यह था कि राज्य द्वारा मध्यस्थों (जिन्हें सामान्यतः जमींदार, जागीरदार, मालगुजार या इनामदार आदि नामों से जाना जाता था) के उन्मूलन से जुड़े उद्देश्यों के लिये बनाई गई विधियों को सुरक्षित किया जा सके। इसमें यह प्रावधान था कि कृषि भूमि सुधार तथा उत्पादन के साधनों या संपदाओं के राज्य द्वारा अर्जन हेतु बनाई गई विधियों को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी कि इनसे संविधान के अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 का उल्लंघन होता है। इस अनुच्छेद को भूतलक्षी प्रभाव (Retrospective effect) देते हुए इसे 26 जनवरी, 1950 अर्थात् संविधान लागू होने की तारीख से ही प्रवृत्त किया गया।

संविधान के चौथे और सत्रहवें संशोधनों के माध्यम से अनुच्छेद 31(क) में विस्तार किया गया। 'चौथे संशोधन अधिनियम, 1955' में जमींदारी तथा भूमि सुधार से आगे बढ़ते हुए इसके क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया गया जिसमें राज्य द्वारा किसी संपदा (Estate) या संपत्ति का अर्जन या प्रबंधन अपने हाथ में लेने, विभिन्न निगमों (Corporations) के प्रबंधन या खनिज तेल से जुड़े प्रबंधन जैसे विषयों पर बनाई गई विधियों को संरक्षण देने का प्रावधान किया गया। 'सत्रहवें संशोधन अधिनियम, 1964' के माध्यम से 'संपदा' (Estate) अभिव्यक्ति के अर्थ को और अधिक विस्तार देते हुए उसमें रैयतवादी भूमि और जागीर आदि को भी शामिल कर दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि 1962 के एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि अनुच्छेद 31(क) में शामिल शब्द 'संपदा' के अंतर्गत रैयतवादी भूमि शामिल नहीं है।

अनुच्छेद 31(ख) [Article 31(B)]:

अनुच्छेद 31(ख) भी 'प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951' के माध्यम से अंतःस्थापित किया गया था। इसके माध्यम से संविधान में नवी अनुसूची (9th schedule) शामिल की गई थी। इसमें प्रावधान किया गया है कि नवी अनुसूची में शामिल अधिनियम (Acts), नियम (Rules) और विनियम (Regulations) न्यायिक पुनर्विलोकन से परे होंगे। इसमें शामिल किसी भी 'विधि' को किसी भी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी कि वह संविधान के भाग 3 में वर्णित किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण करती है।

नवी अनुसूची बनाने का मूल लक्ष्य यह था कि भूमि सुधार से जुड़े अधिनियमों को न्यायिक पुनर्विलोकन से सुरक्षा प्रदान की जा सके। प्रथम संशोधन अधिनियम के माध्यम से इसमें 64 भूमि सुधार अधिनियमों को शामिल किया गया था। आगे चलकर, चौथे (1955), 17वें (1964), 29वें (1972), 34वें (1974), 39वें (1975) तथा 42वें संशोधन (1976) द्वारा इसमें कई अधिनियमों को शामिल किया गया। आपात्काल के दौरान 39वें और 42वें संशोधनों के माध्यम से इसमें कुछ ऐसे अधिनियम भी शामिल किये गये जिनका संबंध भूमि सुधार से नहीं था, जैसे- 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (Representation of peoples act, 1951); 'लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1974' [Representation of peoples (amendment) act, 1974]; 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम, 1970' (Maintenance of internal security act, 1970); 'निर्वाचन विधि (संशोधन) अधिनियम, 1975' [Election laws (amendment) act, 1975]; 'आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन की रोकथाम अधिनियम, 1976' (Prevention of publication of objectionable matters act, 1976) इत्यादि। 44वें संविधान संशोधन के द्वारा जनता पार्टी को सरकार ने ऐसे विवादास्पद अधिनियमों को नवी अनुसूची से निकाल दिया, जिनका संबंध भूमि सुधार से न होकर राजनीतिक स्वार्थों से था।

आगे चलकर, 47वें संशोधन (1982); 66वें (1990); 76वें (1994) तथा 78वें संशोधन अधिनियम (1995) के द्वारा कुछ और अधिनियमों को नवी अनुसूची में शामिल किया गया। इनमें से 76वें संशोधन अधिनियम पर काफी विवाद हुआ क्योंकि इसके माध्यम से तमिलनाडु राज्य द्वारा पारित उस अधिनियम को इसमें शामिल किया गया था जो 69 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था करता था। 1993 में 'इंद्र साहनी बनाम भारत संघ' मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस निर्णय को पुनः दोहराने के बाद कि आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत हो हो सकती है, तमिलनाडु की आरक्षण व्यवस्था को समरूपता के सिद्धांत के अंतर्गत चुनौती दी जाने से न्यायिक

के निर्णय की तारीख (24 अप्रैल, 1973) के बाद नवीं अनुसूची में किये गए संशोधनों की वैधता की जाँच न्यायालय कर सकता है।

इन क्रांतिकारी निर्णयों के बाद भी सर्वोच्च न्यायालय ने नवीं अनुसूची में शामिल किये गये अधिनियमों के मामले में प्रायः संयम बरता है और उन्हें असंवैधानिक घोषित नहीं किया है।

अनुच्छेद 31(ग) [Article 31(C)]:

अनुच्छेद 31(ग) को '25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' के द्वारा संविधान में शामिल किया गया था। इसमें प्रावधान था कि यदि कोई विधि संविधान के अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में दिये गये नीति-निर्देशक तत्वों को उपलब्ध करने के लिये बनाई जाती है तो उसे इस आधार पर शून्य घोषित नहीं किया जा सकेगा कि वह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करती है। गौरतलब है कि अनुच्छेद 39(ख) तथा 39(ग) में भौतिक संसाधनों तथा अर्थव्यवस्था का प्रबंधन इस प्रकार करने का निर्देश दिया गया है कि समाज में आर्थिक संसाधनों के वितरण में विषमता न बढ़े और यथासंभव समता का स्थिति आ सके।

'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य', (1973) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 31(ग) की विधिमान्यता पर विचार किया। इसका आरंभिक अंश, जो अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) को अनुच्छेद 14, 19 और 31 पर बरीयता प्रदान करता है, न्यायालय द्वारा विधिमान्य घोषित किया गया; किंतु इसका वह अंश जो अनुच्छेद 39(ख) और (ग) को बरीयता देने के उद्देश्य से बनाई गई विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर करता है, न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित कर दिया गया क्योंकि न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान के 'मूल ढाँचे' (Basic structure) का हिस्सा है जिसे संविधान संशोधन के माध्यम से भी खारिज नहीं किया जा सकता।

केशवानंद भारती मामले को इस निर्णय की महत्व न देते हुए कांग्रेस सरकार ने '42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' के माध्यम से अनुच्छेद 31(ग) को और ज्यादा विस्तृत बना दिया। इस विस्तार के माध्यम से अनुच्छेद 39(ख) तथा 39(ग) को ही नहीं बल्कि संविधान के भाग-4 में उल्लिखित किसी भी नीति-निर्देशक तत्व को अनुच्छेद 14, 19 व 31 पर बरीयता प्रदान की गई।

'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' (1980) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने '42वें संशोधन अधिनियम' की धारा 4 को असंवैधानिक मानते हुये शून्य घोषित कर दिया जिसके माध्यम से अनुच्छेद 31(ग) में उक्त संशोधन किया गया था। न्यायालय ने घोषित किया कि 'मूल अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों के मध्य संतुलन' संविधान के 'मूल ढाँचे' (Basic structure) का हिस्सा है। 42वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31(ग) में जो विस्तार किया गया है, वह इस संतुलन पर आधारित करता है। न्यायालय ने घोषित किया कि 42वें संशोधन से पूर्व अनुच्छेद 31(ग) जिस रूप में था अर्थात् जैसा वह 25वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में प्रविष्ट किया गया था, वह उसी रूप में विधिमान्य है।

अतः, वर्तमान स्थिति यह है कि '25वें संविधान संशोधन, 1971' द्वारा स्थापित अनुच्छेद 31(ग) अपने मूल रूप में वैध है किंतु उसके आधार पर बनाई गई विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन से संरक्षण प्राप्त नहीं है। न्यायालय इस बात की जाँच कर सकता है कि संसद द्वारा अनुच्छेद 31(ग) के अंतर्गत बनाए गए अधिनियम के उद्देश्य अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) में बताये गये उद्देश्यों से युक्तियुक्त रूप से जुड़े हैं या नहीं?

अनुच्छेद 31(घ) [Article 31(D)]:

अनुच्छेद 31(घ) को संविधान के '42वें संशोधन' द्वारा अतः स्थापित किया गया था, किंतु '43वें संशोधन, 1977' द्वारा ही इसका लोप कर दिया गया था। इसके अंतर्गत यह व्यवस्था की गई थी कि यदि संसद राष्ट्रविरोधी गतिविधियों या राष्ट्रविरोधी संगम (Anti-national associations) बनाने को प्रतिषिद्ध करने के लिए कोई विधि बनाती है तो उस विधि की संवैधानिकता को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकेगा कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करती है। यह संरक्षण सिर्फ केंद्रीय विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधियों को ही दिया गया था।

जनता पार्टी ने अपनी चुनावी घोषणाओं में बार-बार दोहराया था कि उसकी सरकार आभातकाल के दौर में पारित किये गये '43वें संशोधन' को रद्द कर देगी। किंतु यह वादाभातकाल के दौरान ही भंग हो गया।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार : अनुच्छेद 32

(Right to Constitutional Remedies: Article 32)

अनुच्छेद 32 कई संविधानविदों की राय में संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। संविधान-सभा की प्रारूप समिति (Drafting Committee) के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर, जिन्हें सम्मानवश 'भारतीय संविधान का निर्माता' कहा जाता है, ने इस अनुच्छेद का महत्व बताते हुए संविधान सभा में कहा था कि "यदि मुझसे पूछा जाए कि संविधान में कौन सा अनुच्छेद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जिसके बिना संविधान निरर्थक हो जाएगा तो मैं इसके (अनुच्छेद 32 के) सिवाय किसी और अनुच्छेद का नाम नहीं लूंगा। यह संविधान की आत्मा है, उसका हृदय है।"

इस अनुच्छेद का इतना महत्व होने का कारण यह है कि इसी अनुच्छेद के माध्यम से संविधान के भाग 3 में दिये गये मूल अधिकारों का प्रवर्तन होता है। अधिकारों का महत्व तभी है जब उनका प्रयोग किया जा सके। ऐसे अधिकार जिनका प्रयोग करना सम्भव न हो, निरर्थक होते हैं। संविधान निर्माता जानते थे कि मूल अधिकारों के रूप में बहुत से अधिकारों का संविधान में उल्लेख कर देना ही पर्याप्त नहीं है, यह भी जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे आसान तरीके उपलब्ध कराए जाएँ, जिनसे वह अपने अधिकार छिन्ने की स्थिति में तुरंत न्यायालय की मदद से उन्हें पुनः हासिल कर सके। अनुच्छेद 32 प्रत्येक व्यक्ति को यही गारंटी प्रदान करता है।

अनुच्छेद 32 के चार खण्ड हैं—32(1), 32(2), 32(3) तथा 32(4)। इन चारों को क्रमशः देखना उचित होगा।

अनुच्छेद 32(1) [Article 32(1)]

अनुच्छेद 32 (1) का मूल पाठ इस प्रकार है—

"इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत (Guarantee) किया जाता है।"

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कई निर्णयों में इस कथन की व्याख्याएँ की हैं जिनके आधार पर अनुच्छेद 32(1) से संबंधित कई पक्ष स्पष्ट होते हैं। ऐसे प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं—

- (1) चूँकि अनुच्छेद 32 भी अध्याय 3 में शामिल है, इसलिए यह भी एक मूल अधिकार ही है। अतः मूल अधिकारों को प्राप्त सभी संरक्षण इस अनुच्छेद को भी प्राप्त हैं। इससे स्पष्ट होता है कि संविधान में मूल अधिकारों का प्रवर्तन कराने की शक्ति को भी मूल अधिकार का दर्जा दिया गया है ताकि विधायिका या कार्यपालिका उसे व्यक्तियों से छीन न सके।
- (2) सर्वोच्च न्यायालय मूल अधिकारों की प्रत्याभूति अर्थात् गारंटी देने वाली संस्था है। इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को 'मूल अधिकार' है कि वह अपने 'किसी भी मूल अधिकार' का उल्लंघन होने पर सर्वोच्च न्यायालय से न्याय प्राप्ति के लिये निवेदन कर सकता है।
- (3) पीड़ित व्यक्ति को हक है कि वह सीधे ही सर्वोच्च न्यायालय के पास निवेदन कर सकता है, उस पर यह बाध्यता लागू नहीं होती कि सर्वोच्च न्यायालय से पूर्व वह उच्च न्यायालय में निवेदन करे।
- (4) अनुच्छेद 32 के आधार पर निवेदन किये जाने पर न्यायालय तकनीकी आधार पर निवेदन अस्वीकार नहीं कर सकता। मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए रिट देना न्यायालय के विवेक के अधीन नहीं है। यदि प्रार्थी किसी मूल अधिकार का उल्लंघन सिद्ध कर देता है तो उसका हक है कि वह न्यायालय से न्याय मांगे।
- (5) मूल अधिकारों के उल्लंघन पर यदि कोई व्यक्ति अनुच्छेद 32 के तहत प्रार्थना करता है तो न्यायालय इस आधार पर भी प्रार्थना खारिज नहीं कर सकता कि प्रार्थी को उस समस्या के समाधान के लिए कोई दूसरा उपाय या उपचार (Remedy) उपलब्ध है।
- (6) सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 32 में दी गई शक्ति भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र पर लागू होती है, किसी क्षेत्र विशेष पर नहीं। वह केंद्र सरकार, किसी भी राज्य की सरकार तथा संघ राज्यक्षेत्रों के प्रशासकों को अनुच्छेद 32 के अधीन आदेश दे सकता है।

ढाँचे' (Basic structure) का हिस्सा है, जिसका अर्थ है कि अनुच्छेद 368 के आधार पर संविधान के संशोधन द्वारा भी इसे नष्ट नहीं किया जा सकता है।

- (8) अनुच्छेद 32 का प्रयोग सिर्फ मूल अधिकारों के उल्लंघन के मामले में किया जा सकता है, किसी और समस्या के निवारण के लिए नहीं।
- (9) सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत कोई भी उचित आदेश निकालने की शक्ति रखता है, जरूरी नहीं है कि वह अनुच्छेद 32(2) में वर्णित 5 प्रकार की रिटों में से ही कोई हो।
- (10) यदि कोई व्यक्ति मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना करता है किंतु किसी ऐसी रिट की मांग करता है जो उसके मामले से सुसंगत नहीं है, तो न्यायालय उसकी प्रार्थना को खारिज नहीं करेगा बल्कि स्वयं उसे उचित रिट प्रदान करेगा।
- (11) अनुच्छेद 32 के संबंध में यह प्रावधान तो नहीं है कि पीड़ित व्यक्ति को किसी निश्चित समय सीमा के भीतर ही न्यायालय के समक्ष प्रार्थना करनी होगी, किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में निर्धारित किया है कि यदि कोई व्यक्ति न्यायालय पहुँचने में अनुचित देरी करता है तो उसकी प्रार्थना पर कार्यवाही करने से इनकार किया जा सकता है। प्रार्थी को हुई देरी उचित है या अनुचित, इसका फैसला उस मामले से जुड़े तथ्यों के आलोक में ही किया जाएगा।

जनहित वाद या लोकहित वाद (Public interest litigation)

संविधान लागू होने के शुरुआती वर्षों में न्यायालय ने सामान्यतः यही निर्धारित किया कि अनुच्छेद 32 के तहत न्यायालय के समक्ष वही व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है जिसके मूल अधिकारों का हनन हुआ हो। इस पारंपरिक नियम को 'सुनवाई का अधिकार' (Locus standi) या 'अधिकारिता' (Standing) कहते हैं। इस नियम का नुकसान यह है कि आर्थिक रूप से संपन्न तथा कानून की पर्याप्त जानकारी रखने वाले व्यक्ति तो अपने मूल अधिकारों का संरक्षण आसानी से कर पाते हैं किंतु गरीब, निरक्षर और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए अपने अधिकारों का संरक्षण करना प्रायः असंभव हो जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने 1980 के दशक में लोकहितवादों को प्रोत्साहित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने परंपरागत न्यायिक प्रक्रिया के कई नियमों को बदल दिया, या सरल कर दिया। नियमों में हुए ऐसे परिवर्तन इस प्रकार हैं-

- (i) परंपरागत व्यवस्था यह थी कि मुकदमा केवल वही व्यक्ति कर सकता है जिसे कोई क्षति पहुँची हो। इसे 'सुनवाई का नियम' (Locus standi) या 'अधिकारिता' (Standing) कहा जाता है। न्यायपालिका ने इस नियम को बदलकर यह सिद्धांत स्वीकार किया कि कोई भी व्यक्ति या संस्था सामाजिक हित से जुड़े मामलों को न्यायालय में उठाने के लिए अर्ह (Eligible) है।
- (ii) परंपरागत न्याय-प्रक्रिया की दूसरी शर्त यह थी कि पीड़ित व्यक्ति को स्वयं प्रमाण जुटाकर सिद्ध करना होता था कि उसका उत्पीड़न किया गया है। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने एक नई कार्यविधि यह अपनायी कि यदि पीड़ित व्यक्ति प्रमाण जुटाने में समर्थ नहीं है तो न्यायालय आगे बढ़कर उसकी सहायता करे। उदाहरण के लिए, 'बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ' (1983) मामले में ऐसा किया गया।
- (iii) परंपरागत न्यायिक प्रणाली की तीसरी व्यवस्था यह थी कि न्यायालय में याचिका दायर करने के लिए निर्धारित प्रारूप तथा औपचारिकताओं (Formalities) को पूरा करना जरूरी होता था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस नियम को बदलकर न्याय प्राप्त करना एकदम आसान बना दिया। मुख्य न्यायाधीश पी.एन. भगवती ने यहाँ तक घोषित किया कि किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा भेजा गया पोस्टकार्ड भी याचिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।
- (iv) न्यायिक प्रक्रिया का चौथा नियम यह था कि न्यायालय किसी भी मामले में तब तक संज्ञान (Cognizance) नहीं लेगा (अर्थात् हस्तक्षेप नहीं करेगा) जब तक वह मामला औपचारिक रूप से उसके सामने न लाया जाए। न्यायपालिका ने इस नियम को भी शिथिल कर दिया और व्यवस्था दी कि न्यायालय स्वयं भी मीडिया की रिपोर्टों आदि के आधार पर किसी मामले में संज्ञान ले सकता है।

लोकहितवादों के विकास से जुड़े महत्वपूर्ण मामले (Important cases associated with the development of PILs):

'पीपल्स यूनिन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ' (1981) का मामला लोकहितवादों के विकास की दृष्टि से एक 'मील का पत्थर' है। इस मामले में पी. यू. डी. आर. अर्थात् 'पीपल्स यूनिन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स' नामक संस्था ने सर्वोच्च

की सुनवाई के बाद श्रमिकों के शोषण को रोकने से संबंधित आदेश जारी किया।

'बंधुआ मुक्ति मोर्चा मामले' के नाम से प्रसिद्ध मुकदमा 'बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ' (1983) भी लोकहितवादों के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। इस मामले में स्वामी अग्निवेश द्वारा चलाए जा रहे संगठन 'बंधुआ मुक्ति मोर्चा' ने हरियाणा के फरीदाबाद शहर में पत्थर की खदानों में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति का सर्वेक्षण किया और पाया कि उनकी स्थिति बंधुआ मजदूरों या बेगारों जैसी है जो मानवीय दृष्टि से पूर्णतः अनुचित है। स्वामी अग्निवेश ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती को पत्र लिखकर उन्हें मजदूरों की स्थिति से अवगत कराते हुए निवेदन किया कि उन्हें बंधुआ मजदूरों से मुक्त कराया जाए। श्री भगवती ने इस पत्र को याचिका के रूप में स्वीकार किया तथा सरकार को नोटिस जारी किया। साथ ही, उन्होंने दो वकीलों को कमिशनर के रूप में नियुक्त करके स्थिति का सर्वेक्षण करने का निर्देश दिया। इन वकीलों ने तीन दिनों में प्राथमिक जाँच करके रिपोर्ट दी कि इन मजदूरों का जीवन पशु-पक्षियों से भी गंवा-बीता है। इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने आई.आई.टी. के प्रोफेसर पटवर्धन को इस पूरे मामले की विस्तृत जाँच करने का निर्देश दिया।

लोकहितवादों का योगदान (Contribution of Public Interest Litigations):

न्यायालय ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से कई वंचित वर्गों का संकट दूर किया है जिनमें बलात्कार से पीड़ित महिलाएँ, जेलों में बंद बच्चे, बंधुआ मजदूर, पर्यावरण प्रदूषण से त्रस्त नागरिक, जेल में पुलिस के शोषण से परेशान बंदी तथा फुटपाथ पर फेरी लगाने वाले शामिल हैं। आरंभिक चरण में न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की मौलिक व्याख्याओं के माध्यम से लोकहितवादों में गरीबों और वंचितों के पक्ष में सकारात्मक निर्णय दिए। आगे चलकर, पर्यावरण और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे भी लोकहितवादों के माध्यम से स्वीकार किए जाने लगे।

लोकहितवादों से जुड़ी सावधानियाँ (Precautions associated with PILs):

न्यायालय ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि जनहित याचिका या लोकहितवाद का सहारा लेकर कोई व्यक्ति निजी स्वार्थों की पूर्ति न कर सके। जिन मामलों में देखा गया है कि याचिकाकर्ता व्यक्तिगत लाभ या प्रचार (Publicity) अथवा किसी के प्रति द्वेष से भ्रमर जनहित याचिका का दुरुपयोग कर रहा है, उनमें न्यायालय ने न सिर्फ याचिकाओं को खारिज किया है बल्कि कुछ मामलों में तो ऐसे याचिकाकर्ताओं पर नकद जुर्माना भी लगाया है। हाल ही के एक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः लोकहितवादों में न्यायालयों को सावधानी बरतने की सलाह देते हुए किसी याचिका को स्वीकार करने से पहले कुछ बातों को जाँच लेने की सलाह दी है, जैसे (i) प्रार्थी विश्वसनीय है या नहीं, (ii) प्रार्थी द्वारा दी गई जानकारी स्पष्ट और प्रामाणिक है या नहीं, तथा (iii) प्रार्थी द्वारा बताई गई परिस्थिति गंभीर है या नहीं?

न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism)

न्यायिक सक्रियता का सामान्य अर्थ उस स्थिति से है जिसमें न्यायपालिका अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकलकर कार्यपालिका (या कभी-कभी विधायिका) के क्षेत्र में दखल देने लगती है।

संविधान के लागू होने के तुरंत बाद ही यह तनाव शुरू हो गया था कि संसद की शक्तियाँ कहाँ तक जाती हैं और न्यायपालिका किस सीमा तक उन पर प्रतिबंध लगा सकती है? इसका प्रमाण है कि 'पहले संविधान संशोधन, 1951' में ही नौवीं अनुसूची को संविधान में इसलिए शामिल किया गया था ताकि न्यायालय कुछ मामलों पर न्यायिक पुनर्विलोकन न कर सके। यह तनाव श्रीमती इंदिरा गांधी के शासनकाल में चरम स्तर पर पहुँच गया था जब उन्होंने विभिन्न संविधान संशोधनों जैसे 17वें, 24वें, 25वें, 39वें तथा 42वें संशोधनों के माध्यम से न्यायपालिका की शक्तियों को कम करना चाहा जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मामलों जैसे 'गोलकनाथ' (1967), 'केशवानंद भारती' (1973), 'पिनर्वा मिल्स' (1980) तथा 'वामन राव' (1981) में उनको लगभग हर ऐसी कोशिश को असंवैधानिक घोषित कर दिया।

भारत में न्यायिक सक्रियता के अंतर्गत न्यायपालिका के निम्नलिखित कदमों को शामिल किया जाता है—

- (क) संविधान की मौलिक व्याख्याएँ इस प्रकार करना कि संविधान का अर्थ बदल जाए और विधायिका तथा कार्यपालिका इस नए अर्थ के अनुसार कार्य करने को बाध्य हो जाएँ। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 21 में दी गई शब्दावली 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) की जैसी व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय ने 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' (1978) मामले में की, वह इस दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 21 में दिए गए 'प्राण के अधिकार' के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा, आजीविका, एकांतता जैसे अधिसंख्य अधिकारों को शामिल कर देना भी एक अर्थ में न्यायिक सक्रियता का उदाहरण है।

के कार्यक्षेत्र में दखल-देते हुए महत्वपूर्ण मामलों पर नीति निर्देश दिए हैं। उदाहरण के लिए 'एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य' (1996) मामले में न्यायालय ने बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए, तो 'विशाखा बनाम राजस्थान राज्य' (1997) मामले में कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न रोकने के लिए विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए।

- (ग) न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण जनहित याचिकाओं या लोकहितवादों (PILs- Public Interest Litigations) को स्वीकार करना है। ऐसा करने के लिए न्यायपालिका ने न्यायिक प्रक्रिया से जुड़े कई मूल सिद्धांतों को परिवर्तित कर दिया जिनकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है।

अनुच्छेद 32(2) [Article 32(2)]

अनुच्छेद 32(2) में अनुच्छेद 32(1) से संबंधित व्यावहारिक प्रावधान दिए गए हैं। इसमें बताया गया है कि संविधान के भाग 3 द्वारा नागरिकों को दिए गए मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए सर्वोच्च न्यायालय किस तरह के आदेश या रिट आदि जारी कर सकता है। अनुच्छेद 32(2) का मूल पाठ इस प्रकार है—

“इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश (Directions) या आदेश (Orders) या रिट (Writs), जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार-पृच्छा (Quo-warranto) और उत्प्रेषण (Certiorari) रिट हैं, जो भी समुचित हों, निकालने की शक्ति होगी।”

अनुच्छेद 32(2) में जिन 5 रिटों की चर्चा की गई है, उनका मूल संबंध इंग्लैंड की न्याय प्रणाली से है। गौरतलब है कि इंग्लैंड में विरोधाधिकार रिटें मूल प्रकृति में नकारात्मक (Negative) हैं अर्थात् वे राज्य को कुछ करने से रोकती हैं, न कि कुछ करने का निर्देश देती हैं। दूसरे शब्दों में, न्यायपालिका अपनी रिट अधिकारिता के अंतर्गत उन विधियों को असंवैधानिक घोषित करती है, जो व्यक्तियों के अधिकारों के विरुद्ध हों। दूसरी बात यह है कि इंग्लैंड की कानून प्रणाली में रिट जारी करने की प्रक्रिया में प्रक्रियागत सूक्ष्मताओं (Procedural technicalities) का पालन बेहद सावधानी से किया जाता है।

भारत की स्थितियाँ इंग्लैंड से काफी अलग हैं। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी रिट अधिकारिता के संबंध में प्रायः लचीला दृष्टिकोण अपनाया है। सर्वप्रथम, उसने स्पष्ट किया है कि चूंकि भारत के अधिकार नागरिक विधि संबंधी सूक्ष्मताओं से परिचित नहीं हैं, इसलिए भारतीय न्यायालयों को इन सूक्ष्मताओं पर ध्यान देने की बजाय प्रभाव पर ध्यान देना चाहिए। इस दृष्टिकोण का परिणाम यह है कि भारत में यदि प्रार्थी अपने मूल अधिकार के उल्लंघन के विचारण हेतु समुचित रिट के लिए प्रार्थना नहीं करता है तो भी न्यायालय उसके दावे को खारिज करने की बजाय अपनी और से समुचित रिट जारी कर देता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय न्यायपालिका ने रिट अधिकारिता को सिर्फ नकारात्मक (Negative) रूप तक सीमित न रखते हुए उसके सकारात्मक (Positive) रूप पर बल दिया है। इसका अर्थ है कि न्यायालय को सिर्फ किसी विधि को असंवैधानिक बताकर कर्तव्यों से मुक्त नहीं हो जाना है बल्कि विधि को असंवैधानिक घोषित करने से उत्पन्न होने वाली संभावित समस्याओं पर ध्यान देते हुए यह भी स्पष्ट करना है कि इन समस्याओं के समाधान हेतु किन समुचित साधनों का प्रयोग किया जा सकता है या किया जायेगा।

अनुच्छेद 32(2) में पाँच प्रकार की रिटों की चर्चा की गई है। इन पाँचों प्रकार की रिटों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना आवश्यक है—

(1) बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus): यह अंग्रेजी शब्द है जो H.C. से लिया गया है -

‘हैबियस कॉर्पस’ एक लैटिन अभिव्यक्ति है, जिसका शाब्दिक अर्थ है— ‘शरीर प्राप्त करना’। यह रिट एक आदेश के रूप में प्रयुक्त होती है। यदि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति को बंदी बना रखा हो तो न्यायालय इस रिट के माध्यम से आदेश देता है कि बंदी व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाए ताकि न्यायालय इस बात की जाँच कर सके कि उस व्यक्ति को बंदी बनाये जाने के पीछे पर्याप्त कानूनी कारण हैं या नहीं; और यदि नहीं हैं तो उसे कैद से मुक्त कराया जा सके। यह रिट सिर्फ

=> बंदी प्रत्यक्षीकरण में यह अनिवार्य नहीं है कि उसे SC के सामने लाया जाय

=> सुनिल बत्रा H.C के उच्च वेशियों को बंदी हुआ है जिसे जाया है

कुछ मामलों में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी नहीं की जा सकती है। ऐसी स्थितियाँ निम्नलिखित हैं:

- (क) यदि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी वैध है अर्थात् उसे 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार गिरफ्तार किया गया है और अभी उसे गिरफ्तार हुए या तो 24 घंटे नहीं हुए हैं या 24 घंटों के भीतर उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया है।
- (ख) यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध में अभियुक्त (Accused) होने या दोष-सिद्ध (Convicted) होने के कारण न्यायिक अभिरक्षा (Judicial custody) या कारावास में रखा गया है।
- (ग) जिस व्यक्ति पर किसी को अवैध रूप से कैद करने का आरोप है, यदि वह न्यायालय की अधिकारिता से परे है तो उसके विरुद्ध रिट नहीं निकाली जाएगी।
- (घ) सेना न्यायालय के आदेशों पर सामान्यतः यह रिट नहीं दी जाती। इसका अपवाद यह है कि यदि सेना न्यायालय ने अपनी अधिकारिता से बाहर निकलकर या प्राकृतिक न्याय (Natural justice) का उल्लंघन करते हुए किसी को कैद किया है तो यह रिट जारी की जा सकती है।
- (ङ) यदि संसद या किसी अभिलेख न्यायालय (Court of record) की अवमानना (Contempt) के लिए किसी को निरुद्ध किया गया हो तो उसके मामले में यह रिट जारी नहीं की जाएगी।

वस्तुतः बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का मूल उद्देश्य सविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त 'वैयक्तिक स्वतंत्रता' (Personal liberty) के अधिकार की रक्षा करना है। इसका प्रयोग उन मामलों में नहीं किया जा सकता जहाँ किसी व्यक्ति को 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अन्तर्गत वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित किया गया हो। शेष प्रत्येक स्थिति में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(2) परमादेश (Mandamus):

अंग्रेजी शब्द 'मैण्डेमस' का हिन्दी अनुवाद है- 'हम आदेश देते हैं'। यह रिट भी एक आदेश के रूप में होती है जिसका प्रयोग किसी लोक-प्राधिकारी (Public authority) को आदेश देने के लिए किया जाता है ताकि वह अपने सार्वजनिक कर्तव्य को पूरा करे जिसे पूरा करने से उसने इनकार किया है।

यह रिट न्यायालय के विवेकाधीन है। यदि न्यायालय को प्रतीत होता है कि प्रार्थी द्वारा की गई शिकायत का समाधान किसी वैकल्पिक उपाय के माध्यम से हो सकता है तो वह उसे ही वरीयता प्रदान करेगा। किंतु, यदि शिकायत मूल अधिकारों के उल्लंघन से जुड़ी है तो सामान्यतः वैकल्पिक उपायों की जगह परमादेश रिट ही जारी की जाती है।

परमादेश रिट जारी किये जाने के लिए कुछ शर्तों का पूरा होना जरूरी है, जैसे-

- (1) प्रार्थी को सिद्ध करना होगा कि उसका कोई कानूनी अधिकार (Legal right) है, जिससे उसे वंचित किया जा रहा है।
- (2) उसे यह भी सिद्ध करना होगा कि वह जिस व्यक्ति के विरुद्ध परमादेश रिट जारी करने का निवेदन कर रहा है, उसका कोई लोक कर्तव्य है जो सविधान या किसी अधिनियम (Act) या किसी अधीनस्थ विधान (Subordinate legislation) द्वारा उस पर आरोपित है।
- (3) प्रार्थी को प्रमाणित करना होगा कि उसने अपने कानूनी अधिकार की उपलब्धि के लिए उक्त प्राधिकारी से निवेदन किया था, किंतु प्राधिकारी ने बिना किसी उचित आधार के काम करने से इनकार कर दिया है या इनकार तो नहीं किया है किंतु काम भी नहीं किया है।

परमादेश रिट प्रत्येक मामले में जारी नहीं की जाती है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित मामलों में इसका प्रयोग नहीं होता है-

- (i) सामान्यतः किसी प्राइवेट व्यक्ति या प्राइवेट कंपनी के खिलाफ इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।
- (ii) यदि किसी प्राधिकारी को कोई कार्य करने या न करने की विवेकाधीन शक्ति (Discretionary power) दी गई हो अर्थात् वह कार्य करना उसके लिए बाध्यकारी न हो तो न्यायालय उसे विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए परमादेश रिट के माध्यम से आदेश नहीं दे सकता है।
- (iii) दो व्यक्तियों के बीच यदि कोई समझौता या सविदात्मक संबंध (Contractual relation) हो, और उनमें से कोई व्यक्ति उस सविदा पर आधारित दायित्वों का निर्वहन नहीं कर रहा हो, तो उसके विरुद्ध परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती।
- (iv) राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल के विरुद्ध परमादेश रिट जारी करके उसे कर्तव्य के पालन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।
- (v) उच्च न्यायालय या न्यायाधीश के विरुद्ध भी सामान्य स्थितियों में यह रिट जारी नहीं की जा सकती। इसका अपवाद सिर्फ तब है कि जब कोई न्यायाधीश अपने कर्तव्य के पालन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

(3) प्रतिषेध (Prohibition):

प्रतिषेध का अर्थ है— 'रोकना'। यह रिट न्यायपालिका से संबंधित है। यह रिट सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा किसी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायिक निकाय के विरुद्ध तब निकाली जाती है जब वह अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर निकलकर कार्य करता है या प्राकृतिक न्याय (Natural justice) के नियमों का उल्लंघन करता है। दूसरे शब्दों में, इस रिट का उद्देश्य किसी अधीनस्थ न्यायालय को अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण करने से रोकना है।

प्रतिषेध की रिट विधायिका या कार्यपालिका के किसी कृत्य के विरुद्ध नहीं दी जा सकती, न ही यह किसी प्राइवेट व्यक्ति या प्राइवेट संस्था के विरुद्ध निकाली जा सकती है। यह सिर्फ किसी न्यायालय या न्यायिक निकाय के विरुद्ध निकाली जाती है। इसे निकालने की शर्त यह भी है कि न्यायालय किसी मामले में अपने अधिकार का अतिक्रमण कर रहा हो किंतु अभी उसने उक्त मामले में अंतिम फैसला न सुनाया हो। यदि अंतिम फैसला सुनाया जा चुका है तो 'प्रतिषेध' (Prohibition) नहीं, 'उत्प्रेषण' (Certiorari) की रिट जारी की जाएगी।

उच्च न्यायालय के पास रिट अधिकारिता अत्यंत व्यापक है। वह कई तरह के मामलों में प्रतिषेध रिट का प्रयोग कर सकता है किंतु सर्वोच्च न्यायालय इसका प्रयोग केवल तभी कर सकता है जब किसी व्यक्ति के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ हो।

'परमादेश' (Mandamus) और 'प्रतिषेध' (Prohibition) में दो महत्वपूर्ण अंतर हैं। प्रथम, परमादेश रिट सामान्यतः कुछ करने का आदेश देती है जबकि प्रतिषेध रिट कुछ करने से रोकती है। दूसरे, प्रतिषेध रिट सिर्फ न्यायिक प्राधिकारियों के विरुद्ध जारी की जा सकती है, जबकि परमादेश रिट न्यायिक और प्रशासनिक दोनों तरह के प्राधिकारियों के विरुद्ध जारी की जा सकती है।

(4) उत्प्रेषण (Certiorari):

उत्प्रेषण की रिट भी न्यायपालिका से संबंधित है। यह किसी वरिष्ठ न्यायालय द्वारा किसी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायिक निकाय को तब संबोधित की जाती है जब इस बात का संशय होता है कि न्यायालय ने अपनी अधिकारिता से बाहर जाकर निर्णय दिया है या निर्णय में प्राकृतिक/नैसर्गिक न्याय (Natural justice) के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है।

प्रतिषेध (Prohibition) और उत्प्रेषण (Certiorari) में मूल अंतर सिर्फ यह है कि यदि अधीनस्थ न्यायालय या न्यायिक निकाय अपनी अधिकारिता का उल्लंघन कर रहा है तो उसे ऐसा करने से रोकने के लिए प्रतिषेध रिट जारी की जाती है; किंतु यदि अधीनस्थ न्यायालय अधिकारिता का उल्लंघन करके कोई निर्णय दे चुका है तो उस निर्णय और तत्संबंधी कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी की जाती है। दूसरे शब्दों में, प्रतिषेध रिट किसी न्यायिक कार्यवाही के शुरुआती चरण में दी जाती है, जबकि उत्प्रेषण रिट न्यायिक कार्यवाही हो जाने के बाद।

उत्प्रेषण की रिट तीन आधारों पर जारी की जा सकती है—

- (I) अधिकारिता का अभाव— इसका अर्थ है कि न्यायालय ने अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकलकर निर्णय दिया है।
- (II) निर्णय में विधि संबंधी भूल होना— उत्प्रेषण रिट का दूसरा कारण यह हो सकता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने किसी मामले में निर्णय देते समय कोई 'विधि संबंधी भूल' (Error of law) कर दी हो।
- (III) प्राकृतिक न्याय या नैसर्गिक न्याय सिद्धांतों का उल्लंघन— यदि किसी वरिष्ठ न्यायालय को इस बात का समाधान हो जाए कि अधीनस्थ न्यायालय के किसी निर्णय के द्वारा प्राकृतिक न्याय (Natural justice) के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है तो वह उस निर्णय के विरुद्ध उत्प्रेषण रिट जारी कर सकता है। प्राकृतिक न्याय का मूल अर्थ प्रमुखतः दो सिद्धांतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है— (1) न्यायालय की निष्पक्षता, और (2) दोनों पक्षों को सुनवाई का अधिकार।

(5) अधिकार पृच्छा (Quo Warranto):

अधिकार पृच्छा 'को वारंटो' का हिंदी अनुवाद है, जिसका अर्थ है— 'आपका प्राधिकार क्या है?' न्यायालय इस रिट का प्रयोग एक कार्यवाही के रूप में करता है। यह रिट उस व्यक्ति के विरुद्ध जारी की जाती है जिसके संबंध में यह शिकायत की गई है कि उसने अवैध रूप से किसी सार्वजनिक पद को धारण किया हुआ है। इस रिट के माध्यम से न्यायालय उससे पूछता है कि उसने किस प्राधिकार से उक्त पद धारण किया हुआ है? यदि वह पर्याप्त कारण नहीं बता पाता है तो न्यायालय अधिकार-पृच्छा रिट जारी करके उसे उस पद से हटा देता है और पद को रिक्त घोषित कर देता है।

अधिकार पृच्छा रिट तभी जारी हो सकती है, जब निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी हों—

- (i) जिस पद पर किसी व्यक्ति के अवैध अधिकार की शिकायत की गई है, वह सार्वजनिक पद (Public office) होना चाहिए।
- (ii) जिस पद पर प्रश्न उठाया गया है, वह स्वतंत्र प्रकृति (Independent nature) का पद होना चाहिए अर्थात् किसी के प्रभाव

(iii) जो व्यक्ति उस पद पर आसीन है, उसकी नियुक्ति में संविधान या किसी अधिनियम इत्यादि का उल्लंघन हुआ हो।

उपरोक्त तीनों शर्तें पूरी होने पर ही अधिकार-पृच्छा रिट जारी की जा सकती है। गौरतलब है कि इस रिट का निवेदन करने की शर्त यह नहीं है कि शिकायतकर्ता के किसी मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ हो अर्थात् यह ज़रूरी नहीं है कि प्रार्थी स्वयं उस पद का दावेदार हो या उस पद में उसका कोई व्यक्तिगत हित निहित हो। कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक हित में यह याचिका दायर सकता है। इस दृष्टि से अधिकार-पृच्छा की कार्यवाही इस नियम का अपवाद है कि पीड़ित व्यक्ति ही किसी रिट के लिए न्यायालय से निवेदन कर सकता है।

गौरतलब है कि अधिकार-पृच्छा की रिट एक विवेकाधीन उपचार (Discretionary remedy) है अर्थात् यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि यह यह रिट जारी करे या नहीं। कोई भी व्यक्ति इस बात का दावा नहीं कर सकता कि उसे यह रिट जारी कराने का मूल अधिकार है।

अनुच्छेद 32 तथा अनुच्छेद 226 में अंतर (Difference between Article 32 and Article 226):

जिस तरह अनुच्छेद 32 में सर्वोच्च न्यायालय को विभिन्न रिटें जारी करने की शक्ति दी गई है, उसी प्रकार अनुच्छेद 226 में उच्च न्यायालयों को यह शक्ति दी गई है। इस मामले में उच्च न्यायालयों को प्राप्त शक्ति ज़्यादा व्यापक है। सर्वोच्च न्यायालय सिर्फ मूल अधिकारों के उल्लंघन के मामले में रिट जारी कर सकता है, जबकि अनुच्छेद 226 के अनुसार उच्च न्यायालय 'अन्य प्रयोजनों' (Other purposes) के लिए भी रिट जारी करने की शक्ति रखता है।

किंतु, जहाँ तक मूल अधिकारों का प्रश्न है, इस संबंध में दोनों न्यायालयों की रिट अधिकारिता बराबर है। प्रार्थी इनमें से किसी भी न्यायालय में अपने मूल अधिकार के उल्लंघन की शिकायत लेकर जा सकता है, यह ज़रूरी नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय से पहले उच्च न्यायालय में आवेदन किया जाए। बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas corpus) के मामले में इसका अपवाद यह है कि यदि किसी प्रार्थी का निवेदन अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया है तो प्रार्थी इसी रिट के लिए सर्वोच्च न्यायालय में आवेदन कर सकता है। दूसरे शब्दों में, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के मामले में 'पूर्व-न्याय' (Res judicata) की धारणा लागू नहीं होती। किंतु, यदि किसी प्रश्न का निर्धारण अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय कर चुका है तो वह मामला पुनः किसी उच्च न्यायालय में नहीं उठाया जा सकता।

यदि संसद चाहे तो अनुच्छेद 139 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को मूल अधिकारों से अलग विषयों पर रिट जारी करने की शक्ति दे सकती है। किंतु, अभी तक संसद ने इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया है।

अनुच्छेद 32(3) [Article 32(3)]

अनुच्छेद 32(3) में उपबंध है कि अनुच्छेद 32(1) और 32(2) में सर्वोच्च न्यायालय को दी गई शक्तियों पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यदि संसद चाहे तो अनुच्छेद 32(2) में दी गई शक्तियों में से किन्हीं या सभी का विस्तार 'किसी अन्य न्यायालय' तक कर सकती है।

ध्यातव्य है कि 'किसी अन्य न्यायालय' वाक्यांश का अर्थ 'उच्च न्यायालयों से भिन्न न्यायालयों' से लिया जाता है क्योंकि उच्च न्यायालयों के पास तो अनुच्छेद 226 के तहत रिट अधिकारिता पहले से ही है। अभी तक संसद ने अपनी इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया है। यही कारण है कि वर्तमान में अधीनस्थ न्यायालय रिट जारी करने की शक्ति नहीं रखते।

अनुच्छेद 32(4) [Article 32(4)]

अनुच्छेद 32(4) में इस बात की व्यवस्था की गई है कि अनुच्छेद 32 द्वारा व्यक्तियों को दिये गये अधिकारों का गलत तरीके से निलंबन न किया जा सके। इसमें लिखा है कि "इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलंबित नहीं किया जा सकता।"

इसका अर्थ है कि अनुच्छेद 32 का निलंबन केवल उन्हीं आधारों पर किया जा सकेगा, जो संविधान में ही बताये गये हैं। इस प्रावधान का उद्देश्य यह है कि विधायिका या कार्यपालिका मनमाने तरीके से व्यक्तियों के मूल अधिकार निलंबित न कर सके।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

Units: 6.7, 6.8 & 6.9

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक-वर्गों को शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार प्रदान किया गया है।
- (ii) हमारे देश में अल्पसंख्यकों का निर्धारण भाषायी व धार्मिक आधार पर किया जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

2. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार-

- (i) कोई वर्ग अल्पसंख्यक है या नहीं, इसका निर्धारण देश नहीं बल्कि राज्य विशेष की जनसंख्या में उसकी स्थिति के आधार पर होगा।
- (ii) राज्य की कुल जनसंख्या के 50 प्रतिशत से कम जनसंख्या वाले सभी समुदाय अल्पसंख्यक माने जाएंगे।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

3. सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, किसी राज्य में अल्पसंख्यक वर्गों के सदस्यों द्वारा बनाई गई वे संस्थाएँ 'अल्पसंख्यक संस्थाएँ' होंगी-

- (i) जो अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा या उसके धर्म के संरक्षण का प्रयास करती हो।
- (ii) जो उस अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराती हो।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 30 के अंतर्गत संरक्षण सिर्फ विद्यालयों पर लागू होता है, व्यावसायिक

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) सेंट स्टीफेंस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि अधिकतम 50 प्रतिशत स्थान अल्पसंख्यक संस्थाएँ अपने समुदाय के अभ्यर्थियों को दे सकती हैं।
- (ii) सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार राज्य द्वारा गैर-सहायता प्राप्त संस्था चाहे अल्पसंख्यक हो या गैर-अल्पसंख्यक, उस पर आरक्षण की नीति लागू नहीं की जा सकती।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. निम्नलिखित में किस संविधान संशोधन द्वारा संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकारों की श्रेणी से बाहर कर दिया गया?

- (1) 25वाँ संविधान संशोधन, 1971
- (2) 44वाँ संविधान संशोधन, 1978
- (3) 86वाँ संविधान संशोधन, 2002
- (4) 42वाँ संविधान संशोधन, 1976

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में नवीं अनुसूची (9th schedule) शामिल की गई थी।
- (ii) वर्तमान में यह उपबंध है कि नवीं अनुसूची में डाली गई किसी भी प्रविष्टि का न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं हो सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) नवीं अनुसूची में वर्तमान में शामिल किसी भी विधि को किसी भी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह संविधान के भाग-3 में वर्णित किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण करती है।
- (ii) सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि कंशवानंद भारती

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) '25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' द्वारा संविधान में अनुच्छेद 31(ग) जोड़ा गया।
- (ii) इस अनुच्छेद में यह प्रावधान है कि अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) को लागू करने के दौरान यदि मूल अधिकार का उल्लंघन होता है तो इसे न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारतीय संविधान के वर्तमान प्रारूप में अनुच्छेद 31(ग) शामिल नहीं है।
- (ii) अनुच्छेद 31(ग) को 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा हटा दिया गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार भारतीय संविधान की आत्मा है—

- (1) संविधान की प्रस्तावना
- (2) अनुच्छेद 32
- (3) नीति निर्देशक तत्व
- (4) मूल कर्तव्य

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 32 द्वारा प्रदत्त सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति का विस्तार भारत के सभी राज्यों पर लागू होता है, किन्तु संघ शासित क्षेत्रों पर नहीं।
- (ii) मूल अधिकारों के उल्लंघन पर कोई व्यक्ति सीधे सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) अनुच्छेद 32 का प्रयोग सिर्फ मूल अधिकारों के उल्लंघन के मामले में किया जा सकता है, किसी और समस्या के समाधान के लिए नहीं।
- (ii) अनुच्छेद 32 के संबंध में यह प्रावधान है कि पीड़ित व्यक्ति अधिकतम 2 माह के भीतर ही न्यायालय में प्रतिवेदन दे सकता है, अन्यथा नहीं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. भारतीय न्यायपालिका के संदर्भ में जनहित वाद या लोकहित वाद (Public interest litigation) की आधारभूत विशेषताएँ हैं—

- (i) कोई भी व्यक्ति या संस्था सामाजिक हित से जुड़े मामलों को न्यायालय में उठाने के लिए अर्ह (Eligible) है, भले ही उसका अहित न हुआ हो।
- (ii) यदि पीड़ित व्यक्ति प्रमाण जुटाने में सफल नहीं है तो न्यायालय उसकी सहायता करेगा।
- (iii) किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा भेजा गया पोस्टकार्ड भी याचिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।
- (iv) न्यायालय स्वयं भी मीडिया रिपोर्टों आदि के आधार पर किसी मामले में संज्ञान (Cognizance) ले सकता है।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

15. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32(2) में समाविष्ट 5 रिटों का मूल संबंध है—

- (1) अमेरिका की न्याय प्रणाली से।
- (2) इंग्लैंड की न्याय प्रणाली से।
- (3) भूतपूर्व सोवियत संघ की न्याय प्रणाली से।
- (4) इनमें से कोई नहीं।

16. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारत में यदि प्रार्थी अपने मूल अधिकार के उल्लंघन को निवारण हेतु समुचित रिट के लिए प्रार्थना नहीं करता है तो न्यायालय उसके दावे को खारिज कर देगा।
- (ii) भारतीय न्यायपालिका ने रिट आधिकारिता को सिर्फ नकारात्मक (Negative) रूप तक सीमित न रखते हुए उसके सकारात्मक

17. निम्नलिखित में किन मामलों में बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) रिट जारी नहीं की जा सकती है?

- यदि गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटों के भीतर मजिस्ट्रेट के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया गया हो।
- यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध में दोष सिद्ध होने के कारण कारावास में रखा गया हो।
- यदि वह व्यक्ति, जिस पर किसी को अवैध रूप से कैद करने का आरोप है, न्यायालय की अधिकारिता से परे हो।
- यदि संसद या अभिलेख न्यायालय की अवमानना के लिए किसी को निरुद्ध किया गया हो।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- (i) और (iv)
- (i), (iii) और (iv)
- (i), (ii), (iii) और (iv)

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- परमादेश (Mandamus) रिट एक आदेश के रूप में होती है जिसका प्रयोग किसी लोक-प्राधिकारी, प्राइवेट व्यक्ति या प्राइवेट कंपनी के खिलाफ किया जा सकता है।
- न्यायालय किसी प्राधिकारी को उसकी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए परमादेश रिट जारी नहीं कर सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

19. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती है।
- यदि कोई न्यायाधीश किसी प्रशासनिक कार्य को संभाल रहा हो तो उन प्रशासनिक कार्यों से संबंधित मामलों में रिट जारी नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों

20. निम्नलिखित में कौन-सी रिट न्यायपालिका या न्यायिक निकाय के विरुद्ध जारी की जाती है?

- प्रतिषेध (Prohibition)
- अधिकार पुच्छ (Quo warranto)
- उत्प्रेषण (Certiorari)
- परमादेश (Mandamus)

कूट—

- (i) और (iv)
- (ii) और (iv)
- (ii) और (iii)
- (i) और (iii)

21. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- उच्च न्यायालय की तुलना में सर्वोच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता अधिक व्यापक है।
- उच्च न्यायालय रिट का प्रयोग तभी कर सकता है जब किसी व्यक्ति के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ हो।
- सर्वोच्च न्यायालय किसी भी मामलों में रिट जारी कर सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (i) और (ii)
- (ii) और (iii)
- (i), (ii) और (iii)
- उपरोक्त में से कोई नहीं।

22. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- प्रतिषेध रिट का संबंध न्यायालय के ऐसे मामलों से है जिसमें उसने अंतिम फैसला न सुनाया हो।
- प्रतिषेध रिट किसी न्यायिक कार्यवाही के शुरुआती चरण में दी जाती है जबकि उत्प्रेषण रिट न्यायिक कार्यवाही हो जाने के बाद जारी की जाती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

23. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- उत्प्रेषण रिट सिर्फ न्यायिक प्राधिकारियों के विरुद्ध जारी की जा सकती है।
- प्रतिषेध रिट न्यायिक और प्रशासनिक दोनों तरह के प्राधिकारियों के विरुद्ध जारी की जा सकती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)

24. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) यदि अधीनस्थ न्यायालय के द्वारा सिर्फ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है तो उसके विरुद्ध उत्प्रेषण रिट जारी नहीं की जा सकती।

(ii) उत्प्रेषण रिट तभी जारी की जाती है जब अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर निकल कर निर्णय दे चुका है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

25. यदि किसी व्यक्ति ने किसी सार्वजनिक पद को अवैध रूप से धारण किया हुआ है, तो उसके विरुद्ध निम्न में से कौन सी रिट न्यायपालिका द्वारा जारी की जाएगी?

- (1) परमादेश।
- (2) अधिकार पृच्छा।
- (3) प्रतिषेध।
- (4) उत्प्रेषण।

26. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) अधिकार-पृच्छा की रिट एक विवेकाधीन उपचार (Discretionary remedy) है।

(ii) कोई भी व्यक्ति इस बात का दावा नहीं कर सकता कि उसे यह रिट जारी करने का मूल अधिकार है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

27. निम्न में किस अनुच्छेद के तहत उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने की शक्ति प्रदान की गयी है?

- (1) अनुच्छेद 32
- (2) अनुच्छेद 223
- (3) अनुच्छेद 226
- (4) अनुच्छेद 32 एवं 226

28. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) अनुच्छेद 139 के तहत संसद सर्वोच्च न्यायालय को मूल अधिकारों से अलग विषयों पर रिट जारी करने की शक्ति दे सकती है।

(ii) अभी तक संसद ने इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

29. यदि अधीनस्थ न्यायालयों को रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करने की बात हो, तो यह शक्ति प्रदान करने की शक्ति निहित है—

- (1) संसद में।
- (2) सर्वोच्च न्यायालय में।
- (3) उच्च न्यायालय में।
- (4) संबंधित विधानमंडल में।

30. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) संवैधानिक उपचारों के अधिकार का निलंबन किसी भी परिस्थिति में नहीं हो सकता है।

(ii) अनुच्छेद 32 एक ऐसा विशिष्ट अनुच्छेद है जिसमें संसद संशोधन नहीं कर सकती।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

राज्य की नीति के निदेशक तत्व (Directive Principles of State Policy)

संविधान के भाग 4 को 'राज्य की नीति के निदेशक तत्व' शीर्षक दिया गया है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 36 से 51 तक कुल 16 अनुच्छेद शामिल हैं। संविधान का यह खण्ड आयरलैंड के संविधान से प्रभावित है। इसके माध्यम से संविधान राज्य को बताता है कि उसे सामाजिक न्याय तथा व्यक्तियों की गरिमा सुनिश्चित करने के लिए नैतिक दृष्टि से किन पक्षों पर बल देना चाहिए।

नीति-निदेशक तत्वों का इतिहास (History of Directive Principles)

भारतीय संविधान में नीति-निदेशक तत्वों का विकास मूल अधिकारों के विकास के साथ ही हो गया था। संविधान सभा के सदस्यों में इस बात पर सहमति बन गई थी कि स्वतंत्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति को मूल अधिकार तो दिये ही जाने चाहिए; साथ ही राज्य को ऐसे अवश्यों को साधने की कोशिश भी करनी चाहिए जो सामाजिक न्याय के लिए वांछनीय हैं किंतु उन्हें मूल अधिकारों के रूप में दिया जाना संभव नहीं है। संविधान सभा के सलाहकार श्री बी.एन. राव ने संविधान सभा को सलाह दी थी कि अधिकारों को दो वर्गों में बाँटा जाना चाहिए—

- (i) वे अधिकार जो न्यायालय से प्रवर्तित कराये जा सकते हैं, तथा
- (ii) वे अधिकार जो न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं।

दूसरे वर्ग के अर्थात् 'अप्रवर्तनीय अधिकारों' (Non-justiciable rights) का तात्पर्य कुछ ऐसे नैतिक निर्देशों से था जो राज्य के अधिकारियों को नैतिक शिक्षा या प्रेरणा दे सकते थे। इस सुझाव को संविधान सभा की 'प्रारूप समिति' ने भी स्वीकार किया और मूल अधिकारों के तुरंत बाद संविधान के भाग 4 में इन्हें स्थान दिया।

मूल संविधान में अनुच्छेद 36 से 51 तक कुल 16 अनुच्छेद नीति-निदेशक तत्वों के लिए रखे गये थे। आगे चलकर, इनमें निम्नलिखित संशोधन किए गए—

- (i) '42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' के माध्यम से इसमें अनुच्छेद 39(क), 43(क) तथा 48(क) को अंतःस्थापित किया गया।
- (ii) '44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' के द्वारा अनुच्छेद 38 की भाषा में संशोधन किया गया।
- (iii) '86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002' द्वारा 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए 'प्राथमिक शिक्षा के अधिकार' को अनुच्छेद 21(क) में मूल अधिकार का दर्जा दिये जाने के साथ ही अनुच्छेद 45 के मूल पाठ को हटाकर उसके स्थान पर एक नया पाठ रखा गया जिसमें 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को देखभाल और शिक्षा का कर्तव्य राज्य पर डाला गया।
- (iv) '97वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2011' के माध्यम से इस भाग में एक और संशोधन करते हुए अनुच्छेद 43(ख) अंतःस्थापित किया गया है जो राज्य को सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन (Voluntary formation), स्वायत्त प्रचालन (Autonomous functioning), लोकतांत्रिक नियंत्रण (Democratic control) तथा पेशेवर प्रबंधन (Professional management) को प्रोत्साहित करने का प्रयास करने का निर्देश देता है।

संविधान में विद्यमान नीति निदेशक तत्व (Directive Principles present in the Constitution)

वर्तमान में संविधान के भाग 4 में शामिल सभी अनुच्छेद और उनकी मूल विषय-वस्तु इस प्रकार है—

- अनुच्छेद-39 - राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ-नीतियाँ (विशेषतः सामाजिक-आर्थिक न्याय से संबंधित नीतियाँ, जैसे- (क) पुरुषों व स्त्रियों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का अधिकार, (ख) समाज के भौतिक संसाधनों का उचित स्वामित्व व वितरण, (ग) अर्थव्यवस्था में धन तथा उत्पादन के साधनों के अहितकारी केंद्रीकरण का निषेध, (घ) पुरुषों व स्त्रियों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन, (ङ) पुरुष व स्त्री श्रमिकों तथा बच्चों को मजबूरी में आयु या शक्ति की दृष्टि से प्रतिकूल रोजगार में जाने से बचाना, (च) बच्चों को गरिमा के साथ विकास का अवसर देना और शोषण से बचाना।
- अनुच्छेद-39(क) - समान अवसर के आधार पर न्याय देना व निःशुल्क विधिक सहायता (Free legal aid) उपलब्ध कराना ताकि-गरीबों को अन्याय का शिकार न होना पड़े।
- अनुच्छेद-40 - ग्राम पंचायतों का संगठन करना तथा उन्हें शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए शक्तियाँ व प्राधिकार देना।
- अनुच्छेद-41 - कुछ दशाओं में, विशेषतः बुढ़ापे, बेरोजगारी, बीमारी या अशक्तता की दशा में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।
- अनुच्छेद-42 - काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति (Maternity) सहायता का उपबंध करना।
- अनुच्छेद-43 - कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर व अवकाश की व्यवस्था करना और कुटीर उद्योगों (Cottage industries) को प्रोत्साहित करना।
- अनुच्छेद 43(क) - उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों (Workers) के भाग लेने के लिए उपयुक्त विधान बनाना।
- अनुच्छेद 43(ख) - सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन (Voluntary formation), स्वायत्त प्रचालन (Autonomous functioning), लोकतांत्रिक नियंत्रण (Democratic control) तथा पेशेवर प्रबंधन (Professional management) को प्रोत्साहित करना।
- अनुच्छेद-44 - नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता (Uniform Civil Code) लागू करने का प्रयास करना।
- अनुच्छेद-45 - शिशुओं की देखभाल तथा 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को शिक्षा देने का प्रयास करना।
- अनुच्छेद-46 - अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि करना और हर तरह के शोषण व सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करना।
- अनुच्छेद-47 - लोगों के पोषाहार स्तर (Nutrition level) और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने की प्राथमिक कर्तव्य मानना तथा मादक पेयों (Intoxicating drinks) व हानिकर नशीले पदार्थों (Injurious drugs) के सेवन का प्रतिषेध करने का प्रयास करना।
- अनुच्छेद-48 - कृषि तथा पशुपालन का संगठन आधुनिक-वैज्ञानिक प्रणालियों के अनुसार करना तथा गायों-बछड़ों व अन्य दुधारू या वाहक पशुओं की नस्लों का सुधार करना व उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाना।
- अनुच्छेद-48(क) - पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन तथा वन व वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करना।
- अनुच्छेद-49 - राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संक्षण करना।
- अनुच्छेद-50 - राज्य की लोक-सेवाओं में कार्यात्मिका से न्यायपालिका के पृथक्करण के लिए कदम उठाना।
- अनुच्छेद-51 - अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की अभिवृद्धि, राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत व सम्मानपूर्ण संबंधों तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता से निपटाने के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास करना।

संविधान के अन्य भागों में दिए गए नीति-निदेशक तत्त्व

(Directive Principles present in other parts of the constitution)

हालाँकि नीति-निदेशक तत्त्वों को संविधान के भाग 4 में एक साथ रखा गया है, किंतु ध्यानपूर्वक देखें तो संविधान के कुछ अन्य अनुच्छेदों में भी नीति-निदेशक तत्त्व दिखाई पड़ते हैं। ऐसे प्रमुख निदेश इस प्रकार हैं:-

- (i) अनुच्छेद-335 के अनुसार, संघ या राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियाँ करने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों का, प्रशासन की दक्षता (Efficiency of administration) बनाए रखने की संमति के अन्तर्गत, ध्यान रखा जाएगा।

भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करें।

- (iii) अनुच्छेद-351 के अनुसार, संघ का यह कर्तव्य है कि वह हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बढ़ाए और उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति (Composite culture) के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

'आर.आर. दलवी बनाम स्टेट ऑफ तमिलनाडु' (1976) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 351 से जुड़े एक मामले में यह मत व्यक्त किया है कि यद्यपि अनुच्छेद 335, 350(क) और 351 में शामिल निदेश सविधान के भाग-4 में सम्मिलित नहीं हैं, किन्तु न्यायालयों ने इन सिद्धांतों को लागू करने पर उतना ही ध्यान दिया है जितना कि नीति निदेशक तत्वों पर। इसलिए इन्हें सविधान के भाग-IV के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

मूल अधिकारों और नीति-निदेशक तत्वों में अंतर

(Difference between fundamental rights and Directive principles of state policy)

मूल अधिकार और नीति-निदेशक तत्व भारतीय संविधान के दो प्रमुख आधार स्तंभ हैं। इन दोनों का उद्देश्य समान है- प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना जिनमें उसका संपूर्ण विकास हो सके। फिर भी, इन दोनों में काफी अंतर भी है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार है-

- (क) मूल अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (Justiciable) हैं जबकि नीति निदेशक सिद्धांत न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं।
- (ख) मूल अधिकारों की प्रकृति प्रायः नकारात्मक (Negative) है, क्योंकि वे राज्य की शक्ति को सीमाएँ स्पष्ट करते हैं, न कि उस पर कोई विशेष कर्तव्य आरोपित करते हैं जबकि नीति निदेशक सिद्धांतों की प्रकृति सकारात्मक (Positive) है क्योंकि ये राज्य को बताते हैं कि उसे क्या करना चाहिए?
- (ग) मूल अधिकारों में आमतौर पर राजनीतिक लोकतंत्र (Political democracy) का आदर्श निहित है जबकि नीति निदेशक सिद्धांतों में मुख्यतः आर्थिक लोकतंत्र (Economic democracy) का आदर्श निहित है।
- (घ) मूल अधिकारों का लागू होना प्रमुखतः व्यक्ति की सजगता व जागरूकता पर निर्भर है, जबकि नीति निदेशक सिद्धांतों को राज्य द्वारा लागू किया जाता है।
- (ङ) मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restrictions) लगाए जा सकते हैं जबकि नीति निदेशक सिद्धांत ऐसे प्रतिबंधों से मुक्त हैं। उन पर प्रतिबंध सामान्यतः यही है कि वे व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न करें।
- (च) अधिकांश मूल अधिकारों को लागू करने के लिए कानून बनाने की आवश्यकता नहीं है, ये स्वतः लागू हैं; जबकि नीति निदेशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए समुचित कानून बनाने की आवश्यकता होती है, ये स्वतः लागू नहीं होते।

इन अंतरों के बावजूद भूलना नहीं चाहिए कि मूल अधिकार एवं नीति निदेशक तत्व वास्तव में एक ही व्यवस्था के अंग हैं तथा इन दोनों का लक्ष्य भी एक ही है- प्रत्येक नागरिक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास तथा लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना।

नीति-निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों के मध्य संघर्ष का इतिहास

(History of the struggle between Directive Principles and Fundamental Rights)

नीति-निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों के पारस्परिक संबंध के प्रश्न पर भारतीय राजव्यवस्था में अत्यधिक विवाद रहा है। कभी सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों से तो कभी संसद ने संविधान संशोधनों के माध्यम से इस संबंध की नयी व्याख्याएँ की हैं। इस टकराव का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है-

- (i) मूल संविधान में यह स्पष्ट लिखा हुआ था कि मूल अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (Justiciable) हैं (अनुच्छेद 32) जबकि नीति-निदेशक तत्व अप्रवर्तनीय हैं (अनुच्छेद 37)। इसलिए, कुछ शुरुआती मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण मूल अधिकारों के पक्ष में ही झुका हुआ दिखता है। 1951 का 'मद्रास राज्य बनाम चंपकम दोराइराजन' का मामला इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

- (ii) कुछ ही दिनों में सर्वोच्च न्यायालय की राय इस विषय पर बदलने लगी। 'प्रथम संविधान संशोधन' में भूमि-सुधार आदि लोक-कल्याणकारी विषयों को महत्त्व देने के लिए अनुच्छेद 31(क) और 31(ख) अंतःस्थापित किए गए थे जिनमें नीति निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों के समान ही प्रवर्तनीय बना दिया गया था।

सिंह' (1959) जैसे मामलों में दिखाई पड़ता है। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 39 में वर्णित नीति-निदेशक तत्वों पर बल देते हुए निर्णय दिया कि चूंकि 'जमींदारी उन्मूलन अधिनियम' लोकहित में पारित किए गये हैं, अतः वे संवैधानिक हैं। ऐसे निर्णयों के माध्यम से न्यायालय ने मान लिया कि नीति-निदेशक तत्व मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त निबंधनों (Reasonable restrictions) की तरह लागू हो सकते हैं।

यही दृष्टिकोण 'केरल एजुकेशन बिल' (1959) के मामले में भी दिखाई पड़ता है। इसके निर्णय में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि मूल अधिकारों का महत्व नीति निदेशक तत्वों से अधिक है किंतु मूल अधिकारों के अर्थ और विस्तार को निर्धारित करते समय न्यायालय नीति निदेशक तत्वों की उपेक्षा नहीं करेंगे। जहाँ तक संभव होगा, इन दोनों का महत्व बनाये रखने के लिए न्यायालय 'समन्वयकारी निर्वचन' (Harmonious interpretation) का सिद्धांत अपनाएंगे।

- (iii) श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार के शासन के दौरान संसद ने '25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' पारित करके संविधान में अनुच्छेद 31(ग) को अंतःस्थापित किया। अनुच्छेद 31(ग) में यह प्रावधान था कि संसद द्वारा बनाई गई कोई विधि अगर अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में वर्णित नीति निदेशक तत्वों को उपलब्ध करने के उद्देश्य से बनाई गई है तो वह विधि इस आधार पर शून्य नहीं होगी कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 में दिये गये मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है। इसके साथ ही यह व्यवस्था भी की गई कि अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) के पक्ष में बनाई गई विधियाँ न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) से भी मुक्त होंगी।

'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य', (1973) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 31(ग) की विधिमान्यता पर विचार किया। इसका आरंभिक अंश, जो अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) को अनुच्छेद 14, 19 और 31 पर वरीयता प्रदान करता है, न्यायालय द्वारा विधिमान्य घोषित किया गया; किंतु इसका वह अंश जो अनुच्छेद 39(ख) और (ग) को वरीयता देने के उद्देश्य से बनाई गई विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर करता है, न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित कर दिया गया।

केशवानंद भारती मामले के इस निर्णय को महत्व न देते हुए कांग्रेस सरकार ने '42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' के माध्यम से अनुच्छेद 31(ग) को और ज्यादा विस्तृत बना दिया। इस विस्तार के माध्यम से अनुच्छेद 39(ख) तथा 39(ग) को ही नहीं, बल्कि संविधान के भाग-4 में उल्लिखित किसी भी नीति-निदेशक तत्व को अनुच्छेद 14, 19 व 31 पर वरीयता प्रदान की गई।

'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' (1980) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने '42वें संशोधन अधिनियम' की धारा 4 को असंवैधानिक मानते हुये शून्य घोषित कर दिया जिसके माध्यम से अनुच्छेद 31(ग) में उक्त संशोधन किया गया था। न्यायालय ने घोषित किया कि 'मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन' संविधान के 'मूल ढाँचे' (Basic structure) का हिस्सा है। 42वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31(ग) में जो विस्तार किया गया है, वह इस संतुलन पर आधारित करता है। न्यायालय ने घोषित किया कि 42वें संशोधन से पूर्व अनुच्छेद 31(ग) जिस रूप में था अर्थात् जैसा वह 25वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में प्रविष्ट किया गया था, वह उसी रूप में विधिमान्य है।

अतः, वर्तमान स्थिति यह है कि '25वें संविधान संशोधन, 1971' द्वारा स्थापित अनुच्छेद 31(ग) अपने मूल रूप में वैध है किंतु उसके आधार पर बनाई गई विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन से संरक्षण प्राप्त नहीं है। न्यायालय इस बात को जाँच कर सकता है कि संसद द्वारा अनुच्छेद 31(ग) के अंतर्गत बनाए गए अधिनियम के उद्देश्य अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) में बताये गये उद्देश्यों से युक्तियुक्त रूप से जुड़े हैं या नहीं?

- (iv) कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाया है तथा कुछ नीति निदेशक तत्वों को 'गरिमापूर्ण जीवन' (Dignified life) की आवश्यक शर्त के रूप में स्वीकार करते हुए अनुच्छेद 21 के अधीन मूल अधिकार का दर्जा दे दिया है। उदाहरण के लिए, चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों का प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, जो पहले अनुच्छेद 45 में नीति-निदेशक तत्वों का हिस्सा था, 'उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' (1993) के मामले में अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त 'प्राण के अधिकार' (Right to life) का हिस्सा बन गया क्योंकि न्यायालय ने 'गरिमापूर्ण जीवन' की आवश्यक शर्तों में प्राथमिक शिक्षा को शामिल माना।

(v) वर्तमान में मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों का परस्पर संबंध और महत्व है

- (ख) यदि कोई विधि अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में वर्णित नीति-निदेशक तत्त्वों को उपलब्ध करने के लिए बनाई गई है तो वह अनुच्छेद 14 या 19 में दिये गये मूल अधिकारों की तुलना में प्राथमिक मानी जाती है।
- (ग) अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) के लिए निर्मित कोई विधि यदि अनुच्छेद 14 या 19 में दिये गये मूल अधिकारों के अलावा किसी और मूल अधिकार का उल्लंघन करती है तो प्राथमिकता मूल अधिकारों को मिलती है किंतु न्यायालय 'समन्वयकारी निर्वचन' (Harmonious interpretation) का प्रयास करते हुए नीति-निदेशक तत्त्वों को भी आवश्यक महत्त्व देते हैं।
- (घ) अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) के अलावा किसी भी अन्य नीति निदेशक तत्त्व को उपलब्ध करने के लिए बनाई गई कोई भी विधि यदि संविधान के भाग 3 में दिये गये किसी भी मूल अधिकार का उल्लंघन करती है तो सामान्यतः मूल अधिकार का महत्त्व अधिक माना जाता है, किंतु न्यायालय इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि नीति-निदेशक तत्त्वों को उपलब्ध के लिए राज्य युक्तियुक्त तरीके से मूल अधिकारों को सीमित कर सकता है।

नीति-निदेशक तत्त्वों का क्रियान्वयन (Implementation of Directive Principles)

संविधान के लागू होने के बाद से ही केंद्र तथा राज्य सरकारों ने कोशिश की है कि वे विभिन्न नीति-निदेशक तत्त्वों में वर्णित आदर्शों को उपलब्ध करने के लिए आवश्यक कानूनों का निर्माण करें। प्रायः सभी निदेशक तत्त्वों के संबंध में सरकार ने कुछ न कुछ प्रयास किये हैं। ये प्रयास न्यायालय द्वारा दिये गये उन निर्णयों से प्रेरित हैं जिन्होंने कुछ नीति-निदेशक तत्त्वों को मूल अधिकारों की तरह प्रभावी बना दिया है। सरकार द्वारा किये गये प्रमुख प्रयास निम्नलिखित हैं—

- (i) सबसे अधिक प्रयास अनुच्छेद 39(ख) में वर्णित उद्देश्यों के संबंध में हुआ है। अनुच्छेद 39(ख) में राज्य को प्रेरणा दी गई है कि वह समुदाय के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व और नियंत्रण को ऐसी व्यवस्था बनाए जो समाज के सामूहिक हित के लिए सर्वोत्तम हो। इस उद्देश्य के अनुरूप सबसे पहले कृषि सुधार (Agricultural reforms) और भूमि सुधार (Land reforms) संबंधी कार्यक्रम चलाए गए। भूमि सुधार से संबंधित कई कानून पारित किये गये तथा इन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए ही संविधान के पहले तथा 25वें संशोधनों के माध्यम से अनुच्छेद 31(क), 31(ख) तथा 31(ग) को अंतःस्थापित किया गया। अनुच्छेद 39(ख) के अनुरूप ही भूमि हदबंदी कानून (Land ceiling acts) भी बनाए गए जिनके अंतर्गत भूमि स्वामित्व की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई।
- (ii) अनुच्छेद 39(ग) के संबंध में भी पर्याप्त प्रगति हुई है। इसमें राज्य को निर्देश दिया गया है कि वह आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चलाए जिससे धन और उत्पादन के साधनों का कुछ ही वर्गों तक संकेंद्रण न हो जाए। राज्य ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह नीति बनाई कि बहुत से उद्योगों तथा कारखानों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दिया। 1970 के दशक में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण तो हुआ ही, साथ ही बहुत से उद्योगों को भी राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दिया गया।
- (iii) अनुच्छेद 39(घ) में 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का निर्देश दिया गया है। संसद ने 'समान परिश्रमिक अधिनियम, 1976' (Equal remuneration act, 1976) पारित करके पुरुषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन देना अनिवार्य कर दिया है।
- (iv) अनुच्छेद 39(ङ), 39(च) तथा अनुच्छेद 45 में बच्चों को शोषण से बचाने तथा उन्हें शिक्षा व सर्वांगीण विकास के अवसर उपलब्ध कराने का निर्देश दिया गया है। संसद ने '86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002' के माध्यम से 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए अनुच्छेद 21(क) के अंतर्गत निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया है जो कि निश्चित रूप से एक बड़ी उपलब्धि है।
- (v) अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने तथा उन्हें ऐसे अधिकार देने का प्रयास करेगा जिससे कि वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में काम कर सकें। इस संबंध में सरकार ने बहुत से अधिनियम बनाए हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं— संविधान के 73वें और 74वें संशोधन अधिनियम। प्रायः सभी राज्यों ने 73वें तथा 74वें संविधान

- (vii) अनुच्छेद 46 राज्य को निर्देश देता है कि वह जनता के दुर्बल वर्गों, विशेषतः अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा व अर्थ-संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा। राज्य ने इस निर्देश को सफल बनाने के लिए सरकारी नौकरियों में तथा विधानसभाओं, लोकसभाओं तथा पंचायतों के स्तर पर प्रतिनिधियों के चुनावों में अनुसूचित जातियों व जनजातियों को जनसंख्या में उनके अनुपात के बराबर आरक्षण दिया है तथा शैक्षिक संस्थाओं में इन वर्गों के विद्यार्थियों के प्रवेश के संबंध में भी अत्यंत उदार व्यवस्था बनाई है।
- (viii) अनुच्छेद 43 और 48 में गांधीवादी विचारधारा पर आधारित कुछ निर्देश दिये गये हैं। अनुच्छेद 43 में कुटीर उद्योगों का विकास करने की सलाह दी गई है तो अनुच्छेद 48 में कृषि और पशुपालन को आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से संगठित करने तथा गायों, बछड़ों व अन्य दुधारू या वाहक पशुओं की नस्लों को सुधारने व उनके वध का प्रतिषेध करने संबंधी कानून बनाने की सलाह दी गई है। सरकार ने इन दोनों निर्देशों का गंभीरता से पालन किया है। उदाहरण के लिए, सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति में बहुत सी मरु कुटीर उद्योगों तथा लघु उद्योगों के लिए आरक्षित कर दी हैं तथा खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC- Khadi and Village Industries Commission), अखिल भारतीय हस्तकरघा बोर्ड (All India Handicrafts Board) आदि संस्थाओं का निर्माण किया है ताकि वे कुटीर उद्योगों का समुचित विकास कर सकें। इसी प्रकार, विभिन्न राज्यों ने अपने कई अधिनियमों के माध्यम से गायों, बैलों और बछड़ों आदि के वध का प्रतिषेध कर दिया है।
- (ix) अनुच्छेद 47 में जनता के स्वास्थ्य के पक्ष में राज्य को सलाह दी गई है कि वह पोषण (Nutrition) के स्तर को बेहतर बनाने के लिए तथा नशीले व मादक पदार्थों (Intoxicating substances) के गैर-चिकित्सकीय उपयोगों को सीमित करने के लिए उपयुक्त कानून बनाएगा। यह निर्देश भी गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित है। कई राज्यों ने इस निर्देश के अनुरूप मद्य-निषेध लागू करने का प्रयास किया है। जन-स्वास्थ्य को बेहतर बनाने की दृष्टि से भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' (National Rural Health Mission) नामक परियोजना चला रखी है। इसके अलावा, 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' (Family planning programme) तथा 'सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों' (Community health centres) आदि के माध्यम से भी जनता के वंचित वर्गों के स्वास्थ्य पर ध्यान दिया गया है। 'प्लस पोलियो कार्यक्रम' की सफलता इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।
- (x) अनुच्छेद 48(क) में निर्देश दिया गया है कि राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा। इस निर्देश के अनुरूप राज्य ने बहुत सी ऐसी वन्य-प्रजातियों को विशेष सुरक्षा प्रदान की है जिनके अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा था। 'बाघ परियोजना' (Project tiger) तथा 'हाथी परियोजना' (Project Elephant) ऐसे ही दो विशिष्ट उदाहरण हैं। बहुत से राष्ट्रीय उद्यानों (National parks) की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई है। इसके अलावा, 'वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980' [Forest (conservation) act, 1980] तथा 'वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972' [Wildlife (protection) act, 1972] भी इसी उद्देश्य से पारित किए गए हैं। जहाँ तक पर्यावरण का प्रश्न है, देश में वनों का अनुपात बढ़ाने के प्रयासों के अलावा सामाजिक वानिकी कार्यक्रम (Social forestry programme) पर पर्याप्त बल दिया जा रहा है।
- (xi) अनुच्छेद 49 में राज्य को निर्देश दिया गया है कि वह राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करने के लिए प्रयास करेगा। राज्य ने 'भारत के पुरातात्विक सर्वेक्षण' (ASI- Archaeological survey of India) के माध्यम से विभिन्न स्मारकों के संरक्षण का निरंतर प्रयास किया है। इसके अलावा जनता में इस विषय से संबंधित जागरूकता पैदा करने के लिए भी राज्य लगातार विज्ञापन आदि प्रकाशित करता है।
- (xii) अनुच्छेद 50 में कहा गया है कि राज्य अपनी लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिए कदम उठाएगा। 'दंड प्रक्रिया संहिता, 1973' (Criminal procedure code, 1973) को अधिनियमित करके राज्य ने इस संबंध में एक बड़ा कदम उठाया है।
- (xiii) अनुच्छेद 51 राज्य को सलाह देता है कि राज्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बढ़ाने का, अंतर्राष्ट्रीय विधि का महत्व बढ़ाने

(xiv) सबसे अधिक विवाद अनुच्छेद 44 के संबंध में रहा है। अनुच्छेद 44 में कहा गया है कि 'राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।'

समान सिविल संहिता (Uniform Civil Code) का अर्थ है कि सिविल मामलों जैसे विवाह, तलाक, उत्तराधिकार (Succession), गोद लेने (Adoption) आदि में विभिन्न धर्मों के व्यक्तियों पर समान प्रकृति के कानून लागू होंगे। वर्तमान में, भारत में 'गोवा' अकेला राज्य है जहाँ समान सिविल संहिता लागू है। यह पुर्तगाली शासन के दौरान 1867 में बनी 'पुर्तगाली सिविल संहिता' का ही कुछ परिवर्तित रूप है। पुर्तगाल से ये इलाके लेते समय भारत सरकार ने यह वायदा किया था कि इन इलाकों की कानून व्यवस्था को बदला नहीं जाएगा। यही कारण है कि गोवा की स्थिति अभी भी अलग बनी हुई है। शेष भारत में अभी सिविल मामले प्रायः धर्म आधारित वैयक्तिक विधियों (Personal laws) के अनुसार तय होते हैं।

आज़ादी के तुरंत बाद ऐसा दिख रहा था कि सरकार समान सिविल संहिता के मामले में गंभीर है। दरअसल, नेहरू और अंबेडकर जैसे नेता आज़ादी प्राप्त करने से पहले ही इस मुद्दे पर अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त कर चुके थे। 'हिंदू कोड बिल' का निर्माण इसी दिशा में पहला बड़ा कदम था। किंतु, सरकार ने जिस प्रतिबद्धता के साथ 'हिंदू कोड बिल' से जुड़े विभिन्न अधिनियमों को पारित किया, वैसी तेज़ी या प्रतिबद्धता अन्य धार्मिक समुदायों की वैयक्तिक विधियों (Personal Laws) के मामले में नहीं दिखाई।

मूल समस्या मुस्लिम वैयक्तिक विधि (Muslim Personal law) के संबंध में है। गौरतलब है कि 1937 ई. में, जब भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था, अंग्रेजों द्वारा एक कानून 'द मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीअत) ऐक्टिफिकेशन ऐक्ट' बनाया गया था जिसके माध्यम से मुस्लिम समाज के सिविल मामलों में शरीअत कानून को लागू करने की व्यवस्था की गई थी। समस्या यह है कि शरीअत पर आधारित इस अधिनियम के कुछ प्रावधान अत्यंत रुढ़िवादी हैं जो मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों पर चोट करते हैं। उदाहरण के लिए, मुस्लिम पुरुष एक समय में चार विवाह कर सकता है; वह 'तलाक-उल-बिद्दा' अर्थात् तीन बार तलाक बोलकर अपनी पत्नी को परित्याग कर सकता है; नाममात्र की 'मेहर' राशि देकर वह पत्नी को गुज़ार-भत्ता (Alimony) देने जैसी बाध्यताओं से मुक्त रहता है।

संसद और सरकारों ने प्रायः अनुच्छेद 44 की उपेक्षा ही की क्योंकि उन्हें भय था कि मुस्लिम समाज के ताराज हो जाने से उनके वोट बैंक पर काफी बड़ी चोट लग सकती है। सरकार प्रायः यही कहती रही कि वह इस मामले में तभी आगे बढ़ेगी जब मुस्लिम समाज के भीतर से इसके संबंध में मांग उठेगी, किंतु न्यायालय ने अपने कई निर्णयों के माध्यम से समान सिविल संहिता के पक्ष में प्रयास किये हैं। ऐसा सबसे महत्वपूर्ण मामला 'मुहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम' (1985) का था जो 'शाह बानो मामले' के रूप में अत्यधिक चर्चित रहा है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' के तहत चाहे जो व्यवस्था हो, किंतु 'दंड प्रक्रिया संहिता' की धारा 125, जो सभी धर्मों के सदस्यों पर लागू होती है, के अंतर्गत मुस्लिम महिलाएँ तलाक की स्थिति में अपने पति से भरण-पोषण का दावा कर सकती हैं।

इस निर्णय से आंशिक तौर पर समान सिविल संहिता लागू हो गई थी तथा मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को कुछ संरक्षण प्राप्त हुआ था, किंतु श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में कार्यरत तत्कालीन केंद्रीय सरकार ने वोट बैंक के दबाव में आकर 'मुस्लिम महिला (तलाक अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986' [Muslim Women (Protection of rights on divorce) act, 1986] पारित कर दिया तथा शाह बानो मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय को पलटते हुए स्पष्ट किया कि मुसलमानों से जुड़े ऐसे मामलों में मुस्लिम पर्सनल लॉ को ही आधार बनाया जाएगा, न कि दंड प्रक्रिया संहिता या किसी और विधि को।

'सरला मुद्गल बनाम भारत संघ' (1995) का मामला भी 'समान सिविल संहिता' की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस मामले में चार विभिन्न महिलाओं की याचिकाएँ प्रस्तुत की गई थीं जिनमें से तीन की सामान्य समस्या यह थी कि उनके पति ने इस्लाम धर्म ग्रहण करके दूसरा विवाह कर लिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि कोई हिंदू पुरुष अपने पहले विवाह का विधिवत् विच्छेद किए बिना इस्लाम स्वीकार करके दूसरा विवाह कर लेता है तो यह कृत्य 'हिंदू विवाह अधिनियम, 1955' के अंतर्गत अवैध होगा तथा किसी पुरुष द्वारा बहुपत्नी विवाह करने की दृष्टि से भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 494 के अधीन दंडनीय कृत्य माना जाएगा।

'समान सिविल संहिता' से जुड़े कुछ मुद्दे ईसाई समुदाय की वैयक्तिक विधियों (Personal laws) के संबंध में भी हैं। ईसाइयों से संबंधित कानूनों में से अधिकांश स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के हैं और अपनी अंतर्वस्तु में रुढ़िवादी हैं। उदाहरण के लिए, 'भारतीय तलाक अधिनियम, 1869' की धारा 10 तलाक के मामले में ईसाई महिला को ईसाई पुरुष की तुलना में कम अधिकार देती है। 'प्रगति वर्गीज बनाम सायरिल जॉर्ज वर्गीज' (1997) के मामले में यही प्रश्न उठाया गया था और मुंबई उच्च न्यायालय ने 'भारतीय तलाक अधिनियम, 1869' की धारा 10 का अनुच्छेद 21 का उल्लंघन मानते हुए अवैध घोषित कर दिया था।

6.11

मूल कर्तव्य (Fundamental Duties)

भारत के संविधान में मूल अधिकारों के साथ मूल कर्तव्यों को भी शामिल किया गया है। वस्तुतः अधिकार और कर्तव्य एक-दूसरे के पूरक हैं। अधिकारविहीन कर्तव्य निरर्थक होते हैं जबकि कर्तव्यविहीन अधिकार निरंकुशता पैदा करते हैं। यदि व्यक्ति को 'गरिमापूर्ण जीवन' का अधिकार प्राप्त है तो उसका कर्तव्य बनता है कि वह अन्य व्यक्तियों के गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार का ख्याल भी रखे। यदि व्यक्ति को 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' प्यारी है तो यह भी जरूरी है कि उसमें दूसरों की 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के प्रति धैर्य और सहिष्णुता विद्यमान हो।

रोचक बात है कि सामान्यतः विश्व के किसी भी लोकतांत्रिक देश के संविधान में नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है, सभी में सिर्फ मूल अधिकारों की घोषणा की गई है। अमेरिका का संविधान इसका प्रतिनिधि उदाहरण है, जिसमें मूल अधिकार तो हैं किंतु कर्तव्य नहीं। ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी, कनाडा तथा ब्रिटेन जैसे देशों में भी मूल कर्तव्यों की ऐसी कोई सूची नहीं है। साम्यवादी (Communist) देशों में मूल कर्तव्यों की घोषणा करने की परंपरा दिखाई पड़ती है। भूतपूर्व सोवियत संघ का उदाहरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसके संविधान के सातवें अध्याय में बहुत से ऐसे कर्तव्यों की सूची प्रस्तुत की गई थी जिनका पालन करने की ज़िम्मेदारी वहाँ के नागरिकों पर थी, जैसे- संविधान और कानूनों का पालन करना, अपने देश की सुरक्षा के लिए अनिवार्य सैनिक सेवा के लिए तैयार रहना, सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा करना इत्यादि।

भारतीय संविधान में मूल कर्तव्यों का इतिहास (History of Fundamental Duties in Indian Constitution):

भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य शुरु से शामिल नहीं थे। श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में 1975 में जब आपात्काल की घोषणा की गई थी, तभी सरदार स्वर्ण सिंह के नेतृत्व में संविधान में उपयुक्त संशोधन सुझाने के लिए एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति को संविधान के सभी उपबंधों का विस्तृत निरीक्षण करते हुए यह बताना था कि उसमें ऐसे कौन से संशोधन किए जाने चाहिए कि वह ज्यादा तर्कसंगत और व्यावहारिक हो सके। इस समिति की बहुत सी अनुशंसाओं में एक यह भी थी कि संविधान में मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्तव्यों का समावेश होना चाहिए। समिति का तर्क यह था कि भारत में अधिकांश लोग सिर्फ अधिकारों पर बल देते हैं, यह नहीं समझते कि हर अधिकार किसी कर्तव्य के सापेक्ष होता है।

इस समिति की अनुशंसाओं के आधार पर '42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' के द्वारा संविधान में 'भाग 4' के पश्चात् 'भाग 4(क)' अंतःस्थापित किया गया और उसके भीतर अनुच्छेद '51(क)' को रखते हुए 10 मूल कर्तव्यों की सूची प्रस्तुत की गई। आगे चलकर, '86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002' के माध्यम से एक और मूल कर्तव्य जोड़ा गया, जो अनुच्छेद 21(क) में दिए गए प्राथमिक शिक्षा के अधिकार से सुसंगत था। अनुच्छेद 21(क) में यह गारंटी दी गई थी कि 6-14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार होगा। इसी से सुसंगत 11वें मूल कर्तव्य द्वारा 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के माता-पिताओं या/और संरक्षकों पर यह कर्तव्य आरोपित किया गया है कि वे स्वयं पर आश्रित बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करेंगे।

मूल कर्तव्यों की सूची (List of Fundamental duties):

वर्तमान में संविधान के भाग 4(क) तथा अनुच्छेद 51(क) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक के कुल 11 मूल कर्तव्य हैं। इसके अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह—

- (क) संविधान का पालन करें और उसके आदर्श, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान (National Anthem) का आदर करें।
- (ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें।
- (ग) भारत की प्रभुता (Sovereignty), एकता (Unity) और अखण्डता (Integrity) की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखें।
- (घ) देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।
- (ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता (Harmony) और समान भ्रातृत्व (Common brotherhood) की भावना का निर्माण

- (च) हमारी सामासिक संस्कृतिक (Composite culture) की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करें।
- (छ) प्राकृतिक पर्यावरण को, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखें।
- (ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific temper), मानववाद (Humanism) और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
- (झ) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।
- (ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
- (ट) जो माता-पिता या संरक्षक हों, वे, छः से चौदह वर्ष के बीच की आयु के, यथास्थिति, अपने बच्चे अथवा प्रतिपाल्य (संरक्षित/ ward) को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करेंगे।

मूल कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता (Enforceability of Fundamental Duties):

सामान्य धारणा यह है कि मूल कर्तव्य न्यायालयों के माध्यम से प्रवृत्त नहीं कराए जा सकते हैं अर्थात् यदि कोई नागरिक अपने मूल कर्तव्य का पालन न करे तो न्यायालय द्वारा नागरिक को दंडित नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टि से वे राज्य के नीति-निदेशक तत्वों की तरह हैं। जिस तरह राज्य को न्यायालय में इस बात के लिए प्रताड़ित नहीं किया जा सकता कि वह नीति-निदेशक तत्वों का पालन नहीं कर रहा है, वैसे ही किसी नागरिक को इस बात के लिए बाध्य या दंडित नहीं किया जा सकता कि वह अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है। इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने व्यंग्य करते हुए कहा है कि 'मूल कर्तव्य निरर्थक घोषणाएँ मात्र हैं'।

किंतु, वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। यदि अनुच्छेद 37 तथा अनुच्छेद 51-क में सुलना करें तो साफ दिखाई देता है कि जहाँ अनुच्छेद 37 में नीति निदेशक तत्वों के अप्रवर्तनीय होने की बात साफ तौर पर कही गई है, वहीं अनुच्छेद 51-क में ऐसी कोई बात वर्णित नहीं है। न्यायमूर्ति श्री वेंकटचेलैया ने एक मामले में यह स्पष्टीकरण देते हुए बताया है कि संविधान यदि मूल कर्तव्यों को प्रवर्तनीय (Enforceable) घोषित नहीं करता है तो वह उन्हें अप्रवर्तनीय (Unenforceable) भी घोषित नहीं करता है। इसके अलावा, न्यायालय ने कुछ मामलों में स्पष्ट किया है कि जिस तरह मूल अधिकार संविधान को समझने के लिए मूलभूत महत्व के हैं, वैसे ही मूल कर्तव्य भी। 'मूल' और 'कर्तव्य' दोनों शब्द इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसलिए जहाँ कहीं भी संविधान की व्याख्या करने का प्रश्न उपस्थित होगा, न्यायालय मूल कर्तव्यों को भी एक महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में प्रयुक्त करेगा। न्यायालय स्वयं भी कोई आदेश पारित करते हुए ध्यान रखेंगे कि उनका कोई आदेश अनुच्छेद 51(क) में दिए गए कर्तव्यों के विरुद्ध न हो।

कुछ मामलों में न्यायालय ने मूल कर्तव्यों को आधार बनाते हुए कुछ महत्वपूर्ण फैसले भी किए हैं। इस संदर्भ में, अनुच्छेद 51(क)(छ) में दिया गया 'पर्यावरण की रक्षा' से संबंधित मूल कर्तव्य सबसे महत्वपूर्ण है। न्यायालय ने अपने कुछ निर्णयों में स्पष्ट किया है कि पर्यावरण की रक्षा सिर्फ सरकार का दायित्व न होकर प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है और उसके अधिकारों पर इस दृष्टि से सीमाएँ आरोपित की जा सकती हैं। भारत सरकार द्वारा 'मूल कर्तव्यों के प्रचालन' (Operationalisation of Fundamental duties) के संबंध में बनाई गई 'वर्षा समिति' (जिसके अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश जे.एस. वर्मा थे) ने 1999 में दी गई अपनी रिपोर्ट के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के 138 ऐसे निर्णयों की सूची प्रस्तुत की है जिनमें पर्यावरण के संरक्षण को एक महत्वपूर्ण आधार के तौर पर रखा गया था। अब तो यह संख्या और ज्यादा बढ़ चुकी है।

मूल कर्तव्यों के पक्ष में किए गए सरकारी प्रयास (Government's initiatives in favour of Fundamental Duties):

न्यायालयों ने ही नहीं, भारत सरकार व कुछ राज्य सरकारों ने भी कई ऐसे नियम और कानून बनाए हैं जो मूल कर्तव्यों को लागू करते हैं। इनमें से कुछ नियम और कानून मूल कर्तव्यों के संविधान में शामिल होने से पहले से ही लागू हैं जबकि कुछ बाद में बनाए गए हैं। ऐसे कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं जिनकी चर्चा वर्षा समिति ने की है-

- (क) अनुच्छेद 51(क)(क) में राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान की बात कही गई है जिससे संबंधित निर्देश 'भारतीय ध्वज

- (ख) अनुच्छेद 51(क)(ग) में 'राष्ट्र की एकता और अखंडता' की रक्षा करने की बात कही गई है जो 51(क)(ङ) में कही गई 'समरसता (Harmony) की भावना' तथा 51(क)(च) में कही गई 'सामासिक संस्कृति' (Composite Culture) के परिरक्षण से जुड़ती है। राज्य ने ऐसे कई कानून बनाए हैं जो इन कर्तव्यों को बाध्यकारी बनाते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 153 में राष्ट्रीय एकता को चोट पहुँचाने वाले कृत्यों को अपराध की श्रेणी में रखा गया है। 'नागरिक अधिकार अधिनियम, 1955' (Civil rights act, 1955) में अनुसूचित जातियों का उत्पीड़न करने को अपराध की श्रेणी में रखा गया है ताकि समरसता की भावना के विकास को बाधित न किया जा सके। 'गैरकानूनी गतिविधियाँ (निवारक) अधिनियम, 1967' [The unlawful activities (prevention) act, 1967] के तहत सांप्रदायिक संगठनों को गैर-कानूनी घोषित किए जाने की व्यवस्था है और 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (The representation of people act, 1951) में व्यवस्था है कि यदि कोई व्यक्ति जातीय, नस्लीय, भाषायी आदि आधारों पर नफरत फैलाकर वोट मांगता है तो उसे संसद या किसी भी राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता है।
- (ग) अनुच्छेद 51(क)(छ) में वर्णित कर्तव्य 'पर्यावरण संरक्षण' को लेकर भी सरकार ने गंभीर चिंता का प्रदर्शन किया है। 'वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980' [Forest (conservation) act, 1980] तथा 'वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972' [Wildlife (protection) act, 1972] राज्य की इसी प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करते हैं।

मूल कर्तव्यों को प्रभावी बनाने के उपाय: (Measures for making fundamental duties effective):

भारत सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में 'मूल कर्तव्यों के प्रचालन' (Operationalisation of fundamental duties) पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया था। वर्मा समिति ने 1999 में प्रस्तुत की गई अपनी रिपोर्ट में मूल कर्तव्यों को प्रभावी बनाने के लिए कई सुझाव दिए थे जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

- (क) 3 जनवरी को 'मूल कर्तव्य दिवस' (Fundamental Duties Day) घोषित किया जाए। 3 जनवरी की तिथि इसलिए चुनी गई थी क्योंकि इसी दिन से (03.01.1977) से '42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' लागू हुआ था और 'मूल कर्तव्य' भी उसी के साथ लागू हुए थे।
- (ख) मूल कर्तव्य विद्यालयों के पाठ्यक्रम तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शामिल किए जाएँ।
- (ग) सभी सरकारी कार्यालयों तथा सार्वजनिक स्थानों पर बोर्ड, विज्ञापन आदि के माध्यम से मूल कर्तव्यों को ज्यादा से ज्यादा प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि लोगों को उनसे परिचित होने का मौका मिल सके।
- (घ) मीडिया को लगातार ऐसे संदेश तथा कार्यक्रम प्रस्तुत करने चाहिए जिनसे मूल कर्तव्यों के संबंध में जागृति तथा चेतना का प्रसार हो। गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) को भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।
- (ङ) मीडिया को ऐसे दृश्य दिखाने से परहेज करना चाहिए जो जनता को उत्तेजित करते हों और उसे मूल कर्तव्यों से विचलित करते हों।

वर्मा समिति का सुझाव यह भी था कि मूल कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता (Enforceability) पर बल दिया जाना चाहिए। इसके बाद भी, सही बात यही है किसी देश की राजनीतिक संस्कृति (Political culture) में परिवर्तन करने के लिए सिर्फ सरकारी प्रयास कभी पर्याप्त नहीं होते। तथ्य यही है कि जब तक देश के लोगों में राजनीतिक जागरूकता तथा कर्तव्य-निर्वाह की चेतना विकसित न हो, तब तक मूल कर्तव्य अपनी वास्तविक भूमिका नहीं निभा सकते।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

Units: 6.10 & 6.11

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) मूल संविधान में अनुच्छेद 36 से 51 तक कुल 16 अनुच्छेद नीति-निदेशक तत्वों के लिए रखे गये थे।
- (ii) 44 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 के माध्यम से इसमें अनुच्छेद 39(क), 43(क) तथा 48(क) को अंतःस्थापित किया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) संविधान के भाग 4 का संबंध राज्य की नीति के निदेशक तत्व से है।
- (ii) वर्तमान में भाग 4 के कुछ ही उपबन्ध शेष बचे हैं, जो न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

3. सूची I को सूची II से सुमेलित कीजिए।

सूची I

(अनुच्छेद)

A. अनुच्छेद 40

B. अनुच्छेद 42

C. अनुच्छेद 45

D. अनुच्छेद 48

सूची II

(नीति निदेशक तत्व)

(i) प्रसूति-सहायता संबंधी उपबन्ध

(ii) कृषि तथा पशुपालन के संगठन से संबंधित उपबन्ध

(iii) 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को शिक्षा देने का प्रयास करने से संबंधित उपबन्ध

(iv) ग्राम पंचायतों का संगठन संबंधी उपबन्ध

कूट—

A B C D

1. (i) (ii) (iii) (iv)

2. (iv) (ii) (i) (iii)

3. (ii) (iii) (i) (iv)

4. (iv) (i) (iii) (ii)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) वर्तमान में भारत में समान सिविल संहिता (Uniform Civil Code) लागू नहीं है।
- (ii) भारतीय संविधान में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता लागू करने का प्रयास करे।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) पर्यावरण के संरक्षण व संवर्द्धन से संबंधित उपबन्ध राज्य के नीति निदेशक तत्व में शामिल नहीं है।
- (ii) पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन भारतीय संविधान के मूल कर्तव्यों की सूची में शामिल नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. राज्य की नीति के निदेशक तत्व के संदर्भ में सत्य नहीं है—

- (1) यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।
- (2) इसका स्पष्ट उल्लेख संविधान में किया गया है।
- (3) सर्वोच्च न्यायालय ने इसे मूल अधिकार के पूरक के रूप में बताया है।
- (4) इसके द्वारा नागरिकों को कुछ नैतिक दायित्व सौंपा गया है तथा राज्य पर कुछ प्रतिबंध लगाये गये हैं।

7. निम्नलिखित में राज्य की नीति के निदेशक तत्व में शामिल नहीं है—

- (1) अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की अभिवृद्धि।
- (2) राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण।
- (3) मादक पेयों व हानिकर नशीले पदार्थों के सेवन का प्रतिषेध।
- (4) संविधान, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान के आदर से संबंधित उपबन्ध।

8. राज्य के नीति निदेशक तत्व में निःशुल्क विधिक सहायता (Free legal aid) संबंधी उपबन्ध कब जोड़ा गया?

- (1) 25 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा।
- (2) 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा।
- (3) 44 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा।
- (4) 97 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2011 द्वारा।

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) राज्य के नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होते हुए भी देश के शासन के लिए मूलभूत आधार प्रदान करता है।
- (ii) संविधान के अनुच्छेद 36 में नीति निर्देशक तत्वों के संदर्भ में 'राज्य' (state) की परिभाषा दी गयी है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

10. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के तहत किस आयु वर्ग के बच्चों की देखभाल और शिक्षा का कर्तव्य राज्य पर डाला गया है?

- (1) 6 से 14 वर्ष। (2) 6 वर्ष से कम।
- (3) 5 से 12 वर्ष। (4) 5 से 14 वर्ष।

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) 97 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2011 के माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 43(ख) अंतः स्थापित किया गया है।
- (ii) यह अनुच्छेद राज्य को सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त प्रचालन, लोकतांत्रिक नियंत्रण तथा पेशेवर प्रबंधन को प्रोत्साहित करने का प्रयास करने का निर्देश देता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

12. निम्नलिखित में असत्य कथन है—

- (1) मूल अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है जबकि नीति निर्देशक सिद्धांत न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।
- (2) मूल अधिकारों की प्रकृति प्रायः नकारात्मक है जबकि नीति निर्देशक तत्वों की प्रकृति सकारात्मक है।
- (3) अधिकांश मूल अधिकारों को लागू करने के लिए कानून बनाने की आवश्यकता होती है जबकि नीति निर्देशक सिद्धांतों के लिए ऐसी आवश्यकता महसूस नहीं होती।
- (4) मूल अधिकारों में आम तौर पर राजनीतिक लोकतंत्र का आदर्श निहित है जबकि नीति निर्देशक सिद्धांतों में मुख्यतः आर्थिक लोकतंत्र का आदर्श निहित है।

(ii) वर्तमान में अनुच्छेद 31(ग) के आधार पर बनाई गई विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन से संरक्षण प्राप्त नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ नीति निर्देशक तत्वों को मूल अधिकार का दर्जा दे दिया है।
- (ii) चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों का प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार अब अनुच्छेद 21 के तहत 'प्राण के अधिकार' का हिस्सा बन गया है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) यदि कोई विधि अनुच्छेद 39(ख) या 39(ग) में वर्णित नीति निर्देशक तत्वों को उपलब्ध करने के लिए बनाई गई है तो वह भाग-3 में वर्णित मूल अधिकारों की तुलना में प्राथमिक मानी जाती है।
- (ii) अनुच्छेद 50 में कहा गया है कि राज्य अपनी लोक सेवाओं में विधायिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए कदम उठाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

16. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारतीय संविधान के किसी भी भाग में 'समान कार्य के लिए समान वेतन' से संबंधित निर्देश या प्रावधान नहीं है।
- (ii) समान कार्य के लिए समान वेतन संबंधी प्रावधान भाग-3 के मूल अधिकार में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

17. कथन (A)- राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन की कोशिश न ही केन्द्र और न ही राज्य सरकारों द्वारा की गयी है।

कारण (R)- नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।

- (1) A तथा R दोनों सही हैं तथा R, A की सही व्याख्या है।
 (2) A तथा R दोनों सही हैं परन्तु R, A की सही व्याख्या नहीं है।
 (3) A सही है, परन्तु R गलत है।
 (4) A गलत है, परन्तु R सही है।

18. भारत की गुट-निरपेक्षता की नीति पर चलने व अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में पंचशोल सिद्धांत को आधार बनाने जैसी अभिव्यक्तियाँ संविधान के किस अनुच्छेद के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता को दर्शाती है?

- (1) अनुच्छेद 49 (2) अनुच्छेद 50
 (3) अनुच्छेद 51 (4) अनुच्छेद 48(क)

19. निम्नलिखित में से किस राज्य में समान सिविल संहिता लागू है?

- (1) केरल (2) गोवा
 (3) आन्ध्र प्रदेश (4) जम्मू-कश्मीर

20. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) भूतपूर्व सोवियत संघ से प्रभावित होकर भारत ने मूल अधिकार के साथ ही मूल कर्तव्य को भी मूल संविधान में स्थान दिया।

(ii) स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश पर भारतीय संविधान में मूल कर्तव्य को सम्मिलित किया गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

21. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) मूल संविधान में मूल कर्तव्यों की संख्या दस थी।

(ii) 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा ग्यारहवें मूल कर्तव्य को जोड़ा गया।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

22. सूची I को सूची II से सुमेलित कीजिए।

सूची I

A. 42 वें संविधान संशोधन

B. 86 वें संविधान संशोधन

सूची II

(i) मूल अधिकार व नीति निर्देशक तत्व के मध्य संतुलन

(ii) मूल कर्तव्यों का भारतीय संविधान में अंतःस्थापन।

C. भिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ मामला।

D. 25 वें संविधान संशोधन।

(iii) 11 वें मूल कर्तव्य का अन्तःस्थापन।

(iv) अनुच्छेद 31(ग) का अन्तःस्थापन।

कूट-

	A	B	C	D
1.	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
2.	(ii)	(iii)	(i)	(iv)
3.	(iv)	(iii)	(i)	(ii)
4.	(iii)	(ii)	(iv)	(i)

23. भारतीय संविधान में ग्यारहवें मूल कर्तव्य को कब जोड़ा गया?

- (1) सन् 1976
 (2) सन् 1978
 (3) सन् 2002
 (4) सन् 2008

24. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) मूल कर्तव्य का उल्लेख भारतीय संविधान के भाग 5 में किया गया है।

(ii) मूल कर्तव्य का उल्लेख अनुच्छेद 51(क) के अन्तर्गत है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
 (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों
 (4) न तो (i) और न ही (ii)

25. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि मूल कर्तव्य का न्यायालय द्वारा प्रवृत्त नहीं कराया जा सकता है।

(ii) अनुच्छेद 37 में नीति निर्देशक तत्वों के अप्रवर्तनीय होने का स्पष्ट उल्लेख है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
 (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों
 (4) न तो (i) और न ही (ii)

संविधान का संशोधन (Amendment of the Constitution)

कोई भी संविधान-निर्माता सभा यह दावा नहीं कर सकती कि उसके द्वारा संविधान में रखे गए प्रावधान सार्वकालिक प्रकृति के हैं और उनमें कभी भी किसी परिवर्तन की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसलिए किसी भी देश के संविधान निर्माताओं को इस बात पर विचार करना होता है कि संविधान का संशोधन करने का अधिकार किसे तथा कितनी मात्रा में दिया जाए? जिन देशों की राजव्यवस्था एकात्मक (Unitary) ढाँचे पर आधारित होती है, उनके संविधान प्रायः लचीले या सुनम्य (Flexible) होते हैं अर्थात् सरल प्रक्रिया से उन्हें बदला जा सकता है। दूसरी ओर, जिन देशों की राजव्यवस्था संघात्मक (Federal) ढाँचे पर आधारित होती है, उनका संविधान प्रायः कठोर या अनम्य (Rigid) होता है, क्योंकि उनका संविधान एक प्रकार से विभिन्न प्रांतों तथा संघ के बीच किया गया समझौता या अनुबंध (Contract) होता है तथा दोनों पक्ष चाहते हैं कि किसी एक पक्ष की मनमानी इच्छाओं के मुताबिक इस समझौते को बदला न जा सके।

ब्रिटेन और अमेरिका के संविधान इन दोनों विपरीत ध्रुवों के विख्यात उदाहरण हैं। ब्रिटेन का संविधान अत्यंत लचीला या सुनम्य (Flexible) है जबकि अमेरिकी संविधान सर्वाधिक कठोर या अनम्य (Rigid) संविधानों में गिना जाता है। ब्रिटेन में संसद द्वारा पारित हर विधान संविधान जैसा प्रभाव रखता है। अमेरिकी संविधान में पिछले 225 वर्षों में केवल 27 संशोधन हो पाए हैं। इनमें से भी पहले 10 संशोधन संविधान लागू होने के चौथे वर्ष (1791) में हो गए थे। 1791 से अभी तक सिर्फ 23 संशोधन ही हुए हैं।

भारतीय संविधान निर्माता इन दोनों अतिवादी स्थितियों से बचना चाहते थे। वे न तो इंग्लैंड की तरह भारत की संसद को ऐसी शक्ति देना चाहते थे कि वह निर्बाध तरीके से संविधान के किसी भी प्रावधान में संशोधन कर सके और न ही अमेरिकी व्यवस्था की तरह संविधान संशोधन की प्रक्रिया को इतना कठिन बनाना चाहते थे कि आवश्यक परिस्थितियों उत्पन्न होने पर भी संविधान को न बदला जा सके।

इस विषय से जुड़ी चर्चा के दौरान डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कहा था— “सभा ने यह नहीं माना है कि संविधान अंतिम तथा निर्दोष है। सभा की यह धारणा नहीं है कि संविधान के संशोधन का अधिकार जनता को नहीं दिया जाए, जैसा कि कनाडा ने किया है; या संशोधन के लिए अत्यंत कठिन शर्तें निर्धारित कर दी जाएं, जैसा कि अमेरिका या ऑस्ट्रेलिया में किया गया है। सभा ने संविधान के संशोधन के लिए एक सरल प्रक्रिया अपनायी है जो लोगों के लिए संविधान से स्पष्ट नहीं है, उन्हें केवल दो-तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और यदि वे दो-तिहाई बहुमत भी अपने पक्ष में प्राप्त नहीं कर सकते हैं तो यहाँ समझा जाएगा कि संविधान के प्रति उन्हें जो असंतोष है, उसमें जनता उनके साथ नहीं है।”

इन कथनों से स्पष्ट है कि संविधान निर्माता संविधान को न तो कठोर (Rigid) बनाना चाहते थे और न ही पूर्णतः लचीला (Flexible)। उनका यही विचार संविधान में शामिल किए गए संशोधन संबंधी उपबंधों में दिखाई पड़ता है।

संविधान संशोधन के तरीके (Methods of Amending the Constitution)

वस्तुतः किसी भी संविधान में दो तरीकों से संशोधन हो सकता है—

- (i) अनौपचारिक (Informal) तरीके से,
- (ii) औपचारिक (Formal) तरीके से।

अनौपचारिक तरीके (Informal method) का अर्थ है कि संविधान में घोषित तौर पर संशोधन न किया जाए, किंतु तब भी संविधान में परिवर्तन आ जाए। इसके प्रधानतः दो तरीके हैं—

(क) पहला तरीका न्यायपालिका से जुड़ा है। यदि सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय संविधान के किसी उपबंध की मौलिक व्याख्या कर दें तो वह व्याख्या ही संविधान का वास्तविक अर्थ मानी जाएगी। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न लोकहित वादों (Public interest litigations) पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में दिए गए ‘प्राण के अधिकार’ (Right to life) तथा ‘विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया’ (Procedure established by law) वाक्यांशों की जो नई-नई व्याख्याएँ की हैं, अब वे ही प्रामाणिक मानी जाती हैं, न कि वे कथन जो मूल संविधान में वर्णित हैं।

(ख) अनौपचारिक संविधान संशोधनों का दूसरा तरीका संवैधानिक परंपराओं (Constitutional conventions) से

कर सकता है। इसी तरह, राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद् का संबंध; स्पष्ट बहुमत न होने की दशा में राष्ट्रपति द्वारा सबसे बड़े दल के नेता को आमंत्रित करना- इन सभी प्रावधानों में परंपराओं का महत्व काफी ज्यादा है।

दूसरे वर्ग में वे संविधान संशोधन शामिल हैं, जिन्हें औपचारिक संविधान संशोधन (Formal constitutional amendments) कहा जा सकता है। इसका संबंध संविधान को संशोधित करने की उस प्रक्रिया से है जो संविधान में ही इस उद्देश्य हेतु वर्णित की जाती है। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान में अनुच्छेद 368 इसी उद्देश्य से रखा गया है ताकि संविधान के संशोधन की औपचारिक प्रक्रिया व तत्संबंधी शक्तों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कर दिया जाए।

तीन प्रकार की संशोधन प्रक्रिया (Three types of Amendment process)

भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया तीन प्रकार की है। संविधान के विभिन्न उपबंधों के पृथक्-पृथक् महत्व को देखते हुए उनके संशोधन की प्रक्रिया एक जैसी नहीं रखी गई है बल्कि उसे अलग-अलग मात्रा में सरल या कठिन बनाया गया है। ये तीन वर्ग इस प्रकार हैं-

- (1) **साधारण बहुमत (Simple majority)** से किए जाने वाले संशोधन- संविधान के जिन उपबंधों का विशेष संवैधानिक महत्व नहीं है, उनमें संशोधन के लिए अत्यंत लचीली प्रक्रिया अपनाई गई है। ऐसे उपबंधों के संशोधन के लिए संसद का साधारण बहुमत (Simple majority) अर्थात् दोनों सदनों में उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के आधे से अधिक की सहमति ही पर्याप्त है।

गौरतलब है कि ऐसे उपबंधों का संशोधन अनुच्छेद 368 के अंतर्गत नहीं किया जाता। संविधान के विभिन्न हिस्सों में कुछ ऐसे उपबंध हैं, जिनमें स्पष्ट किया गया है कि उनमें किया गया कोई भी संशोधन अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन नहीं समझा जाएगा।

मोटे तौर पर निम्नलिखित उपबंध ऐसे हैं जो संविधान में परिवर्तन करने के बावजूद अनुच्छेद 368 के अनुसार 'संशोधन' नहीं माने जाते और साधारण बहुमत से ही बदले जा सकते हैं-

- (क) नए राज्यों का निर्माण अथवा उनकी सीमाओं या नाम आदि में परिवर्तन (अनुच्छेद 2, 3, 4)।
- (ख) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों तथा कुछ अन्य संवैधानिक पदों से संबंधित वेतन और भत्ते संशोधित करना।
- (ग) कुछ अनुच्छेद, जो द्वितीय अनुसूची में परिवर्तन की अनुमति देते हैं। (जैसे- अनुच्छेद 75, 97, 125, 148 आदि)।
- (घ) संसद द्वारा संसदीय विशेषाधिकारों को परिभाषित करना [अनुच्छेद 105(3)]।
- (ङ) संसद सदस्यों के वेतन-भत्तों आदि की व्यवस्था (अनुच्छेद 106)।
- (च) संसद द्वारा कोई नई व्यवस्था न किए जाने पर संविधान के लागू होने के 15 वर्षों बाद अंग्रेजी का राजभाषा न रहना [अनुच्छेद 120(2)]।
- (छ) संसद द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को परिवर्तित करने की शक्ति [अनुच्छेद 135]।
- (ज) किसी राज्य के लिए विधान परिषद का उत्सादन या सृजन (अनुच्छेद 169)।
- (झ) संघ राज्यक्षेत्रों (Union territories) के लिए मंत्रिपरिषद का सृजन (अनुच्छेद 239)।

- (2) **विशेष बहुमत (Special majority)** के आधार पर किए जाने वाले संशोधन- संविधान के अधिकांश उपबंध इसी वर्ग में शामिल हैं। जिन उपबंधों का संबंध भारत के संघीय ढाँचे (Federal structure) से है, उन्हें छोड़कर अनुच्छेद 368 के अंतर्गत 'संशोधन' माने जाने वाले शेष सारे उपबंध इसी वर्ग में शामिल हैं। विशेष बहुमत का तात्पर्य है कि ऐसे संशोधन विधेयक को-

- (अ) सदन की कुल संख्या के बहुमत का समर्थन हासिल होना चाहिए। सदन की कुल संख्या का अर्थ सदन की औपचारिक संपूर्ण संख्या से है, न कि तात्कालिक (Immediate) संख्या से।
- (आ) प्रत्येक सदन में उस विधेयक को 'उपस्थित तथा मतदान करने वाले' सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई का समर्थन प्राप्त होना चाहिए। 'उपस्थित तथा मतदान करने वाले' सदस्यों का अर्थ है कि यदि कुछ सदस्य मत विभाजन के समय उपस्थित हों किंतु मतदान में हिस्सा न लें तो दो-तिहाई की गणना करने के लिए उन्हें शामिल नहीं किया जाएगा।

- (3) **संसद के विशेष बहुमत के अलावा कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों के अनुसमर्थन (ratification)** से पवित्र होने वाले विशेष उपबंध- संविधान के कुछ उपबंधों का संशोधन करने के लिए राज्यों की संसदों की सहमति आवश्यक है।

ये वे प्रावधान हैं जिनका संबंध हमारे संविधान के संघात्मक ढाँचे (Federal structure) से है। अनुच्छेद 368(2) में बताया गया है कि ऐसे प्रावधानों से जुड़े संविधान संशोधन विधेयक को—

- (अ) दोनों सदनों से विशेष बहुमत (Special majority) द्वारा पारित किया जाना आवश्यक है। विशेष बहुमत का अर्थ यहाँ भी सदन की कुल संख्या के बहुमत के साथ-साथ उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों की दो-तिहाई संख्या के समर्थन से है।
- (आ) ऐसे विधेयक के पारित होने की शर्त है कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा इस आशय का 'संकल्प' (Resolution) पारित करके उसे अनुसमर्थन (ratification) दिया जाए। ध्यातव्य है कि अमेरिका में ऐसे संशोधन विधेयकों को तीन-चौथाई राज्यों के अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है, जबकि भारत में आधे राज्यों का समर्थन काफी है।

अनुच्छेद 368(2) में दी गई सूची के अनुसार निम्नलिखित उपबंधों में संशोधन करने के लिए उक्त विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है—

- (i) राष्ट्रपति के निर्वाचन से जुड़े उपबंध (अनुच्छेद 54-55)।
- (ii) संघ और राज्यों की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार से जुड़े उपबंध (अनुच्छेद 73 तथा 162)।
- (iii) संघ, राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों (UTs) की न्यायपालिका से संबंधित उपबंध (अनुच्छेद 124-147, 214-231 तथा अनुच्छेद 241)।
- (iv) संघ और राज्यों के मध्य विधायी शक्ति का वितरण से जुड़े उपबंध (अनुच्छेद 245-255)।
- (v) संसद में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व से संबंधित विषय (अनुसूची 4)।
- (vi) सातवीं अनुसूची की किसी सूची से संबंधित विषय।
- (vii) अनुच्छेद 368 में वर्णित उपबंध।

संविधान संशोधन की प्रक्रिया के विभिन्न चरण

(Different steps of the procedure of the amendment of Constitution)

अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन के लिए औपचारिक प्रक्रिया बताई गई है। इस प्रक्रिया के विभिन्न चरण निम्नलिखित हैं—

- (1) संशोधन का प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी प्रारम्भ (initiate) किया जा सकता है।
- (2) संविधान संशोधन विधेयक को पारित करने की प्रक्रिया सामान्यतः वैसी ही है, जैसी साधारण विधेयकों के मामले में अनुच्छेद 107-108 में बताई गई है।
- (3) संसद के दोनों सदनों में विशेष बहुमत अर्थात् कुल सदस्य संख्या के आधे या अधिक तथा उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई या अधिक सदस्यों के समर्थन से ही संविधान संशोधन विधेयक पारित हो सकता है।
- (4) संविधान संशोधन विधेयक के मामले में संयुक्त बैठक (Joint sitting) का कोई प्रावधान नहीं है। ऐसे विधेयक का दोनों सदनों में पृथक्-पृथक् पारित होना जरूरी है।
- (5) संघात्मक ढाँचे (Federal Structure) से जुड़े जिन उपबंधों की सूची अनुच्छेद 368(2) में विशेष सुरक्षित उपबंधों के रूप में दी गई है, उनसे संबंधित संशोधन विधेयक पर कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों का अनुसमर्थन (ratification) लिया जाना आवश्यक है। यह चरण संसद के दोनों सदनों द्वारा विधेयक को पारित किए जाने के बाद पूरा किया जाता है।
- (6) ये सभी औपचारिकताएँ पूरी होने के बाद विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।
- (7) राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक को अनुमति देने के लिए बाध्य है। '24वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' के

संविधान-संशोधन की शक्ति पर लागू सीमाएँ

(Limitations on the power to amend the constitution)

भारतीय संसद और न्यायपालिका में इस प्रश्न पर बार-बार टकराव होता रहा है कि संविधान के किन खंडों या उपबंधों को अनुच्छेद 368 के माध्यम से संशोधित किया जा सकता है और किन्हें नहीं? इस संबंध में प्रमुख तथ्य कालक्रमिक रूप से इस प्रकार हैं—

(i) 1967 तक प्रायः संसद और न्यायपालिका में इस प्रश्न पर विवाद नहीं हुआ था कि संसद की संविधान संशोधन शक्ति पर कोई मर्यादा है या नहीं? इसका कारण यह था कि जब-जब न्यायालय ने संसद द्वारा निर्मित किसी अधिनियम या कार्यपालिका द्वारा जारी किसी आदेश को खारिज किया, संसद ने संविधान संशोधन करके उक्त प्रावधान में ही संशोधन कर दिया। उदाहरण के लिए, 1951 में 'चंपकम दोराइयजन बनाम मद्रास राज्य' मामले में जब सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े वर्गों के आरक्षण को समता के अधिकार के उल्लंघन के आधार पर अवैध घोषित किया तो संसद ने 'प्रथम संविधान संशोधन, 1951' करके अनुच्छेद 15(4) अंतःस्थापित कर दिया जो ऐसे आरक्षण को वैध बनाता था।

(ii) इस दौर (1950-1967) में सर्वोच्च न्यायालय संविधान संशोधनों के प्रति सहिष्णु बना रहा। उसने प्रायः अपने निर्णयों में इस बात को स्वीकार किया कि संसद संविधान में संशोधन करके मूल अधिकारों सहित किसी भी भाग को परिवर्तित कर सकती है। उदाहरण के लिए, 'शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ' (1951) मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि यदि अनुच्छेद 368 का प्रयोग करते हुए संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया जाता है तो वह अनुच्छेद 13(2) के अधीन विधि नहीं माना जाएगा।

1965 में 'सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य' मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 368 के अंतर्गत मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है।

(iii) किंतु, 'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' (1967) मामले में उच्चतम न्यायालय की धारणा बदल गई। इस मामले में संविधान के '17वें संशोधन अधिनियम, 1964' की वैधता पर प्रश्न उठाया गया था। इस निर्णय में 11 न्यायाधीशों की पीठ ने 6:5 के बहुमत से यह फैसला किया कि अनुच्छेद 368 के तहत भी संसद को यह शक्ति नहीं है कि वह मूल अधिकारों को छीन सके या न्यून कर सके। अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त विधि शब्द के अंतर्गत सभी प्रकार की विधियाँ सम्मिलित हैं, चाहे वे विधानमंडल की साधारण विधायी शक्तियों से पारित हुई हों या फिर अनुच्छेद 368 के अंतर्गत ही गई संविधान संशोधन की शक्ति से।

(iv) 'गोलकनाथ मामले' में दिए गए निर्णय का प्रभाव शून्य करने के लिए सरकार ने '24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' पारित कराया। यह संशोधन भारत के संवैधानिक इतिहास में 'मौल का पत्थर' माना जाता है क्योंकि इसके माध्यम से पहली बार संसद की संविधान संशोधन शक्ति में ही संशोधन किया गया। इस संशोधन के द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन किए गए—

(क) अनुच्छेद 13(2) में संशोधन करते हुए यह वाक्यांश जोड़ा गया कि संसद द्वारा अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित कोई भी विधि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द में सम्मिलित नहीं मानी जाएगी।

(ख) इसमें अनुच्छेद 368(1) में भी संशोधन किया गया और स्पष्ट किया गया कि संसद को अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान के किसी भी उपबंध में परिवर्तन (variation) करने, परिवर्द्धन (addition) करने या निरसन (repeal) करने की शक्ति है।

(ग) अनुच्छेद 368(3) अंतःस्थापित किया गया जिसमें स्पष्ट किया गया था कि अनुच्छेद 13 की कोई बात इस अनुच्छेद के अधीन किए गए किसी संशोधन पर लागू नहीं होगी।

(घ) अनुच्छेद 368 का शीर्षक बदल दिया गया। पहले यह 'संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया' (Procedure for amendment of the constitution) था। अब इसे बदलकर 'संविधान का संशोधन' (Amendment of the constitution) रखा गया।

समक्ष मुख्य विचारणीय प्रश्न यह था कि संसद को अनुच्छेद 368 द्वारा दी गई संशोधन की शक्ति की सीमा क्या है? इस मामले में 13 न्यायाधीशों की न्यायपीठ गठित की गई थी जिसने निर्धारित किया कि—

- (क) '24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' वैध है। संसद अनुच्छेद 368 के तहत मूल अधिकारों का संशोधन करने के लिए उतनी ही सक्षम है जितनी कि संविधान के किसी अन्य भाग का। अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त 'विधि' शब्द में अनुच्छेद 368 के तहत होने वाले संविधान संशोधन अधिनियम शामिल नहीं हैं।
- (ख) किंतु, संसद संविधान का संशोधन करके संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' (Basic Structure) का उल्लंघन या अतिक्रमण नहीं कर सकती। 'आधारभूत ढाँचे' की चर्चा संविधान में स्पष्ट शब्दों में भले ही न की गई हो, किंतु विवक्षित या अंतर्निहित (Implied) रूप में यह मर्यादा अवश्य विद्यमान है।
- (vi) केशवानंद भारती मामले के निर्णय के प्रभाव को शून्य करने के लिए आपातकाल के दौरान 1976 में '42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' पारित किया गया जो एक प्रकार से संविधान का व्यापक पुनरीक्षण था। यह अभी तक का सबसे व्यापक संविधान संशोधन है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 368 में खंड 4 एवं खंड 5 जोड़े गए जिनमें कहा गया कि संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति पर किसी प्रकार का कोई निर्बंध (Restriction) नहीं होगा [368 (5)] तथा संसद द्वारा किए गए किसी भी संविधान संशोधन को किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रस्तावित नहीं किया जा सकेगा [368 (4)]।
- (vii) 1980 में 'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 368 के खंड 4 एवं खंड 5 को अवैध घोषित कर दिया क्योंकि ये दोनों खंड संसद को संविधान संशोधन की असिमित शक्ति देकर न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति का विनाश करते थे जबकि 'न्यायिक पुनरीक्षण' संविधान के आधारभूत लक्षणा में शामिल है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि 'संविधान संशोधन की सीमित शक्ति' भी संविधान के आधारभूत ढाँचे का हिस्सा है।
- (viii) केशवानंद भारती तथा मिनर्वा मिल्स मामलों के बाद यह स्पष्ट हो गया था कि संसद संविधान में कोई ऐसा संशोधन नहीं कर सकती है जो संविधान के आधारभूत ढाँचे का उल्लंघन करता हो। किंतु, अभी भी एक प्रश्न पर स्पष्ट निर्णय नहीं हो पाया था। वह प्रश्न यह है कि यदि संसद संविधान में कोई व्यापक परिवर्तन करने के लिए कोई अधिनियम बनाती है और उसे नवीं अनुसूची में शामिल कर देती है तो उस पर आधारभूत ढाँचे का सिद्धांत लागू होगा या नहीं?
- इस संबंध में 'बामन राव बनाम भारत संघ' (1981) मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि 24 अप्रैल, 1973 (केशवानंद भारती मामले में निर्णय की तिथि) से पहले किए गए संशोधन तो विधिमान्य माने जाएंगे किंतु इस तिथि के बाद यदि कोई भी अधिनियम नवीं अनुसूची में डाला गया है तो उसकी न्यायिक समीक्षा की जा सकती है और यदि वह अधिनियम संविधान के आधारभूत ढाँचे को नुकसान पहुँचाता है तो न्यायालय उसे विधिशून्य (void) घोषित कर सकता है।
- (ix) 'कोइल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य' (2007) मामले में उच्चतम न्यायालय ने पुनः सभी संदेहों का निराकरण करते हुए दोहराया कि संविधान का आधारभूत ढाँचा असंशोधनीय है।

इस सारी प्रक्रिया के बाद वर्तमान में संसद की संशोधन शक्ति की संवैधानिक स्थिति इस प्रकार है—

① * संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी उपबंध में संशोधन कर सकती है।

- (ii) किंतु, संशोधन करने की यह शक्ति अमर्यादित न होकर संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' की 'विवक्षित परिसीमा' (Implied limitation) से बंधी है। न्यायालय को यह तय करने की शक्ति है कि संसद द्वारा किया गया संशोधन संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' के विरुद्ध है या नहीं? यदि ऐसा है तो वह संशोधन उस सीमा तक खारिज कर दिया जाएगा जिस सीमा तक वह 'आधारभूत ढाँचे' को नुकसान पहुँचाता है।
- (iii) अनुच्छेद 368 का खंड (3) वैध है। अतः संविधान संशोधन विधि की वैधता का परीक्षण अनुच्छेद 13(2) के संदर्भ में नहीं किया जा सकता।
- (iv) अनुच्छेद 368 में अंतःस्थापित खंड (4) तथा खंड (5) अवैध हैं क्योंकि वे न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) को खारिज करते हैं जो कि संविधान के आधारभूत ढाँचे का हिस्सा है।
- (v) संसद संविधान संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 368 में दी गई संशोधन करने की अपनी शक्ति को बढ़ा नहीं सकती है क्योंकि 'संविधान संशोधन की सीमित शक्ति' भी संविधान के आधारभूत ढाँचे का हिस्सा है।

- (vi) आधारभूत ढाँचे के उल्लंघन के आधार पर न्यायालय उन्हीं संशोधनों को खारिज कर सकता है जो 24 अप्रैल, 1973 के बाद पारित किए गए हैं। इसका अर्थ है कि आधारभूत ढाँचे का सिद्धांत 'पूतलक्षी प्रभाव' (Retrospective effect) से नहीं, 'भविष्यलक्षी प्रभाव' (Prospective effect) से लागू किया गया है।
- (vii) यदि संविधान संशोधन संबंधी अधिनियम को 9वीं अनुसूची में शामिल कर दिया जाए तो भी न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) की शक्ति सीमित नहीं होगी। 24 अप्रैल, 1973 के बाद नवीं अनुसूची में शामिल किए जाने वाले किसी भी विषय पर न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) कर सकता है। न्यायालय इस विधि को उस सीमा तक अवैध घोषित कर देगा जहाँ तक वह संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' के विरुद्ध है।
- (viii) इस स्थिति में परिवर्तन तभी आ सकता है जब 13 या 13 से अधिक न्यायाधीशों की कोई न्यायपीठ केशवानंद भारती मामले का निर्णय पलट दे तथा संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत को अवैध घोषित कर दे।

संविधान के आधारभूत ढाँचे में शामिल तत्व (Elements present in the basic structure of constitution)

सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मामलों में बताया है कि संविधान के आधारभूत ढाँचे में कौन-कौन से तत्व उपस्थित हैं। यह सूची निःशेषकारी (all inclusive) या अंतिम (final) न होकर सिर्फ उदाहरण-स्वरूप है। न्यायालय समय-समय पर कुछ तत्वों को इस सूची में शामिल करता रहा है और आगे भी कर सकता है। इस सूची से जुड़े प्रमुख मामले तथा सूची में शामिल तत्व निम्नलिखित हैं—

1. 'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य' (1973) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित तत्वों को संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा बताया—
 - (क) संविधान की सौख्यता।
 - (ख) सरकार का 'लोकतांत्रिक' (Democratic) तथा 'गणतांत्रिक' (Republican) ढाँचा।
 - (ग) संविधान की संघात्मक (Federal) प्रकृति।
 - (घ) विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य 'शक्तियों का पृथक्करण' (Separation of powers)।
 - (ङ) संविधान का धर्मनिरपेक्ष (Secular) स्वरूप।
 - (च) देश की संप्रभुता (Sovereignty)।
2. 'इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण' (1975) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित तीन तत्वों को आधारभूत ढाँचे का हिस्सा बताया—
 - (क) स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र।
 - (ख) विधि का शासन (Rule of law)।
 - (ग) न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) की शक्ति।
3. 'मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ' (1980) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि निम्नलिखित तत्व संविधान के आधारभूत ढाँचे में सम्मिलित हैं—
 - (क) संसद की संविधान संशोधन करने की 'सीमित' शक्ति।
 - (ख) मूल अधिकारों तथा राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में संतुलन।
 - (ग) न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति (कुछ मामलों को छोड़कर)।
 - (घ) कुछ स्थितियों में मूल अधिकार।
4. 'न्यायाधीशों के स्थानांतरण के मामले' के नाम से प्रसिद्ध 'एस.पी. गुप्ता और अन्य बनाम राष्ट्रपति' (1982) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 32 के अंतर्गत 'सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता' संविधान के आधारभूत ढाँचे का हिस्सा है।

- (i) संविधान की सर्वोच्चता।
- (ii) विधि का शासन (Rule of law)।
- (iii) शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत (Principle of separation of powers)।
- (iv) संविधान का संघात्मक ढाँचा।
- (v) स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव पर आधारित लोकतंत्र प्रणाली।
- (vi) राज्यव्यवस्था का गणतंत्रात्मक (Republican) ढाँचा।
- (vii) संसदीय प्रणाली की सरकार।
- (viii) देश की संप्रभुता।
- (ix) न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) का अधिकार।
- (x) संसद को संविधान में संशोधन करने की 'सीमित' शक्ति।
- (xi) मूल अधिकारों तथा नीति-निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन।
- (xii) मूल अधिकारों का सार (हालाँकि मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है)।
- (xiii) सामाजिक व आर्थिक न्याय का उद्देश्य तथा राज्य का लोक कल्याणकारी स्वरूप।
- (xiv) धर्मनिरपेक्षता (Secularism)।

भारतीय संविधान: कठोर या लचीला (Indian Constitution: Rigid or flexible)

कोई संविधान कठोर (rigid) है या लचीला (flexible), इसका फैसला इस बात से होता है कि उसमें संशोधन करना सरल है या कठिन? अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा स्विट्जरलैंड के संविधान सामान्यतः कठोर माने जाते हैं।

भारतीय संविधान के संबंध में भी कुछ लोगों की धारणा है कि यह कठोर प्रकृति का संविधान है। किंतु, यह तथ्य कि संविधान के लागू होने के बाद सिर्फ 62 सालों में उसमें 97 संशोधन हो चुके हैं, स्वयं ही स्पष्ट कर देता है कि भारतीय संविधान कठोर नहीं है। इसके कठोर न होने के कारण इस प्रकार है—

- (क) भारत में बहुत कम संविधान संशोधनों के मामले में ही राज्यों की सहमति का प्रावधान रखा गया है और ब्रिज मामलों में रखा गया है। उनमें भी सिर्फ आधे राज्यों की सहमति ही मांगी गई है। जबकि अमेरिका की तरह तीन-चौथाई राज्यों की राज्यों को संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तावित करने का अधिकार दे दिया ही नहीं गया है, जैसा अमेरिका में राज्यों को उपलब्ध है। इन कारणों से संविधान संशोधन की शक्ति सिर्फ केंद्र के हाथों में आ जाती है और संशोधन करना आसान हो जाता है।
- (ख) संविधान के संशोधन के लिए कुछ देशों में संवैधानिक सम्मेलन (Constitutional convention) या जनमत-संग्रह (Referendum) जैसी जटिल व्यवस्थाएँ निर्धारित हैं। उदाहरण के लिए, स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रेलिया तथा आयरलैंड में विधायिका द्वारा पारित करने के बाद संशोधन का प्रस्ताव जनमत-संग्रह (Referendum) में भी पारित होना जरूरी है। अमेरिका में कुछ मामलों में संविधान संशोधन के लिए संवैधानिक सम्मेलन (Constitutional convention) की व्यवस्था निर्धारित की गई है। भारतीय संविधान में ऐसी व्यवस्थाओं की जगह सीधे-सीधे संसद के पाध्यम से संविधान संशोधन की व्यवस्था रखी गई है।
- (ग) संविधान संशोधन की प्रक्रिया अत्यंत सरल बनाई गई है। इसे किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है; इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति आवश्यक नहीं है; राष्ट्रपति को इसे खोटा करने का भी हक नहीं है। ये सभी उपबंध संविधान संशोधन की प्रक्रिया को सरल बनाते हैं।

किंतु, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि भारत में संविधान का संशोधन करना इंग्लैंड जितना आसान है। भारतीय संविधान में ऐसी व्यवस्थाएँ की गई हैं कि संविधान का संशोधन साधारण विधेयक पारित करने जितना आसान न हो जाए। उदाहरण के लिए—

अभी तक किए गए प्रमुख संविधान संशोधन (Important constitutional amendments made so far)

अभी तक संसद कुल 97 संविधान संशोधन अधिनियम पारित कर चुकी है जिनमें से कुछ विशेष महत्व के हैं। ऐसे संशोधनों को दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है- (क) आधारभूत महत्व के संशोधन, तथा (ख) अन्य महत्वपूर्ण संशोधन।

- (क) आधारभूत महत्व के संशोधन- पहला, 24वाँ, 25वाँ, 42वाँ, 44वाँ, 52वाँ, 73वाँ, 74वाँ, 86वाँ तथा 91वाँ।
 (ख) अन्य महत्वपूर्ण संशोधन- 7वाँ, 16वाँ, 21वाँ, 26वाँ, 38वाँ, 39वाँ, 43वाँ, 61वाँ, 71वाँ, 76वाँ, 77वाँ, 81वाँ, 82वाँ, 84वाँ, 85वाँ, 87वाँ, 88वाँ, 89वाँ, 92वाँ, 93वाँ तथा 97वाँ।

आधारभूत महत्व के संशोधन (Amendments of fundamental importance)

1. पहला संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 :- यह एक व्यापक संशोधन था जो प्रधानतः सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कुछ निर्णयों को पलटकर सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिए किया गया था। इसके माध्यम से निम्नलिखित परिवर्तन किये गये-

- (i) अनुच्छेद 31 में दिए गए 'संपत्ति के अधिकार' को सीमित करने के लिए उसमें दो नए खंड 31(क) और 31(ख) जोड़े गए। अनुच्छेद 31(क) में व्यवस्था की गई कि, ज़मींदारी, उन्मूलन, भूमि सुधार आदि के पक्ष में बनाए गए किसी कानून को इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकता कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करता है। अनुच्छेद 31(ख) के द्वारा संविधान में 'नवी अनुसूची' जोड़ी गई जिसका उद्देश्य भूमि सुधार से जुड़े कानूनों को 'न्यायिक समीक्षा' (Judicial review) से मुक्त करना था। अनुच्छेद 31(ख) में यह प्रावधान किया गया कि 9वीं अनुसूची में शामिल कानूनों या आदेशों को इस आधार पर अवैध या शून्य घोषित नहीं किया जाएगा कि वे किसी मूल अधिकार का उल्लंघन करते हैं।
- (ii) अनुच्छेद 15 में संशोधन के द्वारा एक नया खंड 15(4) जोड़ा गया जिसका उद्देश्य 'चंपकम दोराइराजन बनाम मद्रास राज्य' (1951) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रभाव को दूर करना था। इसके माध्यम से सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के पक्ष में विशेष प्रावधान करने के लिए राज्य को शक्ति दी गई।
- (iii) अनुच्छेद 19(2) में संशोधन करके अनुच्छेद 19(1)(क) में दी गई 'भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर तीन नए युक्तियुक्त निर्बंधन (reasonable restrictions) लागू किए गए जिनका उद्देश्य 'रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य' (1950) तथा 'बजरंगदास बनाम दिल्ली राज्य' (1950) मामलों में न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का प्रभाव समाप्त करना था। ये तीन निर्बंधन हैं- 'लोक व्यवस्था' (public order), 'अपराध-उद्दीपन' (incitement to an offence) तथा 'विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध' (friendly relations with foreign states)।
- (iv) अनुच्छेद 19(6) में संशोधन करके अनुच्छेद 19(1)(ख) में दिए गए 'कोई वृत्ति (profession), उपजीविका (occupation), व्यवसाय (trade) या व्यापार (business) करने के अधिकार' पर भी दो नए युक्तियुक्त निर्बंधन (reasonable restrictions) आरोपित किए गए जिनमें से एक का संबंध सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'मोतीलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य' (1951) मामले में दिए गए निर्णय से था। संशोधन के माध्यम से स्पष्ट किया गया कि यदि राज्य किसी व्यवसाय को स्वयं करने का फैसला करता है तो वह नागरिकों को वह व्यवसाय करने से पूर्णतः या भागतः रोक सकता है। दूसरा निर्बंधन यह था कि किसी पद पर नियोजन के लिए उस पद की प्रकृति से संबंधित तकनीकी ज्ञान संबंधी अर्हताएँ (eligibilities) निर्धारित की जा सकेंगी।

इसके अलावा, पहले संशोधन के माध्यम से कई अन्य अनुच्छेदों में भी प्रासंगिक संशोधन किए गए।

2. 24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971:- इस संशोधन द्वारा 1967 के 'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' मामले के निर्णय को उलट दिया गया, जिसके अनुसार संसद संविधान के भाग-3 में किसी तरह का संशोधन नहीं कर सकती थी। इस

368 के अंतर्गत संविधान के किसी भी उपबंध में परिवर्तन (variation) करने, परिवर्द्धन (addition) करने या निरसन (repeal) करने की शक्ति है।

- (ग) अनुच्छेद 368(3) अंतःस्थापित किया गया जिसमें स्पष्ट किया गया था कि अनुच्छेद 13 की कोई बात इस अनुच्छेद के अधीन किए गए किसी संशोधन पर लागू नहीं होगी।
- (घ) अनुच्छेद 368 का शीर्षक बदल दिया गया। पहले यह 'संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया' (Procedure for amendment of the constitution) था। अब इसे बदलकर 'संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया' (Power of parliament to amend the constitution and procedure therefor) कर दिया गया।
- (ङ) अनुच्छेद 368(2) में संशोधन करके स्पष्ट कर दिया गया कि राष्ट्रपति अनुच्छेद 368 के तहत पारित किए गए संविधान संशोधन विधेयक पर अनुमति देने के लिए बाध्य होगा।

3. 25वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971- यह संशोधन करने के पीछे कुछ महत्वपूर्ण कारण थे। संसद ने इससे पहले 'पश्चिम बंगाल बनाम बेला बैनर्जी' (1953) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को पलटते हुए 'चौथा संविधान संशोधन, 1955' किया था जिसमें कहा गया था कि राज्य द्वारा संपत्ति अधिग्रहण के मामले में दिए गए 'प्रतिकर' या 'मुआवजे' (Compensation) को अपर्याप्त कहकर अधिग्रहण को अवैध घोषित नहीं किया जा सकेगा। इसके बावजूद, सर्वोच्च न्यायालय ने 'आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ' (1970) मामले में (जिसे 'बैंक राष्ट्रीयकरण मामले' के नाम से जाना जाता है) निर्धारित किया था कि अनुच्छेद 31(2) के अनुसार 'प्रतिकर' या 'मुआवजा' (Compensation) बाजार मूल्य के अनुसार दिया जाना चाहिए क्योंकि अनुच्छेद 31(2) से यह अपेक्षा उत्पन्न होती है। 25वें संशोधन द्वारा इस निर्णय के प्रभाव को हटाने के लिए संविधान में निम्नलिखित परिवर्तन किये गए-

- (i) संविधान के अनुच्छेद 31(2) को संशोधित करके उसमें उल्लिखित 'प्रतिकर' (Compensation) शब्द की जगह 'रकम' (Amount) शब्द रखकर स्पष्ट किया गया कि यदि सरकार किसी संपत्ति या भूमि का अधिग्रहण करती है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसका प्रतिकर या मुआवजा (या क्षतिपूर्ति) बाजार मूल्य के अनुसार हो। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया गया कि मुआवजे की 'रकम' को नकद देना जरूरी नहीं होगा, इसे ऋणपत्रों (Bonds) या सरकारी प्रतिभूतियों (Government Securities) के रूप में भी दिया जा सकेगा।
- (ii) संविधान में एक नया अनुच्छेद-31(1) जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि यदि राज्य अनुच्छेद 39(ख) और 39(ग) में वर्णित तीन निदेशक तत्वों को साकार करने के लिए, अर्थात् समुदाय के मौखिक संसाधनों के स्वामित्व एवं नियंत्रण को समतामूलक बनाने और उत्पादन के साधनों के अहितकारी संकेंद्रण को रोकने के लिए कोई कानून बनाता है तो ऐसे कानून को इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकेगा कि वह मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करता है।
- (iii) संशोधन द्वारा राज्यों के लिए यह नियम बनाया गया कि यदि वे किसी की निजी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए विधि बनाते हैं तो ऐसी विधि बनाने से पूर्व उनके लिए राष्ट्रपति से इस आशय की सहमति लेना आवश्यक होगा।

4. 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1976: 42वाँ संविधान संशोधन मुख्यतः सरदार स्वर्ण सिंह आयोग की सिफारिशों का पूर्ण रूप था। यह संशोधन अब तक का सबसे व्यापक संविधान संशोधन है, जो कई कारणों से चर्चित एवं विवादित रहा। इसके माध्यम से संविधान का व्यापक पुनरीक्षण किया गया तथा कई आधारभूत महत्व के उपबंधों को बदला गया। इसके माध्यम से कुल 53 अनुच्छेदों तथा सातवीं अनुसूची में संशोधन किये गए। इन्हीं कारणों से 42वें संविधान संशोधन को 'लघु संविधान' (Mini Constitution) भी कहा जाता है।

इस संशोधन अधिनियम द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए-

- (i) संविधान की उद्देशिका (Preamble) में वर्णित 'संपूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' शब्दों की जगह 'सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' शब्दों को तथा 'राष्ट्र की एकता' शब्दावली की जगह 'राष्ट्र की एकता और अखण्डता' शब्दों को रखा गया। कुल मिलाकर, इसके माध्यम से उद्देशिका में तीन महत्वपूर्ण शब्द 'समाजवादी' (Socialist), 'पंथनिरपेक्ष' (Secular) तथा 'अखंडता' (Integrity) जोड़े गए।
- (ii) संविधान में अनुच्छेद 31(घ) को शामिल किया गया जिसके माध्यम से राष्ट्र विरोधी गतिविधियों तथा सम्मेलनों को

देश के पर्यावरण एवं वन्य जीवों के संरक्षण का आदर्श इत्यादि।

(iv) इसके अलावा, अनुच्छेद 31(ग) में संशोधन करके यह भी स्पष्ट किया गया कि भाग-4 में शामिल किसी भी नीति निर्देशक तत्व के पक्ष में संसद द्वारा बनाई गई विधियों को न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा कि ये विधियाँ मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैं।

(v) संविधान में एक नए अनुच्छेद 51(क) को अंतःस्थापित कर भारतीय संघ के नागरिकों के लिए न्यायालय में अप्रवर्तनीय प्रकृति के 10 मौलिक कर्तव्यों (Fundamental duties) को शामिल किया गया। संविधान में शामिल किये गये इन मौलिक कर्तव्यों की संकल्पना संवित्त संघ के संविधान से ली गई थी।

Fact (vi) अनुच्छेद 74 को संशोधित करके यह स्पष्ट किया गया कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद् को सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

(vii) अनुच्छेद 81(3) एवं 82 में एक परंतुक (Proviso) जोड़कर स्पष्ट किया गया कि लोकसभा में विभिन्न राज्यों के लिए निर्धारित स्थानों, राज्य विधानसभाओं में सदस्यों की संख्या एवं अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों में सन् 2000 के बाद होने वाली पहली जनगणना तक कोई परिवर्तन नहीं होगा और सन् 1971 की जनगणना के आँकड़े ही प्रभावी होंगे।

(viii) लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं की समयावधि को बढ़ाकर 6 वर्ष (जो पूर्व में 5 वर्ष थी) कर दिया गया। इसके साथ ही संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की बैठक या संयुक्त बैठक बुलाने के लिए आवश्यक गणपूर्ति (Quorum) संबंधी प्रावधानों को संपात कर दिया गया।

(ix) एक नए अनुच्छेद 257 को संविधान में शामिल करके यह स्पष्ट कर दिया गया कि किसी भी राज्य में कानून और व्यवस्था से संबंधित गंभीर परिस्थितियों का सामना करने के लिए केन्द्र सरकार को उक्त राज्य अथवा राज्यों में सशस्त्र बल तैनात करने की शक्ति होगी और ये सशस्त्र बल केन्द्र के आदेशों के अनुसार ही कार्य करेंगे।

(x) अनुच्छेद 311 को संशोधित कर यह सुनिश्चित किया गया कि असैन्य कर्मचारियों को उनके पद से हटाने या तात्कालिक पदस्थिति में अवनति (demotion) करने के संबंध में कर्मचारियों को अभ्यावेदन (representation) का अवसर देना आवश्यक नहीं होगा।

(xi) संविधान में आपात एवं राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता से संबंधित अनुच्छेद 352 एवं 356 में संशोधन करके राष्ट्रपति को संपूर्ण देश के लिए एक साथ या देश के किसी भाग में आपात उद्घोषणा जारी करने की शक्ति दी गई। साथ ही, राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की स्थिति में संसद को राष्ट्रपति शासन की अवधि 6 महीने से बढ़ाकर एक वर्ष तक करने की शक्ति दी गई।

(xii) अनुच्छेद 368 में दो नए खंड 368(4) तथा 368(5) शामिल किए गए जिनके माध्यम से संसदीय सर्वोच्चता को सुनिश्चित करते हुए निर्धारित किया गया कि यदि संसद अनुच्छेद 368 में वर्णित संशोधन की प्रक्रिया द्वारा संविधान के किसी भी उपबंध का संशोधन करती है तो उसे किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा।

(xiii) संविधान की सातवीं अनुसूची में संशोधन करके राज्य सूची में कुछ नई प्रविष्टियाँ शामिल की गईं तथा राज्य सूची से कुछ प्रविष्टियाँ, जैसे शिक्षा, नाप-तौल, वन आदि को समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया गया।

Vijaya

44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978: यह जनता पार्टी की सरकार द्वारा पारित किया गया सबसे व्यापक संविधान संशोधन था जो उसके चुनावी वायदों को पूरा करने की कोशिश में पारित किया गया था। इस संशोधन का मूल उद्देश्य '42वें संविधान संशोधन' द्वारा संविधान में किए गए व्यापक परिवर्तनों को निरस्त करके संविधान को उसके मूल स्वरूप (42वें संशोधन अधिनियम से पूर्व) में लाना था। ध्यातव्य है कि लोकसभा द्वारा पारित इस संशोधन को राज्यसभा ने 5 संशोधनों के साथ पारित किया था। लोकसभा के पास दो ही विकल्प थे- पहला यह था कि वह संपूर्ण विधेयक को खारिज कर दे; और दूसरा वह कि वह इन संशोधनों को स्वीकार कर ले। लोकसभा ने राज्यसभा द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को स्वीकार कर लिया।

'44वें संविधान संशोधन अधिनियम' के माध्यम से संविधान में व्यापक परिवर्तन किये गये जिनका संक्षिप्त विवरण इस

राज्य द्वारा किसी भी व्यक्ति को निर्दोष करने व रखने के आधारों को सीमित कर दिया गया। यह संशोधन व्यवहार में लागू नहीं हो सका क्योंकि इसके लिए सरकार द्वारा अधिसूचना जारी करने की शर्त थी किंतु अधिसूचना जारी करने से पूर्व ही जनता पार्टी की सरकार गिर गई थी।

(iii) अनुच्छेद 71 को संशोधित करके राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित विवादों की जाँच करने का अधिकार पुनः सर्वोच्च न्यायालय को सौंप दिया गया। '39वें संविधान संशोधन, 1975' द्वारा यह अधिकार छीन लिया गया था।

Present (iv) संविधान के अनुच्छेद 74(1) को संशोधित करके यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह को मंत्रिपरिषद् के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकेगा, किंतु पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह के अनुसार राष्ट्रपति कार्य करने के लिए बाध्य होगा।

(v) 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा लोकसभा एवं राज्य विधानमंडलों का कार्यकाल 5 वर्ष से बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया था, उसे पुनः इस संशोधन द्वारा घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया।

(vi) अनुच्छेद 226 को संशोधित करके उच्च न्यायालयों को पूर्व में प्राप्त शक्तियाँ पुनः उन्हें दे दी गईं। अनुच्छेद 227 के संशोधन के माध्यम से सभी उच्च न्यायालयों को अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में सभी अधीनस्थ न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों का अधीक्षण करने की शक्ति पुनः प्रदान कर दी गई।

(vii) '39वें संविधान संशोधन अधिनियम' द्वारा अंतःस्थापित अनुच्छेद 329(क), जिसके अनुसार प्रधानमंत्री तथा लोकसभा अध्यक्ष के संसद सदस्य के रूप में निर्वाचन के लिए बनाई गई विधि को किसी भी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता था, को समाप्त कर दिया गया।

(viii) संविधान के अनुच्छेद 352, 356, 358, 359 और 360 में वर्णित आपात-उपबंधों से संबंधित प्रावधानों में निम्नांकित परिवर्तन किये गए—

(क) अनुच्छेद 352 में राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा के आधारों में से 'आंतरिक अशांति' (Internal Disturbance) को हटा दिया तथा उसके स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' (Armed Rebellion) को आधार बनाया गया।

(ख) राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा के लिए मंत्रिमण्डल (cabinet) की लिखित सलाह को अनिवार्य कर दिया गया।

(ग) राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा के एक महीने के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा कुल संख्या के बहुमत तथा उपस्थित व मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पारित करना अनिवार्य कर दिया गया। आपात को जारी रखने के लिए संसद के दोनों सदनों द्वारा हर 6 महीने बाद इसका अनुमोदन करना अनिवार्य कर दिया गया।

(घ) आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 358 के तहत अनुच्छेद 19 के निलंबन के संबंध में यह प्रावधान किया गया कि ऐसा तभी किया जा सकेगा जब आपात की उद्घोषणा 'युद्ध' अथवा 'बाह्य आक्रमण' के आधार पर की गई हो। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद 359 के आधार पर अनुच्छेद 20 और 21 को निलंबित नहीं किया जा सकेगा।

(ङ) किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की स्थिति में संसद द्वारा उस राज्य में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन घोषित करने का प्रस्ताव एक बार में 6 माह से अधिक के लिए प्रवर्तनीय नहीं होगा। ऐसी घोषणा को एक बार में एक वर्ष के लिए प्रवर्तनीय तभी बनाया जा सकेगा जब अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषित राष्ट्रीय आपात प्रवर्तन में हो और निर्वाचन आयोग ने यह प्रमाणित कर दिया हो कि उस अवस्था में राज्य में चुनाव करना संभव नहीं है।

(च) संविधान के 38वें संशोधन के उस प्रावधान को भी निरसित कर दिया गया जिसमें व्यवस्था की गई थी कि अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषित राष्ट्रीय आपात को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

6. 52वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1985: यह संशोधन श्री राजीव गांधी के प्रयासों से हुआ। इस संशोधन का चुनाव सुधारों की दृष्टि से काफी महत्व है। 1969 से दल-बदल (defection) को जो सपरम्परा राजनीति को गंभीर रूप से प्रभावित कर रही थी, इसमें उसे नियंत्रित करने का प्रयास किया गया था। इसके माध्यम से संविधान में दसवीं अनुसूची शामिल की गई जिसका मूल उद्देश्य दल-बदल एवं अन्य आधारों पर संसद तथा राज्य विधानमंडल के सदस्यों की निरर्हता (ineligibility) से संबंधित प्रावधानों को निर्धारित करना था। इसके द्वारा निर्धारित किया गया कि—

- (ख) यदि वह निर्दलीय (independent) रूप से निर्वाचित सदस्य है किंतु वह किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है;
- (ग) यदि वह मनोनीत (nominated) सदस्य है, किंतु सपथ ग्रहण के छह माह के पश्चात् वह किसी राजनीतिक दल की सदस्यता प्राप्त कर लेता है;
- (घ) यदि वह सदन (संसद या राज्य विधानमंडल) में अपने दल के निर्देश के विरुद्ध मतदान करता है या मतदान में भाग नहीं लेता है। किंतु, यदि 15 दिनों के भीतर दल उसे इस संबंध में क्षमा कर देता है तो उसकी सदस्यता बनी रहेगी।
- (ii) यदि किसी राजनीतिक दल के कम से कम एक-तिहाई सदस्य उससे अलग हो जाएँ तो इसे दल का विघटन (split) माना जाएगा और ऐसी स्थिति में इन सदस्यों की सदस्यता समाप्त नहीं होगी।
- (iii) यदि किसी दल के कम से कम दो-तिहाई सदस्यों की सहमति से उसका विलय (merger) किसी अन्य राजनीतिक दल में हो जाए तो ऐसी स्थिति में संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदस्य की सदस्यता समाप्त नहीं होगी।
- (iv) एक प्रावधान यह भी किया गया कि दल-बदल पर उठे किसी भी प्रश्न या विवाद पर अंतिम निर्णय सदन के अध्यक्ष या सभापति का होगा तथा वह निर्णय न्यायिक पुनर्विचार (Judicial review) से परे होगा।

7. 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992: इसके माध्यम से संविधान में भाग 9, अनुच्छेद 243, 243(क)-243(ण) [243(A)-(O)] तथा अनुच्छेद 280(ख ख) [280(BB)] और 11वीं अनुसूची को शामिल किया गया और इनके माध्यम से भारत में पंचायतों से संबंधित प्रावधानों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। संविधान में किए गए पंचायत संबंधी प्रावधान संक्षेप में इस प्रकार हैं—

- (i) त्रिस्तरीय (Three-tier) पंचायती राज व्यवस्था का आरंभ किया गया जिसमें पंचायत के ग्राम, मध्यवर्ती स्तर तथा जिला स्तर शामिल हैं।
- (ii) पंचायतों के अध्यक्षों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई और महिलाओं के लिए भी कम से कम एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया गया। इसके अलावा, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक स्तर पर पंचायतों की सदस्यता तथा पंचायतों के अध्यक्ष पद पर आरक्षण का प्रावधान किया गया।
- (iii) पंचायतों के लिए 5 वर्ष का निश्चित कार्यकाल निर्धारित किया गया तथा विघटन होने की स्थिति में 6 महीने के अंदर पुनः निर्वाचन को आवश्यक किया गया।
- (iv) पंचायतों का वित्तपोषण (Financing) राज्यों की संघित विधि (Consolidated fund) से करने तथा पंचायतों की वित्तीय स्थिति का अवलोकन करने के लिए राज्य स्तर पर एक वित्त आयोग (State Finance Commission) का गठन किये जाने का प्रावधान किया गया।
- (v) संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर उसमें 29 ऐसे विषयों का उल्लेख किया गया जिन पर पंचायतों को विशेष अधिकार दिए जा सकें।
- (vi) राज्य विधानमंडलों को इस बात के लिए प्राधिकृत किया गया कि वे विधि बनाकर पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान कर सकें, जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हों।

8. 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992: इसके माध्यम से 73वाँ संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों के लिए किए गए विशेष संवैधानिक प्रावधानों की ही तरह नगर निकायों (Urban bodies) के स्वायत्त शासन की इकाई को रूप में कार्य करने के लिए कई नए उपबंधों, जैसे- भाग 9-क, अनुच्छेद 243(त) से 243(व छ) [243(P)-(ZG)] तथा 12वीं अनुसूची को संविधान में शामिल किया गया।

इसमें क्षेत्र की जनसंख्या, स्थानीय शासन हेतु राजस्व (Revenue) के साधन, कृषि से भिन्न नियोजन में संलग्न जनसंख्या की प्रतिशतता और क्षेत्र के आर्थिक महत्व आदि आधारों पर नगर निकायों को नगर पंचायत (Nagar Panchayat), नगरपालिका परिषद (Municipal Council) तथा नगर निगम (Municipal Corporation) के रूप में स्थापित किए जाने का उपबंध किया गया। संविधान में बारहवीं अनुसूची जोड़कर उसमें 18 ऐसे विषयों को शामिल किया गया जिनके बारे में नगर निकायों को

- (ख) अनुच्छेद-45 को बदलकर राज्य को-6 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों की देखभाल करने एवं उनकी शिक्षा के लिए प्रयास करने का निर्देश नीति-निदेशक तत्वों में शामिल किया गया। इससे पहले, इस निदेशक तत्व में 14 वर्ष तक के बच्चों के संबंध में यह निर्देश लागू था।
- (ग) अनुच्छेद 51(क)(ट) [51(A)(K)] को संविधान में शामिल किया गया जिसके माध्यम से माता-पिताओं तथा संरक्षकों को 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चों एवं संरक्षितों (Wards) को शिक्षा प्रदान करने का कर्तव्य सौंपा गया।
10. 91वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003: इस संशोधन अधिनियम के द्वारा संविधान में क्रमशः अनुच्छेद 75(1क) तथा 164(1क) को इस आशय से अंतःस्थापित किया गया कि केन्द्रीय तथा राज्य मंत्रिपरिषद में क्रमशः प्रधानमंत्री तथा मुख्यमंत्री सहित कुल मंत्रियों की संख्या लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। इसके अलावा, संविधान में एक और नये अनुच्छेद 361(ख) को अंतःस्थापित किया गया एवं 10वीं अनुसूची में संशोधन किया गया।
- वस्तुतः 10वीं अनुसूची ('52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985' द्वारा अंतःस्थापित) में व्यवस्था थी कि यदि किसी दल के एक-तिहाई सांसद या विधायक अपने दल से अलग होकर किसी अन्य दल में शामिल हो जाते हैं तो इसे 'दलबदल' (Defection) नहीं, विपटन (Split) माना जाएगा तथा ऐसी स्थिति में उक्त सदस्यों की सदस्यता समाप्त नहीं होगी। यह प्रावधान सामूहिक दलबदल को बढ़ावा देता था जो उत्तर प्रदेश तथा कई अन्य राज्यों में बार-बार देखा गया था। चुनाव सुधारों के लिए बनी दिनेश गोस्वामी समिति के अलावा, संविधान समीक्षा आयोग (NCRWC- National Commission to Review the Working of Constitution) तथा विधि आयोग (Law commission) ने अपनी रिपोर्ट में इस उपबन्ध को हटाने की वकालत की थी। '91वें संविधान संशोधन' द्वारा इस उपबन्ध को हटा दिया गया है। अब कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा किसी अन्य दल में किया गया विलय (merger) ही कानूनी तौर पर मान्य है। इससे कम सदस्य दल छोड़ने का फैसला करते हैं तो वे सदन के सदस्य नहीं रहते हैं और उन्हें जनता से पुनः निर्वाचित होना पड़ता है। उनके मंत्री बनने या लाभ का कोई अन्य पद (Remunerative post) धारण करने पर भी कानूनी रोक है।

अन्य महत्वपूर्ण संशोधन (Other important Amendments)

- 7वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 :- यह संशोधन व्यापक महत्व का था। भाषायी राज्यों की मांग का समाधान करने के लिए 'राज्य पुनर्गठन आयोग' (States reorganisation commission) की रिपोर्ट को लागू करने के लिए यह पारित किया गया था। इसके माध्यम से निम्नलिखित परिवर्तन किये गये-
 - (क), (ख), (ग) एवं (घ) श्रेणियों के रूप में पहले से चले आ रहे राज्यों के वर्गीकरण को समाप्त कर दिया गया तथा पूरे भारत को 14 राज्यों एवं 6 संघ राज्य-क्षेत्रों (Union territories) में विभाजित कर दिया गया।
 - पुनर्गठित राज्यों तथा संघ राज्य-क्षेत्रों के नामों और सीमाओं का उल्लेख करते हुए पहले की 'प्रथम अनुसूची' के स्थान पर एक नई अनुसूची को अंतःस्थापित किया गया।
 - संविधान के अनुच्छेद 1 तथा चौथी अनुसूची को भी संशोधित किया गया।
- 16वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1963:- इस अधिनियम के द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन किये गए-
 - अनुच्छेद 19 में दिए गए स्वतंत्रता संबंधी छः अधिकारों में से पहले तीन- 'भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता', 'शांतिपूर्ण सम्मेलन करने के अधिकार' तथा 'संगठन या संघ बनाने के अधिकार' पर 'भारत की प्रभुता और अखण्डता' के हित में युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable restriction) आरोपित करने की शक्ति राज्य को दी गई। वह संशोधन राष्ट्रीय एकता परिषद (National Unity Council) की सलाह पर किया गया।
 - तीसरी अनुसूची में संसद सदस्यों, संसदीय चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों, राज्य विधानमंडलों के उम्मीदवारों और सदस्यों, मंत्रिपरिषदों के सदस्यों, सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा ली जाने वाली शपथों (Oaths) तथा प्रतिज्ञाओं (affirmations) में संशोधन करके यह जोड़ा गया कि वे 'भारत की प्रभुता और अखण्डता' की रक्षा के लिए वचनबद्ध होंगे।

निम्नांकित परिवर्तन किये गए-

- (i) देशी नरेशों को पूर्व में राष्ट्रपति द्वारा दिए गए 'प्रिवी पर्सों' (अर्थात् निजी थैलियों) तथा 'विशेषाधिकारों' से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 291 और 362 का विलोपन (omission) कर दिया गया।
 - (ii) राष्ट्रपति द्वारा देशी नरेशों एवं उनके उत्तराधिकारियों को पूर्व में दी गई मान्यताएँ समाप्त करने के आशय से अनुच्छेद 363(क) संविधान में जोड़ा गया।
5. 38वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1975: इस संशोधन का उद्देश्य कुछ मामलों में न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति को समाप्त करना था। इसके माध्यम से निम्नलिखित प्रावधान किए गए-
- (i) अनुच्छेद 123 के अंतर्गत संसद के सत्र में न होने की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश के लिए 'राष्ट्रपति का समाधान' अंतिम होगा, उसका न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं होगा। न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा कि अध्यादेश जारी करने के लिए पर्याप्त परिस्थितियाँ थीं या नहीं?
 - (ii) राष्ट्रपति को विभिन्न आधारों पर भिन्न-भिन्न आपात् उद्घोषणाएँ जारी करने तथा पहले से प्रवर्तित किसी आपात् उद्घोषणा के बावजूद किसी नए आधार पर अन्य आपात् उद्घोषणा जारी करने की शक्ति होगी। इस आशय से अनुच्छेद 352 को संशोधित किया गया। आपात् उद्घोषणा यदि अध्यादेश के माध्यम से होती है तो न्यायालय को इस बात की न्यायिक समीक्षा का अधिकार नहीं होगा कि अध्यादेश क्यों जारी किया गया है?
 - (iii) अनुच्छेद 359 में भी इस आशय से संशोधन किया गया कि आपात्काल के दौरान अनुच्छेद 359 के तहत राष्ट्रपति द्वारा जारी किये गये आदेश के लागू होने के दौरान राज्य की कोई भी विधि बनाने या कार्यपालिका कार्यवाही करने की शक्ति संविधान के भाग-3 (मूल अधिकारों से संबंधित उपबन्ध) के प्रावधानों द्वारा निर्बंधित नहीं होगी।
 - (iv) यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाए कि किसी राज्य में अनुच्छेद 356 लागू करने के लिए पर्याप्त स्थितियाँ पैदा हो गई हैं तो वह अनुच्छेद 356 का प्रयोग कर सकेगा तथा ऐसी उद्घोषणा की किसी भी न्यायालय में जाँच नहीं की जा सकेगी।
6. 39वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1975: यह संशोधन इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा श्रीमती इंदिरा गांधी के 1971 के लोकसभा चुनाव को अनुचित साधन अपनाने के आरोप में खारिज कर दिए जाने की प्रतिक्रिया में किया गया था। इस संशोधन द्वारा निम्नांकित परिवर्तन किए गए-
- (i) संसद को राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में विधि बनाने की शक्ति देकर यह सुनिश्चित किया गया कि संसद द्वारा इस संबंध में बनाई गई विधि और विधि के तहत किसी प्राधिकारी अथवा निकाय द्वारा लिए गए निर्णय को न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकेगा और न ही इनके संबंध में न्यायपालिका को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति होगी।
 - (ii) संविधान में शामिल किये गये नए अनुच्छेद 329(क) द्वारा प्रधानमंत्री एवं लोकसभा अध्यक्ष के संसद सदस्य के रूप में निर्वाचन के लिए बनाई गई विधि को भी न तो न्यायालय में प्रश्नगत किया जाएगा और न ही उसका न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) किया जा सकेगा।
 - (iii) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अथवा दोनों के निर्वाचनों को शून्य (Void) या अवैध (Illegal) घोषित किए जाने के बाद भी उनके द्वारा अपने पदों पर रहते हुए किये गये कार्य अमान्य नहीं होंगे।
 - (iv) कुछ निर्वाचन कानूनों जैसे 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (Representation of people act, 1951) जिसे 1974 व 1975 में संशोधित किया गया था; 'तस्करी विरोधी कानून' [कोफेपोसा (COFEPOSA)], 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम' (Internal Security Act) तथा सामाजिक और आर्थिक मामलों पर केन्द्र तथा राज्य के अन्य कानूनों की 38 नई प्रविष्टियों को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल किया गया जिससे नवीं अनुसूची में कानूनों की संख्या बढ़कर 124 हो गई।
7. 43वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1977: यह अधिनियम जनता पार्टी की सरकार द्वारा पारित किया गया। जनता पार्टी ने मार्च, 1979 में हुए लोकसभा चुनावों के प्रचार के दौरान जनता से वायदा किया था कि वह अपनी सरकार बनने की दशा में '42वें संविधान संशोधन अधिनियम' द्वारा लागू किए गए गैर-लोकतांत्रिक प्रावधानों को संविधान से हटाएगी। चुनाव के बाद लोकसभा में तो जनता पार्टी को पर्याप्त बहुमत मिल गया था किंतु राज्यसभा में उसके सिर्फ 41 सदस्य थे। ऐसे में, उसके लिए कुछ अन्य दलों का समर्थन लेना ज़रूरी हो गया था। 43वाँ संशोधन इसलिए संक्षिप्त था क्योंकि कुछ ही मुद्दों पर शेष दलों से आसानी से सहमति बन पा रही थी। इस संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 31(घ), जो संसद को राष्ट्र विरोधी गतिविधियों तथा सम्मेलनों को वर्जित करने के लिए विधि बनाने की शक्ति देता था, को समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही, '42वें

8. 61वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1988: इसके द्वारा साधारण चुनावों में मतदान के लिए निर्धारित न्यूनतम आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया।
9. 71वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992: इसके द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची को संशोधित करके उसमें तीन नई भाषाओं कोकणी, मणिपुरी और नेपाली को शामिल कर लिया गया। इस तरह आठवीं अनुसूची में अनुसूचित भाषाओं की संख्या बढ़कर 18 हो गई।
10. 76वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1994: इसके माध्यम से संविधान की नवीं अनुसूची में एक नई प्रविष्टि 257(क) [257(A)] को शामिल किया गया, जिसका संबंध तमिलनाडु राज्य में पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षण संस्थानों एवं राज्य की नौकरियों में 69 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करने से था।
11. 77वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1995: यह संशोधन 'इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ' (1993) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रभाव को हटाने के लिए किया गया था। 'इंद्रा साहनी' मामले (जो 'मंडल के मामले' के नाम से प्रसिद्ध है), में निर्धारित किया गया था कि आरक्षण सिर्फ आरंभिक नियुक्ति (initial appointment) में दिया जा सकता है, पदोन्नति (promotion) में नहीं। इस संशोधन द्वारा राज्य के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को पदोन्नति (promotion) में आरक्षण देने का प्रावधान किया गया और इस आशय से संविधान में एक नया अनुच्छेद 16(4क) जोड़ा गया।
12. 81वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2000: इस संशोधन अधिनियम के तहत संविधान के अनुच्छेद 16 में एक नया उपखण्ड (4ख) जोड़कर यह प्रावधान किया गया कि राज्य द्वारा आमंत्रित आरक्षित रिक्तियों के किसी वर्ष न भरे जाने की स्थिति में ऐसी रिक्तियों को अलग श्रेणी में रखकर आगामी वर्ष में भरे जा सकते हैं। आगामी वर्ष में इन रिक्तियों को उस वर्ष के लिए आरक्षित रिक्तियों को 50 प्रतिशत की सीमा में शामिल नहीं माना जाएगा। यह संशोधन भी 'इंद्रा साहनी' मामले के प्रभाव को समाप्त करने के लिए किया गया था।
13. 82वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2000: इस संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 335 में एक प्रत्युक्त (proviso) जोड़कर यह निर्धारित किया गया कि संघ एवं राज्यों की सेवाओं में अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों के लिए आरक्षित रिक्तियों को पदोन्नति के माध्यम से भरते समय अर्हता अंकों एवं मूल्यांकन के मानकों में कमी की जा सकती है।
14. 84वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2001: इस संशोधन के द्वारा लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के लिए 1971 एवं 2000 की जनगणना के स्थान पर सन् 2026 की जनगणना को आधार बनाए जाने की व्यवस्था की गई। साथ ही, प्रत्येक राज्य के लिए निर्धारित सीटों की संख्या में परिवर्तन करते हुए राज्यों के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों के पुनः परिसीमन के लिए 1991 की जनगणना को आधार बनाकर प्रक्रिया आरंभ करने की व्यवस्था की गई। ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि राज्यों के भीतर विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या में अनियमित वृद्धि हुई थी जिसके कारण समान प्रतिनिधित्व का आदर्श लागू नहीं हो पा रहा था।
15. 85वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2002: इसके तहत संविधान के अनुच्छेद 16(4क) में संशोधन किया गया जिसे '77वाँ संविधान संशोधन, 1995' के माध्यम से जोड़कर अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए सरकारी नौकरियों में पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गई थी। अब इसमें यह प्रावधान जोड़ा गया कि पदोन्नति में लागू होने वाला यह आरक्षण 'पारिणामिक वरिष्ठता' (Consequential Seniority) के साथ लागू होगा। इस संशोधन का भूतलक्षी प्रभाव से 17 जून, 1995 से लागू किया गया क्योंकि इसी तिथि से अनुच्छेद 16(4 क) जोड़ा गया था। यह संशोधन करने का उद्देश्य 'भारत संघ बनाम वीरपाल सिंह चौहान' (1995) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का प्रभाव समाप्त करना था।
16. 87वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003: इस संशोधन के माध्यम से 84वें संशोधन के प्रावधानों को बदलते हुए निर्धारित किया गया कि सभी राज्यों के निर्वाचन क्षेत्रों की कुल संख्या न बदलते हुए उनके आंतरिक परिसीमन हेतु 1991 की जनगणना के स्थान पर 2001 की जनगणना को आधार बनाया जाएगा। साथ ही, अनुच्छेद 330 में संशोधन करके यह उपबंध किया गया कि राज्य के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का निर्धारण अब 1991 की बजाय 2001 की जनगणना के आधार पर किया जाएगा।
17. 88वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003: इसके माध्यम से संविधान में एक नया अनुच्छेद 268(क) जोड़कर सातवीं अनुसूची में संघ सूची (Union list) के अंतर्गत 'सेवा कर' (Service tax) को औपचारिक रूप से शामिल किया गया। इससे पहले भी सेवा कर केंद्र सरकार के हाथ में ही था क्योंकि तीनों सूचियों में उसका नाम नहीं था और संघ सूची की प्रविष्टि 97 केंद्र सरकार को अधिकार देती थी कि तीनों सूचियों में जिन विषयों या करों की चर्चा नहीं की गई है उनसे संबंधित

को शामिल किया गया।

18. 89वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003: इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 338(क) अंतःस्थापित करके 'अनुसूचित जातियों (Scheduled castes) के लिए राष्ट्रीय आयोग' (अनुच्छेद 338) की तरह 'अनुसूचित जनजातियों (Scheduled tribes) के लिए एक राष्ट्रीय आयोग' गठित करने का प्रावधान किया गया।
19. 92वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003: इसके माध्यम से संविधान की आठवीं अनुसूची में 4 और भाषाओं—बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली को सम्मिलित किया गया और इस प्रकार आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं की कुल संख्या बढ़कर 22 हो गई।
20. 93वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2005: इसके तहत अनुच्छेद 15 में एक नया खण्ड 15(5) जोड़कर यह उपबंध किया गया है कि राज्य सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों को उन्नति के लिए शैक्षिक संस्थाओं (जिनमें निजी संस्थाएँ भी सम्मिलित हैं) में प्रवेश के लिए विशेष उपबंध कर सकता है, चाहे ऐसी संस्थाएँ सरकार द्वारा सहायता प्राप्त हों या न हों; लेकिन इसमें अल्पसंख्यक वर्गों की संस्थाएँ शामिल नहीं होंगी।

वस्तुतः यह संशोधन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2005 में 'पी.ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य' मामले में दिए गए निर्णय पर आधारित था। इस मामले में न्यायालय ने स्पष्ट किया था जो शिक्षण संस्थाएँ राज्य से सहायता नहीं लेती; उन पर राज्य अपनी आरक्षण संबंधी नीतियाँ नहीं थोप सकता है। यों तो यह निर्णय अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक सभी शिक्षण संस्थाओं के संदर्भ में था; किंतु सरकार ने अल्पसंख्यक संस्थाओं पर न्यायालय की राय को खारिज करने के उद्देश्य से यह संशोधन अधिनियम पारित किया।

21. 97वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2011: इस संशोधन द्वारा संविधान में निम्नलिखित परिवर्तन किए गए हैं—

- (i) संविधान में एक नया भाग 9 (ख) (9B) जोड़ा गया है जिसका नाम 'सहकारी समितियाँ' (Co-operative societies) है। इसके अंतर्गत संविधान के अनुच्छेद 243(य.ज.) (243 ZH) से 243(य.न.) (243 ZT) तक जोड़े गए हैं जिनमें सहकारी समितियों के गठन (formation), विनियमन (regulation), विघटन (dissolution) आदि से संबंधित उपबंध दिए गए हैं।
- (ii) नीति निर्देशक तत्वों (भाग 4) के अंतर्गत अनुच्छेद 43(ख) अंतःस्थापित किया गया है जो राज्य को सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन (Voluntary formation), स्वायत्त प्रचालन (Autonomous functioning), लोकतांत्रिक नियंत्रण (Democratic control) तथा पेशेवर प्रबंधन (Professional management) को प्रोत्साहित करने का प्रयास करने का निर्देश देता है।
- (iii) अनुच्छेद 19(1)(ग) में 'संघ' बनाने की स्वतंत्रता के साथ 'सहकारी समिति बनाने का अधिकार' शब्दों को शामिल किया गया है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for Practice)

1. भारतीय संविधान में साधारण बहुमत से किए जाने वाले संशोधन के संदर्भ में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) यह संशोधन अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत नहीं किया जाता है।
- (ii) इस संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के आधे से अधिक की सहमति ही पर्याप्त है।
- (iii) संसद में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व से संबंधित विषय संशोधन की इसी श्रेणी में आते हैं।
- (iv) संघ राज्यक्षेत्रों के लिए भविष्यपरिषद का सृजन उक्त संविधान संशोधन के अन्तर्गत ही सम्मिलित है।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (i), (ii) और (iv)
(3) (ii), (iii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

2. निम्नलिखित उपबन्धों में ऐसे कौन-कौन से उपबन्ध हैं जिन्हें संशोधित करने के लिए संसद के विशेष बहुमत के अलावा कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों के अनुसमर्थन (Ratification) की आवश्यकता होती है?

- (i) सातवीं अनुसूची की किसी सूची से संबंधित विषय।
- (ii) संघ और राज्यों के मध्य विधायी शक्ति के वितरण से जुड़े उपबन्ध।
- (iii) संसद द्वारा संसदीय विशेषाधिकारों को परिभाषित करना।
- (iv) संघ और राज्यों की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार से जुड़े उपबन्ध।
- (v) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों तथा कुछ अन्य संवैधानिक पदों से संबंधित वेतन और भत्ते संशोधित करना।

कूट—

- (1) (i), (ii), (iii) और (v)
(2) (i), (ii) और (iv)
(3) (ii), (iii) और (iv)
(4) (i), (ii), (iii), (iv) और (v)

3. एक संविधान संशोधन विधेयक को संसद के दोनों सदनों से विशेष बहुमत (Special Majority) द्वारा पारित किया गया। यहाँ विशेष बहुमत से आशय है—

- (1) सदन की कुल संख्या के दो-तिहाई बहुमत के साथ-साथ उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों का बहुमत।

- (3) दोनों सदनों में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत।

- (4) सदन की कुल संख्या के बहुमत के साथ-साथ उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत।

4. भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया के संबंध में सुमेलित तथ्य कौन-कौन से हैं?

- (i) संविधान संशोधन विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति को पूर्व-अनुमति आवश्यक है।
- (ii) यदि राष्ट्रपति चाहे तो संविधान संशोधन विधेयक पर संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है।
- (iii) संशोधन का प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों में से किसी भी में प्रारंभ किया जा सकता है।
- (iv) यदि राष्ट्रपति की पूर्व-अनुमति से ही संशोधन विधेयक को सदन में प्रस्तुत किया जाता है, अतः राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक को अनुमति देने के लिए बाध्य है।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iv) (2) (ii), (iii) और (iv)
(3) केवल (iii) (4) (i) और (iv)

5. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिए।

सूची-I

(तथ्य)

सूची-II

(संबद्ध वाद)

A. यदि अनुच्छेद 368 का प्रयोग करते हुए संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया जाता है तो वह अनुच्छेद 13(2) के अधीन विधि नहीं माना जाएगा।	(i) गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य
B. अनुच्छेद 368 के तहत संसद को यह शक्ति नहीं है कि वह मूल अधिकारों को छीन सके या न्यून कर सके।	(ii) शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ
C. संसद संविधान का संशोधन करके संविधान के आधारभूत ढाँचे (Basic Structure) का	(iii) भिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ

- D. 'संविधान संशोधन की सीमित शक्ति' संविधान के आधारभूत ढाँचे का हिस्सा है।

कूट—

	A	B	C	D
1.	(i)	(ii)	(iv)	(iii)
2.	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
3.	(ii)	(i)	(iv)	(iii)
4.	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
6. निम्नलिखित में से किस मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि केशवानंद भारती मामले में निर्णय की तिथि (24 अप्रैल, 1973) के बाद नवीं अनुसूची में डाले गये अधिनियम की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है?
- (1) मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ
(2) वामन राव बनाम भारत संघ
(3) कोइल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य
(4) एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ
7. वर्तमान में संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति के संबंध में सुमेलित कथन हैं—
- (i) संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी उपबंध में संशोधन कर सकती है।
(ii) संविधान संशोधन विधि की वैधता का परीक्षण अनुच्छेद 13(2) के संदर्भ में किया जा सकता है।
(iii) संसद संविधान संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 368 में दी गई संशोधन करने की अपनी शक्ति को बढ़ा नहीं सकती है।
(iv) आधारभूत ढाँचे के उल्लंघन के आधार पर न्यायालय उन्हें संशोधनों को खारिज कर सकता है जो 24 अप्रैल, 1973 के बाद पारित किए गए हैं।

कूट—

(1) (ii), (iii) और (iv)	(2) (i), (ii) और (iv)
(3) (i), (iii) और (iv)	(4) (i), (ii), (iii) और (iv)
8. निम्नलिखित में किन-किन तत्वों को संविधान के आधारभूत ढाँचे में शामिल किया गया है?
- (i) राजव्यवस्था का गणतंत्रात्मक ढाँचा।
(ii) संसदीय प्रणाली की सरकार।
(iii) मूल अधिकारों तथा नीति-निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन।
(iv) स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव पर आधारित लोकतंत्र प्रणाली।

9. नीचे दिए गए कथनों में कौन-से कथन भारतीय संविधान के संदर्भ में गलत हैं?

- (i) आधे से अधिक राज्यों को संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तावित करने का अधिकार दिया गया है।
(ii) भारत में कुछ मामलों में संविधान संशोधन के लिए जनमत-संग्रह (Referendum) की व्यवस्था की गयी है।
(iii) आपातकाल में संविधान संशोधन विधेयक को सदन में प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति को पूर्व-अनुमति आवश्यक है।

कूट—

(1) (i) और (ii)	(2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii)	(4) (i), (ii) और (iii)

10. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिए।

सूची-I

सूची-II

(प्रमुख संविधान संशोधन अधिनियम) (संबंधित तथ्य)

A. 24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971

(i) संसद द्वारा अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित कोई भी विधि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द में सम्मिलित नहीं मानी जाएगी।

B. 25वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971

(ii) 'लघु संविधान' की संज्ञा।

C. 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1976

(iii) यदि राज्य 39(ख) और 39(ग) में वर्णित नीति निदेशक तत्वों को साकार करने के लिए कोई कानून बनाता है तो ऐसे कानून को इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकेगा कि वह मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करता है।

D. 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978

(iv) मूल अधिकार के रूप में वर्णित 'संपत्ति के अधिकार' को मूल अधिकारों की श्रेणी से निकाल दिया गया।

कूट—

11. 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के संबंध में सुप्रेत कथन हैं—

- (i) इसके माध्यम से उद्येशिका में तीन शब्द 'समाजवादी', 'पंथनरपेक्ष' तथा 'अखंडता' जोड़े गए।
- (ii) 10 मौलिक कर्तव्यों को शामिल किया गया।
- (iii) लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं की समयावधि को बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया।
- (iv) शिक्षा को केन्द्र सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया गया।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

12. निम्नलिखित में किस संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से आपात् को जारी रखने के लिए संसद के दोनों सदनों द्वारा हर 6 महीने बाद इसका अनुमोदन करना अनिवार्य कर दिया गया?

- (1) 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम
- (2) 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम
- (3) 52वाँ संविधान संशोधन अधिनियम
- (4) 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम

13. 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से भारत में पंचायतों से संबंधित प्रावधानों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इन पंचायत संबंधी प्रावधानों में सम्मिलित हैं—

- (i) त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का आरंभ।
- (ii) पंचायतों के अध्यक्षों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था।

(iii) संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर उसमें 29 विषयों का उल्लेख।

(iv) महिलाओं के लिए एक-चौथाई आरक्षण का प्रावधान।

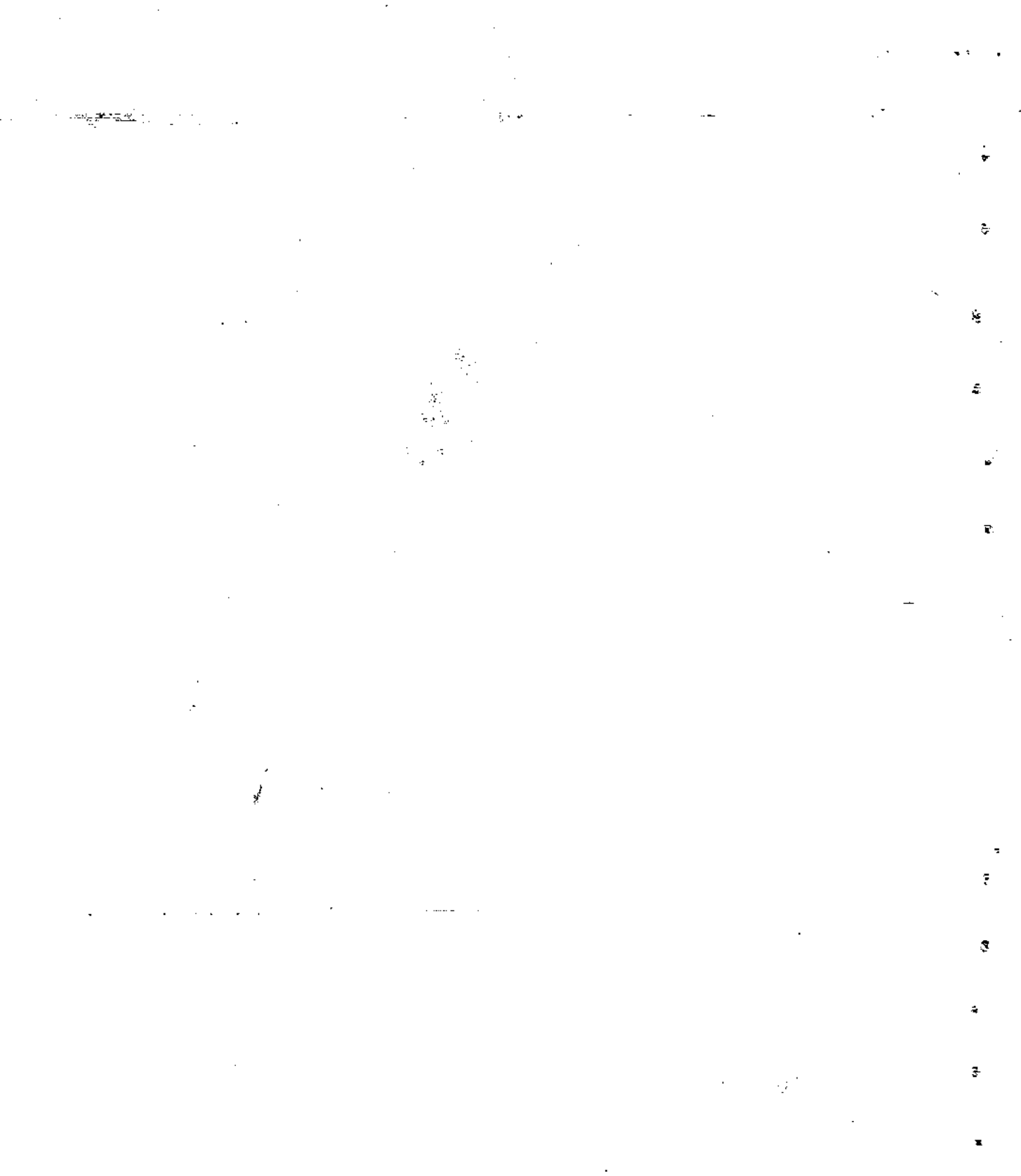
- (1) (i), (iii) और (iv) (2) (i) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iii) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

14. निम्नलिखित में किस संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से 'निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा' को एक मूल अधिकार बना दिया गया?

- (1) 73वाँ (2) 91वाँ
- (3) 86वाँ (4) 93वाँ

15. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) 91वाँ संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा यह प्रावधान किया गया कि केन्द्रीय तथा राज्य मंत्रिपरिषद में क्रमशः प्रधानमंत्री तथा मुख्यमंत्री सहित कुल मंत्रियों की संख्या लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।
- (2) 92वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से संविधान की आठवीं अनुसूची में सिंधी, डोगरी, मैथिली और संथाली भाषाओं को सम्मिलित किया गया।
- (3) 88वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से सातवीं अनुसूची में संघ सूची के अंतर्गत 'सेवा कर' को औपचारिक रूप से शामिल किया गया।
- (4) 77वाँ संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा राज्य के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को पदोन्नति (Promotion) में आरक्षण देने का प्रावधान किया गया।



भारत का राष्ट्रपति (The President of India)

संविधान के अनुच्छेद 52 से 73 तक के समूह को 'राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति' शीर्षक दिया गया है, जिनमें अनुच्छेद 63 से 69 तक का हिस्सा उपराष्ट्रपति के संबंध में है जबकि शेष सारा राष्ट्रपति के संबंध में। इसके अलावा, अनुच्छेद 74, 77, 78, 123, 361 आदि में भी राष्ट्रपति से जुड़े कुछ उपबंध हैं।

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति (Constitutional status of the president)

राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति संविधान के अनुच्छेद 53, 74 तथा 75 से स्पष्ट होती है। अनुच्छेद 53 संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित करता है जबकि अनुच्छेद 74 तथा 75 में राष्ट्रपति का मंत्रिपरिषद् से संबंध बताया गया है। इन अनुच्छेदों का मूल पाठ इस प्रकार है—

अनुच्छेद 53(1) - "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।"

अनुच्छेद 74(1) - "राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।"
(मूल संविधान के अनुसार)

अनुच्छेद 74(2) - "इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी?"

अनुच्छेद 75(1) - "प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।"

अनुच्छेद 75(2) - "मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यंत अपने पद धारण करेंगे।"

अनुच्छेद 75(3) - "मंत्रिपरिषद्, लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।"

यदि मूल संविधान के इन उपबंधों पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि संविधान की भाषा राष्ट्रपति के वास्तविक शासक होने का संदेह पैदा करती है। अनुच्छेद 53 की शब्दावली तो ऐसी है ही, अनुच्छेद 74 भी इसकी संभावना पैदा करता है क्योंकि इसमें कहाँ भी नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति की मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करना होगा। 'सलाह' शब्द से कोई सरलता से यह भाव निकाल सकता है कि इसे मानने को कोई बाध्यता नहीं है। पुनः, अनुच्छेद 74(2) में कहा गया है कि न्यायालय इस बात की जाँच नहीं कर सकता कि मंत्रिपरिषद् ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी या नहीं, और यदि दी तो क्या दी? इससे यह खतरा और बढ़ जाता है कि यदि राष्ट्रपति मनमानी करना चाहे तो न्यायालय भी उससे यह प्रश्न नहीं पूछ सकता कि उसने कोई कदम किन आधारों पर उठाया है?

वस्तुतः भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस प्रश्न पर काफी विचार-विमर्श किया था। संविधान सभा के कई सदस्यों, जिनमें सभा के अध्यक्ष श्री राजेंद्र प्रसाद भी शामिल थे, का आग्रह था कि संविधान में यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा। संविधान के प्रारूप में इस उद्देश्य से एक अनुसूची भी जोड़ी गई थी जिसमें राष्ट्रपति को कुछ निर्देश दिए गए थे और उनमें से एक यह था कि वह मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा। किंतु, बाद में यह अनुसूची हटा दी गई क्योंकि सभा के सदस्यों को यह विचार ज्यादा प्रभावशाली लगा कि कुछ ऐसी जटिल स्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें राष्ट्रपति द्वारा संविधान की रक्षा करने के लिए स्व-विवेक से कार्य करना ज़रूरी हो जाए। संविधान निर्माताओं को विश्वास था कि जिस प्रकार ब्रिटेन में राजा तथा मंत्रिपरिषद् के मध्य स्वस्थ संबंधों की संवैधानिक परंपरा (Constitutional convention) विकसित हुई है, वैसे

में दिए गए भाषण में कहा— “संविधान का कोई उपबंध स्पष्ट शब्दों में यह घोषित नहीं करता कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है।”

न्यायालय के समक्ष भी कुछ ऐसे मामले आए जिनमें मूल समस्या यही थी कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है या नहीं? ऐसे मामलों में सामान्यतः न्यायालय का मत यही रहा है कि राष्ट्रपति नाममात्र का प्रधान है और वह मंत्रिपरिषद् की सलाह के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। सबसे पहले, सर्वोच्च न्यायालय ने 1955 में ‘राय साहब राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य’ के मामले में स्पष्ट किया था कि राष्ट्रपति का मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करना संविधान-सम्मत है। इसके बाद, ‘यू.एन.आर. राव बनाम इंदिरा गांधी’ (1971) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यदि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह के बिना या उसके विपरीत कार्य करता है तो यह अनुच्छेद 53(1) का उल्लंघन होने के कारण असंवैधानिक होगा।

‘शमशेर सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब’ (1974) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण पुनः प्रस्तुत किया।

स्पष्ट है कि इन तीनों निर्णयों ने राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति स्पष्ट कर दी थी। फिर भी श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार इस बात को पूर्णतः स्पष्ट तथा अविवाद (undebatable) बना देना चाहती थी ताकि किसी भी स्थिति में संदेह का लाभ उठाकर राष्ट्रपति कोई संवैधानिक गतिरोध पैदा न कर सके। इसलिए ‘42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976’ के माध्यम से उनकी सरकार ने अनुच्छेद 74(1) को संशोधित कर दिया। संशोधन के बाद अनुच्छेद 74(1) की भाषा से ही स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है। यथासंशोधित अनुच्छेद 74(1) का मूल पाठ इस प्रकार है—

“राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।”

ध्यातव्य है कि जनता पार्टी ने 1977 के लोकसभा चुनावों के दौरान चुनावी घोषणाओं में वायदा किया था कि सत्ता में आने पर वह ‘42वें संविधान संशोधन अधिनियम’ द्वारा जोड़े गए अनुचित उपबंधों को हटा देगी। अनुच्छेद 74(1) को लेकर वह दुविधा में थी। जनता सरकार सामान्यतः इस बात से सहमत थी कि राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करना चाहिए; किंतु उसे लगता था कि यदि मंत्रिपरिषद् की राय गलत हो तो राष्ट्रपति को कम से कम इतना अधिकार जरूर होना चाहिए कि वह मंत्रिपरिषद् से उस पर पुनर्विचार करने के लिए कह सके। इस उद्देश्य से ‘44वें संविधान संशोधन अधिनियम’ के द्वारा अनुच्छेद 74(1) में एक परंतुक (Proviso) जोड़ा गया जिसका मूल पाठ इस प्रकार है—

“परंतु राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से ऐसी सलाह पर साधारणतया या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के परिणाम पर सलाह के अनुसार कार्य करेगा।”

इसका अर्थ है कि यदि राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की कोई सलाह उचित न लगे तो उसे हक है कि वह मंत्रिपरिषद् से उस सलाह पर पुनर्विचार के लिए कहें; किंतु यदि पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषद् उस सलाह को (उसके सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करते हुए) पुनः भेजे तो राष्ट्रपति को वह सलाह माननी ही होगी। वर्तमान में संविधान में अनुच्छेद 74(1) की भाषा यही है।

क्या राष्ट्रपति ‘रबड़ की मुहर’ है? (Is the President a rubber stamp?)

यह सही है कि संवैधानिक उपबंधों के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है, किंतु इतने भर से यह निष्कर्ष निकाल लेना गलत होगा कि राष्ट्रपति सिर्फ एक ‘रबड़ की मुहर’ (Rubber stamp) है। वस्तुतः कई ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें राष्ट्रपति को अपने विवेक से ही निर्णय करना होता है। ऐसी कुछ स्थितियाँ निम्नलिखित हैं—

- (क) यदि लोकसभा के चुनाव परिणामों में किसी एक दल या चुनाव-पूर्व गठबंधन (Pre-poll alliance) को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो राष्ट्रपति को अपने विवेक से ही यह निश्चय करना होता है कि स्थिर व स्वच्छ सरकार देने की दृष्टि से किसका दावा सबसे मजबूत है?
- (ख) कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि कार्यकाल के दौरान प्रधानमंत्री की आकस्मिक मृत्यु हो जाए। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति विभिन्न विकल्पों पर विचार करते हुए स्वयं ही ऐसे व्यक्ति को सरकार बनाने का न्यौता देता है जो उसकी राय में लोकसभा का विश्वास प्राप्त करने में सक्षम हो।

- (ड) यदि लोकसभा का विघटन हो गया हो तथा नई लोकसभा का गठन न हुआ हो तो पुनर्नी मंत्रिपरिषद् ही नई मंत्रिपरिषद् के गठन तक राष्ट्रपति को सलाह देती है। इस समय राष्ट्रपति को विशेष ध्यान रखना होता है कि वह किसी ऐसी सिफारिश को स्वीकार न करे जो चुनाव में उस दल को लाभ पहुँचाती हो या कोई बड़ा नीतिगत निर्णय (Major policy decision) करने के संबंध में हो।
- (च) अनुच्छेद 78 में भी कुछ ऐसी स्थितियाँ बताई गई हैं जो राष्ट्रपति को कुछ स्वतंत्रता प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 78(ख) के अंतर्गत राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री से प्रशासन तथा किसी विधान से संबंधित जानकारी मांग सकता है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 78(ग) के तहत राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह प्रधानमंत्री को कोई विषय मंत्रिपरिषद् के समक्ष रखने का निर्देश दे, जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया है किंतु मंत्रिपरिषद् ने उस पर विचार नहीं किया है। स्पष्ट है कि भारत का राष्ट्रपति उतना कमजोर नहीं है जितना कुछ आलोचक बताते हैं।

राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the President)

संविधान के अनुच्छेद 54 तथा 55 में राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित उपबंध दिए गए हैं। अनुच्छेद 54 में इस बात का निर्देश है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में मत देने का अधिकार किसे होगा, जबकि अनुच्छेद 55 में बताया गया है कि निर्वाचन की प्रक्रिया क्या होगी?

निर्वाचकगण (Electoral College):

अनुच्छेद 54 में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-गण या निर्वाचक-मंडल (Electoral college) के माध्यम से होगा। इस निर्वाचक-गण में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल होंगे—

- (क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य। (इसमें निहित है कि लोकसभा या राज्यसभा में राष्ट्रपति द्वारा नामांकित (nominated) सदस्य इस निर्वाचक-गण का हिस्सा नहीं हैं)।
- (ख) राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य। (ध्यान दें कि राज्यों से सिर्फ विधान-सभाओं (Legislative assemblies) के सदस्यों को निर्वाचक-गण में शामिल किया गया है, विधान परिषदों (Legislative councils) के सदस्यों को नहीं।

अनुच्छेद 54 में संविधान के '70वें संशोधन अधिनियम, 1992' के द्वारा एक स्पष्टीकरण अंतःस्थापित किया गया था। इस स्पष्टीकरण के अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में राज्यों की सूची में 'दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र' (National Capital Territory Delhi) और 'पांडिचेरी' (अब 'पुदुच्चेरी') संघ-राज्यक्षेत्र भी शामिल होंगे।

अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect election):

निर्वाचक-गण (Electoral college) के प्रावधान से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष तरीके से होता है, जनता स्वयं चुनाव द्वारा राष्ट्रपति को नहीं चुनती। संविधान सभा में इस प्रश्न पर काफी बहस भी हुई थी। अंत में, अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect election) को कुछ ठोस आधारों पर चुन लिया गया था, जैसे—

- (क) भारत की बड़ी जनसंख्या तथा वृहत् आकार को देखते हुए प्रत्यक्ष निर्वाचन (direct election) की व्यवस्था करना न सिर्फ मंहगा होता बल्कि समय की दृष्टि से भी अनुपयोगी होता।
- (ख) यदि निर्वाचन कर भी लिया जाता तो समस्याएँ कम न होतीं। पूरे देश द्वारा चुना गया राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की अधीनता कभी स्वीकार न करता और शक्ति-संघर्ष होने लगता।

चूँकि हमारी संविधान सभा ने ब्रिटिश मॉडल का अनुसरण किया था, इसलिए हमें ऐसा राष्ट्रपति चाहिए था जो नाममात्र का प्रधान हो। इसलिए, अप्रत्यक्ष निर्वाचन को ही उचित समझा गया।

निर्वाचन की प्रक्रिया (Election procedure):

वास्तविक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित नहीं हो पाता है।

- राष्ट्रपति के चुनाव में 'एकल संक्रमणीय मत' (Single transferable vote) द्वारा 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' (Proportional representation) की पद्धति लागू की गई है जो मूलतः यही सुनिश्चित करने के लिए है कि निर्वाचित उम्मीदवार आनुपातिक दृष्टि से सर्वाधिक लोगों की पसंद हो। इस पद्धति में सबसे पहले एक कोटा (Quota) तय कर लिया जाता है जो भारत के राष्ट्रपति के मामले में 50% से अधिक मतों का है। यह कोटा चुनाव में वास्तविक रूप से कितने मतों के बराबर होगा, यह निर्धारित करने के लिए एक साधारण सा फार्मूला है जो इस प्रकार है-

$$\frac{\text{डाले गए कुल मतों की संख्या}}{\text{कुल स्थानों की संख्या} + 1} + 1 = \text{कोटा}$$

- इस पद्धति में प्रत्येक मतदाता को मत देते समय अपनी वरीयताओं (Preferences) का अंकन करना होता है अर्थात् उसे बताना होता है कि विभिन्न प्रत्याशियों के लिए उसका वरीयता-क्रम क्या है?
- अनुच्छेद 55(2) में बताया गया है कि सभी राज्य विधानसभाओं के सभी निर्वाचित विधायकों के कुल मतों का योग संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों के मतों के कुल योग के समतुल्य (at par) बनाने के लिये क्या पद्धति अपनायी जायेगी? इस पद्धति के अनुसार सबसे पहले विभिन्न राज्यों के विधायकों के मतों का मूल्य निकाला जायेगा। किसी राज्य की विधानसभा के एक सदस्य के मत का मूल्य निकालने का फार्मूला इस प्रकार है-

$$\frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{विधानसभा में निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} \times \frac{1}{1000} = 1 \text{ मत का मूल्य}$$

ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 55(2) में संख्या को 1000 के गुणजों (Multiples) तक लेने की बात कही गई है और शेषफल (remainder) 500 से कम हो तो उसे छोड़ देने तथा 500 से ज्यादा हो तो परिणाम में 1 जोड़ देने का निर्देश दिया गया है।

- इस तरह सभी राज्यों की विधानसभाओं के विधायकों के मतों का मूल्य निकाला जाएगा और उन्हें जोड़ दिया जाएगा। गौरतलब है कि यदि राष्ट्रपति के चुनाव के समय किसी विधानसभा में कुछ स्थान खाली हैं या किसी राज्य की विधानसभा भंग है तो इससे राष्ट्रपति का चुनाव बाधित नहीं होगा। जो सदस्य उस समय विधानसभाओं में हैं, उन्हीं के मतदान को पर्याप्त समझा जाएगा।
- सभी राज्यों की विधानसभाओं के सभी विधायकों के मतों के कुल योग तथा संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों के मतों के कुल योग में समतुल्यता (parity) होनी चाहिए। इस उपबंध का उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यों की उतनी ही भूमिका हो, जितनी कि केन्द्र की; ताकि हमारी राजव्यवस्था का संघात्मक ढाँचा (Federal structure) मजबूत रहे। एक सांसद के मत का मूल्य इस प्रकार निकाला जाएगा-

$$\frac{\text{सभी राज्यों के सभी निर्वाचित विधायकों के मतों की कुल संख्या}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} = \text{एक सांसद के मत का मूल्य}$$

- सभी विधायकों तथा सांसदों के मतों का मूल्य तय हो जाने के बाद जीतने के लिए कोटा निर्धारित किया जायेगा। कोटे के अनुसार निर्धारित मत प्राप्त करने की प्रक्रिया एकल संक्रमणीय मतों (Single transferable votes) पर आधारित होगी। यदि किसी भी उम्मीदवार को पहली वरीयता में कोटे के लिए अपेक्षित मत न मिले हों तो अंतिम आने वाले उम्मीदवार को पराजित घोषित कर दिया जाएगा तथा उसे प्राप्त हुए प्रथम वरीयता वाले मतों का विभाजन उन मतों पर अंकित दूसरी वरीयता के अनुसार शेष प्रत्याशियों में किया जायेगा। दूसरे दौर में भी किसी उम्मीदवार के निर्धारित कोटा तक न पहुँचने की स्थिति में अंतिम उम्मीदवार को पुनः पराजित घोषित कर दिया जायेगा तथा उस उम्मीदवार को अभी तक प्राप्त सभी मतों (जिसमें उसके प्रथम वरीयता वाले तथा पराजित उम्मीदवार के मतों में दूसरी वरीयता पर मिले मत शामिल हैं) की अगली उपलब्ध

से आशय 1971 की जनसंख्या से है। '42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976' के माध्यम से प्रावधान किया गया था कि 2000 के बाद पहली जनगणना के आँकड़े प्रकाशित होने तक 1971 की जनगणना को ही आधार माना जाएगा। आगे चलकर '84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001' के माध्यम से यह स्थिति 2026 तक के लिये बढ़ा दी गयी है। इसे बढ़ाने का मूल कारण यह था कि जिन राज्यों (मुख्यतः दक्षिण भारतीय राज्यों) ने जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम में विशेष सफलता प्राप्त की थी, उन्हें जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम में विफल रहने वाले राज्यों (विशेषतः कुछ उत्तर भारतीय राज्यों) की तुलना में नुकसान झेलना पड़ सकता था।

राष्ट्रपति चुनाव लड़ने हेतु अर्हताएँ (Eligibilities for contesting Presidential election):

अनुच्छेद 58 में राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए प्रत्याशी की अर्हताएँ बताई गई हैं। इनके अनुसार, कोई भी ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति हो सकता है जो-

- (क) भारत का नागरिक हो।
- (ख) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- (ग) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की अर्हता रखता हो।
- (घ) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद (Office of profit) धारण न करता हो। किंतु, इसी अनुच्छेद में यह स्पष्टीकरण दिया गया है कि इस प्रयोजन के लिए भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल, केंद्र या राज्य सरकार के किसी मंत्री को लाभ के पद का धारक नहीं समझा जाएगा।

गौरतलब है कि भारत का राष्ट्रपति होने के लिए जन्म से भारत का नागरिक होना आवश्यक नहीं है जैसा कि अमेरिका में है। यदि नागरिकता अर्जित (acquired) हो तो भी व्यक्ति राष्ट्रपति पद का प्रार्थी हो सकता है।

राष्ट्रपति के निर्वाचन से जुड़े विवादों का निपटारा

(Settlement of the disputes related to the President's election):

अनुच्छेद 71 में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित सभी शिकाओं और विवादों की जाँच तथा फैसला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा और इस संबंध में उसका निर्णय अंतिम होगा। अनुच्छेद 71(2) में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में किसी व्यक्ति के निर्वाचन को शून्य (void) घोषित कर देता है तो भी उस व्यक्ति द्वारा पद धारण करने की तिथि से सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की तिथि तक पद की शक्तियों के अंतर्गत किए गए कार्य इस आधार पर अवैध नहीं ठहराए जाएंगे कि सर्वोच्च न्यायालय ने उसका चुनाव शून्य घोषित कर दिया है। संविधान के '39वें संशोधन अधिनियम, 1975' के माध्यम से यह उपबंध लागू किया गया था।

राष्ट्रपति के निर्वाचन से जुड़े विनियमन की संसद की शक्ति

(Parliament's power of regulating the issues related with presidential election):

अनुच्छेद 71(3) में कहा गया है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित किसी विषय का विनियमन संसद विधि द्वारा कर सकती है। संसद ने अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हुए पहले 1952 में एक अधिनियम पारित किया जिसके तहत राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी को निर्वाचकगण के 2 सदस्यों के प्रस्ताव तथा 2 के ही अनुमोदन की आवश्यकता होती थी। बाद में देखा गया कि चुनाव लड़ना आसान होने के कारण बहुत से अगंभीर प्रत्याशी चुनाव लड़ने लगे। उदाहरण के लिए, 1969 के चुनाव में 17 उम्मीदवार थे जिनमें से 9 को एक भी मत नहीं मिला था। ऐसी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए 1974 में एक संशोधन किया गया तथा 5-5 सदस्यों के प्रस्ताव तथा अनुमोदन की व्यवस्था की गई। किंतु, इस संशोधन के बाद भी देखा गया था कि कई अगंभीर प्रत्याशी राष्ट्रपति चुनाव लड़ते रहे। उन्हें हतोत्साहित करने के लिए 1997 में पुनः संशोधन किया गया तथा 'राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति निर्वाचन (संशोधन) अधिनियम, 1997' [The Presidential and Vice-Presidential Elections (Amendment) Act, 1997] पारित किया गया। इसके अंतर्गत यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए किसी प्रत्याशी का नाम कम से कम 50 मतदाताओं द्वारा प्रस्तावित और कम से कम 50 द्वारा अनुमोदित होना चाहिए। उपराष्ट्रपति के मामले में ये संख्याएँ 20-20 रखी गईं। साथ ही, इन पदों पर चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों के लिए 15 हजार रुपये की जमानत गारंटी निश्चित की गई। यदि कोई उम्मीदवार चुनाव में हारने पर कुल मतों

अनुच्छेद 57 में बताया गया है कि यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के रूप में पहले निर्वाचित हो चुका है तो भी उसे पुनः इस पद के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार होगा। इस संबंध में चुनाव लड़ने के प्रयासों की कोई अधिकतम सीमा नहीं बताई गई है। इसका तात्पर्य है कि वह जितनी बार चाहे, चुनाव लड़ सकता है।

इस बिंदु पर अमेरिकी संविधान भारतीय संविधान से अलग है। अमेरिका के मूल संविधान में भी किसी प्रत्याशी के राष्ट्रपति चुनाव लड़ने पर कोई सीमा नहीं थी और फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट चार बार राष्ट्रपति बने थे; किंतु अमेरिकी संविधान के '22वें संशोधन अधिनियम, 1951' द्वारा यह नियम बना दिया गया है कि कोई व्यक्ति अधिकतम दो बार राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हो सकता है।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ (Powers of the president)

संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में राष्ट्रपति की शक्तियों की चर्चा की गई है। राष्ट्रपति की शक्तियाँ अत्यंत व्यापक व विविध हैं। समझने की सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित कुछ वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. प्रशासनिक शक्तियाँ (Administrative powers):

प्रशासनिक शक्तियों का तात्पर्य उन सभी कार्यों को करने की शक्ति से है जो विभिन्न मंत्रालयों और विभागों द्वारा किए जाते हैं। अनुच्छेद 77(1) में प्रावधान है कि "भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाई राष्ट्रपति के नाम से की हुई कही जाएगी।" इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रपति ये सभी कार्य स्वयं नहीं करता है, ये सभी कार्य मंत्रिपरिषद या विभिन्न विभागों द्वारा राष्ट्रपति के नाम से किए जाते हैं। ऐसा करने का उद्देश्य प्रशासन की एकता को बनाये रखना तथा बिखराव से बचना है। प्रशासनिक शक्ति के अंतर्गत राष्ट्रपति को देश के सभी उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करने तथा उन्हें हटाने की शक्ति दी गयी है। राष्ट्रपति जिन उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त करता है, उनमें से प्रमुख हैं—

- (1) भारत का प्रधानमंत्री व उसकी मंत्रिपरिषद।
- (2) भारत का महान्यायवादी (Attorney General of India)।
- (3) भारत का नियंत्रक महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India)।
- (4) उच्चतम न्यायालय तथा सभी उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश।
- (5) सभी राज्यों के राज्यपाल (Governors) तथा उपराज्यपाल (Lieutenant Governors)।
- (6) मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्त।
- (7) संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य।
- (8) वित्त आयोग (Finance Commission) के सदस्य।
- (9) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिये विशेष अधिकारी।
- (10) भाषायी अल्पसंख्यकों (Linguistic minorities) के संरक्षण के लिए विशेष अधिकारी।

गौरतलब है कि ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति को अपने विवेक से नहीं, मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करनी होती हैं। कुछ पदों के मामले में उसे भिन्न व्यक्तियों से सलाह करनी होती है, जैसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में वह भारत के मुख्य न्यायाधीश से सलाह करता है।

2. सैन्य शक्तियाँ (Military powers):

राष्ट्रपति देश की सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति है। उसे किसी देश के साथ युद्ध घोषित करने तथा शांति स्थापित करने की शक्ति दी गयी है।

किन्तु, यह शक्ति वास्तविक शक्ति न होकर सिर्फ औपचारिक शक्ति है। भारत का राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना इन शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता।

3. राजनयिक/कूटनीतिक शक्तियाँ (Diplomatic powers):

राजनयिक शक्तियों से तात्पर्य उन सभी शक्तियों से है जो विदेशी राज्यों के साथ संबंधों के स्तर पर लागू होती हैं। राजनय का प्रमुख होने के नाते राष्ट्रपति अन्य देशों के लिए राजदूतों (Ambassadors) तथा कूटनीतिक अधिकारियों (diplomats) की नियुक्ति करता है तथा अन्य देशों से भारत में विदेशी दूतों को नियुक्त करने तथा भारत में विदेशियों के सम्मान के लिए उपायों को अपनाने का अधिकार भी रखता है।

4. विधायी शक्तियाँ (Legislative powers):

भारत का राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रमुख होने के साथ विधायिका से जुड़ी कुछ शक्तियाँ भी रखता है जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

- (1) वह संसद के दोनों सदनों को संसद सत्र हेतु आहूत (summon) करता है तथा सत्रावसान (prorogue) करता है। (अनुच्छेद 85)।
- (2) यदि दोनों सदनों के बीच किसी विषय पर अंतिम रूप से असहमति हो जाए तो वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (joint sitting) बुला सकता है। (अनुच्छेद 108)।
- (3) प्रत्येक आम चुनाव के बाद पहले सत्र की शुरुआत पर तथा प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के आरंभ पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के संयुक्त सत्र (joint session) को संबोधित करता है (अनुच्छेद 87)।
- (4) यदि राष्ट्रपति उचित समझे तो किसी विधेयक के संबंध में संसद के किसी सदन या दोनों सदनों को संदेश (message) भेज सकता है। वह चाहे तो सदन को कोई अन्य संदेश भी भेज सकता है। दोनों ही स्थितियों में सदन से अपेक्षा की जाती है कि वह सुविधानुसार शीघ्रता से उस पर विचार करेगा (अनुच्छेद 86)।
- (5) राष्ट्रपति 12 ऐसे व्यक्तियों को राज्यसभा में नामांकित (Nominate) करता है जिनके पास साहित्य, कला, विज्ञान या समाज-सेवा में कोई विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव होता है (अनुच्छेद 80)। इसी प्रकार, उसे यह भी अधिकार है कि यदि उसकी राय में अंग्ल-भारतीय समुदाय (Anglo-Indian community) का लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह अधिकतम 2 सदस्यों को लोक सभा के लिए नामांकित कर सकता है (अनुच्छेद 331)।
- (6) राष्ट्रपति पर यह दायित्व आरोपित किया गया है कि वह संसद के संपक्ष विभिन्न प्रतिवेदन (Reports) प्रस्तुत कराए। ऐसे प्रमुख प्रतिवेदन निम्नलिखित हैं—
 - (i) बजट या वार्षिक वित्तीय विवरण (Annual financial statement)। (अनुच्छेद 112)
 - (ii) नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General) का प्रतिवेदन। (अनुच्छेद 151)
 - (iii) वित्त आयोग (Finance Commission) की अनुशंसाएँ। (अनुच्छेद 281)
 - (iv) संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) का वार्षिक प्रतिवेदन (अनुच्छेद 323)।
 - (v) पिछड़ा वर्ग आयोग (National Commission for Backward Classes) का प्रतिवेदन (अनुच्छेद 340)।
 - (vi) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (National Commission for Scheduled Castes) का प्रतिवेदन (अनुच्छेद 338)।
 - (vii) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (National Commission for Scheduled Tribes) का प्रतिवेदन [अनुच्छेद 338(क)]
- (7) राष्ट्रपति को शक्ति है कि कुछ विधेयक उसकी पूर्व अनुमति के बिना संसद में पेश नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 3 के अंतर्गत नये राज्यों के निर्माण या वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों का बदलने के लिए कोई विधेयक बिना राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के संसद में नहीं लाया जा सकता। इसी प्रकार, अनुच्छेद 117(1) में उपबंध है कि कोई भी धन विधेयक (money bill) राष्ट्रपति की सिफारिश से ही संसद में पेश किया जाएगा, अन्यथा नहीं।
- (8) राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों को अनुमति देने या अनुमति रोकने की शक्ति प्राप्त है। यदि वह अनुमति रोक लेता है तो उसकी यह शक्ति 'वीटो शक्ति' कहलाती है।
- (9) अनुच्छेद 123 में राष्ट्रपति को एक विशेष विधायी शक्ति दी गई है जिसे 'अध्यादेश (Ordinance) जारी करने की शक्ति' कहते हैं।

5. न्यायिक शक्तियाँ: क्षमादान आदि से जुड़ी शक्तियाँ (Judicial powers: powers related with pardoning etc.)

प्रायः हर राजव्यवस्था में माना जाता है कि कार्यपालिका को ऐसी न्यायिक शक्ति दी जानी चाहिये कि यदि न्यायालय ने किसी

'कृपा' (mercy) के रूप में है जबकि भारतीय संविधान निर्माताओं ने इसे संवैधानिक व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है। अनुच्छेद 72 में कहा गया है कि राष्ट्रपति को दोषी सिद्ध किये गये किसी व्यक्ति के दण्ड को कम करने या माफ करने की शक्ति तीन मामलों में प्राप्त होगी-

(क) यदि दण्ड (punishment) या दण्ड का आदेश (sentence) सेना न्यायालय (Military court) द्वारा दिया गया है।

(ख) यदि दण्ड अथवा दण्ड का आदेश किसी ऐसे कानून के उल्लंघन के लिए दिया गया है जो संघ की कार्यपालिका शक्ति के अंतर्गत शामिल है।

(ग) ऐसे सभी मामले जिनमें मृत्यु-दण्ड का आदेश दिया गया है, चाहे वे मामले संघ से संबंधित हों या राज्यों से।

राष्ट्रपति किसी दण्ड के संबंध में कई तरह से क्षमादान (pardon) की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। इन सभी विकल्पों की चर्चा अनुच्छेद 72(1) में की गई है। ये विकल्प निम्नलिखित हैं-

(क) लघुकरण (Commute)- इसका अर्थ है किसी कठोर प्रकृति के दण्ड के स्थान पर हल्की प्रकृति का दण्ड दिया जाना; जैसे- कठोर कारावास (Rigorous imprisonment) को साधारण कारावास (Simple imprisonment) में रूपांतरित कर देना या मृत्युदण्ड (Capital punishment) को आजीवन कारावास (Life imprisonment) में बदल देना।

(ख) परिहार (Remission)- इसका अर्थ है दण्ड के आदेश की प्रकृति बदले बिना दण्ड की मात्रा को कम कर देना, जैसे- पाँच वर्ष के कठोर कारावास को कम करके दो वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित कर देना।

(ग) विराम (Respite)- इसका अर्थ है दण्ड पाए हुए व्यक्ति की विशिष्ट अवस्था के कारण उसके दण्ड की कठोरता को कम करना। कठोरता में कभी दण्ड की प्रकृति बदलकर भी की जा सकती है और दण्ड की मात्रा कम करके भी। उदाहरण के लिए, किसी गर्भवती स्त्री को मृत्युदण्ड के स्थान पर आजीवन कारावास दे देना या किसी बूढ़े अपराधी को कठोर कारावास की जगह साधारण कारावास दे देना।

(घ) प्रविलंबन (Reprieve)- इसका अर्थ है मृत्युदण्ड को अस्थायी तौर पर निलंबित (suspend) कर देना। ऐसा आमतौर पर तब किया जाता है जब दोषसिद्ध अपराधी ने क्षमा (Pardon) या लघुकरण (Commutation) की प्रार्थना की होती है और राष्ट्रपति उस प्रार्थना पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में होता है।

(ङ) क्षमा (Pardon)- इसका अर्थ है अपराधी को दण्ड या दण्डादेश से पूरी तरह मुक्त कर देना। क्षमा देने पर सिर्फ दण्ड सम्प्राप्त नहीं होता बल्कि दोषसिद्ध अपराधी ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जैसे कि उसने कोई अपराध किया ही नहीं था।

राष्ट्रपति की क्षमादान संबंधी शक्तियों के संबंध में यह प्रश्न उठता रहा है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल को क्षमा संबंधी प्रार्थनाओं या याचिकाओं का निपटारा कितनी अवधि में कर लेना चाहिए? कई मामलों में ऐसा देखा गया है कि क्षमादान संबंधी प्रार्थनाएँ कई वर्षों तक लंबित पड़ी रहती हैं। उदाहरण के लिए, भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की हत्या के दोषी पाए गए तीन अपराधियों की क्षमा याचना को 11 वर्षों के अत्यधिक लंबे अंतराल के बाद अगस्त, 2011 में खारिज किया गया। संसद पर हमले के दोषी अफजल गुरु की क्षमा याचना भी छः साल तक अनिर्णीत रहने के बाद गृह मंत्रालय द्वारा खारिज की गई है। 2011 में 26 ऐसे मामले लंबित थे जिन पर लंबे अंतराल के बाद भी राष्ट्रपति का निर्णय नहीं आ सका था।

ध्यातव्य है कि 'शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य' (1983) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह सुझाव दिया था कि कार्यपालिका को इस मामले में स्वयं एक नियम बना लेना चाहिए कि ऐसी हर अपील का निपटारा 3 महीने के भीतर कर दिया जाएगा क्योंकि अनावश्यक विलंब के कारण न्यायिक प्रणाली की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में आ जाती है। अभी हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः सरकार को याद दिलाया है कि सरकार को क्षमा याचिकाओं के संबंध में तीन पाह की अवधि का पालन करना चाहिए।

विवाद का ज्यादा बड़ा मुद्दा यह है कि राष्ट्रपति की 'क्षमादान की शक्ति' न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है या नहीं? इस संबंध में न्यायालय ने कुछ मामलों में कुछ सिद्धांत निर्धारित किये हैं-

(i) 'मार राम बनाम भारत संघ' (1980) के मामले में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि सामान्यतः न्यायालय राष्ट्रपति के निर्णय लेने के आधारों का पुनर्विलोकन नहीं करेगा किन्तु वह उन मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है जहाँ राष्ट्रपति का निर्णय अनुच्छेद 72 के दृष्टियों से पूर्णतः असंगत (irrelevant) हो; या मनमाना (arbitrary), तर्कहीन (illogical), विभेदकारी (discriminatory) या असद्भावपूर्ण (malafide) हो।

(ii) 'केदार सिंह बनाम भारत संघ' (1989) इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण मामला है जिसका संबंध सीपटी रॉबिंस एंड कंपनी

- (क) जो व्यक्ति राष्ट्रपति से क्षमा का आवेदन करता है, उसे राष्ट्रपति के समक्ष 'मौखिक सुनवाई' (oral hearing) का कोई अधिकार नहीं है।
 - (ख) इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय राष्ट्रपति द्वारा क्षमादान की शक्ति के प्रयोग के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित करे। राष्ट्रपति को यह शक्ति विवेकाधीन (discretionary) है।
 - (ग) राष्ट्रपति इस बात के लिये स्वतंत्र है कि वह न्यायालय के फैसले से भिन्न निर्णय ले।
 - (घ) राष्ट्रपति यह बताने के लिये बाध्य नहीं है कि उसके द्वारा लिये गए निर्णय का आधार क्या है?
 - (ङ) राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्ति का अर्थ यही है कि राष्ट्रपति इसका प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार करेगा।
 - (च) न्यायालय राष्ट्रपति द्वारा प्रयोग की गयी शक्ति के विस्तार का परीक्षण कर सकता है अर्थात् यह देख सकता है कि संदर्भित मामले पर राष्ट्रपति की शक्ति लागू होती है या नहीं; किंतु इस बात का परीक्षण नहीं कर सकता कि राष्ट्रपति ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए कोई निर्णय किन आधारों पर किया है?
- (iii) 2006 के एक प्रसिद्ध मामले 'इपुरु सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' में न्यायालय का दृष्टिकोण बदल गया। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि-
- (क) क्षमादान (Pardoning) की शक्ति का प्रयोग राजनीतिक, धार्मिक या जातीय आधारों पर किया जाना संविधान की अवहेलना करने के समान माना जाएगा।
 - (ख) ऐसे मामलों में न्यायालय राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान संबंधी शक्तियों के प्रयोग के आधारों का पुनर्विलोकन कर सकते हैं।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्तियों में अंतर

(Difference between pardoning powers of the president and the governor):

ध्यातव्य है कि संविधान में राष्ट्रपति के अलावा राज्यपाल को भी क्षमादान की शक्ति दी गई है, जिसकी चर्चा अनुच्छेद 161 में की गई है। सामान्यतः इन दोनों की शक्तियाँ बराबर हैं किन्तु इनमें तीन प्रमुख अंतर विद्यमान हैं जो इस प्रकार हैं-

- (क) राष्ट्रपति को सेना न्यायालय (Military court) द्वारा दिये गए दण्ड को क्षमा (pardon) या कम करने की शक्ति है किन्तु राज्यपाल की शक्ति का विस्तार सेना न्यायालय पर लागू नहीं होता।
- (ख) राष्ट्रपति को यह शक्ति उन विषयों पर प्राप्त है जो संघ की कार्यपालिका शक्ति से जुड़े हैं जबकि राज्यपाल को यह शक्ति राज्य की कार्यपालिका शक्ति से संबंधित विषयों के लिये दी गई है।
- (ग) राष्ट्रपति को मृत्युदण्ड के मामले में क्षमा (Pardon) करने सहित परिहार (Remit), लघुकरण (Cominute) आदि सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं। राज्यपाल को मृत्युदण्ड के मामले में क्षमा करने की शक्ति प्राप्त नहीं है किन्तु यदि विधि के अनुसार उसे लघुकरण (cominute), परिहार (remit) या निलंबन (suspension) आदि की शक्ति दी गई हो तो वह उसका प्रयोग कर सकता है। ऐसी शक्तियाँ 'दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973' (Criminal Procedure Code, 1973) की धारा 432 और 433 द्वारा राज्यपालों को दी गई हैं।

6. आपात्कालीन शक्तियाँ (Emergency powers):

आपात् संबंधों के अंतर्गत राष्ट्रपति के पास निम्नलिखित शक्तियाँ हैं-

- (क) यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि युद्ध (War), बाह्य आक्रमण (External aggression) या सशस्त्र विद्रोह (Armed rebellion) के होने (या इनमें से किसी की संभावना) के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह संपूर्ण देश या उसके किसी भाग में आपात्काल की उद्घोषणा कर सकेगा।
- (ख) अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति को शक्ति है कि यदि किसी राज्य के राज्यपाल के प्रतिवेदन के आधार पर या अन्यथा उसे यह समाधान हो जाए कि राज्य में संवैधानिक तंत्र (constitutional machinery) विफल हो गया है तो वह उस राज्य में आपात् की उद्घोषणा कर सकता है।
- (ग) अनुच्छेद 360 में बताया गया है कि यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि भारत या उसके किसी भाग का वित्तीय

- (घ) अनुच्छेद 358 में बताया गया है कि यदि आपात की उद्घोषणा अनुच्छेद 352 के तहत 'युद्ध' (war) या 'बाह्य आक्रमण' (external aggression) के आधार पर [सशस्त्र विद्रोह (armed rebellion) के आधार पर नहीं] की गई है तो अनुच्छेद 19 स्वतः निलंबित हो जाएगा। अनुच्छेद 359 में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि वह अनुच्छेद 20 और 21 के अलावा शेष अनुच्छेदों में दिये गए मूल अधिकारों या उनमें से किन्हीं का निलंबन कर सकेगा।

7. अन्य शक्तियाँ (Other powers):

संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में राष्ट्रपति को कई अन्य शक्तियाँ भी दी गई हैं, जैसे-

- (क) अनुच्छेद 143 के अंतर्गत राष्ट्रपति के पास शक्ति है कि वह किसी 'विधि' (law) या 'तथ्य' (fact) के ऐसे प्रश्न पर, जो व्यापक महत्व का है और उसे लगता है कि उस पर सर्वोच्च न्यायालय की राय ली जानी चाहिए, सर्वोच्च न्यायालय को उस पर विचार करने तथा राय देने के लिए निर्देश दे सकता है। 1950 से अभी तक राष्ट्रपति ऐसे 15 निर्देश दे चुका है।
- (ख) संघ राज्यक्षेत्रों (Union territories) का प्रशासन राष्ट्रपति के अधीन ही चलाया जाता है। उसे इन क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है। (अनुच्छेद 239)
- (ग) अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के रूप में विभिन्न सामाजिक समूहों को पहचानने तथा उन्हें इन सूचियों में शामिल करने की शक्ति भी राष्ट्रपति के पास है। (अनुच्छेद 341, 342)।
- (घ) राष्ट्रपति को अनुच्छेद 339 के तहत यह शक्ति प्राप्त है कि अनुसूचित क्षेत्रों (Scheduled areas) अर्थात् जिन क्षेत्रों को जनजातीय आबादी के कारण विशेष संरक्षण दिया जाता है, के रूप में क्षेत्रों को शामिल करने या कुछ क्षेत्रों को सूची से बाहर करने का निर्णय कर सके तथा किसी राज्य विशेष के राज्यपाल से अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर प्रतिवेदन मांग सके। इसके अलावा, ऐसे क्षेत्रों की शांति और सुशासन के लिए बनाया गया कोई भी नियम राष्ट्रपति की सहमति के बिना प्रभावी नहीं हो सकता है।

राष्ट्रपति की 'वीटो' या 'निषेधाधिकार' शक्ति (Veto power of the president)

सामान्यतः हर देश में कार्यपालिका के प्रमुख को यह शक्ति दी जाती है कि वह विधायिका द्वारा पारित विधेयक (Bill) को अधिनियम (Act) बनने से रोक सके। यह शक्ति दो कारणों से दी जाती है- (क) यदि विधायिका कोई ऐसा कानून बना रही हो जो संविधान की मूल भावना के विपरीत है, तो उसे रोका जा सके; तथा (ख) यदि विधायिका ने कानून के कुछ पक्षों पर पर्याप्त विचार-विमर्श न किया हो और जल्दबाजी में उसे पारित कर दिया हो तो उसे सुधारा जा सके।

वीटो की शक्ति चार प्रकार की हो सकती है-

- (1) आत्यंतिक वीटो (Absolute Veto)- इसका अर्थ है वीटो की ऐसी शक्ति जो विधायिका द्वारा पारित किए गए विधेयक को पूरी तरह खारिज कर सकती हो। इंग्लैंड के 'क्राउन' के पास सैद्धांतिक रूप से आत्यंतिक वीटो का परमाधिकार (Prerogative) है हालाँकि व्यवहारतः 1688 ई. के बाद से यह शक्ति क्राउन के पास नहीं रही है।
- (2) विशेषित वीटो (Qualified Veto)- 'विशेषित वीटो' का अर्थ ऐसी वीटो-शक्ति सं है जिसे एक विशेष बहुमत के आधार पर विधायिका द्वारा खारिज किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अमेरिकी राष्ट्रपति को प्राप्त वीटो इसी प्रकार का है।
- (3) निलंबनकारी वीटो (Suspensive Veto)- इसका अर्थ है कि कार्यपालिका के प्रमुख द्वारा किए गए वीटो को विधायिका पुनर्विचार करके साधारण बहुमत से विधेयक पुनः पारित करके खारिज कर सकती है। फ्रांस के राष्ट्रपति को वीटो की अत्यंत सीमित शक्ति मिली हुई है, जो इसी प्रकार की है।
- (4) जेबी वीटो (Pocket Veto)- इसका अर्थ है कार्यपालिका के प्रमुख द्वारा विधेयक पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रिया देने की बजाय उसे अपने पास पड़े रहने देना।

भारत के राष्ट्रपति के पास वीटो की शक्ति इस रूप में है कि जब तक वह संसद द्वारा पारित विधेयक को अनुमति प्रदान न करे, तब तक वह विधेयक अधिनियम नहीं बन पाता। अनुच्छेद 111 में उपबंध है कि जब संसद द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति के

तो वह उस विधेयक को संसद के सदनों को कुछ सुझावों के साथ पुनर्विचार करने के लिये लौटा सकता है। यदि संसद उसको द्वारा सुझाए गए संशोधनों के साथ या उन संशोधनों के बिना उस विधेयक को पुनः पारित कर देती है तो राष्ट्रपति को उस पर अनिवार्यतः अनुमति देनी होती है।

(4) वह बिना कोई निर्णय किए विधेयक को अपने पास रोक कर रख सकता है।

अनुच्छेद 111 में दिए गए उपरोक्त उपबंधों के भीतर से ही राष्ट्रपति को वीटो की शक्ति हासिल होती है। भारत के राष्ट्रपति के पास विशेषित वीटो (Qualified veto) के अलावा तीनों प्रकार की वीटो शक्तियाँ हैं। ये तीनों शक्तियाँ भारतीय राष्ट्रपति को निम्नलिखित रूप में प्राप्त हैं-

(क) भारत के राष्ट्रपति को सीमित रूप में आत्यंतिक वीटो (Absolute veto) की शक्ति प्राप्त है। उदाहरण के लिए, यदि किसी प्राइवेट सदस्य का विधेयक हो और मंत्रिपरिषद् की सलाह उसके पक्ष में न हो तो राष्ट्रपति विधेयक को अनुमति देने से मना कर सकता है। इसी प्रकार, यदि राष्ट्रपति के पास विधेयक भेजने के बाद किंतु उसकी अनुमति मिलने से पहले ही सरकार गिर जाए और लोकसभा के बहुमत से बनी नयी सरकार अर्थात् मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति को वह विधेयक अस्वीकार करने की सलाह दे, तो भी वह आत्यंतिक वीटो का प्रयोग कर सकता है।

भारत के राष्ट्रपति ने दो प्रसिद्ध मामलों में आत्यंतिक वीटो का प्रयोग किया है। पहला मामला 1954 का है जब पैप्सू (PEPSU) राज्यक्षेत्र, जो आज का 'हिमाचल प्रदेश' तथा उसके आसपास का क्षेत्र है, में राष्ट्रपति शासन लागू था। संसद ने 'पैप्सू विनियोग विधेयक, 1954' (PEPSU Appropriation Bill, 1954) पारित करके राष्ट्रपति श्री राजेंद्र प्रसाद के पास भेजा। इसी बीच, 'पैप्सू' से राष्ट्रपति शासन हटा दिया गया था। मंत्रिपरिषद् ने राष्ट्रपति को विधेयक पर अनुमति न देने की सलाह दी। फलतः इस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिली।

दूसरा मामला 1991 का है। संसद ने लोकसभा के विघटन से सिर्फ एक दिन पूर्व 'संसद-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक' (Salary, allowances and pension (Amendment) Bill, 1991) दोनों सदनों से पारित कराके राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा। इस पर अनुच्छेद 117(1) के तहत राष्ट्रपति की पूर्व-मंजूरी नहीं ली गई थी। राष्ट्रपति ने इस विधेयक को अनुमति नहीं दी।

(ख) भारत के राष्ट्रपति के पास निलंबनकारी वीटो (Suspensive veto) भी है। वह धन विधेयकों (तथा संविधान संशोधन विधेयकों) से भिन्न किसी विधेयक को पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ संसद को लौटा सकता है। किंतु, संसद द्वारा साधारण बहुमत से उसे पुनः पारित कर दिये जाने की स्थिति में राष्ट्रपति को विधेयक पर अनुमति देनी ही पड़ती है।

(ग) भारत के राष्ट्रपति के पास जो वीटो सबसे प्रभावी रूप में है, वह 'जेबी वीटो' (Pocket veto) है। अनुच्छेद 111 में सिर्फ इतना लिखा है कि राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित विधेयक को 'यथाशीघ्र' (as soon as possible) लौटा देगा; इसमें कोई निश्चित अवधि नहीं बताई गई है। इसका लाभ उठाकर राष्ट्रपति किसी विधेयक को अनंत काल तक अपने पास रोक सकता है। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण 1986 का 'भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक' [Indian post office (Amendment) Act] है। इस विधेयक के कुछ प्रावधान प्रेस की स्वतंत्रता के विरुद्ध थे। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह इसके पक्ष में नहीं थे। इसलिए उन्होंने इस विधेयक पर न तो अनुमति दी, न अनुमति देने से इंकार किया, और न ही मंत्रिपरिषद् को पुनर्विचार हेतु भेजा; बस, उसे अपने पास ही पड़ा रहने दिया जिससे वह कानून नहीं बन सका।

राज्यों के विधेयकों पर राष्ट्रपति की वीटो शक्ति (President's veto power on the bills of states):

राष्ट्रपति की वीटो शक्ति राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित विधेयकों पर भी लागू होती है। जब राज्य का विधानमंडल कोई विधेयक पारित करके राज्यपाल की स्वीकृति के लिए विधेयक भेजता है तो अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल के पास निम्नलिखित चार विकल्प होते हैं-

1. वह विधेयक पर स्वीकृति देने की घोषणा कर सकता है।
2. वह विधेयक पर अनुमति रोक (withhold) सकता है।
3. वह विधेयक को, यदि वह धन विधेयक (money bill) नहीं है तो, विधानमंडल को पुनर्विचार करने के लिए लौटा सकता है।
4. वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रख सकता है।

यदि राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करता है तो राष्ट्रपति के पास अनुच्छेद 201 के तहत

2. वह विधेयक पर अनुमति रोक (withhold) सकता है।
3. वह राज्यपाल को निर्देश दे सकता है कि वह विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं हो तो) राज्य के विधानमंडल को पुनर्विचार हेतु लौटा दे।

जब राष्ट्रपति राज्यपाल के माध्यम से कोई विधेयक राज्य विधानमंडल को पुनर्विचार के लिए लौटा देता है तो विधानमंडल को 6 महीनों के भीतर उस विधेयक पर पुनर्विचार करके संशोधन सहित या संशोधनों के बिना उसे राष्ट्रपति को वापस भेजना होता है। संविधान में अनुच्छेद 201 में सिर्फ इतना लिखा है कि पुनर्विचार के बाद ऐसा विधेयक 'राष्ट्रपति के समक्ष उसके विचार के लिए फिर से प्रस्तुत किया जाएगा'; यह नहीं लिखा है कि इस बार राष्ट्रपति को विधेयक पर अनुमति देनी होगी। इसका अर्थ है कि वह चाहे तो इस बार भी विधेयक पर अनुमति रोक सकता है।

इससे स्पष्ट है कि राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में राष्ट्रपति के पास जेबी वीटो (pocket veto) की शक्ति अतिरिक्त रूप में है। उसे इस मामले में निलंबनकारी वीटो (Suspensive veto) तथा आत्यंतिक वीटो (Absolute veto) की उतनी शक्तियाँ तो हैं ही जितनी कि संसद से पारित विधेयकों के मामले में हैं; साथ ही, वह पुनर्विचार के बाद भेजे गए विधेयक पर भी जेबी वीटो का प्रयोग कर सकता है जो विशिष्ट है। यह शक्ति इस अर्थ में है कि राष्ट्रपति को पुनर्विचार के बाद भेजे गए विधेयकों को वापस लौटाने के लिए कोई समय-सीमा निर्दिष्ट नहीं की गई है जिसके आधार पर वह अनंत काल तक विधेयक को अपने पास पड़ा रहने दे सकता है।

राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति (President's power to promulgate ordinances)

अनुच्छेद 123 में कहा गया है कि यदि संसद के दोनों सदन सत्र में न हों और राष्ट्रपति को इस बात का समाधान हो जाए कि ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जिनमें तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है तो वह अध्यादेश (ordinance) जारी कर सकेगा।

अध्यादेश का प्रभाव ठीक वही होता है जो कि संसद द्वारा पारित अधिनियम (act) का होता है। एक तरीके से कार्यपालिका के प्रमुख को यह शक्ति दी गई है कि यदि विधायिका अर्थात् संसद का सत्र न चल रहा हो तो परिस्थितियों की गंभीरता को देखते हुए वह स्वयं विधायिका की भूमिका में आ जाए।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति से जुड़े हुए प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं—

- (क) अध्यादेश तभी जारी किया जा सकता है जब संसद के दोनों सदन एक साथ सत्र में न हों। इसका अर्थ है कि अगर एक सदन सत्र में है तो भी अध्यादेश जारी किया जा सकता है क्योंकि विधेयक पारित करने के लिए एक सदन की उपस्थिति पर्याप्त नहीं होती।
- (ख) अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो संसद द्वारा पारित अधिनियम का होता है।
- (ग) अनुच्छेद 13 में विधि (law) की परिभाषा करते हुए अध्यादेश (ordinance) का भी उल्लेख किया गया है जिसका अर्थ है कि मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाला कोई अध्यादेश जारी नहीं किया जा सकता।
- (घ) अध्यादेश संसद द्वारा पारित विधियों की तरह भूतलक्षी प्रभाव (retrospective effect) से लागू किया जा सकता है।
- (ङ) अध्यादेश का जीवनकाल अत्यन्त लघु होता है। संविधान में व्यवस्था है कि संसद के सत्र के पुनः सम्मेलन (reassemble) होने से 6 सप्ताह की समाप्ति पर वह मृत हो जाता है। इसी बीच, यदि संसद के दोनों सदन उसका अनुमोदन करने का संकल्प पारित कर दें तो वह अधिनियम (act) बन जाता है। इसके विपरीत, यदि छः सप्ताह पूरे होने के पहले ही दोनों सदन उसे संकल्प (resolution) द्वारा खारिज कर दें तो वह समाप्त हो जाता है। इस संबंध में अनुच्छेद 123 में एक स्पष्टीकरण दिया गया है कि यदि संसद के दोनों सदन भिन्न-भिन्न तिथियों पर पुनः सम्मेलन (reassemble) होते हैं तो छः सप्ताह की अवधि की गणना उन तारीखों में से बाद वाली तारीख के अनुसार की जाएगी।
- (च) अध्यादेश के द्वारा संविधान में संशोधन नहीं किया जा सकता।
- (छ) राष्ट्रपति जब चाहे अध्यादेश को वापस ले सकता है।

एए अध्यादेश से था, सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत अभिव्यक्त किया कि राष्ट्रपति के व्यक्तिगत समाधान (personal satisfaction) को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि उसने इस शक्ति का प्रयोग असदभावपूर्ण (malafide) तरीके से किया है।

इस निर्णय का प्रभाव शून्य करने के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने '38वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1975' पारित करके अनुच्छेद 123 में खण्ड 4 अंतःस्थापित किया जिसमें लिख दिया गया कि अध्यादेश जारी करने के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ हैं या नहीं, इस संबंध में राष्ट्रपति का समाधान अन्तिम होगा तथा न्यायिक पुनर्विलोकन से परे होगा।

आगे चलकर, जनता पार्टी की सरकार ने '44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978' द्वारा अनुच्छेद 123(4) का लोप (omission) कर दिया जिसका अर्थ है कि 'आर.सी. कूपर मामले' में न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत पुनः प्रभावी हो गया है अर्थात् न्यायालय इस बात का परीक्षण कर सकते हैं कि अध्यादेश असदभावना (malafide intention) के आधार पर तो जारी नहीं किया गया है?

रोचक तथ्य है कि अध्यादेश जारी करने की ऐसी व्यापक शक्ति भारत के अलावा किसी भी देश में कार्यपालिका को नहीं दी गई है क्योंकि 'शक्तियों के पृथक्करण' (separation of powers) के सिद्धान्त की दृष्टि से यह विधायिका की शक्तियों में कार्यपालिका की घुसपैठ मानी जाती है। संविधान सभा के सदस्य भी इस तथ्य से परिचित थे किंतु वे जानते थे कि एक नवोदित राष्ट्र के सामने राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में कई बार ऐसी गंभीर समस्याएँ आकस्मिक रूप से आ सकती हैं जिनके समाधान के लिये संसद का सत्र बुलाना या सत्र का इन्तजार करना देश के लिए भारी सिद्ध हो।

राष्ट्रपति को दी गई उन्मुक्तियाँ (Immunities given to the President)

अनुच्छेद 361 में राष्ट्रपति को कुछ उन्मुक्तियाँ (immunities) दी गई हैं ताकि उसके पद की गरिमा सुनिश्चित रहे तथा अपने कर्तव्य के पालन में उसे दबाव न झेलने पड़े। ये उन्मुक्तियाँ इस प्रकार हैं—

- (क) अनुच्छेद 361(1) राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को किसी कानूनी कार्यवाही से व्यक्तिगत उन्मुक्ति (personal immunity) प्रदान करता है। इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति अपने पद की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अपने द्वारा किए गए या करने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा।
- (ख) अनुच्छेद 361(2) के अनुसार राष्ट्रपति के पद धारण करने के दौरान किसी भी न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई भी दंडिक या आपराधिक कार्यवाही (Criminal proceeding) न तो शुरू की जाएगी और न ही चालू रखी जाएगी।
- (ग) अनुच्छेद 361(3) के अनुसार राष्ट्रपति के पद धारण करने के दौरान उसे गिरफ्तार (arrest) करने के लिए आदेश जारी करने का अधिकार किसी भी न्यायालय को नहीं होगा।
- (घ) अनुच्छेद 361(4) में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति के व्यक्तिगत कार्यों के संबंध में यह उन्मुक्ति सीमित है। यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के द्वारा किए गए किसी व्यक्तिगत कार्य के संबंध में अनुतोष (relief) का दावा करने वाली सिविल कार्यवाही शुरू करना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है किंतु इसके लिए उसे निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी करनी होंगी—
 - (i) लिखित सूचना राष्ट्रपति को दी गई हो।
 - (ii) ऐसी सूचना देने के बाद कम से कम 2 महीने का समय बीत गया हो।
 - (iii) इस सूचना में पक्षकार का नाम, पता, कार्यवाही की प्रकृति तथा मांगे गए अनुतोष (relief) का विवरण दिया गया हो।

राष्ट्रपति की पदावधि (Term of the president)

राष्ट्रपति की पदावधि तथा कुछ अन्य संबंधित उपबंध अनुच्छेद 56 तथा अनुच्छेद 62 में दिए गए हैं।

अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने की तारीख से पाँच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा। उसके बाद यदि वह चाहे तो पुनर्निर्वाचन का प्रत्याशी हो सकता है।

पाँच वर्ष के भीतर राष्ट्रपति की पदावधि दो प्रकार से समाप्त हो सकती है। ये दो प्रकार उसकी आकस्मिक मृत्यु से अलग हैं। ये हैं—

(1) राष्ट्रपति या राज्यपाल को संसदीय प्रणाली के संविधान से अपनी पदावधि समाप्त हो सकती है (अनुच्छेद 56(1)(क))।

- (2) यदि राष्ट्रपति 'संविधान का अतिक्रमण' (Violation of the constitution) करता है तो अनुच्छेद 61 में बताई गई रीति के आधार पर उस पर महाभियोग (Impeachment) चलाया जा सकता है (अनुच्छेद 56(1)(ख))।

राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया (Procedure of impeachment of the President)

'महाभियोग' (impeachment) एक अर्द्ध-न्यायिक (quasi-judicial) प्रक्रिया है जिसके माध्यम से राष्ट्रपति को उसकी पदावधि (term) के दौरान पद से हटाया जा सकता है।

अनुच्छेद 61 में राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया से संबंधित उपबंध दिए गए हैं। इन उपबंधों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है—

- (1) सबसे पहले संसद का कोई सदन राष्ट्रपति पर 'संविधान के अतिक्रमण' (Violation of the constitution) का आरोप लगाएगा। यह आरोप लगाने की कुछ शर्तें हैं—

(क) यह आरोप एक संकल्प (Resolution) के रूप में होना चाहिए।

(ख) यह कम से कम 14 दिनों की लिखित सूचना देने के बाद प्रस्तावित किया जाना चाहिए।

(ग) सदन की कुल संख्या के कम से कम 1/4 सदस्यों ने हस्ताक्षर करके उस संकल्प (resolution) को प्रस्तावित करने का प्रयोजन प्रकट किया हो।

(घ) सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम 2/3 बहुमत द्वारा ऐसा संकल्प पारित किया गया हो।

- (2) जब संसद का एक सदन ऐसा आरोप लगा देता तो दूसरा सदन उस आरोप का अन्वेषण (Investigation) करेगा। इस अन्वेषण के अंतर्गत राष्ट्रपति को वह अधिकार होगा कि वह स्वयं उपस्थित होकर या अपने किसी प्रतिनिधि के माध्यम से अपना बचाव पक्ष प्रस्तुत करे।

- (3) यदि जाँच के बाद वह सदन सहमत हो जाता है कि राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाया गया आरोप सिद्ध हो गया है; और वह सदन इस आशय का संकल्प सदन की कुल संख्या के कम से कम 2/3 बहुमत से पारित कर देता है तो ऐसा संकल्प पारित होने की तिथि से राष्ट्रपति अपने पद से हटा दिया जाएगा।

भारत और अमेरिका में महाभियोग की प्रणाली में अंतर

(Differences between the system of impeachment in India and America):

राष्ट्रपति को पद से हटाने के लिए महाभियोग की व्यवस्था अमेरिका में भी है किंतु अमेरिकी और भारतीय प्रक्रियाओं में कई अंतर हैं। इनमें प्रमुख अंतर निम्नलिखित हैं—

- (क) भारत में राष्ट्रपति के विरुद्ध 'संविधान के अतिक्रमण' (Violation of the constitution) के एकमात्र आधार पर ही महाभियोग लगाया जा सकता है जबकि अमेरिकी राष्ट्रपति पर कई आधारों, जैसे रिश्वत लेने (bribery), राजद्रोह (treason) करने तथा अन्य बड़े अपराधों (high crimes) तथा दुराचार (misdemeanors) के लिए महाभियोग लगाया जा सकता है।

- (ख) भारत में महाभियोग की कार्यवाही संसद के किसी भी सदन में आरंभ की जा सकती है और महाभियोग की संपूर्ण प्रक्रिया में न्यायालय का हस्तक्षेप नहीं होता है। इसके विपरीत, अमेरिका में महाभियोग की कार्यवाही शुरू करने का अधिकार निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सभा (House of representatives) को ही है। निम्न सदन न्यायिक समिति (Judicial committee) नियुक्त करके राष्ट्रपति के विरुद्ध आरोपों की जाँच करता है तथा जाँच का परिणाम सीनेट अर्थात् उच्च सदन को प्रेषित करता है। जब सीनेट में महाभियोग की कार्यवाही होती है तो अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट का मुख्य न्यायाधीश सीनेट की अध्यक्षता करता है। यदि सीनेट कम से कम 2/3 बहुमत से आरोपों को मान लेती है तो राष्ट्रपति दोषी सिद्ध हो जाता है और तात्कालिक प्रभाव से उसे राष्ट्रपति पद से हटा दिया जाता है।

ध्यातव्य है कि भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग का प्रस्ताव नहीं लाया गया है। अमेरिका में अभी तक तीन राष्ट्रपतियों एंड्रयू जॉन्सन (1867), रिचर्ड निक्सन (1974) तथा विलियम जैफरसन क्लिंटन (बिल क्लिंटन) (1998)

राष्ट्रपति पद की रिक्तता की पूर्ति (Filling the vacancy in the office of President)

अनुच्छेद 62 में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति की पदावधि (term) की समाप्ति से उत्पन्न हुई रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन पदावधि की समाप्ति से पहले ही पूर्ण कर लिया जाएगा। इसके विपरीत, अनुच्छेद 56(1)(ग) में कहा गया है कि राष्ट्रपति अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने पर भी तब तक पद धारण करता रहेगा जब तक उसका उत्तराधिकारी अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता है।

'इन री: प्रैजिडेंशियल पोल' (1974) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 56(1)(ग) को अनुच्छेद 62 के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें कहा गया है कि नए राष्ट्रपति का निर्वाचन, पुराने राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पहले हो जाना चाहिए। निर्वाचन की प्रक्रिया को किसी भी आधार पर नहीं रोका जा सकता है। यदि कोई विधानसभा विघटित (Dissolved) है या उसके कुछ स्थान खाली हैं तो निर्वाचकगण (Electoral college) में केवल वही लोग शामिल होंगे जो वर्तमान में निर्वाचकगण का हिस्सा बन सकते हैं। अनुच्छेद 56(1)(ग) केवल उन मामलों में लागू होगा जहाँ निर्वाचन के बाद भी नया राष्ट्रपति किन्हीं कारणों से निर्धारित तिथि को अपना पद ग्रहण नहीं कर पाता है।

अनुच्छेद 62(2) में स्पष्ट किया गया है कि यदि राष्ट्रपति का पद राष्ट्रपति की मृत्यु, उसके त्यागपत्र, महाभियोग (impeachment) या किसी अन्य कारण से रिक्त हुआ है तो रिक्ति की तारीख के पश्चात् यथाशीघ्र किंतु किसी भी स्थिति में 6 महीने से पहले नए राष्ट्रपति का निर्वाचन कर लिया जाएगा। ऐसा राष्ट्रपति अपना पद धारण करने की तिथि से 5 वर्षों का स्वतंत्र कार्यकाल पूरा करेगा।

राष्ट्रपति से संबंधित कुछ अन्य प्रावधान (Some other provisions related with the President)

राष्ट्रपति के पद के लिए शर्तें (Conditions for President's office)- अनुच्छेद 59 में बताया गया है कि राष्ट्रपति संसद के किसी सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा और यदि वह ऐसे किसी भी सदन का सदस्य है तो राष्ट्रपति के रूप में पद धारण करने की तिथि से उस सदन से उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त मान ली जाएगी। इसी प्रकार, अनुच्छेद 59(2) में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति अपनी पदावधि (term) के दौरान कोई अन्य लाभ का पद (Office of profit) धारण नहीं करेगा।

राष्ट्रपति की परिलब्धियाँ और भत्ते (Emoluments and allowances to the President)- अनुच्छेद 59(3) तथा 59(4) में राष्ट्रपति की उपलब्धियों और भत्तों आदि से संबंधित उपबंध दिए गए हैं। अनुच्छेद 59(3) में कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने शासकीय निवासों का बिना किराया दिए उपयोग करने का हक होगा और उसे वे सभी परिलब्धियाँ, भत्ते तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो संसद विधि द्वारा सुनिश्चित करे। जब तक संसद ऐसी विधि नहीं बनाएगी, तब तक उसकी परिलब्धियाँ और भत्ते वही होंगे जो संविधान की दूसरी अनुसूची में दिए गए हैं।

संसद ने समय-समय पर राष्ट्रपति की परिलब्धियों से संबंधित अधिनियम पारित किए हैं। वर्तमान में राष्ट्रपति का यह वेतन 1 लाख 50 हजार रुपये प्रतिमाह है। दिसंबर 2008 में संसद ने राष्ट्रपति का यह वेतन निर्धारित किया था, किंतु यह वेतन 1.1.2006 से लागू किए जाने का प्रावधान किया गया था। राष्ट्रपति की आय आयकर (Income tax) से मुक्त होती है। पद छोड़ देने के बाद राष्ट्रपति को पेंशन दी जाती है जो उसके वेतन का 50 प्रतिशत होती है। अनुच्छेद 59(4) में स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति की परिलब्धियाँ और भत्ते उसकी पदावधि (term) के दौरान कम नहीं किए जा सकेंगे। इस उपबंध का उद्देश्य राष्ट्रपति को संसद के दबाव से मुक्त रखना है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. वर्तमान में संविधान के अनुच्छेद-74(1) की भाषा के संदर्भ में कौन-सा कथन सत्य है?

- (1) राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है।
- (2) यदि राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की कोई सलाह उचित न लगे तो उसे अधिकार है कि वह मंत्रिपरिषद् से उस सलाह पर पुनर्विचार के लिए कहे और यदि पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषद् उस सलाह को पुनः भेजे तो राष्ट्रपति को वह सलाह माननी ही होगी।
- (3) राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा।
- (4) यदि राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद् की कोई सलाह उचित न लगे तो उसे अधिकार है कि वह मंत्रिपरिषद् से उस सलाह पर पुनर्विचार के लिए कहे और यदि पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषद् उस सलाह को पुनः भेजे तो राष्ट्रपति उस पर अपने विवेक से निर्णय लेगा।

2. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) यदि लोकसभा के चुनाव परिणामों में किसी एक दल या चुनाव पूर्व गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो राष्ट्रपति को अपने विवेक से ही यह निर्णय करना होता है कि स्थिर व स्वच्छ सरकार देने की दृष्टि से किसका दावा सबसे मजबूत है।
- (2) यदि कार्यकाल के दौरान प्रधानमंत्री की आकस्मिक मृत्यु हो जाये तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति स्वयं ही ऐसे व्यक्ति को सरकार बनाने का न्यौता देता है जो उसकी राय में लोकसभा का विश्वास प्राप्त करने में सक्षम हो।
- (3) यदि कोई प्रधानमंत्री लोकसभा का विश्वास खो दे तथा अविश्वास-मत (No Confidence Motion) या विश्वास मत (Confidence Motion) का समना करने की बजाय राष्ट्रपति को लोकसभा विघटित करने की सलाह दे तो राष्ट्रपति के लिए बाध्यता है कि वह लोकसभा का विघटन करे।
- (4) 44वें संविधान संशोधन के बाद राष्ट्रपति को यह

(iii) दिल्ली और पुदुच्चेरी विधान सभा के निर्वाचित सदस्य।

(iv) सभी केन्द्र-शासित प्रदेशों के प्रशासक।

कूट -

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (i), (ii) और (iv)
- (3) (ii) और (iii)
- (4) (i) और (ii)

4. निम्नलिखित कथनों में कौन-से कथन भारत में राष्ट्रपति के चुनाव के संबंध में सत्य हैं?

- (i) राष्ट्रपति के चुनाव में 'एकल संक्रमणीय मत' द्वारा 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' की पद्धति लागू की गई है।
- (ii) यदि राष्ट्रपति के चुनाव के समय किसी विधानसभा में कुछ स्थान खाली हैं या किसी राज्य की विधानसभा भंग है तो ऐसी स्थिति में चुनाव को अधिकतम 6 माह तक टाला जा सकता है।
- (iii) प्रत्येक मतदाता को मत देते समय अपनी वरीयताओं (Preferences) का अंकन करना होता है।
- (iv) विधायकों के मतों की गणना करने के लिए राज्य की जनसंख्या से आशय 2001 की जनसंख्या से है।

कूट -

- (1) (i) और (iii)
- (2) (ii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iii)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

5. भारत में राष्ट्रपति चुनाव लड़ने हेतु कुछ अहताएँ निर्धारित की गई हैं। इनके अनुसार, कोई भी ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति हो सकता है जो-

- (i) जन्म से भारत का नागरिक हो।
- (ii) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- (iii) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की अर्हता रखता हो।

6. राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित सभी शंकाओं और विवादों की जाँच तथा फैसला किसके द्वारा किया जाता है?

- (1) संसद
- (2) निर्वाचन आयोग
- (3) सर्वोच्च न्यायालय
- (4) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति का निवास-स्थल संबंधी उच्च न्यायालय।

7. राष्ट्रपति के निर्वाचन से जुड़े प्रावधानों के संबंध में सुमेलित कथनों का चयन कीजिए-

- (i) राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए किसी प्रत्याशी का नाम कम से कम 50 मतदाताओं द्वारा प्रस्तावित और कम से कम 50 द्वारा अनुमोदित होना चाहिए।
- (ii) चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों के लिए 15 हजार रुपये की जमानत राशि निश्चित की गई है।
- (iii) यदि कोई उम्मीदवार चुनाव में डाले गए कुल मतों का 1/10 भाग प्राप्त करने में असफल रहता है तो उसकी जमानत राशि जब्त कर लिए जाने का प्रावधान है।

कूट-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

8. भारत में राष्ट्रपति पद के संबंध में सुमेलित कथन कौन-सा/से हैं?

- (i) यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के रूप में पहले निर्वाचित हो चुका है तो भी उसे पुनः इस पद के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार होगा।
- (ii) भारत में कोई व्यक्ति अधिकतम दो बार राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हो सकता है।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

9. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) प्रशासनिक शक्ति के अंतर्गत राष्ट्रपति को देश के सभी उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करने तथा

(3) राष्ट्रपति किसी देश के साथ युद्ध घोषित करने तथा शांति स्थापित करने की शक्ति का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना नहीं कर सकता।

(4) संसद के संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है।

10. राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों के संबंध में सुमेलित कथन हैं-

- (i) यदि संसद के दोनों सदनों के बीच किसी विषय पर गतिरोध उत्पन्न हो जाए तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है।
- (ii) प्रत्येक आम चुनाव के बाद पहले सत्र की शुरुआत पर तथा प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के आरंभ पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के संयुक्त सत्र (Joint Session) को संबोधित करता है।
- (iii) राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों को अनुमति देने या अनुमति रोकने की शक्ति प्राप्त है।
- (iv) संसद का सत्र चल रहे होने के बावजूद राष्ट्रपति विशेष परिस्थितियों में अध्यादेश (Ordinance) जारी सकता है।

कूट-

- (1) (i), (iii) और (iv)
- (2) (i), (ii) और (iii)
- (3) (ii), (iii) और (iv)
- (4) (i), (ii) और (iii)

11. निम्नलिखित में किन विधेयकों को संसद में प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व-अनुमति की आवश्यकता होती है?

- (i) नये राज्यों के निर्माण से संबंधित विधेयक।
- (ii) संविधान संशोधन विधेयक
- (iii) धन विधेयक
- (iv) साधारण विधेयक

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (i), (iii) और (iv)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

12. सूची I को सूची II से सुमेलित कीजिए।

- (B) परिहार (Remission) (ii) अपराधी को दण्डादेश से पूरी तरह मुक्त कर देना।
- (C) विराम (Respite) (iii) कठोर प्रकृति के दण्ड के स्थान पर हल्की प्रकृति का दण्ड दिया जाना।
- (D) प्रविलंबन (Reprive) (iv) किसी गर्भवती स्त्री को मृत्युदण्ड के स्थान पर आजीवन कारावास दे देना।
- (E) क्षमा (Pardon) (v) दण्डादेश की प्रकृति बदले बिना दण्ड की मात्रा को कम कर देना।

कूट-

	A	B	C	D	(E)
(1)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)
(2)	(iv)	(ii)	(iii)	(i)	(v)
(3)	(iii)	(v)	(iv)	(i)	(ii)
(4)	(iii)	(v)	(ii)	(i)	(iv)

13. अनुच्छेद 72 के तहत राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति किन मामलों में सुसंगत है?

- (i) यदि दण्ड या दण्ड का आदेश सेना न्यायालय द्वारा दिया गया है।
- (ii) यदि दण्ड अथवा दण्ड का आदेश किसी ऐसे कानून के उल्लंघन के लिए दिया गया है जो संघ को कार्यपालिका शक्ति के अंतर्गत शामिल है।
- (iii) ऐसे सभी मामले जिनमें मृत्यु-दण्ड का आदेश दिया गया है, चाहे वे मामले संघ से संबंधित हों या राज्यों से।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) केवल (iii)
- (3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

14. राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्तियों में मुख्य अंतर है-

- (i) राष्ट्रपति को सेना न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड को क्षमा या कम करने की शक्ति है किन्तु राज्यपाल की शक्ति का विस्तार सेना न्यायालय पर लागू नहीं होता।

- (ii) राष्ट्रपति को यह शक्ति उन विषयों पर प्राप्त है जो संघ की कार्यपालिका शक्ति से जुड़े हैं जबकि

कूट-

- (1) केवल (ii) (2) (i) और (iii)
- (3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के होने के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह केवल संपूर्ण देश में (न कि देश के किसी भाग में) आपातकाल की उद्घोषणा कर सकता है।

- (ii) अनुच्छेद 359 में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि वह अनुच्छेद 20 और 21 के अलावा शेष अनुच्छेदों में दिये गए मूल अधिकारों या उनमें से किन्हीं का निलंबन कर सकेगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

16. निम्नलिखित में कौन-कौन सी वीटो की शक्ति भारत के राष्ट्रपति को प्राप्त है?

- (i) आत्यंतिक वीटो (Absolute Veto)
- (ii) विशेषित वीटो (Qualified Veto)
- (iii) निलंबनकारी वीटो (Suspensive Veto)
- (iv) जेबी वीटो (Pocket Veto)

कूट-

- (1) (i) और (iii) (2) (ii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (iii) और (iv)

17. जब संसद द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो वह निम्नलिखित विकल्पों में से किसका चयन कर सकता है?

- (i) वह विधेयक को अनुमति देने की घोषणा कर सकता है।

- (ii) वह विधेयक को विचारार्थ अपने पास रोक सकता है।

- (iii) यदि उक्त विधेयक धन विधेयक अथवा सविधान

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारत का राष्ट्रपति निर्लेखनकारी वोटों के तहत धन विधेयकों तथा संविधान संशोधन विधेयकों से भिन्न किसी विधेयक को पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ संसद को लौटा सकता है।
- (ii) यदि संसद राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार हेतु लौटाये गये विधेयक को दो-तिहाई बहुमत से पुनः पारित कर दे तो राष्ट्रपति को विधेयक पर अनुमति देनी ही पड़ती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

19. निम्नलिखित कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) राष्ट्रपति की वोटों शक्ति राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित विधेयकों पर भी लागू होती है।
- (ii) जब राष्ट्रपति राज्यपाल के माध्यम से कोई विधेयक राज्य विधानमंडल को पुनर्विचार के लिए लौटा देता है तो विधानमंडल को 6 महीनों के भीतर उस विधेयक पर पुनर्विचार करके संशोधन सहित या संशोधनों के बिना उसे राष्ट्रपति को वापस भेजना होता है।
- (iii) राज्यों द्वारा पुनर्विचार के बाद राष्ट्रपति को भेजे गये विधेयकों पर राष्ट्रपति अनुमति देने के लिए बाध्य है।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

20. राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति के संदर्भ में कौन-सा कथन गलत है?

- (1) यदि संसद का एक सदन सत्र में है तो भी अध्यादेश जारी किया जा सकता है।
- (2) संसद के सत्र के पुनः सम्मेलन (Reassemble) होने से 6 सप्ताह की समाप्ति पर अध्यादेश निष्प्रभावी हो जाता है, जब तक कि इस समयावधि के दौरान संसद के दोनों सदन उसका अनुमोदन करने का संकल्प न पारित कर दें।

21. यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के द्वारा किए गए किसी व्यक्तिगत कार्य के संबंध में अनुतोष (relief) का दावा करने वाली सिविल कार्यवाही शुरू करना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है किंतु इसके लिए उसे कुछ शर्तें पूरी करनी होती हैं। ये शर्तें कौन-सी हैं?

- (i) लिखित सूचना राष्ट्रपति को दी गई हो।
- (ii) ऐसी सूचना देने के बाद कम से कम 2 महीने का समय बीत गया हो।
- (iii) इस सूचना में पक्षकार का नाम, पता, कार्यवाही की प्रवृत्ति तथा मांगें गए अनुतोष (relief) का विवरण दिया गया हो।

कूट—

- (1) (i) और (iii) (2) (i) और (ii)
- (3) (i), (ii) और (iii) (4) इनमें से कोई नहीं

22. राष्ट्रपति को दी गई उन्मुक्तियों के संदर्भ में कौन-सा कथन सुमेलित नहीं है?

- (1) राष्ट्रपति अपने पद की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अपने द्वारा किए गए या करने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा।
- (2) राष्ट्रपति के पद धारण करने के दौरान किसी भी न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई भी दांडिक या आपराधिक कार्यवाही न तो शुरू की जाएगी और न ही चालू रखी जाएगी।
- (3) राष्ट्रपति के पद धारण करने के दौरान उसे गिरफ्तार करने के लिए आदेश जारी करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय को नहीं होगा।
- (4) अनुच्छेद 361 के तहत राष्ट्रपति का उन्मुक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

23. भारत के राष्ट्रपति की पदावधि की समाप्ति के संबंध में सुमेलित कथन है/हैं—

- (i) राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति को संबोधित त्यागपत्र के माध्यम से अपनी पदावधि समाप्त कर सकता है।
- (ii) यदि राष्ट्रपति के विरुद्ध असमर्थता या साचित्र कदाचार के आधार पर महाभियोग पारित होता है तो उसे पदावधि समाप्त हो जाती है।

24. भारत के राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग के संदर्भ में कौन-से कथन सुमेलित हैं?

- (i) महाभियोग की कार्यवाही संसद के किसी भी सदन में आरंभ की जा सकती है और महाभियोग की संपूर्ण प्रक्रिया में न्यायालय का हस्तक्षेप नहीं होता है।
- (ii) महाभियोग संबंधी प्रस्ताव पारित करने के लिए आधे से अधिक राज्य विधानसभाओं की सहपति आवश्यक है।
- (iii) भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग का प्रस्ताव नहीं लाया गया है।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

25. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) भारतीय संविधान में यह प्रावधान है कि नए राष्ट्रपति का निर्वाचन पुराने राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पहले हो जाना चाहिए।
- (ii) यह भी प्रावधान है कि यदि राष्ट्रपति का पद राष्ट्रपति की मृत्यु, उसके त्यागपत्र, महाभियोग या किसी अन्य कारण से रिक्त हुआ है तो रिक्ति की तारीख के पश्चात् यथाशीघ्र किंतु किसी भी स्थिति में 6 महीने से पहले नए राष्ट्रपति का निर्वाचन कर लिया जाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

भारत का उपराष्ट्रपति (The Vice President of India)

संविधान के अनुच्छेद 63-71 तक उपराष्ट्रपति पद से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। भारत में उपराष्ट्रपति का महत्व या उसकी भूमिका वह नहीं है जो अमेरिकी उपराष्ट्रपति की है। भारत का उपराष्ट्रपति वस्तुतः उन विरल स्थितियों में राष्ट्रपति के कर्तव्य निभाने के लिए चुना जाता है जब किसी कारण से राष्ट्रपति अपने पद का निर्वाह करने में सक्षम न हो।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the Vice President)

अनुच्छेद 66 में बताया गया है कि उपराष्ट्रपति का निर्वाचन किस प्रकार होगा। इस संबंध में प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं—

(क) कोई व्यक्ति भारत का उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए तभी अर्ह (eligible) होगा जब वह तीन शर्तें पूरी करेगा—

- (i) वह भारत का नागरिक हो।
- (ii) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- (iii) वह राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने की अर्हताएँ (eligibilities) पूरी करता हो।

गौरतलब है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों की अर्हताओं में एक ही अंतर है। राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए लोकसभा सदस्य बनने की अर्हताएँ पूरी करना ज़रूरी है जबकि उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए ज़रूरी है कि वह राज्यसभा सदस्य होने की अर्हता रखे।

(ख) अनुच्छेद 66(3) में बताया गया है कि उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचकगण (Electoral college) द्वारा होगा। यह निर्वाचन 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' (Proportional representation) की पद्धति के अनुसार 'एकल सक्मणीय मत' (Single transferable vote) द्वारा होगा और इस निर्वाचन में मतदान गुप्त होगा। इस प्रावधान से स्पष्ट है कि 'एकल सक्मणीय मत' (Single transferable vote) तथा 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' (Proportional representation) की पद्धति से उपराष्ट्रपति का निर्वाचन राष्ट्रपति के निर्वाचन के समान ही है। इसके बाद भी राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन का अंतर ही महत्वपूर्ण अंतर है जो इस प्रकार है—

- (i) उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में संसद के दोनों सदनों के सभी सदस्य भाग्यलब्ध हैं जबकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में सिर्फ निर्वाचित (elected) सदस्य।
- (ii) जहाँ उपराष्ट्रपति के चुनाव में सिर्फ संसद के दोनों सदन शामिल होते हैं, वहीं राष्ट्रपति के चुनाव में सभी राज्यों तथा दिल्ली व पुदुच्चेरी संघ राज्यक्षेत्रों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य भी शामिल होते हैं।
- (ग) जैसे राष्ट्रपति के संबंध में है, वैसे ही उपराष्ट्रपति के संबंध में भी उपबंध है कि वह संसद के किसी सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा और यदि वह इनमें से किसी भी सदन का सदस्य होते हुए उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित होता है तो यही समझा जाएगा कि उपराष्ट्रपति का पद ग्रहण करने की तारीख से उसने उक्त सदन की सदस्यता छोड़ दी है।
- (घ) राष्ट्रपति की तरह उपराष्ट्रपति बनने के लिए भी शर्त है कि उम्मीदवार भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी या अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद (Office of profit) धारण न करता हो। इसमें स्पष्टीकरण दिया गया है कि इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए कोई व्यक्ति सिर्फ इसलिए लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह भारत का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति, किसी राज्य का राज्यपाल या केंद्र सरकार अथवा किसी राज्य सरकार का मंत्री है।

निर्वाचन से जुड़े अन्य उपबंध (Other provisions related with election):

उपराष्ट्रपति पुनः निर्वाचित होने के लिए अपनी उम्मीदवारी पेश कर सकता है। भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली

यह प्रावधान भी किया गया है कि उपराष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन की प्रक्रिया पूर्व उपराष्ट्रपति के पदमुक्त होने से पहले ही पूर्ण कर ली जाएगी। यदि उपराष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, त्यागपत्र, पद से हटाए जाने या किसी अन्य कारण से खाली हुआ है तो उसके पद को भरने के लिए निर्वाचन यथाशीघ्र (as soon as possible) कराया जाएगा।

उपराष्ट्रपति की पदावधि तथा हटाए जाने की प्रक्रिया

(The Vice President's term and the procedure of his removal)

उपराष्ट्रपति की पदावधि भी पाँच वर्ष की ही है, किंतु दो आधारों पर इस अवधि के पहले वह पद से मुक्त हो सकता है। पहला तरीका है कि वह राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख अर्थात् त्यागपत्र के माध्यम से अपना पद छोड़ सकता है। दूसरा तरीका यह है कि उपराष्ट्रपति को पद से हटा दिया जाए। उपराष्ट्रपति को हटाने की प्रक्रिया निम्नलिखित है-

- (i) कम से कम 14 दिन पूर्व इस आशय की सूचना देना जरूरी है कि उपराष्ट्रपति को हटाने से संबंधित संकल्प (resolution) प्रस्तुत किया जाने वाला है।
- (ii) ऐसा संकल्प (resolution) राज्यसभा में ही रखा जा सकता है। उसका आधार कोई भी ऐसा कारण हो सकता है जिसे राज्यसभा उचित समझती हो।
- (iii) उपराष्ट्रपति को हटाए जाने के संकल्प को राज्यसभा की तत्कालीन समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा पारित किया जाना जरूरी है। इसका अर्थ हुआ कि राज्यसभा में यदि वर्तमान में कुल सदस्य संख्या 245 है तो 123 या अधिक सदस्यों द्वारा इस आशय का संकल्प पारित किया जाना जरूरी होगा।
- (iv) राज्यसभा द्वारा संकल्प पारित किए जाने के बाद यह भी जरूरी है कि लोकसभा उस प्रस्ताव को समर्थन करे। लोकसभा में इसके लिए साधारण बहुमत (Simple majority) ही पर्याप्त है।

उपराष्ट्रपति के कार्य (Functions of the Vice President)

अनुच्छेद 64 और 65 में उपराष्ट्रपति के कार्यों का वर्णन किया गया है।

उपराष्ट्रपति के कार्य दो प्रकार के हैं। प्रथम, उसका कार्य राज्यसभा के सभापति के तौर पर तत्कालीन निर्वाह करना है। संविधान के अनुच्छेद 64 में उपराष्ट्रपति को राज्यसभा का 'पदेन सभापति' (Ex-officio chairman) बताया गया है। राज्यसभा के सभापति के तौर पर वह राज्यसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है। ध्यातव्य है कि उपराष्ट्रपति राज्यसभा का सदस्य नहीं होता। इसलिए उसे राज्यसभा की कार्यवाहियों में मतदान का अधिकार नहीं है। यदि किसी प्रस्ताव पर सभा और विपक्ष में बराबर मत पड़े तो उसे निर्णायक मत (Casting vote) डालने का अधिकार दिया जाता है। यह व्यवस्था उचित होती है, क्योंकि अंतरिम संविधान में है।

उपराष्ट्रपति का दूसरा कार्य आकस्मिक स्थितियों में राष्ट्रपति पद का निर्वाह करना है। अनुच्छेद 65 में बताया गया है कि राष्ट्रपति की मृत्यु, पद-त्याग या पद से हटाए जाने के कारण उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में उपराष्ट्रपति तब तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा जब तक नया राष्ट्रपति विधिपूर्वक निर्वाचित होकर अपना पद ग्रहण न कर ले। अनुच्छेद 65(2) में यह भी बताया गया है कि यदि राष्ट्रपति अपनी अनुपस्थिति, बीमारी या किसी अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तो उपराष्ट्रपति तब तक राष्ट्रपति के कार्यों को संचालेगा जब तक कि राष्ट्रपति पुनः अपना कार्यभार न संभाल ले। अनुच्छेद 65(3) में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति के रूप में काम करने की अवधि में उपराष्ट्रपति को वे सभी शक्तियाँ (powers), उन्मुक्तियाँ (immunities), परिलब्धियाँ (emoluments) आदि प्राप्त होंगी जो राष्ट्रपति को प्राप्त होती हैं।

उपराष्ट्रपति की परिलब्धियाँ (Emoluments of the Vice President)

संविधान में उपराष्ट्रपति के लिए परिलब्धियों की व्यवस्था नहीं की गई है। उपराष्ट्रपति को राज्यसभा के सभापति के तौर पर ही वेतन मिलता है। 2008 में संसद में उपराष्ट्रपति का वेतन बढ़ाकर 1.25 लाख रुपये प्रतिमाह कर दिया है और यह 01.01.2006 से लागू किया गया है। इसके अलावा उसे बहुत सी अन्य सुविधाएँ जैसे गुप्त आवास, दैनिक भत्ता, चिकित्सा सुविधा आदि भी प्राप्त होती हैं।

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति पदों का एक साथ रिक्त होना

(Simultaneous vacancy of the offices of the President and the Vice President)

कभी-कभी ऐसी स्थिति भी पैदा हो सकती है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों पद एक साथ रिक्त हो जाएँ। संविधान में इस संबंध में कोई निश्चित प्रावधान नहीं दिया गया है किंतु अनुच्छेद 70 में संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह इस प्रकार की आकस्मिकताओं के संबंध में ऐसे उपबंध कर सकेगी जिन्हें वह ठीक समझती हो। संसद ने 'राष्ट्रपति (कृत्यों का निर्वहन) अधिनियम, 1969' (The President (Discharge of functions) Act, 1969) पारित करके स्पष्ट किया है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों के न होने की दशा में सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की भूमिका ग्रहण करेगा; और यदि वह पद भी खाली हो तो सर्वोच्च न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश राष्ट्रपति का कार्य संचालेगा।

अभी तक के उपराष्ट्रपति (Vice Presidents so far)

अभी तक भारत में रहे सभी उपराष्ट्रपतियों तथा उनके कार्यकाल की सूची इस प्रकार है—

नाम	अवधि	नाम	अवधि
1. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	1952-1957	9. डॉ. शंकरदयाल शर्मा	1987-1992
2. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	1957-1962	10. श्री क. आर. नारायणन	1992-1997
3. डॉ. जाकिर हुसैन	1962-1967	11. श्री क. व्योमेश्वर	1997-2002
4. श्री बराहगिरि वेंकटेश्वर	1967-1969	(27/7/2002 को निधन)	
5. श्री गोपाल स्वर्ण पाठक	1969-1974	12. श्री पैरो सिंह शेखावत	2002-2007
6. श्री बी. डी. जेठी	1974-1979	13. श्री मोहम्मद हमीद अंसारी	2007-2012
7. न्यायमूर्ति मोहम्मद हिदायतुल्ला	1979-1984	14. श्री मोहम्मद हमीद अंसारी	2012- कार्यरत
8. श्री आर. वेंकटरमण	1984-1987		

भारत का प्रधानमंत्री (The Prime Minister of India)

भारतीय राजव्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद प्रधानमंत्री का है। औपचारिक दृष्टि से तो भारत में 'राज्य का प्रधान' (Head of state) राष्ट्रपति होता है, किंतु वास्तविक शक्ति प्रधानमंत्री के हाथ में होती है क्योंकि वह 'सरकार का प्रधान' (Head of government) होता है। तकनीकी शब्दावली में कहें तो राष्ट्रपति भारत का वैधानिक (De-jure) प्रमुख है जबकि प्रधानमंत्री 'वास्तविक' (De-facto) प्रमुख।

8.3.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति (Appointment of the Prime Minister)

अनुच्छेद 75(1) में बताया गया है कि "प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।"

'प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा' - इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रपति अपनी इच्छा से किसी भी व्यक्ति को प्रधानमंत्री बना सकता है। यह शक्ति विवेकाधीन अवश्य है किंतु यह कुछ संवैधानिक परंपराओं से बंधी है। इंग्लैंड में यह संवैधानिक परंपरा सुनिश्चित हो चुकी है कि सम्राट के पास आमतौर पर केवल एक ही व्यक्ति को ही प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करेगा। भारत में भी सामान्यतः यही परंपरा रही है कि 1979 में पहली बार मोरारजी देसाई और 1989 से प्रायः लगातार दिखने वाली राजनीतिक अस्थिरता (political instability) तथा गठबंधनी सरकार (coalition governments) के दौर में यह प्रश्न लगातार उठता रहा है कि यदि किसी भी दल के पास स्पष्ट बहुमत न हो तो राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री बनने के लिए किससे आमंत्रित करना चाहिए?

1983 में कुछ अन्य संभावनाएं पर विचार करने के लिए गठित सरकारी आयोग ने 1988 में सौंपी गई अपनी रिपोर्ट में इस समस्या पर भी सुझाव दिये थे। आयोग ने संसदीय प्रणाली की थी कि यदि किसी दल को लोकसभा या विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राष्ट्रपति (या राज्यपाल) को विभिन्न विकल्पों को विनिर्दिष्ट क्रम में स्वीकार करना चाहिए -

- (क) सबसे पहले चुनाव पूर्व गठबंधन के नेता को बुलाया जाएगा यदि उस गठबंधन के सदस्यों की संख्या अन्य किसी भी दल या चुनाव पूर्व गठबंधन के सदस्यों की संख्या से अधिक हो।
- (ख) सबसे बाद दल के नेता को बुलाया जाना चाहिए जिसने चुनाव जीता है कि उसे कुछ अन्य दलों या निंदलीय सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो।
- (ग) उसके बाद चुनाव पूर्व गठबंधन के नेता को बुलाया जाएगा यदि वह मत का आना कर रहा हो।
- (घ) यदि सदन में अविश्वास प्रस्ताव (No confidence motion) जीता गया हो तथा सरकार गिराई हो तो अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले विपक्ष के नेता को भी बुलाया जाता है।

8.3.2 अन्य मंत्रियों की तुलना में प्रधानमंत्री की शक्तियां (Powers of the Prime minister in comparison to other ministers)

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के अन्य मंत्रियों का संबंध अनुच्छेद 75(1) और 75(2) से स्पष्ट होता है। अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि "राष्ट्रपति अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।" अनुच्छेद 75(2) में कहा गया है कि "मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (during the pleasure of president) अपने पद धारण करेंगे।"

अनुच्छेद 75(1) के उपबंध कि 'राष्ट्रपति सभी मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा' के संबंध में यह ध्यान रखना जरूरी है कि इस संबंध में राष्ट्रपति के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है। प्रधानमंत्री जिन भी व्यक्तियों की सूची राष्ट्रपति को सौंपता है, राष्ट्रपति को उन्हीं को मंत्री के रूप में नियुक्त करना होता है। इस दृष्टि से भारत का प्रधानमंत्री शेष मंत्रियों से काफी ताकतवर हो जाता है।

इसी प्रकार, अनुच्छेद 75(2) में वर्णित उपबंध कि 'मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे' के संबंध में ध्यान रखना जरूरी है कि इसमें 'राष्ट्रपति के प्रसाद' (Pleasure of the president) का वास्तविक अर्थ 'प्रधानमंत्री के प्रसाद' (Pleasure of the Prime minister) से है क्योंकि राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री की सलाह पर ही कार्य करना होता है। यदि कोई मंत्री प्रधानमंत्री की

व्यावहारिक तौर पर देखें तो भारत का प्रधानमंत्री कुछ स्थितियों में शेष मंत्रियों से काफी अधिक ताकतवर हो सकता है; हालाँकि अन्य स्थितियों में यह भी हो सकता है कि वह तुलनात्मक रूप से कमजोर नज़र आए। पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री राजीव गांधी के शासनकाल में प्रधानमंत्री ही मतदाताओं का केंद्रीय आकर्षण होता था और सामान्यतः वह अपने दल का अध्यक्ष या अनौपचारिक प्रमुख भी होता था। उस दौर में प्रधानमंत्री 'समकक्षों में प्रथम' (First among equals) न होकर 'अधीनस्थों का प्रमुख' (Chief of subordinates) होता था। प्रधानमंत्री की ऐसी शक्ति को 'सुपर मिनिस्टीरियल शक्ति' (Super ministerial power) तथा ऐसे शासन को 'प्रधानमंत्रिय सरकार' (Prime ministerial government) कहा जाता है।

किंतु आजकल की गठबंधन सरकारों के दौर में प्रधानमंत्री सत्ता का केंद्र कम, दबाव का केंद्र ज्यादा हो गया है क्योंकि विभिन्न और विरोधी हितों पर आधारित बहुत से दलों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करते हुए उसे सरकार का स्थायित्व साधना होता है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी वह इतना बेबस नज़र आता है कि वह अपने किसी मंत्री की कार्य प्रणाली से असहमत होते हुए भी उसे रोकने में असमर्थ रहता है। इन्हीं लक्षणों के कारण कुछ लोग व्यंग्य में प्रधानमंत्री को 'समकक्षों में अंतिम' (Last among equals) कहने लगे हैं।

प्रधानमंत्री की प्रमुखता के निर्धारक (Determinants of the primacy of the prime minister):

- यदि प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की तुलना करें तो प्रधानमंत्री की प्रमुखता कई आधारों पर दिखाई पड़ती है, जैसे—
- (क) प्रधानमंत्री अपनी इच्छा से किसी भी संसद सदस्य को मंत्री बना सकता है, मंत्रिपरिषद में उसका स्तर (जैसे कैबिनेट मंत्री या राज्यमंत्री) तय कर सकता है, उसे विशेष कार्य या विभाग आवंटित कर सकता है, उसके कार्य-निष्पादन की जाँच कर सकता है और ज़रूरत पड़ने पर उसे निर्देश भी दे सकता है।
 - (ख) प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रालयों में समन्वय (Co-ordination) स्थापित करने के लिए जिम्मेदार है। मंत्री का संबंध सिर्फ अपने विभाग या मंत्रालय से होता है जबकि प्रधानमंत्री का सभी मंत्रालयों और विभागों से।
 - (ग) मंत्रिमंडल और मंत्रिपरिषद की सभी बैठकों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री ही करता है।
 - (घ) यदि प्रधानमंत्री किसी मंत्री को कार्य निष्पादन या आवरण से संतुष्ट नहीं करता तो वह उससे त्यागपत्र की मांग कर सकता है और त्यागपत्र न मिलने की स्थिति में राष्ट्रपति को सलाह देकर उसे हटाने से इच्छा भी कर सकता है।
 - (ङ) प्रधानमंत्री ही मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति को जोड़ने वाली कड़ी होता है। अतः प्रधानमंत्री पर यह कर्तव्य डाला गया है कि वह मंत्रिपरिषद के सभी निर्णय राष्ट्रपति को सूचित करे और यदि राष्ट्रपति कोई जानकारी मांगते हैं तो वह उन्हें दे।
 - (च) किसी मंत्री को मूल्य या सरकार की स्थिति में कोई फर्क नहीं आता, प्रधानमंत्री किसी अन्य व्यक्ति को वह मंत्रालय सौंप सकता है किंतु यदि प्रधानमंत्री की मूल्य हो जाती है तो मंत्रिपरिषद अर्थात् सरकार अपने आप विघटित हो जाती है। प्रधानमंत्री के बिना सरकार एक दिन भी नहीं चल सकती।

8.3.3 प्रधानमंत्री की दायित्व (Responsibilities of the Prime Minister)

संविधान में जो प्रावधान प्रधानमंत्री की दायित्व या प्रत्यक्ष ज़िम्मेदारी को संबंधित करके हैं, उन प्रावधानों के लिए इन दायित्वों को कुछ वर्गों में बांटकर देखा जा सकता है—

(क) राष्ट्रपति के संबंध में दायित्व (Responsibilities in regard to the President)

अनुच्छेद 78 में प्रधानमंत्री के कुछ दायित्वों का वर्णन किया गया है। आमतौर पर मुख्यतः प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच समन्वय बनाए रखने से है। अनुच्छेद 78 के तीन खंड हैं जिनमें निम्नलिखित दायित्वों का वर्णन किया गया है—

- (क) अनुच्छेद 78(क) के अनुसार प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह केंद्र सरकार के प्रशासन से संबंधित सभी निर्णयों तथा प्रस्तावित कानूनों की जानकारी राष्ट्रपति को प्रेषित करे।
- (ख) अनुच्छेद 78(ख) में कहा गया है कि यदि राष्ट्रपति द्वारा केंद्र सरकार के प्रशासन या किसी प्रस्तावित कानून से संबंधित जानकारी मांगी जाती है तो प्रधानमंत्री का कर्तव्य होगा कि उसे ऐसी जानकारी दे।
- (ग) अनुच्छेद 78(ग) में राष्ट्रपति को एक विशेषाधिकार दिया गया है। इसके अनुसार, यदि किसी मंत्री ने किसी विषय पर कोई निर्णय कर दिया है किंतु मंत्रिपरिषद ने उस पर विचार नहीं किया है तो राष्ट्रपति के अपेक्षा करने पर प्रधानमंत्री का कर्तव्य होगा कि वह उक्त निर्णय को मंत्रिपरिषद के समक्ष विचार के लिए रखे।

इन तीनों प्रावधानों का मूल उद्देश्य कार्यपालिका के विभिन्न स्तरों— राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के बीच समन्वय स्थापित करना है जो कि उचित ही है।

(ख) मंत्रिपरिषद के संबंध में दायित्व (Responsibilities in regard to the council of ministers):

(ग) संसद के संबंध में दायित्व (Responsibilities in regard to the parliament):

- प्रधानमंत्री संसद के निचले सदन अर्थात् लोकसभा का नेता होता है। संसद के संबंध में वह निम्नलिखित कार्य करता है—
1. वह राष्ट्रपति को संसद के विभिन्न सत्र आहूत (summon) करने तथा सत्रावसान (prorogue) करने की सलाह देता है।
 2. वह लोकसभा का विघटन (dissolution) करने से संबंधित निर्णय भी कर सकता है। सामान्य स्थितियों में राष्ट्रपति को उसकी यह सलाह माननी होती है।
 3. वह स्वयं या किसी मंत्री को संसदीय कार्य का प्रभार देकर सुनिश्चित करता है कि लोकसभा और राज्यसभा के प्रशासनिक कार्यों में कोई समस्या उत्पन्न न हो।
 4. वह संसद के समक्ष सरकार की नीतियाँ प्रस्तावित करता है।

(घ) प्रधानमंत्री के अन्य दायित्व (Other responsibilities of the prime minister):

- उपरोक्त भूमिकाओं के अलावा प्रधानमंत्री के निम्नलिखित कर्तव्य भी हैं—
1. वह केन्द्र सरकार का प्रमुख प्रतिनिधि होने के नाते जनता और मीडिया के समक्ष सरकार के कार्य-कलाप तथा नीतियों से संबंधित पक्ष रखता है तथा उन नीतियों पर प्रश्न उठाए जाने की स्थिति में सरकार की ओर से उत्तर देता है।
 2. केन्द्रीय कार्यपालिका का प्रमुख होने के नाते विभिन्न एजेंसियों की सरकारों के साथ समन्वय बनाये रखने में भी उसकी बड़ी भूमिका होती है। वह योजना आयोग (Planning Commission), राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) और राष्ट्रीय एकता परिषद (National Integration Council) आदि के अध्यक्ष की हैसियत से भी अपने इस कर्तव्य का निर्वहन करता है।
 3. देश की विदेश नीति के निर्माण तथा उसका अन्तर्गत विदेश नीति के अन्तर्गत विदेश नीति को ही प्रमुख भूमिका निभानी होती है। (यदि वह प्रधानमंत्री समझने में) उसकी सहायता करता है किन्तु विदेश नीति के अन्तर्गत विदेश नीति को ही प्रमुख भूमिका निभानी होती है।

अभी तक के प्रधानमंत्री (Prime ministers so far)

अभी तक भारत में रहे सभी प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल को इस प्रकार है—

क्र.सं.	प्रधानमंत्री	दल	कार्यकाल	कुल अवधि
1.	श्री जवाहर लाल नेहरू	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	15.8.1947-27.6.1964	1613 दिन
2.	श्री गुलजारी लाल नन्दा	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	27.6.1964-9.6.1964	14 दिन
3.	श्री लाल बहादुर शास्त्री	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	9.6.1964-17.1.1966	582 दिन
4.	श्री गुलजारी लाल नन्दा	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	17.1.1966-24.3.1966	14 दिन
5.	श्रीमती इंदिरा गांधी	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	24.3.1966-24.3.1977	4078 दिन
6.	श्री मोरारजी देसाई	जनता दल	24.3.1977-28.7.1979	857 दिन
7.	श्री चरण सिंह	जनता दल	28.7.1979-14.1.1980	171 दिन
8.	श्रीमती इंदिरा गांधी	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	14.1.1980-31.10.1984	1753 दिन
9.	श्री राजीव गांधी	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	31.10.1984-02.12.1989	1858 दिन
10.	श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह	जनता दल	02.12.1989-10.11.1990	343 दिन
11.	श्री चंद्रशेखर	समाजवादी जनता पार्टी	10.11.1990-21.06.1991	224 दिन
12.	श्री पी.वी. नरसिंह राव	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	21.06.1991-16.05.1996	1790 दिन
13.	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	भारतीय जनता पार्टी (राजग/ NDA)	16.5.1996-01.06.1996	13+3 दिन
14.	श्री एच.डी. देवगौड़ा	जनता दल (संघ) (संघ) मोर्चा (JDF)	01.06.1996-21.04.1997	325 दिन

केंद्रीय मंत्रिपरिषद् (Central Council of ministers)

संविधान के अनुच्छेद 74(1) में राष्ट्रपति को सहायता व सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् का उपबंध किया गया है। सभी मंत्रियों के समूह को मंत्रिपरिषद् (council of ministers) कहते हैं। यह मंत्रिमंडल (cabinet) से बड़ा समूह है। मंत्रिमंडल (cabinet) में केवल प्रमुख मंत्री शामिल होते हैं जबकि मंत्रिपरिषद् में सभी मंत्री।

मंत्रियों के विभिन्न स्तर (Different levels of ministers)

संविधान में मंत्रियों के विभिन्न स्तर नहीं बताए गए हैं किंतु व्यवहार में मंत्रियों को सामान्यतः 3 श्रेणियों में बाँटा जाता है—कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री तथा उपमंत्री। यह वर्गीकरण मोटे तौर पर इंग्लैंड की प्रणाली पर आधारित है। मंत्रियों की इन श्रेणियों का सामान्य परिचय इस प्रकार है—

(क) **कैबिनेट मंत्री (Cabinet Ministers):** कैबिनेट शब्द मूल संविधान में नहीं था। संविधान में 'मंत्रिपरिषद्' (Council of ministers) की ही चर्चा की गयी थी। मंत्रिमंडल (cabinet) की पहली पहचान 'संविधान संशोधन, 1978' के माध्यम से अब इस शब्द को अनुच्छेद 75 में शामिल कर लिया गया है तथा आधुनिक जमाने की संवैधानिक सिफारिश पर मंत्रिमंडल (cabinet) के सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने की बाध्यता औपचारिक की गई है।

कैबिनेट मंत्री मंत्रिपरिषद् के सबसे महत्वपूर्ण मंत्री होते हैं। इन्हें मिलाकर मंत्रिमंडल (Cabinet) बनाया है जो मंत्रिपरिषद् का प्रमुख अंग होता है। कैबिनेट मंत्रियों को मंत्रिमंडल की प्रत्येक बैठक में भाग लेने का अधिकार होता है। प्रत्येक कैबिनेट मंत्री अपने विभाग (Department) या मंत्रालय (Ministry) का प्रमुख होता है।

(ख) **राज्य मंत्री (State Ministers):** राज्य मंत्री तकनीकी तौर पर कैबिनेट मंत्री से कम महत्वपूर्ण नहीं होते क्योंकि वेतन और भत्ता इत्यादि की दृष्टि से उनमें और कैबिनेट मंत्रियों में कोई भिन्नता नहीं है। राज्य मंत्री व्यावहारिक तौर पर कैबिनेट मंत्रियों का बलवा मिलित महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हें कैबिनेट मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेने का अधिकार नहीं होता। राज्य मंत्री दो प्रकार के हो सकते हैं—स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्री (State Ministers with independent charge) तथा वे राज्य मंत्री जिन्हें स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया गया है। स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्री समूह में कैबिनेट मंत्रियों के समकक्ष होते हैं कि वे अपने विभाग की प्रमुख नीतियों और मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेने के लिए बुलाया जाता है जब उनके विभाग से संबंधित कोई मुद्दा बैठक में आवश्यक सूची में शामिल होता है। दूसरे प्रकार के राज्य मंत्री, अर्थात् वे जिन्हें स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया गया है, प्रायः किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करते हैं। ऐसे मंत्रियों को कार्यों का आबंटन संबद्ध कैबिनेट मंत्रियों द्वारा किया जाता है।

(ग) **उपमंत्री (Deputy ministers):** उपमंत्री वे कनिष्ठ (Junior) मंत्री हैं जो अपने विभाग या मंत्रालय के स्वतंत्र प्रमुख नहीं होते। प्रायः नए राजनीतिज्ञों को मंत्री संबंधी दायित्वों का आरंभिक प्रशिक्षण देने के लिए उपमंत्री बनाया जाता है। उपमंत्री या तो किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करता है या किसी स्वतंत्र प्रभार वाले राज्यमंत्री के अधीन।

उप-प्रधानमंत्री का पद (Office of the deputy prime minister)

संविधान में सिर्फ प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों का जिक्र किया गया है, उप-प्रधानमंत्री की चर्चा नहीं की गई है। इस दृष्टि से यह एक संविधानेतर (extra constitutional) पद है। व्यवहार में स्वतंत्रता के तुरंत बाद से ही इस पद का प्रयोग किया जाता रहा है। सबसे पहले पंडित जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमंडल में सरदार वल्लभभाई पटेल को उप-प्रधानमंत्री का पद दिया गया था। वे 1947 से 1950 तक उप-प्रधानमंत्री रहे। उनकी मृत्यु होने के बाद 1967 तक यह पद पुनः किसी को नहीं दिया गया। उसके बाद पुनः यह पद दिए जाने की परंपरा शुरू हुई जो गतबंधन सरकारों के दौर में विशेष रूप से उभरती हुई दिखी।

अभी तक निम्नलिखित नेताओं ने उप-प्रधानमंत्री का पद धारण किया है—

1. सरदार वल्लभभाई पटेल - 1947-1950

4. चौधरी चरण सिंह तथा जगजीवन राम (संयुक्त) - 1978-1979
5. यशवंत राव चव्हाण - 1979-1980
6. चौधरी देवीलाल - 1989-1990
7. चौधरी देवीलाल - 1990-1991
8. लालकृष्ण आडवाणी - 2002-2004

'किचन कैबिनेट' (Kitchen Cabinet)

पिछले कुछ दशकों में एक और शब्द का प्रयोग चल पड़ा है जिसे 'किचन कैबिनेट' (Kitchen cabinet) कहते हैं। यह एक संविधानेतर निकाय (Extra-constitutional body) है क्योंकि संविधान में कहीं भी इसका उपबन्ध नहीं है। यह कैबिनेट मंत्रियों के समूह का एक बहुत छोटा उपसमूह होता है जो प्रधानमंत्री के साथ मिलकर महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार-विमर्श करता है तथा त्वरित निर्णय लेता है। कैबिनेट को बड़े आकार के कारण सभी कैबिनेट मंत्रियों को एक साथ बुलाना और निर्णय करना कठिन होता है। इसके अलावा, 'गोपनीयता' बनाए रखने की दृष्टि से भी 'किचन कैबिनेट' का महत्व है।

नेहरू जी के समय से ही अनौपचारिक रूप में यह धारणा चली आ रही है। गठबन्धन की राजनीति के दौर में 'किचन कैबिनेट' की धारणा और ज्यादा प्रासंगिक हो गई है क्योंकि प्रधानमंत्री पूरी कैबिनेट के साथ सहज नहीं होता।

मंत्रियों के दायित्व (Responsibilities of Ministers)

संविधान में मंत्रियों पर दो प्रकार के उत्तरदायित्व दाले गये हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility) तथा वैयक्तिक उत्तरदायित्व (Individual responsibility)।

(क) सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility)

सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत इंग्लैंड में संवैधानिक परम्पराओं पर आधारित है। भारतीय संविधान तथा नेहरू संसिद्धांत को बहाल रखते हुए इसका उल्लेख संविधान में करने का अन्तिम समझौता अनुच्छेद 75(3) में औपचारिक रूप से किया गया है कि "मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व होगी।"

'सामूहिक उत्तरदायित्व' का अर्थ है कि कैबिनेट द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय मंत्रिपरिषद् के सामूहिक निर्णय माना जाता है। हो सकता है कि मंत्रिपरिषद् के किसी एक या अधिक मंत्रियों के मतों में मतभेद हो, किन्तु यह मतभेद मंत्रिमंडल की बैठकों के भीतर ही व्यक्त होना चाहिये। उक्त मतभेदों को मंत्रिपरिषद् को संतुष्ट करने के लिए हल करने के लिए तो प्रत्येक मंत्री को, अपनी व्यक्तिगत असहमति को महत्व देने के बजाय स्वयं को मतभेदों को समाधान करने का साधन करना होगा क्योंकि वह सरकार का निर्णय है, किसी मंत्री विशेष का नहीं। यदि किसी मंत्री को लगता है कि वह कैबिनेट या प्रधानमंत्री के किसी फैसले से संतुष्ट नहीं है और वह उस असंतुष्टि को अपने तक रखने की स्थिति में नहीं है तो उसे मंत्रिपरिषद् से इस्तीफा देकर अलग हो जाना चाहिए।

सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत आजकल प्रश्नों के घेरे में है। गठबन्धन सरकारों के दौर में इसे बचाए रखना कठिन होता जा रहा है क्योंकि अब कैबिनेट में सिर्फ एक दल के मंत्री नहीं होते बल्कि विभिन्न और विरोधी दलों, विचारधाराओं तथा हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्री होते हैं।

अनुच्छेद 75(3) में मंत्रिपरिषद् का सामूहिक उत्तरदायित्व 'लोकसभा' के प्रति बताया गया है। यह व्यवस्था इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली के अनुकरण में बनाई गई है। मंत्री चाहे राज्यसभा का ही क्यों न हो, सामूहिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से वह लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

(ख) व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Individual responsibility):

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धांत अनुच्छेद 75(2) में निहित है जिसमें कहा गया है कि "मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे।" इसका तात्पर्य है कि मंत्री सामूहिक रूप से भले ही लोकसभा के प्रति उत्तरदायी हों, वे व्यक्तिगत तौर पर कार्यपालिका के प्रमुख के प्रति उत्तरदायी होते हैं। ध्यातव्य है कि 'राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत' पद धारण करने का वास्तविक अर्थ 'प्रधानमंत्री के प्रसादपर्यंत' पद धारण करना है क्योंकि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही कार्य करता है। यदि प्रधानमंत्री को किसी मंत्री के आचरण या कार्य के प्रति असंतोष हो जाए तो वह उससे इस्तीफा मांग लेता है और यदि

मंत्री पद की अर्हताएँ (Eligibilities for the office of minister)

संविधान में मंत्रियों की अर्हताओं (Eligibilities) के व्यापक प्रावधान नहीं किए गए हैं। एक प्रावधान अनुच्छेद 75(5) में है जिसमें कहा गया है कि "कोई मंत्री, जो निरंतर छह मास की किसी अवधि तक संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।"

इस कथन से मंत्रियों की दो अर्हताएँ समझी जा सकती हैं—

- (क) मंत्री बनने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति संसद के दोनों में से किसी सदन का सदस्य हो। इसमें निहित है कि जो अर्हताएँ लोकसभा या राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए हैं, वे मंत्री बनने के लिए भी हैं।
- (ख) यदि कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य न हो तो भी वह अधिकतम छह महीनों के लिए मंत्री रह सकता है। इतना ही नहीं, वह प्रधानमंत्री भी बन सकता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई व्यक्ति छह-छह महीने की नियुक्तियाँ बार-बार करवाता रहे और अनुच्छेद 75(5) के तहत अपनी नियुक्ति को वैध सिद्ध करने की कोशिश करे। किसी सरकार के पूरे कार्यकाल में कोई व्यक्ति दोनों में से किसी सदन का सदस्य हुए बिना अधिकतम 6 महीने के लिए ही मंत्री बन सकता है, उससे अधिक के लिए नहीं।

मंत्रिपरिषद् से जुड़े अन्य पहलू (Other aspects related with the council of ministers)

मंत्रिपरिषद् से संबंधित कुछ अन्य पहलू इस प्रकार हैं—

मंत्रिपरिषद् का आकार (Size of the council of ministers)

मूल संविधान में मंत्रिपरिषद् के आकार से संबंधित कोई उपबंध नहीं था। संविधान के '91वें संशोधन अधिनियम, 2006' के माध्यम से अनुच्छेद 75(1) (क) अंतःस्थापित किया गया है कि मंत्रिपरिषद् में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या लोकसभा के सदस्यों की कुल संख्या के 15% से अधिक नहीं होगी। इसका अर्थ है कि वर्तमान में कानूनी मंत्रिपरिषद् में अधिकतम 83 मंत्री हो सकते हैं।

दलबदल-विरुद्ध से संबंधित प्रावधान (Provisions related with Anti-defection)

संविधान के '52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985' के माध्यम से अनुच्छेद 75(1) (ख) अंतःस्थापित किया गया है जिसका उद्देश्य दलबदल की प्रवृत्ति पर रोक लगाना था। इसमें कहा गया है कि संसद के किसी सदन का कोई सदस्य, जिसे 10वीं अनुसूची के पैरा दो के अधीन उस सदन का सदस्य होने के अयोग्य बनाया गया है, अपना पदवाक् (oath) समाप्त होने या पुनर्निर्वाचित होने (इनमें से जो भी पहले हो) तक मंत्री पद प्राप्त करने के लिये अयोग्य होगा।

ध्यातव्य है कि 10वीं अनुसूची '52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985' द्वारा अंतःस्थापित की गई थी। शुरुआत में, इसमें व्यवस्था थी कि यदि किसी दल के एक-तिहाई सांसद या विधायक अपने दल से अलग होकर किसी अन्य दल में शामिल हो जाते हैं तो इसे 'दलबदल' (defection) नहीं, 'विघटन' (split) माना जाएगा। विघटन की स्थिति में सदस्यों की सदस्यता समाप्त नहीं होती थी। '91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003' द्वारा इस उपबंध को हटा दिया गया है। अब, कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा किसी अन्य दल में किया गया 'विलय' (merger) ही कानूनी तौर पर मान्य है। यदि उससे कम सदस्य दल छोड़ने का फैसला करते हैं तो वे सदन के सदस्य नहीं रहते हैं और उन्हें जनता से पुनः निर्वाचित होना पड़ता है। उनके मंत्री बनने या लाभ का कोई अन्य पद (Remunerative post) धारण करने पर भी कानूनी रोक है।

8.5

भारत का महान्यायवादी (Attorney General of India)

महान्यायवादी भारत सरकार का सर्वोच्च विधि अधिकारी (Law officer) है। गौरतलब है कि 'विधि अधिकारी' (Law officer) पद की परिभाषा 'विधि अधिकारी (नियम एवं शर्तों) नियमावली, 21987' [Law officers (Terms and conditions) Rules, 1987] में दी गई है जिसमें तीन अधिकारियों को विधि अधिकारी माना गया है। ये हैं- भारत का महान्यायवादी (Attorney General of India), भारत का महाधिवक्ता (Solicitor General of India) तथा भारत के अपर महाधिवक्ता (Additional Solicitors General of India)।

उपरोक्त वर्णित तीनों अधिकारियों में महान्यायवादी सर्वोच्च स्तर पर है। संविधान के अनुच्छेद 76 में उसकी नियुक्ति, कार्य एवं सेवा-शर्तों से संबंधित कुछ प्रावधानों का उल्लेख है। इसके अलावा, अनुच्छेद 88 तथा 105(4) में भी उसके पद से संबंधित कुछ अधिकारों और मर्यादाओं का उल्लेख किया गया है।

नियुक्ति व योग्यताएँ (Appointment and Qualifications)

महान्यायवादी की नियुक्ति के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 76(1) में कहा गया है कि "राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अहित किसी व्यक्ति को भारत का महान्यायवादी नियुक्त करेगा। स्पष्ट है कि महान्यायवादी के लिए उन योग्यताओं का होना आवश्यक है जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए होती हैं। दूसरे शब्दों में, उसे भारत का नागरिक होने के साथ-साथ निम्नलिखित तीन में से एक योग्यता धारण करनी चाहिए-

- (i) उसे उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का कम से कम पाँच वर्षों का अनुभव हो या
- (ii) किसी उच्च न्यायालय में दस वर्षों तक वकालत करने का अनुभव हो या
- (iii) वह राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता (Distinguished jurist) हो।

पदावधि व परिलब्धियाँ (Term and Emoluments)

महान्यायवादी की पदावधि या परिलब्धियों के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 76(2) में उल्लेख है कि वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (during pleasure) पद पर होगा और न्यायाधीश पद पर नियुक्त होने वाली राष्ट्रपति उसके लिए निर्धारित करे। स्पष्ट है कि उसका कार्यकाल निश्चित न होकर राष्ट्रपति के प्रसाद पर निर्भर है। इसका अर्थ है कि उसका कार्यकाल निश्चित नहीं है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो उसे कभी भी पद से हटा सकता है। उसकी सेवा शर्तों से संबंधित 1987 के नियमों में उल्लेख है कि उसे हटाने के लिए कम से कम 3 महीनों का अग्रिम नोटिस दिया जाना जरूरी है। इसके अतिरिक्त, यदि महान्यायवादी स्वयं पद छोड़ना चाहे तो कभी भी राष्ट्रपति को संबोधित अपने त्यागपत्र द्वारा पदमुक्त हो सकता है।

महान्यायवादी की पदावधि राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत होने का व्यावहारिक अर्थ मंत्रिपरिषद के प्रसादपर्यंत होने से है क्योंकि उसकी पदावधि के संबंध में निर्णय करना राष्ट्रपति का विवेकाधिकार नहीं है। वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार निर्णय करने को बाध्य है।

1987 की नियमावली में महान्यायवादी की परिलब्धियाँ भी बताई गई हैं। उसे निश्चित वेतन तो मिलता ही है, साथ ही प्रत्येक मामले में न्यायालय में पेश होने के लिए प्रत्येक पेशी (appearance) के अनुसार अलग से भुगतान भी किया जाता है। भुगतान संबंधी दरें आदि 1987 की नियमावली में स्पष्ट की गई हैं।

कार्य व दायित्व (Functions and responsibilities)

अनुच्छेद 76(2) में महान्यायवादी के कार्यों की संक्षिप्त चर्चा की गई है। इसमें बताया गया है कि वह-

- (i) भारत सरकार को विधि से संबंधित विषयों पर सलाह देगा;
- (ii) विधिक प्रकृति (Legal nature) के ऐसे अन्य कार्य करेगा जो राष्ट्रपति उसे समय-समय पर सौंपे या निर्दिष्ट करे-

(iv) यदि राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 143 के तहत सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श (opinion) मांगा हो तो वह न्यायालय में सरकार का पक्ष प्रस्तुत करेगा।

अनुच्छेद 76 के तहत बनाए गए नियमों को अनुसार महान्यायवादी भारत सरकार के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में लाए गए मामलों में भारत सरकार की तरफ से न्यायालय में उपस्थित होता है। उच्च न्यायालयों में भी भारत सरकार से संबंधित मामलों में उससे उपस्थित होने की अपेक्षा की जा सकती है। भारत सरकार ने जिस मामले में उसकी सलाह ली है, उसमें वह सरकार के विरुद्ध मुकदमा नहीं लड़ सकता। भारत सरकार को अनुमति के बिना वह किसी भी आपराधिक मामले में अभियुक्तों की प्रतिरक्षा नहीं कर सकता है और न ही किसी कंपनी के निदेशक के पद पर अपनी नियुक्ति स्वीकार कर सकता है।

शक्तियाँ (Powers)

संविधान के अनुच्छेद 76(3) में कहा गया है कि महान्यायवादी को अपने कर्तव्यों के पालन में भारत के राज्यक्षेत्र में सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा। उसे संसद के किसी भी सदन या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक तथा संसद की किसी समिति, जिसका वह सदस्य है, की कार्यवाहियों में भाग लेने तथा बोलने का भी अधिकार दिया गया है हालाँकि उसे संसद के सदनों में मत देने का अधिकार नहीं है (अनुच्छेद 88)। उसे अपने कार्यकाल के दौरान संसद सदस्यों को प्राप्त होने वाले सभी विशेषाधिकार (privileges) एवं उन्मुक्तियाँ (immunities) भी प्राप्त होते हैं [अनुच्छेद-105(4)]।

ब्रिटेन के महान्यायवादी से तुलना (Comparison with British Attorney General)

भारतीय संविधान में महान्यायवादी का प्रावधान ब्रिटेन में उपस्थित है लेकिन दोनों राजव्यवस्थाओं में इस संबंध में कुछ मूलभूत अंतर हैं। ब्रिटेन में महान्यायवादी का पद एक राजनीतिक पद है। वह विधि मंत्री (Law Minister) ही महान्यायवादी का कार्य करता है, अतः मंत्रिमंडल के गठन के साथ ही वह आता है और सरकार गिरने के साथ चला जाता है। भारत में स्थिति इस रूप में भिन्न है कि यहाँ महान्यायवादी का पद राजनीतिक न होकर कार्यपालिका का है अर्थात् वह मंत्री नहीं होता, जिससे सरकार को सर्वोच्च विधि अधिकारी होता है। नेहरू जी के प्रधानमंत्री होने के दौरान एक बार यह विचार केंद्र सरकार की आरंभ से आया था कि महान्यायवादी के पद को विधि मंत्री के पद में मिला दिया जाए पर इसे स्वीकार नहीं मिल सकी।

ध्यातव्य है कि भारत में महान्यायवादी को संसद में राजनीतिक न होकर यहाँ संविधान लागू होने के बाद से लगातार यह परंपरा रही है कि जिस मंत्रिमंडल की सलाह पर महान्यायवादी को नियुक्ति की जाती है, उसके पद त्यागने अथवा नए मंत्रिमंडल के गठन के साथ ही महान्यायवादी अपने पद से इस्तीफा देता है।

भारत का महाधिवक्ता (Solicitor General of India)

महान्यायवादी की सहायता के करने के लिए कुछ और पदों की व्यवस्था की गई है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है- भारत का महाधिवक्ता (Solicitor General of India)। महाधिवक्ता भारत सरकार का दूसरा विधि अधिकारी है जिसका प्रमुख कार्य महान्यायवादी की सहायता करना है। दोनों में बड़ा अंतर यह है कि जहाँ महान्यायवादी का पद संविधान के अनुच्छेद 76 के तहत एक संवैधानिक पद (Constitutional post) है, वहीं महाधिवक्ता का पद संवैधानिक न होकर मात्र वैधानिक (Statutory) है। इस पद की सेवा शर्तों आदि का विनियमन 'विधि अधिकारी (नियम एवं शर्तें) नियमावली, 1987' [Law officers (terms and conditions) Rules, 1987] के तहत होता है।

भारत के महाधिवक्ता का कार्य भी प्रायः यही है कि वह विधिक मामलों में केंद्र सरकार को सलाह दे तथा आवश्यकतानुसार विभिन्न न्यायालयों में सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर उपस्थित हो तथा उसका पक्ष रखे।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. भारत के राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन संबंधी अर्हता (Eligibility) के संदर्भ में सत्य कथन है/हैं—

- (i) राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति दोनों पद के उम्मीदवार के लिए आवश्यक है कि वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
- (ii) राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए आवश्यक है कि वह लोकसभा सदस्य बनने की योग्यता रखता हो जबकि उपराष्ट्रपति पद के लिए आवश्यक है कि वह राज्यसभा सदस्य होने की अर्हता रखे।
- (iii) राष्ट्रपति पद के लिए जरूरी है कि वह लोकसभा अथवा राज्यसभा किसी एक का भी सदस्य बनने की अर्हता रखता हो।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (i) और (iii)
- (3) केवल (ii) (4) केवल (iii)

2. भारत के उपराष्ट्रपति पद के संबंध में सुमेलित कथन हैं—

- (i) उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में संसद के दोनों सदनों के सिर्फ निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं।
- (ii) उपराष्ट्रपति का चुनाव 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व' प्रणाली के अनुसार 'एकल संक्रमणीय मत' द्वारा होता है।
- (iii) उपराष्ट्रपति के संबंध में उपबंध है कि वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होगा।
- (iv) उपराष्ट्रपति राज्य सभा का सदस्य होता है।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (i), (ii) और (iv)
- (3) (ii) और (iii) (4) (ii) और (iv)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) उपराष्ट्रपति को हटाने से संबंधित संकल्प संसद के किसी भी सदन में रखा जा सकता है।
- (ii) उपराष्ट्रपति को हटाए जाने से संबंधित संकल्प का राज्य सभा में विशेष बहुमत से पारित होना आवश्यक होता है।
- (iii) उपराष्ट्रपति को हटाने से संबंधित संकल्प राज्यसभा

4. निम्नलिखित में कौन-सा/से कथन असत्य है/हैं?

- (i) उपराष्ट्रपति राज्यसभा के सभापति के तौर पर राज्यसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
- (ii) उपराष्ट्रपति को राज्यसभा की कार्यवाहियों में मतदान का अधिकार होता है।
- (iii) उपराष्ट्रपति राज्यसभा का सदस्य नहीं होता है।
- (iv) उपराष्ट्रपति को निर्णायक मत (Casting Vote) डालने का अधिकार मिला हुआ है।

कूट—

- (1) केवल (ii) (2) केवल (iii)
- (3) (ii) और (iii) (4) इनमें से कोई नहीं

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) संविधान में उपराष्ट्रपति पद के लिए परित्यक्तियों की व्यवस्था नहीं की गयी है।
- (ii) उपराष्ट्रपति को राज्यसभा के सभापति के तौर पर ही वेतन मिलता है।
- (iii) भारत में राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों के ग होने की दशा में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने का प्रावधान है।

उपरोक्त कथनों में कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

6. भारत के प्रधानमंत्री की शक्तियों के संबंध में सत्य कथनों की पहचान कीजिए—

- (i) राष्ट्रपति द्वारा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर ही किया जाता है।
- (ii) यदि कोई मंत्री प्रधानमंत्री की नीतियों या उसके नेतृत्व से सहमत नहीं है तो प्रधानमंत्री को अधिकार है कि वह उससे त्यागपत्र मांग ले और यदि वह त्यागपत्र न दे तो राष्ट्रपति को सलाह देकर उसे मंत्री पद से हटा सके।
- (iii) वह मंत्रियों को विभिन्न मंत्रालयों का आवंटन करता है और आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन करता है।

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) भारत के संविधान में उप-प्रधानमंत्री पद की चर्चा नहीं की गई है किंतु व्यवहार में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में इस पद पर नियुक्ति कई बार हुई है।
- (ii) मोरारजी देसाई, चौधरी देवीलाल और लाल कृष्ण आडवाणी ने उप-प्रधानमंत्री का पद धारण किया है।

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

8. भारत में मंत्रिपरिषद् का सामूहिक उत्तरदायित्व किसके प्रति है?

- (1) प्रधानमंत्री (2) लोकसभा
- (3) संसद (4) राष्ट्रपति

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) केंद्रीय मंत्रिपरिषद् के सभी मंत्री व्यक्तिगत तौर पर कार्यपालिका के प्रमुख की प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- (ii) मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति के 'प्रसादपर्यंत' पद धारण करने का वास्तविक अर्थ 'प्रधानमंत्री के प्रसादपर्यंत' पद धारण करना है क्योंकि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही कार्य करता है।
- (iii) यदि कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य न हो तो भी वह अधिकतम छह महीनों के लिए मंत्री रह सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (iii)
- (3) (i) और (ii) (4) (i), (ii) और (iii)

10. किस संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से यह प्रावधान किया गया है कि मंत्रिपरिषद् में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या लोकसभा के सदस्यों की कुल संख्या के 15% से अधिक नहीं होगी?

- (1) 52वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1985
- (2) 91वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003
- (3) 86वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2002
- (4) 97वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2011

11. वर्तमान में केंद्रीय मंत्रिपरिषद् में अधिकतम कितने मंत्री हो सकते हैं?

- (1) 82 (2) 83
- (3) 38 (4) 39

12. निम्नलिखित में कौन-सा कथन सत्य है/हैं?

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. निम्नलिखित में कौन-सा/से कथन भारत के महान्यायवादी के संदर्भ में असत्य है/हैं?

- (i) वह भारत सरकार का सर्वोच्च विधि अधिकारी होता है।
- (ii) संविधान में उसके कार्यकाल की निश्चित समयावधि निर्धारित नहीं की गई है।
- (iii) भारत सरकार ने जिस मामले में उसकी सलाह ली है, उसमें वह सरकार के विरुद्ध मुकदमा लड़ सकता है।
- (iv) अपने कर्तव्यों के पालन में उसे भारत के राज्यक्षेत्र में सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार प्राप्त है।
- (v) उसे संसद के किसी भी सदन की कार्यवाहियों में भाग लेने तथा मत देने का अधिकार दिया गया है।

कूट—

- (1) (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (v)
- (3) (iii) और (v) (4) उपरोक्त में से कोई नहीं।

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) ब्रिटेन में विधि मंत्री ही महान्यायवादी का कार्य करता है।
- (ii) भारत के महाधिवक्ता का कार्य महान्यायवादी की सहायता करना है।
- (iii) भारत के महाधिवक्ता का पद संवैधानिक न होकर मात्र वैधानिक (Statutory) है।

उपरोक्त कथनों में कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

कूट—

- (1) केवल (i) (2) (i) और (ii)
- (3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

15. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) भारत का महान्यायवादी के लिए उन योग्यताओं का होना आवश्यक है जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए होती हैं।
- (2) महान्यायवादी की पदावधि के संबंध में निर्णय करना राष्ट्रपति का विवेकाधिकार नहीं है।

67

68

69

70

71

72

73

74

75

76

राज्यसभा (The Council of States)

हमारी संसद का एक सदन 'राज्यसभा' है जिसे अंग्रेजी में 'Council of States' कहा जाता है। इसकी संरचना प्रायः वैसी ही है जैसी इंग्लैंड में 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' की है। थोड़ी बहुत मात्रा में इसे अमेरिकी कांग्रेस के द्वितीय सदन 'सीनेट' के समकक्ष भी माना जा सकता है। कभी-कभी इंग्लैंड की राजव्यवस्था के अनुकरण पर इसे उच्च सदन (Upper House) कह दिया जाता है, हालाँकि संविधान में ऐसी अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है।

राज्यसभा का गठन (Composition of the Council of States)

संविधान के अनुच्छेद 80 में राज्यसभा के गठन से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। इसके अनुसार राज्यसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है, हालाँकि वर्तमान में यह 245 ही है। इनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत (nominate) किए जाते हैं जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला या समाज-सेवा के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव होता है। शेष सदस्य, जो अधिकतम 238 हो सकते हैं, किंतु वर्तमान में 233 हैं, निर्वाचित होते हैं।

राज्यसभा में प्रत्येक राज्य में कितने सदस्य होंगे, इसके लिए अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि में प्रचलित 'समान प्रतिनिधित्व के सिद्धांत' (Doctrine of equal representation) को नहीं अपनाया गया है बल्कि राज्य विशेष की जनसंख्या को आधार बनाया गया है। यह व्यवस्था की गई है कि किसी राज्य की जनसंख्या के पहले 50 लाख व्यक्तियों तक हर 10 लाख व्यक्तियों पर एक सदस्य तथा उसके बाद प्रति 20 लाख व्यक्तियों पर राज्यसभा में एक सदस्य होगा। संविधान की चौथी अनुसूची में सभी राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों (Union Territories) की राज्यसभा में आबंटित किए गए स्थानों की सूची दी गई है। वर्तमान में यह सूची इस प्रकार है—

आंध्र प्रदेश.....18	केरल.....9	पंजाब.....7	हिमाचल प्रदेश.....3	दिल्ली.....3
असम.....7	मध्य प्रदेश.....11	राजस्थान.....10	मणिपुर.....1	पुदुच्चेरी.....1
बिहार.....16	छत्तीसगढ़.....5	उत्तर प्रदेश.....31	त्रिपुरा.....1	कुल.....233
झारखंड.....6	तामिलनाडु.....18	उत्तराखंड.....3	मेघालय.....1	
गोवा.....1	महाराष्ट्र.....19	पश्चिम बंगाल.....16	सिक्किम.....1	
गुजरात.....11	कर्नाटक.....12	जम्मू और कश्मीर.....4	मिज़ोरम.....1	
हरियाणा.....5	ओडिशा.....10	नागालैंड.....1	अरुणाचल प्रदेश.....1	

ध्यातव्य है कि सभी संघ राज्यक्षेत्रों (Union Territories) को राज्यसभा में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। संविधान के '7वें संशोधन अधिनियम, 1956' के द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राज्यसभा में संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से चुने जाएंगे जो संसद विधि द्वारा निश्चित करे। संसद ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए दिल्ली को 3 तथा पुदुच्चेरी को 1 स्थान आवंटित किया है। शेष पाँचों संघ राज्यक्षेत्रों को राज्यसभा में फिलहाल कोई प्रतिनिधित्व हासिल नहीं है।

राज्यसभा के लिए निर्वाचन (Election for the Council of States)

चुनाव प्रणाली (Method of election):

संविधान सभा ने केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर द्वितीय सदन के निर्वाचन के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation) के सिद्धांत को अपनाया। यह पद्धति भारत में राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनावों में भी लागू होती है तथा राज्यसभा और विधान परिषदों के चुनावों में भी। इसके तहत राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य (मनोनीत सदस्य नहीं) आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Proportional representation system) द्वारा एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) के आधार पर राज्यसभा के सदस्यों का चयन करते हैं। 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (Representation of people act, 1951) के अंतर्गत चुनाव की यह पद्धति विस्तारपूर्वक बताई गई है।

निवास संबंधी शर्त तथा खुला मतदान (Condition of residence and open Ballot system)

राज्यसभा के निर्वाचन से संबंधित एक महत्वपूर्ण विवाद यह है कि किसी राज्य के प्रतिनिधि को उस राज्य का निवासी होना चाहिए या नहीं? 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (Representation of people act, 1951) के अंतर्गत यह शर्त रखी गई थी कि प्रत्याशी को सामान्य तौर पर उस राज्य का निवासी होना चाहिए और उसका नाम उस राज्य की मतदाता सूची में होना चाहिए। यदि राज्यसभा का उद्देश्य राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करना है तो यह उचित भी प्रतीत होता है कि राज्यसभा के सदस्य अपने-अपने राज्य के निवासी हों। किंतु, संसद ने 2003 में 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (Representation of people act, 1951) में संशोधन करते हुए निवास संबंधी शर्त को हटा दिया है। इसी संशोधन के माध्यम से राज्यसभा के चुनावों के लिए खुले मतदान की व्यवस्था (Open Ballot System) भी निर्धारित की गई है जबकि इससे पहले गुप्त मतदान (Secret Ballot) की व्यवस्था लागू थी।

राज्यसभा की सदस्यता की शर्तें (Conditions for membership of Rajyasabha):

राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए कुछ शर्तें निर्धारित की गई हैं, जो इस प्रकार हैं—

- (क) उम्मीदवार को भारत का नागरिक होना चाहिए।
- (ख) उसकी आयु 30 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।
- (ग) उसे किसी 'लाभ के पद' (Office of Profit) पर नहीं होना चाहिए। ध्यातव्य है कि इस प्रयोजन के लिए संघ या राज्य में पंजी के पद को लाभ का पद नहीं माना जाता है।
- (घ) प्रत्याशी को अनुसूक्त दिवालिया (undischarged insolvent) या विकृत अस्तित्व (unsound mind) का नहीं होना चाहिए।
- (ङ) यदि संसद विधि द्वारा कुछ और अर्हताएँ निर्धारित करे तो जरूरी है कि उम्मीदवार उन्हें भी धारण करता हो।

यदि कभी यह प्रश्न उठता है कि कोई प्रत्याशी राज्यसभा का चुनाव लड़ने के लिए योग्य है या नहीं तो यह प्रश्न राष्ट्रपति को सौंपे जाने का नियम है। राष्ट्रपति चुनाव आयोग की सिफारिश के आधार पर जो निर्णय देता है वह इस संबंध में अंतिम माना जाता है।

राज्यसभा तथा उसके सदस्यों का कार्यकाल (Term of Rajya sabha and its members):

जहाँ तक राज्यसभा के कार्यकाल का प्रश्न है, यह एक स्थायी संसद है। स्थायी संसद कहने का अर्थ है कि राज्यसभा का विघटन (dissolution) कभी नहीं होता है। लोकसभा साधारणतः हर 5 वर्ष बाद विघटित होती है पर राज्यसभा कभी नहीं।

इसका अर्थ यह नहीं कि राज्यसभा के सदस्य कभी सेवानिवृत्त नहीं होते। उनका कार्यकाल निश्चित होता है। प्रत्येक सदस्य 6 वर्षों के लिए चुना जाता है जो कि अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के सीनेटर्स के कार्यकाल के बराबर है। प्रत्येक 2 वर्ष बाद एक-तिहाई सदस्य सेवानिवृत्त हो जाते हैं तथा उतने ही नए सदस्यों का निर्वाचन होता है। न तो सभी सदस्य एक साथ सेवानिवृत्त होते हैं, न ही सभी का निर्वाचन एक साथ किया जाता है। कौन से सदस्य कब सेवानिवृत्त होंगे, इसका निर्धारण 'राज्यसभा (सदस्यों की पदावधि) आदेश, 1952' [Council of States (Term of office of members) Order, 1952] के अनुसार किया जाता है। यह आदेश 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' (Representation of people act, 1951) के अंतर्गत राष्ट्रपति को दी गई शक्तियों के अधीन जारी किया गया था।

राज्यसभा के पदाधिकारी (Office bearers of the Council of states)

राज्यसभा में दो प्रमुख पदाधिकारी होते हैं—सभापति (Chairman) तथा उपसभापति (Deputy chairman)।

भारत का उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा का पदेन सभापति (Ex-officio Chairman) होता है, हालाँकि वह राज्यसभा का सदस्य नहीं होता।

ज़रूरी हैं, जैसे-सदस्यों को अपने विचार प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करना, मतदान कराना तथा उसका निर्णय सुनाना, कार्यप्रणाली से संबंधित विवादों पर फैसला देना, ज़रूरत पड़ने पर निर्णायक मत (casting vote) देना इत्यादि।

राज्यसभा के सभापति अर्थात् उपराष्ट्रपति को पद से हटाने के लिए ज़रूरी है कि राज्यसभा में इस आशय का प्रस्ताव कम से कम 14 दिनों की पूर्व सूचना के साथ रखा जाए। यदि राज्यसभा उस प्रस्ताव को तत्कालीन समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से पारित कर देती है और लोकसभा उस प्रस्ताव पर सहमति दे देती है तो उपराष्ट्रपति अर्थात् राज्यसभा का सभापति पदमुक्त हो जाता है। इसके अलावा, यदि वह स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र देकर स्वयं भी पद से मुक्त होने का निर्णय कर सकता है।

जहाँ तक उपसभापति का प्रश्न है, वह तीन प्रकार से पदमुक्त हो सकता है-

- (क) यदि उसकी राज्यसभा की सदस्यता की अवधि समाप्त हो जाए;
- (ख) यदि वह सभापति को संबोधित करके अपना इस्तीफा सौंप दे;
- (ग) यदि राज्यसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत द्वारा उसे हटाए जाने का संकल्प (resolution) पारित कर दिया जाए। ऐसा संकल्प पारित करने के लिए ज़रूरी है कि उसके आशय की सूचना कम-से-कम 14 दिन पहले दी गई हो।

ध्यातव्य है कि जब राज्यसभा में सभापति या उपसभापति को हटाने का प्रस्ताव रखा जाता है तो संबद्ध पदाधिकारी कार्यवाही का संचालन नहीं कर सकता।

गौरतलब है कि राज्यसभा की गणपूर्ति (Quorum) के लिए सदन की कुल संख्या के 1/10 सदस्यों का उपस्थित होना ज़रूरी है। सभापति का कर्तव्य है कि इससे कम संख्या होने पर वह सदन को तब तक के लिए स्थगित (adjourn) कर दे जब तक कि गणपूर्ति पूरी न हो जाए।

राज्यसभा के कार्य तथा शक्तियाँ (Functions and powers of Rajya Sabha)

राज्यसभा के पास लोकसभा की तुलना में कम शक्तियाँ हैं लेकिन उसे भारतीय राजव्यवस्था के संचालन में महत्वपूर्ण स्थान हासिल है। इसकी प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

(1) विधायी कार्य व शक्तियाँ (Legislative functions and powers):

राज्यसभा के विधायी कार्य व शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

- (क) गैर-वित्तीय विधेयकों (Non-financial bills) के संबंध में राज्यसभा को उतनी ही शक्तियाँ प्राप्त हैं जितनी लोकसभा को। ऐसे विधेयक किसी भी सदन में शुरू किए जा सकते हैं और दोनों सदनों की सहमति के बाद ही वे कानून बनते हैं।
- (ख) धन विधेयकों (Money Bills) के मामले में राज्यसभा की सिर्फ इतनी शक्ति प्राप्त है कि वह 14 दिनों के भीतर विचार करके अपनी राय लोकसभा को भेज दे। उसकी राय को मानना या न मानना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।
- (ग) संविधान संशोधन विधेयकों (Constitution Amendment Bills) के मामले में राज्यसभा की शक्तियाँ लोकसभा के बराबर हैं। संविधान संशोधन के लिए ज़रूरी है कि संबंधित विधेयक दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित किया जाए। ध्यातव्य है कि संविधान संशोधन विधेयक के मामले में संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं है।

(2) विशिष्ट कार्य व शक्तियाँ (Special functions and powers):

राज्यसभा को दो ऐसे विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं जो लोकसभा के पास नहीं हैं। ये दोनों शक्तियाँ राज्यसभा को इसलिए दी गई हैं क्योंकि इनका संबंध देश के संघात्मक ढाँचे (Federal Structure) से है। ये शक्तियाँ इस प्रकार हैं-

- (क) अनुच्छेद 249 के तहत राज्यसभा को अधिकार है कि वह उपस्थित और मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से राज्य-सूची (State List) में शामिल किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है। ऐसा किए जाने पर संसद को राज्य-सूची के उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है।
- (ख) अनुच्छेद 312 के अंतर्गत राज्यसभा को शक्ति दी गई है कि वह उपस्थित और मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्यों के समर्थन से कोई नई अखिल भारतीय सेवा या सेवाएँ (All India Service or Services) स्थापित करने का अधिकार संसद को दे सकती है।

(3) अन्य कार्य व शक्तियाँ (Other functions and powers):

राज्यसभा को कुछ अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जो निम्नलिखित हैं—

- (क) यदि एक महीने से अधिक अवधि तक आपात्काल (emergency) को लागू रखा जाना हो तो इससे संबंधित प्रस्ताव का अनुमोदन लोकसभा और राज्यसभा दोनों के द्वारा होना ज़रूरी है। यदि उस समय लोकसभा विघटित (dissolved) हो तो केवल राज्यसभा का अनुमोदन कराया जाना ज़रूरी होता है।
- (ख) 'एस.आर. बोम्बई मामले' (1994) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि किसी राज्य में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की स्थिति में उस राज्य की विधानसभा का विघटन (dissolution) तब तक नहीं किया जा सकेगा, जब तक संसद के दोनों सदन उस घोषणा का अनुमोदन न कर दें।
- (ग) राज्यसभा अविश्वास प्रस्ताव (No Confidence Motion) लाकर सरकार को गिरा तो नहीं सकते क्योंकि संविधान में मंत्रिपरिषद् को लोकसभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है; किंतु राज्यसभा के सदस्य मंत्रियों से विभिन्न प्रश्न और पूरक-प्रश्न पूछ सकते हैं तथा परोक्ष रूप से उन पर समुचित कार्य करने का दबाव बना सकते हैं।
- (घ) राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल (Electoral College) का हिस्सा बनते हैं।
- (ङ) राज्यसभा के सदस्य लोकसभा सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करते हैं।
- (च) उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव राज्यसभा में ही शुरू किया जा सकता है।
- (छ) राष्ट्रपति के महाभियोग (impeachment) तथा सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा कुछ अन्य संवैधानिक पदाधिकारियों को उनके पद से हटाने के लिए संसद के दोनों सदनों की सहमति आवश्यक होती है।

लोकसभा (The House of the people)

संसद का लोकप्रिय सदन (Popular house) 'लोकसभा' कहलाता है जिसे अंग्रेजी में 'House of the People' नाम दिया गया है। इसकी संरचना मोटे तौर पर वैसी ही है जैसी इंग्लैण्ड में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' (House of Commons) की। कुछ दृष्टियों से इसे अमेरिका की प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) के समान भी माना जा सकता है। कभी-कभी इंग्लैण्ड की राजव्यवस्था के अनुकरण पर इसे निम्न सदन (Lower House) कह दिया जाता है, हालाँकि संविधान में ऐसी अभिव्यक्ति का प्रयोग कहीं नहीं हुआ है।

लोकसभा का गठन (Composition of Lok Sabha)

संविधान के अनुच्छेद 81 में लोकसभा के गठन से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। कुछ अन्य अनुच्छेदों से भी लोकसभा के गठन के निर्देश प्राप्त होते हैं। इनके अनुसार लोकसभा में अधिकतम 552 सदस्य हो सकते हैं, जिनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

- (क) सभी राज्यों के कुल प्रतिनिधि 530 से अधिक नहीं हो सकते [अनुच्छेद 81(1)(क)]।
- (ख) संघ-राज्यक्षेत्रों (Union Territories) के प्रतिनिधि 20 से अधिक नहीं हो सकते [अनुच्छेद 81(1)(ख)]।
- (ग) यदि राष्ट्रपति की राय में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह उस समुदाय के अधिकतम दो प्रतिनिधियों को लोकसभा के लिए मनोनीत कर सकता है। (अनुच्छेद 331)।

इस प्रकार, लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 है। वर्तमान में यह संख्या 543 है जिसमें 530 सदस्य राज्यों से हैं तथा 13 सदस्य संघ राज्यक्षेत्रों से। यदि राष्ट्रपति दो आंग्ल-भारतीय सदस्यों को मनोनीत करते तो यह संख्या 545 हो जाती है। ध्यान रखना चाहिए कि यह संख्या हमेशा के लिए निश्चित नहीं है। संसद समय-समय पर इसमें संशोधन करती रही है और आगे भी कर सकती है।

लोकसभा का चुनाव (Elections of Lok Sabha)

लोकसभा के लिए चुनाव प्रणाली (Method of election for Lok Sabha):

लोकसभा की चुनाव पद्धति जिन सिद्धांतों पर आधारित है, वे हैं—

- (क) प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (Territorial representation system),
 - (ख) एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र (Single member constituencies),
 - (ग) प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct election), तथा
 - (घ) 'सबसे पहले खम्भा छूने की पद्धति' (First Past the Post System)।
- (क) प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (Territorial representation system) का अर्थ है कि पूरे देश को भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में बाँट दिया जाएगा ताकि सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधि लोकसभा में अपने-अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर सकें।
- (ख) एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र (Single member constituencies) का अर्थ है कि लोकसभा के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक ही प्रतिनिधि चुना जाएगा, एक से अधिक नहीं। कुछ देशों में बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होते हैं किन्तु भारत की लोकसभा के मामले में ऐसा नहीं है।
- (ग) प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct election) का अर्थ है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जनता सीधे तौर पर अपने प्रतिनिधि का

'61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988' के माध्यम से इसे 18 वर्ष कर दिया गया है। इसके अलावा, मतदान करने की शर्त है कि व्यक्ति भारत का नागरिक हो तथा उसे अनिवास (Non-residence), अपराध (Crime), भ्रष्ट आचरण (Corrupt practices) या विकृत मस्तिष्क (Unsound mind) का होने के कारण मतदान करने के अयोग्य न ठहराया गया हो।

- (घ) 'सबसे पहले खंभा छूने की पद्धति' (First Past the Post System) का अर्थ है कि जिस प्रत्याशी को चुनाव में सबसे अधिक मत प्राप्त होंगे, वह विजयी घोषित कर दिया जाएगा। इस पद्धति में चुनाव जीतने के लिए किसी निर्धारित कोटे तक पहुँचना आवश्यक नहीं होता। ऐसा भी हो सकता है कि कुल वैध मतों में से सिर्फ 10 से 15 प्रतिशत मत पाने वाला प्रत्याशी ही चुनाव में विजयी हो जाए।

लोकसभा क्षेत्रों का परिसीमन (Delimitation of Lok Sabha constituencies)

परिसीमन (Delimitation) का अर्थ है- देश को विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में इस तरह से विभाजित करना कि क्षेत्रगत और जनसंख्यागत आधार पर देश के सभी नागरिकों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके।

परिसीमन के सिद्धांत (Principles of Delimitation):

संविधान के अनुच्छेद 81(2) में परिसीमन के संबंध में दो सिद्धांत बताए गए हैं-

- (क) प्रत्येक राज्य को लोकसभा में स्थानों का आवंटन इस तरह से किया जाएगा कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिए यथासंभव एक ही हो। इसका अर्थ है कि देश के प्रत्येक नागरिक को लोकसभा में यथासंभव बराबर प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। यदि एक राज्य की जनसंख्या 1 करोड़ है और उसके पास लोकसभा में 5 स्थान हैं तो स्वाभाविक तौर पर 4 करोड़ की जनसंख्या वाले राज्य को 20 स्थान मिलने चाहिए।

इस सिद्धांत में समस्या यह है कि जिन राज्यों या संघ-राज्यक्षेत्रों की जनसंख्या बहुत कम है, उनका प्रतिनिधित्व इतना कम हो सकता है कि उनका लोकसभा में होना और न होना एक समान हो जाए। इसीलिए '61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973' के माध्यम से अनुच्छेद 81(2) में एक परंतुक (proviso) जोड़कर यह व्यवस्था कर दी गई कि जनसंख्या के अनुपात में बराबरी रखने का यह नियम उन राज्यों या संघ-राज्यक्षेत्रों पर लागू नहीं होगा, जिनकी जनसंख्या 60 लाख से कम है।

- (ख) अनुच्छेद 81(2) में धर्जित दूसरा सिद्धांत यह है कि प्रत्येक राज्य के भीतर प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों को इस तरह विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसकी आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात पूरे राज्य में यथासंभव एक जैसा हो। चूँकि लोकसभा के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक ही प्रतिनिधि चुने जाने की व्यवस्था है, इसलिए इस सिद्धांत का व्यावहारिक अर्थ सिर्फ इतना है कि सभी निर्वाचन क्षेत्रों की जनसंख्या यथासंभव समान होनी चाहिए।

परिसीमन आयोग (Delimitation Commission):

संविधान के अनुच्छेद 82 में बताया गया है कि प्रत्येक जनगणना के बाद विभिन्न राज्यों को लोकसभा के स्थानों का पुनः आवंटन करने के लिए तथा विभिन्न राज्यों के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों को पुनः विभाजित करने के लिए संसद विधि द्वारा प्राधिकारी को नियुक्ति करेगी। इस प्राधिकारी को ही परिसीमन आयोग (Delimitation Commission) कहा जाता है।

1971 की जनगणना तक परिसीमन आयोग (Delimitation Commissions) जनगणना परिणामों के अनुसार लोकसभा स्थानों तथा निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन करते रहे किंतु उसके बाद एक समस्या ने इस प्रक्रिया को बाधित कर दिया। भारत सरकार 1952 से ही जनसंख्या नियंत्रण के लिए गम्भीर प्रयास कर रही थी किन्तु इसके जितने बेहतर परिणाम दक्षिणी राज्यों से आए थे, उतने उत्तरी राज्यों से नहीं। यदि जनसंख्या के आधार पर परिसीमन होता रहता तो लोकसभा में स्वाभाविक तौर पर उत्तर भारतीय राज्यों का प्रतिनिधित्व बढ़ जाता, जिससे दक्षिण भारतीय राज्य नुकसान में रहते। इससे जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम भी विफल हो सकता था। 1975 में लागू हुए राष्ट्रीय आपातकाल (National emergency) के दौरान भारत सरकार ने 1976 में 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति'

अनुच्छेद 81(3) में संशोधन करके सन् '2000' के स्थान पर '2026' लिख दिया गया। इसका तात्पर्य यह है कि अब वर्ष 2026 तक 1971 की जनसंख्या के आँकड़ों को ही परिसीमन का आधार माना जाएगा। किंतु, अनुच्छेद 82(ii) में व्यवस्था की गई कि प्रत्येक राज्य के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण (राज्य को आबंटित लोकसभा स्थानों की कुल संख्या में कोई परिवर्तन न करते हुए) 1991 की जनसंख्या के आँकड़ों के आधार पर किया जा सकेगा।

'87वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003' द्वारा अनुच्छेद 82(ii) में वर्ष 1991 के स्थान पर 2001 को रख दिया गया है, जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक राज्य में लोकसभा के निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण (राज्य को आबंटित लोकसभा स्थानों की कुल संख्या को न बदलते हुए) अब 1991 के स्थान पर 2001 की जनगणना के अनुसार हो सकेगा।

2002 में 'परिसीमन आयोग अधिनियम' (Delimitation Commission Act) पारित करते हुए जस्टिस कुलदीप सिंह की अध्यक्षता में परिसीमन आयोग (Delimitation Commission) का गठन किया गया था, जिसे विभिन्न राज्यों के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः निर्धारण करना था। आयोग ने 2001 की जनगणना के आधार पर असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, नागालैंड, झारखण्ड व जम्मू-कश्मीर को छोड़कर शेष राज्यों तथा संघ-राज्यक्षेत्रों की 499 सीटों का पुनर्निर्धारण किया। इसके माध्यम से अब अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटें 79 से बढ़कर 84 हो गई हैं, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटें 41 से बढ़कर 47 हो गई हैं, जबकि सामान्य वर्ग की सीटें 423 से घटकर 412 रह गई हैं। 'लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2008' [Representation of People (amendment) act, 2008] में इस परिसीमन के बाद वर्तमान में लागू राज्यवार सूची दी गई है।

ध्यातव्य है कि परिसीमन का प्रभाव उस लोकसभा पर नहीं होता जो कार्यरत होती है। उसका प्रभाव अगले लोकसभा चुनावों पर लागू होता है। 26 जनवरी, 1971 को विभिन्न राज्यों तथा संघ-राज्यक्षेत्रों के लिए लोकसभा स्थानों का जो आबंटन निर्धारित किया गया था, वर्तमान में वही लागू है। जो राज्य तथा संघ-राज्यक्षेत्र उसके बाद बनाए गए हैं, उन्हें प्रायः वही स्थान दिए गए हैं जो उनके भौगोलिक क्षेत्र से संबंधित थे। वर्तमान में लोकसभा स्थानों की सूची इस प्रकार है—

आंध्र प्रदेश 42	हिमाचल प्रदेश 4	ओडिशा 21	उत्तर प्रदेश 80	दिल्ली (NCT) 7
अरुणाचल प्रदेश 2	जम्मू-कश्मीर 6	पंजाब 13	पश्चिम बंगाल 42	चंडीगढ़ 1
असम 14	झारखंड 14	राजस्थान 25	मिजोरम 1	पुदुच्चेरी 1
बिहार 40	कर्नाटक 28	मेघालय 2	नागालैंड 1	लक्षद्वीप 1
छत्तीसगढ़ 11	केरल 20	सिक्किम 1	अंडमान एवं 1	दमन दीव 1
गोवा 2	मध्य प्रदेश 29	तमिलनाडु 39	निकोबार द्वीप समूह 1	कुल 543
गुजरात 26	महाराष्ट्र 48	त्रिपुरा 2	दादरा एवं 1	
हरियाणा 10	मणिपुर 2	उत्तराखंड 5	नागर हवेली	

लोकसभा की शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and functions of Lok sabha)

लोकसभा संसद का लोकप्रिय सदन (Popular house) है। संसदीय प्रणाली में यह सिद्धांत स्वीकृत है कि कानून बनाने और प्रशासन चलाने के मामले में लोकप्रिय सदन को अंतिम शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। इंग्लैंड के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' की तरह भारत में भी लोकसभा के पास दूसरे सदन की तुलना में ज्यादा शक्तियाँ हैं। लोकसभा की प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) विधायी शक्तियाँ (Legislative powers)— लोकसभा की कानून निर्माण से संबंधित शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

(क) लोकसभा प्रायः सभी प्रकार के विधेयकों के मामले में राज्यसभा के समान या उससे ज्यादा शक्तियाँ रखती है। धन विधेयक (अनुच्छेद 110) तथा वित्तीय विधेयक (प्रकार-1) सिर्फ लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जा सकते हैं और राज्यसभा की शक्तियाँ इन मामलों में काफी कम हैं। संविधान संशोधन विधेयकों के मामले में दोनों सदन बराबर हैं, किंतु व्यावहारिक तौर पर ऐसे विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं।

(ख) किसी विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध हो जाने पर संयुक्त बैठक बुलाए जाने का प्रावधान है। यह प्रावधान धन विधेयक तथा संविधान संशोधन विधेयक को छोड़कर शेष विधेयकों के मामले में लागू होता है। संयुक्त बैठक में लोकसभा की स्थिति मजबूत होती है क्योंकि उसके सदस्यों की संख्या तो अधिक होती ही है, साथ ही संयुक्त बैठक का संचालन भी लोकसभा अध्यक्ष के हाथों में होता है।

लोकसभा का प्रभावी नियंत्रण होता है। मंत्रिपरिषद् उसी समय तक कार्य कर सकती है, जब तक उसे लोकसभा का विश्वास हासिल हो।

- (iii) वित्तीय शक्तियाँ (Financial powers)– वित्तीय मामलों में लोकसभा के पास अत्यधिक शक्तियाँ हैं। धन विधेयक (Money bill) सिर्फ लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जा सकते हैं और उनके पारित होने में भी लोकसभा की प्रभावी भूमिका है, जबकि राज्यसभा की भूमिका नाममात्र की है। बजट भी लोकसभा में ही पारित होता है, उसमें राज्यसभा की भूमिका नगण्य होती है।
- (iv) अन्य शक्तियाँ तथा कार्य (Other powers and functions)– लोकसभा कई अन्य कार्य भी करती है जो इस प्रकार हैं–
- (क) वह राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेती है तथा राष्ट्रपति के खिलफ़ महाभियोग प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकती है।
 - (ख) यदि राज्यसभा उपराष्ट्रपति (अर्थात् अपने सभापति) को पद से हटाने के लिए प्रस्ताव पारित कर दे तो लोकसभा के अनुमोदन से ही उसे हटाए जाने की प्रक्रिया पूरी होती है।
 - (ग) सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटाने का प्रस्ताव पारित करने के लिए भी लोकसभा की सहमति ज़रूरी है।

लोकसभा की अवधि (Term of Lok Sabha)

लोकसभा की अवधि इंग्लैंड के 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' की तरह 5 वर्ष की है। पाँच वर्षों के कार्यकाल की गणना लोकसभा के प्रथम अधिवेशन (first meeting) की तारीख से की जाती है।

यदि राष्ट्रपति उचित समझे तो वह पाँच वर्ष से पहले भी लोकसभा का विघटन (dissolution) कर सकता है। यहाँ राष्ट्रपति के उचित समझने का वास्तविक अर्थ मंत्रिपरिषद् की ऐसी ग़य होने से है अर्थात् व्यावहारिक तौर पर प्रधानमंत्री या मंत्रिपरिषद् को यह अधिकार है कि वह पाँच वर्ष से पूर्व ही लोकसभा का विघटन करा सके। ऐसा प्रायः दो कारणों से किया जा सकता है– (i) यदि लोकसभा में कोई भी दल या गठबंधन स्थिर सरकार न दे पा रहा हो और नए चुनाव कराना ज़रूरी हो जाए, तथा (ii) कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाएँ कि प्रधानमंत्री को राष्ट्र से नया जवाबदेह लेने की ज़रूरत महसूस हो।

विशिष्ट स्थितियों में लोकसभा की अवधि 5 वर्ष से आगे भी बढ़ाई जा सकती है। अनुच्छेद 83(2) में व्यवस्था है कि यदि आपात्काल की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तो संसद लोकसभा के कार्यकाल को किसी ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकेगी जो एक बार में एक वर्ष से अधिक न हो। ऐसा कितनी बार किया जा सकेगा, यह स्पष्ट नहीं किया गया है; जिसका तात्पर्य है कि संसद जितनी बार चाहे ऐसा कर सकती है। इसकी शर्त सिर्फ़ इतनी है कि आपात्काल की घोषणा प्रवर्तन में हो।

गौरतलब है कि '42वें संविधान संशोधन' (1976) के द्वारा लोकसभा की अवधि 5 वर्ष से बढ़ाकर 6 वर्ष कर दी गई थी। इसी आधार पर पाँचवीं लोकसभा का कार्यकाल लगभग 6 वर्षों (1971-77) का रहा। आगे चलकर, जनता पार्टी की सरकार ने '44वें संविधान संशोधन' (1978) के माध्यम से कई ऐसे प्रावधानों को निरस्त किया जो 42वें संशोधन द्वारा लागू किए गए थे। इसके द्वारा अनुच्छेद 83(2) में संशोधन करके लोकसभा की अवधि पुनः 5 वर्ष कर दी गई। अभी भी यह 5 वर्ष ही है।

अभी तक की लोकसभाएँ (Loksabhas so far):

1951-52 के प्रथम आम चुनावों के आधार पर 1952 में पहली लोकसभा ने कार्य करना शुरू किया था। वर्तमान में 15वीं लोकसभा कार्यरत है। अभी तक की सभी लोकसभाओं का कार्यकाल इस प्रकार है–

लोकसभा	अवधि	लोकसभा	अवधि	लोकसभा	अवधि	लोकसभा	अवधि
पहली.....	1952-1957	पाँचवीं.....	1971-1977	नौवीं.....	1989-1991	तेरहवीं.....	1999-2004
दूसरी.....	1957-1962	छठी.....	1977-1980	दसवीं.....	1991-1996	चौदहवीं.....	2004-2009
तीसरी.....	1962-1967	सातवीं.....	1980-1984	ग्यारहवीं.....	1996-1998	पंद्रहवीं.....	2009-अभी तक
चौथी.....	1967-1971	आठवीं.....	1984-1989	बारहवीं.....	1998-1999		

लोकसभा के पदाधिकारी (Office bearers of the Lok sabha)

लोकसभा के दो प्रमुख अधिकारी हैं—अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष। संविधान के अनुच्छेद 93 से 97 तक इनसे संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। इन दोनों के अलावा एक पैनल भी नियुक्त किया जाता है, जो आवश्यकता पड़ने पर इन अधिकारियों के कर्तव्यों का निष्पादन करता है।

अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष (Speaker and Deputy Speaker):

लोकसभा के सदस्य अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को अपने में से ही चुनते हैं। गौरतलब है कि राज्यसभा का सभापति (अर्थात् उपराष्ट्रपति) राज्यसभा का सदस्य नहीं होता किंतु लोकसभा का अध्यक्ष लोकसभा का सदस्य होता है। प्रत्येक आम चुनावों के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित दिन लोकसभा अपने अध्यक्ष का चुनाव करती है। उपाध्यक्ष का चुनाव अध्यक्ष द्वारा निर्धारित तारीख को होता है।

लोकसभा अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को अपना पद संभालने के लिए न तो कोई शपथ (Oath) लेनी पड़ती है और न ही कोई प्रतिज्ञा (affirmation) करनी पड़ती है। संविधान की तीसरी अनुसूची में उनसे संबंधित किसी भी शपथ या प्रतिज्ञा का उल्लेख नहीं है। वे लोकसभा का सदस्य होने के नाते ही शपथ लेते हैं, अध्यक्ष या उपाध्यक्ष होने के नाते अलग से कोई शपथ नहीं लेते।

यदि कभी लोकसभा के अध्यक्ष का पद रिक्त हो तो उपाध्यक्ष उसकी भूमिका का निर्वाह करता है। यदि उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त हो तो लोकसभा का ऐसा सदस्य जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करे, इस पद का निर्वाह करेगा। [अनुच्छेद 95(1)]

जहाँ तक लोकसभा की बैठकों के संचालन का प्रश्न है, सामान्यतः अध्यक्ष ही उनका संचालन करता है और यदि वह न हो तो उपाध्यक्ष उसकी भूमिका निभाता है। सामान्य व्यवहार में यह संभव नहीं होता कि कबल ये दोनों व्यक्ति लोकसभा की सभी कार्यवाहियों का संचालन कर सकें। अनुच्छेद 95(2) में कहा गया है कि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष के रूप में वह व्यक्ति कार्य करेगा, जो लोकसभा द्वारा इस कार्य हेतु निर्दिष्ट किया गया हो। लोकसभा अपना 'प्रक्रिया संबंधी नियमावली' (Rules of procedure) के नियम-9 के अनुसार एक सूची बनाती है, जिसमें अधिकतम 10 सदस्यों के नाम होते हैं। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में इस सूची में शामिल सदस्य अध्यक्ष की भूमिका का निर्वाह करते हैं। भूमिका का निर्वाह करते समय उन्हें वे सभी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो लोकसभा अध्यक्ष को दी गई हैं।

पदावधि तथा हटाए जाने की प्रक्रिया (Term and procedure of removal):

लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के कार्यकाल की अवधि अलग से निर्धारित नहीं है। साधारण स्थितियों में वे अपने पदों पर तब तक बने रहते हैं जब तक लोकसभा का विघटन नहीं होता है। किंतु कुछ ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जब वे लोकसभा की अवधि के दौरान ही अपने पद से मुक्त हो जाएँ। ऐसी स्थितियाँ संविधान के अनुच्छेद 94 में बताई गई हैं जो निम्नलिखित हैं—

- (क) यदि वे लोकसभा के सदस्य न रहें। (जैसे, यदि उनका चुनाव अवैध घोषित कर दिया जाए)।
- (ख) यदि वे स्वेच्छा से इस्तीफा दे दें। इस्तीफा देने का तरीका यह है कि अध्यक्ष उपाध्यक्ष को तथा उपाध्यक्ष अध्यक्ष को संबोधित करके अपना इस्तीफा दे सकता है।
- (ग) यदि लोकसभा अपने तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से संकल्प (resolution) पारित करके उन्हें उनके पद से हटा दे।

इस संबंध में एक नियम यह भी है कि यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाने के लिए संकल्प प्रस्तावित किया जाना है तो इस आशय की सूचना कम से कम 14 दिन पहले दिया जाना ज़रूरी है।

जिस बैठक में अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाने के लिए लोकसभा विचार कर रही होती है, उस बैठक में वह पदाधिकारी उपस्थित तो हो सकता है किंतु पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) के रूप में कार्य नहीं कर सकता। उसे अपना पक्ष रखने, सदन की कार्यवाही में भाग लेने तथा उसे हटाए जाने को लेकर प्रस्तावित संकल्प पर मतदान करने का अधिकार होता है, किंतु यदि पक्ष और विपक्ष में बराबर मत पड़ जाएँ तो उसे निर्णायक मत (Casting vote) देने का वह अधिकार नहीं होता, जो पीठासीन अधिकारी के रूप में उसे साधारण बैठकों में प्राप्त होता है।

है।

भारतीय संविधान लोकसभा अध्यक्ष के लिए इंग्लैण्ड की तरह यह व्यवस्था तो नहीं करता कि वह अपनी पार्टी से इस्तीफा दे दे, किंतु कई ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो लोकसभा अध्यक्ष को अपने कर्तव्यों का स्वतंत्र निर्वहन करने में सहायक हैं, जैसे—

- (i) उसे तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से ही हटाया जा सकता है, सिर्फ उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से नहीं।
- (ii) लोकसभा में उसके कार्यों व आचरण के संबंध में न तो चर्चा की जा सकती है और न ही आलोचना।
- (iii) उसे लोकसभा में होने वाले मतदान में प्रथमतः मत डालने का अधिकार नहीं है। वह तभी मतदान करता है जब पक्ष और विपक्ष में बराबर मत पड़े हों।
- (iv) लोकसभा अध्यक्ष को वेतन भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) से दिया जाता है, संसद में उस पर मतदान नहीं होता।
- (v) लोकसभा का संचालन करने की उसकी शक्ति तथा उस शक्ति के अंतर्गत की गई कार्यवाहियाँ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।
- (vi) उसे वरीयता सूची में काफी ऊँचा स्थान दिया गया है तथा भारत के मुख्य न्यायाधीश के समकक्ष समतुल्य स्थान पर रखा गया है। उसका स्थान भारत के प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री को छोड़कर शेष मंत्रियों से भी ऊँचा है।

लोकसभा अध्यक्ष की शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and functions of the Lok Sabha speaker):

लोकसभा अध्यक्ष की शक्तियाँ सिर्फ संविधान से प्राप्त नहीं होती बल्कि संसदीय परंपराओं तथा लोकसभा के प्रक्रिया व कार्य संचालन नियमों (Rules of procedure and conduct of business) से भी प्राप्त होती हैं। उसके कर्तव्य भी इन तीनों स्रोतों से निर्धारित होते हैं। अध्यक्ष की प्रमुख शक्तियाँ और कार्य इस प्रकार हैं—

- (i) उसका प्राथमिक कार्य लोकसभा की बैठकों का संचालन करना तथा कार्यवाही को व्यवस्थित व नियंत्रित करना है। संचालन संबंधी किसी भी संशय या मतभेद की अवस्था में उसका निर्णय अंतिम होता है।
- (ii) कोई विधेयक धन विधेयक (Money Bill) है या नहीं, यह निश्चित करने का दायित्व लोकसभा अध्यक्ष का ही है। इस संबंध में उसका निर्णय अंतिम होता है।
- (iii) यदि दोनों सदनों में किसी विधेयक पर गतिरोध हो जाने के कारण दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint sitting) बुलाई जाती है तो उसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष ही करता है।
- (iv) यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत पड़ते हैं तो वह निर्णायक मत (Casting vote) देता है, जिससे गतिरोध खत्म होता है।
- (v) 10वीं अनुसूची अर्थात् दल-बदल विरोधी कानून (Anti-defection law) के तहत उसे यह शक्ति दी गई है कि लोकसभा के किसी सदस्य के संबंध में दल-बदल संबंधी शिकायत मिलने पर उसकी निरर्हता (disqualification) के प्रश्न पर फैसला करे। 10वीं अनुसूची के अनुसार इस मामले में लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है, हालाँकि 1992 में 'किहोतो होलोहान बनाम जाचिन्हू' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि लोकसभा की यह शक्ति न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) के अधीन है।
- (vi) अध्यक्ष तय करता है कि किसी सदस्य को सदन में चोलने का मौका देना है या नहीं; और यदि देना है तो कितनी अवधि के लिए?
- (vii) वह लोकसभा की संसदीय समितियों (Parliamentary Committees) पर नियंत्रण रखता है एवं सभी समितियों के प्रमुखों की नियुक्ति करता है। कुछ समितियों में वह स्वयं भी शामिल होता है, जैसे—कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee), नियम समिति (Rules Committee) और सामान्य प्रयोजन समिति (General Purposes Committee)। इन समितियों में वह स्वयं ही अध्यक्ष की भूमिका में होता है।
- (viii) लोकसभा के सदस्यों तथा कर्मचारियों के अधिकारों की रक्षा और लोकसभा के परिसर की सुरक्षा आदि के संबंध में अध्यक्ष को पूर्ण शक्ति प्राप्त है।
- (ix) वह लोकसभा की बैठकों के लिए दिन तथा समय निर्धारित करता है और कार्य-सूची तथा उसके विषयों का क्रम भी निश्चित करता है।

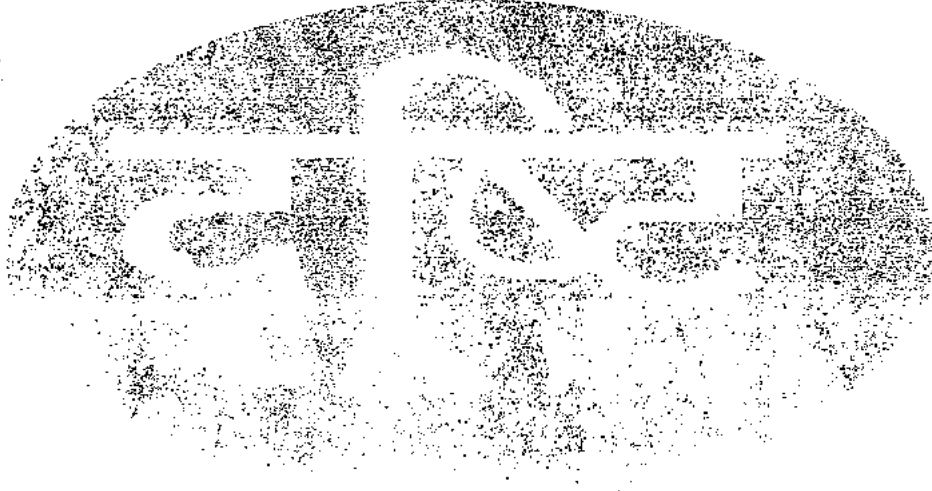
- (x) लोकसभा की बैठक के लिए ज़रूरी है कि कुल सदस्य संख्या के कम से कम 1/10 सदस्य उपस्थित हों। यदि यह गणपूर्ति (Quorum) नहीं है तो अध्यक्ष का कर्तव्य बनता है कि वह बैठक को तब तक के लिए स्थगित (adjourn) कर दे, जब तक गणपूर्ति न हो जाए।

लोकसभा का उपाध्यक्ष (Deputy speaker of Lok sabha):

लोकसभा के उपाध्यक्ष के संबंध में प्रायः वही बातें लागू होती हैं जो लोकसभा अध्यक्ष के मामले में। जब अध्यक्ष को चुन लिया जाता है तो अध्यक्ष द्वारा निर्धारित तिथि पर लोकसभा के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं। उसकी अवधि भी सदन के जीवन पर्यन्त होती है और उसे भी उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिन आधारों पर अध्यक्ष को। जब वह अध्यक्ष की भूमिका में होता है तो उसे वे सभी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो कि अध्यक्ष को दी गई हैं।

ध्यातव्य है कि उपाध्यक्ष अध्यक्ष का अधीनस्थ (Subordinate) नहीं है। उसका उत्तरदायित्व अध्यक्ष के प्रति नहीं बल्कि लोकसभा के प्रति है। उसे एक विशेषाधिकार भी प्राप्त है कि यदि उसे किसी संसदीय समिति (Parliamentary Committee) का सदस्य बनाया जाता है तो वह स्वतः ही समिति का अध्यक्ष बन जाता है।

पहली से दसवीं लोकसभा तक सामान्य प्रवृत्ति यह थी कि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सत्ताधारी दल के ही सदस्य हों। 11वीं लोकसभा (1996) से एक स्वस्थ परंपरा की शुरुआत हुई और सभी दलों ने इस विचार पर सहमति व्यक्त की कि उपाध्यक्ष का पद विपक्षी दल के किसी सदस्य को दिया जाना चाहिए। तब से यह परंपरा अभी तक चल रही है।



संसद की सदस्यता (Membership of Parliament)

संविधान में संसद की सदस्यता के संबंध में अर्हताएँ (qualifications) तथा अनर्हताएँ (disqualifications) बताई गई हैं। इनके अलावा, संसद को यह शक्ति भी दी गई है कि वह संविधान में वर्णित अर्हताओं या अनर्हताओं की सूची में अन्य प्रावधान जोड़ सके।

संसद की सदस्यता के लिए अर्हताएँ (Qualifications for membership of Parliament)

संसद सदस्यता के लिए कौन सी अर्हताओं को धारण करना ज़रूरी है, इसकी सूचना दो स्रोतों से मिलती है। पहला स्रोत संविधान है जबकि दूसरा संसद द्वारा पारित 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951'।

संविधान में वर्णित अर्हताएँ (Qualifications described in the constitution):

अनुच्छेद 84 के अनुसार संसद की सदस्य बनने के लिए प्रत्याशी को निम्नलिखित अर्हताएँ पूरी करनी होती हैं-

- (i) वह भारत का नागरिक हो।
- (ii) उसकी आयु-लोकसभा सदस्य बनने के लिए कम से कम 25 वर्ष और राज्यसभा की सदस्यता के लिए न्यूनतम 30 वर्ष हो।
- (iii) उसने संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार शपथ (oath) ली हो। यह शपथ किसी ऐसे व्यक्ति के सामने ली जानी चाहिए जिसे 'चुनाव आयोग' ने इस कार्य के लिए प्राधिकृत किया हो।
- (iv) वह ऐसी अन्य अर्हताएँ भी पूरी करता हो, जो इस संबंध में संसद द्वारा पारित किसी विधि के अधीन निर्धारित की गई हों।

संसद द्वारा निर्धारित अर्हताएँ (Qualifications determined by the parliament):

संसद ने 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951)' (Representation of people act, 1951) के माध्यम से कुछ अन्य अर्हताएँ भी निर्धारित की हैं, जैसे-

- (i) संसद सदस्य बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को भारत के किसी न किसी निर्वाचन क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए। ध्यातव्य है कि 2003 से पूर्व राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए उस राज्य विशेष का पंजीकृत मतदाता होना ज़रूरी था, किंतु 2003 में संसद ने यह बाध्यता समाप्त कर दी थी।
- (ii) यदि कोई व्यक्ति अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ना चाहता है तो उसे केंद्र सरकार द्वारा घोषित अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल समुदाय का अंग होना चाहिए। किंतु, यदि उक्त वर्गों का कोई व्यक्ति किसी अनारक्षित (unreserved) सीट से चुनाव लड़ना चाहे तो उस पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

संसद की सदस्यता के लिए अनर्हताएँ (Disqualifications for the membership of parliament):

संसद की सदस्यता से संबंधित अनर्हताओं की जानकारी तीन स्रोतों से प्राप्त होती है। ये हैं- (i) संविधान, (ii) दल-बदल विरोधी कानून (Anti-defection law); तथा (iii) लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (Representation of people act, 1951)। इन तीनों में वर्णित अनर्हताओं को क्रमशः देखा जा सकता है-

(क) संविधान में वर्णित अनर्हताएँ (Disqualifications described in the constitution):

ध्यातव्य है कि 'लाभ का पद' शब्दावली की निश्चित परिभाषा न तो संविधान में दी गई है और न ही 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' में। संविधान के अनुच्छेद 102 में सिर्फ इतना कहा गया है कि संघ या राज्य के किसी मंत्री को लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा।

न्यायालय ने कुछ मामलों में 'लाभ का पद' शब्दावली को स्पष्ट किया है और बताया है कि 'लाभ' का अर्थ सिर्फ प्रतीकात्मक राशि (Symbolic amount) या मानदेय (honorarium) जैसी राशि से नहीं होगा बल्कि किसी ऐसे धन संबंधी लाभ से होगा जो वेतन या भत्तों आदि के रूप में मिला हो तथा सिर्फ कार्य संबंधी खर्च पूरे करने तक सीमित न हो।

- (ii) यदि वह विकृत मस्तिष्क (Unsound mind) का है तथा सक्षम न्यायालय ने ऐसी घोषणा की है।
- (iii) यदि वह अनुस्यूक्त दिवालिया (Undischarged Insolvent) है।
- (iv) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा को स्वीकार किए हुए है।
- (v) यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा संसद की सदस्यता के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है।

(ख) दल-बदल विरोधी कानून से जुड़ी निरर्हताएँ (Disqualifications associated with Anti defection law):

अनुच्छेद 102 के साथ दिए गए दूसरे स्पष्टीकरण में बताया गया है कि यदि कोई व्यक्ति 10वीं अनुसूची में दिये गये नियमों के आधार पर अयोग्य घोषित हो जाता है तो वह संसद की सदस्यता के लिए अर्हित (qualified) नहीं रह जाएगा। इसकी वर्तमान स्थिति यह है कि यदि किसी दल को दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में विलय (Merger) कर लेते हैं तो कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती किंतु उससे कम सदस्यों का दल से अलग होना उन सदस्यों की संसद की सदस्यता के लिए अयोग्य बना देता है।

10वीं अनुसूची की पैरा 7 घोषित करता है कि दल बदल से संबंधित सभी मामलों पर अंतिम निर्णय सदन के पीठासीन अधिकारी का होगा अर्थात् राज्यसभा में सभापति का और लोकसभा तथा विधानसभाओं में अध्यक्ष का निर्णय ही अंतिम होगा। इसमें निहित था कि दल बदल संबंधी मामलों पर न्यायालय के पास पुनर्विलोकन करने की शक्ति नहीं होगी। 1992 में 'किहोतो होलोहान बनाम जाचिलह' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) को संविधान का आधारभूत ढाँचा (Basic structure) घोषित करते हुए 10वीं अनुसूची के पैरा 7 को असंवैधानिक घोषित कर दिया। इसका अर्थ है कि अध्यक्ष या सभापति के निर्णय का न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है।

(ग) 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' से जुड़ी निरर्हताएँ (Disqualifications associated with Representation of people act, 1951):

संसद ने 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' के अंतर्गत भी संसद सदस्यों के लिए कुछ निरर्हताएँ घोषित की हैं। इसके अनुसार, निम्नलिखित में से कुछ भी होने पर कोई व्यक्ति संसद की सदस्यता के लिए अर्ह नहीं होगा-

- (i) वह व्यक्ति किसी चुनाव में भ्रष्ट आचरण का दोषी सिद्ध हुआ हो।
- (ii) उसे किसी अपराध में दोषी सिद्ध होने के आधार पर 2 वर्ष या उससे अधिक की सजा मिली हो। इसमें निवारक निरोध (Preventive detention) के आधार पर किया गया बंदीकरण शामिल नहीं है।
- (iii) वह अपने चुनावी खर्च का व्यौरा निर्धारित समय के भीतर देने में विफल रहा हो।
- (iv) वह किसी ऐसे निगम में 'लाभ का पद' (Office of profit) धारण करता हो जिसमें सरकार की हिस्सेदारी 25 प्रतिशत या उससे ज्यादा हो।
- (v) उसे सरकारी नौकरी से इस आधार पर बर्खास्त किया गया हो कि वह भ्रष्टाचार में लिप्त था या उसमें सरकार के प्रति निष्ठा का अभाव था।
- (vi) वह दहेज, सती प्रथा, जातिगत भेदभाव या छुआ-छूत जैसे किसी सामाजिक अपराध के प्रचार-प्रसार या फालन में लिप्त पाया गया हो।
- (vii) उसे सरकारी ठेकों या किसी अन्य सरकारी सेवा या काम में दिलचस्पी हो।

अनर्हता से संबंधित निर्णय की प्रक्रिया (Procedure of decision regarding disqualification):

कोई सदस्य निरर्ह (disqualified) हो गया है या नहीं, यह प्रश्न राष्ट्रपति को निर्दिष्ट किए जाने का प्रावधान है। अनुच्छेद

किसी प्रश्न का निर्णय करने से पहले यह ज़रूरी है कि राष्ट्रपति चुनाव आयोग की राय ले और उस राय के अनुसार ही निर्णय करे।

संसद सदस्यता की समाप्ति (Termination of membership of parliament)

किसी संसद सदस्य की सदस्यता निम्नलिखित आधारों पर समाप्त हो सकती है—

- (i) यदि किसी सांसद ने राज्यसभा के सभापति या लोकसभा के अध्यक्ष को संबोधित करके अपना त्यागपत्र दे दिया हो तथा पीठासीन अधिकारी ने उसे स्वीकार कर लिया हो।
- (ii) यदि कोई सांसद संविधान में बताई गई निरर्हताओं (disqualifications) में से किसी का भागी हो जाता है तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। ध्यातव्य है कि निरर्हताओं की सूची में दल-बदल कानून से उत्पन्न होने वाली निरर्हताएँ भी शामिल हैं।
- (iii) यदि कोई सदस्य सदन से अनुपति लिए बिना लगातार 60 दिनों तक सदन की प्रत्येक बैठक में अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है [अनुच्छेद 101(4)]; किंतु यह ज़रूरी है कि सदन इस संबंध में स्पष्ट घोषणा करे। यदि सदन में ऐसी घोषणा नहीं की गई है, तो उसका स्थान रिक्त नहीं माना जाएगा। 60 दिनों की गणना में वे दिन शामिल नहीं होंगे जब सदन सत्रावसित (prorogued) रहा था या लगातार 4 दिनों से अधिक अवधि के लिए स्थगित (adjourned) रहा था।
- (iv) संसद की सदस्यता कुछ अन्य स्थितियों में भी समाप्त हो सकती है, जैसे—
 - (क) यदि न्यायालय उस चुनाव की ही अवधि या शून्य (void) घोषित कर दे जिसके आधार पर वह व्यक्ति संसद सदस्य बना था।
 - (ख) यदि कोई संसद सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति चुन लिया जाता है अथवा किसी राज्य का राज्यपाल बना दिया जाता है।
 - (ग) यदि किसी सदस्य को अनुचित आचरण आदि के कारण सदन द्वारा निष्कासित (expel) कर दिया जाता है।

संसद सदस्यता से जुड़े अन्य पक्ष (Other aspects related with membership of parliament)

संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते (Salaries and allowances of the members of Parliament):

संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को अपने कार्यों के निर्वहन हेतु वेतन और भत्ते प्राप्त करने का अधिकार है। अनुच्छेद 106 में कहा गया है कि संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते स्वयं संसद विधि द्वारा निर्धारित करेगी और जब तक संसद ऐसा न करे, तब तक उन्हें वही वेतन और भत्ते प्राप्त होंगे जो भारत डोमिनियन की संविधान सभा के सदस्यों को संविधान लागू होने के ठीक पहले तक प्राप्त होते थे।

संसद ने समय-समय पर विधि द्वारा सांसदों के वेतन और भत्ते निर्धारित किए हैं। सबसे पहले 1954 में संसद ने 'संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम' (The Salary, Allowances and Pension of Members of Parliament Act, 1954) बनाया था। 1976 में संसद ने विधि द्वारा व्यवस्था की कि संसद सदस्य सांसद के रूप में गुजरे गए हर पाँच वर्ष की अवधि के अनुसार पेंशन पाने के हकदार होंगे। 2006 में संसद ने सांसदों का वेतन पुनः संशोधित किया जिसके तहत उन्हें 16000 रु० प्रतिमाह वेतन दिया जाना निर्धारित हुआ। अगस्त 2010 में पुनः 300% वेतन वृद्धि करके इसे ₹ 50000 प्रतिमाह कर दिया गया है। इसके अलावा, प्रत्येक सांसद को ₹ 40000 प्रतिमाह कार्यालय भत्ते के रूप में, ₹ 40000 प्रतिमाह निर्वाचन क्षेत्र भत्ते (Constituency allowance) के रूप में तथा ₹ 2000 प्रतिदिन दैनिक भत्ते के रूप में (सिर्फ उन दिनों के लिए जब संसद का सत्र चल रहा होता है) दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक सांसद को प्रतिवर्ष ₹ 4 लाख का यात्रा भत्ता, रेल और हवाई जहाज की मुफ्त यात्रा इत्यादि सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं।

संसद में मंत्रियों एवं महान्यायवादी के अधिकार

(Rights of Ministers and Attorney General in Parliament)

संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के अलावा महान्यायवादी (Attorney General) तथा मंत्रियों को भी सदन की कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद 88 तथा 105(4) में इनके अधिकार बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं—

1. महान्यायवादी (Attorney General) किसी भी सदन की कार्यवाही में भाग ले सकता है, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाग ले सकता है तथा जिस समिति में वह सदस्य बनाया गया है, उसमें भाग ले सकता है। वह इन सभी मंचों पर अपने विचार भी व्यक्त कर सकता है किन्तु उसे मतदान करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।
2. यदि कोई मंत्री किसी सदन का सदस्य नहीं है तो भी वह दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है तथा मतदान के अलावा उपरोक्त वर्णित अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। ध्यातव्य है कि कोई व्यक्ति बिना किसी सदन का सदस्य हुए अधिकतम छह महीनों तक मंत्री-पद धारण कर सकता है।
3. जो मंत्री संसद के सदस्य हैं, उन्हें भी एक विशेष अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक मंत्री उस सदन की कार्यवाही में भी भाग ले सकता है जिसका वह सदस्य नहीं है। इसका अर्थ है कि जो मंत्री लोकसभा का सदस्य है, वह राज्यसभा की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है तथा जो राज्यसभा का सदस्य है, वह लोकसभा की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है। किन्तु, मंत्री को मतदान का अधिकार उसी सदन में होता है जिसका वह सदस्य है।

संसद के प्रमुख नेता (Important leaders of the Parliament)

संसद के प्रत्येक सदन में भी उसी प्रकार के अधिकारियों के अलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण सदस्य होते हैं जिनका संसद की कार्यवाही की दृष्टि से विशेष महत्त्व होता है। ऐसे प्रमुख नेता निम्नलिखित हैं—

- (i) सदन का नेता (Leader of the House)— इसकी ज़रूर संविधान में नहीं, सदनों की नियमावलियों में है। सामान्यतः लोकसभा में सदन के नेता का अर्थ प्रधानमंत्री होता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता ही प्रधानमंत्री की भूमिका को निर्वहण करता है। यदि कभी प्रधानमंत्री राज्यसभा से हो तो प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद् के किसी ऐसे मंत्री को, जो लोकसभा का सदस्य है, लोकसभा में सदन के नेता की भूमिका के लिए मनोनीत करता है। राज्यसभा में भी सत्तारूढ़ दल (ruling party) या गठबंधन का एक सदस्य 'सदन का नेता' होता है जो या तो प्रधानमंत्री स्वयं होता है (यदि वह राज्यसभा से है) या प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत कोई अन्य मंत्री जो राज्यसभा से निर्वाचित हुआ है।
- (ii) विपक्ष का नेता (Leader of the opposition)— विपक्ष के सबसे बड़े दल के प्रमुख को ही 'विपक्ष का नेता' या 'नेता विपक्ष' कहा जाता है। आरम्भ में विपक्ष के नेता को विशेष मान्यता प्राप्त नहीं थी। 1977 में दोनों सदनों में 'नेता विपक्ष' को वैधानिक मान्यता (Statutory recognition) प्रदान की गई। वर्तमान में विपक्ष के नेता को कैबिनेट मंत्री के समकक्ष वेतन, भत्ते व सुविधाएँ उपलब्ध हैं। ध्यातव्य है कि विपक्ष के नेता का दर्जा अभी मिलता है जब विपक्ष में सबसे बड़ी पार्टी के सदस्यों की संख्या कुल सदस्यों के 10% के बराबर या अधिक हो। उससे कम सदस्य होने पर यह दर्जा किसी को नहीं दिया जाता है।
- (iii) सचेतक (Whip)— 'सचेतक' का कार्य संसद में अपने राजनीतिक दल के सदस्यों को अनुशासन में रखना होता है। प्रत्येक राजनीतिक दल, चाहे वह सत्ता में हो या विपक्ष में, अपने एक सदस्य की नियुक्ति सचेतक के रूप में करता है। उसका मुख्य कार्य यह देखना होता है कि दल के सदस्य संसद में उपस्थित रहें। इसके अलावा, यदि किसी मुद्दे पर संसद में मतदान होना हो तो वह अपने दल के सदस्यों को निर्देश जारी करता है कि उन्हें मतदान में प्रस्ताव का समर्थन करना है, विरोध करना है या तटस्थ रहना है? यदि पार्टी सदस्य उसके निर्देश का पालन नहीं करते हैं तो उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

संसद में विधि निर्माण की प्रक्रिया (Legislative Procedure in Parliament)

संविधान में अनुच्छेद 107 से 111 तक के समूह को 'विधायी प्रक्रिया' (Legislative procedure) शीर्षक दिया गया है। ज्ञातव्य है कि इन अनुच्छेदों में विधि निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख संक्षेप में किया गया है, उससे संबंधित सभी नियम नहीं दिए गए हैं। संसद के दोनों सदनों के पास अधिकार है कि वे संविधान के अधीन रहते हुए अपने लिए कार्यवाही के नियम खुद बनाएँ। इसलिए, संसद की विधायी प्रक्रिया को समझने के लिए उपरोक्त वर्णित अनुच्छेदों के साथ-साथ लोकसभा तथा राज्यसभा के विशिष्ट नियमों को भी देखा जाना ज़रूरी है।

संसद का सबसे प्रमुख कार्य कानून बनाना ही है। कोई भी कानून (Law) शुरुआत में विधेयक (Bill) होता है। जब वह विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा अपेक्षित बहुमत से पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति उस पर सहमति प्रदान कर देते हैं तो वह अधिनियम (Act) बन जाता है। अधिनियम को ही प्रचलित भाषा में कानून कहा जाता है।

विधेयकों के प्रकार (Types of bills)

संसद में पेश किए जाने वाले विधेयकों को भिन्न-भिन्न दृष्टि से वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ प्रमुख वर्गीकरण इस प्रकार हैं—

सरकारी विधेयक तथा प्राइवेट सदस्य विधेयक (Government bills and Private member bills):

संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयक दो प्रकार के होते हैं— (i) सरकारी विधेयक (Government bills), तथा (ii) 'गैर-सरकारी विधेयक' या 'प्राइवेट सदस्य विधेयक' (Private Member bills)। सरकारी विधेयक वे हैं जो किसी मंत्री द्वारा पेश किए जाते हैं। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के अलावा किसी भी अन्य सदस्य द्वारा प्रस्तुत विधेयक 'प्राइवेट सदस्य विधेयक' कहलाते हैं, चाहे वह सदस्य सत्तारूढ़ दल का ही क्यों न हो। दोनों तरह के विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया समान है, हालाँकि 'प्राइवेट सदस्य विधेयक' का पारित होना प्रायः असंभव होता है।

आमतौर पर गैर-सरकारी या प्राइवेट सदस्य विधेयक विपक्षी दलों द्वारा सरकार की नीतियों को आलोचना करने के उद्देश्य से पेश किए जाते हैं। सदन में गैर-सरकारी विधेयक को पेश करने से पहले एक महीने का नोटिस देना ज़रूरी होता है। नोटिस की अवधि के दौरान इन विधेयकों को सदन की एक समिति के पास भेजा जाता है जो जांच करती है कि कहीं यह विधेयक संसद के विधि निर्माण संबंधी क्षेत्राधिकार से बाहर तो नहीं है? यह समिति ही ऐसे विधेयकों पर विचार करने का समय निर्धारित करती है। लोकसभा में प्रायः प्रत्येक शुक्रवार को प्राइवेट विधेयकों के लिए कुछ समय देने की परंपरा है।

प्रक्रिया के आधार पर विधेयकों का वर्गीकरण (Classification of bills on the basis of procedure):

विधि निर्माण की प्रक्रिया की दृष्टि से देखें तो भारतीय संसद में पेश किए जाने वाले विधेयकों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(क) साधारण विधेयक (Ordinary Bill)—इन विधेयकों की कोई विशिष्ट परिभाषा नहीं है। वस्तुतः जो विधेयक शेष तीनों प्रकारों अर्थात् धन विधेयक (Money Bill), वित्तीय विधेयक (Financial Bill) और संविधान संशोधन विधेयक (Constitution Amendment Bill) से भिन्न होते हैं, वे सभी इस वर्ग में शामिल किए जाते हैं।

(ख) धन विधेयक (Money Bill)—अनुच्छेद 110 में शामिल विषयों से जुड़े विधेयक इस वर्ग में शामिल हैं। इनका संबंध कुछ

साधारण विधेयक (Ordinary Bills)

साधारण विधेयक कानून बनने से पूर्व कई चरणों से गुजरता है जो निम्नलिखित हैं—

- (1) **प्रथम वाचन (First Reading)**—इस चरण में विधेयक को संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जाता है। यदि विधेयक सरकारी है तो किसी मंत्री द्वारा और यदि प्राइवेट है तो किसी अन्य सांसद द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। विधेयक को प्रस्तुत करने वाला सदस्य सदन में बताता है कि विधेयक का शीर्षक और उसका मूल उद्देश्य क्या है? इसके साथ-साथ विधेयक की प्रकाशित प्रतियाँ सदन के सभी सदस्यों को बाँटी जाती हैं। इस चरण में सामान्यतः विधेयक पर कोई चर्चा नहीं होती, सिर्फ सदन की अनुमति प्राप्त की जाती है। सदन की अनुमति मिलने के बाद विधेयक को राजपत्र (Gazette) में प्रकाशित किया जाता है। यदि विधेयक सदन में प्रस्तुत होने से पहले ही राजपत्र (Gazette) में प्रकाशित हो चुका हो तो सदन की अनुमति लेने की जरूरत नहीं होती है।

आमतौर पर प्रथम वाचन सिर्फ एक औपचारिकता होती है। प्रथम वाचन का अर्थ विधेयक को पेश किए जाने तथा राजपत्र में उसके प्रकाशित होने से ही है।

- (2) **द्वितीय वाचन (Second Reading)**—यह विधेयक पर विचार-विमर्श की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। इसके अंतर्गत विधेयक के सभी उपबंधों पर विस्तृत विचार-विमर्श होता है। द्वितीय वाचन के अंतर्गत विधेयक तीन उप-चरणों से गुजरता है, जो निम्नलिखित हैं—

(क) **साधारण बहस की अवस्था (Stage of General Discussion)**—इसके अंतर्गत विधेयक पर सैद्धांतिक चर्चा होती है। इस दौरान विधेयक के पृथक्-पृथक् उपबंधों पर विचार-विमर्श नहीं किया जाता। इस अवस्था में सदन निम्नलिखित में से कोई कदम उठा सकता है—

(i) चर्चा शुरू कर सकता है।

(ii) चर्चा के लिए बाद की कोई तिथि निर्धारित कर सकता है।

(iii) विधेयक को गहन-विचार-विमर्श के लिए सदन की प्रवर समिति (Select Committee) को सौंप सकता है।

(iv) विधेयक को दोनों सदनों की संयुक्त समिति (Joint Committee) को निर्दिष्ट कर सकता है।

(v) विधेयक को जनता की राय जानने के लिए सार्वजनिक किया जा सकता है।

(ख) **समिति अवस्था (Committee Stage)**—यदि विधेयक प्रवर समिति (Select Committee) या संयुक्त समिति (Joint Committee) को निर्दिष्ट किया गया है तो यह उप-चरण समिति अवस्था कहलाता है। समिति विधेयक के प्रत्येक खण्ड पर विचार करती है और सुझाव देती है कि उसमें क्या हटाया जाना चाहिए तथा क्या जोड़ा जाना चाहिए?

(ग) **विचार की अवस्था (Consideration Stage)**—समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने के बाद विधेयक का प्रभारी सांसद (अर्थात् वह सदस्य जिसने विधेयक पेश किया था) सदन में यह प्रस्ताव रखता है कि समिति के प्रतिवेदन के आलोक में विधेयक पर विचार किया जाए।

इसके बाद विधेयक के प्रत्येक उपबंध पर चर्चा और मतदान की प्रक्रिया शुरू होती है। इस अवस्था में सदस्यों को संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत करने का हक होता है और यदि वे संशोधन स्वीकृत हो जाते हैं तो विधेयक का हिस्सा बन जाते हैं। पीठासीन अधिकारी विधेयक का प्रत्येक खंड सदन के सामने रखता है और प्रत्येक खंड के संबंध में प्रस्तावित किए गए संशोधन प्रस्तावों पर मतदान कराता है। जब सभी खंडों पर मतदान पूरा हो जाता है तो विधेयक नए रूप में सामने आता है।

- (3) **तृतीय वाचन (Third Reading)**—इस चरण में प्रभारी सदस्य (Member in charge) प्रस्ताव रखता है कि संशोधित विधेयक पर मतदान किया जाए तथा उसे पारित किया जाए। इस चरण में सिर्फ संपूर्ण विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है, विधेयक के अंतर्गत कोई संशोधन नहीं किया जा सकता। यदि सदन का अपेक्षित बहुमत उसका समर्थन कर देता है तो विधेयक पारित हो जाता है।

(क) वह विधेयक को बिना किसी संशोधन के पारित करके प्रथम सदन को वापस भेज सकता है।

(ख) वह विधेयक को कुछ संशोधनों सहित प्रथम सदन को वापस भेज सकता है।

(ग) वह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है।

(घ) वह यह भी कर सकता है कि विधेयक को पड़ा रहने दे और कोई कार्यवाही न करे।

यदि दूसरे सदन ने बिना संशोधन के विधेयक पारित कर दिया है तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। यदि दूसरे सदन ने कुछ संशोधन प्रस्तावित किए हों और पहला सदन उन संशोधनों को स्वीकार कर ले तो मान लिया जाता है कि दोनों सदनों में संशोधन सहित विधेयक पारित कर दिया गया है। इन दोनों ही स्थितियों में अगले चरण के तौर पर विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए भेज दिया जाता है।

इन दोनों के अलावा किसी भी स्थिति में गतिरोध (Deadlock) उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिये, यदि दूसरे सदन द्वारा पेश किए गए संशोधनों को पहला सदन खारिज कर दे या दूसरा सदन पहले सदन द्वारा भेजे गए विधेयक को ही खारिज कर दे तो गतिरोध की स्थिति पैदा होती है। इसी प्रकार, यदि दूसरा सदन 6 महीने तक विधेयक पर कोई कार्यवाही न करे तो भी गतिरोध की स्थिति पैदा हो जाती है। इस गतिरोध को समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Sitting) बुला सकता है। ध्यातव्य है कि संयुक्त बैठक धन विधेयक तथा संविधान संशोधन विधेयक के मामले में नहीं हो सकती, यह सिर्फ साधारण विधेयक तथा वित्तीय विधेयकों के मामले में ही बुलाई जा सकती है। यदि संयुक्त बैठक में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों का बहुमत विधेयक को पारित कर देता है तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है।

(5) राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of the President) - संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के बाद पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रमाणित विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है क्योंकि उसकी स्वीकृति विधेयक (Bill) के अधिनियम (Act) बनने के लिए अनिवार्य है। अनुच्छेद 111 के तहत राष्ट्रपति के पास ऐसे विधेयक के संबंध में तीन विकल्प होते हैं—

(क) वह विधेयक को स्वीकार कर सकता है। उसकी स्वीकृति मिलने पर विधेयक अधिनियम बन जाता है।

(ख) वह विधेयक को अपने पास रोक सकता है। रोकने का अर्थ 'जेबी-वीटो' अर्थात् 'पाकेट वीटो' का प्रयोग करना है।

(ग) यदि राष्ट्रपति विधेयक के उपबंधों से संतुष्ट नहीं है तो वह उसमें संशोधन के कुछ सुझावों सहित उसे संसद के दोनों सदनों को पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है। यदि दोनों सदन राष्ट्रपति के सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करते हुए विधेयक को पुनः पारित कर देते हैं और राष्ट्रपति के पास अनुमति के लिए भेजते हैं तो राष्ट्रपति उस पर अनुमति देने के लिए बाध्य होता है।

धन विधेयक (Money Bills)

धन विधेयक का अर्थ (Meaning of Money Bill):

संविधान के अनुच्छेद 110 में बताया गया है कि कोई विधेयक धन विधेयक तब माना जाएगा यदि उसमें निम्नलिखित में से कोई एक, एक से अधिक या सभी विषयों से जुड़े प्रावधान होंगे—

(क) किसी कर को लगाया जाना (imposition), समाप्त किया जाना (abolition) परिवर्तित किया जाना (alteration) या नियमित (regulate) किया जाना।

(ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने से संबंधित विधि का संशोधन या विनियमन।

(ग) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) या आकस्मिकता निधि (Contingency Fund) में धन जमा करना, उसमें से धन निकालना या उस धन की अभिरक्षा (custody) से संबंधित प्रावधान बनाना।

(छ) उपरोक्त (क) से (च) में विनिर्दिष्ट किसी विषय से संबंधित कोई अन्य विषय।

अनुच्छेद 110(2) में स्पष्ट किया गया है कि कोई विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नहीं समझा जाएगा कि

(क) उसका संबंध किसी जुर्माने या अन्य आर्थिक दंडों के साथ है।

(ख) उसका संबंध किन्हीं सेवाओं या लाइसेंसें की फीसों के साथ है।

(ग) उसका संबंध किसी स्थानीय प्राधिकारी (Local authority) या निकाय (body) द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए कोई कर लगाने (imposition), हटाने (abolition), परिवर्तित करने (alteration) या विनियमित करने (regulation) से है।

धन विधेयक का निर्धारण (Determining the Money Bill):

अनुच्छेद 110(3) में स्पष्ट किया गया है कि यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं तो इस संबंध में लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा।

किसी विधेयक के धन विधेयक होने या न होने के मामले में लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है और इसे किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

अनुच्छेद 117 में बताया गया है कि धन विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश से ही तथा सिर्फ लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है, राज्यसभा में नहीं। हॉ, यदि किसी कारणवश कम करने या हटाने के लिए किसी विधि में संशोधन किया जाना हो तो ऐसे मामले में राष्ट्रपति की सिफारिश की जरूरत नहीं है।

धन विधेयक के संबंध में यह शर्त भी महत्वपूर्ण है कि सभी धन विधेयक सरकार विधेयक ही होते हैं। इसका अर्थ है कि कोई मंत्री ही धन विधेयक प्रस्तुत कर सकता है, शेष सदस्य नहीं।

धन विधेयक के संसद में राज्यसभा की स्थिति (Status of Rajya sabha in context of Money bill):

लोकसभा द्वारा पारित कर दिए जाने के बाद धन विधेयक राज्यसभा के पास भेजा जाता है किंतु इस विधेयक के मामले में राज्यसभा की शक्तियाँ अत्यंत सीमित हैं। जहाँ साधारण विधेयकों के मामले में राज्यसभा को शक्ति है कि वह उन्हें संशोधित भी कर सकती है और खारिज भी; वहीं धन विधेयकों को वह न तो संशोधित कर सकती है और न ही खारिज। वह अधिक से अधिक इतना ही कर सकती है कि उनमें संशोधन के लिए सिफारिश करे। इसके लिए उसके पास अधिकतम 14 दिनों का समय होता है। यदि वह 14 दिनों के भीतर विधेयक को पास नहीं लाती है तो मान लिया जाता है कि विधेयक उसी रूप में पारित हो गया है जिस रूप में लोकसभा ने उसे पारित किया था।

इसी तरह, यदि राज्यसभा उस विधेयक को पारित कर देती है तो भी लोकसभा द्वारा पारित मूल विधेयक कानून बन जाता है।

यदि राज्यसभा धन विधेयक से संतुष्ट नहीं है और वह 14 दिनों के भीतर संशोधन से संबंधित सिफारिश कर देती है तो लोकसभा के पास तीन विकल्प होते हैं—

(क) वह सभी सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है।

(ख) वह सभी सिफारिशों को खारिज कर सकती है।

(ग) वह कुछ सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है और कुछ को खारिज।

यदि लोकसभा सभी सिफारिशों को खारिज कर देती है तो समझा जाता है कि लोकसभा द्वारा पारित मूल विधेयक को दोनों सदनों ने पारित कर दिया है। यदि लोकसभा सभी या कुछ सिफारिशें स्वीकार कर लेती है तो समझा जाता है कि दोनों सदनों ने संशोधित विधेयक को स्वीकार कर लिया है।

राष्ट्रपति की अनुमति (Assent of the President):

इसके बाद धन विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। लोकसभा अध्यक्ष विधेयक के साथ इस आशय का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करता है कि यह धन विधेयक है। अनुच्छेद 111 के तहत धन विधेयक के मामले में राष्ट्रपति को यह अधिकार

वित्तीय विधेयक (Financial Bills)

वित्तीय विधेयक उन सभी विधेयकों को कहते हैं जिनका संबंध वित्त से जुड़े मामलों से होता है, जैसे—सरकार के राजस्व (revenue) या व्यय (expenditure) से संबंधित विधेयक। किसी कर को लगाना या उसमें परिवर्तन करना आदि वित्तीय विधेयकों के सामान्य विषय हैं।

दरअसल, हर धन विधेयक (money bill) वित्तीय विधेयक (finance bill) होता है किंतु हर वित्तीय विधेयक धन विधेयक नहीं होता। वित्तीय मामलों के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए संविधान में वित्तीय विधेयकों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा गया है—

- (क) धन विधेयक (अनुच्छेद 110 से संबंधित)
- (ख) वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) — अनुच्छेद 117(1) से संबंधित।
- (ग) वित्तीय विधेयक (प्रकार-II) — अनुच्छेद 117(3) से संबंधित।

उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि सभी धन विधेयक वित्तीय विधेयक ही होते हैं। जिन वित्तीय विधेयकों का संबंध अनुच्छेद 110 में बताए गए विषयों से होता है, उन्हें धन विधेयक कहा जाता है। शेष दोनों प्रकारों अर्थात् वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) तथा वित्तीय विधेयक (प्रकार-II) की चर्चा क्रमशः अनुच्छेद 117(1) और 117(3) में की गई है।

वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) [Financial Bill (Type-I)]:

वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) वह विधेयक है जिसमें अनुच्छेद 110 में वर्णित विषय तो शामिल हैं ही, साथ में कुछ ऐसे विषय भी शामिल हैं जो अनुच्छेद 110 की परिधि से बाहर के हैं।

वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) दो मामलों में धन विधेयक के समान होता है—

- (क) यह भी धन विधेयक की तरह लोकसभा में ही पेश किया जा सकता है।
- (ख) यह भी धन विधेयक की तरह राष्ट्रपति की सिफारिश से ही पेश किया जा सकता है।

राज्यसभा को वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) के मामले में पर्याप्त शक्तियाँ दी गई हैं। वह उन सभी शक्तियों का प्रयोग इस पर कर सकती है जो उसके पास साधारण विधेयकों के मामले में होती हैं। वह इसमें संशोधन भी कर सकती है और इसे खारिज भी कर सकती है। यदि दोनों सदन एक-दूसरे की राय से सहमत न हों और उनके मध्य मतभेद उत्पन्न हो जाए तो अनुच्छेद 108 के तहत संयुक्त बैठक का प्रावधान लागू होता है।

दोनों सदनों से अलग-अलग या संयुक्त बैठक द्वारा पारित किए जाने के बाद वित्तीय विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। इसके संबंध में राष्ट्रपति के पास वे तीनों विकल्प खुले होते हैं जो उसे अनुच्छेद 111 के तहत साधारण विधेयकों के संबंध में प्राप्त हैं। वह विधेयक को स्वीकृति भी दे सकता है, रोक भी सकता है और चाहे तो संसद को कुछ सुझावों के साथ पुनर्विचार के लिए वापस भी भेज सकता है।

वित्तीय विधेयक (प्रकार-II) [Financial Bill (Type-II)]:

इस वर्ग में वे विधेयक शामिल हैं जिनकी चर्चा अनुच्छेद 117(3) में की गई है। इन विधेयकों में भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) पर भारित खर्च (charged expenditure) से जुड़े उपबंध होते हैं लेकिन ऐसा कोई विषय शामिल नहीं होता जिसका संबंध अनुच्छेद 110 में शामिल विषयों से हो।

ऐसे विधेयकों पर प्रायः वही प्रावधान लागू होते हैं जो साधारण विधेयकों पर लागू होते हैं। इन्हें किसी भी सदन में शुरू किया जा सकता है, इनके लिए राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति आवश्यक नहीं होती, इन्हें दोनों सदनों से पारित करवा जाना ज़रूरी होता है, दोनों सदनों में मतभेद होने की दशा में संयुक्त बैठक भी बुलाई जा सकती है और राष्ट्रपति के पास भी इन विधेयकों के संबंध में स्वीकृति देने, रोक लेने तथा पुनर्विचार हेतु वापस भेजने के तीनों विकल्प होते हैं।

इन विधेयकों के संबंध में सिर्फ एक बात विशेष महत्व की है। ऐसे विधेयक को कोई भी सदन जब चाहे शुरू कर सकता है, किंतु जब सदन उस पर विचार करना या उसे पारित करना चाहता है तो उससे पहले राष्ट्रपति की सिफारिश लेना ज़रूरी होता है। यह सिफारिश दोनों सदनों को लेनी होती है।

संविधान संशोधन विधेयक (Constitution Amendments Bills)

संविधान संशोधन विधेयक उन विधेयकों को कहा जाता है जो अनुच्छेद 368 में बताए गए उपबंधों पर आधारित होते हैं। यूँ, भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेदों को साधारण विधेयकों के माध्यम से संशोधित किया जा सकता है, जैसे अनुच्छेद 2, 3, 169, 239 इत्यादि; किंतु ऐसे विधेयकों को तकनीकी तौर पर संविधान संशोधन विधेयक नहीं माना जाता। औपचारिक दृष्टि से संविधान संशोधन विधेयक सिर्फ वे विधेयक होते हैं जो अनुच्छेद 368 में निर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार पारित किए जाते हैं।

संविधान संशोधन विधेयकों के दो प्रकार (Two types of Constitution Amendment Bills):

अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन विधेयकों को दो वर्गों में बाँट दिया गया है। इन दोनों वर्गों का परिचय इस प्रकार है—

- (क) संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत (Special majority) के आधार पर पारित होने वाले संशोधन विधेयक— अधिकांश संविधान संशोधन विधेयक इसी वर्ग में शामिल हैं। जिन उपबंधों का संबंध भारत के संघीय ढाँचे (Federal structure) से है, उन्हें छोड़कर शेष सभी उपबंधों का संशोधन ऐसे विधेयकों के द्वारा होता है। विशेष बहुमत का तात्पर्य है कि ऐसे संशोधन विधेयक को—

(अ) सदन की कुल संख्या के बहुमत का समर्थन हासिल होना चाहिए।

(आ) प्रत्येक सदन में उस विधेयक को 'उपस्थित तथा मतदान करने वाले' सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई का समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

- (ख) संसद के विशेष बहुमत के अलावा कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों के अनुसमर्थन (ratification) से पारित होने वाले संशोधन विधेयक— संघात्मक ढाँचे से जुड़े उपबंधों का संशोधन करने के लिए अत्यंत कठिन प्रक्रिया बनाई गई है। इसमें शामिल उपबंधों में राष्ट्रपति के निर्वाचन से जुड़े प्रावधान, संघ और राज्यों के मध्य विधायी शक्तियों के वितरण से जुड़े प्रावधान तथा अनुच्छेद 368 में वर्णित प्रावधान शामिल हैं। अनुच्छेद 368(2) में बताया गया है कि ऐसे प्रावधानों से जुड़े संविधान संशोधन विधेयक को—

(अ) दोनों सदनों से विशेष बहुमत (Special majority) द्वारा पारित किया जाना आवश्यक है।

(आ) ऐसे विधेयक के पारित होने की शर्त है कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा इस आशय का 'संकल्प' (Resolution) पारित करके उसे अनुसमर्थन (ratification) दिया जाए।

संशोधन विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया (Procedure of passage of Amendment Bill):

अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन के लिए औपचारिक प्रक्रिया बताई गई है। इस प्रक्रिया के विभिन्न चरण निम्नलिखित हैं

- (1) संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी प्रारंभ (initiate) किया जा सकता है। ऐसे विधेयकों को प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व-अनुमति की आवश्यकता नहीं होती।
- (2) संविधान संशोधन विधेयक को पारित करने की प्रक्रिया सामान्यतः वैसी ही है, जैसी साधारण विधेयकों के मामले में अनुच्छेद 107-108 में बताई गई है। इसमें भी प्रथम वाचन, द्वितीय वाचन आदि उसी पद्धति से किए जाते हैं।
- (3) संसद के दोनों सदनों में विशेष बहुमत से ही संविधान संशोधन विधेयक पारित हो सकता है। इसके अतिरिक्त, संघात्मक ढाँचे (Federal Structure) से जुड़े जिन उपबंधों की सूची अनुच्छेद 368(2) में विशेष सुरक्षित उपबंधों के रूप में दी गई है, उनसे संबंधित संशोधन विधेयक पर कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों का अनुसमर्थन (ratification) लिया जाना भी आवश्यक है। यह चरण संसद के दोनों सदनों द्वारा विधेयक को पारित किए जाने के बाद पूरा किया जाता है।
- (4) संविधान संशोधन विधेयक के मामले में संयुक्त बैठक (Joint sitting) का कोई प्रावधान नहीं है। ऐसे विधेयक का दोनों सदनों में पृथक-पृथक पारित होना ज़रूरी है।
- (5) ये सभी औपचारिकताएँ पूरी होने के बाद विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।
- (6) राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर अनुमति देने के लिए बाध्य है। '24वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971' के माध्यम से अनुच्छेद 368(2) में संशोधन करके 'अनुमति देगा' शब्द रख दिए गए हैं, जिनके माध्यम से ऐसे विधेयकों को 'वीटो' करने की शक्ति राष्ट्रपति से छिन गई है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint sitting of both houses)

कोई भी विधेयक अधिनियम तभी बनता है जब दोनों सदनों ने उसे पारित कर दिया हो तथा राष्ट्रपति ने उसे स्वीकृति प्रदान कर दी हो। धन विधेयक एक अर्थ में इसका अपवाद है क्योंकि उसमें राज्यसभा की सहमति अनिवार्य नहीं है; हालाँकि राज्यसभा से पारित नहीं कराए जाने पर भी तकनीकी तौर पर माना यही जाता है कि दोनों सदनों द्वारा उसे पारित कर दिया गया है।

संयुक्त बैठक बुलाए जाने के कारण (Reasons for calling a joint sitting):

धन विधेयक (Money Bill) और संविधान संशोधन विधेयक (Constitution Amendment Bill) को छोड़कर शेष सभी विधेयकों अर्थात् साधारण विधेयकों (Ordinary Bills) तथा वित्तीय विधेयकों (Financial Bills) के संबंध में संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि यदि दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न हो जाए तो दोनों की संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है। इससे संबंधित प्रावधान मुख्यतः अनुच्छेद 108 तथा सीमित रूप से अनुच्छेद 118 में दिए गए हैं।

संयुक्त बैठक निम्नलिखित तीन स्थितियों में बुलाई जा सकती है—

- (i) यदि एक सदन द्वारा पारित विधेयक को दूसरे सदन ने अस्वीकार कर दिया हो।
- (ii) यदि विधेयक में किए जाने वाले संशोधनों के संबंध में दोनों सदन अंतिम रूप से असहमत हो गए हों।
- (iii) यदि दूसरे सदन ने विधेयक प्राप्त होने की तारीख से 6 महीने पर्यंत विधेयक को पारित न किया हो।

ऐसे गतिरोध की स्थिति में राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता है। ध्यातव्य है कि यदि लोकसभा के विघटन (Dissolution) के कारण कोई विधेयक व्यपगत (lapse) अर्थात् समाप्त हो गया हो तो उसे पारित करने के उद्देश्य से संयुक्त बैठक आयोजित नहीं की जा सकती। किंतु यदि राष्ट्रपति ने दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने के आशय की सूचना दे दी हो तथा उसके बाद लोकसभा का विघटन हुआ हो तो विधेयक व्यपगत (lapse) नहीं होगा और उसके संबंध में संयुक्त बैठक हो सकेगी। एक नियम यह भी है कि यदि राष्ट्रपति ने संयुक्त बैठक बुलाने की घोषणा कर दी है तो उसके बाद कोई भी सदन उस विधेयक पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकता है।

संयुक्त बैठक की अध्यक्षता (Presiding over the joint sitting):

अनुच्छेद 118(4) में बताया गया है कि संयुक्त बैठक की कार्यवाहियों का संचालन तथा उसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करेगा। लोकसभा अध्यक्ष की अनुपस्थिति में लोकसभा का उपाध्यक्ष संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है। उपाध्यक्ष के भी अनुपस्थित होने पर राज्यसभा का उपसभापति यह भूमिका निभाता है और यदि वह भी न हो तो बैठक में उपस्थित सदस्यों द्वारा निर्णय लिया जाता है कि बैठक की अध्यक्षता कौन करेगा। ध्यातव्य है कि राज्यसभा का सभापति अर्थात् उपराष्ट्रपति इस सूची में शामिल नहीं है क्योंकि वह किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता।

संयुक्त बैठक की कार्यवाही लोकसभा के नियमों के अनुसार संचालित होती है, राज्यसभा के नियमों के अनुसार नहीं। संयुक्त बैठक के लिये भी गणपूर्ति 1/10 ही है जिसकी गणना दोनों सदनों की कुल सदस्य संख्या के आधार पर होती है। यदि प्रश्नगत विधेयक दोनों सदनों के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है।

संविधान में बताया गया है कि संयुक्त बैठक में सिर्फ उन बिंदुओं पर ही विचार किया जाएगा जिनके कारण अंतिम रूप से विधेयक पर असहमति उत्पन्न हुई थी। संयुक्त बैठक में मूल विधेयक में सिर्फ दो तरह के संशोधन किए जा सकते हैं—

- (क) वे संशोधन जिनका संबंध असहमति के बिंदुओं का समाधान करने से हो।
- (ख) वे संशोधन जो विधेयक को पारित करने में हुए विलंब के कारण जरूरी हो गए हों।

संसद में बजट संबंधी प्रक्रिया (Budgetary Process in Parliament)

संसद का एक प्रमुख कार्य बजट पारित करना है। इसके माध्यम से वह सरकार के वित्तीय कामकाज पर नियंत्रण रखती है तथा उसे कार्य करने के लिए आवश्यक धन मुहैया कराती है। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है।

'बजट' का अर्थ (Meaning of 'Budget'):

हमारे संविधान में 'बजट' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया गया है। वस्तुतः 'बजट' शब्द फ्रेंच भाषा के शब्द 'बुजेट' (Bougette) से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ है—चमड़े का थैला।

संविधान में बजट के लिये 'वार्षिक वित्तीय विवरण' (Annual financial statement) अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है। अनुच्छेद 112 में राष्ट्रपति को यह कर्तव्य सौंपा गया है कि वह प्रत्येक वित्तीय वर्ष (1 अप्रैल से 31 मार्च) के लिए भारत सरकार की अनुमानित प्राप्तियों तथा व्ययों का विवरण संसद के दोनों सदन में प्रस्तुत करायेंगे।

बजट से जुड़ी कुछ परंपराएँ (Some conventions associated with Budget):

परंपरा रही है कि संसद में बजट फरवरी के अंतिम दिन पेश किया जाता है, हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में इस परंपरा का निर्वाह हमेशा नहीं हो सका है। इंग्लैंड के शासनकाल के दौरान बजट शाम 5 बजे पेश किया जाता था क्योंकि उस समय लंदन में साढ़े ग्यारह बजे होते थे। आजादी के बाद लंबे समय तक इस परंपरा को बनाए रखी गया। 1999 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की सरकार ने इस परंपरा को अनावश्यक मानकर बदल दिया। तब से बजट पेश करने का समय प्रातः 11 बजे का हो गया है।

बजट पेश करने से कुछ दिनों पूर्व सरकार दोनों सदन के समक्ष 'आर्थिक सर्वेक्षण' (Economic Survey) प्रस्तुत करती है जिससे पता चलता है कि पिछले वित्तीय वर्ष में सरकार के बजट अनुमान किस-किस हद तक सही रहे। आर्थिक सर्वेक्षण नए बजट की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता है।

व्ययों का वर्गीकरण (Classification of expenditures)

बजट में दो तरह के व्यय अलग-अलग दिखाए जाते हैं—

- (क) भारत की संचित निधि पर भारित व्यय (Expenditure charged on the consolidated fund of India)
- (ख) भारत की संचित निधि से किए जाने वाले व्यय (Expenditure to be incurred from the consolidated fund of India)

इन दोनों में अंतर यह है कि संचित निधि पर 'भारित व्ययों' (Charged expenditures) के संबंध में कोई मतदान नहीं कराया जाता है, इन पर केवल चर्चा की जा सकती है। शेष व्ययों के संबंध में संसद में चर्चा भी होती है और उनका लोकसभा में मतदान द्वारा पारित होना भी ज़रूरी होता है।

भारित व्ययों का अर्थ (Meaning of Charged Expenditures):

'भारित व्ययों' (Charged expenditures) में ऐसे व्यय शामिल किए जाते हैं जो संवैधानिक पदों पर आसीन व्यक्तियों के वेतन आदि की सुरक्षा से जुड़े हैं या फिर भारत सरकार की साख को प्रभावित कर सकते हैं। इन व्ययों को राजनीतिक दबावों से दूर रखने के लिए व्यवस्था की गई है कि इन पर मतदान नहीं होगा। भारित व्ययों में निम्नलिखित व्यय शामिल हैं—

- (i) राष्ट्रपति की परिलब्धियाँ (emoluments), भत्ते तथा उसके पद से संबंधित अन्य व्यय।
- (ii) उपराष्ट्रपति, राज्यसभा के उपसभापति, लोकसभा अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के वेतन तथा भत्ते।
- (iii) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की परिलब्धियाँ, भत्ते और पेंशन।
- (iv) भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG) के वेतन, भत्ते तथा पेंशन।

- (vi) उच्चतम न्यायालय, भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG) तथा संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के कार्यालयों के सभी प्रशासनिक खर्च, जिनमें इन कार्यालयों में काम करने वाले कर्मचारियों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन भी शामिल हैं।
- (vii) ऐसे ऋण-भार (Debt charges) जिनका दायित्व भारत सरकार पर है।
- (viii) किसी न्यायालय या मध्यस्थम अधिकरण (Arbitral Tribunal) के निर्णय, डिक्री या पंचाट (award) के लिए अपेक्षित धन।
- (ix) कोई अन्य व्यय जो संविधान या संसद के किसी अधिनियम द्वारा भारत व्यय (Charged expenditure) घोषित किया गया हो।

बजट पारित करने की प्रक्रिया (Procedure of passage of the Budget)

संसद द्वारा बजट पारित किए जाने की प्रक्रिया अत्यंत लंबी है। यह सामान्यतः निम्नलिखित 7 चरणों से गुजरती है—

- (i) **बजट की प्रस्तुति (Presentation of Budget)**—इसका अर्थ है लोकसभा में मंत्री द्वारा बजट भाषण देना तथा बजट प्रस्तुत करना। पहले रेल बजट पेश किया जाता है जो सामान्यतः फरवरी के तीसरे सप्ताह में होता है। आम बजट प्रायः फरवरी के अंतिम कार्य दिवस पर वित्त मंत्री द्वारा पेश किया जाता है। दोनों बजट पहले लोकसभा में पेश होते हैं तथा बाद में राज्यसभा में।
- (ii) **बजट पर आम बहस (General Discussion on Budget)**—इसके अंतर्गत बजट पेश होने के बाद तीन-चार दिनों तक लोकसभा में उस पर समग्र रूप से विचार किया जाता है। लोकसभा के सदस्य चाहें तो बजट के संबंध में प्रश्न उठा सकते हैं। वित्त मंत्री को अधिकार है कि वह अंत में इन प्रश्नों का जवाब दे।
- (iii) **लेखानुदान पारित किया जाता है (Passage of Vote on Account)**—चूंकि बजट पर आम बहस के बाद सदन लगभग एक महीने के लिए स्थगित हो जाता है; इसलिए आने वाली 31 मार्च के बाद सरकार के खर्चों के लिए धन की व्यवस्था करना जरूरी होता है। नियुक्त: सरकार संचित निधि (Consolidated fund) में से कोई भी धन विनियोग अधिनियम (Appropriation act) के जरिये ही निकाल सकती है। किंतु इसमें समस्या रहती है कि यदि 1 अप्रैल से पहले बजट न विनियोग अधिनियम पारित हो पाए तो सरकार 31 मार्च के बाद के अपने खर्चों के लिए संचित निधि में से कोई धन नहीं निकाल सकती है। इसलिए लोकसभा अपने स्थगन (adjournment) से पहले आगामी अप्रैल और मई महीनों के लिए एक विधेयक पारित करती है ताकि सरकार को जरूरी खर्च करने में समस्या न आए। इसमें सामान्यतः साल भर के कुल खर्चों के अनुमान की 1/6 राशि दो महीनों के व्यय के लिए सरकार को दी जाती है। इसे ही लेखानुदान (Vote on account) के नाम से जाना जाता है।
- (iv) **विभागीय समितियों द्वारा मांगों की जांच (Scrutiny of demands by Departmental Committees)**—लेखानुदान (Vote on account) पारित होने के बाद सदन 3-4 सप्ताहों के लिए स्थगित (adjourn) हो जाता है। इस समय संसद की विभागीय समितियाँ (Departmental Committees) विभिन्न मंत्रालयों द्वारा पेश की गई अनुदान संबंधी मांगों की विस्तार से जाँच करती हैं तथा रिपोर्ट तैयार करती हैं। विभागीय समितियों की यह व्यवस्था 1991 के आर्थिक सुधारों की शुरुआत के बाद 1993 से लागू की गई थी ताकि विभिन्न मंत्रालयों के वित्तीय कामकाज पर संसद का पर्याप्त नियंत्रण बना रहे। 2004 में इस व्यवस्था को और अधिक व्यापक बना दिया गया था। विभागीय समितियों द्वारा निर्मित रिपोर्टों को दोनों सदनों के समक्ष विचार के लिए पेश किया जाता है।
- (v) **अनुदान संबंधी मांगों पर मतदान (Voting on demands for grants)**—इस चरण में विभागीय स्थायी समितियों की रिपोर्टों के आधार पर लोकसभा में प्रत्येक मंत्रालय की मांगों पर मतदान होता है। मतदान की यह शक्ति सिर्फ लोकसभा के पास है, राज्यसभा के पास नहीं। मतदान सिर्फ उन मांगों पर होता है जो भारत व्ययों से अलग होती हैं।

अनुदान मांगों पर मतदान करने के लिए लोकसभा को कुल 26 दिन दिए जाते हैं। आमतौर पर इतने समय में तीन-चार मंत्रालयों की मांगों पर ही ठीक से विचार-विमर्श हो पाता है। अंतिम दिन लोकसभा अध्यक्ष शेष सभी मांगों को मतदान के

लोकसभा में सरकार का बहुमत होता है। कटौती प्रस्तावों का असली महत्व इस बात में है कि उनके माध्यम से कुछ विशेष अनुदान भागों पर विस्तृत चर्चा हो पाती है।

कटौती प्रस्ताव लाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना जरूरी होता है। उदाहरण के लिए, यह सिर्फ एक मांग से ही संबंधित होना चाहिए, एकाधिक से नहीं। इसमें संचित निधि पर 'भारित व्यय' (Charged expenditure) के संबंध में कटौती की मांग नहीं होनी चाहिए, तथा कोई ऐसा विषय नहीं होना चाहिये जो केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र से बाहर का हो।

कटौती प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं—

(क) नीतिगत कटौती प्रस्ताव (Policy Cut Motion)—इस प्रस्ताव का उद्देश्य सरकार की नीति के प्रति असहमति व्यक्त करना होता है। इसमें कहा जाता है कि अनुदान की इस मांग को लगभग खत्म करके सिर्फ एक रुपया कर दिया जाए।

(ख) आर्थिक कटौती प्रस्ताव (Economy Cut Motion)—इसमें नीति के प्रति नहीं बल्कि मांगी गई राशि के प्रति असहमति व्यक्त की जाती है। इसमें राशि को एक प्रभावी सीमा तक कम करने का प्रस्ताव होता है। कभी-कभी यह किसी मांग को पूर्णतः समाप्त करने के लिए भी होता है।

(ग) सांकेतिक कटौती प्रस्ताव (Token Cut Motion)—इस प्रस्ताव का उद्देश्य सिर्फ अपनी असहमति का प्रदर्शन करना होता है। इसमें प्रस्ताव किया जाता है कि सरकार द्वारा पेश की गई मांग में सौ रुपए की कमी कर दी जाए।

(vi) विनियोग विधेयक (Appropriation bill)—विनियोग के अनुच्छेदों में कहा गया है कि संचित निधि में से कोई भी राशि विनियोग अधिनियम के माध्यम से निकाली जा सकती है। इसलिए, जैसे ही लोकसभा अनुदान की मांगों को पारित करता है, उसका तुरंत बाद लोकसभा में विनियोग विधेयक प्रस्तुत किया जाता है जिसमें संचित निधि से निकाली जाने वाली राशि का प्रत्येक मद और व्ययजन के अनुसार उल्लेख होता है। इसमें दोनों प्रकार के व्ययों का उल्लेख होता है—जो संचित निधि पर भारित है तथा जो भारित नहीं है।

विनियोग विधेयक (Appropriation bill) धन विधेयक (Money bill) होता है, इसलिए उस पर धन विधेयक के सभी नियम लागू होते हैं।

(vii) वार्षिक वित्त विधेयक (Annual finance bill)—आगामी वित्त वर्ष के संबंध में सरकार के बजट संबंधी प्रस्तावों को लागू करने के लिए एक धन विधेयक (Money bill) वित्त मंत्री के बजट प्राप्ति के बाद लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है। इसे 'वार्षिक वित्त विधेयक' (Annual finance bill) कहते हैं। इसमें हर बढ़ती या घटती से संबंधित संशोधन भी किए जा सकते हैं जो कि विनियोग विधेयक में नहीं किए जा सकते। यह विधेयक विनियोग विधेयक के साथ-साथ पारित किया जाता है। इस विधेयक से बजट के आय-संबंधी मदों को संसद की मान्यता प्राप्त होती है तथा सरकारी नीतियाँ लागू होती हैं।

अनुदानों के अन्य प्रकार (Other types of grants)

सरकार को साल भर का खर्च चलाने के लिये विनियोग अधिनियमों (Appropriation acts) से राशि प्राप्त होती है और शुरुआती दो महीनों के लिए वह सामान्यतः लेखानुदान (Vote on account) पर निर्भर रहती है। बजट निर्माण की प्रक्रिया चाहे जितनी भी सावधानी से पूरी की जाए, व्यावहारिक स्तर पर वर्ष के दौरान कुछ तात्कालिक समस्याएँ सामने आ ही जाती हैं। ऐसी तात्कालिक समस्याओं का समाधान करने के लिये संसद कुछ अन्य प्रकार के अनुदान मंजूर करती है, जो निम्नलिखित हैं—

(i) अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grant)—यदि किसी विशेष सेवा के लिये विनियोग अधिनियम द्वारा निर्धारित राशि उस वर्ष की वास्तविक जरूरतों की पूर्ति के लिए अपर्याप्त सिद्ध हो जाए तो संसद अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grant) स्वीकार करती है।

(ii) अतिरिक्त अनुदान (Additional Grant)—यदि बजट निर्माण के समय किसी नई सेवा के संबंध में संचावित खर्चों को न जोड़ा गया हो और वित्त वर्ष के दौरान उस नई सेवा के लिये अतिरिक्त धन की जरूरत पैदा हो जाए तो ऐसी स्थिति में संसद अतिरिक्त अनुदान (Additional Grant) स्वीकृत करती है।

(iii) प्रत्यानुदान (Vote of Credit)—कभी-कभी किसी सेवा या मद की अनिश्चित प्रकृति के कारण कोई ऐसी आकस्मिक (unexpected) जरूरत उपस्थित हो जाती है जिसे बजट के निर्धारित ढाँचे में प्रस्तुत करना संभव नहीं होता। सरकार की ऐसी आकस्मिक जरूरतों के लिए संसद प्रत्यानुदान (Vote of Credit) स्वीकृत करती है। इसे प्रचलित भाषा में लोकसभा द्वारा सरकार को दिया गया 'बैंक चैक' भी कहते हैं।

संबंधित किसी मद या सेवा से नहीं होता। इसका संबंध किसी विशेष प्रयोजन से होता है जो प्रायः सरकार की भविष्यवाणी योजनाओं को रेखांकित करता है।

(v) अधिक अनुदान (Excess Grant)— सरकार इस अनुदान की मांग तब करती है जब उससे किसी सेवा या मद के लिये निर्धारित रकम से ज्यादा धनराशि खर्च हो जाती है। ऐसी मांग संसद में रखने से पहले लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) से उसे मंजूर करना जरूरी होता है। लोक लेखा समिति से मंजूरी मिलने पर वित्त वर्ष के अंत में इसे लोकसभा में मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(vi) सांकेतिक अनुदान (Token Grant)— इसका प्रयोग तब किया जाता है जब किसी नई सेवा से संबंधित खर्च के लिए किसी शीर्ष में पहले से स्वीकृत अनुदान को ही स्थानांतरित करना पर्याप्त होता है। इसके लिए लोकसभा से एक सांकेतिक अनुदान (प्रायः 1 रुपए का अनुदान) पारित करने के लिए प्रस्ताव पेश किया जाता है। यदि प्रस्ताव पारित हो जाता है तो पहले से उपलब्ध अनुदान को स्थानांतरित कर लिया जाता है। इसमें किसी अतिरिक्त राशि की मांग नहीं की जाती है।

ध्यातव्य है कि उपरोक्त सभी अनुदानों के संबंध में संसद में वही प्रक्रिया अपनायी जाती है जो साधारण बजट को पारित करने के लिए निर्धारित है।

विभिन्न प्रकार की निधियाँ (Different kinds of funds)

भारतीय संविधान में केंद्र सरकार के राजस्व तथा खर्च आदि का वर्णन तीन प्रकार की निधियों की चर्चा की गई है जो निम्नलिखित हैं—

- (i) भारत की संचित निधि (Consolidated fund of India)— इसकी चर्चा अनुच्छेद 266 में की गई है। भारत सरकार को प्राप्त होने वाला सागं राजस्व तथा ऋण-अदायगी (Loan repayment) से प्राप्त होने वाला सागं धन इसी में जमा कराया जाता है और भारत सरकार के सभी खर्च भी सामान्यतः इसी निधि के माध्यम से होते हैं। इस निधि में से कोई भी धन तभी निकाला जा सकता है जब संसद ने विनियोग अधिनियम (Appropriation act) या अनुपूरक अनुदान (Supplementary grant) संबंधी अधिनियम पारित किया हो। संवैधानिक पदों पर आसीन पदाधिकारियों के वेतन भत्ते इत्यादि इसी निधि पर निर्भर होते हैं। ऐसे व्ययों को 'भारित व्यय' (charged expenditure) कहा जाता है तथा उनके संबंध में लोकसभा में मतदान नहीं होता। शेष सभी खर्चों पर लोकसभा में मतदान जरूरी होता है।
- (ii) भारत का लोक लेखा (Public Account of India)— इसकी चर्चा भी संविधान के अनुच्छेद 266 में की गई है। संचित निधि में जो राशियाँ शामिल होती हैं उनके अलावा सभी सार्वजनिक राशियाँ भारत के लोक लेखा में जमा होती हैं। मोटे तौर पर इसका संबंध बैंक जमा राशियों (Savings Bank deposits), बचत (savings), भविष्य-निधि जमा राशियों (Provident fund deposits) इत्यादि से होता है। इस खाते से धन निकालने के लिए सरकार को संसद की मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती।
- (iii) भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund of India)— संविधान के अनुच्छेद 267 में संसद को अधिकार दिया गया है कि वह 'भारत की आकस्मिकता निधि' नाम से ज्ञात होने वाली एक निधि की स्थापना कर सकेगी। इस निधि का उद्देश्य यह होगा कि जब तक किसी आकस्मिक खर्च के लिए संसद ने सरकार को प्राधिकृत न किया हो, तब तक राष्ट्रपति उसमें से आवश्यक धनराशि सरकार को अग्रिम (advance) के तौर पर दे सकेगी। यह निधि राष्ट्रपति के अधिकार में रहती है और इसे संचालित करने के लिये संसदीय कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती। अनुच्छेद 267 द्वारा प्राप्त अधिकार के अनुसार संसद ने 1950 में 'भारत की आकस्मिकता निधि अधिनियम' (Contingency fund of India act) पारित किया था। तब से आकस्मिकता निधि अस्तित्व में है। राष्ट्रपति की ओर से भारत सरकार का वित्त सचिव (Finance Secretary) इसका संचालन करता है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for Practice)

1. राज्यसभा के संदर्भ में कौन-सा कथन असत्य है?
 - (1) राज्यसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है लेकिन वर्तमान में यह 245 ही है।
 - (2) राज्यसभा में अधिकतम 238 सदस्य निर्वाचित हो सकते हैं।
 - (3) राज्यसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 252 हो सकती है लेकिन वर्तमान में यह 250 है।
 - (4) राज्यसभा में सदस्यों की संख्या के लिए राज्य विशेष की जनसंख्या को आधार बनाया गया है।

2. राज्यसभा के संबंध में सुप्रेमित कथन कौन-सा/से है/हैं?
 - (i) राज्यसभा में किसी राज्य की जनसंख्या के पहले 50 लाख व्यक्तियों तक हर 10 लाख व्यक्तियों पर एक सदस्य तथा उसके बाद प्रति 20 लाख व्यक्तियों पर एक सदस्य होगा।
 - (ii) संविधान की तीसरी अनुसूची में सभी राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों को राज्यसभा में आवंटित किए गए स्थानों की सूची दी गई है।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

3. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?
 - (1) राज्यसभा का विघटन (Dissolution) कभी नहीं होता है।
 - (2) प्रत्येक 2 वर्ष बाद राज्य सभा के एक-तिहाई सदस्य संवत्तित होते हैं तथा उतने ही नए सदस्यों का निर्वाचन होता है।
 - (3) भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है।
 - (4) राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता है।

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) गैर-वित्तीय विधेयकों के संबंध में राज्यसभा को उतनी ही शक्तियाँ प्राप्त हैं जितनी लोकसभा को।
- (ii) धन विधेयकों के मामले में राज्यसभा की राय को मानना या न मानना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।
- (iii) संविधान संशोधन विधेयकों के मामले में राज्यसभा की शक्तियाँ लोकसभा के बराबर हैं।

उपरोक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

5. राज्यसभा के कार्य व शक्तियों के संबंध में सत्य कथनों का चयन कीजिए-

से राज्य-सूची में शामिल किसी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर सकती है।

- (ii) राज्यसभा को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उपस्थित और मतदान करने वाले दो-तिहाई सदस्यों के समर्थन से किसी नई अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन कर सके।

- (iii) उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव राज्यसभा में ही शुरू किया जा सकता है।

कूट-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) केवल (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

6. निम्नलिखित में कौन-सा/से कथन सत्य नहीं है/हैं?

- (i) राज्यसभा के सभी सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन मंडल का हिस्सा बनते हैं।

- (ii) राज्यसभा के सदस्य लोकसभा सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करते हैं।

- (iii) उपराष्ट्रपति को चुनाव में राज्यसभा के सभी सदस्य भाग लेते हैं।

- (iv) राष्ट्रपति के महाभियोग में संसद के दोनों सदनों की सहमति आवश्यक होती है।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) (i) और (iii)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) उपरोक्त में से कोई नहीं।

7. लोकसभा के गठन के संबंध में सुप्रेमित कथन हैं-

- (i) सभी राज्यों के कुल प्रतिनिधि 530 से अधिक नहीं हो सकते।

- (ii) संघ-राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधि 20 से अधिक नहीं हो सकते।

- (iii) अंगल भारतीय समुदाय के अधिकतम 2 प्रतिनिधियों को लोकसभा में मनोनित किया जा सकता है।

- (iv) लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 है।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (ii), (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) परिसीमन का प्रभाव उस लोकसभा पर नहीं होता जो कार्यरत होती है।

- (ii) परिसीमन का प्रभाव अगले लोकसभा चुनावों पर लागू होता है।

उपरोक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)

9. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) लोकसभा प्रायः सभी प्रकार के विधेयकों के मामले में राज्यसभा के समान या उससे ज्यादा शक्तियाँ रखती है।
- (2) किसी विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध हो जाने पर संयुक्त बैठक बुलाए जाने का प्रावधान है।
- (3) संयुक्त बैठक का प्रावधान धन विधेयक तथा संविधान संशोधन विधेयक को छोड़कर शेष विधेयकों के मामले में लागू होता है।
- (4) संयुक्त बैठक की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है।

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) विशिष्ट स्थितियों में लोकसभा की अवधि 5 वर्ष से आगे भी बढ़ाई जा सकती है।
- (ii) आपातकाल में संसद जितनी बार चाहे लोकसभा का कार्यकाल बढ़ा सकती है।
- (iii) लोकसभा के पाँच वर्षों के कार्यकाल की गणना लोकसभा के प्रथम अधिवेशन की तारीख से की जाती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

11. किसी संसद सदस्य की सदस्यता की समाप्ति निम्नलिखित में किन आधारों पर हो सकती है?

- (i) यदि कोई सदस्य सदन से अनुमति लिए बिना लगातार 60 दिनों तक सदन की प्रत्येक बैठक में अनुपस्थित रहता है।
- (ii) यदि किसी संसद ने राज्यसभा के सभापति या लोकसभा के अध्यक्ष को संबोधित करके अपना त्यागपत्र दे दिया हो तथा पीठासीन अधिकारी ने उसे स्वीकार कर लिया हो।
- (iii) यदि कोई संसद सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति चुन लिया जाता है अथवा किसी राज्य का राज्यपाल बना दिया जाता है।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

12. निम्नलिखित में सत्य कथनों का चयन कीजिए-

- (i) यदि कोई मंत्री किसी सदन का सदस्य नहीं है तो भी वह दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है।
- (ii) प्रत्येक मंत्री उस सदन की कार्यवाही में भी भाग ले सकता है जिसका वह सदस्य नहीं है।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

13. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) यदि प्रधानमंत्री राज्यसभा से हो तो प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद के किसी ऐसे मंत्री को, जो लोकसभा का सदस्य है, लोकसभा में सदन के नेता की भूमिका के लिए मनोनित करता है।
- (ii) प्रत्येक राजनीतिक दल, चाहे वह सत्ता में हो या विपक्ष में, अपने एक सदस्य की नियुक्ति सचेतक के रूप में करता है।

उपरोक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. सरकारी विधेयकों तथा गैर-सरकारी विधेयकों के संबंध में सुमेलित कथनों का चयन कीजिए-

- (i) सरकारी विधेयक वे हैं जो किसी मंत्री द्वारा पेश किए जाते हैं जबकि अन्य सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयक गैर-सरकारी विधेयक कहलाते हैं।
- (ii) सामान्यतः गैर-सरकारी विधेयक विपक्षी दलों द्वारा सरकार की नीतियों की आलोचना करने के उद्देश्य से पेश किए जाते हैं।
- (iii) सदन में गैर-सरकारी विधेयकों को पेश करने से पहले एक महीने का नोटिस देना जरूरी होता है।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) (i) और (ii)
- (3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

15. यदि विधेयक प्रवर समिति या संयुक्त समिति को निर्दिष्ट किया गया है तो यह उप-चरण कहलाता है-

- (1) प्रथम वाचन (2) समिति अवस्था
- (3) तृतीय वाचन (4) विचार की अवस्था

16. निम्नलिखित में से किस चरण में सिर्फ संपूर्ण विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है?

- (1) प्रथम वाचन (2) द्वितीय वाचन
- (3) तृतीय वाचन (4) इनमें से कोई नहीं।

17. धन विधेयक के संबंध में सत्य कथनों की पहचान कीजिए-

- (i) धन विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जा सकता है।
- (ii) यदि किसी कर को कम करने या हटाने के लिए किसी विधि में संशोधन किया जाता हो तो ऐसे मामले में राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) वित्तीय विधेयकों पर प्रायः वही प्रावधान लागू होते हैं जो साधारण विधेयकों पर लागू होते हैं।

(ii) वित्तीय विधेयक पर संयुक्त बैठक भी बुलाई जा सकती है।

(iii) राष्ट्रपति वित्तीय विधेयकों को पुनर्विचार के लिए लौटा भी सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

(1) (i) और (ii)

(2) (ii) और (iii)

(3) (i) और (iii)

(4) (i), (ii) और (iii)

19. निम्नलिखित कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य नहीं है/हैं?

(i) विनियोग विधेयक धन विधेयक होता है, इसलिए उस पर धन विधेयक के सभी नियम लागू होते हैं।

(ii) नीतिगत कटौती प्रस्ताव में अनुदान की भाग को कम करके सौ रुपया करने के लिए कहा जाता है।

(iii) सांकेतिक कटौती प्रस्ताव में यह प्रस्ताव किया जाता है कि सरकार द्वारा पेश की गई मांग को सिर्फ एक रुपया कर दिया जाए।

कूट—

(1) केवल (i)

(2) (i) और (ii)

(3) (ii) और (iii)

(4) उपरोक्त में से कोई नहीं।

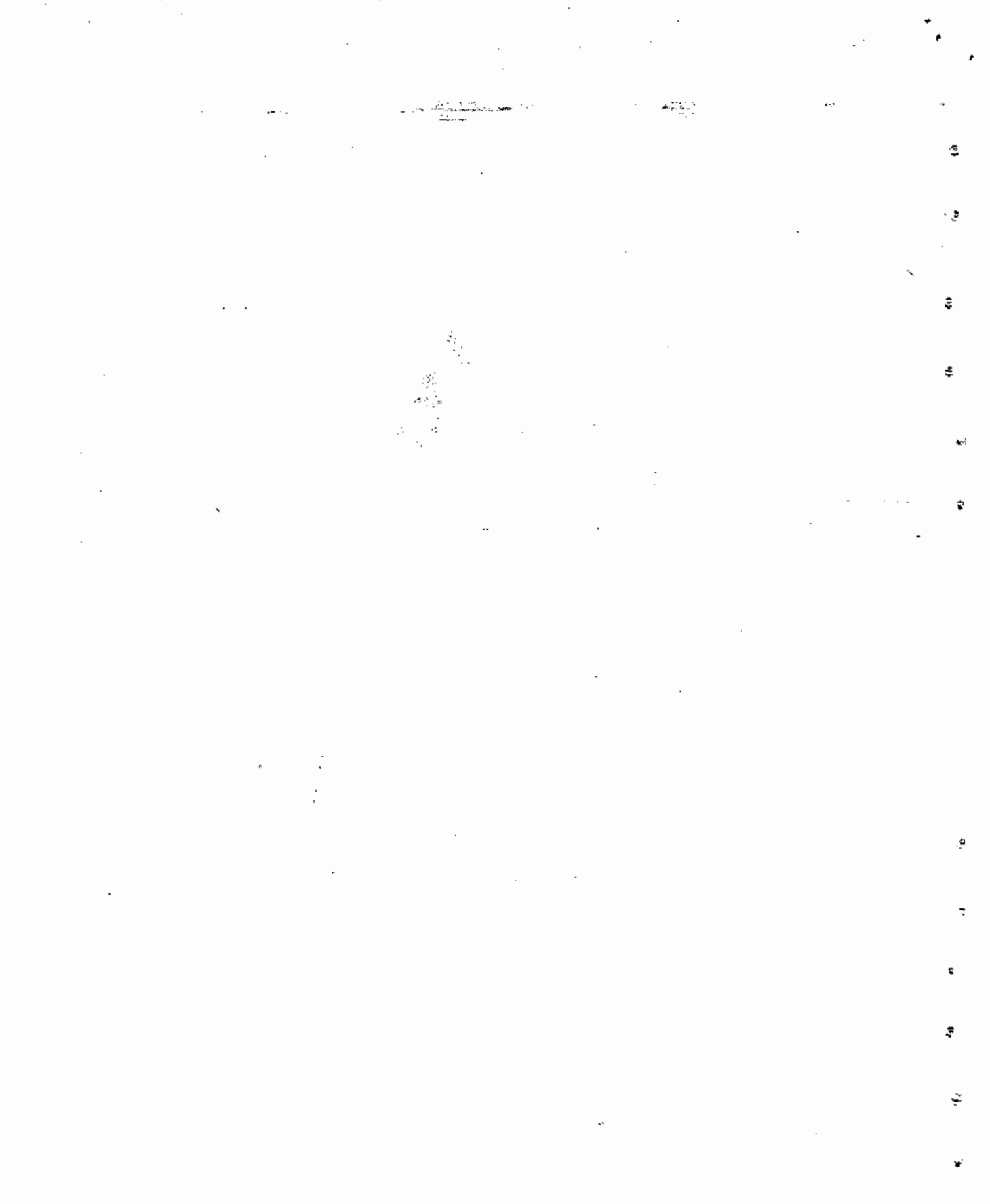
20. कभी-कभी किसी सेवा या मद की अनिश्चित प्रकृति के कारण कोई ऐसी आकस्मिक जरूरत उपस्थित हो जाती है जिसे बजट के निर्धारित ढाँचे में प्रस्तुत करना संभव नहीं होता। सरकार की ऐसी जरूरतों के लिए संसद कौन-सा अनुदान स्वीकृत करती है?

(1) अनुपूरक अनुदान

(2) अतिरिक्त अनुदान

(3) प्रत्यायानुदान

(4) अपवादानुदान



संसद के सत्र, सत्रावसान तथा लोकसभा का विघटन (Parliament's Sessions, Prorogation and Dissolution of Lok Sabha)

संसद समय-समय पर विभिन्न सत्रों के लिए एकत्र होती है। विभिन्न सत्रों की शुरुआत, स्थगन (adjournment) तथा अवसान (prorogation) आदि से संबंधित विभिन्न नियम हैं जिनमें से प्रमुख की चर्चा यहाँ की जा रही है।

सत्र आहूत करना (Summoning of the Session)

संविधान के अनुच्छेद 85(1) में कहा गया है कि राष्ट्रपति समय-समय पर संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर अधिवेशन (meeting) के लिए बुलाएगा जिसे वह उचित समझे। इसमें यह भी कहा गया है कि संसद के दो सत्रों (sessions) के मध्य किसी भी स्थिति में 6 महीनों से अधिक का अंतराल नहीं होना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि वर्ष में कम से कम दो बार तो संसद का सत्र होना ही चाहिए। ध्यातव्य है कि संसद का सत्र बुलाना राष्ट्रपति का विवेकाधिकार (discretion) नहीं है। वह प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही संसद का सत्र बुलाता है।

संसद के सत्र (Sessions of Parliament)

संसद के सत्र (Session) निम्नलिखित समय-अंतराल से सत्रावसान (Prorogation) के बिना जारी रहता है। लोकसभा के मामले में कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि सत्रावसान (Prorogation) के लिए नियत तिथि समाप्त हो जाए। राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा विघटित (dissolved) कर दी जाए। ऐसी स्थिति में विघटन (dissolution) की तिथि तक की अवधि को ही संसद का सत्र कहा जाएगा। किसी सत्र के दौरान याद-गुल्यवत् कार्य-विषय पर सदन अपना कार्यकारी सत्र के औपचारिक समापन अर्थात् सत्रावसान (Prorogation) तथा नए सत्र की शुरुआत के बीच के कालखंड को अवकाश (Recess) कहते हैं।

भारत में साधारणतः वर्ष में तीन बार संसद के सत्र आयोजित किये जाते हैं—

- (i) बजट सत्र (फरवरी-मार्च)
- (ii) मानसून सत्र (जुलाई-सितंबर)
- (iii) शीतकालीन सत्र (नवंबर-दिसंबर)

राष्ट्रपति का अभिभाषण (President's address)

लोकसभा के चुनावों के पश्चात् पहले सत्र की शुरुआत पर नया सरकार बनने के पहले सत्र की शुरुआत के अवसर पर राष्ट्रपति दोनों सदनों को संयुक्त रूप से संबोधित करते हैं। राष्ट्रपति के इस संबोधन को 'राष्ट्रपति का अभिभाषण' (President's address) कहते हैं। यह राष्ट्रपति का व्यक्तिगत भाषण नहीं होता। इसे मंत्रिपरिषद् द्वारा तैयार किया जाता है और इसमें सरकार की नीतियों तथा भावी कार्यक्रमों की चर्चा होती है।

लेम डक सत्र (Lame Duck Session):

'लेम डक सत्र' का अर्थ है नई लोकसभा के चुनाव के बाद पुरानी लोकसभा का अंतिम सत्र के लिए बैठना। इस बैठक में जो सदस्य नई लोकसभा के लिए नहीं चुने गए होते हैं, उन्हें ही 'लेम डक' कहा जाता है।

स्थगन (Adjournment)

स्थगन का अर्थ है—बैठक को अस्थायी तौर पर निलंबित करना। सदन को स्थगित करने की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी के पास होती है। प्रायः स्थगन द्वारा सदन को कुछ मिनटों, घंटों या कुछ दिनों के लिए निलंबित किया जाता है। स्थगन का प्रभाव सदन में विचाराधीन किसी भी विधेयक या प्रस्ताव आदि पर नहीं पड़ता है अर्थात् उन सभी मामलों पर अगली बैठक में विचार किया जा सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि सदन का पीठासीन अधिकारी सदन को स्थगित तो करे, किंतु सदन के पुनः एकत्रित होने के संबंध में कोई घोषणा न करे। इस प्रकार के स्थगन को 'अनिश्चितकाल के लिए स्थगन' या 'साइन डाइ स्थगन' (Adjournment Sine Die) कहते हैं।

यह सदन विघटित करने के लिए स्थगित होता है, उस भी पीठासीन अधिकारी के पास यह शक्ति रहती है कि वह सदन

सत्रावसान (Prorogation)

सत्रावसान का अर्थ है—संसद के किसी सत्र का समाप्त होना। सत्रावसान सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा नहीं बल्कि राष्ट्रपति द्वारा घोषित किया जाता है। आमतौर पर पीठासीन अधिकारी द्वारा सदन को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित किया जाता है जिसे 'साइन डाइ स्थगन' (Adjournment Sine die) कहते हैं। उस स्थगन के कुछ समय परचात्र राष्ट्रपति सत्रावसान की अधिसूचना जारी करता है। राष्ट्रपति के पास यह अधिकार भी है कि वह सत्र के दौरान ही सत्रावसान (Prorogation) घोषित कर दे।

इंग्लैण्ड में सत्रावसान होते ही सदन में विचाराधीन सभी विधेयकों तथा कार्यों का अंत हो जाता है। अगले सत्र में उन्हें नए सिरे से शुरू करना पड़ता है। भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है। भारत में संसद को सत्रावसान से लंबित विधेयक (Pending bills) या कार्य समाप्त नहीं होते।

विघटन (Dissolution)

विघटन सत्रावसान से अलग होता है। सत्रावसान (prorogation) सदन के एक सत्र (session) को समाप्त करता है जबकि विघटन (dissolution) सदन को ही समाप्त कर देता है। ध्यातव्य है कि विघटन सिर्फ लोकसभा का होता है, राज्यसभा का नहीं; क्योंकि राज्यसभा स्थायी सदन है। लोकसभा के विघटन से लोकसभा समाप्त हो जाती है और आम चुनावों के बाद नई लोकसभा का गठन होता है।

लोकसभा का विघटन करने की शक्ति भारत के राष्ट्रपति की होती है। संविधान के अनुच्छेद 85(2) में कहा गया है कि राष्ट्रपति समय-समय पर लोकसभा का विघटन कर सकते हैं। राष्ट्रपति विघटन के लिए संसद के दोनों सदनों के सदस्यों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह से ही लोकसभा का विघटन करता है। केवल आनुवादिक मामलों में ही वह लोकसभा के सदस्यों को सूचना देकर सूचीबद्ध कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि लोकसभा के सदस्यों से अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत हो जाता है तो राष्ट्रपति को लोकसभा का विघटन करने की सलाह दे तो राष्ट्रपति इस सलाह को मानने से इंकार कर सकता है।

लोकसभा का विघटन करने का कारण—

- (क) यदि लोकसभा का कार्यकाल पूरा हो गया हो।
- (ख) यदि राष्ट्रपति किसी विशेष कारण से कार्यकाल पूरा होने से पहले ही लोकसभा का विघटन करने का निर्णय करे। ऐसा तब होता है जब सरकार विश्वास प्रस्ताव (Confidence motion) या अविश्वास प्रस्ताव (No confidence motion) या किसी अन्य नीति विधेयक प्रश्न पर लोकसभा में पराजित हो जाती है और राष्ट्रपति को उसी लोकसभा में से नई सरकार का गठन व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता।

विघटन का विधेयकों आदि पर प्रभाव (Impact of dissolution on bills etc.)

लोकसभा का विघटन होने पर इससे जुड़े सभी कार्य जैसे विधेयक प्रस्ताव, संकल्प, नोटिस इत्यादि समाप्त हो जाते हैं तथा उन्हें नई लोकसभा में फिर से लाना जरूरी होता है। किन्तु कुछ लंबित विधेयक (Pending bills) और आश्वासन (Assurances) इत्यादि लोकसभा के विघटन पर भी समाप्त नहीं होते। संविधान के अनुच्छेद 107 में बताया गया है कि किन परिस्थितियों में कोई विधेयक व्यपगत (Lapse) अथवा समाप्त हो जाता है। व्यपगत (Lapse) होने का तकनीकी अर्थ यह है कि वह विधेयक अब संसद के समक्ष नहीं है और यदि उसे पारित करना हो तो उससे संबंधित सभी औपचारिकताएँ नए सिरे से पूरी करनी होंगी। लोकसभा के विघटन पर विभिन्न विधेयकों की स्थिति को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है—

- (क) जो विधेयक लोकसभा में लंबित होते हैं, वे सभी व्यपगत (Lapse) अर्थात् समाप्त हो जाते हैं; चाहे उनकी शुरुआत लोकसभा में हुई हो या वे राज्यसभा से पारित होने के बाद लोकसभा पहुँचे हों।
- (ख) जो विधेयक लोकसभा से पारित हो चुके हैं किन्तु राज्यसभा में लंबित हैं, वे भी लोकसभा का विघटन होने पर व्यपगत अर्थात् समाप्त हो जाते हैं।
- (ग) जो विधेयक राज्यसभा में शुरू हुए हैं और राज्यसभा में ही लंबित हैं तथा लोकसभा द्वारा पारित नहीं किए गए हैं, वे विघटन पर समाप्त नहीं होते हैं।
- (घ) यदि कोई विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित किया जा चुका है और राष्ट्रपति को अनुमति के लिए भेज दिया गया है तो वह लोकसभा के विघटन पर समाप्त नहीं होगा।

संसद का कामकाज (Business of Parliament)

कार्यदिवस में समय का विभाजन (Distribution of time on a working day)

जिस समय संसद का सत्र चल रहा होता है, तब उसका प्रत्येक कार्यदिवस एक अधिवेशन (Meeting) होता है। अधिवेशन को सामान्यतः दो बैठकों (Sittings) में विभाजित किया जाता है। पहली बैठक (First sitting) सुबह 11 बजे से शुरू होकर भोजन-अवकाश (Lunch break) तक चलती है और दूसरी बैठक (Second sitting) भोजन-अवकाश के उपरान्त शुरू होकर तब तक चलती है जब तक कि पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) उसे स्थगित (adjourn) न कर दे। कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee) की सलाह के अनुसार प्रत्येक बैठक में विशिष्ट कार्यों के लिए समय का आबंटन किया जाता है। सामान्यतः किसी कार्य दिवस में समय का विभाजन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत होता है—

(क) प्रश्नकाल (Question hour):

संसद के कार्यदिवस का पहला घंटा अर्थात् 11 से 12 बजे तक का समय प्रश्नकाल कहलाता है। इस समय मंत्री विभिन्न संसद-सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हैं। प्रश्नों को तीन प्रमुख भागों में बांटा जाता है। तारांकित प्रश्न (Starred Questions), अतारांकित प्रश्न (Unstarred Questions) तथा अल्पसूचना प्रश्न (Short notice Questions)। प्रश्नों का एक चौथा भाग भी है जिसे 'गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न' कहा जाता है।

(अ) तारांकित प्रश्न (Starred Questions) वे हैं जिनका उत्तर मंत्री द्वारा मौखिक रूप में दिया जाता है। पहचान के लिए इन प्रश्नों के साथ एक सितार (Asterisk) जैसा चिह्न अंकित किया जाता है। इन प्रश्नों पर अपूर्क प्रश्न (Supplementary Questions) पूछे जाने की अनुमति होती है।

(आ) अतारांकित प्रश्न (Unstarred Questions) वे हैं जिनके लिए लिखित उत्तर दिए जाते हैं। आभाषिक तौर पर इनमें सदस्य को भूतक प्रश्न पूछने का अवसर नहीं होता।

(इ) अल्पसूचना प्रश्न (Short notice Questions) वे हैं जिनका संबंध लोक महत्व के किसी तात्कालिक विषय से होता है तथा जिन्हें साधारण प्रश्नों के लिए निर्धारित अवधि की अवधि से कम समय की सूचना देकर पूछा जा सकता है। तारांकित प्रश्नों की तरह इनका उत्तर भी मौखिक रूप से दिया जाता है और इनके संबंध में भी पूरक प्रश्न (Supplementary Questions) पूछे जा सकते हैं।

(ई) प्रश्नों का एक चौथा प्रकार भी है जिसे 'गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न' (Questions from Private Members) कहा जाता है। ये प्रश्न किसी ऐसे सदस्य से पूछे जाते हैं जो मंत्रिपरिषद में शामिल नहीं है, किंतु किसी विधेयक, संकल्प या सदन के किसी विशेष कार्य के लिए वह उत्तरदायी रहा हो।

(ख) शून्यकाल (Zero hour):

शून्यकाल प्रश्नकाल के तुरंत बाद अर्थात् 12 बजे शुरू होता है। इसमें संसद सदस्य बिना किसी पूर्व सूचना के प्रश्न उठा सकते हैं। अनौपचारिक होने के कारण इसका विशेष महत्व है। शून्यकाल की चर्चा संसद के प्रक्रिया संबंधी नियमों (Rules of procedure) में नहीं की गई है। वस्तुतः यह भारतीय संसदीय व्यवस्था द्वारा विकसित किया गया एक नवाचार (innovation) है। 1962 से शून्यकाल की शुरुआत की गई थी।

(ग) आधे घंटे की चर्चा (Half-an-hour Discussion):

जिन प्रश्नों का उत्तर सदन में दे दिया गया हो, उन प्रश्नों से उत्पन्न होने वाले मामलों पर चर्चा लोकसभा में तीन दिन सोमवार, बुधवार व शुक्रवार को बैठक के अंतिम आधे घंटे में की जा सकती है। राज्यसभा में ऐसी चर्चा सभापति द्वारा नियत किसी भी दिन की जा सकती है। सामान्यतः इसका समय 5 से 5:30 बजे के बीच होता है। ऐसी चर्चा का विषय पर्याप्त लोक महत्व का होना चाहिए।

(घ) अल्पकालीन चर्चा (Short duration Discussion):

यदि कोई संसद सदस्य किसी अचलबनीय (urgent) तथा लोक महत्व (Public importance) से जुड़े मुद्दे को सदन के ध्यान में लाना चाहे तो अल्पकालीन चर्चा के लिए महासचिव को सूचना दे सकता है। यह व्यवस्था 1953 में पहली बार शुरू हुई थी। यदि पीठासीन अधिकारी को संतुष्टि हो जाती है कि मामला लोक महत्व का है तथा इसे संसद में तुरंत उठाना जरूरी है तो वह इसकी अनुमति दे सकता है। कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee) की सिफारिश पर इसके लिए सप्ताह में 2 दिन का समय निर्धारित किया जा सकता है। अल्पकालीन चर्चा को 2 घंटे की चर्चा (Two hour discussion) भी कहते हैं क्योंकि ऐसी चर्चाएँ सामान्यतः दो घंटे की अवधि में संपन्न होती हैं।

विभिन्न प्रस्ताव और संकल्प (Different Motions and Resolutions)

संसद की कार्यवाही विभिन्न प्रस्तावों (Motions) और संकल्पों (Resolutions) के माध्यम से चलाई जाती है। दूसरे शब्दों में, प्रस्ताव और संकल्प संसदीय कार्यवाही के साधन (devices) हैं।

'प्रस्ताव' और 'संकल्प' का अर्थ (Meaning of 'Motion' and 'Resolution'):

प्रस्ताव (motion) का साधारण अर्थ है, वह युक्ति जो संसद को गति प्रदान करती है। इसके अंग्रेजी मूल शब्द 'मोशन' से यह अर्थ निगमित होता है। संसद में किसी भी कार्य-संबंधित प्रस्ताव को प्रस्ताव के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्ताव किसी मंत्री द्वारा भी पेश किया जा सकता है और किसी अतिरिक्त सदस्य द्वारा भी। संसद के विभिन्न समूहों पर अपनी राय या अपना निर्णय प्रस्तावों पर स्वीकृति या अस्वीकृति के माध्यम से ही व्यक्त करता है।

संकल्प (Resolution) प्रस्तावों में से नहीं होता, वह प्रस्तावों की ही एक प्रकृति है जो प्रस्तावों अपने आप में पूर्ण होता है, प्रायः उसे ही संकल्प कहा जाता है। संकल्प में सामान्यतः किसी मत-विकीर्ण (point of view) या राय (opinion) या उद्देश्य (purpose) का प्रस्ताव होता है और यह उस उद्देश्य के प्रति सदन की सहमति व्यक्त करता है।

प्रस्तावों के प्रकार (Types of motions):

विषयवस्तु (Content) की दृष्टि से प्रस्तावों की वर्गीकरण भिन्न-भिन्न की जा सकती है। कुछ प्रमुख प्रस्ताव इस प्रकार हैं—

(1) विश्वास प्रस्ताव (Confidence Motion)

लोकसभा के प्रक्रिया संबंधी विषयों में विश्वास प्रस्ताव का लोक प्रविष्टता नहीं है। हालाँकि संसदीय प्रणाली में भी विश्वास प्रस्ताव की व्यवस्था नहीं है। यह प्रस्ताव मंत्रिपरिषद् को विश्वास प्रस्तावों में प्रस्तुत किया जाता है और इसके पारित होने का आशय होता है कि मंत्रिपरिषद् को लोकसभा का समर्थन हासिल है। गौरतलब है कि संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार यह जरूरी है कि मंत्रिपरिषद् को लोकसभा का विश्वास हासिल हो।

(2) अविश्वास प्रस्ताव (No Confidence Motion):

यह प्रस्ताव भी संविधान के अनुच्छेद 75 से संबंधित है और यह भी सिर्फ लोकसभा में ही लाया जा सकता है। लोकसभा के नियम 198 के अंतर्गत इसकी प्रक्रिया बताई गई है। इस प्रस्ताव की मूल प्रकृति ऐसी है कि यह विपक्ष के किसी सदस्य द्वारा ही लाया जा सकता है।

अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए किसी विशेष आधार की आवश्यकता नहीं होती, न ही यह अनिवार्यतः किसी विशेष मुद्दे को केंद्र में रखकर लाया जाता है। इसकी विषयवस्तु सिर्फ यह होती है कि मंत्रिपरिषद् को लोकसभा का समर्थन हासिल नहीं है। यदि यह प्रस्ताव लोकसभा द्वारा पारित कर दिया जाता है तो प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् को अनिवार्य रूप से इस्तीफा देना होता है। यह प्रस्ताव लाने के लिए लोकसभा के कम से कम 50 सदस्यों के समर्थन की जरूरत होती है।

अविश्वास प्रस्ताव जैसे ही सदन में प्रस्तुत किया जाता है, वैसे ही वह अन्य सभी प्रस्तावों या कार्यवाहियों पर पूर्णिकता

(3) निंदा प्रस्ताव (Censure Motion):

निंदा प्रस्ताव भी लोकसभा में ही लाया जा सकता है और यह भी विपक्ष के किसी सदस्य द्वारा ही पेश किया जाता है। यह सरकार के किसी मंत्री या मंत्रियों के समूह या सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद के विरुद्ध इस उद्देश्य से लाया जाता है कि उसके कुछ कार्यों या नीतियों के प्रति असहमति प्रदर्शित की जा सके। इसमें यह बताना जरूरी होता है कि सरकार की किन नीतियों या कार्यों के विरुद्ध इसे लाया जा रहा है? यदि यह प्रस्ताव लोकसभा में पारित हो जाता है तो मंत्रिपरिषद के लिए इस्तीफा देना जरूरी नहीं होता किन्तु उस पर यह दबाव आ जाता है कि वह जल्दी से जल्दी विश्वास प्रस्ताव (Confidence Motion) या किसी अन्य माध्यम से लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करे।

(4) विशेषाधिकार प्रस्ताव (Privilege Motion):

यह प्रस्ताव विपक्ष के किसी सदस्य द्वारा सदन में तब प्रस्तुत किया जाता है जब उसे लगता है कि किसी मंत्री या मंत्रियों ने संसद सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन (Breach of parliamentary privileges) किया है। यदि मंत्री ने सही तथ्यों को छिपाया हो या सदन को गलत सूचना दी हो तो मंत्री के इस व्यवहार की निन्दा करने के उद्देश्य से यह प्रस्ताव लाया जाता है। यह प्रस्ताव लोकसभा या राज्यसभा किसी भी सदन में लाया जा सकता है।

(5) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Calling Attention Motion):

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से सदन का ध्यान किसी विषय की ओर आकर्षित किया जाता है जो अचलबोनीयता (urgent public importance) का है। इस प्रस्ताव के माध्यम से संबद्ध मंत्री को अपेक्षा की जाती है कि वह उस मुद्दे पर वाशान्त व्यवस्था की व्यवस्था तो उस विषय पर तुरन्त भाषण दे सकता है या किसी आजीवन आग्रह देने के लिए समय को समुचित समझता है।

(6) स्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion):

इस प्रस्ताव का उद्देश्य अचलबोनीयता (urgent public importance) के किसी निश्चित मामले (definite issue) पर सदन को चर्चा करने के बल पर सदन को नियमित कार्यवाही को स्थगित करना है। संसद के समस्त सदस्यों के साथ तथा पीठासीन अधिकारों की अनुमति से ही यह प्रस्ताव पारित किया जा सकता है। इस दोनों सदनों में पेश किया जा सकता है तथा पेश की अवधि का कोई भी सदस्य इसमें शामिल हो सकता है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है तो उसे उठाए गए मामले पर चर्चा करने के लिए सदन की नियमित कार्यवाही रोक दी जाती है। इस प्रस्ताव पर कम से कम दो घण्टे की चर्चा होती है।

स्थगन प्रस्ताव के संबंध में सदन के अंतरिम नियमों का उल्लंघन नहीं माना जाता है जो निम्नलिखित हैं—

- (i) इसमें सिर्फ एक ही मुद्दे को उठाया जा सकता है, एक से अधिक को नहीं।
- (ii) इसके माध्यम से किसी तात्कालिक (recent) तथा महत्वपूर्ण घटना को ही उठाया जा सकता है, किसी पुराने या साधारण विषय को नहीं।
- (iii) यह भी जरूरी है कि उठाया गया विषय निश्चित (definite), तथ्यात्मक (factual) तथा लोक महत्व (public importance) का हो।
- (iv) इसमें किसी ऐसे विषय को नहीं उठाया जा सकता जो—
 - (क) न्यायालय में विचारधीन हो, या
 - (ख) संसदीय विशेषाधिकारों (parliamentary privileges) से जुड़ा हो, या
 - (ग) उसी सत्र में चर्चा में आ चुका हो; या
 - (घ) किसी अन्य प्रस्ताव के माध्यम से उठाया जा सकता हो।

(Motion of Thanks) के रूप में ही होती है। इस प्रस्ताव-का पारित होना सरकार के अस्तित्व की शर्त है क्योंकि इसके पारित न होने का तात्पर्य है कि सरकार ने अपना समर्थन खो दिया है।

(8) समापन प्रस्ताव (Closure Motion):

‘क्लोचर मोशन’ को हिंदी में ‘समापन प्रस्ताव’, ‘संवरण प्रस्ताव’ और ‘कटौती प्रस्ताव’ कहने का प्रचलन है। इसके लिए ज्यादा सटीक अनुवाद ‘समापन प्रस्ताव’ है। इस प्रस्ताव का उद्देश्य सदन में चल रही चर्चा को बीच में ही रोकना होता है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है तो चर्चा को बीच में ही रोककर संबंधित विषय पर मतदान कर लिया जाता है। समापन प्रस्ताव चार प्रकार के हो सकते हैं—

- (i) **साधारण समापन प्रस्ताव (Simple Closure Motion)**—इसका आशय है कि किसी विषय पर पर्याप्त वाद-विवाद हो चुका है और अब इसे मतदान के लिए रखा जाना चाहिए।
- (ii) **कंगारू समापन प्रस्ताव (Kangaroo Closure Motion)**: इसके अंतर्गत विधेयक के महत्वपूर्ण खण्डों पर चर्चा और मत-विभाजन कर लिया जाता है और शेष को उन्हीं के अंतर्गत पारित मान लिया जाता है।
- (iii) **घटकों द्वारा समापन का प्रस्ताव (Closure by Compartments Motion)**: इसके अंतर्गत किसी विस्तृत विधेयक या संकल्प के विभिन्न उपखंडों (clauses) के समूह बनाकर उन पर एक साथ समग्र चर्चा कर ली जाती है और पूरे समूह पर एक साथ मतदान कर लिया जाता है।
- (iv) **गिलोटिन समापन प्रस्ताव (Guillotine Closure Motion)**: यदि किसी विधेयक या संकल्प के किसी हिस्से पर बिल्कुल भी चर्चा नहीं होती तो उसे यही प्रारित कर देने के लिए गिलोटिन प्रस्ताव लाया जाता है। गिलोटिन का अर्थ होता है—सिर काटने वाला।

(9) अनियत दिन वाले प्रस्ताव (No-day-yet-named motions):

ये वे प्रस्ताव हैं जो लोकसभा अध्यक्ष द्वारा चर्चा के लिए स्वीकृत किए गए हैं पर अभी उन पर चर्चा के लिए कोई तिथि निर्धारित नहीं हुई है। कार्य-सलाह समिति (Business Advisory Committee) से मतदान करके क्या सदन की कार्यसूची को देखकर वास्तव में ये प्रस्तावों के लिए तिथि निर्धारित की जाती है।

(10) औचित्य प्रश्न (Point of Order)

यदि सदन कार्यवाही के प्रचालन के सामान्य नियमों (संविधान में निर्दिष्ट नियमों या सदन की कार्यवाही संबंधी नियमों) का पालन नहीं करता है तो कोई सदस्य औचित्य प्रश्न (Point of Order) के माध्यम से सदन की ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता है। यह प्रश्न प्रायः विपक्षी दलों के सदस्यों को आगे सरकाया जाता है और इसके माध्यम से सरकार को दबाव में लाने का प्रयास किया जाता है। औचित्य प्रश्न पर किसी प्रकार की बहस नहीं की जाती है। यह एक असाधारण युक्ति है क्योंकि यदि यह सही तरीके से उठाया गया हो तो यह सदन की कार्यवाही को समाप्त कर देता है।

(11) नियम 377 (Rule 377):

इसके अधीन वे मामले उठाए जाते हैं जो औचित्य प्रश्न (point of order) नहीं होते तथा जिन्हें प्रश्नकाल (Question hour), अल्पकालीन चर्चा (Short duration discussion), स्थगन प्रस्ताव (Adjournment motion) या किसी अन्य प्रस्ताव में नहीं उठाया जा सकता। इसके अंतर्गत प्रायः कुछ लोक महत्व के प्रश्नों तथा सदस्य के निर्वाचन क्षेत्र से जुड़े मामलों को उठाया जाता है।

(12) विशेष उल्लेख (Special mention):

बिस तरह के प्रश्न को लोकसभा में नियम 377 के अंतर्गत उठाया जाता है, उसे ही राज्य सभा में ‘विशेष उल्लेख’ के रूप

(substitute)-या-पूरक (subsidiary) भी; किंतु संकल्प हमेशा 'महत्वपूर्ण प्रस्ताव' के रूप में ही होता है। दूसरा अंतर यह है कि हर प्रस्ताव पर मत-विभाजन करया जाना आवश्यक नहीं होता, पर हर संकल्प पर अनिवार्यतः मत-विभाजन करया ही जाता है।

संकल्प किसी मंत्री द्वारा भी लाए जा सकते हैं और गैर-सरकारी या प्राइवेट सदस्यों द्वारा भी। मंत्रियों द्वारा पेश किए जाने वाले संकल्प सरकारी संकल्प (Government Resolutions) कहलाते हैं और इन्हें सप्ताह के पहले चार दिनों अर्थात् सोमवार से बृहस्पतिवार तक किसी भी दिन लाया जा सकता है।

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों अर्थात् प्राइवेट सदस्यों के संकल्पों (Private Member's Resolutions) के लिए शुक्रवार का दिन आरक्षित रखा जाता है। प्रायः एक शुक्रवार गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों (Private Member's Bills) के लिए आरक्षित होता है जबकि दूसरा शुक्रवार उनके संकल्पों (Resolutions) के लिए। साधारणतः गैर-सरकारी संकल्प दोपहर बाद की बैठक में अंतिम ढाई घंटों के दौरान ही चर्चा के लिए रखे जाते हैं।

संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा (Language used in Parliament)

संविधान के अनुच्छेद 120 में संसद में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा पर चर्चा की गई है। अनुच्छेद 120 कहता है कि संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा। अनुच्छेद 120(2) में स्पष्ट किया गया है कि यदि संसद विधि द्वारा कोई और व्यवस्था न करे तो संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद अर्थात् 26 जनवरी, 1965 से 'या अंग्रेजी में' वाक्यांश लुप्त हो जाएगा। इसका अर्थ यह था कि 15 वर्षों के बाद संसद का काम-काज पूर्णतः हिन्दी भाषा में होगा।

1963 में हिन्दी के विरोधियों तमिलनाडु और आरचम बंगाल में संसद में हिन्दी का प्रयोग करने की मांग की थी कि 1965 से सिर्फ हिन्दी को राजभाषा बनाया जाना और हिन्दी आधिकारिक प्रति अंग्रेजी में। इन मांगों को नकारा और संसद ने 1963 में 'राजभाषा अधिनियम' (Official Language Act, 1963) पारित किया जिसमें स्पष्ट किया गया था कि 26 जनवरी 1965 के बाद भी यथास्थिति जारी रहेगा। तब से वर्तमान तक यही स्थिति चल रही है।

अनुच्छेद 120 में दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों (Presiding officers) को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी ऐसे सदस्य की बातचीत की भाषा में बोलने की अनुमति दे सकते हैं जो हिन्दी या अंग्रेजी में अभिव्यक्त करने में असमर्थ है। जो सदस्य हिन्दी या अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा में अपना बातचीत का प्रयत्न करते हैं, उन्हें पीठासीन अधिकारियों की अग्रिम रूप से सूचना देनी होती है ताकि उनके भाषण के तत्काल मौखिक अनुवाद की व्यवस्था कराई जा सके।

The Vision

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for Practice)

1. निम्नलिखित में किन अवसरों पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को संयुक्त रूप से संबोधित करता है?

- लोकसभा के चुनावों के पश्चात् पहले सत्र की शुरुआत पर।
- प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र की शुरुआत पर।
- प्रत्येक वर्ष के अन्तिम सत्र पर।

कूट—

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii)
- (ii) और (iii)

2. राष्ट्रपति के अभिभाषण (President's Address) से अभिप्राय है—

- राष्ट्रपति द्वारा गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र को संबोधित किया जाना।
- राष्ट्रपति द्वारा संसद के सत्र की शुरुआत के अवसर पर दोनों सदनों को संयुक्त रूप से संबोधित किया जाना।
- राष्ट्रपति द्वारा मूल अधिकार के निलंबन की घोषणा किया जाना।
- राष्ट्रपति द्वारा अपने शपथ ग्रहण समारोह में भाषण दिया जाना।

3. निम्नलिखित कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- सदन को स्थगित करने की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी के पास होती है।
- सत्रावसान/सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा नहीं बल्कि राष्ट्रपति द्वारा घोषित किया जाता है।
- यदि सदन को निश्चित काल के लिए स्थगित किया जाता है तो निर्धारित समय से पूर्व सदन को नहीं बुलाया जा सकता।
- सत्रावसान सदन के एक सत्र को समाप्त करता है जबकि विघटन सदन को ही समाप्त कर देता है।

कूट—

- (i), (ii) और (iii)
- (i) और (ii)
- (iii), (iii) और (iv)
- (i), (ii), (iii) और (iv)

4. भारतीय संविधान के अनुसार लोकसभा को विघटित करने का अधिकार किसे प्राप्त है?

- प्रधानमंत्री
- लोकसभा अध्यक्ष
- मंत्रिपरिषद्
- राष्ट्रपति

(2) वे विधेयक जो राज्यसभा में शुरू हुए हैं और राज्यसभा में ही लंबित हैं तथा लोकसभा द्वारा पारित नहीं किए गए हैं।

(3) दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक जो राष्ट्रपति को अनुमति के लिए भेज दिए गए हैं।

(4) वे विधेयक जो राष्ट्रपति द्वारा संसद को पुनर्विचार के लिए लौटा दिए गए हैं।

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

(i) लोकसभा के विघटन के समय उसके पास जो भी प्रस्ताव, संकल्प या संशोधन लंबित होते हैं, वे सभी समाप्त हो जाते हैं।

(ii) यदि किसी विधेयक पर संसद के दोनों सदनों में गतिरोध रहा हो और राष्ट्रपति को उसके संबंध में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाए जाने के आशय की सूचना दे दी हो तो वह विधेयक लोकसभा के विघटन पर समाप्त नहीं होगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- केवल (i)
- केवल (ii)
- (i) और (ii) दोनों
- न तो (i) और न ही (ii)

7. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिए—

सूची-I

सूची-II

A. प्रश्नकाल

(i) जिन प्रश्नों का उत्तर सदन में दे दिया गया हो, उन प्रश्नों से उत्पन्न होने वाले मामलों पर चर्चा की जाती है।

B. शून्यकाल

(ii) संसद सदस्य बिना किसी पूर्व सूचना के प्रश्न उठा सकते हैं।

C. आधे घंटे की चर्चा

(iii) संसद के कार्यदिवस का पहला घंटा।

D. अल्पकालीन चर्चा

(iv) सन् 1953 में पहली बार आरंभ।

कूट—

A	B	C	D
(1) (ii)	(iii)	(iv)	(i)
(2) (ii)	(iv)	(i)	(iii)
(3) (iii)	(i)	(ii)	(iv)
(4) (iii)	(ii)	(i)	(iv)

8. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

(1) मंत्री द्वारा तैयार किए गए प्रश्नों का उत्तर मौखिक रूप से

(3) संकल्प (Resolution) प्रस्ताव (Motion) से भिन्न नहीं होता बल्कि वह प्रस्ताव का ही एक प्रकार है।
(4) निंदा प्रस्ताव में यह बताना जरूरी नहीं होता कि सरकार की किन नीतियों या कार्यों के विरुद्ध इसे लाया जा रहा है।

9. अविश्वास प्रस्ताव के संबंध में सुमेलित कथनों का चयन कीजिए-

- (i) यह सिर्फ लोकसभा में ही लाया जा सकता है।
- (ii) इसे लाने के लिए किसी विशेष आधार की आवश्यकता नहीं होती।
- (iii) उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का बहुमत यदि प्रस्ताव का समर्थन कर देता है तो सरकार गिर जाती है।
- (iv) यह प्रस्ताव लाने के लिए लोकसभा के कम से कम 50 सदस्यों के समर्थन की जरूरत होती है।

कूट-

- (1) (i) और (iii) (2) (i), (iii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iii) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

10. निम्नलिखित में कौन-सा प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में लाया जा सकता है?

- (1) निंदा प्रस्ताव (2) अविश्वास प्रस्ताव
- (3) विश्वास प्रस्ताव (4) विशेषाधिकार प्रस्ताव

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) स्थगन प्रस्ताव दोनों सदनों में पेश किया जा सकता है।
- (ii) स्थगन प्रस्ताव पक्ष या विपक्ष का कोई भी सदस्य ला सकता है।
- (iii) न्यायालय में विचाराधीन विषय को स्थगन प्रस्ताव में नहीं उठाया जा सकता।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) (4) (i), (ii) और (iii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) धन्यवाद प्रस्ताव का पारित होना सरकार के अस्तित्व की शर्त है क्योंकि इसके पारित न होने का तात्पर्य है कि सरकार ने अपना समर्थन खो दिया है।
- (ii) समापन प्रस्ताव का उद्देश्य सदन में चल रही चर्चा को बीच में ही रोकना होता है।
- (iii) औचित्य प्रश्न पर किसी प्रकार की बहस नहीं की जाती है और यह प्रश्न प्रायः विपक्षी दलों के सदस्यों की ओर से उठाया जाता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य है?

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

13. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिए।

सूची-I

सूची-II

A. साधारण समापन प्रस्ताव	(i) किसी विधेयक या संकल्प पर बिना चर्चा हुए उसे पारित करने से संबंधित प्रस्ताव।
B. कंगारू समापन प्रस्ताव	(ii) किसी विषय पर पर्याप्त वाद-विवाद के बाद उसे मतदान के लिए रखा जाना।
C. घटकों द्वारा समापन का प्रस्ताव	(iii) विधेयक के महत्वपूर्ण खण्डों पर चर्चा और मत विभाजन।
D. गिलोटिन समापन प्रस्ताव	(iv) किसी विस्तृत विधेयक या संकल्प के विभिन्न उपखंडों का समूह बनाकर उन पर एक साथ समग्र चर्चा।

कूट-

	A	B	C	D
(1) (i)	(ii)	(iii)	(iv)	
(2) (ii)	(i)	(iv)	(iii)	
(3) (ii)	(iii)	(iv)	(i)	
(4) (iii)	(iv)	(i)	(ii)	

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) नियम 377 के अधीन वे मामले उठाए जाते हैं जिन्हें प्रश्नकाल, अल्पकालीन चर्चा, स्थगन प्रस्ताव या किसी अन्य प्रस्ताव में नहीं उठाया जा सकता।
- (ii) संकल्प (Resolution) केवल मंत्री द्वारा ही लाए जा सकते हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

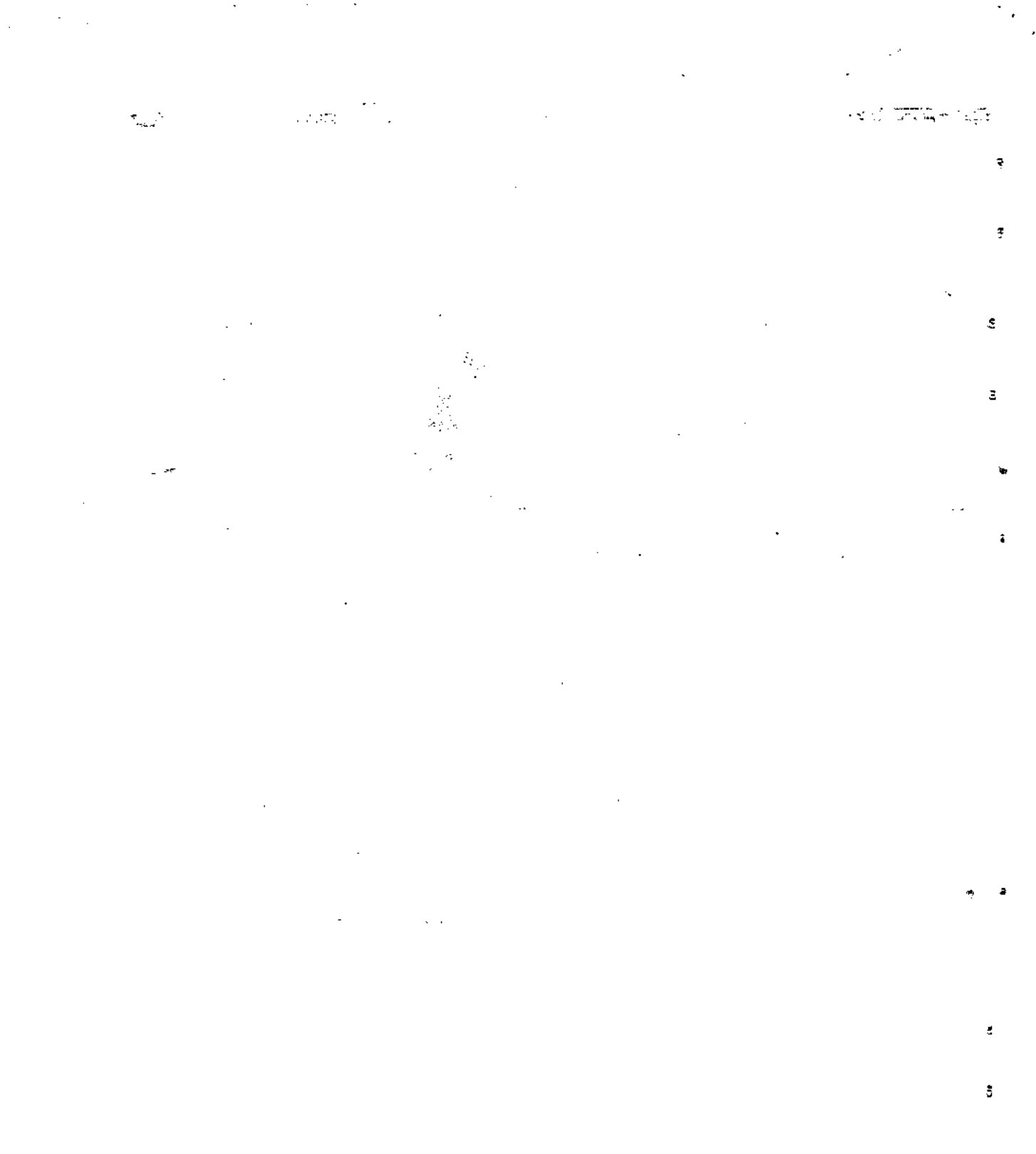
- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को यह अधिकार है कि वे किसी ऐसे सदस्य को उसकी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकते हैं जो हिन्दी या अंग्रेजी में अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं।
- (ii) जिन सदस्यों को हिन्दी या अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा में अपनी बात कहने की इच्छा होती है, उन्हें पीठासीन अधिकारी को अग्रिम सूचना देनी होती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)



संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges)

संसद के सदस्यों को अपने कार्यों का समुचित निर्वहन करने के लिए कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं जिन्हें संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges) कहा जाता है। संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद सदस्यों के लिए तथा अनुच्छेद 194 में राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के लिए ऐसे अधिकारों की चर्चा की गई है। ये अधिकार संसद सदस्यों के साथ-साथ भारत के महाध्यायवादी (Attorney General) तथा केंद्रीय मंत्रियों (जो संसद के सदस्य नहीं हैं) को भी दिए गए हैं क्योंकि उन्हें संसद के सदनों या समितियों में भाग लेने तथा बोलने का हक है। राष्ट्रपति को ये अधिकार नहीं दिए गए हैं, हालाँकि उसे संसद का एक अंग माना जाता है।

संविधान में संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary privileges in Constitution)

संविधान के अनुच्छेद 105 का संबंध संसदीय विशेषाधिकारों से है। अनुच्छेद 105 में संसद के सदस्यों के विशेषाधिकारों की चर्चा करता है—

- (i) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता [अनुच्छेद 105(1)] तथा
- (ii) कार्यवाहियों के प्रकाशन का अधिकार [(अनुच्छेद 105(2))]

इनके अतिरिक्त, पूरा संविधान के अनुच्छेद 105(3) में कहा गया था कि अन्य बातों में संसद के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियाँ (Powers), विशेषाधिकार (Privileges) और उन्मुक्तियाँ (Immunities) ऐसी होंगी जो संसद समय-समय पर विधि द्वारा निश्चित करे और जब तक संसद उन्हें निश्चित नहीं करती, तब तक उन्हें वही विशेषाधिकार (Privileges) और उन्मुक्तियाँ (Immunities) प्राप्त होंगी जो भारत का संविधान लागू होने के दिन 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के सदस्यों को प्राप्त थी।

44वें संशोधन द्वारा इसमें से 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के संदर्भ को हटा दिया गया है। अब इसमें यह वर्णित है कि संसद के सदनों के सदस्यों और समितियों के विशेषाधिकार वही होंगे जो संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी और जब तक वह ऐसा नहीं करती है, तब तक वे वही होंगे जो 44वें संशोधन के लागू होने के ठीक पहले संसद सदस्यों को प्राप्त थे। वस्तुतः इस संशोधन द्वारा स्थिति में कोई तात्त्विक परिवर्तन नहीं आया है। अब 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के विशेषाधिकारों का हवाला तो संविधान में नहीं है किंतु व्यवहारतः वे ही विशेषाधिकार अभी भी लागू हैं क्योंकि 1978 से पहले भारत के संसदों को वही विशेषाधिकार प्राप्त थे। इनमें परिवर्तन तभी होगा जब संसद (राज्यों के विधायकों के मामले में विधानमंडल) इससे संबंधित विधि बनाए; किंतु न तो संसद ने और न ही किसी भी राज्य के विधानमंडल ने अभी तक विशेषाधिकारों से संबंधित कोई विधि बनाई है।

संसदीय विशेषाधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Parliamentary Privileges)

संसद के सदनों तथा सदस्यों के विशेषाधिकारों को मोटे तौर पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

- (i) ऐसे विशेषाधिकार जो सदन को सामूहिक (collective) रूप से प्राप्त हैं।
- (ii) ऐसे विशेषाधिकार जो व्यक्तिगत (individual) रूप से संसद के सदस्यों को प्राप्त हैं।

1. सामूहिक विशेषाधिकार (Collective Privileges):

दोनों सदनों के सामूहिक विशेषाधिकार निम्नलिखित हैं—

- (i) कार्यवाहियाँ चलाने का अधिकार— इसका अर्थ है कि सदन को अपनी कार्यवाहियों को अपने तरीके से चलाने और विनियमित करने का अधिकार है। यदि इससे संबंधित कोई प्रश्न उठता है तो उसके संबंध में सदन का निर्णय अंतिम होता है। भारत के संविधान में अनुच्छेद 122 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रक्रिया से संबंधित किसी काथित अनियमितता

(alleged irregularity of procedure) के आधार पर संसद द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही की वैधता पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

- (ii) बहुस और कार्यवाहियों के प्रकाशन का अधिकार तथा प्रकाशन रोकने का अधिकार— इसकी चर्चा अनुच्छेद 105(2) में की गई है। इसके अनुसार संसद को अधिकार है कि वह अपनी कार्यवाही को प्रकाशित कर सकती है, किसी अन्य व्यक्ति को प्रकाशन का अधिकार दे सकती है तथा किसी को भी संसदीय कार्यवाहियों के प्रकाशन से रोक सकती है।

संसद ने इस उपबंध के अनुसार एक अधिनियम पारित किया था जो कहता था कि यदि कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन की कार्यवाहियों का प्रकाशन सारतः (substantively) सही अर्थों में करता है और उसके प्रकाशन में कोई दुर्भावना (malice) सिद्ध नहीं होती है तो उसके खिलाफ कोई भी सिविल (civil) या आपराधिक (criminal) कार्यवाही नहीं की जाएगी। किंतु, आपातकाल के दौरान यह कानून खारिज कर दिया गया था। आपातकाल के बाद जनता पार्टी की सरकार ने 'संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन संरक्षण) अधिनियम, 1977' (Parliamentary Proceedings (Protection of Publication) Act, 1977) पारित किया तथा संसदीय कार्यवाहियों को सारतः सही रूप में प्रस्तुत करने का अधिकार पुनः स्थापित कर दिया। अगले ही वर्ष, 44वें संशोधन के माध्यम से जनता पार्टी की सरकार ने संविधान में अनुच्छेद 361(क) जोड़कर इस संरक्षण को संवैधानिक रूप दे दिया। अब स्थिति यह है कि कोई भी व्यक्ति संसद की गतिविधियों को सारतः सही रूप में प्रकाशित करने के लिए स्वतंत्र है, किंतु इस अधिकार पर दो सीमाएँ हैं—

(क) ऐसा प्रकाशन किसी दुर्भावना (malice) के तहत नहीं होना चाहिए। यदि यह सिद्ध होता है कि प्रकाशन दुर्भावनावश किया गया है तो प्रकाशक को दंड दिया जा सकता है।

(ख) यदि सदन के सभापति ने कोई अंश कार्यवाही से निकाल दिया है तो किसी को भी कार्यवाही के उस अंश के प्रकाशन का अधिकार नहीं होगा। यही बात गुप्त सत्र (Secret Session) की कार्यवाही के संबंध में भी लागू होगी।

- (iii) बाहरी व्यक्तियों को सदन से बाहर निकालने का अधिकार— संसद के दोनों सदनों को अधिकार है कि वे अपनी किसी भी बैठक को गुप्त सत्र (Secret Session) में रूपांतरित कर सकते हैं। इस दृष्टि से उन्हें यह हक है कि वे किसी भी बाहरी व्यक्ति को सदन से बाहर भेज सकें।

- (iv) विशेषाधिकार हनन (Breach of privileges) के लिए अपने सदस्यों और बाहरी व्यक्तियों को दंड देने का अधिकार— संसद के प्रत्येक सदन को यह शक्ति है कि वह अपने विशेषाधिकार उल्लंघन (Breach of Privileges) के लिए सदन के सदस्य या बाहरी व्यक्ति को दंड दे सके। इस संबंध में कहीं-कहीं 'विशेषाधिकार उल्लंघन' (Breach of Privileges) शब्द का प्रयोग किया जाता है तो कहीं-कहीं 'सदन की अवमानना' (Contempt of House) का।

गौरतलब है कि 'विशेषाधिकार हनन' या 'उल्लंघन' की धारणा अत्यंत व्यापक है। इसमें विशेषाधिकारों के उल्लंघन के साथ-साथ हर ऐसा कृत्य शामिल है जिससे सदन के सम्मान को चोट पहुँचे या सदन को अपना कार्य करने में अवरोध पहुँच सके। किसी मामले में सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन हुआ है या नहीं, इसका निर्धारण स्वयं सदन ही करता है। कोई भी न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

विशेषाधिकार हनन या उल्लंघन के मामले में कौन सा दंड दिया जाना है— यह फैसला भी स्वयं सदन ही करता है। उदाहरण के लिए, किसी बाहरी व्यक्ति को चेतावनी दी जा सकती है, उसकी निंदा की जा सकती है तथा कारावास भी दिया जा सकता है। यदि सदन के किसी सदस्य ने ही विशेषाधिकार का उल्लंघन किया हो तो सदन उसकी निंदा (reprimand) कर सकता है, सदन से निलंबित (suspend) कर सकता है, कारावास की सजा (imprisonment) दे सकता है तथा निष्कासित (expel) भी कर सकता है।

- (v) अपनी चारदीवारी के भीतर सभी मामलों को विनियमित करने का अधिकार— प्रत्येक सदन को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपने परिसर के भीतर उत्पन्न होने वाले किसी भी विषय पर फैसला ले सके। उदाहरण के लिए, सदन परिसर में पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह सदस्य हो या गैर-सदस्य, न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही उसके विरुद्ध कोई सिविल या आपराधिक कार्यवाही की जा सकती है।

इस निर्णय तथा कुछ और मामलों के निर्णयों को मिलाकर देखें तो वस्तुस्थिति यह है कि संसद को अपने विशेषाधिकार भंग करने वाले व्यक्तियों को साधारण वारंट द्वारा कारावास भेजने की शक्ति तो है, किंतु यह शक्ति अनुच्छेद 21 और न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) से स्वतंत्र नहीं है।

- (vii) सदन को यह अधिकार है कि यदि उसके किसी सदस्य की गिरफ्तारी हुई है, उसे निरुद्ध (detain) किया गया है, वह दोषसिद्ध (convict) हुआ है, उसे कारावास भेजा गया है या कारावास से मुक्त किया गया है तो उसकी सूचना तुरंत सदन को प्राप्त होनी चाहिए।
- (viii) सदन को यह भी अधिकार है कि उसकी किसी समिति की रिपोर्ट या समिति के समक्ष दिए गए साक्ष्य (evidence) को तब तक कोई प्रकाशित नहीं कर सकता जब तक वह सदन के सामने प्रस्तुत न कर दिया गया हो।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार (Individual Privileges):

संसद सदस्यों को कुछ व्यक्तिगत विशेषाधिकार भी दिए गए हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

- (i) सिविल गिरफ्तारी से मुक्ति— 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के सदस्यों की तरह भारतीय संसद के सदस्यों को भी अधिकार है कि उन्हें संसद सत्र के दौरान या उससे 40 दिन पहले तथा 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह संरक्षण देने का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक सांसद संसद की कार्यवाही में शामिल हो सके। इस प्रावधान को सिविल प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) की धारा 135(क) में शामिल किया गया है।

ध्यातव्य है कि यह विशेषाधिकार सिर्फ सिविल मामलों से जुड़ी गिरफ्तारियों तक ही सीमित है। यदि कोई संसद सदस्य किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त है या उसे निवारक निरोध (Preventive detention) के तहत गिरफ्तार किये जाने की जरूरत है तो उसे यह संरक्षण नहीं मिलेगा। न्यायालय की अवमानना (Contempt of Court) के मामले में भी यह संरक्षण उपलब्ध नहीं होता है।

- (ii) गवाह के रूप में उपस्थित होने से स्वतंत्रता— जिस समय संसद का सत्र चल रहा होता है उस समय किसी सदस्य को किसी मामले में गवाही देने के लिए सदन की अनुमति के बिना नहीं बुलाया जा सकता है।

- (iii) वाक्-स्वातंत्र्य या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता— इसका अर्थ है कि संसद का सदस्य संसद के भीतर कोई गई अपनी अभिव्यक्तियों के संबंध में पूर्णतः स्वतंत्र होता है। संविधान का अनुच्छेद 105(1) संसद सदस्यों को यह विशेषाधिकार प्रदान करता है। इसमें कहा गया है कि "इस संविधान के उपबंधों के और संसद की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों और स्थायी आदेशों (standing orders) के अधीन रहते हुए संसद में वाक्-स्वातंत्र्य (freedom of speech) होगा।"

इस अनुच्छेद का संरक्षण सिर्फ उन अभिव्यक्तियों या भाषणों तक सीमित है जो संसद के भीतर दिए गए हैं। संसद के बाहर संसद सदस्य भी साधारण नागरिकों के समान हैं और उन पर वे सभी व्यक्तिगत सामान्य आरोपित होती हैं जो अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत वाक्-स्वातंत्र्य या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर आरोपित की गई हैं।

ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 105(1) के अनुसार संसद सदस्यों की यह वाक्-स्वातंत्रता दो तरह के निर्बंधनों (restrictions) के अधीन है—

- (i) यह संविधान के उपबंधों के अधीन है। उदाहरण के लिए, संविधान के अनुच्छेद 121 में कहा गया है कि उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए किए गए किसी आचरण के विषय में संसद में कोई चर्चा नहीं होगी। किंतु, यह प्रतिबंध उस समय लागू नहीं होता जब संसद में उस न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया चल रही होती है।
- (ii) यह विशेषाधिकार संसद की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले विनियमों (Regulations) तथा स्थायी आदेशों (Standing Orders) के भी अधीन है। इस संबंध में लोकसभा का नियम 352 और राज्यसभा का नियम 238 महत्वपूर्ण हैं। इनमें कहा गया है कि कोई संसद सदस्य संसद में न तो अशिष्ट भाषा (indecent language) का प्रयोग करेगा और न ही असंसदीय आचरण (unparliamentary behaviour) करेगा।

संसदीय समितियाँ (Parliamentary Committees)

संसद की प्रमुख समस्या है कि उस पर कार्य का बहुत ज्यादा बोझ रहता है जिसके कारण कई बार ज़रूरी विषयों पर भी पर्याप्त चर्चा नहीं हो पाती। इस समस्या को दूर करने के लिए इंग्लैण्ड में 'समिति व्यवस्था' (Committee system) का प्रादुर्भाव हुआ था जिसे बाद में अमेरिकी कांग्रेस ने भी अपना लिया। इसके अंतर्गत संसद के कुछ सदस्यों की समितियाँ बनाई जाती हैं और समितियों के सदस्य विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं। इसका पहला लाभ है कि सभी विषयों पर संसद के प्रतिनिधि चर्चा का अवसर निकाल पाते हैं और दूसरा लाभ यह है कि सदन में पीछे के बेंचों पर बैठने वाले अर्थात् निष्क्रिय सदस्य भी विचार-विमर्श की प्रक्रिया का हिस्सा बन पाते हैं।

भारत में समिति प्रणाली मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों (Montague-Chelmsford reforms) के आधार पर 1921 से ही शुरू हो गई थी, किन्तु उस समय की समितियाँ ब्रिटिश सरकार के अधीन कार्य करती थीं। समितियों की यह व्यवस्था स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यापक तौर पर प्रतिष्ठित की गई।

भारतीय संविधान में कई स्थानों पर [जैसे अनुच्छेद 105(2), (3) तथा (4) में] इन समितियों का उल्लेख किया गया है किन्तु उनके गठन, कार्य तथा कार्यकाल इत्यादि के संबंध में विशिष्ट प्रावधान नहीं दिए गए हैं। अनुच्छेद 118 में दोनों सदनों को अपनी कार्यवाही के संबंध में नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। समितियों से संबंधित सभी मामले भी दोनों सदनों की नियमावली के अनुसार संचालित होते हैं।

संसदीय समितियों के प्रकार (Types of Parliamentary Committees)

संसदीय समितियाँ दो प्रकार की होती हैं—स्थायी समितियाँ (Standing Committees) तथा अस्थायी या तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees)।

स्थायी समितियाँ (Standing Committees):

स्थायी समितियाँ (Standing Committees) वे हैं जो हमेशा अस्तित्व में रहती हैं और जिनके सदस्यों का चयन प्रत्येक वर्ष या निर्धारित समय के अनुसार किया जाता है। स्थायी समितियाँ दो प्रकार की होती हैं: प्रथम वर्ग में लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) जैसी समितियाँ आती हैं जो लंबे समय से संसदीय परंपरा का अंग हैं। दूसरे वर्ग में विभागीय स्थायी समितियाँ (Department related Standing Committees) आती हैं जिन्हें दो दशक पूर्व ही आरंभ किया गया है।

अस्थायी या तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees):

अस्थायी या तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees) वे हैं जो किसी विशेष प्रयोजन के लिए बनाई जाती हैं तथा प्रयोजन पूरा होने पर जिनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ये भी साधारणतः दो प्रकार की होती हैं—जाँच समितियाँ (Inquiry Committees) तथा सलाहकार समितियाँ (Advisory Committees)। जाँच समितियाँ (Inquiry Committees) का गठन किसी तात्कालिक घटना की जाँच के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, कारगिल घटना की जाँच के लिए बनी सुब्रमण्यम समिति ऐसी ही एक समिति थी। बोफोर्स मामले या स्टॉक मार्केट घोटाले से संबंधित समितियाँ भी इसी प्रकार की थीं। सलाहकारी समितियाँ (Advisory Committees) वे हैं जिन्हें किसी विधेयक इत्यादि पर विचार करने के लिए गठित किया जाता है। किसी विचाराधीन विधेयक के संबंध में कोई भी सदन यह संकल्प पारित कर सकता है कि उसे उसी सदन की प्रवर समिति (Select Committee) या फिर दूसरे सदन की सदस्यता से लोगों या अन्य समिति (Joint Committee) को सौंप दिया जाए।

समितियों की कार्य-पद्धति (Working method of Committees)

संसद के दोनों सदनों की समितियों की कार्य-प्रणाली समान होती है। इनमें सदस्यों की नियुक्ति तथा बैठकों की कार्यवाहियाँ इत्यादि एक निश्चित तरीके से होती हैं।

किसी संसदीय समिति में सदस्यों का निर्धारण या तो आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Method of proportional representation) के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) से होता है, या फिर सदन के अध्यक्ष या सभापति द्वारा उनका मनोनयन (nomination) होता है। उदाहरण के लिए, लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) तथा लोक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings) के सदस्यों का निर्वाचन होता है जबकि याचिका समिति (Committee on Petitions) तथा अधीनस्थ विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation) में सदस्यों को मनोनीत किया जाता है।

किसी संसदीय समिति की कार्यवाही के लिए कम से कम एक-तिहाई सदस्यों की सहमति ज़रूरी होती है। समिति में विचाराधीन प्रत्येक प्रश्न पर बहुमत से निर्णय लिए जाते हैं। यदि पक्ष और विपक्ष में बराबर मत पड़ जाएँ तो समिति का अध्यक्ष निर्णायक मत (Casting vote) डालता है।

समितियों की सभी बैठकें गोपनीय होती हैं। उनकी कार्यवाही तथा रिपोर्ट तब तक गोपनीय रखी जाती है जब तक वह सदन में पेश न कर दी जाए। ये बैठकें संसद भवन या संसदीय सौध में होती हैं हालाँकि अध्यक्ष या सभापति की अनुमति से ये बैठकें कहीं और भी आयोजित की जा सकती हैं। समितियों को हक होता है कि वे मौखिक व लिखित साक्ष्य ले सकें। ज़रूरत पड़ने पर प्रमुख संसदीय समितियाँ किसी विषय-विशेष को जोर देने के लिए उप-समितियाँ (Sub-committees) भी बना सकती हैं।

संसद की प्रमुख स्थायी समितियाँ (Main Standing Committees of Parliament)

संसद की प्रमुख स्थायी समितियाँ इस प्रकार हैं—

(1) लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee):

यह संसद की सबसे महत्वपूर्ण समिति मानी जाती है। 1954-55 तक इसमें 15 सदस्य होते थे और ये सभी लोकसभा से ही होते थे। 1955 में राज्यसभा द्वारा मांग करने पर लोकसभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री जी. वी. भगवेलकर की सिफारिश पर इसमें 7 सदस्य राज्यसभा से भी लिए जाने लगे और इसके सदस्यों की कुल संख्या 22 हो गई। 1966-67 तक यह परंपरा थी कि समिति का अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से ही हो किन्तु 1967 से विपक्षी दल के किसी सदस्य को इसका अध्यक्ष बनाए जाने की परंपरा शुरू हुई जो वर्तमान में भी जारी है।

लोक लेखा समिति का कार्य यह है कि वह सरकार के वार्षिक लेखों (annual accounts) की जाँच करे। इसके अंतर्गत उसे प्रमुख रूप से निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होता है—

- (i) जो राशि खर्च की गई है, वह उसी सेवा या प्रयोजन के लिए की गई है या नहीं जिसके लिए वह निर्धारित थी?
- (ii) राशि जिस प्राधिकारी द्वारा खर्च की गई है, वह उसके लिए सक्षम था या नहीं?
- (iii) यदि कोई पुनर्विनियोग (Re-appropriation) किया गया है तो वह सक्षम अधिकारी द्वारा तथा नियमों के अनुसार किया गया है या नहीं?
- (iv) विभिन्न परियोजनाओं या संस्थाओं द्वारा किए गए खर्चों में कोई वित्तीय अनियमितता (financial irregularity) तो नहीं हुई है?

लोक लेखा समिति का कार्य मुख्यतः भारत सरकार के लेखों के संबंध में नियंत्रक महालेखा-परीक्षक (CAG) द्वारा दी गई रिपोर्ट पर विचार करना होता है।

लोक लेखा समिति में 22 से अधिक सदस्य नहीं होते। इनमें से 15 सदस्य लोकसभा से होते हैं और 7 राज्यसभा से। सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Method of proportional representation) से एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) द्वारा होता है। सदस्यों की सदस्यता-अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होती, हालाँकि इसके अध्यक्ष को अगले वर्ष पुनः चुना जाता है। मंत्रिपरिषद का कोई भी सदस्य समिति में शामिल नहीं हो सकता। यदि समिति का कोई सदस्य आगे चलकर मंत्री बन जाता है तो वह मंत्री बनने की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रहता।

लोक लेखा समिति का महत्व प्रायः उन मामलों में देखा जाता है जहाँ यह सरकार के किसी घोटाले को उजागर करती है।

पेश की गई रिपोर्ट पर जब इस समिति ने विचार किया था तो देश की राजनीति में भूचाल आ गया था। अभी हाल ही में 2जी स्पैक्ट्रम घोटाले के संबंध में इसका महत्व पुनः देखा गया है।

(2) प्राक्कलन समिति (Estimates Committee):

यह समिति भी लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) की तरह सरकार के वित्तीय कामकाज से संबंधित है। इसे 'स्थायी मितव्ययता समिति' (Continuous economy committee) भी कहा जा सकता है। इसमें अधिकतम 30 सदस्य होते हैं और ये सभी लोकसभा से ही होते हैं, राज्यसभा से नहीं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1950 में पहली बार तत्कालीन वित्तमंत्री जॉन मथाई की सिफारिश पर 25 सदस्यों के साथ यह समिति गठित की गई थी। 1956 में इसकी सदस्य-संख्या बढ़ाकर 30 कर दी गई और तब से यह संख्या इतनी ही है। सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Method of proportional representation) से एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) द्वारा किया जाता है। कोई भी मंत्री इसका सदस्य नहीं हो सकता है और यदि इसका कोई सदस्य आगे चलकर मंत्री बन जाता है तो उस तिथि से वह समिति का सदस्य नहीं रहता है। सदस्यों की सदस्यता एक वर्ष के लिए होती है। समिति के अध्यक्ष का चयन लोकसभा अध्यक्ष द्वारा इसके सदस्यों में से किया जाता है। परंपरा के अनुसार समिति का अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल (Ruling party) का होता है।

प्राक्कलन समिति (Estimates Committee) का कार्य लोकसभा में बजट पेश किए जाने के बाद शुरू होता है। बजट में प्रस्तावित खर्चों की समीक्षा करने के लिए ही इसका गठन किया जाता है। यह समिति बजट के विभिन्न पक्षों की जाँच करके निम्नलिखित विषयों पर अपने सुझाव देती है—

- (क) अनुमानित खर्चों (Estimated expenditures) के संबंध में किस प्रकार मितव्ययता बढ़ती जा सकती है तथा संगठन में ऐसे कौन से प्रशासनिक सुधार लाए जा सकते हैं जो मितव्ययता के पक्ष में हों?
- (ख) सरकारी प्रशासन में दक्षता (efficiency) और मितव्ययता लाने के लिए कौन सी वैकल्पिक नीतियाँ अपनाई जा सकती हैं?
- (ग) बजट में जो नीतियाँ निर्धारित की गई हैं, उनकी सीमाओं में रहते हुए ही खर्च प्रस्तावित किया गया है या नहीं?
- (घ) समिति द्वारा किए गए प्राक्कलन संसद में किस प्रकार पेश किये जाएंगे?

प्राक्कलन समिति की रिपोर्ट पर संसद में बहस नहीं की जाती। सरकार की अनुदान की मांगें पारित किए जाने के लिए भी प्राक्कलन समिति की रिपोर्ट का इंतजार नहीं किया जाता। समिति साल भर काम करती रहती है और अपनी रिपोर्ट समय-समय पर संसद के समक्ष रखती जाती है। उसके सुझावों का असली लाभ यह है कि सरकार आगामी वर्ष के बजट में बढ़ा-चढ़ाकर संसद से राशि की मांग न कर सके।

(3) लोक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings):

इस समिति का गठन पहली बार कृष्ण मेनन समिति के सुझाव के आधार पर 1964 में किया गया था। शुरू में इसमें 15 सदस्य होते थे—10 लोकसभा से और 5 राज्यसभा से। 1974 में इसके सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 22 कर दी गई थी जो वर्तमान समय तक प्रचलन में है। इन 22 सदस्यों में से 15 लोकसभा से और 7 राज्यसभा से होते हैं। सभी सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Method of proportional representation) के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) द्वारा चुने जाते हैं। लोकसभा अध्यक्ष समिति के सभापति का चुनाव इसके सदस्यों में से करता है। इसका सभापति लोकसभा से ही होता है। सभी सदस्यों की सदस्यता एक वर्ष के लिए होती है और कोई भी मंत्री इसका सदस्य नहीं हो सकता।

लोक-उपक्रम समिति के कार्य निम्नलिखित हैं—

- (i) लोकसभा के नियमों में वर्णित लोक-उपक्रमों जैसे दामोदर घाटी निगम, एयर इंडिया, जीवन घोषा निगम (LIC), भारतीय खाद्य निगम (IFC) आदि की रिपोर्टें तथा लेखों की जाँच करना।
- (ii) ऐसी सरकारी कंपनियों के लेखों की जाँच करना जिनके लेखा कंपनी अधिनियम (Companies Act) के अनुसार संसद के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं।
- (iii) लोक उपक्रमों के संबंध में नियंत्रक महालेखा-परीक्षक (CAG) की रिपोर्ट की जाँच करना।
- (iv) यह देखना कि विभिन्न लोक उपक्रम व्यावसायिकता के ठोस सिद्धांतों (sound business principles) और युक्तिपूर्ण

(v) ऐसे कोई भी अन्य विषय जो लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समिति को सौंपे गए हों।

लोक उपक्रम समिति कुछ मामलों में जाँच का अधिकार नहीं रखती। उदाहरण के लिए, वह—

(क) लोक उपक्रमों के दैनिक प्रशासन के मामलों की जाँच नहीं कर सकती।

(ख) लोक उपक्रमों के संबंध में सरकार की नीति का मूल्यांकन नहीं कर सकती।

(4) अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति (Committee on Welfare of SC & ST):

इस समिति में 30 सदस्य होते हैं जिनमें से 20 लोकसभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Method of proportional representation) से एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) द्वारा चुने जाते हैं जबकि 10 सदस्य राज्यसभा द्वारा मनोनीत (nominate) होते हैं। किसी मंत्री का समिति में सदस्य होना वर्जित है और यदि इसका कोई सदस्य मंत्री बन जाता है तो उस तिथि से समिति का सदस्य नहीं रहता।

इस समिति के निम्नलिखित कृत्य हैं—

(क) अनुसूचित जाति आयोग व अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट पर विचार करना।

(ख) यह देखना कि केंद्र सरकार की सेवाओं तथा पदों में अनुसूचित जातियों व जनजातियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिल रहा है या नहीं? साथ ही, अनुच्छेद 335 के उपबंधों का पालन संपुष्टित तरीके से हो रहा है या नहीं?

(ग) संघ राज्यक्षेत्रों (Union territories) में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में चलाए जा रहे कार्यक्रमों के निष्पादन की जाँच करना।

(घ) अनुसूचित जाति आयोग तथा जनजाति आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाहियों की जाँच करना।

(ङ) कोई अन्य विषय जो समिति को अध्यक्ष द्वारा सौंपा गया हो या जिसे समिति उचित समझे।

(5) विभागीय स्थायी समितियाँ (Department related Standing Committees):

लोकसभा की 'नियमावली समिति' (Rules Committee) की सिफारिशों के आधार पर 1993 में पहली बार विभागीय स्थायी समितियाँ (Department related Standing Committees) की स्थापना की गई थी जिनका उद्देश्य कार्यपालिका पर (विशेषतः बजट के मामले में) संसदीय नियंत्रण को प्रभावी बनाना है। इस कदम को 1991 की नई आर्थिक नीति तथा आर्थिक अनुशासन की नीतियों से जोड़कर देखा जाता है। 1993 में कुल 17 विभागीय समितियों का गठन किया गया था। 2004 में ऐसी 7 और समितियाँ गठित की गईं जिससे इनकी कुल संख्या 24 हो गई। इनमें से 16 समितियाँ लोकसभा के अधीन काम करती हैं जबकि 8 राज्यसभा के अधीन। लोकसभा के अधीन काम करने वाली समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति लोकसभा का अध्यक्ष करता है जबकि राज्यसभा से जुड़ी समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति राज्यसभा का सभापति करता है। बड़े मंत्रालयों जैसे रक्षा और रेल इत्यादि के लिए विशेष विभागीय समितियाँ हैं जबकि शेष समितियाँ दो या अधिक मंत्रालयों का कामकाज देखती हैं।

प्रत्येक विभागीय समिति में अधिकतम 45 सदस्य हो सकते हैं। लोकसभा का अध्यक्ष प्रत्येक समिति के लिए 30 सदस्य मनोनीत करता है जबकि राज्यसभा का सभापति 15 सदस्य मनोनीत करता है। मनोनयन की तिथि से एक वर्ष पूरा होने तक प्रत्येक सदस्य कार्य करता है। किसी मंत्री को समिति का सदस्य नहीं बनाया जा सकता और यदि समिति का कोई सदस्य आगे चलकर मंत्री बन जाता है तो उसे उस तिथि से समिति की सदस्यता त्यागनी पड़ती है।

विभागीय समितियों के प्रमुख कृत्य निम्नलिखित हैं—

(i) संबंधित मंत्रालयों या विभागों की अनुदान की मांगों (demands for grants) को लोकसभा में मतदान के लिए प्रस्तुत करने से पहले जाँचना तथा उनके संबंध में रिपोर्ट देना। इस संबंध में शर्त है कि समिति की रिपोर्ट में ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए जो कटौती प्रस्ताव (cut motion) की प्रकृति का हो।

(ii) संबंधित मंत्रालयों या विभागों से संबंधित उन विधेयकों की जाँच करना जो लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति द्वारा समिति को सौंपे गए हों।

(iii) मंत्रालयों या विभागों की वार्षिक रिपोर्टों की जाँच करना तथा उनके संबंध में अपनी रिपोर्ट देना।

दीर्घावधि नीतियों से संबंधित दस्तावेजों (National basic long-term policy documents) पर विचार करना तथा उनके संबंध में अपनी रिपोर्ट देना।

विभागीय समितियों के संबंध में कुछ सीमाएँ भी निश्चित की गई हैं, जैसे—

(क) ये समितियाँ संबंधित मंत्रालय या विभाग के दैनिक कामकाज के मामलों पर विचार नहीं कर सकतीं।

(ख) ये समितियाँ किसी अन्य संसदीय समिति को सौंपे गए विषयों पर विचार नहीं कर सकतीं।

इन समितियों का मुख्य कार्य विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान संबंधी मांगों (demands for grants) की जाँच करना है। सदनों में जब बजट पर सामान्य चर्चा हो चुकी होती है तो सदन एक निश्चित अवधि के लिए स्थगित हो जाते हैं। इस अवधि में ये समितियाँ मंत्रालय द्वारा की गई अनुदान संबंधी मांगों पर विचार करती हैं और निर्धारित अवधि के भीतर उन मांगों के संबंध में अपनी रिपोर्ट सौंपती हैं।

(6) अधीनस्थ विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation):

इस समिति का गठन पहली बार 1953 में किया गया था। यह समिति लोकसभा में अलग है तथा राज्यसभा में अलग। दोनों सदनों में इस समिति में 15-15 सदस्य होते हैं। इसके सदस्यों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता। यह तब तक कार्य करती रहती है, जब तक कि तृई समिति का गठन न हो जाए।

अधीनस्थ विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation) का काम यह देखना है कि संविधान या संसद द्वारा किसी अधीनस्थ (subordinate) अधिकारी को जो विधायी शक्तियाँ (Legislation powers) प्रदान की गई हैं, उनके अनुसरण में उसके द्वारा बनाए गए नियम (rules), विनियम (regulations), उपनियम (bylaws) इत्यादि उचित हैं या नहीं अर्थात् ये संविधान या संबंधित अधिनियम द्वारा निर्देशित सिद्धांतों का अतिक्रमण तो नहीं करते हैं? यदि समिति को लगता है कि कोई नियम या विनियम संविधान या संबंधित अधिनियम के मूल सिद्धांतों से मेल नहीं खाता है तो वह उसे रद्द या संशोधित करने की सलाह दे सकता है।

(7) कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee)

इस समिति का कार्य सदन की कार्यवाही तथा समय-तालिका को विनियमित करना है। यह सदन में विभिन्न कार्यवाहियों के लिए समय निर्धारित करती है। यह समिति दोनों सदनों में अलग-अलग है। लोकसभा में इस समिति में 15 सदस्य होते हैं जबकि राज्यसभा में 11 सदस्य। लोकसभा की समिति में स्वयं लोकसभा अध्यक्ष इसका अध्यक्ष होता है। राज्यसभा में सभापति समिति का पदेन अध्यक्ष होता है।

(8) गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों से संबंधित समिति (Committee on Private Members' Bills and Resolutions)

यह लोकसभा की समिति है। इसमें 15 सदस्य होते हैं। इसका कार्य गैर-सरकारी अर्थात् प्राइवेट सदस्यों द्वारा प्रस्तावित विधेयकों (Bills) तथा संकल्पों (Resolutions) की जाँच करना तथा उनके लिए चर्चा का समय आदि निर्धारित करना है। इस समिति में लोकसभा उपाध्यक्ष का होना ज़रूरी है। उपाध्यक्ष ही इस समिति का अध्यक्ष भी होता है। गौरतलब है कि राज्यसभा में यह समिति नहीं होती। वहाँ यह कार्य करने का दायित्व 'कार्य मंत्रणा समिति' (Business Advisory Committee) के पास है।

(9) याचिका समिति (Committee on Petitions)

संसद के दोनों सदनों में याचिका समिति होती है। लोकसभा की इस समिति में 15 सदस्य होते हैं जबकि राज्यसभा में 10 सदस्य। यह समिति सदन में प्रस्तुत उन याचिकाओं पर विचार करती है जो जनता द्वारा संसद को किसी विधेयक, लोक महत्व के मामले या संघ-सूची से जुड़े किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए दी जाती हैं। याचिका समिति याचिका की जाँच करने के

इस समिति का पदेन सभापति (Ex-officio chairman) होता है। राज्यसभा की समिति में 16 सदस्य होते हैं तथा सभापति ही इसका पदेन प्रमुख होता है।

(11) विशेषाधिकार समिति (Committee on Privileges)

इस समिति का कार्य सदन अथवा किसी समिति के सदस्यों के विशेषाधिकारों के हनन (Breach of Privileges) के मामलों की जाँच करना है। सदस्यों के विशेषाधिकारों के उल्लंघन की शिकायत की जाँच के उपरान्त समिति अपनी रिपोर्ट सौंपती है तथा कार्यवाही के लिए सुझाव देती है। इसका कार्य अर्द्ध-न्यायिक (semi judicial) प्रकृति का है। लोकसभा की विशेषाधिकार समिति में 15 सदस्य होते हैं जबकि राज्यसभा की समिति में 10 सदस्य।

(12) सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति (The Committee on Government Assurances)

इस समिति का कार्य यह जाँचना है कि मंत्रियों द्वारा समय-समय पर सदन को जो आश्वासन (assurances), वचन (Promises) व प्रतिज्ञान (Undertakings) आदि दिए गए हैं, वे पूरे किए गए हैं या नहीं; और यदि किए गए हैं तो सही समय के भीतर किए गए हैं या नहीं? लोकसभा की इस समिति में 15 सदस्य होते हैं तथा राज्यसभा की समिति में 10 सदस्य।

(13) लाभ के पद पर संयुक्त समिति (Joint committee on offices of profit)

इस समिति में 15 सदस्य होते हैं जिनमें से 10 लोकसभा से और 5 राज्यसभा से चुने जाते हैं। इस समिति का मुख्य कार्य संविधान के अनुच्छेद 102 के तहत इस बात की सिफारिश करना है कि किस पद को लाभ का पद घोषित किया जाना चाहिए और किस पद को नहीं? इसके साथ-साथ, लाभ के पद के कारण सदस्यों की निरर्हता (disqualification) से जुड़े मामलों की जाँच कराना इस समिति का अन्य कार्य है।

(14) सभा पटल पर रखे पत्रों संबंधी समिति (Committee on Papers Laid on the Table)

इस समिति का कार्य सभापटल पर रखे गए सभी कागजातों की जाँच करना और यह देखना है कि वे संविधान या उपयुक्त अधिनियम से सुसंगत हैं या नहीं? यह समिति इस बात को भी देखती है कि कागजात हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रस्तुत किए गए हैं या नहीं? यह समिति संसद के प्रत्येक सदन द्वारा गठित की जाती है। लोकसभा की इस समिति में 15 सदस्य और राज्यसभा में 10 सदस्य होते हैं। इस समिति का गठन पहली बार 1975 में हुआ था।

(15) सदन की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति (Committee on Absence of Members from the sitting of the House)

यह लोकसभा की समिति है। इसमें 15 सदस्य होते हैं। यह समिति लोकसभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने के लिए सदस्यों से प्राप्त प्रार्थना-पत्रों पर विचार करती है। इसको अलावा, यदि सदन का कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना बैठकों से 60 दिन या इससे अधिक समय तक अनुपस्थित रहता है तो यह समिति इस संबंध में रिपोर्ट देती है कि सदस्य को ऐसी अनुपस्थिति को माफ (Condone) कर दिया जाए या उसके स्थान को रिक्त घोषित कर दिया जाए। राज्यसभा में यह कार्य सदन द्वारा ही किया जाता है, किसी समिति द्वारा नहीं।

(16) सदस्यों के वेतन एवं भत्ते संबंधी समिति (Committee on salaries and allowances of members)

यह दोनों सदनों की संयुक्त समिति (Joint Committee) है। इसमें लोकसभा के 10 तथा राज्यसभा के 5 सदस्य शामिल होते हैं। यह समिति 'संसद सदस्य (वेतन तथा भत्ता) अधिनियम, 1954' के अधीन नियम बनाने के लिए गठित की जाती है। इस समिति का मुख्य कार्य संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के लिए वेतन, भत्ते व पेंशन के संबंध में विचार करना तथा उनके भुगतान को विनियमित करना है।

(17) आवास समिति (Housing Committee)

संसद के दोनों सदनों में आवास समिति का गठन किया जाता है। यह समिति सदस्यों के लिए आवास, चिकित्सा सहायता, खान-पान आदि सुविधाओं से संबंधित मामलों के लिए कार्य करती है। प्रत्येक सदन की समिति में 12 सदस्य होते हैं, जो संबंधित सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।

(18) पुस्तकालय समिति (Library Committee)

यह लोकसभा तथा राज्यसभा की संयुक्त समिति है। इसमें लोकसभा के 6 सदस्य तथा राज्यसभा के 3 सदस्य शामिल किए जाते हैं। समिति पुस्तकों के चयन, ग्रंथालय के लिए नियम बनाने और इसकी भावी योजना आदि से संबंधित मामलों में अध्यक्ष को सलाह देती है। साथ ही, वह सांसदों को ग्रंथालय की सुविधाओं का अधिकतम लाभ उठाने के लिए सहायता भी उपलब्ध कराती है।

(19) आचरण समिति (Ethics Committee)

इसकी स्थापना राज्यसभा में 1997 में तथा लोकसभा में 2000 ई० में हुई। इसका मूल कार्य संसद में अनुशासन व पर्याप्त बनाए रखना है। यह संसद सदस्यों के लिए आचरण संहिता (Code of ethics) को लागू करती है तथा यदि दुर्व्यवहार संबंधी कोई मामला आता है तो उसकी जाँच करके उचित कार्यवाही की सिफारिश करती है। लोकसभा की आचरण समिति में 15 सदस्य होते हैं जबकि राज्यसभा की समिति में 10 सदस्य।

(20) महिला सशक्तीकरण संबंधी समिति (Committee on empowerment of women)

1997 में स्थापित इस समिति में 30 सदस्य होते हैं— 20 लोकसभा से और 10 राज्य सभा से। इसका प्राथमिक कार्य राष्ट्रीय महिला आयोग (National Commission for Women) की रिपोर्ट पर विचार करना है। इसके अलावा, यह इस विषय की भी जाँच करती है कि महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में सरकार द्वारा उठाए गए कदम पर्याप्त हैं या नहीं?

(21) सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति (Committee on Papers Laid on the table)

1975 में पहली बार गठित यह समिति लोकसभा और राज्यसभा के लिए पृथक-पृथक बनाई जाती है। लोकसभा की समिति में 15 सदस्य होते हैं जबकि राज्यसभा की समिति में 10 सदस्य। इसका कार्य यह देखना है कि विभिन्न मंत्रियों ने सदन पटल पर जो दस्तावेज या प्रपत्र (documents) रखे हैं, वे संविधान के उपबंधों या संबंधित विधेयकों के अनुरूप हैं या नहीं? यह अधीनस्थ विधान समिति (Committee on Subordinate Legislation) के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करती है।

परामर्शदात्री समितियाँ (Consultative Committees)

परामर्शदात्री समितियाँ (Advisory Committees) तकनीकी तौर पर संसदीय समितियाँ नहीं होतीं। ये केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों से संबंधित होती हैं और इनका अध्यक्ष उस मंत्रालय का मंत्री या राज्य मंत्री होता है। ये समितियाँ संसदीय कार्य मंत्रालय (Ministry of Parliamentary Affairs) द्वारा गठित की जाती हैं तथा यही मंत्रालय उनकी बैठकों आदि के आयोजन की व्यवस्था करता है। इन समितियों का वास्तविक लाभ यह है कि ये विभिन्न मंत्रियों और संसद सदस्यों को संवाद के लिए एक मंच उपलब्ध कराती हैं। सामान्यतः लोकसभा के चुनावों के बाद ये समितियाँ गठित की जाती हैं। वर्तमान में ऐसी 32 समितियाँ काम कर रही हैं।

इन समितियों के अलावा, रेलवे के विभिन्न मंडलों (Zones) के लिए पृथक परामर्शदात्री समितियों का गठन भी किया जाता है। वर्तमान में 16 रेलवे मंडलों (Zones) के लिए 16 समितियाँ काम कर रही हैं। प्रत्येक समिति में ऐसे सदस्य नियुक्त किए जाते हैं जो उसी रेलवे मंडल (Zone) से संबंध रखते हों।

संसद: एक मूल्यांकन (Parliament: An Evaluation)

क्या भारतीय संसद सर्वोच्च है? (Is Indian Parliament Supreme?)

संसदीय सर्वोच्चता का ब्रिटिश सिद्धांत (British Principle of Parliamentary supremacy):

संसदीय सर्वोच्चता (Parliamentary Supremacy) का सिद्धांत इंग्लैंड की राजव्यवस्था का विशिष्ट लक्षण है। इंग्लैंड की संसद शासन के तीनों अंगों में सर्वोच्च स्थान रखती है अर्थात् कार्यपालिका और न्यायपालिका के पास संसद की तुलना में कम शक्तियाँ हैं। इस स्थिति को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है—

- (i) इंग्लैंड की संसद संविधान की मर्यादाओं के अधीन नहीं है क्योंकि वहाँ लिखित और निश्चित संविधान है ही नहीं।
- (ii) इंग्लैंड की संसद न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) से भी मुक्त है। वहाँ न्यायपालिका को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह संसद द्वारा निर्मित किसी कानून को अवैध घोषित कर सके।
- (iii) इंग्लैंड की संसद राजा या राजमुकुट (Crown) की तुलना में भी कमजोर नहीं है। 1688 ई. के बाद से इंग्लैंड में राजा सिर्फ औपचारिक प्रधान रह गया है।
- (iv) इंग्लैंड की कार्यपालिका भी संसद से कमजोर है। संसदीय प्रणाली होने के कारण सरकार का चयन संसद सदस्यों के भीतर से ही होता है और सरकार 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के विश्वास पर टिकी होती है।
- (v) इंग्लैंड में संसद की कानून निर्माण संबंधी शक्ति पर किसी तरह की सीमा नहीं है। वह कोई भी कानून बना सकती है, बदल सकती है तथा हटा सकती है।
- (vi) चूंकि इंग्लैंड की राजव्यवस्था एकात्मक प्रणाली (Unitary System) पर आधारित है, इसलिए संसद की शक्ति पर यह सीमा भी नहीं है कि वह राज्यों को दिये गए विषयों पर कानून न बना सके।

भारतीय संसद सर्वोच्च नहीं है (Indian Parliament isn't supreme):

जहाँ तक भारतीय संसद का प्रश्न है, उसे वैसी सर्वोच्चता हासिल नहीं है जैसी कि ब्रिटिश संसद को है। कई ऐसे कारण हैं जो संसद की शक्ति को सीमित करते हैं। ऐसे प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

- (क) भारत के पास लिखित संविधान है। वहाँ संविधान को सर्वोच्च विधि (Highest law) माना जाता है और संसद द्वारा बनाए जाने वाले प्रत्येक कानून के लिए जरूरी है कि वह संविधान से सुसंगत हो। 'केशवानंद भारती मामले' में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि संसद संविधान के आधारभूत ढाँचे (Basic Structure) को नहीं बदल सकती है।
- (ख) संसद की कानून बनाने की शक्ति सिर्फ उन विषयों तक सीमित है जो संघ सूची (Union List) या समवर्ती सूची (Concurrent List) में शामिल हैं। राज्य सूची (State List) के विषयों पर कानून बनाने की शक्ति साधारण परिस्थितियों में राज्यों के विधानमंडलों के पास ही होती है, न कि संसद के पास।
- (ग) भारत में न्यायपालिका इंग्लैंड की तुलना में काफी सशक्त है और उसके पास न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) की व्यापक शक्ति है। वह संसद द्वारा निर्मित विधि को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर सकती है कि वह विधि संविधान के मूल ढाँचे के प्रतिकूल है।
- (घ) भारतीय संविधान के भाग-3 में मूल अधिकारों की गारंटी दी गई है। अनुच्छेद 13(2) में स्पष्ट कहा गया है कि यदि संसद द्वारा निर्मित कोई विधि भाग-3 के प्रावधानों के विरुद्ध होगी तो न्यायपालिका उस विधि को उस सीमा तक असंवैधानिक घोषित कर सकेगी। वर्तमान स्थिति यह है कि संसद मूल अधिकारों में संशोधन तो कर सकती है किंतु उन संशोधनों का संविधान के आधारभूत ढाँचे से सुसंगत होना जरूरी है।

- (ङ) संसद को संविधान में संशोधन करने के लिए शक्ति तो दी गई है किंतु संघात्मक ढाँचे से जुड़े प्रावधानों में संशोधन करने के लिए जरूरी है कि कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडल उस प्रस्ताव का समर्थन करें। ऐसे मामलों में संसद राज्यों

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

7. संसदीय समितियों की कार्य-पद्धति के संबंध में कौन-कौन से कथन सुमेलित हैं?

- (i) किसी संसदीय समिति में सदस्यों का निर्धारण निर्वाचन और मनोनयन दोनों विधियों से होता है।
(ii) किसी संसदीय समिति की कार्यवाही के लिए कम से कम दो-तिहाई सदस्यों की सहमति की आवश्यकता होती है।
(iii) यदि पक्ष और विपक्ष में बराबर मत पड़ जाएँ तो समिति का अध्यक्ष निर्णायक मत डालता है।
(iv) आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख संसदीय समितियाँ किसी विषय विशेष की जाँच करने के लिए उप-समितियाँ भी बना सकती हैं।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii) (2) (ii), (iii) और (iv)
(3) (i), (iii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

8. लोक लेखा समिति के संबंध में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) इसमें 15 सदस्य लोकसभा से और 7 सदस्य राज्यसभा से होते हैं।
(2) सदस्यों की सदस्यता-अवधि एक वर्ष से अधिक की नहीं होती है।
(3) इसका प्रमुख कार्य सरकार के वार्षिक लेखों की जाँच करना है।
(4) मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को भी इसका सदस्य बनाया जा सकता है।

9. निम्नलिखित में किस समिति के सभी सदस्य लोकसभा से ही होते हैं?

- (1) लोक लेखा समिति।
(2) प्राक्कलन समिति।
(3) लोक उपक्रम समिति।
(4) अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति।

10. प्राक्कलन समिति के संबंध में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) समिति के अध्यक्ष का चयन लोकसभा अध्यक्ष द्वारा इसके सदस्यों में से की जाती है।
(2) बजट में प्रस्तावित खर्चों की समीक्षा करने के लिए

11. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) लोक उपक्रम समिति एक तदर्थ या अस्थायी समिति है जिसका गठन समय-समय पर किया जाता है।
(ii) लोक उपक्रम समिति की सदस्यता एक वर्ष के लिए होती है और इसका सभापति लोकसभा से ही होता है।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) लोकसभा की 'नियमावली समिति' की सिफारिशों के आधार पर 1993 में पहली बार विभागीय स्थायी समितियों की स्थापना की गई थी।
(ii) प्रत्येक विभागीय समिति में अधिकतम 45 सदस्य हो सकते हैं और किसी मंत्री को समिति का सदस्य नहीं बनाया जा सकता।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

13. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिए।

सूची-I

सूची-II

(समितियाँ)

(संबंधित तथ्य)

- A. अधीनस्थ विधान समिति (i) दोनों सदनों में 15-15 सदस्य होते हैं।
B. कार्य मंत्रणा समिति (ii) लोकसभा में 15 जबकि राज्यसभा में 11 सदस्य होते हैं।
C. याचिका समिति (iii) लोकसभा में 15 जबकि राज्यसभा में 10 सदस्य होते हैं।
D. आवाज समिति (iv) प्रत्येक सदन में 12 सदस्य होते हैं।

कूट-

	A	B	C	D
(1)	(ii)	(iv)	(i)	(iii)
(2)	(iii)	(i)	(ii)	(iv)
(3)	(iv)	(i)	(iii)	(ii)
(4)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)

14. निम्नलिखित में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (i) विशेषाधिकार समिति का कार्य अदर-न्यायिक प्रकृति का है।
(ii) लोकसभा की विशेषाधिकार समिति में 15 जबकि राज्यसभा की समिति में 10 सदस्य होते हैं।

15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) परामर्शदात्री समितियाँ केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों से संबंधित होती हैं और इनका अध्यक्ष उस मंत्रालय का सचिव या संयुक्त सचिव होता है।
- (ii) परामर्शदात्री समितियाँ संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा गठित की जाती हैं तथा यही मंत्रालय उनकी बैठकों आदि के आयोजन की व्यवस्था करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

16. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) भारत में न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति है जबकि ब्रिटेन की न्यायपालिका के पास यह शक्ति नहीं है।
- (ii) भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनमें संशोधन के लिए राज्यों के विधानमंडलों की भी आवश्यकता होती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

17. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के मामले में लोकसभा की स्थिति पञ्चवृत्त होती है।
- (2) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, यह तय करने की शक्ति लोकसभा अध्यक्ष के पास है।
- (3) राष्ट्रीय आपातकाल की समाप्त करने का संकल्प लोकसभा में ही पारित किया जा सकता है।
- (4) इनमें से कोई नहीं।

18. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये-

- (i) संविधान संशोधन विधेयक के मामले में लोकसभा तथा राज्यसभा की शक्तियाँ बराबर हैं।
- (ii) धन विधेयक को लोकसभा में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति लेनी पड़ती है।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

19. निम्नलिखित में से कौन से कथन सत्य हैं?

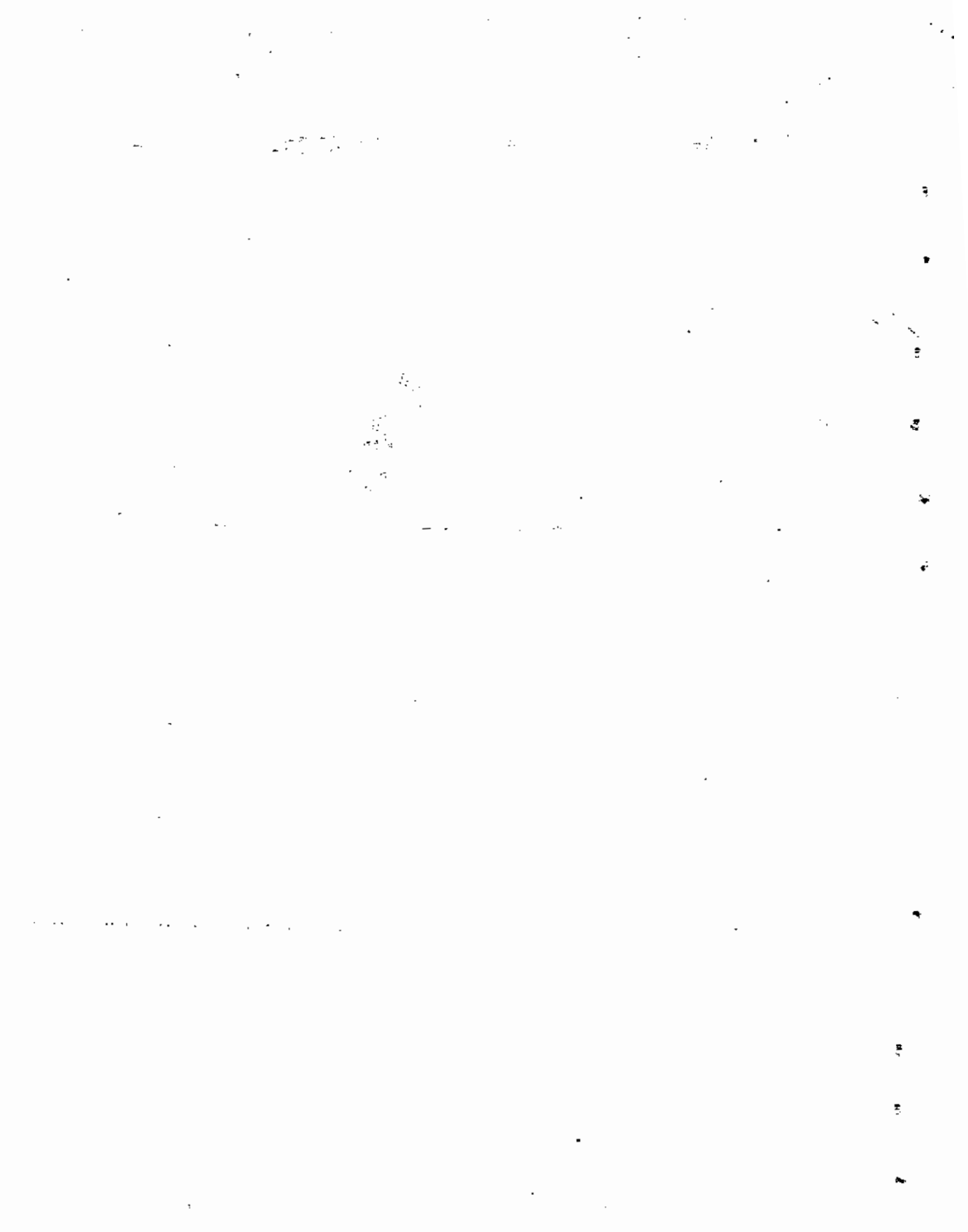
- (i) दोनों सदनों द्वारा पारित संविधान संशोधन विधेयक पर राष्ट्रपति अनुमति देने के लिए बाध्य है।
- (ii) राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से ही संविधान संशोधन विधेयक पेश किए जा सकते हैं।
- (iii) धन विधेयकों के संबंध में भी राष्ट्रपति की पूर्वानुमति आवश्यक है।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

20. निम्नलिखित में से किस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि संसद संविधान के आधारभूत ढाँचे को नहीं बदल सकती है?

- (1) बेरुबाड़ी मामला।
- (2) गोलकनाथ मामला।
- (3) केशवानंद भारती मामला।
- (4) मिनर्वा मिल्स मामला।



भारत की न्यायपालिका : एक परिचय (Judiciary of India : An Introduction)

न्यायपालिका के विभिन्न स्तर (Different levels of Judiciary)

भारत में न्यायपालिका के 3 प्रमुख स्तर हैं। सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय (Supreme court) है जिसका प्रमुख कार्य केंद्र-राज्य विवादों तथा विभिन्न राज्यों के आपसी विवादों पर विचार करना है। नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करना, संविधान की अंतिम व्याख्या (interpretation) करना तथा सिविल (Civil) व आपराधिक (Criminal) मामलों में अपीलों की अंतिम सुनवाई करना भी इसके कार्यों में शामिल हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के बाद दूसरे स्तर पर उच्च न्यायालय (High courts) हैं जो किसी राज्य की न्यायपालिका के सर्वोच्च स्तर पर स्थित हैं। केंद्र-राज्य विवादों या विभिन्न राज्यों के आपसी विवादों पर इनकी अधिकारिता (jurisdiction) नहीं है, किंतु इन विषयों को छोड़कर ये राज्य की सीमाओं के भीतर प्रायः वे सभी कार्य करते हैं जो सर्वोच्च न्यायालय देश के स्तर पर करता है। ध्यातव्य है कि उच्च न्यायालय न्यायिक दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय के अधीन होते हैं किंतु प्रशासनिक दृष्टि से वे स्वतंत्र हैं। सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णयों को बदल सकता है, उनके न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानांतरण कर सकता है; पर उच्च न्यायालयों के प्रशासन को नियंत्रित नहीं कर सकता।

उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय को सम्मिलित रूप से 'उच्चतर न्यायपालिका' (Higher Judiciary) कहा जाता है। इसके विपरीत, उच्च न्यायालयों से नीचे के सभी न्यायालयों को सम्मिलित रूप से 'निम्नतर न्यायपालिका' (Lower Judiciary) या 'अधीनस्थ न्यायपालिका' (Subordinate Judiciary) कहा जाता है।

अधीनस्थ न्यायपालिका (Subordinate Judiciary) के भी कई उप-स्तर हैं। इनमें सर्वोच्च स्तर पर जिला एवं सत्र न्यायालय (District and Session Court) होता है तथा उसके नीचे 2 से 3 स्तरों पर उसके अधीन काम करने वाले अन्य न्यायालय। ये सभी न्यायालय प्रशासनिक दृष्टि से उच्च न्यायालय के प्रत्यक्ष नियंत्रण में काम करते हैं। संबंधित उच्च न्यायालय इनके निर्णयों की अपील तो सुनता ही है; साथ ही उनके प्रशासन की निर्णयों भी करता है। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों का स्थानांतरण, उनके कार्य की समीक्षा आदि उसी के हाथ में होती है।

न्यायपालिका के इस परंपरागत ढाँचे के अलावा कुछ 'अधिकरण' (Tribunals) भी स्थापित किए जाते हैं जो किसी विशेष विभाग या विशेष अधिनियम से जुड़े मामलों को देखते हैं। अधिकरणों की व्यवस्था मूल संविधान में नहीं थी, हालाँकि अधिनियमों के माध्यम से उनके गठन की प्रक्रिया संविधान बनने के कुछ वर्ष बाद ही शुरू हो गई थी। संविधान के '42वें संशोधन अधिनियम, 1976' के माध्यम से अधिकरणों को संवैधानिक स्तर प्रदान करने के लिए संविधान में भाग XIV-क जोड़ा गया था जिसमें दो अनुच्छेद 323(क) तथा (ख) शामिल हैं। संवैधानिक स्तर के अधिकरणों का गठन इन्हीं अनुच्छेदों के तहत बनाए गए अधिनियमों के अनुसार किया जाता है। हालाँकि अभी भी अधिकांश मामलों में सामान्य अधिनियमों के माध्यम से अधिकरण गठित करने का चलन है। अधिकरणों की ही तरह कुछ 'आयोग' (Commission), 'बोर्ड' (Board) तथा 'फोरम' (Forum) भी कार्यरत हैं जो अपनी कार्य-शैली में अधिकरणों के काफी नजदीक हैं।

इसके अलावा, पिछले कुछ समय में न्यायपालिका में कई नए प्रयोग भी किए गए हैं, जैसे- 'पारिवारिक अदालत' (Family Court), 'लोक अदालत' (Lok Adalat), 'उपभोक्ता अदालत' (Consumer Court), बाल व किशोर न्यायालय (Child and Juvenile Court) 'फास्ट ट्रैक अदालत' (Fast track court), 'मोबाइल अदालत' (Mobile court), 'ई-अदालत' (E-court), ग्राम न्यायालय (Gram Nyayalaya) इत्यादि।

इन सभी से अलग एक व्यवस्था 'सेना न्यायालयों' (Courts Martial) की भी है। ये तकनीकी तौर पर न्यायपालिका के अंग नहीं हैं पर कार्य की दृष्टि से इसके समान हैं। सेना न्यायालय (Court Martial) सैनिकों से जुड़े मामलों पर विचार करते हैं। इनमें न्यायाधीशों की भूमिका सेना के ही वरिष्ठ अफसर निभाते हैं। हाल ही में, इनके निर्णयों के विरुद्ध अपील के लिए एक 'सशस्त्र सेना अधिकरण' (Armed Forces Tribunal) भी स्थापित किया गया है।

संविधान में न्यायपालिका के सभी स्तरों से जुड़े प्रावधान अलग-अलग भागों व अनुच्छेदों में दिए गए हैं। सर्वोच्च न्यायालय से जुड़े उपबंध अनुच्छेद 124-147 (भाग V) में, उच्च न्यायालयों से जुड़े उपबंध अनुच्छेद 214-232 (भाग VI) में, अधीनस्थ न्यायालयों के प्रावधान अनुच्छेद 233-237 (भाग VI) में जबकि अधिकरणों (Tribunals) से संबंधित प्रावधान अनुच्छेद 323(क)

न्यायालयों की कार्यवाही तथा अन्य पक्ष (*Procedure of Courts and Other aspects*)

संविधान तथा न्यायपालिका की सम्यक् समझ के लिए जरूरी है कि हम न्यायालयों की कार्यवाही से संबंधित प्रमुख शब्दों तथा अवधारणाओं को समझें। अगले कुछ पृष्ठों में विभिन्न प्रकार के मुकदमों, अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों तथा उनकी पीठों आदि के संबंध में आधारभूत बातें स्पष्ट की जा रही हैं।

मुकदमों के प्रकार (*Types of Cases*)

न्यायालयों में जो मामले या मुकदमे लाए जाते हैं, वे साधारणतः दो प्रकार के होते हैं- आपराधिक (Criminal) तथा सिविल (Civil)। कुछ विरल मामले ऐसे भी हो सकते हैं जो इन वर्गों में न रखे जा सकें। उपरोक्त दोनों तरह के मामलों पर विचार करने के लिए न्यायालयों की दो धाराएँ काम करती हैं जिन्हें 'आपराधिक न्यायालय' (Criminal Courts) तथा 'सिविल न्यायालय' (Civil Courts) कहा जाता है। अधीनस्थ न्यायपालिका (Subordinate Judiciary) में दोनों न्यायालय प्रायः अलग-अलग होते हैं जबकि उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालय दोनों तरह के मामलों की अपीलें सुनते हैं। भारतीय न्याय प्रणाली को समझने की शर्त है कि हमारे पास दोनों प्रकार के वादों या मामलों से संबंधित आर्थिक जानकारी हो।

सिविल व आपराधिक मामलों में अंतर (*Difference between Civil and Criminal Cases*)

सिविल तथा आपराधिक (या दंडिक) मामलों में निम्नलिखित अंतर हैं-

- (i) आपराधिक मामले वे होते हैं जिनमें किया गया कृत्य 'भारतीय दंड संहिता' (IPC-Indian Penal Code) या किसी विशेष अधिनियम के तहत 'अपराध' घोषित किया गया है। ऐसे मामलों में न्यायालय भारतीय दंड संहिता (IPC) के अनुसार दोषसिद्ध (Convicted) अपराधी को दंड देता है। यह दंड 4 प्रकार का हो सकता है- मृत्युदंड, कारावास, संपत्ति को जब्त करना या आर्थिक जुर्माना (fine) लगाना।

दूसरी ओर, सिविल मामलों में न्यायालय उपरोक्त चारों में से कोई दंड नहीं दे सकता। सिविल मामले दो पक्षों के आपसी दावों या विवादों पर आधारित होते हैं। अदालत यह निर्णय कर सकती है कि किस पक्ष के क्या सिविल अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं या कौन सा पक्ष दूसरे पक्ष को कितनी राशि देने के लिए जिम्मेदार है; पर वह शारीरिक दंड नहीं दे सकती। यदि किसी पक्ष से धनराशि वसूल करना संभव न हो तो आपराधिक कार्यवाही (Criminal proceeding) शुरू की जा सकती है और उसके तहत भारतीय दंड संहिता (IPC) के अनुसार दंड दिया जा सकता है।

वस्तुतः सिविल तथा आपराधिक मामलों में मूल अंतर इसी बिंदु पर देखा जाता है कि अदालत 'दंड' दे रही है या एक पक्ष से दूसरे पक्ष को 'आर्थिक क्षतिपूर्ति' (Economic Compensation) दिला रही है।

- (ii) आपराधिक मामलों में सामान्यतः अभियुक्त (Accused) के खिलाफ राज्य स्वयं मुकदमा लड़ता है। राज्य की ओर से मुकदमा लड़ने वाले वकील को 'लोक अभियोजक' (Public Prosecutor) कहा जाता है। पीड़ित (Victim) पक्ष को इसके लिए कोई खर्च नहीं उठाना होता है।

दूसरी ओर, सिविल मामलों में दो प्राइवेट पक्षकार (Private parties) होते हैं जो आपसी विवाद के समाधान के लिए अदालत जाते हैं। कभी-कभी राज्य भी दोनों में से एक पक्षकार हो सकता है या दोनों पक्षकार राज्य के विभिन्न विभाग भी हो सकते हैं; पर यहाँ वे विरोधी पक्षकारों की तरह मुकदमा लड़ते हैं, समाज के प्रतिनिधि की तरह नहीं। शिकायत करने वाले पक्ष को वादी (Plaintiff) या प्रार्थी (Petitioner) कहते हैं जबकि दूसरे पक्ष को बचाव पक्ष (Defendant) या प्रतिवादी (Respondent)।

- (iii) आपराधिक मामलों की प्रक्रिया को 'अभियोजन' (Prosecution) कहा जाता है। यह पूरी कार्यवाही 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' (Criminal Procedure Code, 1973) के प्रावधानों के अनुसार चलती है। न्यायालय की अधिकारिता भी इसी अधिनियम से निर्धारित होती है। इसके अलावा, साक्ष्यों/गवाहों आदि से जुड़े पक्षों के लिए 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872' (Indian Evidence Act, 1872) के प्रावधानों का भी ध्यान रखना जरूरी होता है।

सिविल वादों (Civil Suits) को कार्यवाही 'सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908' (Civil Procedure Code, 1908) के प्रावधानों के अनुसार संचालित होती है। सिविल न्यायालयों की अधिकारिता संघ व राज्यों के अधिनियमों से तय होती है। 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872' के प्रावधानों का प्रयोग इन मामलों में भी किया जाना जरूरी है।

आपराधिक मामले (Criminal Cases)

1860 ई. में 'भारतीय दंड संहिता' (Indian Penal Code) बनाई गई जिसमें पहली बार अपराधों तथा उनके लिए दिए जाने वाले दंडों का स्पष्ट निर्धारण किया गया। साधारणतः आपराधिक मामलों का संबंध उन्हीं कृत्यों से होता है जो 'भारतीय दंड संहिता' में 'अपराध' घोषित किए गए हैं। कुछ कृत्य ऐसे भी हैं जो संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए अधिनियमों में अपराध घोषित किए गए हैं।

आपराधिक मामलों से जुड़े प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं-

(i) अपराधों का वर्गीकरण (Classification of Offences)

'भारतीय दंड संहिता (1860)' तथा 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' में अपराधों को कुछ वर्गों में बांटा गया है। अपराध के वर्गीकरण से ही तय होता है कि उसके विचारण की प्रक्रिया किस प्रकार चलेगी। अपराधों के प्रमुख वर्ग निम्नलिखित हैं-

(क) जमानती (Bailable) तथा गैर जमानती (Non-Bailable) अपराध

यह अपराधों का सर्वाधिक प्रचलित वर्गीकरण है। जमानती अपराध वे हैं जिनमें पुलिस के जांच अधिकारी (Investigation officer) के लिए अनिवार्य होता है कि यदि अभियुक्त (Accused) अपनी गिरफ्तारी के बाद पर्याप्त जमानत (Surety) तथा अन्य शर्तें पूरी कर देता है तो वह उसे मुक्त (Release) कर दे। प्रायः मामूली तथा असंज्ञेय (Non-Cognizable) अपराधों को जमानती अपराधों की श्रेणी में रखा जाता है, जिनमें अधिकतम सजा 3 वर्ष के कारावास से कम होती है।

गैर-जमानती (Non-bailable) अपराध प्रायः गंभीर किस्म के होते हैं। इनमें अभियुक्त को जमानत दी जानी है या नहीं, यह पुलिस अधिकारी तय नहीं कर सकते। गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर पुलिस अभियुक्त को निकटतम न्यायिक दंडाधिकारी (Judicial Magistrate) के समक्ष प्रस्तुत करती है। दंडाधिकारी तय करता है कि अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाए या नहीं?

(ख) शमनीय (Compoundable) तथा गैर-शमनीय (Non-Compoundable) अपराध

जिन मामलों को आपसी समझौते से निपटाने की छूट दी गई है, उन्हें शमनीय (Compoundable) अपराध कहा जाता है। इनमें प्रायः अभियुक्त पीड़ित-पक्ष को आर्थिक क्षतिपूर्ति देकर समझौता कर लेता है। शमनीय अपराधों की सूची 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' में दी गई है। उदाहरण के लिए, मोटर दुर्घटनाओं से जुड़े मामले प्रायः शमनीय होते हैं।

गंभीर तथा असंज्ञेय (Cognizable) अपराध प्रायः अशमनीय (Non-Compoundable) होते हैं। ऐसे मामलों में दोनों पक्ष कोई समझौता नहीं कर सकते, न ही इनमें अभियुक्त को शिकायत वापस लेने का अधिकार होता है। इन मामलों में विचारण (Trial) पूरा करना जरूरी होता है तथा अदालत के अंतिम फैसले (Verdict) के अनुसार ही मामला निपटाया जाता है। आजकल, वंचित वर्गों जैसे महिला, अनुसूचित जाति व जनजाति के सदस्यों के प्रति किए गए अपराधों को भी इस वर्ग में रखा जाता है।

(ग) संज्ञेय (Cognizable) तथा असंज्ञेय (Non-Cognizable) अपराध

इस वर्गीकरण का संबंध भी अपराध की गंभीरता से है। प्रायः गंभीर अपराध संज्ञेय (Cognizable) होते हैं जबकि कम गंभीर या मामूली अपराध असंज्ञेय (Non-Cognizable) होते हैं।

संज्ञेय अपराधों की प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR- First Information Report) पुलिस अधिकारी स्वतः दर्ज कर सकते हैं, जांच (Investigation) भी शुरू कर सकते हैं तथा अभियुक्त को बिना वारंट के गिरफ्तार भी कर सकते हैं। इन कार्यवाहियों के लिए उन्हें न्यायाधीश की अनुमति की जरूरत नहीं होती। हत्या, चोरी, डकैती, बलात्कार आदि मामले इसी वर्ग में शामिल हैं।

(ii) दंड के प्रकार (Types of Sentences)

भारतीय दंड संहिता के अनुसार, यदि किसी अपराधिक मामले में अभियुक्त (Accused) का दोष सिद्ध (Conviction) हो जाता है तो उसे निम्नलिखित 4 में से कोई एक या एकाधिक दंड दिए जाते हैं-

- (क) मृत्युदंड (Death Sentence),
- (ख) विभिन्न अवधियों के लिए कारावास (Imprisonment), जिनमें आजीवन कारावास या उग्रकैद (Life imprisonment) भी शामिल है। कारावास दो प्रकार के होते हैं-
 - (अ) सश्रम/कठोर कारावास अथवा कैद-ए-बामशबकत (Rigorous imprisonment), जिसमें कैदी को कारावास में रहने के साथ-साथ कठोर श्रम भी करना होता है;
 - (ब) साधारण कारावास (Simple imprisonment), जिसमें कैदी को श्रम नहीं करना होता और यदि वह स्वच्छ से श्रम करे तो उसके बदले उसे भुगतान किया जाता है;
- (ग) संपत्ति को जब्त (Forfeit) करना,
- (घ) आर्थिक जुर्माने (Fines) लगाना।

क्रमिक तथा सहवर्ती दंड (Consecutive and Concurrent Sentences)

यदि किसी व्यक्ति को एक से ज्यादा अपराधों में शामिल होने के आधार पर एक विचारण (Trial) में कारावास के एकाधिक दंड दिए जाते हैं तो वे दो प्रकार से दिए जा सकते हैं- (i) क्रमिक दंड (Consecutive Sentences), तथा (ii) सहवर्ती दंड (Concurrent sentences)।

क्रमिक दंडों (Consecutive sentences) का अर्थ है कि सभी दंड एक के बाद एक के क्रम में दिए जाएंगे। उदाहरण के लिए, यदि किसी अपराधी को 5, 4 तथा 3 वर्षों के कारावास के तीन दंड दिए गए हैं तो क्रमिक रूप से दिए जाने पर वे कुल 12 वर्षों के कारावास के बराबर हो जाएंगे।

दूसरी ओर, सहवर्ती दंडों (Concurrent Sentences) का अर्थ है कि सभी दंड साथ-साथ शुरू हो जाएंगे तथा एक साथ चलेंगे। ऐसी स्थिति में व्यवहारतः जो दंड सबसे बड़ा होता है, वही 'कुल दंड' के बराबर हो जाता है क्योंकि बाकी दंड उसी दौरान खत्म हो जाते हैं। उपरोक्त उदाहरण में सहवर्ती दंड की स्थिति में 5 वर्षों की ही कैद होगी।

यदि निर्णय में न्यायाधीश स्वयं घोषित कर दे कि सभी दंड साथ-साथ अर्थात् सहवर्ती (Concurrent) रूप में चलेंगे तो ठीक; नहीं तो सभी दंड क्रमिक (Consecutive) रूप में ही दिए जाते हैं।

सिविल मामले (Civil Cases)

सिविल मामलों को 'सिविल वाद' (Civil Suit) कहते हैं। ये दो या अधिक पक्षकारों (Parties) के आपसी विवादों से संबंधित होते हैं। ये दोनों पक्ष 'निजी पक्षकार' (Private Parties) भी हो सकते हैं तथा ऐसा भी हो सकता है कि इन दोनों में से एक ओर सरकार या कोई सरकारी विभाग हो। दो सरकारी प्राधिकारियों/विभागों के बीच भी सिविल वाद हो सकता है। कोई भी 'विधिक व्यक्ति' (Legal person) सिविल वाद का पक्षकार बनने का पात्र होता है। 'विधिक व्यक्ति' की धारणा में संस्थाएँ, समितियाँ आदि शामिल हैं।

किसी सिविल मामले में एक पक्ष शिकायत (Plaint) या याचिका (Petition) दाखिल करता है। इस पक्ष को 'शिकायतकर्ता' या 'वादी' (Plaintiff) या 'प्रार्थी/याची' (Petitioner) कहा जाता है। दूसरा पक्ष, जिसके खिलाफ शिकायत की जाती है, को जवाब देना होता है तथा अपना बचाव करना होता है। इसे 'प्रतिवादी' (Respondent) या 'बचाव पक्ष' (Defendant) कहा जाता है।

न्यायाधीशों की पीठें (Benches of Judges)

(iv) **संविधान पीठ (Constitutional Bench)**— इसका संबंध सिर्फ सर्वोच्च न्यायालय से है। इसमें 5 या अधिक न्यायाधीश बैठते हैं। जिन मामलों में संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित होता है या राष्ट्रपति के प्रश्न (अनुच्छेद 143) पर सलाह देनी होती है, उनमें संविधान पीठ के बैठने की माध्यता है।

पीठ का निर्णय न्यायाधीशों के बहुमत से तय होता है।

पीठों का दूसरा वर्गीकरण उनके स्थायित्व के आधार पर किया जाता है। इस दृष्टि से पीठें दो प्रकार की होती हैं— स्थायी पीठें (Permanent Benches) तथा भ्रमणकारी पीठें (Circuit Benches)। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, स्थायी पीठें एक स्थान पर निरंतर बनी रहती हैं जबकि भ्रमणकारी पीठें विशेष कार्य दिवसों पर किसी स्थान विशेष पर कार्य करती हैं। स्थायी पीठें भी दो प्रकार की हो सकती हैं— प्रधान पीठ (Main Bench) तथा अन्य पीठें (Other benches)। यदि किसी उच्च न्यायालय या अधिकरण की एक से अधिक स्थायी पीठें होती हैं तो उसकी प्रमुख पीठ को 'प्रधान पीठ' (Main Bench) कहते हैं जबकि शेष पीठों को अन्य पीठ। उदाहरण के लिए, इलाहाबाद पीठ उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालय की 'प्रधान पीठ' है जबकि लखनऊ पीठ 'अन्य पीठ' की स्थिति में है।

न्यायालयों के अधिवक्ता (Advocates of Courts)

अधिवक्ताओं का वर्गीकरण (Classification of Advocates)

भारत के न्यायालयों में कार्यरत अधिवक्ताओं या वकीलों को साधारणतः निम्नलिखित 3 वर्गों में बाँटा जाता है—

- (i) **वरिष्ठ अधिवक्ता (Senior Advocates)**— ये सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के वे वकील हैं जिन्हें संविधान का विशिष्ट ज्ञान है। न्यायालय ऐसे कुछ वकीलों को, जो उसकी राय में पारंगत विधिवेत्ता (Distinguished jurist) हैं तथा जो अधिवक्ता परिषद (Bar Council) के सदस्य भी हैं, को उनकी सहमति से वरिष्ठ अधिवक्ता नियुक्त कर सकता है।
- (ii) **ऐडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड (Advocates on Record)**— ये वे वकील हैं जो सर्वोच्च न्यायालय (तथा कुछ उच्च न्यायालयों) में कोई याचिका दायर कर सकते हैं तथा न्यायालय के समक्ष कोई रिकॉर्ड पेश कर सकते हैं। 'ऐडवोकेट ऑन रिकॉर्ड' बनने के लिए एक परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता है। यह परीक्षा वही वकील दे सकते हैं जो किसी राज्य की अधिवक्ता परिषद (Bar Council) में कम से कम 5 वर्षों से पंजीकृत हैं और 1 वर्ष का प्रशिक्षण पूरा कर चुके हैं। सर्वोच्च न्यायालय के अधिलेखों में किसी मुकदमे के निर्णय में उन्हीं वकीलों का नाम दर्ज होता है जो 'ऐडवोकेट ऑन रिकॉर्ड' होते हैं तथा जिनके नाम से मुकदमा दायर किया जाता है।
- (iii) **अन्य अधिवक्ता (Other Advocates)**— ये वे वकील हैं जिनका नाम किसी न किसी राज्य की अधिवक्ता परिषद (State Bar Council) में 'अधिवक्ता अधिनियम, 1961' (Advocates Act, 1961) के तहत दर्ज है। इन्हें अधिकार है कि वे भारत की किसी भी अदालत या अधिकरण या प्राधिकरण (Authority) में कार्य (Practice) कर सकते हैं।

अन्य वर्गीकरण (Other Classification)

उपरोक्त वर्गीकरण के अलावा भी कुछ विशेष पदनाम हैं जो कुछ अधिवक्ताओं के लिए प्रयुक्त होते हैं, जैसे—

- (i) **ऐमिकस क्यूरिए (Amicus Curiae)**: यह एक लैटिन शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है— 'न्यायालय का मित्र' (Friend of the court)। कभी-कभी न्यायालय किसी मुकदमे में अपनी सहायता के लिए किसी अधिवक्ता को नियुक्त करता है जो मुकदमे से जुड़े तथ्यों या कानूनी बारीकियों के संबंध में न्यायालय की सहायता करता है। इस अधिवक्ता को ही 'ऐमिकस क्यूरिए' कहा जाता है। यह किसी पक्षकार के प्रति नहीं, सिर्फ न्यायालय के प्रति उत्तरदायी होता है। उसके द्वारा दी गई सूचनाओं और राय का प्रयोग किया जाना है या नहीं, यह न्यायालय तय करता है।
- (ii) **प्लीडर (Pleader)**: यह अधिवक्ताओं का वह वर्ग है जिसकी विशेषज्ञता याचिका (Pleading) तैयार करने में होती है। अब यह वर्गीकरण ज्यादा प्रचलित नहीं रहा है।
- (iii) **सोलिसिटर (Solicitor)**: यह अधिवक्ताओं का वह वर्ग है जो मुचक्किलों (Clients) के साथ सीधी बातचीत में शामिल होता है।
- (iv) **बैरिस्टर (Barrister)**: यह अधिवक्ताओं का वह वर्ग है जो विधि की विशेषज्ञता के लिए जाना जाता है। 'बैरिस्टरों' को सम्मान से 'बैरिस्टर-एट-लॉ' (Barrister-at-Law) या 'बार-एट-लॉ' (Bar-at-Law) भी कहा जाता है।

पर प्रयुक्त किया जाता है। अधिवक्ताओं को ही कानूनी क्षेत्र में काम करने के कारण कानूनगो या 'लॉयर' (Lawyer) भी कहते हैं।

- (vii) लोक अभियोजक (Public Prosecutor): सरकार द्वारा नियुक्त वे अधिवक्ता जो आपराधिक मामलों में पीड़ित पक्ष (Victim) की ओर से मुकदमा लड़ते हैं।

भारतीय विधिक सेवा (Indian Legal Service)

सरकारी अधिवक्ताओं की सेवा-शर्तें इतनी बेहतर नहीं हैं कि विधि के श्रेष्ठ विद्यार्थियों को इस सेवा के प्रति आकर्षित किया जा सके। इसलिए, सरकार को या तो कम गुणवत्ता वाले अधिवक्ताओं से काम लेना पड़ता है या अच्छे अधिवक्ताओं की सेवाएँ बाज़ार मूल्य पर लेनी पड़ती हैं जो कि बहुत महंगी होती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए कई कानूनविद 'भारतीय विधिक सेवा' (Indian Legal Service) का विकल्प प्रस्तुत करते हैं। यून, यह सेवा अभी भी विद्यमान है, पर इसका ढाँचा अव्यवस्थित तथा ढीला-ढाला है। 2010 में केंद्र सरकार ने घोषणा की है कि वह इसे प्रथम श्रेणी की सिविल सेवाओं के समकक्ष लाने की योजना बना रही है।

प्रस्तावित ढाँचे के अनुसार 'भारतीय विधिक सेवा' (Indian Legal Service) के लिए प्रतिवर्ष राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा आयोजित की जाएगी जिसमें चुने गए अधिवक्ताओं को दो वर्षों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए 'राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल' या किसी अन्य संस्थान में भेजा जाएगा। दो वर्षों के सघन प्रशिक्षण के बाद उन्हें जिला अदालतों, उच्च न्यायालयों, केंद्र सरकार के विभागों आदि में नियुक्त किया जाएगा। इन अधिकारियों की सेवा शर्तें प्रथम श्रेणी के सिविल सेवकों के समान रखी जाएंगी। इतना ही नहीं, इन अधिकारियों को यह विकल्प भी मिलेगा कि वे अपनी सेवा के दौरान न्यायाधीश बनने के लिए परीक्षा दे सकें और चाहें तो कुछ वर्षों तक न्यायाधीश के पद पर रहने के बाद वापस सेवा में आ जाएँ। वे उच्च या सर्वोच्च न्यायालय में भी न्यायाधीश बनने के लिए अर्ह होंगे। कुछ चुनिंदा अधिकारियों को सरकारी अनुदान पर विधि के श्रेष्ठतम विदेशी विश्वविद्यालयों में उच्चतर शिक्षा के लिए भेजे जाने की भी योजना है।

अगर 'विधि एवं न्याय मंत्रालय' सचमुच इस योजना को अमल में ला पाता है तो न सिर्फ बहुत से अधिवक्ताओं को एक बेहतर विकल्प मिलेगा, बल्कि सरकारी विभागों, लोक-उपक्रमों (Public Undertakings) आदि का कानूनी पक्ष भी न्यायालयों में उचित तरीके से रखा जा सकेगा जिससे सरकार की बहुत सी अनावश्यक हानि रुक जाएगी।

न्यायालयों की भाषा (Language of Courts)

संविधान के अनुच्छेद 348 में सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा/भाषाओं के संबंध में प्रावधान दिए गए हैं।

जहाँ तक सर्वोच्च न्यायालय का प्रश्न है, इसमें साफ तौर पर कहा गया है कि इसकी भाषा अंग्रेज़ी होगी। सर्वोच्च न्यायालय की सारी कार्यवाहियाँ तथा उसके निर्णय, आदेश, निर्देश आदि सिर्फ अंग्रेज़ी में हो सकते हैं। संविधान के निर्माण से अभी तक इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

उच्च न्यायालयों के संबंध में भी संविधान यही कहता है कि उनमें अंग्रेज़ी का प्रयोग किया जाएगा; पर उनके संबंध में छूट दी गई है कि यदि किसी राज्य का राज्यपाल चाहे तो वह राष्ट्रपति की पूर्व-अनुमति से हिंदी या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली किसी अन्य भाषा को उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों हेतु प्राधिकृत कर सकेगा। साथ में, यह स्पष्टीकरण दिया गया है कि यह छूट किसी निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगी।

अभी तक 5 राज्यों के उच्च न्यायालयों को अंग्रेज़ी से इतर किसी भाषा में काम करने की अनुमति दी गई है। बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में हिंदी में कार्यवाहियाँ भी हो रही हैं तथा निर्णय आदि भी दिए जा रहे हैं। पाँचवा राज्य तमिलनाडु है जिसने मद्रास उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों तथा निर्णयों आदि के लिए तमिल का प्रयोग प्राधिकृत करने का निवेदन किया था। 2010 में मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने वकीलों को तमिल में कार्यवाही चलाने की अनुमति दे दी है। शेष राज्यों के उच्च न्यायालयों में अभी अंग्रेज़ी में ही कार्य किया जाता है।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for Practice)

1. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) उच्च न्यायालयों को केन्द्र-रुज्य विवादों या विभिन्न राज्यों के आपसी विवादों पर अधिकारिता प्राप्त नहीं है।
- (2) उच्च न्यायालय न्यायिक दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय के अधीन होते हैं किन्तु प्रशासनिक दृष्टि से वे स्वतंत्र हैं।
- (3) उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय को सम्मिलित रूप से 'उच्चतर न्यायपालिका' कहा जाता है।
- (4) सेना न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा किए जाते हैं।

2. निम्नलिखित में कौन-से कार्य सर्वोच्च न्यायालय के हैं?

- (i) नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करना।
- (ii) संविधान की अंतिम व्याख्या करना।
- (iii) सिविल व आपराधिक मामलों में अपीलों की अंतिम सुनवाई करना।

कूट -

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

3. सिविल तथा आपराधिक मामलों के संदर्भ में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) आपराधिक मामलों में न्यायालय भारतीय दंड संहिता के अनुसार दोषीसिद्ध अपराधी को भृत्यदंड, कारावास, संपत्ति को जब्त करना या आर्थिक जुर्माना आदि दंड देता है जबकि सिविल मामलों में ऐसा दण्ड नहीं दिया जाता है।
- (ii) सिविल मामलों के तहत यदि किसी पक्ष से धनराशि वसूल करना संभव न हो तो आपराधिक कार्यवाही शुरू की जा सकती है और उसके तहत भारतीय दंड संहिता के अनुसार दंड दिया जा सकता है।
- (iii) आपराधिक मामलों में सामान्यतः अभियुक्त के खिलाफ राज्य स्वयं मुकदमा लड़ता है जबकि सिविल मामलों में दो प्राइवेट पक्षकार होते हैं जो आपसी विवाद के समाधान के लिए अदालत जाते हैं।
- (iv) अधीनस्थ न्यायपालिका में दोनों मामलों में न्यायालय प्रायः अलग-अलग होते हैं जबकि उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालय दोनों तरह के मामलों की अपीलें सुनते हैं।

कूट -

- (1) (i) और (ii) (2) (i), (ii) और (iv)
- (3) (ii), (iii) और (iv) (4) उपरोक्त सभी।

4. सूची-I को सूची-II से सुमेलित कीजिए।

सूची-I

सूची-II

A. शमनीय अपराध	(i) कार्यवाहियों के लिए पुलिस को न्यायाधीश की अनुमति की आवश्यकता नहीं।
B. अशमनीय अपराध	(ii) बिना वारंट के अभियुक्त की गिरफ्तारी नहीं।
C. असंज्ञेय अपराध	(iii) मामले को आपसी समझौते से निपटाने की छूट।
D. संज्ञेय अपराध	(iv) दोनों पक्ष कोई समझौता नहीं कर सकते और न ही इनमें अभियुक्त को शिकायत वापस लेने का अधिकार होता है।

कूट -

	A	B	C	D
(1)	(iii)	(iv)	(ii)	(i)
(2)	(iv)	(iii)	(i)	(ii)
(3)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(4)	(ii)	(iv)	(i)	(iii)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) जमानती अपराध में अभियुक्त को जमानत दी जाती है या नहीं, यह पुलिस अधिकारी तय नहीं कर सकते, बल्कि दंडाधिकारी द्वारा तय किये जाते हैं।
- (ii) प्रायः मामूली तथा असंज्ञेय अपराधों को गैर-जमानती अपराध में रखा जाता है, जिनमें अधिकतम सजा 3 वर्ष के कारावास से कम होती है।

उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

6. किसी दोष सिद्ध अपराधी को न्यायालय द्वारा 5, 4 तथा 3 वर्षों के सहवर्ती दंड दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में अपराधी की अधिकतम सजा होगी-

- (1) 12 वर्ष (2) 5 वर्ष
- (3) 9 वर्ष (4) 8 वर्ष

7. निम्नलिखित में कौन-सा कथन सत्य है?

- (1) यदि निर्णय में न्यायाधीश दंड की क्रमिक तथा सहवर्ती प्रकृति की घोषणा न करे तो किसी अपराधी को दिए गए विभिन्न दंड सहवर्ती रूप में ही दिए जाते हैं।

(2) सिविल वाद का पक्षकार बनने का पात्र प्रत्येक

- (3) न्यायाधीशों की खंड पीठ में 5 या अधिक न्यायाधीश बैठते हैं।
- (4) न्यायाधीशों के एकल पीठ को 'चेंबर जज' भी कहा जाता है।
8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
- (i) जिन मामलों में संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित होता है या राष्ट्रपति के प्रश्न पर सलाह देनी होती है, उनमें संविधान पीठ के बैठने की बाध्यता है।
- (ii) न्यायाधीशों के संविधान पीठ का संबंध सिर्फ सर्वोच्च न्यायालय से होता है।
- उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं—
- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)
9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
- (i) यदि किसी उच्च न्यायालय या अधिकरण की एक से अधिक स्थायी पीठें होती हैं तो उसकी प्रमुख पीठ को 'प्रधान पीठ' जबकि शेष पीठों को अन्य पीठ कहा जाता है।
- (ii) इलाहाबाद पीठ उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालय की 'प्रधान पीठ' जबकि लखनऊ पीठ 'अन्य पीठ' की स्थिति में है।
- उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं—
- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)
10. वे वकील, जो सर्वोच्च न्यायालय तथा कुछ न्यायालयों में कोई याचिका दायर कर सकते हैं तथा जिनके नाम से सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर किया जाता है, कहलाते हैं—
- (1) ऐमिकस बयूरिए (2) प्लीडर
(3) काउन्सल (4) ऐडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड
11. निम्नलिखित कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?
- (i) ऐमिकस बयूरिए किसी पक्षकार के प्रति नहीं बल्कि सिर्फ न्यायालय के प्रति उत्तरदायी होता है।
- (ii) 'सोलिसिटर' अधिवक्ताओं का वह वर्ग है जो मुकदमों के साथ सीधी बातचीत में शामिल होता है।
- (iii) वरिष्ठ अधिवक्ता सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के वकील होते हैं जिन्हें संविधान का विशिष्ट ज्ञान होता है।
12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
- (i) भारतीय विधिक सेवा परीक्षा संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाती है।
- (ii) भारतीय विधिक सेवा के तहत चुने गए अभ्यर्थियों को प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी भेजा जाता है।
- उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं—
- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)
13. भारतीय विधिक सेवा के प्रस्तावित ढाँचे के संदर्भ में कौन-से कथन सुमेलित हैं?
- (i) इसके लिए प्रतिवर्ष राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा आयोजित की जाएगी।
- (ii) चुने गए अधिवक्ताओं को दो वर्षों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए विभिन्न संस्थानों में भेजा जाएगा।
- (iii) इन अधिकारियों की सेवा शर्तें प्रथम श्रेणी के सिविल सेवकों के समान रखी जाएगी।
- (iv) वे सर्वोच्च या उच्च न्यायालय में भी न्यायाधीश बनने के लिए अर्ह होंगे।
- कूट—
- (1) (i) और (ii) (2) (i), (ii) और (iii)
(3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)
14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
- (i) सर्वोच्च न्यायालय की सारी कार्यवाहियाँ तथा निर्णय, आदेश, निर्देश आदि अंग्रेजी भाषा में ही होने का प्रावधान है।
- (ii) वर्तमान में 5 राज्यों के उच्च न्यायालयों को अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषा में काम करने की अनुमति दी गई है।
- उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं—
- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)
15. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—
- (i) अधीनस्थ न्यायपालिका की भाषा के संबंध में संविधान में कोई उपबंध नहीं किया गया है।
- (ii) यदि किसी अधीनस्थ न्यायालय से कोई अपील उच्च न्यायालय जाती है और यदि उस राज्य के उच्च न्यायालय में सिर्फ अंग्रेजी में कार्य होता है तो मामले से जुड़े कागजातों, निर्णयों आदि को अंग्रेजी में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।
- उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं—

1993 में 'न्यायाधीशों वाले दूसरे निर्णय' (अर्थात् 'सुप्रीम कोर्ट ऐडवोकेट्स बनाम भारत संघ') में सर्वोच्च न्यायालय की राय बदल गई। इसमें 9 न्यायाधीशों की पीठ ने 7:2 के बहुमत से निर्धारित किया कि अनुच्छेद 124 के तहत न्यायाधीशों द्वारा दिया गया

उसे मानने की बाध्यता है? राष्ट्रपति के इस प्रश्न पर सलाह देने के लिए 9 न्यायाधीशों की संविधान पीठ बैठी और उसने सर्वसम्मति से (अर्थात् 9:0 के बहुमत से) कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किए। वर्तमान में इन्हीं सिद्धांतों के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं—

- (i) अनुच्छेद 124(2) में वर्णित 'परामर्श' (Consultation) का तात्पर्य सिर्फ 'एक व्यक्ति' के परामर्श से नहीं बल्कि 'अनेक न्यायाधीशों' (Plurality of Judges) के परामर्श से है।
- (ii) मुख्य न्यायमूर्ति को सर्वोच्च न्यायालय के 4 वरिष्ठतम न्यायाधीशों के मंडल (Collegium) से परामर्श करके ही राष्ट्रपति के पास सिफारिश भेजनी चाहिए। न्यायाधीशों के इस मंडल (Collegium) में भावी मुख्य न्यायमूर्ति भी अनिवार्यतः शामिल होना चाहिए।
- (iii) न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए इस मंडल (Collegium) में 'आम सहमति' होनी चाहिए, निर्णय सिर्फ 'बहुमत' से नहीं होना चाहिए। मुख्य न्यायमूर्ति की राय का महत्व शेष न्यायाधीशों की राय के बराबर ही होगा, उससे ज्यादा नहीं। यदि 5 में से 2 न्यायाधीश भी किसी व्यक्ति की नियुक्ति का विरोध करेंगे तो उसके नाम की सिफारिश राष्ट्रपति को नहीं भेजी जाएगी।
- (iv) परामर्श मंडल (Collegium) में शामिल सभी न्यायाधीशों की सलाह लिखित होनी चाहिए, मौखिक नहीं। मुख्य न्यायमूर्ति को अपनी सिफारिश के साथ-साथ अन्य न्यायाधीशों की लिखित सिफारिशें भी सरकार को भेजनी होंगी।
- (v) सरकार इस मंडल (Collegium) की सिफारिशें मानने को बाध्य है, किंतु यदि परामर्श संबंधी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है तो सरकार सिफारिशें मानने को बाध्य नहीं होगी।
- (vi) यदि सरकार सिफारिश किए गए किसी व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं नियुक्त करता है तो संबंध में मुख्य न्यायमूर्ति के पास कोई सूचना, तथ्य या सामग्री भेजनी होगी जिस पर कार्यवाही करने के लिए या मुख्य न्यायमूर्ति को परामर्श मंडल (Collegium) से विचार-विमर्श करवाया जाय।

राष्ट्रीय न्यायिक आयोग (National Judicial Commission)

ऑस्ट्रेलिया में न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानांतरण जैसे मामलों देखने के लिए राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की व्यवस्था है। 1982 में 'न्यायाधीशों की नियुक्ति, निलंबन और स्थानांतरण' में न्यायमूर्ति श्री पी. वी. राव ने सरकार को सलाह देकर भारत में भी उच्चतम न्यायापालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए ऐसी व्यवस्था आना चाहिए।

इस सुझाव को पारित करने पर यह आयोग न्यायपालिका को उच्चतम न्यायालय की नियुक्ति प्रक्रिया में राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। अब, 1993 के निर्णय और 1998 के परामर्श के निर्णयों से न्यायिक आयोग में संशोधन किया गया है। क्योंकि अब न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायाधीशों के ही हाथों में है जो न्यायिक सेवा आयोग (Judicial Service Commission) के सिद्धांतों के दृष्टि से उचित नहीं है।

वर्तमान में '98वें संविधान संशोधन विधेयक' संसद में प्लेबिलिट में जिसका विषय राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की स्थापना करना है। इस विधेयक के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं—

- (i) इसमें संविधान के भाग V में एक नया अध्याय 4(क) जोड़े जाने का प्रवधान है, जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक आयोग में संबंधित उपबंध होंगे।
- (ii) राष्ट्रीय न्यायिक आयोग में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे—(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, जो कि इस आयोग का अध्यक्ष होगा; (ख) सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश; (ग) केन्द्रीय विधि एवं न्याय मंत्री; तथा (घ) एक प्रतिष्ठित नागरिक (Eminent citizen), जिसे प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाएगा।
- (iii) आयोग के निम्नलिखित कार्य होंगे—
 - (क) सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को सिफारिश देना।
 - (ख) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानांतरण के संबंध में सिफारिशें देना।
 - (ग) उच्च न्यायपालिका के न्यायाधीशों के आचरण के संबंध में एक आचरण संहिता (Code of Ethics) का निर्माण करना।

मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति को लेकर प्रमुख सवाल यह है कि उसका चयन सिर्फ 'वरिष्ठता' (Seniority) के आधार पर होना चाहिए या 'योग्यता' (Ability) को प्राथमिकता मिलनी चाहिए? 1958 में विधि आयोग (Law Commission) ने अपनी 14वीं रिपोर्ट में सिफारिश दी कि मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति सिर्फ वरिष्ठता के आधार पर नहीं की जानी चाहिए, उसमें योग्यता का भी पहलू दिया जाना चाहिए; किंतु 1973 तक सभी मुख्य न्यायमूर्तियों की नियुक्ति वरिष्ठता के नियम के आधार पर ही होती रही।

1973 और 1977 में दो बार वरिष्ठता के नियम का उल्लंघन किया गया। 24 अप्रैल, 1973 को सर्वोच्च न्यायालय की 13 न्यायाधीशों की पीठ ने 7:6 के बहुमत से 'केशवानंद भारती मामले' का निर्णय सुनाया। मुख्य न्यायमूर्ति श्री एस.एम. सोकरो को उसी दिन सेवानिवृत्त होना था। उनके बाद वरिष्ठता क्रम में 3 ऐसे न्यायाधीश थे जिन्होंने केशवानंद मामले में 'संविधान के मूल ढाँचे' की धारणा का समर्थन किया था, जिससे सरकार उनसे नाफ़ज़ थी। ये 3 न्यायाधीश थे—श्री जे.एम. शेल्ड, श्री के.एस. हेगड़े तथा श्री ए.एन. ग्रोवर। श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार ने कठोर कदम उठाते हुए इन तीनों न्यायाधीशों की वरिष्ठता को लांघकर श्री ए.एन. रे को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त कर दिया।

1977 में जब जस्टिस ए.एन. रे सेवानिवृत्त हुए तो श्रीदत्तसिंह खन्ना वरिष्ठतम न्यायाधीश थे, किंतु श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार ने वरिष्ठता क्रम को लांघकर जस्टिस सुभाष दत्त को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया। क्योंकि 'बंदी प्रत्यक्षीकरण मामले' में उनके ह्रास दिए गए विसम्मत निर्णयों में सरकार का हाथ था।

1993 में 'न्यायाधारा' वाले दूसरे मामले का फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय को 9 सदस्यों की संविधान पीठ ने निर्धारित किया कि मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति परिष्ठातृ प्रक्रिया के आधार पर ही की जाएगी। इसके बाद से परिष्ठातृ प्रक्रिया का व्यवस्था निरंतर लागू है। जब तक इस संविधान पीठ इस निर्णय को पलटकर कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं तब तक इस प्रक्रिया को लागू जा सकता है।

स्पष्ट है कि वर्तमान में मुझे सामग्री को नियुक्ति के लिए बरिष्ठता को सिद्ध करने की जरूरत है। इसका ज़ाह्य यह है कि न्यायाधीशों में से मुझे को लेकर कोई खिन्नता नहीं होती है। अतिरिक्त बरिष्ठता के राजनीतिक हस्तक्षेप का सम्भावना पैदा होती है। पर, इसका पुनर्धानन के लिए कभी-कभी न्यायाधीशों को राजीनामा देना पड़ता है। यद्यपि न्यायमूर्ति वर्ग में न्यायिक प्रणाली के इसकी वरिष्ठता कम थी। समग्र रूप से वर्तमान व्यवस्था को सर्वोत्तम माना जा सकता है।

न्यायाधीशों का कार्यकाल (Tenure of Judges)

अनुच्छेद 124(2) में ही इस बात का उल्लेख किया गया है कि न्यायाधीशों के न्यायाधीशों का कार्यकाल कितना होगा? न्यायाधीशों के संबंध में सिर्फ इतनी व्यवस्था है कि वे 65 वर्ष की आयु तक अपना पद धारण कर सकते हैं।

सविधान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की न्यूनतम आयु क्या है? साधारणतः 55 वर्षों की आयु के बाद ही सर्वोच्च न्यायालय में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की जाती है। यह प्रावधान मुख्य न्यायमूर्तियों के सम्बन्ध में पारित संकल्प (Resolution) के अनुसार प्रचलन में है।

कभो-कभार इस प्रश्न पर मतभेद हो सकता है कि किसी न्यायाधीश की वास्तविक आयु कितनी है? इस समस्या का समाधान करने के लिए संसद ने '15वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1963' के द्वारा अनुच्छेद 124 [2(क)] जोड़ा है, जिसके अनुसार "सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की आयु ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसी रीति से अवधारित की जाएगी, जिसका संसद विधि द्वारा उपबन्ध करे।"

न्यायाधीशों की अर्हताएँ (Qualifications of Judges)

अनुच्छेद 124(3) में बताया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए किसी व्यक्ति को कौन सी अर्हताएँ पूरी करनी होती हैं। ये अर्हताएँ दो हैं—

- (i) वह भारत का नागरिक हो;
- (ii) वह निम्नलिखित तीन में से किसी एक अर्हता को पूरा करता हो—
- (क) वह किसी उच्च न्यायालय या एकाधिक उच्च न्यायालयों में लगाकर कम से कम 5 वर्षों तक न्यायाधीश रहा हो;
- (ख) वह किसी उच्च न्यायालय या एकाधिक उच्च न्यायालयों में लगातार कम से कम 10 वर्षों तक वकील रहा हो। इस

(ग) वह राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता (Distinguished Jurist) हो।

न्यायाधीशों की शपथ (Oath of Judges)

अनुच्छेद 124(6) में बताया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने से पहले वह व्यक्ति भारत के राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष शपथ (oath) लेगा या प्रतिज्ञान (affirmation) करेगा। यह शपथ या प्रतिज्ञान उस प्रारूप के अनुसार होगा जो संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन हेतु दिया गया है। इस प्रारूप के तहत न्यायाधीश निम्नलिखित बातों की शपथ लेता है—

- मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा (faith) और निष्ठा (allegiance) रखूंगा;
- मैं भारत की प्रभुता (sovereignty) और अखंडता (integrity) अक्षुण्ण रखूंगा;
- मैं सम्यक् प्रकार से, श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय (fear) या पक्षपात (favour), अनुराग (affection) या द्वेष (ill-will) के बिना पालन करूंगा;
- मैं संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखूंगा।

ध्यातव्य है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए शपथ या प्रतिज्ञान का प्रारूप वही है जो भारत के नियंत्रक-प्रहालेखापरीक्षक (CAG) के लिए है। शेष पदों के लिए शपथ के अलग प्रारूप दिए गए हैं।

वेतन व कार्य शर्तें (Salary and Work Conditions)

अनुच्छेद 125(1) में न्यायाधीशों के वेतन का वर्चस्व को यह है कि इसमें कटौतियाँ न की जा सकें। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को वह वेतन दिया जाएगा जो संसद विधि द्वारा निर्धारित करे और जब तक संसद निर्धारित नहीं करती, तब तक संविधान की दूसरी अनुसूची में निर्दिष्ट वेतन दिया जाएगा। अनुच्छेद 125(2) में यही बात कहते मिलने वाले सभी विशेषाधिकारों, शर्तों, अवकाशों आदि के लिए कही गई है।

संसद ने समय-समय पर न्यायाधीशों के वेतन व सेवा शर्तों का निर्धारण किया है। 1999 में संशोधित नियमों (नं. 1, 2006 से लागू) के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 1 लाख रुपये प्रतिमाह तथा अन्य न्यायाधीशों को 90 हजार रुपये प्रतिमाह वेतन मिलता है। इसके अलावा उन्हें किराया मुक्त आवास, कार, निवृत्ति लाभ, पेंशन आदि भी मिलते हैं। संविधान तथा ऐसे अनेक अपेक्षाएँ हैं जो राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किया जाये। मुख्य न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति के बाद अपने अंतिम मासिक वेतन को 50 प्रतिशत राशि पेंशन के तौर पर प्राप्त होती है।

न्यायाधीशों के वेतन, भत्तों, अधिकार तथा कर्तव्यों का भी वेतन नियंत्रक या प्रहालेखापरीक्षक द्वारा अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इसका एक ही अपवाद है। यदि अनुच्छेद 100 के तहत वित्तीय आपातकाल (Financial Emergency) की घोषणा लागू हो तो उनके वेतन व भत्तों में कटौती की जा सकती है।

सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं एक मामले में तय किया है कि उसके न्यायाधीशों की आय अथवा वेतन में कटौत नहीं हो।

तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Ad-hoc Judges)

अनुच्छेद 127 में बताया गया है कि यदि कभी सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की गणपूर्ति (Quorum) न हो तो तदर्थ (Ad-hoc) आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है। ऐसा प्रायः तब होता है जब सर्वोच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश स्वास्थ्य या किसी अन्य कारण से अपना कार्य कर पाने की स्थिति में न हो। अनुच्छेद 127 के अनुसार ऐसी स्थिति में किसी उच्च न्यायालय के किसी ऐसे न्यायाधीश को सर्वोच्च न्यायालय की बैठकों में भाग लेने के लिए बुलाया जा सकता है जो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की अर्हताएँ पूरी करता है। सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति इस आशय से उस न्यायाधीश से लिखित अनुरोध कर सकता है किंतु यह अनुरोध करने से पूर्व उसे दो शर्तें पूरी करनी होंगी—

- उसे संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करना होगा; तथा
- उसे राष्ट्रपति से सहमति लेनी होगी।

ये दो शर्तें पूरी होने पर भारत का मुख्य न्यायमूर्ति ऐसा अनुरोध कर सकता है। गौरतलब है कि ऐसा न्यायाधीश जब तक सर्वोच्च न्यायालय की बैठकों में उपस्थित होगा, तब तक उसे वे सभी अधिकार, शक्तियाँ व विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को प्राप्त होते हैं।

सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की उपस्थिति (Attendance of Retired Judges)

अनुच्छेद 128 में बताया गया है कि आवश्यकता होने पर सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को भी सर्वोच्च न्यायालय की बैठकों में उपस्थित होने के लिए बुलाया जा सकता है। इस कार्य के लिए सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के अलावा उच्च न्यायालयों के उन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को भी बुलाया जा सकता है जो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की अर्हता रखते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से ऐसे न्यायाधीश से लिखित अनुरोध कर सकता है।

ज्ञातव्य है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति दो आधारों पर तदर्थ न्यायाधीशों से अलग होती है—

- (i) सेवानिवृत्त न्यायाधीश के मामले में जरूरी है कि वह मुख्य न्यायाधीश के अनुरोध के प्रति अपनी सहमति दे। तदर्थ न्यायाधीशों के मामले में ऐसी बाध्यता नहीं है।
- (ii) सेवानिवृत्त न्यायाधीश यदि सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश की भूमिका निभाता है तो भी वह तकनीकी तौर पर न्यायाधीश नहीं माना जाता; हालाँकि वह न्यायाधीशों को मिलने वाले सभी अधिकारों और विशेषाधिकारों का हकदार होता है। उसके वेतन और भत्ते राष्ट्रपति द्वारा तय किए जाते हैं। जरूरी नहीं है कि उसे अन्य न्यायाधीशों के बराबर वेतन मिले।

कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति (Appointment of Acting Chief Justice)

अनुच्छेद 126 में बताया गया है कि यदि कभी भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का पद रिक्त है या यदि मुख्य न्यायमूर्ति अनुपस्थिति या किसी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो तो सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से किसी को इस प्रयोजन के लिए नियुक्त कर दिया जा सकता है। नियुक्ति के तब तक लागू रहती है जब तक कि मुख्य न्यायमूर्ति पुनः अपने कर्तव्य ग्रहण न कर ले या नए मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति न हो जाए।

वस्तुतः 1993 के बाद इस प्रावधान का उपयोग नहीं हो रहा है। अब यह तय हो चुका है कि मुख्य न्यायमूर्ति का पद वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही मिलेगा। इसका व्यावहारिक अर्थ यह भी है कि यदि किसी न्यायाधीश को मुख्य न्यायमूर्ति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर पा रहा है तो वरिष्ठतम न्यायाधीश ही उसका स्थान लेगा।

सर्वोच्च न्यायालय का स्थान (Seat of Supreme Court)

अनुच्छेद 53 में बताया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय की बैठक दिल्ली में अथवा ऐसे अन्य स्थानों पर होगी जिन पर भारत का मुख्य न्यायमूर्ति अपनी बैठक के अनुयायियों के साथ समय-समय पर निवास करेगा।

स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय की बैठक दिल्ली में ही होनी चाहिए। यह भी जरूरी नहीं है कि सभी बैठकें एक ही स्थान पर हों। अनुच्छेद 53 की भांति प्रावधान के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों को भी बैठक में भाग ले सकते हैं अर्थात् कुछ उच्च न्यायालयों की तरह इसको भीट (Bench) के अंतर्गत व्यवस्थित किया जा सकता है। अनुसंधान आयोग (Law Commission) ने अपनी 229वीं रिपोर्ट (2009) में सुझाव दिया है कि सर्वोच्च न्यायालय को चार मुख्य संविधान पीठ (Constitution Bench) दिल्ली में से तथा उसका शेष कार्य 4 अपीलीय/कानूनी पीठों (Cassation Benches) कर जो दिल्ली, कोलकाता, मुंबई तथा चेन्नई या हैदराबाद से संचालित हों।

पर, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रायः इस विषय में अपनी अरुचि प्रदर्शित की है कि देश के विभिन्न कोनों में उसकी पीठें स्थापित हों। उसका तर्क यह रहा है कि ऐसा करने से न्यायालय की कार्यात्मक एकरूपता (Functional Integrity) सुरक्षित नहीं रहेगी। 2010 में मुख्य न्यायमूर्ति श्री के. जे. बालाकृष्णन ने पुनः दोहराया कि सर्वोच्च न्यायालय का विखंडन (Disintegration) करना ठीक नहीं होगा।

पद की रिक्ति (Vacancy of Office)

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद चार तरीकों से रिक्त हो सकता है—

- (i) यदि न्यायाधीश की आयु 65 वर्ष हो जाए तो वह सामान्य प्रक्रिया के अनुसार सेवानिवृत्त हो जाएगा।
- (ii) यदि 65 वर्ष की आयु से पूर्व ही उसकी भ्रष्टाचारिक एका हो जाए।

पिछले कुछ समय से यह सुझाव दिया जा रहा है कि न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष से बढ़ाकर 68 वर्ष कर दी जानी चाहिए। इसका कारण यह है कि सर्वोच्च न्यायालय में कई बार न्यायाधीशों को बहुत कम समय मिल पाता है और वे मामले को निर्णय के बिंदु तक नहीं पहुँचा पाते। बार-बार न्यायाधीशों के बदलते रहने से न्याय की प्रक्रिया भी बाधित होती है।

न्यायाधीशों को हटाए जाने की प्रक्रिया (Procedure of Removal of Judges)

अनुच्छेद 124(4) में न्यायाधीशों को हटाए जाने अर्थात् उनके महाभियोग की प्रक्रिया संक्षेप में बताई गई है। इसके अलावा, अनुच्छेद 124(5) में कहा गया है कि संसद विधि द्वारा न्यायाधीशों को हटाए जाने से संबंधित प्रक्रिया का उपबंध कर सकती है। संसद ने अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हुए 'न्यायाधीश (जॉच) अधिनियम, 1968' [Judges (Inquiry) act, 1968] पारित किया है। अनुच्छेद 124(4) तथा इस अधिनियम को मिलाकर पढ़ें तो महाभियोग की प्रक्रिया इस प्रकार है—

- (i) सबसे पहले संसद के किसी भी सदन में न्यायाधीश को हटाए जाने का प्रस्ताव पेश किया जाता है। शर्त यह है कि ऐसा प्रस्ताव लोकसभा में 100 सदस्यों या राज्यसभा में 50 सदस्यों के हस्ताक्षर के साथ ही अध्यक्ष या सभापति को दिया जा सकता है।
- (ii) अध्यक्ष या सभापति को निर्णय करना होता है कि प्रस्ताव स्वीकार किए जाने योग्य है या नहीं? इस संबंध में वह ऐसे व्यक्तियों से परामर्श कर सकता है जिन्हें वह इसके लिए ठीक समझे तथा उपयुक्त सामग्री तथा तथ्यों पर भी विचार कर सकता है। यदि वह तय करता है कि प्रस्ताव स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है तो प्रस्ताव वहीं खत्म हो जाता है।
- (iii) यदि अध्यक्ष या सभापति प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है तो उसे तीन व्यक्तियों की समिति गठित करनी होती है जिनमें एक सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति या अन्य न्यायाधीश, सरल प्रसंग में न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति तथा तीसरा एक पारंपरिक विधिवेत्ता (Distinguished jurist) होना चाहिए। इस समिति को निर्धारित काल में लिखित रिपोर्ट देनी होती है कि उक्त न्यायाधीश कदाचार (Misbehaviour) की दोषी या असमर्थता (Incapacity) से ग्रस्त है या नहीं।
- (iv) यदि समिति इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि न्यायाधीश न तो कदाचार का दोषी है और न ही असमर्थ तो यह प्रक्रिया यहीं समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि समिति इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि न्यायाधीश असमर्थता का दोषी है तो प्रस्ताव को महाभियोग की रिपोर्ट उसी सदन में पेश की जाती है जहाँ प्रस्ताव पेश हुआ था।
- (v) इस प्रस्ताव को पारित होने की शर्त है कि उसमें नौ सदस्य शामिल—अलग पारित करने वाली सदन में यह प्रस्ताव सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित नौ सदस्य के बहुमत के साथ पारित होना चाहिए।
- (vi) इसके बाद सदन सदन पारित किए गए प्रस्ताव को लोकसभा के सदन में पेश करता है तथा सर्वोच्च न्यायाधीश को पद से हटाए जाने का आदेश जारी करता है।
- (vii) अनुच्छेद 124(4) में कहा गया है कि यह प्रक्रिया दोहराई जा सकती है। हालाँकि सर्वोच्च न्यायालय ने 'बी. रामस्वामी' के मामले में निर्धारित किया कि न्यायाधीश के महाभियोग की प्रक्रिया के दौरान लोकसभा भंग हो जाती है तो भी महाभियोग का संकेतक व्यपगत (Lapse) नहीं होता है।

आज तक सर्वोच्च न्यायालय के सिर्फ एक न्यायाधीश के संबंध में महाभियोग का प्रस्ताव लाया गया है। ये न्यायाधीश श्री पी. एम. स्वामी थे। इस प्रस्ताव पर लोकसभा में मतदान हुआ, किंतु यह अपेक्षित बहुमत के अभाव में पारित न हो सका।

आचरण संबंधी अन्य मामले (Other issues related with behaviour)

न्यायाधीशों के आचरण से संबंधित जो मामले महाभियोग के स्तर के नहीं हैं, उनके लिए हमारा संविधान कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं करता। इस कमी को दूर करने के लिए पिछले दो दशकों से चर्चा चल रही है कि संविधान संशोधन या किसी अन्य अधिनियम के माध्यम से उपयुक्त उपबंध किए जाने चाहिए। राष्ट्रीय न्यायिक आयोग से संबंधित संविधान संशोधन विधेयक में तो ऐसे प्रावधान हैं ही, साथ ही एक दूसरा विधेयक भी पिछले कई वर्षों से चर्चा में है जिसे 'न्यायिक जवाबदेही विधेयक' (Judicial Accountability Bill) कहते हैं।

न्यायिक जवाबदेही विधेयक (Judicial Accountability Bill)

यह विधेयक 'न्यायाधीश (जॉच) अधिनियम, 1968' [Judges (Inquiry) act, 1968] के स्थान पर लागू किए जाने का प्रस्ताव है।

2012 में लोकसभा में पेश किए गए विधेयक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

- (i) विधेयक का मुख्य उद्देश्य है कि न्यायाधीशों के आचरण के संबंध में निर्धारित किया जाए और उन्हें निर्णय देने का समय

- (ii) इस विधेयक के अनुसार सभी न्यायाधीशों को अपनी संपत्तियों (Assets) व देयताओं (Liabilities) की घोषणा पद की शपथ लेने के 30 दिनों के भीतर करनी होगी। उन्हें अपने वैवाहिक जीवनसाथी (Spouse) तथा निर्भर बच्चों की संपत्तियाँ भी घोषित करनी होगी। वे जब तक सेवा में रहेंगे, तब तक हर वर्ष अपनी संपत्तियों और देयताओं की घोषणा करेंगे जिसे उस न्यायालय की वेबसाइट पर प्रदर्शित किया जाएगा। इसके अलावा, उन्हें अपने व्यक्तिगत आचरण के प्रति भी जवाबदेही बरतनी होगी। उदाहरण के लिए, 2012 के संशोधित विधेयक में न्यायाधीशों द्वारा अन्य संवैधानिक संस्थाओं का मज़ाक उड़ाने अर्थात् निंदा करने (Passing Judicial Strictures) को भी दुर्गचरण (Misconduct) घोषित किया गया है।
- (iii) इस विधेयक में तीन संस्थाएँ बनाने की व्यवस्था है जिनका संबंध न्यायाधीशों की शिकायतों की जाँच करने से है। ये संस्थाएँ हैं—

- (क) **राष्ट्रीय न्यायिक निगरानी समिति (National Judicial Oversight Committee)**— इसका अध्यक्ष भारत का कोई भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति होगा। शेष 4 सदस्यों में से एक सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश, एक किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, एक भारत का महान्यायवादी (Attorney General) तथा एक राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति (Eminent person) होगा। इस समिति के पास न्यायाधीशों के खिलाफ छोटी-मोटी कार्यवाहियाँ करने की शक्ति होगी तथा न्यायाधीशों को जाँच के मामले में जाँच कार्य की निगरानी (supervision) करने का अधिकार होगा।
- (ख) **शिकायत संवीक्षा पैनल (Complaints Scrutiny Panel)**— यह पैनल सर्वोच्च न्यायालय तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में अलग-अलग होगा। इसमें उसी न्यायालय के एक भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति तथा दो वर्तमान न्यायाधीश शामिल होंगे। इस पैनल का काम न्यायाधीशों के खिलाफ मिली शिकायतों का प्रारंभिक जाँच करना तथा यह निर्धारित करना होगा कि शिकायतों में सच्चाई (Merit) है या नहीं? यदि पैनल को गुनाह होता है कि शिकायत झूठी या निरर्थक (Frivolous) है तो वह न्यायाधीशों को 5 साल के लिए छोटी कार्यवाहियों से बचाए रखने के जुमाने तक की सज़ा दे सकता है।
- (ग) **जाँच समिति (Investigation Committee)**— इसका गठन शिकायतों का गंभीर जाँच पड़ताल के लिए किया जाएगा। यदि संवीक्षा पैनल (Scrutiny panel) सिफारिश करता है कि किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कोई शिकायत में सच्चाई होती है तो वह जिसके संबंध में गहन जाँच की जानी चाहिए तो 'निगरानी समिति' (Oversight Committee) द्वारा जाँच समिति (Investigation Committee) का गठन किया जाएगा। विधेयक में यह भी बताया गया है कि जाँच समिति के सदस्यों को न्यायाधीशों के गहन जाँच के आधार पर जाँच समिति (Investigation Committee) के विवेक पर कार्य करना होगा।

- (iv) विधेयक के अनुसार न्यायाधीशों के विरुद्ध शिकायतों को गंभीर जाँच करने के लिए निम्नलिखित होगी—

- (क) कोई भी व्यक्ति किसी भी न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत कर सकता है। शिकायतों को निम्नलिखित प्रकार से संभाला जाएगा—
- (ख) यदि शिकायत किसी साधारण नागरिक द्वारा की गई है तो यह 'निगरानी समिति' (Oversight Committee) को संबोधित होगी किंतु यदि संसद को कोई सदन शिकायत करता है तो वह सदन के अध्यक्ष या सभापति को संबोधित होगी और अध्यक्ष या सभापति उसे 'निगरानी समिति' (Oversight Committee) को भेजेंगा।
- (ग) यदि शिकायत संसद की ओर से आई है तो 'निगरानी समिति' 'जाँच समिति' को गठन करेगी ताकि न्यायाधीश के आचरण को गहन जाँच की जा सके। यदि शिकायत किसी साधारण नागरिक द्वारा की गई है तो पहले उसे उस न्यायालय के 'संवीक्षा पैनल' (Scrutiny Panel) के पास भेजा जाएगा। यदि 'संवीक्षा पैनल' (Scrutiny Panel) सिफारिश करता है कि उक्त मामले में गंभीर जाँच की जानी चाहिए तो 'निगरानी समिति' 'जाँच समिति' का गठन करेगी।
- (घ) 'जाँच समिति' विस्तृत जाँच के आधार पर 6 महीनों के भीतर अपनी रिपोर्ट 'निगरानी समिति' को देगी। यह निम्नलिखित 3 में से किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचेगी—
- (अ) न्यायाधीश दोषी नहीं है।
- (आ) न्यायाधीश दोषी है किंतु उसका दोष इतना बड़ा नहीं है कि उसे पद से हटा दिया जाए।
- (इ) न्यायाधीश दोषी है और उसका दोष इतना बड़ा है कि उसे पद से हटा दिया जाना चाहिए।
- (उ) यदि रिपोर्ट है कि न्यायाधीश दोषी नहीं है तो प्रक्रिया यहीं समाप्त हो जाएगी, किंतु यदि रिपोर्ट में न्यायाधीश को दोषी

(छ) यदि न्यायाधीश का दोष इतना गंभीर है कि उसे पद से हटाया जाना चाहिए तो 'निगरानी समिति' उस न्यायाधीश से निवेदन करेगी कि वह स्वयं ही पद से इस्तीफा दे दे। यदि वह स्वेच्छा से इस्तीफा नहीं देता है तो समिति राष्ट्रपति को परामर्श देगी कि उक्त न्यायाधीश को पद से हटाए जाने की प्रक्रिया शुरू की जाए। राष्ट्रपति यह मामला संसद को सौंप देगा और यदि संसद के दोनों सदन अपेक्षित बहुमत से महाभियोग का प्रस्ताव पारित कर देते हैं तो राष्ट्रपति उसे पद से हटाए जाने का आदेश जारी करेगा।

(ज) इस बात पर विशेष बल दिया जाएगा कि शिकायत किए जाने से लेकर जाँच करने तथा निष्कर्ष निकाले जाने तक की प्रक्रिया पूरी तरह गोपनीय रहे।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ

(Jurisdiction and Powers of Supreme Court)

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास विश्व के किसी भी न्यायालय की तुलना में व्यापक क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ हैं। अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट की तरह यह परिसंघीय न्यायालय (Federal court), मूल अधिकारों का संरक्षक तथा संविधान का अंतिम व्याख्याकार है जबकि इंग्लैंड के हाउस ऑफ लॉर्ड्स की न्यायिक समिति (या सर्वोच्च न्यायालय) की तरह यह देश के सभी सिविल (Civil) और आपराधिक (Criminal) मामलों में अपील का अंतिम न्यायालय भी है। सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ यहाँ खत्म नहीं होतीं। वह राष्ट्रपति को परामर्श (Consultation) देने की शक्ति भी रखता है जो इसे अपेक्षा दोनों न्यायालयों से अलग करती है।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा शक्तियों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(1) मूल या आरम्भिक अधिकारिता (Original Jurisdiction)

मूल या आरम्भिक क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि इन मामलों में किसी वाद (Litigation) की शुरुआत सर्वोच्च न्यायालय में ही हो सकती है। यह अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट को मान संघीय (Federal) मामलों में जहाँ अखिरका के संविधान के अनुच्छेद 131 में इसकी शक्तों का वर्णन है।

मूल क्षेत्राधिकार के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय 3 तरह के मामलों की सुनवाई करता है—

- ऐसे विवाद जिनमें भारत सरकार या राज्य सरकार के अधिकारों का संरक्षण।
- ऐसे विवाद जिनमें एक राज्य के अधिकारों का संरक्षण है तथा जहाँ तभी एक या अधिक राज्यों का हित हो।
- ऐसे विवाद जिनमें भारत सरकार या राज्य सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के अधिकारों का संरक्षण है और जहाँ एक या अधिक राज्यों का हित हो।

अनुच्छेद 131 में संकेत किया गया है कि मूल क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले विवादों में, इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने भी कुछ मामलों में स्पष्ट किया है कि किस तरह के मामलों में अनुच्छेद 131 की शक्ति स्विकार्य नहीं है। ऐसे अपवाद 3 हैं—

- कोई भी नागरिक इस अनुच्छेद के तहत केंद्र या राज्य सरकार के विरुद्ध मुकदमा नहीं चला सकता। केवल केंद्र और राज्यों के सरकार ही इस अनुच्छेद के अंतर्गत मामलों में उठा सकती हैं।
- अनुच्छेद 131 के परंतुक (Proviso) में बताया गया है कि संविधान के आरंभ से पहले की गई किसी संधि (Treaty), करार (Agreement), सनद (Sanad) या ऐसी ही किसी अन्य लिखत (instrument) से जुड़े मामले इस अनुच्छेद के अधीन नहीं उठाए जा सकेंगे।
- संविधान में कुछ अन्य अनुच्छेदों में कहा गया है कि उनमें वर्णित विषयों के संबंध में अनुच्छेद 131 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा नहीं लाया जा सकेगा। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 262 के अन्तर्गत अन्तरराज्यीय जल आयोग (Inter State Water Commission) को निर्दिष्ट किया गया मामला अनुच्छेद 131 का विषय नहीं है।

(2) रिट अधिकारिता (Writ Jurisdiction)

संविधान के अनुच्छेद 32 में सर्वोच्च न्यायालय को रिट अधिकारिता दी गई है जिसके तहत उसे नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए 5 प्रसिद्ध रिटों— बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), उत्प्रेषण (Certiorari) तथा अधिकार-पृच्छा (Quo-Warranto) सहित अन्य प्रकार की रिटें, निदेश (Directions) तथा आदेश (Orders) जारी करने की शक्ति है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी इस शक्ति का व्यापक प्रयोग किया है। विशेष रूप से 1980 के बाद लोकहित वादों (Public Interest Litigations) के माध्यम से रिट अधिकारिता का अत्यन्त प्रभावशाली उपयोग किया गया है।

of constitution) का हिस्सा है। 'एल. चंद्र कुमार के मामले' (1997) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषणा की है। इसका अर्थ है कि संसद इस शक्ति को न तो कम कर सकती है और न ही समाप्त।

संविधान के अनुच्छेद 139 में संसद को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह उचित समझे तो सर्वोच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का विस्तार अन्य विषयों पर भी कर सकती है। अभी तक संसद ने इस प्रावधान का उपयोग नहीं किया है।

(3) अपीलीय अधिकारिता (Appellate Jurisdiction)

सर्वोच्च न्यायालय सिविल तथा आपराधिक (Criminal) सभी तरह के मामलों में अपील का अंतिम न्यायालय है। अनुच्छेद 132, 133, 134 तथा 136 में सर्वोच्च न्यायालय की अपीलीय अधिकारिता स्पष्ट की गई है।

सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को 5 भागों में बाँटा जा सकता है—

- (i) संवैधानिक विषयों से जुड़ी अपीलें (अनुच्छेद 132),
- (ii) सिविल विषयों से जुड़ी अपीलें (अनुच्छेद 133),
- (iii) आपराधिक मामलों से जुड़ी अपीलें (अनुच्छेद 134),
- (iv) विशेष अनुमति से की जाने वाली अपीलें (अनुच्छेद 136)।

इन सभी अपीलों की विस्तृत व्याख्या आगे दी जा रही है—

(i) संवैधानिक विषयों से जुड़ी अपीलें (Appeals on Constitutional Matters)

अनुच्छेद 132 के अन्तर्गत प्रावधान है कि यदि किसी उच्च न्यायालय के किसी या अनेक आदेशों से कोई ऐसा प्रश्न जुड़ा है जो संविधान से संबद्ध 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) है और उच्च न्यायालय इस आशय का प्रमाण दे देता है कि सर्वोच्च न्यायालय उसका अपील की जा सकती है। यह मामला सिविल भी हो सकता है, आपराधिक (Criminal) भी और अन्य भी।

संविधान में संज्ञित 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial question of law) का अर्थ है, वह सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ निर्णयों में स्पष्ट किया है। निम्नलिखित विधि के सारवान प्रश्नों को संविधान में निम्नलिखित से लगाया जाता है—

- (क) यदि किसी उच्च न्यायालय के किसी या अनेक आदेशों से कोई ऐसा प्रश्न जुड़ा है जो संविधान से संबद्ध 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) है और उच्च न्यायालय इस आशय का प्रमाण दे देता है कि सर्वोच्च न्यायालय उसका अपील की जा सकती है। यह मामला सिविल भी हो सकता है, आपराधिक (Criminal) भी और अन्य भी।
- (ख) यदि सर्वोच्च न्यायालय के किसी या अनेक आदेशों से कोई ऐसा प्रश्न जुड़ा है जो संविधान से संबद्ध 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) है और उच्च न्यायालय इस आशय का प्रमाण दे देता है कि सर्वोच्च न्यायालय उसका अपील की जा सकती है। यह मामला सिविल भी हो सकता है, आपराधिक (Criminal) भी और अन्य भी।
- (ग) यदि संविधान के किसी उपबंध की स्पष्ट व्याख्या किए जाने की जरूरत हो क्योंकि किसी भी मामले में उसे स्पष्ट नहीं किया गया है तो वह भी 'विधि का सारवान प्रश्न' होगा।

गौरतलब है कि जिन मामलों पर सर्वोच्च न्यायालय के स्पष्ट निर्णय उपलब्ध हैं, वे चाहे जितने भी महत्वपूर्ण हों, उन्हें 'विधि का सारवान प्रश्न' नहीं माना जाता है।

(ii) सिविल मामलों से जुड़ी अपीलें (Appeals on Civil Matters)

मूल संविधान में प्रावधान था कि 20 हजार रुपये से अधिक राशि के मामलों में ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती थी। ऐसे मामलों में अपील के लिए उच्च न्यायालय से प्रमाण-पत्र अधिकार के रूप में प्राप्त किया जा सकता था। इस प्रावधान का दुरुपयोग देखते हुए '30वें संविधान संशोधन, 1972' के द्वारा इसे हटा दिया गया। वर्तमान में, अनुच्छेद 133 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में कोई भी सिविल अपील तभी लाई जा सकती है जब निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी हों—

- (क) उस मामले में 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) निहित हो;
- (ख) वह प्रश्न सामान्य महत्व (General Importance) का हो अर्थात् पक्षकारों (Parties) के अलावा बहुत से अन्य व्यक्तियों या संबंधित मामलों पर उसका प्रभाव पड़ने वाला हो;
- (ग) उच्च न्यायालय की राय में उस प्रश्न का निर्धारण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक हो।

(iii) अपराधिक मामलों से जुड़ी अपीलें (Appeals on Criminal Matters)

अपराधिक मामलों में अपील दो तरह से की जा सकती है—(क) उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र के साथ, तथा (ख) उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र के बिना।

उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र के साथ होने वाली अपीलें सिर्फ इस आधार पर होती हैं कि उच्च न्यायालय की राय में किसी मामले पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है। गौरतलब है कि अनुच्छेद 132 और 133 के विपरीत अनुच्छेद 134 में 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है, किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कुछ निर्णयों में इस ओर संकेत किया है। उसने कहा है कि सिर्फ असाधारण परिस्थितियों में ही उच्च न्यायालयों को अपील का प्रमाण-पत्र जारी करना चाहिए। सामान्यतः निम्नलिखित दो परिस्थितियों में यह प्रमाण-पत्र जारी किया जाता है—

(क) यदि मामले में 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) निहित हो।

(ख) यदि गंभीर अन्याय की आशंका हो।

अपराधिक मामलों में अपील का एक दूसरा रास्ता भी खुला है। इसके लिए उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं होती। पीड़ित व्यक्ति को अधिकार है कि वह कुछ विशिष्ट स्थितियों में अधिकारपूर्वक सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की याचिका दायर करे। मूल संविधान में ऐसी दो स्थितियाँ बताई गई थीं—

(क) यदि सत्र न्यायालय (Sessions Court) ने किसी अभियुक्त को दोषमुक्त या आदेश दिया हो किंतु उच्च न्यायालय ने अपील की सुनवाई में दोषमुक्ति के आदेश को खारिज कर अभियुक्त को दोषी ठहराया हो और मृत्युदंड का आदेश दिया हो।

(ख) यदि उच्च न्यायालय ने किसी अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Court) में चल रहे किसी मामले को विचारण के लिए अपने पास भंगवा लिया हो और उस मामले में अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए मृत्युदंड का आदेश दिया हो।

यह ध्यान रखना जरूरी है कि शेष किसी भी परिस्थिति में अधिकार के रूप में अपील नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए, यदि सत्र न्यायालय द्वारा दोषमुक्त या आदेश दिया हो किंतु उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया हो या अभियुक्त को दोषी ठहराया हो तो भी अपील उच्च न्यायालय के समक्ष सत्र के बिना सर्वोच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती।

संविधान की धारा 22(2) संसद को शक्ति देता है कि उच्च अपराधिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की अपील ग्रहण करने की अधिकारिता को खींच सकती है। वास्तव में कि संसद इस अधिकारिता को संपूर्ण रूप से खींचने का काम नहीं कर सकती। संसद ने अपनी इसी शक्ति का उपयोग करके 1970 में एक अधिनियम पारित किया—सर्वोच्च न्यायालय अपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार विस्तार अधिनियम, 1970 (The Supreme Court Ambrovement of Criminal Appellate Jurisdiction Act, 1970)। इस अधिनियम के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय को अधिकारता प्रदान की गई कि वह अपने तहत दो अन्य स्थितियों में पीड़ित पक्ष को प्रमाण-पत्र के बिना सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया जाय।

(क) यदि सत्र न्यायालय (Sessions Court) ने किसी अभियुक्त को दोषमुक्त किया हो किंतु उच्च न्यायालय ने अपील की सुनवाई में अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए उच्च न्यायालय या कम से कम 10 वर्षों के कारावास की सजा सुनाई हो।

(ख) यदि उच्च न्यायालय ने किसी अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Court) से कोई मुकदमा अपने पास भंगवा लिया हो और अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए उच्च न्यायालय या कम से कम 10 वर्षों के कारावास की सजा सुनाई हो।

(iv) विशेष अनुमति की अपीलें (Appeals by Special Leave)

अभी तक हमने देखा कि अनुच्छेद 132 में सिविल विषयों, अनुच्छेद 133 में सिविल मामलों तथा अनुच्छेद 134 में अपराधिक मामलों से जुड़ी अपीलों का प्रावधान है। अनुच्छेद 136 का उद्देश्य उन विषयों पर अपील की शक्ति देना है जो या तो इन तीनों में शामिल न हो पाए हों या कोई अन्य विशिष्ट परिस्थिति बन गई हो। एक अर्थ में यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय के पास अपील ग्रहण करने की अवशिष्ट शक्ति (Residual Power) के रूप में है। सर्वोच्च न्यायालय इसके अन्तर्गत किसी भी मामले से जुड़ी हुई अपील स्वीकार कर सकता है, चाहे वह मामला सिविल प्रकृति का हो, अपराधिक प्रकृति का हो या अन्य प्रकार का हो।

अपील की इस शक्ति का सिर्फ एक अपवाद है जो अनुच्छेद 136(2) में दिया गया है। वह यह है कि सशस्त्र बलों (Armed forces) से संबंधित किसी विधि के अधीन गठित किसी न्यायालय द्वारा सुनाए गए निर्णयों के विरुद्ध ऐसी अपील स्वीकार नहीं की जा सकती। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 136 के तहत 'कोर्ट मार्शल' के निर्णयों के विरुद्ध अपील स्वीकार नहीं कर सकता है। शेष किसी भी तरह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 136 के तहत अपील सुन सकता है।

तीन कारणों से शेष तीनों अनुच्छेदों (अनुच्छेद 132-134) से व्यापक है-

- (क) अनुच्छेद 132-134 के अन्तर्गत अपील सिर्फ उच्च न्यायालय के निर्णयों के खिलाफ की जा सकती है जबकि अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत किसी भी न्यायालय या अधिकरण (Tribunal) के निर्णयों के विरुद्ध अपील की जा सकती है।
- (ख) अनुच्छेद 132-134 के अन्तर्गत अपील सिर्फ अंतिम आदेश या निर्णय के विरुद्ध की जा सकती है जबकि अनुच्छेद 136 के तहत किसी न्यायालय द्वारा दिए गए अन्तर्वर्ती आदेशों (Interlocutory Orders) के विरुद्ध भी अपील की जा सकती है।
- (ग) अनुच्छेद 132, 133 या 134 में अपील सिर्फ उन मामलों में की जा सकती है जो विशिष्ट रूप से उस अनुच्छेद की परिधि में शामिल होते हैं। अनुच्छेद 136 पर ऐसी कोई सीमा लागू नहीं होती।

(4) सलाहकारी अधिकारिता (Advisory Jurisdiction)

अनुच्छेद 143 में सर्वोच्च न्यायालय को सलाहकारी अधिकारिता दी गई है।

अनुच्छेद 143 के दो खंड हैं-143(1) तथा 143(2)। दोनों खण्ड राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय से सलाह मांगने की शक्ति प्रदान करते हैं किन्तु दोनों की विषय-वस्तु अलग है।

अनुच्छेद 143(1) [Article 143(1)]

अनुच्छेद 143(1) के अनुसार "यदि किसी समय राष्ट्रपति को प्रतीत होता है कि विधि (Law) या तथ्य (Fact) का कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है, जो उसी प्रकृति का हो, जिससे व्यापक महत्व का है कि उस पर सर्वोच्च न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन हो, तो वह उस प्रश्न को विचार करने के लिए उस न्यायालय को निर्देशित कर सकेगा और वह न्यायालय, ऐसी सुनवाई को प्रारंभ कर सकेगा जो सलाहकारी प्रकृति का हो, और उस पर अपनी राय प्रतिपादित कर सकेगा।"

इस अनुच्छेद में बहुत से शब्द महत्वपूर्ण हैं जिन पर प्रश्न उत्पन्न रहे हैं और सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर उनकी व्याख्या की है। अभी तक जो प्रमुख व्याख्याओं के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

- (i) पहला प्रश्न किन राष्ट्रपति को प्रतीत होता है कि वास्तविक अथवा काल्पनिक प्रश्न उत्पन्न हो रहे हैं, जो मात्र परिषद को प्रतीत होने से? अनुच्छेद 143(1) के अन्तर्गत यह कि यह राष्ट्रपति का विवेकाधीन शक्ति (Discretionary power) नहीं है, इसका प्रयोग मात्र परिषद के निर्देशों के अनुसार किया जाना अनिवार्य है।
- (ii) दूसरा प्रश्न किन राष्ट्रपति द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों पर सर्वोच्च न्यायालय के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है? 1958 में 'केरल शिक्षा विधेयक' (Kerala Education Bill) के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया था कि अनुच्छेद 143(1) में सर्वोच्च न्यायालय को सलाह देने का अधिकार है, जिसका अर्थ है कि न्यायालय के लिए राय देना आवश्यक नहीं है।
न्यायालय ने एक से अधिक अवसरों पर राष्ट्रपति द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर सलाह देने से मना किया है। उदाहरण के लिए, 1993 में अयोध्या मामले से संबंधित प्रश्नावली का उत्तर देते हुए न्यायालय ने इस प्रश्न पर राय नहीं दी कि विवादित स्थान पर पहले कोई मंदिर था या नहीं? इस संबंध में न्यायालय को टिप्पणी थी कि 'राजनीतिक प्रकृति' के प्रश्नों पर राय देना उसकी जिम्मेदारी नहीं है। वर्तमान स्थिति यही है कि सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 143(1) के तहत पूछे गए प्रश्नों पर राय देने के लिए बाध्य नहीं है।
- (iii) तीसरा विवाद इस बिंदु पर रहा है कि राष्ट्रपति द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों की प्रकृति क्या होनी चाहिए? इस संबंध में उक्त अनुच्छेद में स्पष्टतः कहा गया है कि प्रश्न विधि (Law) या तथ्य (Fact) का होना चाहिए। किन्तु, इसमें यह भी कहा गया है कि 'जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है या जिसके उत्पन्न होने की संभावना है', वह न्यायालय से पूछा जा सकता है। इसका अर्थ है कि प्रश्न वास्तविक हो, यह जरूरी नहीं है; प्रश्न काल्पनिक भी हो सकता है किन्तु यह कल्पना निरंकुश व अतार्किक नहीं होनी चाहिए।

- (iv) एक विवाद इस बिंदु पर भी रहा है कि अनुच्छेद 143(1) के तहत पूछे गए प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई राय सभी न्यायालयों में बंधुमान प्रभाव से लागू होती है या नहीं?

(Proviso) में वर्णित है तो भी राष्ट्रपति उसे सर्वोच्च न्यायालय की राय जानने के लिए निर्दिष्ट कर सकेगा और सर्वोच्च न्यायालय विचार करने के बाद अपनी राय देगा।

अनुच्छेद 131 (जिसका संबंध सर्वोच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता अर्थात् संघ तथा राज्यों के आपसी विवादों से है) के प्रवृत्त (Proviso) में लिखा है कि इस संविधान के लागू होने से पहले की किसी संधि (Treaty), करार (Agreement), सनद (Sanad) या किसी अन्य लिखत (Instrument) से उत्पन्न विवादों को इस अनुच्छेद के तहत नहीं उठाया जा सकेगा। अनुच्छेद 143(2) राष्ट्रपति को शक्ति देता है कि वह इस तरह के मामलों पर न्यायालय की राय ले सके।

इसका अर्थ है कि संघ और राज्य की सरकारें संविधान-पूर्व किसी समझौते के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर नहीं कर सकती हैं, किंतु राष्ट्रपति ऐसे प्रश्न पर सलाह मांग सकता है। ऐसा करने का कारण यही था कि अनावश्यक विवादों को उत्पन्न होने से रोका जा सके। राष्ट्रपति को यह शक्ति इसलिए दी गई है ताकि किसी गंभीर विवाद की स्थिति में न्यायालय की कानूनी राय ली जा सके।

अभी तक राष्ट्रपति की ओर से अनुच्छेद 143(2) के तहत एक भी प्रश्न नहीं पूछा गया है। इस अनुच्छेद का व्यावहारिक महत्व भविष्य में ही तय होगा।

(5) अभिलेख न्यायालय की शक्तियाँ (Powers of the Court of Records)

अनुच्छेद 129 में घोषणा की गई है कि "सर्वोच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Court of records) होगा और उसको अपने अवमान (Contempt) के लिए दंड देने की शक्ति होगी।"

अभिलेख न्यायालय की दो विशेषताएँ होती हैं—

(क) उसके सभी निर्णय (judgements), आदेश (orders) तथा निर्देश (directions) आदि स्थायी स्मृति (eternal memory) में सुरक्षित रखे जाते हैं ताकि सभी अधीनस्थ न्यायालय उन्हें पूर्व-उदाहरणों (Precedents) के रूप में प्रयुक्त कर सकें। प्रत्येक अधीनस्थ न्यायालय के लिए बाध्यकारी है ताकि वह अभिलेख न्यायालय द्वारा निर्धारण की 'विधि' माने तथा समान प्रकृति के विवादों में उसी विधि का अनुसरण करे।

(ख) अभिलेख न्यायालय को दूसरी विशेषता मिलती है कि उसे अपने अवमान (contempt) के लिए दंड देने की शक्ति होती है।

ध्यातव्य है कि सर्वोच्च न्यायालय को अवमानना के विचार का प्रयोग नहीं है किंतु इसका अर्थ स्पष्ट नहीं किया गया है। संसद ने इसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए 'न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971' (Contempt of Courts Act, 1971) पारित किया जिसमें इस अभिव्यक्ति की विस्तृत व्याख्या की गई है।

न्यायालय की अवमानना के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न न्यायों की कड़ी और स्पष्ट स्पष्ट किए हैं, जैसे—

- (i) न्यायाधीशों को भी अपने न्यायालय की अवमानना के लिए दंडित किया जा सकता है।
- (ii) अनुच्छेद 129 द्वारा दी गई शक्ति के तहत सर्वोच्च न्यायालय सिर्फ अपनी अवमानना के लिए ही नहीं बल्कि किसी अधीनस्थ न्यायालय की अवमानना के लिए भी दंडित कर सकता है।
- (iii) 'बिनय चन्द्र मिश्र' (1995) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति का विस्तृत विवेचन किया। न्यायालय को 3 सदस्यीय पीठ ने इस मामले के निर्णय में स्पष्ट किया कि—

(क) न्यायालय स्व-प्रेरणा से (Suo-motu) अपनी अवमानना के लिए दंड दे सकता है।

(ख) इस अनुच्छेद से सर्वोच्च न्यायालय को अपने तथा सभी अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति प्राप्त होती है।

(ग) अनुच्छेद 129 द्वारा प्राप्त शक्ति संसद के किसी भी अधिनियम से सीमित नहीं होती। 'न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971' (Contempt of Courts Act, 1971) तथा 'अधिवक्ता अधिनियम, 1961' (Advocates Act, 1961) भी इसे सीमित नहीं कर सकते।

(6) न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति (Power of Judicial Review)

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के पास अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट की तरह न्यायिक पुनर्विलोकन की अत्यन्त व्यापक शक्ति तो नहीं है किन्तु कुछ मामलों में उसे यह शक्ति प्राप्त है। संविधान के किसी भी अनुच्छेद में इस शक्ति का स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है किन्तु अनुच्छेद 13, 32, 132 तथा 133 से यह शक्ति निगमित होती है।

संविधान लागू होने के समय से अभी तक सर्वोच्च न्यायालय की यह शक्ति घटती-बढ़ती रही है। इस इतिहास को कुछ चरणों में बाँटकर देखा जा सकता है—

- (i) **पहला चरण (First Phase):** 1950 से 1966 तक के कालखंड को इस इतिहास का पहला चरण माना जा सकता है। इस दौर में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग तो किया किन्तु विनम्र रूप में। उसने अनुच्छेद 368 द्वारा संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति को अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की तुलना में प्राथमिक माना।
- (ii) **दूसरा चरण (Second Phase):** दूसरा चरण सामान्यतः 1967 से 1970 के बीच दिखाई पड़ता है। इस दौर में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का सक्रिय तथा अक्रामक प्रयोग किया और संसद कमजोर नजर आने लगी। 1967 में 'गोल्डनयाथ मामले' में सर्वोच्च न्यायालय की 13 सदस्यीय पीठ ने घोषणा की कि संसद मूल अधिकारों को किसी तरह कम नहीं कर सकती है। इसके बाद, 1970 में सर्वोच्च न्यायालय ने 'बैंक राष्ट्रीयकरण अध्यादेश' (Bank Nationalisation Ordinance), जो बाद में अधिनियम (act) बन गया था, को सम्पत्ति के मूल अधिकार के अतिक्रमण के आधार पर रद्द कर दिया। उसके कुछ ही दिन बाद न्यायालय ने इस अध्यादेश को रद्द कर दिया जिसके माध्यम से प्रिवी-पर्सों का उन्मूलन किया गया था।
- (iii) **तीसरा चरण (Third Phase):** तीसरा चरण 1971 से 1977 तक माना जा सकता है। इस दौर में संसद तथा सर्वोच्च न्यायालय में संघर्ष की स्थिति बनी रही। 1971 में श्रीमती इंदिरा गांधी ने '24वें संविधान संशोधन' (1971) के माध्यम से संसद को संविधान संशोधन की असीम शक्ति प्रदान की तथा सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को काफी सीमा तक कम कर दिया। इसके कुछ दिनों बाद अप्रैल, 1973 में 'केशवानंद भारती मामले' का निर्णय हुआ। सर्वोच्च न्यायालय की 13 सदस्यीय पीठ ने घोषणा की कि संसद का अधिकार संविधान में संशोधन करने का है किन्तु संविधान के मूल ढाँचे (Basic structure of constitution) को नहीं। '42वें संशोधन' के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय की पुनर्विलोकन संबंधी शक्ति पर प्रतिबंध लगाए गए— (i) सर्वोच्च न्यायालय केवल संसद द्वारा प्रविष्टि की गई न्यायिक पुनर्विलोकन के लिये प्रयोग किया जा सकता है। (ii) सर्वोच्च न्यायालय केवल अपने राज्य के विधान को पुनर्विलोकन के लिये प्रयोग कर सकता है। (iii) न्यायिक पुनर्विलोकन करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय में कम से कम 5 न्यायाधीशों की जरूरत होगी। (iv) न्यायालय के कम से कम 5 न्यायाधीशों की जरूरत होगी, तथा (v) पीठ के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से ही न्यायालय का निर्णय मान्य माना जाएगा।
- (iv) **चौथा चरण (Fourth Phase):** चौथा चरण 1977 से वर्तमान तक माना जा सकता है। इस दौर में यह स्पष्ट होता गया है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति भी संविधान के मूल ढाँचे में शामिल है जिसे किसी भी तरह कम या समाप्त नहीं किया जा सकता। 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनी और उसने '43वें संविधान संशोधन' के माध्यम से वे तीनों प्रतिबंध हटा लिए जो '42वें संशोधन' द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति सीमित करने के लिए लागू किए गए थे। इसके बाद पुनर्विलोकन की शक्ति वैसी ही हो गई जैसी 42वें संशोधन से पहले थी। 1980 में 'मिनर्वा मिल्स मामले' में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि न्यायिक पुनर्विलोकन सामान्य स्थितियों में संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा है। 1981 के 'वापन राय मामले' में उसने स्पष्ट कर दिया कि 24 अप्रैल, 1973 (केशवानंद भारती मामले के निर्णय की तारीख) के बाद जो अधिनियम या आदेश नवीं अनुसूची में डाले जाते हैं, सर्वोच्च न्यायालय उनका भी पुनर्विलोकन इस आधार पर कर सकेगा कि वे संविधान के मूल ढाँचे का अतिक्रमण करते हैं या नहीं? 1997 के 'एल. चंद्र कुमार' मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट घोषणा की कि न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान के मूल ढाँचे का अभिन्न हिस्सा है और जो भी विधि उसे छीनती है, वह उस सीमा तक अवैध है।

वर्तमान स्थिति यही है कि सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा है जिसे संसद किसी भी स्थिति में न तो कम कर सकती है और न ही छीन सकती है।

(7) अन्य शक्तियाँ व अधिकारिताएँ (Other powers & jurisdictions)

उपरोक्त शक्तियों के अलावा भी सर्वोच्च न्यायालय के पास बहुत सी शक्तियाँ हैं जो उसे संविधान या कुछ अधिनियमों द्वारा दी गई हैं। ऐसी प्रमुख शक्तियों का विवरण इस प्रकार है—

- (i) अपने निर्णयों पर पुनर्विलोकन करने तथा सुधारने की शक्ति—

बदल भी सकता है।

जिन याचिकाओं के तहत सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों का पुनर्विलोकन करता है, उन्हें 'पुनर्विचार याचिका' (Review Petition) कहते हैं। ऐसी याचिका निर्णय के 30 दिनों के भीतर ही दी जा सकती है। याचिका बिना मौखिक तर्कों (Oral arguments) के, सिर्फ लिखित कागजातों के आधार पर उन्हीं न्यायाधीशों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है जिन्होंने निर्णय दिया था। ऐसी याचिका तभी स्वीकार (admit) की जाती है जब प्रार्थी निर्णय देने वाले न्यायाधीशों को यह विश्वास दिलाने में कामयाब हो जाए कि उनसे निर्णय में कोई भूल हुई है तथा मामले की गंभीरता को देखते हुए इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

पिछले कुछ समय में एक नई अवधारणा प्रचलित हुई है जिसे 'उपचारात्मक याचिका' या 'दोषाहारी याचिका' (Curative Petition) कहते हैं। इसका प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पुनर्विचार याचिका (Review petition) भी खारिज हो गई हो किंतु पीड़ित पक्ष किसी अति-गंभीर आधार पर उपचार का निवेदन करना चाहता हो। यह याचिका तभी दायर की जा सकती है जब सर्वोच्च न्यायालय का कोई वरिष्ठ अधिवक्ता (Senior advocate) प्रमाणित कर दे कि उक्त मामले में गंभीर अन्याय हुआ है तथा न्यायालय को उपचारात्मक याचिका (Curative petition) स्वीकार करनी चाहिए। यह प्रमाण-पत्र मिले जाने पर वह याचिका एक पैनल को भेजी जाती है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के तीन वरिष्ठतम न्यायाधीश तथा उक्त मामले में निर्णय सुनाने वाले न्यायाधीश शामिल होते हैं। इस पैनल के बहुमत से तय होता है कि याचिका स्वीकार करने योग्य है या नहीं? इसके लिए कोई समय सीमा निर्दिष्ट नहीं की गई है।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि का सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होना—

अनुच्छेद 141 में कहा गया है कि 'सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होगी।'

इसका अर्थ है कि यदि सर्वोच्च न्यायालय ने कोई निर्णय, आदेश या निर्देश दिया है तो सभी न्यायालय उसे अंतिम विधि के तौर पर स्वीकार कर लें। इससे निश्चित है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्मित किसी विधि के न्यायिक प्रभाव को लोकेत करने के लिए यदि उसे सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया है तो देश के सभी न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ही विधि मानेंगे। न्यायिक संसद द्वारा पारित अधिनियम को किसी न्यायालय, यदि सर्वोच्च न्यायालय सविधानिक किसी कानून की नकल व्याख्या करने में दोषपूर्ण न्यायालयों के लिए उसी व्याख्या को सविधानिक अर्थ मानने अनिवार्य होगा।

(iii) पूर्ण न्याय करने की शक्ति

इस शक्ति को न्यायालय 142 में कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी विधि को पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश दे सकेगा जो उसके समक्ष प्रस्तुत हो। यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय (Court of Appeal) करने के लिए आवश्यक हो। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित विधि को अंतिम बनाई गई प्रक्रिया के अनुसार लागू होगा और यदि संसद ने ऐसी कोई विधि बनाई है तो वह उस विधि को लागू होगा जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा निश्चित करे।

इस शक्ति का सबसे व्यापक प्रयोग 'यूनियन कारबाइड निगम बनाम भारत संघ' (1991) के मामले में हुआ। उस समय बहुत से व्यक्तियों ने भोपाल गैस त्रासदी में हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए अलग-अलग अदालतों में मुकदमे दायर किए हुए थे। जिन न्यायालयों में शायद कई दशक भी कम पड़ते। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 142 के तहत उन सभी मामलों को एक साथ निपटाने हुए आदेश दिया कि यूनियन कारबाइड 47 करोड़ डॉलर का भुगतान करेगी जिसे सरकार सभी पीड़ितों में वितरित करेगी।

अभी हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने 'बृजमोहन लाल बनाम भारत संघ' (2012) मामले में 'फास्ट ट्रैक अदालतों' को बंद किए जाने के सरकारी निर्णय से जुड़े प्रश्न पर विचार करते हुए पूर्ण न्याय करने की शक्ति का पुनः प्रयोग किया है और 3 पहलों के भीतर अधीनस्थ न्यायपालिका के न्यायाधीशों के 10% नए पद बनाने का आदेश दिया है।

(iv) मामलों का स्थानांतरण करने की शक्ति:

यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 139(क) द्वारा दी गई है। यह अनुच्छेद '42वें संशोधन' द्वारा संविधान में शामिल किया गया था और '44वें संशोधन' द्वारा इसमें कुछ परिवर्तन किया गया था।

अनुच्छेद 139(क) सर्वोच्च न्यायालय को दो शक्तियाँ प्रदान करता है। पहली शक्ति किसी उच्च न्यायालय से कोई मुकदमा अपने पास मंगवाने की है। यदि किसी मामले में 'विधि का सारवात प्रश्न' (Substantial Question of Law) निहित हो और उससे जुड़े मामले अलग-अलग उच्च न्यायालयों में चल रहे हों तो सर्वोच्च न्यायालय उन सभी मामलों को अपने पास मंगवाकर एक साथ निपटा सकता है। ऐसा वह महान्यायवादी (Attorney General) के निवेदन पर भी कर सकता है और स्व-प्रेरणा से (Suo-motu) भी।

कर सकता है। ऐसा प्रायः तब किया जाता है जब किसी उच्च न्यायालय में न्याय के अनुकूल परिस्थितियाँ न हों। कुछ वर्ष पूर्व, गोधरा कांड के बाद गुजरात में हुए दंगों से जुड़े मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति का प्रयोग किया है।

(v) सर्वोच्च न्यायालय से संबंधित नियम बनाने की शक्ति:

अनुच्छेद 145 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को शक्ति दी गई है कि वह अपनी प्रक्रिया आदि से संबंधित नियम बना सकता है। इसके संबंध में दो शर्तों का पालन करना ज़रूरी है। पहली, ये नियम राष्ट्रपति के अनुमोदन से ही बनाए जा सकते हैं; तथा दूसरी, ये नियम संसद द्वारा निर्मित विधियों के विरुद्ध नहीं होने चाहिए। अनुच्छेद 145(1) में ऐसे विषयों की सूची दी गई है जिनके संबंध में सर्वोच्च न्यायालय नियम बना सकता है, जैसे- अधिवक्ताओं के संबंध में, अपीलों की सुनवाई के संबंध में, अनुच्छेद 32 के अधीन होने वाली कार्यवाहियों के संबंध में, जमानत मंजूर करने से संबंधित नियम, अपने निर्णयों के पुनर्विलोकन से संबंधित नियम इत्यादि।

अनुच्छेद 145 के अन्य खंडों में सर्वोच्च न्यायालय पर लागू होने वाले कुछ नियम दिए गए हैं। अनुच्छेद 145(3) स्पष्ट करता है कि यदि किसी मामले में संविधान की व्याख्या का प्रश्न हो या अनुच्छेद 143 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा पूछे गए प्रश्न पर विचार करने का प्रसंग हो तो कम से कम 5 न्यायाधीशों की पीठ बैठेगी। ध्यातव्य है कि 5 या अधिक न्यायाधीशों की पीठ को संविधान पीठ (Constitutional Bench) भी कहा जाता है। अनुच्छेद 145(4) कहता है कि सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक निर्णय खुले न्यायालय में ही सुनाया जाएगा, अन्यथा नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि मामले की सुनवाई बंद कमरे में (In camera) नहीं हो सकती। अनुच्छेद 145(5) में स्पष्ट किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक निर्णय तथा राय पीठ के बहुमत पर आधारित होगी; किंतु जो न्यायाधीश अल्पमत में हैं अर्थात् बहुमत के निर्णय से सहमत नहीं हैं, वे अपने अतिरिक्त निर्णय (Dissenting Judgement) या विसम्मति राय (Dissenting opinion) देने का अधिकार बनाए रखेंगे।

(vi) संघीय न्यायालय की शक्तियाँ:

अनुच्छेद 145 के अंतर्गत स्वतंत्रता प्राप्त से पहले कार्यरत संघीय न्यायालय (Federal Court) की सभी शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय को सौंप दी गईं।

(vii) न्यायिक आचारण की शक्ति:

सर्वोच्च न्यायालय को देश के सभी न्यायालयों पर पुरस्कार (Awards) आदि का न्यायिक निरीक्षण (Judicial Superintendence) करने की शक्ति दी गई है। अनुच्छेद 147 में यह अधिकार का विधान है कि भारत में प्रत्येक संघीय न्यायालय को सभी न्यायिक आचारण की शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय को सौंप दी गई हैं।

(viii) संविधान की व्याख्या की शक्ति:

सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार है। अनुच्छेद 13, 132 तथा 133 से प्राप्त होता है।

(ix) निर्वाचन विवाद से जुड़ी शक्ति:

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में यदि कोई विवाद उत्पन्न होता है तो उसका निपटारा करने की शक्ति सिर्फ सर्वोच्च न्यायालय के पास ही है।

(x) आचरण को जाँचने की शक्ति:

सब लोक सेवा आयोग (UPSC) के अध्यक्ष या सदस्यों के आचरण की जाँच राष्ट्रपति के निवेदन पर सर्वोच्च न्यायालय हो करता है तथा उसकी सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी होती है।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों में वृद्धि (Increase in the powers of Supreme Court)

संविधान के कुछ अनुच्छेदों में बताया गया है कि संसद सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों में विस्तार कर सकती है। ध्यातव्य है कि संसद को सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ बढ़ाने की ही शक्ति दी गई है, कम करने की नहीं। ऐसे प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- (i) अनुच्छेद 138 के अनुसार संसद संघ सूची (Union list) के विषयों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय को अतिरिक्त अधिकारिता देने के लिए विधि पारित कर सकती है।
- (ii) अनुच्छेद 139 के अंतर्गत संसद को शक्ति दी गई है कि वह सर्वोच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का विस्तार कर सकें। अभी सर्वोच्च न्यायालय सिर्फ मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए रिट जारी कर सकता है जबकि उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों के साथ-साथ अन्य प्रयोजनों के लिए भी रिट अधिकारिता हासिल है। अभी तक संसद ने इस शक्ति का प्रयोग नहीं

- (iii) अनुच्छेद 140 में कहा गया है कि संसद विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को ऐसी आनुषंगिक शक्तियाँ (Ancillary Powers) दे सकती है जो सर्वोच्च न्यायालय को दी गई शक्तियों तथा अधिकारिताओं को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी हों। इसका अर्थ कोई नई शक्ति देने से नहीं है बल्कि पहले से दी गई शक्तियों को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक शक्तियाँ देने से है।
- (iv) अनुच्छेद 134(2) के तहत संसद आपराधिक अपीलों के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता बढ़ा सकती है। संसद ने इसका प्रयोग 1970 में किया भी है जिसकी चर्चा अपीलीय अधिकारिता के अन्तर्गत की जा चुकी है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्वतंत्रता (Independence of Supreme Court)

विधि के शासन (Rule of Law) को समुचित रूप से चलाने के लिए न्यायपालिका की स्वतंत्रता एक पूर्व-शर्त (Prerequisite) है। संविधान में कई ऐसे प्रावधान रखे गए हैं जो सर्वोच्च न्यायालय तथा उसके न्यायाधीशों को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की स्थितियाँ प्रदान करते हैं। इनके अलावा, न्यायालय ने अपने कुछ निर्णयों के माध्यम से भी स्वतंत्रता अर्जित की है। यह स्वतंत्रता निम्नलिखित प्रावधानों के आधार पर समझी जा सकती है—

- (i) न्यायाधीशों की नियुक्ति— 1998 के राष्ट्रपतीय संदर्भ (Presidential reference) के बाद अब न्यायाधीशों की नियुक्ति की शक्ति कार्यपालिका के हाथों से पूर्णतः निकाल गई है। वर्तमान में न्यायाधीशों का एक मंडल (Collegium) ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। यदि 'राष्ट्रीय न्यायिक आयोग' (National Judicial Commission) की स्थापना होती है तो भी नियुक्ति प्रक्रिया में न्यायाधीशों की पर्याप्त स्वतंत्रता बनी ही रहेगी।
- (ii) कार्यकाल की सुरक्षा— सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को 65 वर्ष की आयु तक कार्य करने की सुरक्षा दी गई है जिसे विधायिका या कार्यपालिका खींच नहीं सकती। इससे प्रभावित हुए हुए न्याय की एकमात्र तरीका यह है कि साबित कदाचार या असमर्थता (Proved misbehaviour or incapacity) के आधार पर संसद के द्वारा संसद के विशेष बहुमत द्वारा हटाया जाए। यह तरीका बहुत कठिन है कि इसका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।
- (iii) वेतन आदि की सुरक्षा— सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन तथा न्यायालय के सभी प्रशासनिक खर्चों को अनुच्छेद 146 के तहत भारत का संयुक्त निधि (Consolidated Fund of India) पर भारित व्यय (Charged expenditure) घोषित किया गया है जिसका अर्थ है कि संसद इन खर्चों पर बहिर्मुख हो सकती है किन्तु मतदान नहीं। इस प्रकार न्यायाधीशों के वेतन व भत्तों में वित्तीय आपात (Financial Emergency) (अनुच्छेद 360) की स्थिति का कोई भी अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
- (iv) अवमानना पर दंड देने की शक्ति— अनुच्छेद 129 सर्वोच्च न्यायालय को अमान्य न्यायालय (Court of records) घोषित करते हुए अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति प्रदान करता है।
- (v) आचरण पर बाध्य नहीं— अनुच्छेद 121 में स्पष्ट किया गया है कि किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कार्य के निर्वहन के संबंध में किए गए आचरण पर न्यायालय को न्यायिक शक्ति प्रदान की जा सकती है किन्तु किसी न्यायाधीश के विरुद्ध महर्षियोग की प्रक्रिया चल रही हो तो न्यायालय उसे निलंबित नहीं कर सकता।
- (vi) अधिकारिता में कटौती नहीं— संसद की अनुच्छेद 138, 139 तथा 134(2) के तहत सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता बढ़ाने की शक्ति तो दी गई है किन्तु कम करने की नहीं।
- (vii) कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतंत्रता— पहले कार्यपालिका के कुछ अधिकारी न्यायिक कार्य भी करते थे। संविधान के अनुच्छेद 50 में राज्य को निर्देश दिया गया था कि वह लोकसेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिए कदम उठाएगा। कुछ राज्यों ने अपने स्तर पर ऐसे कदम उठाए थे। 1973 में संसद ने 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता' (Cr.P.C.—Criminal Procedure Code) पारित करके यह सुनिश्चित कर दिया कि कार्यपालिका का कोई भी अधिकारी न्यायिक शक्तियों धारण न करे। अब न्यायिक कार्य सिर्फ न्यायपालिका करती है जिससे उसे कार्यात्मक स्वतंत्रता प्राप्त होती है।
- (viii) सेवानिवृत्ति के बाद वकालत पर रोक— सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए नियम है कि वे सेवानिवृत्ति के बाद भारत के किसी भी न्यायालय या अधिकरण (Tribunal) में वकालत नहीं कर सकते। इसका उद्देश्य यह है कि न्यायाधीश निर्णय देते समय लोभ से बचे रहें तथा अन्य न्यायाधीशों से अपने निकट संबंधों का अनुचित लाभ न उठा सकें।
- (ix) स्टाफ नियुक्त करने की स्वतंत्रता— अनुच्छेद 146 के अन्तर्गत भारत के मुख्य न्यायाधीश को शक्ति दी गई है कि वह सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारियों व सेवकों की नियुक्ति कर सके।

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति-प्रक्रिया के संदर्भ में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए एक परामर्श मंडल (Collegium) होता है जिसमें मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीश होते हैं।
- (ii) न्यायाधीशों की नियुक्ति इस परामर्श मंडल (Collegium) के बहुमत के माध्यम से होता है।
- (iii) सरकार इस परामर्श मंडल (Collegium) की सिफारिशें मानने को बाध्य है, किंतु यदि परामर्श संबंधी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है तो सरकार सिफारिश मानने को बाध्य नहीं होगी।
- (iv) यदि सरकार सिफारिश किए गए किसी व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं नियुक्त करे, तो उसे सूचना दी जाती है कि उसने कार्यवाही करने में लक्ष्य मुख्य न्यायाधीश की परामर्श मंडल से विचार विमर्श करना है।

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (i), (iii) और (iv)
- (3) (i), (ii) और (iv)
- (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

2. वर्तमान में 98वाँ संविधान संशोधन विधेयक संसद में लंबित है जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की स्थापना करना है। इस विधेयक के प्रमुख प्रावधानों के संबंध में कौन-से कथन सुमेलित हैं?

- (i) सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का अध्यक्ष होगा।
- (ii) केन्द्रीय विधि एवं न्यायमंत्री तथा सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश इस आयोग के सदस्य होंगे।
- (iii) प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा एक प्रतिष्ठित नागरिक का मनोनयन इस आयोग

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

3. प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायिक आयोग के कार्यों में सम्मिलित तत्त्व कौन-कौन से हैं?

- (i) सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को सिफारिश देना।
- (ii) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानांतरण के संबंध में सिफारिशें देना।
- (iii) न्यायाधीशों को हटाए जाने संबंधी प्रक्रिया पर संसद को सुझाव देना।

कूट-

- (1) (i) और (ii)
- (2) (ii) और (iii)
- (3) (i) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

4. प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की शक्तियों के संबंध में कौन-सा सत्य कथन सफल माना जा सकता है?

- (i) सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के स्थानांतरण के मामलों में आयोग की सिफारिशें राष्ट्रपति पर बाध्यकारी होंगी।
- (ii) किसी न्यायाधीश के गलत आचरण या विचलनकारी व्यवहार के संबंध में दी गई सिफारिशें संबंधित न्यायालय के मुख्य न्यायपूर्ण पर बाध्यकारी नहीं होंगी।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) और न ही (ii)

5. सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में सही कथनों का चयन कीजिए-

- (i) सर्वोच्च न्यायालय की 9 सदस्यीय पीठ ने निर्धारित किया है कि मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति वरिष्ठता क्रम के आधार पर ही की जाएगी।
- (ii) जब तक इससे बड़ी पीठ इस निर्णय को

- (iii) श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने 1973 और 1977 में वरिष्ठता के नियम का उल्लंघन किया था।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

- (i) किसी उच्च न्यायालय में लगातार कम से कम 10 वर्षों तक वकील रहा व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बन सकता है।
(ii) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपना पद धारण कर सकते हैं।
(iii) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश भी सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बन सकता है, बशर्ते कि वह उच्च न्यायालय में लगातार कम से कम 10 वर्षों तक न्यायाधीश रह चुका हो।

उपरोक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (1) (i) और (ii)
(2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii)
(4) (i), (ii) और (iii)

7. मुख्य न्यायमूर्ति के उपायचक्र में शामिल प्रवृत्तियों के प्रचलन के अनुसार समाप्त होने के बाद ही सर्वोच्च न्यायालय में किसका न्यायाधीश की नियुक्ति की जाती है?

- (1) 55 वर्ष (2) 60 वर्ष
(3) 62 वर्ष (4) 35 वर्ष

8. निम्नलिखित में कौन-सा कथन सत्य है?

- (1) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए शपथ या प्रतिज्ञान का प्रारूप वही है जो भारत के राष्ट्रपति के लिए है।
(2) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आय आयकर से मुक्त होती है।
(3) यदि कभी सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की गणपूर्ति न हो तो तदर्थ आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है।
(4) सर्वोच्च न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीश के रूप

9. सर्वोच्च न्यायालय में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को भी बैठकों में उपस्थित होने के लिए बुलाया जा सकता है। इस संदर्भ में कौन-से कथन सुपेक्षित हैं?

- (i) सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से ऐसे न्यायाधीशों से लिखित अनुरोध कर सकता है।
(ii) सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को मुख्य न्यायाधीश के अनुरोध के प्रति अपनी सहमति देना आवश्यक है।
(iii) वह न्यायाधीशों को मिलने वाले सभी अधिकारों और विशेषाधिकारों का हकदार होता है, तथापि वह तकनीकी तौर पर न्यायाधीश नहीं माना जाता।

- (1) केवल (i) (2) (i) और (ii)
(3) (i) और (iii) (4) (ii) और (iii)

10. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को किन आधारों पर पद से हटाया जा सकता है?

- (i) साबित कदाचार
(ii) असमर्थता

(iii) उचित मति का अतिवर्णन

- (1) केवल (i) (2) केवल (iii)
(3) (i) और (ii) (4) (i), (ii) और (iii)

11. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाए जाने की प्रक्रिया के संबंध में कौन-सा कथन सुपेक्षित नहीं है?

- (1) न्यायाधीश को हटाए जाने का प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
(2) यदि सदन का अध्यक्ष या सभापति यह तय करता है कि प्रस्ताव स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है तो प्रस्ताव वहीं खत्म हो जाता है।
(3) यदि समिति न्यायाधीश को कदाचार का दोषी या असमर्थ पाती है तो मूल प्रस्ताव के साथ समिति की रिपोर्ट उसी सदन में पेश की जाती है, जहाँ यह प्रस्ताव शुरू हुआ था।
(4) प्रस्ताव के पारित होने की शर्त यह है कि दोनों सदनों में यह प्रस्ताव सदस्य संख्या के विशेष बहुमत तथा उपस्थित व मतदान करने वाले

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) सर्वोच्च न्यायालय सिविल तथा आपराधिक सभी तरह के मामलों में अपील का अंतिम न्यायालय है।
- (ii) सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद-143(1) के तहत राष्ट्रपति द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर राय देने के लिए बाध्य नहीं है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

13. उपचारात्मक याचिका (Curative Petition) के संबंध में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (i) इसका प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पुनर्विचार याचिका (Review Petition) खारिज हो चुका हो किंतु पीड़ित या किसी आतमीय आधार पर उपचार का निवेदन करना चाहता हो।
- (ii) यह याचिका तभी दायर की जा सकती है जब सर्वोच्च न्यायालय का कोई बार उ अधिवक्ता अपायित कर दे कि उक्त मामले में गंभीर अन्याय हुआ है तथा न्यायालय को उपचारात्मक याचिका स्वीकार करनी चाहिए।

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों के आचरण की जाँच राष्ट्रपति के निवेदन पर सर्वोच्च न्यायालय ही करता है तथा न्यायालय की सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी होती है।

- (ii) सर्वोच्च न्यायालय सिर्फ मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए रिट जारी कर सकता है जबकि उच्च न्यायालय मूल अधिकारों के साथ-साथ अन्य प्रयोजनों के लिए भी रिट जारी कर सकता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से सत्य है/हैं?

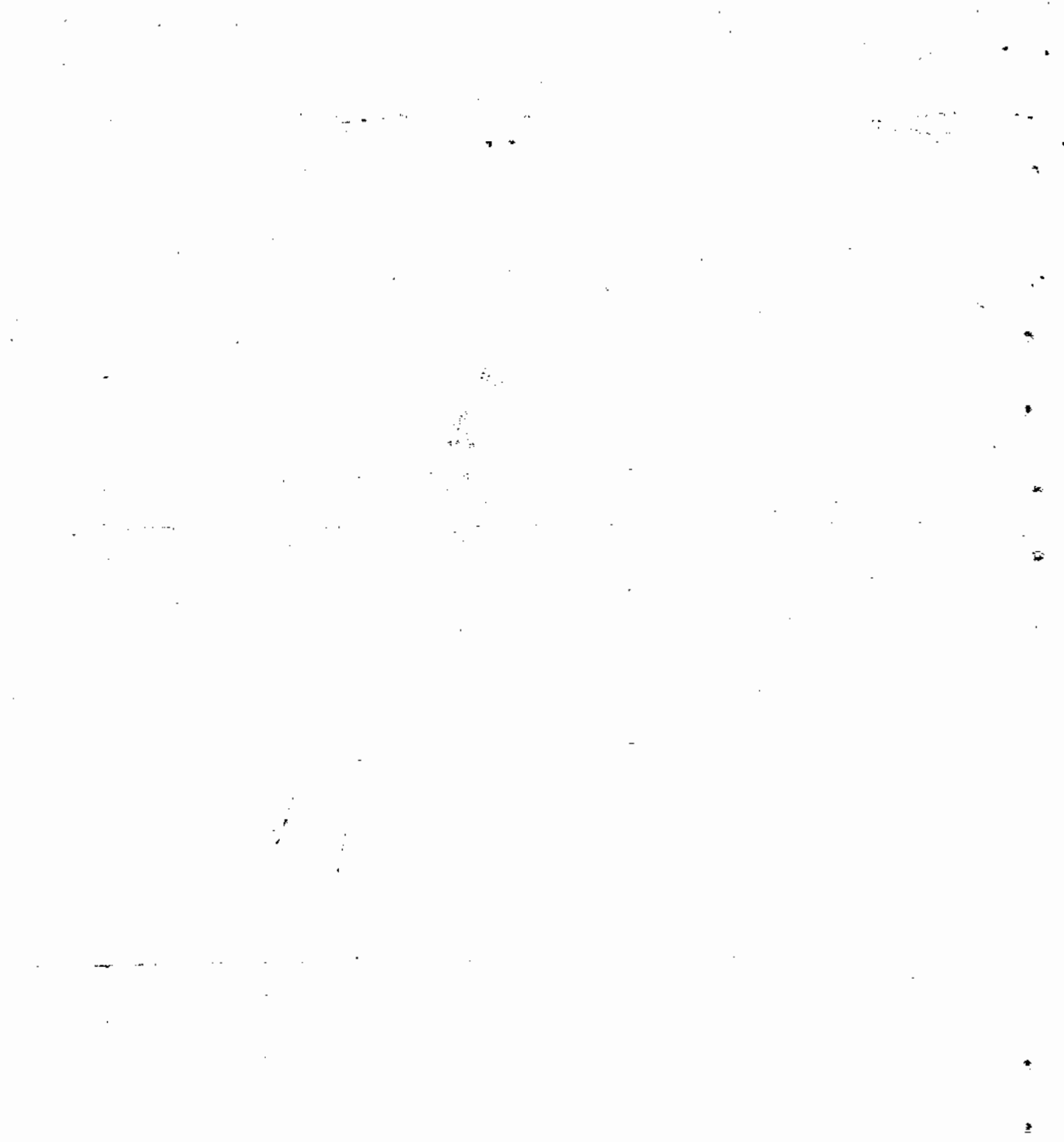
- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
- (3) -(i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

15. निम्नलिखित में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन व भत्तों पर संसद को मतदान करने का अधिकार नहीं है क्योंकि यह व्यय भारत की संचित निधि पर भारत व्यय घोषित किया गया है।
- (ii) सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कार्य के निवेदन के संबंध में किए गए आचरण पर संसद में बहस नहीं की जा सकती है।
- (iii) जब किसी न्यायाधीश के विरुद्ध महाभियोग की प्रक्रिया चल रही हो तो उस न्यायाधीश के आचरण पर संसद में बहस की जा सकती है।
- (iv) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए नियुक्ति के तत्पश्चात् सेवा निवृत्ति के बाद भारत के किसी भी न्यायालय या अधिकरण में वकालत नहीं कर सकते।

कूट—

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (iii) और (iv)
- (3) (i), (iii) और (iv)
- (4) उपरोक्त सभी।



उच्च न्यायालयों की संख्या (Number of High Courts)

संशोधित अनुच्छेद 239 का संशोधन विधेयक है— "इस अध्याय के अधिनियमित की गई किसी बात के होते हुए भी, संसद, विधि द्वारा, दो या अधिक राज्यों के लिए अथवा दो या अधिक राज्यों के किसी एक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है।" इस अधिनियम का अर्थ है कि संसद दो या अधिक राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय का गठन कर सकती है; और साथ ही, चाहे जो भी राज्य (जैसे कि Union Territory) को भी उससे जोड़ सकती है।

अनुच्छेद 20 का संबंध सार्वजनिक क्षेत्रों से है, यह कहता है कि किसी व्यक्ति को किसी द्वारा किसी संबंध में न्यायालय की अधिकारिता से वंचित नहीं कर सकेंगी या किसी राज्य या व्यक्ति को किसी उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जन (exclusion) कर सकेंगी।" संवैधानिक प्रावधानों के तहत किसी उच्च न्यायालय की किसी भी प्रजाधेश में अपने न्यायालय की हैसियत से काम करने की अधिकारिता अस्सी है।

वर्तमान में 28 राज्यों द्वारा संयुक्त राज्यक्षेत्रों के लिए कलकत्ता उच्च न्यायालय के क्षेत्र में मिलाकर ऐसे उच्च न्यायालय हैं जो दो या दो से अधिक राज्यों को सम्भाल पाते हैं। इनमें मुख्य रूप से 'बंगाली' और 'मैसूरियाण्डर' उच्च न्यायालयों का वर्गीकरण है। उच्च न्यायालय गुवाहाटी उच्च न्यायालय की अधिकारिता उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़, त्रिपुरा, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश पर विस्तारित है। चंडीगढ़ स्थित पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय के कार्यक्षेत्र में पंजाब तथा हरियाणा राज्यों के साथ चंडीगढ़ संघ राज्यक्षेत्र शामिल है। इसी प्रकार, मुंबई स्थित बम्बई उच्च न्यायालय महाराष्ट्र और गोवा दो राज्यों के अलावा 'दादर और नगर हवेली' तथा 'दमन और दीव' दो संघ राज्यक्षेत्रों का दायित्व भी निभाता है।

जहाँ तक संघ राज्यक्षेत्रों (Union territories) का सवाल है, दिल्ली अकेला ऐसा क्षेत्र है जिसे अपना स्वतंत्र उच्च न्यायालय मिला हुआ है। शेष सभी संघ राज्यक्षेत्र अपने निकटवर्ती उच्च न्यायालय की अधिकारिता में आते हैं— 'लक्षद्वीप' केरल उच्च न्यायालय में, 'पाण्डिचेरी' मद्रास उच्च न्यायालय में, 'अंडमान-निकोबार' कलकत्ता उच्च न्यायालय में, 'चंडीगढ़' पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में तथा 'दादरा और नगर हवेली' तथा 'दमन और दीव' बम्बई उच्च न्यायालय में। ये उच्च न्यायालय अपनी प्रमणकारी पीठों (Circuit Benches) के माध्यम से इन संघ राज्यक्षेत्रों को मामले देखते हैं।

भारत के उच्च न्यायालय (High Courts in India)

क्रम	न्यायालय का नाम	स्थापना वर्ष	क्षेत्रीय अधिकारिता	न्यायालय का स्थान
1.	कलकत्ता	1862	पश्चिम बंगाल एवं अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	कोलकाता (पोर्ट ब्लेयर में ग्रामणकारी पीठ)
- 2.	बंबई	1862	महाराष्ट्र, गोआ, दादरा-नगर हवेली	मुंबई (नागपुर, पणजी और औरंगाबाद में पीठें)
3.	राजकोट	1862	गुजरात और सौराष्ट्र	राजकोट

5.	कर्नाटक	1884	कर्नाटक	बंगलौर
6.	पटना	1916	बिहार	पटना
7.	जम्मू एवं कश्मीर	1928	जम्मू एवं कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
8.	मध्य प्रदेश	1936	मध्य प्रदेश	जबलपुर (इंदौर और ग्वालियर में पीठें)
9.	पंजाब और हरियाणा	1947	पंजाब, हरियाणा व चंडीगढ़	चंडीगढ़
10.	गुवाहाटी	1948	असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश	गुवाहाटी (कोहिमा, आइज़ॉल, इम्फाल, शिलांग और अगरतला में पीठें)
11.	उड़ीसा	1948	ओडिशा	कटक
12.	राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (जयपुर में पीठ)
13.	आंध्र प्रदेश	1954	आंध्र प्रदेश	हैदराबाद
14.	केरल	1956	केरल और लक्षद्वीप	अर्नाकुलम
15.	गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
16.	दिल्ली	1966	दिल्ली	दिल्ली
17.	हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिवाल
18.	सिक्किम	1975	सिक्किम	गारगुन
19.	छत्तीसगढ़	2000	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
20.	उत्तरांचल	2000	उत्तराखंड	नैनीताल
21.	झारखंड	2000	झारखंड	पटना

उच्च न्यायालय का गठन (Composition of the High Court)

अनुच्छेद 216 में कहा गया है कि 'प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक या दो या अधिक ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेंगे जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करेगा।' यह ध्यान देने योग्य है कि अनुच्छेद 217 में यह प्रावधान भी किया गया है कि आवश्यकता पड़ने पर अतिरिक्त न्यायाधीशों (Acting Judges) की नियुक्ति की जा सकती है। संविधान में इस बात का उल्लेख नहीं है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की कितनी संख्या होगी? इसे राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Judges)

अनुच्छेद 217 में बताया गया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस प्रकार होगी? इसके अनुसार, राष्ट्रपति निम्नलिखित से परामर्श करने के पश्चात् न्यायाधीशों की नियुक्ति करेगा—

- भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से;
- संबंधित राज्य के राज्यपाल से;
- उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के अलावा किसी और न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से।

संविधान का यह उपबंध व्यावहारिक स्तर पर बदल चुका है। सर्वोच्च न्यायालय ने 1993 में 'न्यायाधीशों के दूसरे मामले' में इन नियुक्तियों में कार्यपालिका की भूमिका शून्य कर दी थी। इसके बाद, 1998 में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रपतीय संदर्भ (Presidential reference) पर विचार करते हुए न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानांतरण से संबंधित विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किए थे। इन सिद्धांतों के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति तथा 2 बरिष्ठतम न्यायाधीशों का मंडल (Collegium) करता है। यह समूह उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति की राय पर भी ध्यान देता है। इसके अलावा, यदि वह चाहे तो उस उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों तथा सर्वोच्च न्यायालय के उन न्यायाधीशों, जो उस उच्च न्यायालय में कार्य कर चुके

लिखित सलाह देनी होती है। सभी की लिखित सलाहें राष्ट्रपति को भेजी जाती हैं और राष्ट्रपति इस समूह द्वारा आम सहमति से दी गई सलाह के अनुसार नियुक्तियाँ करता है।

न्यायाधीशों का स्थानांतरण (Transfer of Judges)

अनुच्छेद 222 में प्रावधान है कि राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् किसी न्यायाधीश का एक उच्च न्यायालय से दूसरे में स्थानांतरण कर सकेगा। साथ में, यह प्रावधान भी किया गया है कि जितनी अवधि तक कोई न्यायाधीश स्थानांतरण के कारण अपने मूल न्यायालय से अलग स्थान पर कार्य करेगा, तब तक उसे एक क्षतिपूरक भत्ता (Compensatory Allowance) दिया जाएगा। यह भत्ता संसद विधि द्वारा निर्धारित करेगी और जब तक वह ऐसा नहीं करती है, तब तक स्थानांतरित न्यायाधीश को राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित भत्ता दिया जाएगा।

‘न्यायाधीशों से संबंधित राष्ट्रपतीय संदर्भ’ (1998) के पश्चात् इस प्रावधान का व्यावहारिक अर्थ बदल गया है। अब इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति निम्नलिखित से परामर्श करेगा—

- सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति तथा चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के मंडल (Collegium) से;
- जिस उच्च न्यायालय से न्यायाधीश का स्थानांतरण किया जाना है, उसके मुख्य न्यायमूर्ति से; तथा
- न्यायाधीश को जिस उच्च न्यायालय में स्थानांतरित किया जाना है, उसके मुख्य न्यायमूर्ति से।

नियुक्ति के मामलों की तरह स्थानांतरण के मामले में भी न्यायाधीशों को सलाह आम राय से लिया जाए तथा विचार-प्रक्रिया में शामिल प्रत्येक न्यायाधीश की लिखित सलाह राष्ट्रपति को प्रेषित की जाएगी।

न्यायाधीशों की अर्हताएँ (Qualifications of Judges)

अनुच्छेद 217 में बताया गया है कि कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय को न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने के लिए तभी अर्हित होगा यदि वह—

- भारत का नागरिक है;
- वह भारत के राष्ट्रपति की कम से कम 10 वर्षों तक व्यापक भंडार (Qualifying office) धारण कर चुका हो या कम से कम 10 वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो।

न्यायाधीशों की पदावधि (Tenure of Judges)

संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पदावधि के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है। अनुच्छेद 217 में सिर्फ इतना कहा गया है कि कोई न्यायाधीश तब तक अपना कार्य न्यायाधीश के रूप में करता रहेगा जब तक कि वह स्वयं से इस्तीफा नहीं देता। संविधान में ऐसी कोई न्यूनतम आयु नहीं बताई गई है जिससे पहले कोई व्यक्ति न्यायाधीश बनने के लिए अर्हित न हो; हालाँकि मुख्य न्यायमूर्तियों के सम्मेलन द्वारा पारित किए गए संकल्प के अनुसार उसे कम से कम 45 वर्षों का होना चाहिए।

यदि किसी न्यायाधीश की आयु के निर्धारण के संबंध में कोई प्रश्न उठता है तो इसका विनिश्चय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है और राष्ट्रपति का विनिश्चय अंतिम होता है [अनुच्छेद 217(3)]। ध्यातव्य है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु का निर्धारण संसद द्वारा निर्धारित पदाधिकारी करता है जबकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु का निर्धारण भारत का मुख्य न्यायमूर्ति।

पद की रिक्ति (Vacancy of office)

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद चार तरीकों से रिक्त हो सकता है—

- यदि वह 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है तो स्वाभाविक तौर पर सेवानिवृत्त हो जाता है।
- वह स्वच्छ से राष्ट्रपति को इस्तीफा सौंपकर पद से मुक्त हो सकता है। यदि वह त्यागपत्र तब तक नहीं देता है तो उसका

- (iv) यदि कोई न्यायाधीश साबित कदाचार या असमर्थता (Proved Misbehaviour or Incapacity) का दोषी पाया जाता है तो संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत के आधार पर उसे पद से हटया जा सकता है। इसकी प्रक्रिया ठीक वही है जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के महाभियोग के संबंध में है।

महाभियोग के प्रयास (Attempts of Impeachment)

अभी तक 2 बार उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के खिलाफ महाभियोग की कार्यवाही चलाई गई है। ये दोनों न्यायाधीश हैं— श्री सौमित्र सेन तथा श्री पी.डी. दिनाकरन। दोनों ही न्यायाधीशों ने महाभियोग प्रक्रिया पूरी होने से पहले इस्तीफा दे दिया।

शपथ अथवा प्रतिज्ञान (Oath or Affirmation)

मूल संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए शपथ का प्रारूप सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से कुछ अलग था। इसमें यह शपथ शामिल नहीं थी कि 'मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा।' शेष पूरी शपथ बिल्कुल वैसे ही थी जैसी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए निर्धारित है।

राष्ट्रीय एकता परिषद (National Integration Council) के सुझावों के आधार पर 1963 में '16वीं संविधान संशोधन' पारित किया गया जिसके द्वारा संविधान के कई प्रावधानों में 'भारत की एकता और अखंडता' वाक्यांश जोड़ा गया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लागू युक्तियुक्त निर्बंधनों (Reasonable restrictions) में भी इसे जोड़ा गया तथा राज्य-संस्थानों के मंत्रियों और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की शपथ में भी।

16वें संशोधन के लिए न्यायाधीशों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए निर्धारित है।

वेतन, भत्ते इत्यादि (Salary allowances etc.)

अनुच्छेद 14 के तहत समान को अतिरिक्त नौकरी वहाँ निधि द्वारा न्यायाधीशों के लिए वेतन, पेंशन, छुट्टी, न्यायाधीशों के नियम निर्धारित करे। नियमित वेतनकाल के अलावा विराम भोग अथवा पेंशन में न्यायाधीशों को नियमित वेतन के बाद अतिरिक्त वेतन राशियों में कटौती नहीं की जा सकती है। सन् 2006 के सिविल न्यायाधीशों के वेतन आयोग द्वारा न्यायाधीशों का वेतन 90 हजार रुपये प्रतिमाह तथा सर्व न्यायाधीशों का वेतन 80 हजार रुपये प्रतिमाह कर दिया गया है। सिविल न्यायाधीशों का वेतन 2009 में सिविल न्यायाधीशों के वेतन आयोग के समान 1-1-2006 से लागू किया जा रहा है। वेतन के अलावा नि:शुल्क आवास, चिकित्सा लाभ, ट्रेडिङ फॉन, जेसी मोबाइल भी न्यायाधीशों को दी जाती हैं। सेवानिवृत्ति के बाद वेतन आयोग द्वारा वरिष्ठ न्यायाधीशों को वेतन राशि 30% तक बढ़ा दी जाती है।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश (Acting Chief Justice)

अनुच्छेद 223 के अनुसार, राष्ट्रपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उसी उच्च न्यायालय में निम्नलिखित स्थितियों में कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है—

- (i) यदि मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो तथा नए मुख्य न्यायाधीश का चयन, नियुक्ति या पदस्थापन (Posting) न हुआ हो;
- (ii) यदि मुख्य न्यायाधीश अस्थायी रूप से अनुपस्थित हो; अथवा
- (iii) यदि मुख्य न्यायाधीश किसी भी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो।

व्यावहारिक तौर पर कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में भी वरिष्ठता के सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है।

अतिरिक्त तथा कार्यवाहक न्यायाधीश (Additional and Acting Judges)

अनुच्छेद 224 में अतिरिक्त (Additional) तथा कार्यवाहक (Acting) न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं।

यदि किसी उच्च न्यायालय में अस्थायी रूप से कार्य-वृद्धि हो गई हो या बहुत ज्यादा कार्य बकाया (pending) हो गया हो और

नियुक्त कर सकता है, जब तक स्थायी न्यायाधीश पुनः अपने कर्तव्यों को न संभाल लें। कार्यवाहक न्यायाधीश भी 62 वर्ष की आयु से अधिक होने पर यह पद धारण नहीं कर सकता।

सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Retired Judges)

अनुच्छेद 224(क) में बताया गया है कि किसी भूतपूर्व न्यायाधीश को उच्च न्यायालय की बैठकों में किस प्रकार बुलाया जा सकता है? उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को अधिकार है कि वह राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस या किसी अन्य उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद धारण कर चुके व्यक्ति से अपने न्यायालय में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकता है। इस संबंध में 3 बातें ध्यान रखना जरूरी है—

- सेवानिवृत्त न्यायाधीश की सहमति आवश्यक है अर्थात् उसे न्यायालय का काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।
- उसे वे वेतन व भत्ते मिलेंगे जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करें।
- उसे शेष न्यायाधीशों जैसी शक्तियाँ, अधिकारिताएँ तथा विशेषाधिकार उपलब्ध होंगे, किंतु तकनीकी तौर पर उसे उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नहीं माना जाएगा।

उच्च न्यायालय की अधिकारिताएँ व शक्तियाँ (Jurisdictions and powers of the High Court)

उच्च न्यायालय की अधिकारिताएँ प्रायः चली हैं जो सर्वोच्च न्यायालय की बैठकों में अंतर यह है कि उच्च न्यायालय अपनी अधिकारिताओं का प्रयोग राज्य के सीमित क्षेत्रों में अर्थात् राज्य के बाह्य क्षेत्रों में नहीं कर सकता है। उच्च न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार पूरे देश पर है। उच्च न्यायालय को मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए (Original Jurisdiction) से जुड़े मामलों पर अधिकारिता नहीं है, जो सर्वोच्च न्यायालय को मूल अधिकारों तथा विशिष्ट अधिकारों द्वारा संरक्षित है।

उच्च न्यायालय की विधित्त अधिकारिताओं तथा शक्तियों को विस्तृत रूप में निम्नलिखित है—

(1) मूल अधिकारिता (Original Jurisdiction)

इसका अर्थ उन मामलों से है जो सीधे उच्च न्यायालय में लाए जा सकते हैं। निर्माणाख्त मामलों में उच्च न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग करता है।

- नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन से जुड़े मामले।
- यदि किसी अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Court) में चलाया गया मामला ऐसी प्रश्नोत्पत्ति का सारवान प्रश्न (Substantial Question of Law) उत्पन्न करता है जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा सुनी जा सकती है।
- उच्च न्यायालयों (कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और मद्रास उच्च न्यायालयों) के पास उच्च न्यायालय के सिविल मामलों के संबंध में भी मूल अधिकारिता है।
- यदि राजस्व से जुड़े किसी मामले में उच्च न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता दी गई हो।
- संसद सदस्यों तथा राज्य विधानमंडल के सदस्यों के निर्वाचन से जुड़े मामले।

ध्यातव्य है कि 1973 से पहले कलकत्ता, बम्बई और मद्रास उच्च न्यायालयों के पास आपराधिक मामलों में भी आरंभिक अधिकारिता थी, किंतु 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' (Criminal procedure code, 1973) के द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया है। अब आपराधिक मामलों की शुरुआत अधीनस्थ न्यायालयों में ही हो सकती है।

(2) रिट अधिकारिता (Writ Jurisdiction)

अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को रिट अधिकारिता दी गई है जो इंग्लैंड की विशेषाधिकार रिटों (Prerogative writs) से प्रेरित है। इसके तहत, उच्च न्यायालय किसी अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate court), अधिकरण (Tribunal) या राज्य के किसी भी प्राधिकारी (Authority) को ऐसी रिटें (Writs), आदेश (Orders) तथा निर्देश (Directions) जारी कर सकता है जो नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन या 'किसी अन्य प्रयोजन' के लिए आवश्यक हों। ध्यातव्य है कि यही शक्ति अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को भी दी गई है किंतु वह सिर्फ मूल अधिकारों के प्रवर्तन तक सीमित है; जबकि अनुच्छेद 226 में 'अन्य प्रयोजन के लिए' वाक्यांश का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है कि उच्च न्यायालय मूल अधिकारों के अलावा विधिक अधिकारों (Legal Rights) के प्रवर्तन के लिए भी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है। स्पष्ट है कि विषयवस्तु की व्यापकता की दृष्टि से उच्च न्यायालय की

ध्यातव्य है कि उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का विस्तार चाहे ज़्यादा हो, पर मूल अधिकारों के संदर्भ में दोनों की रिट अधिकारिताएँ परस्पर समवर्ती हैं। इसका अर्थ है कि मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए कोई नागरिक उच्च या सर्वोच्च किसी भी न्यायालय में जा सकता है और दोनों का प्रभाव समान होता है। ऐसा नहीं है कि उच्च न्यायालय से रिट याचिका खारिज होने पर वही याचिका या उसकी अपील सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत की जा सके। सिर्फ बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) रिट से जुड़ी याचिकाओं में सर्वोच्च न्यायालय ने इस नियम से विचलन स्वीकार किया है। शेष मामलों में दोनों न्यायालयों की रिट अधिकारिता समवर्ती है।

'एल. चन्द्र कुमार के मामले' (1997) में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता 'संविधान के मूल ढाँचे' (Basic structure of constitution) में शामिल है जिसे न तो कम किया जा सकता है और न ही छीना जा सकता है।

अनुच्छेद 226 के संदर्भ में एक जटिल प्रश्न यह था कि इसका प्रयोग राज्य की सीमाओं के भीतर ही किया जा सकता है या उसके बाहर भी? 1953 में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 226 की व्याख्या करते हुए निर्धारित किया था कि उच्च न्यायालय को अपने राज्यक्षेत्र से बाहर स्थित किसी न्यायालय या प्राधिकारी को रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की शक्ति नहीं है। विधि आयोग (Law Commission) ने सरकार को सलाह दी कि अनुच्छेद 226 पर आरोपित सीमाओं में ढील दी जानी चाहिए। इस सिफारिश पर अपल करते हुए संसद ने '15वें संविधान संशोधन, 1963' के माध्यम से अनुच्छेद 226 में संशोधन किया। संशोधित अनुच्छेद 226 के अनुसार अब उच्च न्यायालय किसी ऐसी सरकार या प्राधिकारी (Authority) या व्यक्ति के विरुद्ध भी रिट जारी कर सकता है जिसका कार्य-स्थान या निवास-स्थान उसके राज्यक्षेत्र से बाहर हो; किंतु शर्त यह है कि वाद-हेतुक (Cause of action) पूर्णतः या भागतः उस राज्य के भीतर उत्पन्न हुआ होना चाहिए जिसने प्राधिकारी या व्यक्ति को नियुक्त या नियंत्रित करने की शक्ति दी है। अब रिट याचिका ग्रहण करने के लिए भी यही देखा जाता है कि वाद-हेतुक (Cause of action) पूर्णतः या भागतः उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर उत्पन्न हुआ है या नहीं?

यदि अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 32 के तहत क्रमशः उच्च व सर्वोच्च न्यायालयों को दी गई रिट अधिकारिताओं की तुलना करें तो निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं:

- (i) सर्वोच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के दायरे पर विस्तार है जबकि उच्च न्यायालय की अधिकारिता अपने राज्य की सीमाओं के अंतर्गत ही तक सीमित रहती है। यहाँ वाद-हेतुक (Cause of action) पूर्णतः या भागतः उत्पन्न हुआ हो।
- (ii) सर्वोच्च न्यायालय अपने मूल अधिकारों के अंतर्गत रिट जारी कर सकता है जबकि उच्च न्यायालय केस प्रयोजनों के लिए भी रिट जारी कर सकता है।
- (iii) अनुच्छेद 32 द्वारा मूल अधिकारिता के अंतर्गत मूल अधिकारों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय के पास (iii) में शामिल है। इसका अर्थ है कि मूल अधिकारों के उल्लंघन की वजह से कोर्टों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में आश्रय (relief) मांगना स्वयं में मूल अधिकार है जिससे न्यायालय द्वारा उचित उपायों के माध्यम से अनुच्छेद 32 द्वारा प्रदत्त उपाय (remedy) मूल अधिकार नहीं है, वह उच्च न्यायालय के विवेकाधीन है।

(3) अपीलीय अधिकारिता (Appellate Jurisdiction)

उच्च न्यायालय मूलतः अपीलीय न्यायालय ही है जो अधीनस्थ न्यायालयों (Subordinate Courts) के निर्णयों से संबंधित अपीलें सुनता है। इसकी अपीलीय अधिकारिता के सिविल तथा आपराधिक पक्ष निम्नलिखित हैं—

- (i) सिविल मामलों में उच्च न्यायालय निम्नलिखित अपीलों सुनता है—

- (क) यदि कोई मामला जिला न्यायालय या उसके किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है तथा विषय-वस्तु का मूल्य संबद्ध अधिनियम में निर्दिष्ट राशि से अधिक है तो पहली अपील सीधे उच्च न्यायालय में की जा सकती है।
- (ख) कई मामलों में उच्च न्यायालय दूसरी अपील सुनता है। ये वे वाद हैं जिनमें अधीनस्थ न्यायाधिकार के एक स्तर के न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध जिला न्यायालय के स्तर पर पहली अपील की जा चुकी होती है।
- (ग) कलकत्ता, बम्बई और मद्रास उच्च न्यायालयों में प्रावधान है कि एक न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ (Division bench) के समक्ष अपील की जा सकती है।

- (घ) अनुच्छेद 323(क) तथा 323(ख) के अधीन स्थापित प्रत्येक अधिकरण (Tribunal) के निर्णयों के विरुद्ध उस राज्य

के खिलाफ सिर्फ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ii) आपराधिक मामलों में उच्च न्यायालय की अपील की अधिकारिता 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973)' (Criminal Procedure Code, 1973) से निर्धारित होती है। मोटे तौर पर निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय अपील पर विचार करता है-

- (क) यदि सत्र न्यायालय (Sessions Court) या अतिरिक्त सत्र न्यायालय (Additional Sessions Court) के निर्णय में किसी व्यक्ति को 7 वर्ष या उससे अधिक कारावास के दंड का आदेश दिया गया है तो उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- (ख) यदि सत्र न्यायालय या अतिरिक्त सत्र न्यायालय ने किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड देने की घोषणा की है तो वह व्यक्ति चाहे अपील करे या नहीं, उच्च न्यायालय द्वारा दण्ड की पुष्टि किए बिना उसे यह दण्ड नहीं दिया जा सकता।
- (ग) सहायक सत्र न्यायाधीश (Assistant Sessions Judge), महानगर मजिस्ट्रेट (Metropolitan Magistrate) या अन्य मजिस्ट्रेटों के निर्णयों से जुड़े वे मामले जो 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता' में अपील हेतु विनिर्दिष्ट हैं।

(4) अधीक्षण संबंधी अधिकारिता (Jurisdiction of Superintendence):

अनुच्छेद 227 में उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में अधीक्षण (Superintendence) की अधिकारिता दी गई है। इस शक्ति में न्यायिक तथा प्रशासनिक दोनों प्रकार के अधीक्षण शामिल हैं। यह अधिकारिता उसके राज्यक्षेत्र में आने वाले सभी न्यायालयों और अधिकारणों (Tribunals) पर लागू होती है। उच्च न्यायालयों के निर्णयों की अपील उच्च न्यायालय सुनता हो या नहीं। इसका एक ही अपवाद है यदि प्रमाणित हो कि किसी विधिवत या उसके अधिनियमित कोई न्यायालय या अधिकरण उस राज्यक्षेत्र में आता हो तो उच्च न्यायालय उस पर अधीक्षण की शक्ति नहीं रखता।

ध्यातव्य है कि संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालयों या अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में सिर्फ न्यायिक अधीक्षण की शक्ति दी गई है। प्रशासनिक अधीक्षण की शक्ति इस दृष्टि से अनुच्छेद 227 उच्च न्यायालयों की निशिष्टता से खारिज करता है।

अनुच्छेद 227 में बताया गया है कि अधीक्षण की शक्ति के अंतर्गत उच्च न्यायालय निम्नलिखित अनुसूची उठा सकता है-

- (i) वकीलों, जजों तथा शोरफ आदि का नियंत्रण करने वाली नियमों की सारणी निर्धारित कर सकता है।
- (ii) न्यायालयों के प्रशासनिक कार्यवाहियों के नियंत्रण के लिए साधारण नियमों और आदेशों बना सकता है।
- (iii) ऐसे न्यायालयों के आलेखों को दफ्तरी प्रमाण के रूप में प्रयोग (Records, Judicial Documents) और लेखाओं (Accounts) के प्रारूप निर्धारित कर सकता है।
- (iv) ऐसे न्यायालयों से विवरण (Returns) प्रगट कर सकता है।

अनुच्छेद 228 में उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों पर अधीक्षण की शक्ति का ही विस्तार है। इसके अनुसार, यदि उच्च न्यायालय को यह समाधान हो जाता है कि उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय में लंबित किसी मामले में संविधान के निर्वाचन के बारे में 'विधि का सारवान प्रश्न' (Substantial Question of Law) निहित है जिसका निर्धारण इस मामले के निपटारे के लिए ज़रूरी है तो वह ऐसे मामले को अपने पास मंगवा लेगा और-

- (i) या तो मामले को स्वयं ही निपटाएगा, अथवा
- (ii) वह 'विधि के सारवान प्रश्न' का निर्धारण करके उस निर्णय की प्रतिलिपि के साथ मामला वापस उस न्यायालय को लौटा देगा तथा वह न्यायालय इस निर्वाचन (interpretation) के आलोक में उस मामले को निपटाएगा।

(5) अभिलेख न्यायालय की शक्तियाँ (Powers of the Court of Records)

जिस तरह अनुच्छेद 129 में सर्वोच्च न्यायालय को अभिलेख न्यायालय का दर्जा दिया गया है, वैसे ही अनुच्छेद 215 में उच्च न्यायालय को। इसका अर्थ है कि उसके सभी निर्णयों, कार्यवाहियों आदि को शाश्वत स्मृति (Eternal memory) में सहेजा जाता है ताकि भविष्य में उनका प्रयोग पूर्व-उदाहरणों (Precedents) की तरह किया जा सके।

अभिलेख न्यायालय होने में यह भी निहित है कि उच्च न्यायालय के पास अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति है जो 'न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971' (Contempt of Courts act, 1971) से अनुशासित होती है।

(6) न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति (Power of Judicial Review)

226 से यह शक्ति निगमित होती है। उच्च न्यायालय को यह शक्ति अनुच्छेद 226 से प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत वह अपनी अधिकारिता में आने वाले राज्य की विधियों व आदेशों के साथ-साथ संघ की विधियों व आदेशों का भी पुनर्विलोकन निम्नलिखित आधारों पर कर सकता है—

- (i) यदि किसी विधि या आदेश से मूल अधिकारों का हनन होता हो,
- (ii) यदि कोई विधि या आदेश संविधान के मूल ढाँचे या अन्य संवैधानिक उपबंधों के खिलाफ हो,
- (iii) यदि विधि पारित करने वाली संस्था या आदेश जारी करने वाले प्राधिकारी ने अपनी अधिकारिता से बाहर जाकर कार्य किया हो।

(7) अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण की शक्ति (Power of Controlling Subordinate Courts)

अनुच्छेद 235 में उच्च न्यायालयों को अपने राज्यक्षेत्र के भीतर स्थित अधीनस्थ न्यायालयों, जिनमें जिला न्यायालय तथा उनसे नीचे के न्यायालय शामिल हैं, पर नियंत्रण की विस्तृत शक्तियाँ दी गई हैं। इन शक्तियों में न्यायाधीशों की नियुक्ति की सिफारिश करना, उनके स्थानांतरण, प्रोन्नति या निर्लंबन का आदेश देना; उनकी वरिष्ठता कम करने या अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश देने जैसी शक्तियाँ शामिल हैं। इन शक्तियों की विस्तृत चर्चा 'अधीनस्थ न्यायालय' (Subordinate Courts) शीर्षक के अंतर्गत की गई है।

उच्च न्यायालयों की स्वतंत्रता (*Independence of the High Courts*)

सविधान में कई ऐसे प्रावधान हैं जिनके अन्तर्गत राज्यपालों को राज्य शासनाधीन निकायों के प्रवर्ततापूर्वक कार्य करने की स्थितियाँ प्रदान करती हैं। इसे निम्नलिखित सविधानों के अन्तर्गत समझा जा सकता है—

- (i) न्यायाधीशों की नियुक्ति और 1993 के अधिनियम और 1993 के राष्ट्रपति संसद (Presidential Reference) को बाद उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के नियुक्ति की शक्ति कार्यपालिका के हाथों से पूर्णतः हटाने का वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का एक समूह (Collegium) द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।
- (ii) कार्यपालिका द्वारा सार्वजनिक-उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को भर्ती करने की आधिकारिक प्रक्रिया को सुरक्षा दी गई है जिसे विधायिका या कार्यपालिका को नहीं स्वीकारा जा सकता। इससे पहले उन्हें यह अधिकार था कि वे अपने कानूनकर्मियों तथा अन्य वित्त-विवरणित कदाचार या असहिष्णुता (Intolerance Behaviour or Intolerance) के आधार पर उनके न्यायिक जीवन को अनिष्ट पहुँचाने हेतु दबाव डाल सकते थे। यह व्यवस्था अब समाप्त हो गई है।
- (iii) वेतन आदि की परामर्श उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन तथा उच्च न्यायालय के सभी न्यायिक अधिकारियों को अनुच्छेद 229 के तहत संबंधित राज्य के सचिव न्याय (Secretary to Government) को सौंप दिया गया है। चूंकि वेतन (Salary and Pension) घोषित किया गया है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 221 के तहत कहा गया है कि न्यायाधीशों को उनके न्यायिक जीवन के दौरान उनके वेतन व भत्तों में [वित्तीय आपात (अनुच्छेद 360) की स्थिति को छोड़कर] कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
- (iv) अवमानना पर दंड देने की शक्ति— अनुच्छेद 215 उच्च न्यायालयों को अभिलेख न्यायालय (Court of records) घोषित करते हुए अपनी अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति प्रदान करता है। संसद ने इस शक्ति को स्पष्ट करने के लिए 'न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971' (Contempt of Courts act, 1971) पारित किया है।
- (v) आचरण पर बहस नहीं— अनुच्छेद 121 में स्पष्ट किया गया है कि सर्वोच्च या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कार्य के निर्वहन के संबंध में किए गए आचरण पर संसद में बहस नहीं की जाएगी। इसका सिर्फ एक ही अपवाद है कि जब किसी न्यायाधीश के विरुद्ध महाभियोग की प्रक्रिया चल रही हो तो ऐसी बहस की जा सकती है।
- (vi) कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतंत्रता— पहले कार्यपालिका के कुछ अधिकारी न्यायिक कार्य भी करते थे। 1973 में संसद ने 'आपाधिक प्रक्रिया संहिता' (Cr.P.C.—Criminal Procedure Code) पारित करके यह सुनिश्चित कर दिया कि कार्यपालिका का कोई भी अधिकारी न्यायिक शक्तियाँ धारण नहीं करेगा।
- (vii) सेवानिवृत्ति के बाद वकालत पर रोक— संविधान के अनुच्छेद 220 के तहत उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए नियम है कि वे सेवानिवृत्ति के बाद सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य उच्च न्यायालयों के अलावा भारत के किसी भी न्यायालय या अधिकरण (Tribunal) में वकालत नहीं कर सकते।
- (viii) स्टाफ नियुक्त करने की स्वतंत्रता— अनुच्छेद 229 के अन्तर्गत प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को शक्ति दी गई है कि वह न्यायालय के अधिकारियों व सेवकों की नियुक्ति कर सके। न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों की सेवा-शर्तें निर्धारित करने का अधिकार भी मुख्य न्यायाधीश को दिया गया है।

अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts)

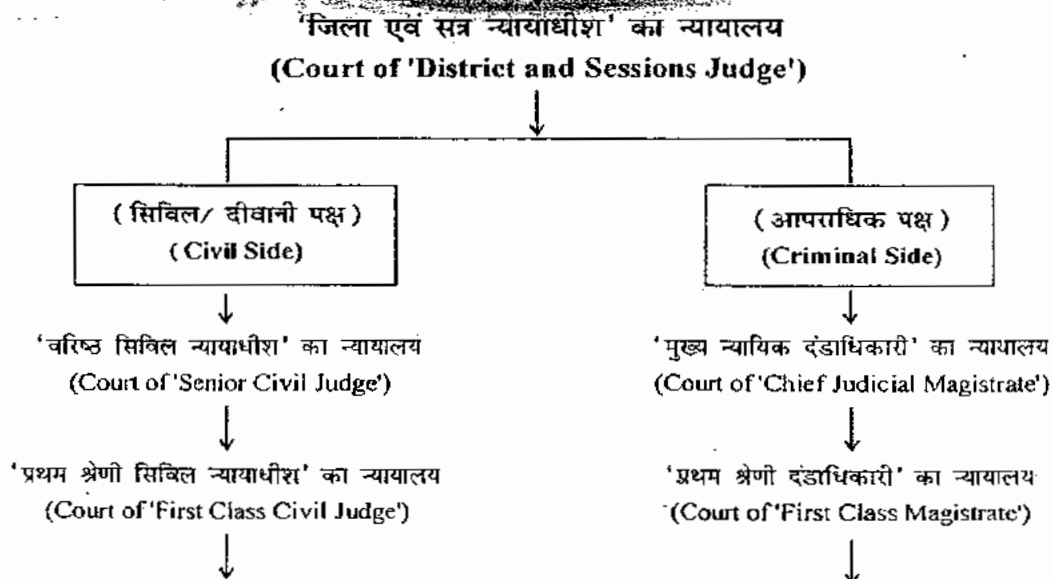
उच्च न्यायालय के नीचे के सोपानक्रम (Hierarchy) पर स्थित सभी न्यायालयों को- 'निम्नतर न्यायालय' (Lower Courts) या 'अधीनस्थ न्यायालय' (Subordinate Courts) कहा जाता है। इन्हें 'अधीनस्थ न्यायालय' इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये उच्च न्यायालय के अधीन होते हैं। ध्यातव्य है कि उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन नहीं होते, किंतु अधीनस्थ न्यायालय उच्च न्यायालयों के प्रशासनिक तथा न्यायिक नियंत्रण के अधीन होते हैं।

अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में संविधान में सिर्फ संक्षिप्त रूपरेखा दी गई है। संविधान के भाग-VI के अध्याय-6 का शीर्षक है- 'अधीनस्थ न्यायालय' (Subordinate Courts)। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 233-237 शामिल हैं। इनके अलावा, इन न्यायालयों की अधिकारिताएँ, शक्तियाँ और कार्य मुख्यतः 'सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908' (Civil Procedure Code, 1908) तथा 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' (Criminal Procedure Code, 1973) से तय होते हैं। संसद द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों के द्वारा भी इन न्यायालयों को कुछ अधिकारिताएँ दी गई हैं। उदाहरण के लिए, 'औद्योगिक विवाद अधिनियम' (Industrial Disputes Act) तथा 'हिन्दू विवाह अधिनियम' (Hindu Marriage Act)।

अधीनस्थ न्यायपालिका का ढांचा (Structure of Subordinate Judiciary)

अधीनस्थ न्यायपालिका का संरचनात्मक ढांचा सभी राज्यों में पूर्णतः समान नहीं है। हालाँकि उनमें कुछ समानताएँ देखी जा सकती हैं। सामान्यतः प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के नीचे सिविल और आपराधिक न्यायालयों का विन्यास एक तरह का होता है। संविधान समीक्षा आयोग (1992) ने संसद द्वारा उच्च न्यायालयों के अधीनस्थ सभी न्यायालयों को दो सुविधित स्तरों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

वर्तमान में अधीनस्थ न्यायालयों के सोपानक्रम में निम्नलिखित चार स्तरों में समूचा जा सकता है। हालाँकि जरूरी नहीं है कि सभी राज्यों में यह ढांचा पूर्णतः अपनाया हो।



जिला एवं सत्र-न्यायाधीश (District and Sessions Judge)

इस रेखाचित्र से स्पष्ट है कि न्यायालयों के सोपानक्रम (Hierarchy) में उच्च न्यायालय के एकदम नीचे 'जिला एवं सत्र न्यायाधीश' (District and Sessions Judge) का न्यायालय आता है। जिला न्यायाधीश (District Judge) किसी जिले का सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी होता है। उसके पास सिविल और आपराधिक दोनों मामलों में मूल तथा अपीलीय अधिकारिता होती है। सिविल अधिकारिता केंद्र व राज्य के अधिनियमों से तय होती है जबकि आपराधिक अधिकारिता मुख्यतः 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973' से और गौणतः कुछ अधिनियमों से।

जब जिला व सत्र न्यायाधीश सिविल मामले देखता है तो उसे 'जिला न्यायाधीश' (District Judge) कहते हैं और आपराधिक मामलों के विचारण के दौरान उसे 'सत्र न्यायाधीश' (Sessions Judge) कहा जाता है। दोनों स्थितियों के अनुसार उसके न्यायालय का नाम भी 'जिला न्यायालय' (District Court) तथा 'सत्र न्यायालय' (Sessions Court) हो जाता है।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश, जिसे प्रचलित भाषा में 'जिला न्यायाधीश' (District Judge) कहते हैं, के पास न्यायिक और प्रशासनिक दोनों प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। वह जिले के अन्य सभी अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण करने की व्यापक शक्ति रखता है। सिविल मामलों में उसकी अधिकारिता प्रायः अनंत होती है अर्थात् वाद (Suit) चाहे कितने भी अधिक मूल्य का हो, वह उसे सुनने की अधिकारिता रखता है। आपराधिक मामलों में भी उसे यह शक्ति प्राप्त है कि वह दोषसिद्ध (Convicted) अपराधी को उम्रकैद और मृत्युदंड जैसी सजा दे सके, हालाँकि उसके द्वारा दिए गए मृत्युदंड पर अमल तभी होता है जब संबंधित उच्च न्यायालय उसका अनुमोदन कर देता है। यदि मृत्युदंड का आदेश पाने वाला व्यक्ति अपील न करना चाहे तो भी उच्च न्यायालय के अनुमोदन के बिना मृत्युदंड के आदेश को लागू नहीं किया जा सकता।

सिविल मामलों में अन्य न्यायाधीश (Other Judges in Civil Cases)

ऊपर दिए गए रेखाचित्र से स्पष्ट है कि सिविल मामलों के विचारण करने के लिये न्यायालयों की एक श्रृंखला का अलाप धारा है। यह धारा आपराधिक न्यायालयों की तरह सुपरिभाषित नहीं है क्योंकि जिस तरह 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता' में न्यायालयों का सोपानक्रम स्पष्ट किया गया है, वैसा ही सिविल प्रक्रिया संहिता में नहीं। मुख्य रूप से दो विधानमंडल अधिनियमों द्वारा सिविल न्यायालयों की अधिकारिता सुनिश्चित करता है।

आमतौर पर सिविल न्यायालयों की धारा में सबसे नीचे 'मैजिस्ट्रेट' या 'जूनियर सिविल जज' (Junior Civil Judge) का न्यायालय होता है जिसके पास सीमित मात्रा में मूल्य (सामान्यतः ₹ 10,000 से कम) के वादों का विचारण करने की अधिकारिता होती है। उसके एकदम ऊपर 'प्रथम श्रेणी सिविल जज' (First Class Civil Judge) का न्यायालय होता है जिसके पास अधिक मूल्य (Case Value) की दृष्टि से प्रायः असीमित अधिकारिता होती है। इन दोनों में वाद मूल्य के अनुसार सीमाबद्ध अधिकारिता प्रथम श्रेणी सिविल न्यायाधीश की न देकर 'वरिष्ठ सिविल जज' (Senior Civil Judge) को दी जाती है जो प्रथम श्रेणी सिविल जज के ऊपर होता है।

इसके ऊपर 'जिला न्यायाधीश' का न्यायालय आता है जो जिले के सिविल न्यायाधीश के रूप में कार्यरत सर्वोच्च सिविल न्यायाधीश होता है। वह नीचे के कुछ न्यायाधीशों के निर्णयों की अपील सुनने का अधिकार भी रखता है।

प्रेजीडेंसी नगरों में 'लघु वाद न्यायालय' (Small Cause Courts) भी काम करते हैं। दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई तथा मुंबई को ही पहले 'प्रेजीडेंसी नगर' कहा जाता था। 'लघु वाद न्यायालयों' (Small Cause Courts) में बहुत कम राशि के सिविल मामले संक्षिप्त प्रक्रिया (Summary procedure) के माध्यम से निपटाए जाते हैं।

चारों महानगरों (दिल्ली, मुंबई, कोलकाता तथा चेन्नई) के उच्च न्यायालयों को कुछ सिविल मामलों में आंशिक अधिकारिता दी गई है। इन्हें छोड़कर, उच्च न्यायालयों का प्रमुख कार्य 'जिला न्यायाधीश' के निर्णयों की अपील सुनना है।

यद्यपि सिविल न्यायालयों को अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर उत्पन्न होने वाले वादों पर विचार करने का अधिकार होता है, पर यदि संसद या राज्य विधानमंडल ने किसी अधिनियम द्वारा कुछ मामले किसी विशेष न्यायालय या अधिकरण (Tribunal) को सौंप दिए हों तो सिविल न्यायालय की अधिकारिता उन विषयों पर नहीं रहती।

आपराधिक मामलों में अन्य न्यायाधीश (Other Judges in Criminal Cases)

1973 में संशोधित 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता' (Criminal Procedure Code) के पारित होने से पहले आपराधिक मामलों उच्च न्यायालयों में भी शुरू किए जा सकते थे; पर अब ये सभी मामले अधीनस्थ न्यायालयों में ही शुरू होते हैं।

सबसे निचले स्तर पर 'द्वितीय श्रेणी न्यायिक दंडाधिकारी' (Second Class Judicial Magistrate) की अदालत होती है जो 1 वर्ष तक का कारावास तथा 1000 रु. तक का आर्थिक दंड दे सकता है। उसके ऊपर 'प्रथम श्रेणी न्यायिक दंडाधिकारी' (First Class Judicial Magistrate) की अदालत होती है जो 3 वर्ष तक का कारावास तथा 5000 रु. तक का आर्थिक दंड दे सकता है। उसके

लिए अधिकृत है। इसके संबंध में आर्थिक दंड की कोई सीमा नहीं लगाई गई है। वह नीचे के कुछ दंडाधिकारियों के निर्णयों पर अपील भी सुन सकता है।

इसके ऊपर 'सत्र न्यायाधीश का न्यायालय' (Court of Sessions Judge) होता है जो किसी जिले में आपराधिक मामलों का सबसे ऊँचा न्यायालय है। यह कोई भी सजा (उम्रकैद तथा मृत्युदंड सहित) देने करने की शक्ति रखता है हालाँकि इसके द्वारा दिए गए मृत्युदंड पर तब तक अमल नहीं किया जा सकता जब तक संबद्ध उच्च न्यायालय उस पर स्वीकृति प्रदान न कर दे। इसकी मूल अधिकारिता में गंभीर अपराध शामिल हैं। साथ ही, यह नीचे के न्यायालयों की अपीलों भी सुनता है।

सत्र न्यायाधीश के ऊपरी सोपानक्रम पर उच्च न्यायालय है तथा उनके ऊपर सर्वोच्च न्यायालय। ये दोनों आपराधिक मामलों के संदर्भ में केवल अपीलीय न्यायालय हैं।

संवैधानिक उपबंध (Constitutional Provisions)

संविधान के अनुच्छेद 233-237 तक अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। अनुच्छेद 233 का संबंध जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति से है, अनुच्छेद 234 का न्यायिक सेवा के अन्य पदों पर नियुक्ति से तथा अनुच्छेद 235 का अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय के नियंत्रण की शक्ति से। अनुच्छेद 236 में कुछ तकनीकी शब्दों के अर्थ का स्पष्टीकरण दिया गया है तथा अनुच्छेद 237 में राज्यपाल की विशिष्ट शक्तियों की चर्चा की गई है।

अनुच्छेद 233-235 के उपबंधों की वर्तमान स्थिति इस प्रकार है-

- (i) 'जिला न्यायाधीश' पद पर नियुक्ति पर सरकार का हक है, पर उच्च न्यायालय की सलाह माँगी जायेगी। राज्यपाल के लिए यह सलाह मान्य अनिवार्य नहीं है, परन्तु जिला न्यायाधीशों की सेवाओं को सार्वजनिक कारणों से समाप्त करने के लिए राज्यपाल द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं की जा सकती है जिसके नाम की सलाह उच्च न्यायालय ने नहीं दी है।
- (ii) जिला न्यायाधीशों को नियुक्त करने पर नियुक्ति विभाग करता है पर सरकार द्वारा सेवा आयोगों तथा उच्च न्यायालय की सलाह के अनुसार चयन प्रक्रिया में उच्च न्यायालयों का एक प्रतिनिधि जरूर शामिल होता है तथा इसकी परामर्शकारी होती है। बहुत कम मामलों में राज्यपाल द्वारा राज्य को बुलाया जा सकता है।
- (iii) सभी न्यायाधीशों को स्थानांतरण उन्हें स्थायी करने प्रोत्साहित है। उन्हें इसी तथा निलंबित करने का अधिकार उच्च न्यायालय के पास है और वह इस मामलों में उच्च न्यायाधीशों की सेवा समाप्त करने तथा विरामता कम करने का मामला रखेगा जो कि राज्यपाल की सलाह देता है। राज्यपाल को भी उच्च न्यायालय की सलाह से राज्य से सेवा आयोग से राय लेने का अधिकार नहीं है।

एकरूपता लाने के प्रयास (Attempts to bring uniformity)

उपरोक्त चर्चाओं से स्पष्ट है कि अधीनस्थ न्यायपालिका में अभी तक एकरूपता नहीं लाई जा सकी है। इसके कारण विभिन्न राज्यों के न्यायाधीशों की सेवा-शर्तों आदि में भी अंतराल आ जाता है। केंद्र सरकार इसमें कुछ विशेष नहीं कर सकती है क्योंकि यह राज्य-सूची का विषय है।

गौरतलब है कि सर्वोच्च न्यायालय ने 'अखिल भारतीय न्यायाधीश संगठन बनाम भारत संघ' (1992) मामले के निर्णय द्वारा अधीनस्थ न्यायपालिका की संरचना में एकरूपता लाने की कोशिश की थी। इस निर्णय में उसने निम्नलिखित प्रमुख निर्देश जारी किए थे-

- (i) सरकार 'अखिल भारतीय न्यायिक सेवा' (All India Judicial Service) की स्थापना सुनिश्चित करे।
- (ii) सभी राज्यों में अधीनस्थ न्यायपालिका से संबद्ध प्रत्येक न्यायिक अधिकारी की सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष की जाए।
- (iii) सिविल और आपराधिक सेवाओं से जुड़े न्यायाधीशों के पदनामों (Designations) में एकरूपता लाई जाए।

अखिल भारतीय न्यायिक सेवा (All India Judicial Service)

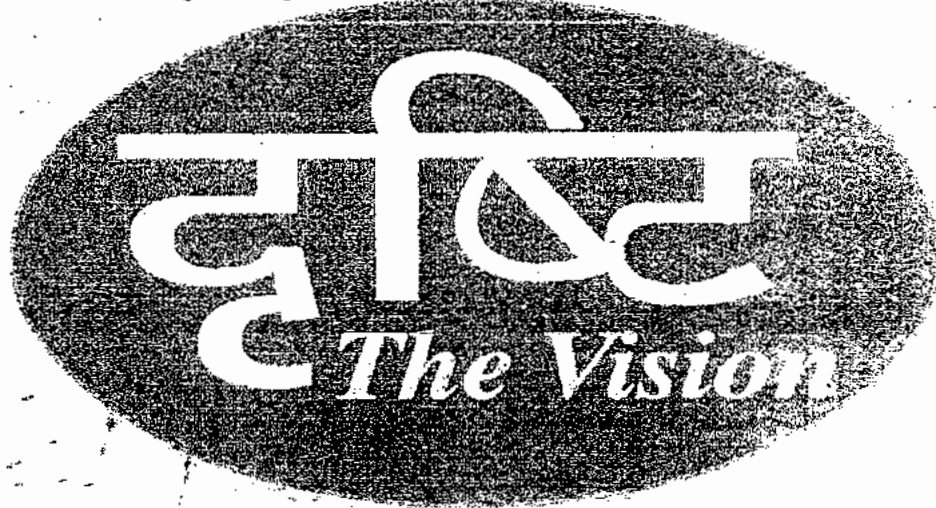
भारत में पिछले 5 दशकों से 'अखिल भारतीय न्यायिक सेवा' के गठन को लेकर विवाद चल रहा है।

भारतीय न्यायिक सेवा के गठन का व्यावहारिक अर्थ यह है कि केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त कोई संस्था [जैसे, 'संघ लोक सेवा आयोग' (UPSC) या 'राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग' (NJSC)] देश भर में न्यायिक सेवा के लिए परीक्षा आयोजित करेगी, जिसमें चुने गए न्यायाधीशों को केंद्र सरकार द्वारा प्रशिक्षण दिया जाएगा। प्रत्येक चयनित न्यायाधीश को केंद्र के तौर पर कोई राज्य आवंटित किया

(इस संदर्भ में 'उच्च न्यायालय') ऐसे न्यायाधीशों का स्थानांतरण इत्यादि कर सकेंगे, किन्तु अंतिम रूप से वे केन्द्र सरकार की सेवा-शर्तों के अधीन होंगे। ऐसे न्यायाधीशों को समयबद्ध तरीके से प्रोन्नति का लाभ मिलेगा और प्रायः वे सर्वोच्च न्यायालय तक जाने के लिए अर्हित होंगे। माना जा रहा है कि युवा तथा योग्य न्यायाधीशों की नियुक्ति से न सिर्फ न्यायालयों में लंबित शिकायतें भरी जा सकेंगी बल्कि न्याय प्रदान करने की गति और गुणवत्ता में भी सुधार होगा।

वर्तमान स्थिति यह है कि अधीनस्थ न्यायपालिका में चयनित होने के बाद किसी न्यायिक अधिकारी को जिला न्यायाधीश बनने में कम से कम 10 वर्ष लग जाते हैं। बहुत कम जिला न्यायाधीशों को उच्च न्यायालय तक पहुँचने का मौका मिलता है और सर्वोच्च न्यायालय तो उनमें से कोई नहीं पहुँच पाता। उच्च और सर्वोच्च न्यायालयों में अधिकांश नियुक्तियाँ ऐसे लोगों की होती हैं जो वकालत की पृष्ठभूमि से आते हैं, न कि अधीनस्थ न्यायालयों से। ऐसी नियुक्तियों में भाई-भतीजावाद काफी मात्रा में दिखाई पड़ता है। नियुक्तियों तथा प्रोन्नतियों में निहित अताकिता तथा अव्यवस्था का परिणाम यह होता है कि विधि के अच्छे विद्यार्थी धन व सुविधाओं के कारण 'कॉर्पोरेट लॉ' जैसे क्षेत्रों में जाने को प्राथमिकता देते हैं, न्यायाधीश नहीं बनना चाहते। न्यायालयों में योग्य न्यायाधीशों को लाने के लिए जरूरी है कि उनकी सेवा शर्तें आकर्षक हों। भारतीय न्यायिक सेवा (IJS) इन्हीं समस्याओं के समाधान का उपाय है।

वर्तमान केन्द्र सरकार ने हाल ही में (अक्टूबर, 2012 में) घोषणा की है कि वह बहुत जल्द 'अखिल भारतीय न्यायिक सेवा' का गठन करने वाली है। विधि पंजी की घोषणा के मुताबिक जिला न्यायाधीशों के 25% पद सीधी भर्तियों से भरे जाएंगे। उम्मीद है कि यह कदम जल्दी ही उठाया जाएगा, हालाँकि यह जिज्ञासा का विषय है कि कई राज्यस्तरीय क्षेत्रीय दलों के समर्थन पर टिकी गठबंधन सरकार इसके लिए आवश्यक बहुमत कैसे जुटाएगी?



अधिकरण (Tribunals)

'अधिकरण' या 'न्यायाधिकरण' न्यायालयों से मिलते-जुलते निकाय हैं जो न्यायनिर्णयन (Adjudication) करते हैं। न्यायनिर्णयन (Adjudication) वह वैधानिक प्रक्रिया है जिसमें न्यायाधीश या मध्यस्थ (Arbiter) विवाद में शामिल दोनों पक्षों के तर्कों व साक्ष्यों के आधार पर तय करता है कि उनके क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं? यह विवाद दो प्राइवेट पक्षकारों (Private parties) में भी हो सकता है; एक प्राइवेट पक्षकार तथा सरकारी संस्थाओं के बीच भी; तथा सरकारी कर्मचारियों व सरकारी संस्थाओं के बीच भी। सामान्यतः अधिकरण किसी विशेष विभाग से जुड़ी शिकायतों तथा अर्द्ध-न्यायिक विवादों (Quasi-judicial disputes) का समाधान करने के लिए बनाए जाते हैं। सभी न्यायालय अधिकरण होते हैं क्योंकि उनके पास अधिकरणों को प्राप्त सभी शक्तियाँ होती हैं किन्तु सभी अधिकरण न्यायालय नहीं होते। वे न्यायालय के कितने नजदीक हैं, यह उस अधिनियम से तय होता है जिसके तहत उनका निर्माण किया गया है।

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)

पूल संविधान में अधिकारों को संबोधित करने के संबंध में नहीं था। सरकार ने 1970 के बाद समय-समय पर आवश्यकतानुसार कुछ अधिकरण गठित किए थे। लेकिन संविधानिक आधार नहीं दिया गया था। वे सिवाय अधिनियमों की सहायता से चले गए थे। आगे चलकर, सरकार को महसूस हुआ कि अधिकरणों को संविधानिक आधार देना उचित होगा। इसलिए "२२वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976" के द्वारा संविधान में एक नया भाग (अनुच्छेद 323) जोड़ा गया जिसमें दो अनुच्छेद 323(क) और 323(ख) शामिल किए गए। इस भाग का नाम 'अधिकरण (Tribunals)' रखा गया। अनुच्छेद 323(क) को संघीय प्रशासनिक अधिकरणों (Administrative Tribunals) से है जबकि अनुच्छेद 323(ख) को संबंधित क्षेत्रों में स्थापित अधिकरणों से है।

जनता पार्टी के संसदीय विधेयों और प्रत्येक संसदीय माध्यम से जनता को सूचीबद्ध किया जाए थे जो अपने संसदीय द्वारा संविधान में जोड़े गए थे। जनता पार्टी ने जनता पार्टी के संसदीय विधेयों को संसद में प्रस्तुत करने का प्रयास किया था, जो किंतु इस मुद्दे पर संसद में जनता पार्टी के विधेयों को मिलाकर एक ही विधेय बनाया गया। जनता पार्टी के संसदीय में यह भाग विद्यमान है तथा इसके उपबंधों के अनुसार कुछ आवश्यक कार्यवाही।

प्रशासनिक अधिकरण (Administrative Instruments)

अनुच्छेद 323(एक) संसद को अधिकार देता है कि वह विधि द्वारा केंद्र, राज्य या स्थानीय निकायों, सरकारी निगमों (Government Corporations) आदि से जुड़ी लोक सेवाओं और पदों की भर्ती, सेवा-शर्तों आदि के संबंध में उठने वाले विवादों (Disputes) व शिकायतों (Complaints) के न्याय-निर्णय (Adjudication) या विचारण (Trial) के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की व्यवस्था कर सकेगी।

अनुच्छेद 323(क) प्रशासनिक अधिकरणों के संबंध में कुछ और बातें स्पष्ट करता है, जैसे—

- (i) संघ के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण तथा प्रत्येक राज्य के लिए अथवा दो या अधिक राज्यों के लिए एक पृथक प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना की जा सकेगी।
- (ii) संसद प्रत्येक अधिकरण की अधिकारिता निश्चित कर सकेगी जिसमें अपनी अवमानना (Contempt) के लिए दण्ड देने की शक्ति भी शामिल हो सकती है।
- (iii) अधिकरणों द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्रक्रिया, जिसमें साक्ष्य (evidence) के नियम भी शामिल हैं, का उपबन्ध संसद द्वारा किया जा सकेगा।
- (iv) संसद प्रशासनिक अधिकरण को सौंपे गए मामलों के संबंध में अनुच्छेद 136 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त 'विशेष अपील याचिका' (Special Leave Petition) की अधिकारिता के अलावा सभी न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित (exclude) कर सकेगी। इसका अर्थ है कि यदि संसद चाहे तो प्रशासनिक अधिकरण के निर्णयों के पुनर्विलोकन की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त किसी भी न्यायालय से छीन सकेगी।

अनुच्छेद 323(क) से प्राप्त शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने 'प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985' (Administrative Tribunals Act, 1985) पारित किया। यह अधिनियम केंद्र सरकार को एक केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण तथा विभिन्न राज्य प्रशासनिक अधिकरणों के गठन का अधिकार देता है। इस अधिनियम की शक्तियों के आधार पर भारत सरकार ने 1985 में 'केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण' (CAT—Central Administrative Tribunal) का गठन किया। इसके अलावा, कुछ राज्यों की विशेष मांग पर केंद्र सरकार ने उन राज्यों के लोक सेवकों के विवादों को निपटाने के लिए 'राज्य प्रशासनिक अधिकरणों' (SAT—State Administrative Tribunals) का गठन भी किया है।

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (Central Administrative Tribunal)

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण केंद्र सरकार के कर्मचारियों की भर्ती तथा सेवा-शर्तों से जुड़े मामले देखता है। 'प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985' तथा केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के गठन से संबंधित आदेश को मिलाकर पढ़ें तो इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ महत्वपूर्ण हैं—

- (i) इसके अधिकार क्षेत्र में अखिल भारतीय सेवाएँ, केंद्रीय सेवाएँ तथा सेना के सिविल पद शामिल हैं। निम्नलिखित लोक सेवकों पर इसकी अधिकारिता लागू नहीं होती—
 - (क) सेनाओं या सशस्त्र बलों के वे सदस्य जो सैनिक (Defence) प्रकृति का कार्य करते हैं;
 - (ख) सर्वोच्च या उच्च न्यायालयों के अधिकारी या कर्मचारी;
 - (ग) संसद के दोनों सदनों के सचिवों या कर्मचारी;
- (ii) केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण एक न्यायिक निकाय (Judicial member) है। इस अधिनियम के तहत व्यवस्था की गई थी कि इसमें एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, एक न्यायिक सदस्य तथा एक न्यायिक उपाध्यक्ष (Judicial member) शामिल होंगे। सरकार उचित समझे। प्रधान पीठ के अलावा अन्य पीठों पर कम से कम एक न्यायिक या एक प्रशासनिक सदस्य अवस्थित होना चाहिए।
- (iii) अधिनियम के मादौबक विभिन्न पदों के लिए निम्नलिखित अंतर्ग्राह्य हैं—
 - (क) अध्यक्ष पद पर वेता अतिरिक्त नियुक्त किया जा सकता है जो सर्वोच्च उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा है; अथवा (ii) जो कम से कम 25 वर्षों तक या जो केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण का उपाध्यक्ष रहा हो या केंद्र सरकार में सचिव पद पर कार्य करे।
 - (ख) उपाध्यक्ष पद पर निम्नलिखित के लिए अतिरिक्त नियुक्त किया जा सकता है जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो; अथवा (ii) 2 वर्षों तक केंद्र सरकार में निरंतर कार्य करे अथवा जो केंद्र सरकार में अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary) के पद पर कार्य करे।
 - (ग) न्यायिक सदस्य (Judicial member) के लिए अतिरिक्त नियुक्त किया जा सकता है जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो या केंद्रीय विधि सेवा (Central Legal Service) में कम से कम 3 वर्षों तक प्रथम श्रेणी के पद पर रहे हों।
 - (घ) प्रशासनिक सदस्य (Administrative member) बनने की अर्हता है कि वह व्यक्ति (i) केंद्र सरकार में कम से कम 2 वर्षों तक अतिरिक्त सचिव या 5 वर्षों तक संयुक्त सचिव रहा हो; अथवा (ii) वह पर्याप्त प्रशासनिक अनुभव रखने वाला व्यक्ति हो।

ध्यातव्य है कि वर्तमान में केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के पास 1 अध्यक्ष, 16 उपाध्यक्ष तथा 49 सदस्य हैं। न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के अनुसार किए जाने का प्रावधान है। सभी सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्षों का है किंतु अध्यक्ष या उपाध्यक्ष 65 वर्ष तथा अन्य सदस्य 62 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त हो जाते हैं, चाहे उनका 5 वर्षों का कार्यकाल पूरा न हुआ हो।

- (iv) केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सदस्य अपने पद से इस्तीफा देना चाहें तो राष्ट्रपति को संबोधित लागपत्र के माध्यम से दे सकते हैं। यदि उन पर कदाचार (Misbehaviour) या असमर्थता (Incapacity) का आरोप लगता है तो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा इसका परीक्षण किया जाएगा जिसमें उन्हें सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा। यदि आरोप सही साबित होते हैं तो राष्ट्रपति उन्हें पद से हटाने का आदेश देगा। सदस्यों को हटाए जाने की प्रक्रिया संसद द्वारा विधि बनाकर निश्चित किए जाने का प्रावधान है।
- (v) वर्तमान में केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की कुल 17 पीठें हैं। प्रधान पीठ दिल्ली में है जबकि 16 अन्य पीठें देश के अन्य भागों में काम कर रही हैं। अधिकांश पीठें उन्हीं स्थानों पर हैं जहाँ कोई उच्च न्यायालय है तथा उनकी अधिकारिता भी सामान्यतः

नीचे दी गई तालिका के माध्यम से सभी पीठों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है—

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की पीठें
(*Benches of Central Administrative Tribunal*)

क्रम सं. (S.No.)	पीठ (Bench)	क्षेत्राधिकार (Regional Jurisdiction)
1.	प्रधान पीठ, दिल्ली	दिल्ली
2.	इलाहाबाद पीठ	उत्तर प्रदेश के कुछ जिले
3.	लखनऊ पीठ	उत्तर प्रदेश के कुछ जिले
4.	जोधपुर पीठ	राजस्थान के कुछ जिले
5.	जयपुर पीठ	राजस्थान के कुछ जिले
6.	चंडीगढ़ पीठ	हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, जम्मू व कश्मीर तथा चंडीगढ़
7.	कलकत्ता पीठ	पश्चिम बंगाल, सिक्किम, अंडमान व निकोबार द्वीप समूह।
8.	गुवाहाटी पीठ	असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैंड, मिजोरम
9.	चेन्नई पीठ	मद्रास, गोवा, केरल और तमिलनाडु
10.	मद्रास पीठ	मद्रास, गोवा, केरल और तमिलनाडु
11.	पुणे पीठ	महाराष्ट्र और गुजरात
12.	कोलकाता पीठ	कोलकाता और पश्चिम बंगाल
13.	हैदराबाद पीठ	हैदराबाद
14.	बंगलूरु पीठ	कर्नाटक
15.	महाराष्ट्र पीठ	महाराष्ट्र
16.	गुजरात पीठ	गुजरात
17.	पश्चिम बंगाल पीठ	पश्चिम बंगाल

(vi) केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की कार्यवाही का एक प्रमुख लक्ष्य शिकायतों को जल्दी से निपटार करने की प्रक्रिया सरल व सुलभ हो सकें। अधिकरण 'सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908' में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं के अनुसार काम करने के लिए बाध्य नहीं है, यह मूलतः प्राकृतिक न्याय (Natural justice) के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करता है। शिकायतकर्ता के लिए यह भी जरूरी नहीं है कि वह किसी वकील के माध्यम से अपना पक्ष रखे।

अधिकरणों के संबंध में एक प्रमुख विवाद यह रहा है कि इनके निर्णयों का पुनर्विलोकन उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है या नहीं? ध्यातव्य है कि संविधान के अनुच्छेद 323(क) के उपबंध से शक्ति लेते हुए 'प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985' के द्वारा अनुच्छेद 136 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय में की जाने वाली विशेष अपीलें (Special appeals) के अलावा शेष सभी न्यायालयों को अधिकरणों के निर्णयों की अपील सुनने से वंचित किया गया है। इसका अर्थ है कि अनुच्छेद 226 तथा 227 के तहत उच्च न्यायालय अधिकरणों के निर्णयों पर विचार नहीं कर सकता।

यह प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कई बार उठा। 'एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ' (1997) मामले में सर्वोच्च न्यायालय की 7 सदस्यीय संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से निर्णय दिया कि जिस सीमा तक अनुच्छेद 323(क) और (ख) सर्वोच्च या उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति छीनते हैं, उस सीमा तक वे असंवैधानिक हैं क्योंकि अनुच्छेद 32, 226 तथा 227 से प्राप्त होने वाली 'न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति' संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा है जिसे संसद संविधान संशोधन के माध्यम से भी नहीं छीन सकती। संविधान पीठ ने अनुच्छेद 323(क) के खण्ड 2(घ) तथा 323(ख) के खण्ड 3(घ) को असंवैधानिक घोषित कर दिया। उसने स्पष्ट किया कि प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सीधे सर्वोच्च न्यायालय में नहीं होगी। पहली अपील संबंधित राज्यक्षेत्र में अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय में होगी; किंतु यह अनिवार्यतः दो न्यायाधीशों की पीठ अर्थात् खंडपीठ (Division Bench)

प्रभाव से लागू होगा, पुराने मामले फिर से नहीं उठाए जा सकेंगे।

राज्य प्रशासनिक अधिकरण (State Administrative Tribunals)

अनुच्छेद 323(क) के अन्तर्गत बनाए गए 'प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम (1985)' के तहत केंद्र सरकार को शक्ति दी गई है कि किसी राज्य की विशेष मांग पर वह राज्य प्रशासनिक अधिकरण का गठन कर सकती है। इस प्रावधान के तहत हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा आंध्र प्रदेश में ऐसे अधिकरण गठित किए गए थे हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न राज्य सरकारों में इन्हें बंद करने का रुझान देखा जा रहा है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र सरकार 'महाराष्ट्र प्रशासनिक अधिकरण' को समाप्त करने का निर्णय कर चुकी है। हिमाचल प्रदेश, पंजाब और हरियाणा ने भी अपने अधिकरणों को समाप्त कर दिया है। वर्तमान में सिर्फ 5 राज्यों में ही ऐसे अधिकरण बचे हैं।

राज्य प्रशासनिक अधिकरण राज्य सरकार के अधीन काम करने वाले लोक सेवकों की भर्ती तथा सेवा शर्तों से जुड़े विवादों व शिकायतों पर न्याय-निर्णयन (Adjudication) करता है। इसके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति संबंधित राज्यों के राज्यपालों की सिफारिश के अनुसार राष्ट्रपति करता है।

संविधान के अनुच्छेद 323(क) तथा 'प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम' में यह प्रावधान भी है कि यदि दो या दो से अधिक राज्य निवेदन करें तो उन सभी के लिए एक ही 'संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण' (Joint Administrative Tribunal) बनाया जा सके। अभी तक ऐसा कोई अधिकरण बनाया नहीं गया है।

अन्य अधिकरण (Other Tribunals)

अनुच्छेद 323(ख) के तहत राज्य प्रशासनिक अधिकरणों की शक्तियों को अपनी अपनी शक्तियों के अनुसार कुछ विषयों से संबंधित अधिकरण गठित करने की शक्ति दी गई है जिन पर उन्हें विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है। इस अनुच्छेद में एक सूची भी दी गई है जिसमें शामिल विषयों के अधीन अधिकरण बनाए जा सकते हैं। इस सूची में शामिल विषय हैं—

- (i) कर लगाने, राजस्व अनुसंधान, उत्पाद शुल्क और राजस्व के संबंध में विवाद।
- (ii) विदेशों, भारत और विदेशों के नागरिकों के बीच विवाद।
- (iii) औद्योगिक तथा श्रम संबंधी विवाद।
- (iv) भूमि सुधारों के संबंध में विवाद।
- (v) नगर संपत्ति को अधिग्रहण करने के संबंध में विवाद।
- (vi) संसद तथा राज्य विधान-मंडलों के अंतर्गत विवाद।
- (vii) जिन खाद्य पदार्थों को आवश्यक वस्तु (Essential Goods) माना जाता है, उनके उत्पादन, वितरण, आपूर्ति तथा कीमत नियंत्रण से जुड़े मामले।
- (viii) मकान-मालिकों और किराएदारों के आपसी विवाद।

(ध्यातव्य है कि इस सूची का अंतिम विषय '75वें संविधान संशोधन, 1993' द्वारा जोड़ा गया है, जबकि शेष विषय '42वें संविधान संशोधन, 1976' के समय से ही हैं।)

अनुच्छेद 323(ख) के तहत संसद ने आज तक एक ही अधिनियम पारित किया है— 'सीमा-शुल्क एवं उत्पाद-कर राजस्व अपील अधिकरण अधिनियम, 1986' (The Customs and Excise Revenue Appellate Tribunal Act, 1986)। यह अधिनियम 'सीमा शुल्क अधिनियम, 1962' (Customs Act, 1962) के अंतर्गत आने वाले कुछ विषयों पर न्यायनिर्णयन (Adjudication) के लिए एक अधिकरण गठित करने की शक्ति केंद्र सरकार को देता है। अभी तक सरकार ने उक्त अधिकरण गठित नहीं किया है।

अनुच्छेद 323(क) तथा 323(ख) में अंतर [Difference between Article 323(A) and Article 323(B)]

अनुच्छेद 323(क) तथा 323(ख) दोनों का संबंध अधिकरणों से है किंतु दोनों के उपबधों में कुछ अंतर हैं, जैसे—

- (i) अनुच्छेद 323(क) सिर्फ संसद को अधिनियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है जबकि 323(ख) के अधीन संसद और राज्य विधानमंडल दोनों अपनी अधिकारिता के भीतर अधिनियम पारित करके अधिकरण बना सकते हैं।
- (ii) अनुच्छेद 323(क) के अंतर्गत सिर्फ लोक सेवकों के भर्ती व सेवा-शर्तों से जुड़े मामलों के लिए अधिकरण बनाया जा सकता

गैर-संवैधानिक अधिकरण (Non-Constitutional Tribunals)

संविधान के अनुच्छेद 323(क) तथा (ख) के उपबंधों के अनुरूप बने अधिकरणों के अलावा बहुत से ऐसे अधिकरण भी हैं जो किसी अधिनियम (Act) के आधार पर गठित किए गए हैं। ऐसे अधिकरणों को वही शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो उसका उपबंध करने वाले अधिनियम में वर्णित हैं। ऐसे कुछ अधिकरणों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

- (i) **औद्योगिक अधिकरण (Industrial Tribunal):** इसका गठन 'औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947' (*The Industrial Disputes Act, 1947*) के तहत 1949 में किया गया। इसकी अधिकारिता सभी औद्योगिक विवादों तक विस्तृत है, जैसे नियोक्ताओं तथा कर्मचारियों में वेतन, भुगतान-पद्धति, अवकाश, बोनस, कार्य के घंटों, अन्य भत्तों आदि को लेकर होने वाले विवाद।

औद्योगिक अधिकरणों को ही प्रचलित भाषा में 'श्रम अधिकरण' (Labour Tribunal) या 'श्रम न्यायालय' (Labour Court) भी कह दिया जाता है।

- (ii) **आयकर अपीलीय अधिकरण (Income-Tax Appellate Tribunal):** इसमें आयकर विभाग के उप-आयुक्त (Deputy Commissioner) स्तर के अधिकारी के आदेशों के विरुद्ध अपील किए जाने का प्रावधान है।

- (iii) **मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (Motor Accident Claim Tribunal):** यह अधिकरण 'मोटर वाहन अधिनियम, 1988' (*The Motor Vehicles Act, 1988*) के तहत गठित किया गया है। इसका कार्य मोटर वाहनों की दुर्घटना से हुए जान-माल के नुकसान से संबंधित दावों का निपटारा करना है। इसके अलावा मोटर वाहन दुर्घटना से हुए नुकसान को नियोक्ता से दावे का भुगतान प्राप्त करने के लिए लंबा न्यायालयिक प्रक्रिया से निपटारा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

- (iv) **रेलवे दर अधिकरण (Railway Rates Tribunal):** यह अधिकरण 'रेलवे अधिनियम, 1989' (*The Railway Act, 1989*) के तहत 1990 में गठित किया गया था। यह न्यायाधीशों की संतुलित समिति को नियुक्त करता है जो रेलवे प्रशासन द्वारा किसी वस्तु/सेवा की अधिक या कम प्रविष्टि को लागू करने की शिकायत करती है।

- (v) **प्रतिस्पर्धा अपीलीय अधिकरण (Securities Appellate Tribunal):** केंद्र सरकार द्वारा गठित इस अधिकरण की एकमात्र पीठ मैक्रो-मैनेजमेंट सेबी (SEBI) तथा एक सदस्य द्वारा बनाई गई है। इसका कार्य आदेशों के विरुद्ध अपील को सुनवाई करता है।

- (vi) **ऋण वसूली अधिकरण (Debt Recovery Tribunal):** भारत सरकार के विभिन्न विभागों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के ऋण (Bad debts) को वसूल करने के लिए 'ऋण वसूली अधिनियम, 1993' (*Recovery of Debts Due to Banks and Financial Institutions Act, 1993*) के तहत देशभर में 37 'ऋण वसूली अधिकरण' (Debt Recovery Tribunals) स्थापित किए गए हैं। इन अधिकरणों का कार्य ऋणदाताओं तथा ऋणदाता वित्तीय संस्थानों के विवादों का समाधान 'संक्षिप्त प्रक्रिया' (Summary Procedure) के अनुसार करते हैं।

- (vii) **कर्मचारी भविष्य निधि अपीलीय अधिकरण (Employee Provident Fund Appellate Tribunal):** इसका कार्य कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के आदेशों के विरुद्ध अपीलों को सुनवाई करना है।

- (viii) **दूरसंचार विवाद समाधान तथा अपीलीय अधिकरण (Telecom Disputes Settlement and Appellate Tribunal):** इसका कार्य सेवाप्रदाताओं तथा उपभोक्ताओं, लाइसेंसदाताओं तथा लाइसेंस प्रयोक्ताओं से जुड़े विवादों पर प्राधिकरण द्वारा दिए गए आदेशों के खिलाफ अपीलों का निपटारा करना है।

- (ix) **विदेशी मुद्रा अपीलीय अधिकरण (Foreign Exchange Appellate Tribunal):** इसका कार्य प्रवर्तन निदेशालय (Enforcement Directorate) के आदेशों के विरुद्ध अपील सुनना है।

- (x) **साइबर अपीलीय अधिकरण (Cyber Appellate Tribunal):** यह अधिकरण 'सूचना तकनीक अधिनियम, 2000' (*The Information Technology Act, 2000*) के प्रावधानों के तहत बनाया गया है। अभी इसकी एकमात्र पीठ दिल्ली में है। इसका कार्य साइबर कानूनों के तहत निपटाए गए मामलों पर अपीलों को सुनवाई करना है।

- (xi) **विद्युत अपीलीय अधिकरण (Appellate Tribunals for Electricity):** इसका कार्य उपभोक्ताओं की विद्युत उत्पादन तथा वितरण से संबंधित शिकायतों पर अपील सुनना तथा उनका निर्धारण करना है।

- (xii) **प्रतिस्पर्धा अपीलीय अधिकरण (Competition Appellate Tribunal):** इस अधिकरण का गठन 'प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002' (*Competition Act, 2002*) के तहत 2009 में किया गया है। इसे 'प्रतिस्पर्धा आयोग' (Competition Commission) के आदेशों के विरुद्ध अपील सुनवाई करने का अधिकार है।

- (xiii) **भरण-पोषण अधिकरण (Maintenance Tribunal):** इस अधिकरण का गठन राज्य सरकारों द्वारा 'माता-पिता व वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण व कल्याण अधिनियम, 2007' (*Maintenance and Welfare of Parents and Senior Citizens Acts, 2007*) के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है। इस अधिनियम के तहत वरिष्ठ नागरिकों को अपने बच्चों (बच्चे न होने की दशा में रिश्तेदारों) से भरण-पोषण की सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है, बशर्त वे स्वयं अपने संसाधनों या आय से अपना भरण-पोषण करने में अक्षम हों। इस अधिनियम के तहत उठने वाली सभी शिकायतों के शीघ्र निपटान के लिए यह अधिकरण बनाए जाने की व्यवस्था की गई है।
- (xiv) **सशस्त्र सेना अधिकरण (Armed forces Tribunal):** इसकी प्राथमिक अधिकारिता सशस्त्र सेनाओं के उन सदस्यों के सेवा संबंधी मामलों पर है जो 'बायुसेना अधिनियम, 1950', 'सेना अधिनियम, 1950' तथा 'नौसेना अधिनियम, 1957' के द्वारा प्रशासित होते हैं। अधिकरण को कोर्ट मार्शल के निर्णयों पर अपीलीय अधिकारिता भी दी गई है जो इससे पहले सिर्फ उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय के पास अनुच्छेद 226 तथा अनुच्छेद 32 के तहत थी।
- (xv) **हरित अधिकरण (Green Tribunal):** इसका गठन 'राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010' (*National Green Tribunal Act, 2010*) के तहत किया गया है। इसका कार्य पर्यावरण से संबंधित सभी मामलों पर त्वरित विचारण तथा न्यायनिर्णय करना है। सरकार तथा निजी क्षेत्र की बहुत सी परियोजनाएँ पर्यावरणीय कारणों से न्यायालयों में लंबित मुकदमों के कारण सटकी रहती हैं। यह अधिकरण ऐसी परियोजनाओं के संबंध में त्वरित निर्णय करेगा।
- (xvi) **सहकारी अपीलीय अधिकरण (Co-operative Appellate Tribunals):** ऐसे अधिकरण कई राज्यों की सरकारों ने गठित किए हैं। इन्हें सहकारी समितियों के सदस्यों की सदस्यता, आदायकारियों के जमात, सामान्य बैठकों के संचालन, कार्य-प्रबंधन तथा अफसरों की कार्य-प्रणाली से जुड़े विवादों का निधारण करना होता है।

उपरोक्त अधिकरणों के अलावा कुछ अन्य अधिकरण भी गठित की प्रक्रिया में हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है- 'राष्ट्रीय शैक्षिक अधिकरण' (*National Educational Tribunal*)। प्रस्तावित अधिकरण का उद्देश्य यह है कि उच्च शिक्षा की संस्थाओं से जुड़े सभी मामलों का शीघ्र निपटारा किया जा सके। विधेयक में इस स्तर पर अपीलें बनाए जा सकें का प्रावधान है जिसमें केंद्रीय अधिकरण के साथ राज्यों के अपने अधिकरण भी होंगे।



अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for practice)

1. वर्तमान में ऐसे कुल कितने उच्च न्यायालय हैं जो दो या दो से अधिक राज्यों की अधिकारिता का निर्वाह करते हैं?

- (1) 1 (2) 2
(3) 3 (4) 4

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) यदि उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की आयु के निर्धारण के संबंध में कोई प्रश्न उठता है तो इसका विनिश्चय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है और राष्ट्रपति का विनिश्चय अंतिम होता है।
(ii) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु का निर्धारण संसद द्वारा निर्धारित पदाधिकारी करता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

3. निम्नलिखित में कौन-सा कथन असत्य है?

- (1) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाह के बिना सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाह के बिना उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं की जा सकती है।
(2) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु के निर्धारण के लिए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाह के बिना उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाह के बिना उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं की जा सकती है।
(3) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु के निर्धारण के लिए अपना-अपना त्यागपत्र देकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सलाह के बिना उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं की जा सकती है।
(4) उच्च न्यायालय के पास देश के संघीय ढाँचे से जुड़े मामलों पर अधिकारिता नहीं है जो सर्वोच्च न्यायालय की मूल तथा विशिष्ट अधिकारिता है।

4. पांडिचेरी किस उच्च न्यायालय की अधिकारिता में आते हैं?

- (1) केरल उच्च न्यायालय।
(2) मद्रास उच्च न्यायालय।
(3) बम्बई उच्च न्यायालय।
(4) कलकत्ता उच्च न्यायालय।

(iii) उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता सर्वोच्च न्यायालय के मूल ढाँचे में शामिल है जिसे न तो कम किया जा सकता है और न ही छोड़ा जा सकता है।

कूट—

- (1) केवल (i) (2) (i) और (ii)
(3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

6. आपराधिक मामलों में उच्च न्यायालय की अपील की अधिकारिता के संदर्भ में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) यदि सत्र न्यायालय या अतिरिक्त सत्र न्यायालय ने किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड देने की घोषणा की है तो वह व्यक्ति चाहे अपील करे या नहीं, उच्च न्यायालय द्वारा दण्ड की पुष्टि किए बिना उसे यह दण्ड नहीं दिया जा सकता।

(ii) यदि सत्र न्यायालय या अतिरिक्त सत्र न्यायालय ने किसी व्यक्ति को 7 वर्ष या उससे अधिक कारावास देने की आदेश दिया गया है तो उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

(i) उच्च न्यायालय को उच्च न्यायालयों या अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में सिर्फ न्यायिक अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है, प्रशासनिक अधीक्षण की नहीं।

(ii) यदि सशस्त्र बलों से संबंधित किसी विधि द्वारा या उसके अधीन गठित कोई न्यायालय या अधिकरण किसी उच्च न्यायालय के राज्यक्षेत्र में आता हो तो भी उच्च न्यायालय उस पर अधीक्षण की शक्ति नहीं रखता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

(3) वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का एक पगमर्श-मंडल (Collegium) ही उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

(4) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के बाद सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के अलावा भारत के किसी भी न्यायालय या अधिकरण में वकालत नहीं कर सकते।

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन नहीं होते, किंतु अधीनस्थ न्यायालय उच्च न्यायालयों के प्रशासनिक तथा न्यायिक नियंत्रण के अधीन होते हैं।

(ii) जिला न्यायाधीश किसी जिले का सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी होता है और उसके पास सिविल तथा आपराधिक दोनों मामलों में मूल एवं अपीलीय अधिकारिता होती है।

(iii) जिला एवं सत्र न्यायाधीश जिस प्रचलित भाषा में 'जिला न्यायाधीश' का कार्य करते हैं, उसी भाषा में न्यायिक और प्रशासनिक दोनों प्रकार की शक्तियाँ होती हैं।

उपरोक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को सिविल न्यायाधीशों के अधिकारों पर प्रतिबंधित किया जाता है।

(ii) सत्र न्यायाधीश का न्यायालय किसी जिले में आपराधिक मामलों का सबसे ऊँचा न्यायालय होता है जो उम्रकैद तथा मृत्युदंड सहित कोई भी सजा देने की शक्ति रखता है।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) और न ही (ii)

11. जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) जिला न्यायाधीश की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय की सलाह पर की जाती है।
(ii) राज्यपाल उच्च न्यायालय की सलाह मानने के लिए बाध्य है।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) जिला न्यायाधीश से नीचे के पदों पर नियुक्ति राज्यपाल द्वारा राज्य के लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय की सलाह पर की जाती है।

(ii) अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानांतरण, उन्हें स्थायी करने, प्रोन्नत करने, दण्ड देने तथा निलंबित करने का अधिकार उच्च न्यायालय के पास है।

(iii) अधीनस्थ न्यायालयों के किसी न्यायाधीश की सेवा समाप्त करने या वरिष्ठता कम करने का मामला हो तो उच्च न्यायालय राज्यपाल को सलाह देता है और यह सलाह राज्यपाल के लिए बाध्यकारी होती है।

उपरोक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

13. केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सदस्य अपना त्यागपत्र किस समिति के पास देते हैं?

- (1) केंद्रीय गृहमंत्री (2) भारत का प्रधानाध्यक्ष
(3) राज्यपाल (4) लोक सेवा आयोग

14. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

(i) सेना के कौन-कौन-से अधिकारियों के कर्मचारी।
(ii) सेना के कौन-कौन-से अधिकारियों के अधिकारी व अधिकारिता।

(iii) सेना के कौन-कौन-से अधिकारियों के अधिकार व अधिकारिता।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) (4) (i), (ii) और (iii)

15. राज्य प्रशासनिक अधिकरण के संबंध में कौन-सा/से कथन सुमेलित है/हैं?

- (i) राज्य प्रशासनिक अधिकरण राज्य सरकार के अधीन काम करने वाले लोक सेवकों की भर्ती तथा सेवा शर्तों से जुड़े विवादों व शिकायतों पर न्याय-निर्णयन करता है।
(ii) इसके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय की सलाह पर राज्यपाल द्वारा की जाती है।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)

विशेष उद्देश्य न्यायालय (Special Purpose Courts)

जिस तरह भारत में विभिन्न अधिकरण (Tribunals) कार्य करते हैं, वैसे ही कई 'विशेष उद्देश्य न्यायालय' (Special Purpose Courts) भी। 'विशेष उद्देश्य न्यायालय' से तात्पर्य उन न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक संस्थाओं (Quasi Judicial Institutions) से है जो किसी विषय-विशेष से जुड़े मुकदमों पर विचारण के लिए स्थापित की जाती हैं। ऐसे न्यायालयों के गठन के मूल में कोई विशेष कारण होता है, जैसे न्याय की गति बढ़ाना, न्याय प्रक्रिया में निजता (Privacy) बनाए रखना, विशेषज्ञों को न्याय-प्रक्रिया से जोड़ना इत्यादि।

जिन न्यायालयों को इस वर्ग में रखा जा सकता है, उनमें प्रमुख रूप से शामिल हैं- (i) बाल व किशोर न्यायालय, (ii) परिवार न्यायालय, (iii) उपभोक्ता अदालत, (iv) सेना न्यायालय या कोर्ट मार्शल, तथा (v) हरित पीठें तथा हरित अधिकरण। इन सभी का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

बाल व किशोर न्यायालय (Child and Juvenile Court)

बच्चों और किशोरों की विशेष स्थितियों तथा मनोवैज्ञानिक बचपन की अवस्था को ध्यान में रखते हुए ये न्यायालय गठित किए गए हैं। 'बाल अधिनियम, 1960' (Children Act, 1960) के प्रावधानों को व्यापकता प्रदान करते हुए संसद ने 1986 में 'किशोर न्याय अधिनियम' (Juvenile Justice Act) पारित किया था। उसके बाद, 'सिविल अधिकार सम्मेलन' (Civil Rights Convention) में स्वीकार किए गए सिद्धांतों की अनुसूता में 2000 ई. में इस अधिनियम को निरसित करते हुए 'किशोर न्याय (बच्चों का ध्यान और संरक्षण) अधिनियम, 2000' [The Juvenile Justice (Care and protection of children) Act, 2000] पारित किया गया। 2006 और 2010 में इसमें पुनः संशोधन किए गए हैं। संशोधन के बाद वर्तमान में लागू अधिनियम काफी प्रगतिशील है और विकसित देशों में प्रदत्त बाल-अधिकारों से सुसंगत है। इसके अन्वये प्रज्ञालय को सुनिश्चित करने के लिए कई उच्च न्यायालयों में 'किशोर न्याय समितियाँ' (Juvenile Justice Committees) बनाई गई हैं, जिनकी अध्यक्षता उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश करते हैं।

बाल तथा किशोर अदालतों के गठन से जुड़े प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- (i) राज्य सरकार प्रत्येक जिले या एकाधिक जिलों के लिए एक किशोर न्याय बोर्ड (Juvenile Justice Board) गठित कर सकती है जिसमें 3 सदस्यों की पीठ होगी। पीठ की अध्यक्षता प्रथम श्रेणी मनोविज्ञान प्रयोगशाला के ऐसे न्यायाधीश द्वारा की जाएगी जिसके पास बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) या बाल कल्याण (Child welfare) जैसे क्षेत्रों में विशेष प्रशिक्षण या ज्ञान है। शेष दो सदस्य ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता होंगे जो कम से कम 7 वर्षों से बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा या कल्याण की गतिविधियों से जुड़े हैं। इन दोनों सदस्यों में से कम से कम 1 महिला होगी। निर्णय के संबंध में बहुमत की राय का स्वीकारा जाएगा।
- (ii) 18 वर्ष की आयु तक के बच्चों/किशोरों के कृत्यों का परीक्षण 'किशोर न्याय बोर्ड' (Juvenile Justice Board) द्वारा किया जाएगा। प्रायः हर मामले में जमानत दी जाएगी। जमानत से इंकार सिर्फ तभी किया जाएगा जब यह खतरा हो कि वह बच्चा/किशोर छोड़े जाने पर ऐसे लोगों के संपर्क में आ सकता है जो उसे मानसिक या शारीरिक नुकसान पहुंचा सकते हैं।
- (iii) 18 वर्ष से कम उम्र के अभियुक्त की गिरफ्तारी होते ही उसे पुलिस की 'विशेष किशोर शाखा' (Special Juvenile Unit) के निरीक्षण में भेजा जाना अनिवार्य है। इस शाखा में ऐसे पुलिसकर्मी नियुक्त किए जाते हैं जिन्हें बाल-मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों का प्रशिक्षण दिया गया होता है।
- (iv) प्रायः किशोरों को अपराध सिद्ध होने पर भी दंड नहीं दिया जाता है। उन्हें माफी देकर छोड़ दिया जाता है या कुछ दिनों तक 'विशेष गृहों' (Special homes) में रखा जाता है ताकि उनके पुनर्वास की प्रक्रिया सहज हो। कभी-कभी उन्हें 'अनिवार्य सामुदायिक सेवा' (Compulsory Community Service) करने का आदेश दिया जाता है। यदि अपराध अत्यंत गंभीर किन्तु का हो तो उसे 18 वर्ष की आयु पूरी होने तक 'विशेष गृह' (Special home) में रखा जाता है। यदि उसका आचरण अच्छा रहता है तो उसे बीच में भी मुक्त किया जा सकता है।
- (v) 'किशोर न्याय बोर्ड' (Juvenile Justice Board) की समस्त कार्यवाही गोपनीय रखी जाती है। 2006 के संशोधन में स्पष्ट कर दिया गया है कि किशोर से संबंधित कोई भी सूचना (नाम, पता, विद्यालय का नाम आदि) प्रकाशित करना दंडनीय अपराध होगा। इसके लिए 25 हजार रुपए तक का दंड दिए जाने का प्रावधान किया गया है।

है, या उसे नौकरी पर रखकर उसका शोषण करता है, या उसे नशीले पदार्थ देता है तो उसे 3 साल तक की कैद दी जा सकती है।

- (vii) 'किशोर न्याय बोर्ड' के निर्णयों के खिलाफ जिले के सत्र न्यायालय (Sessions Court) में अपील की जा सकती है तथा उसके निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में। इसके अलावा, अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति की अपील (Special Leave Appeal) तो की ही जा सकती है।

इन प्रावधानों ने बच्चों तथा किशोरों के लिए न्यायिक प्रक्रिया काफी आसान व सहज बनाई है। पर, अभी इसके व्यावहारिक पक्ष पर काफी ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

परिवार न्यायालय (Family Courts)

1984 में संसद ने 'परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984' (The Family Courts Act, 1984) पारित किया जिसके आधार पर विभिन्न राज्यों में परिवार न्यायालय बनाए गए। इस अधिनियम में व्यवस्था थी कि प्रत्येक राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से सलाह करके 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक शहर में परिवार न्यायालय का गठन करेगी। परिवार न्यायालयों को विवाह को शून्य घोषित करने (Nullity of marriage), कानूनी अलगाव (Legal separation), तलाक (Divorce), पति-पत्नी के सम्पत्ति संबंधी मामले, नाबालिग बच्चों के संरक्षण, गुजारे-पते (Alimony) आदि से संबंधित मामलों सौंपे जाते हैं।

परिवार न्यायालय को सिविल न्यायालय की अधिकारिता दी जाती है जो जिला न्यायालय या अन्य अधीनस्थ न्यायालय के समकक्ष हो सकती है। यदि वाद के दोनों पक्षकारों में से कोई भी चाहे तो मामलों की सुनवाई बंद कमरे में (In Camera) होती है। साधारणतः दोनों पक्ष स्वयं अपनी बात रखते हैं, हालांकि आवश्यकता होने पर अदालत वकीलों के माध्यम से अपना पक्ष रखने का मौका दे सकती है। यदि निर्णय आपसी समझौते से आता हो तो उसे अपील किसी भी न्यायालय में नहीं की जा सकती, किंतु यदि निर्णय न्यायालय ने दिया हो तो संबंधित उच्च न्यायालय में उसका खिलाफ अपील की जा सकती है।

परिवार न्यायालयों का प्रयोग कई दृष्टियों से सफल है। पारिवारिक संबंधों की गोपनीयता बनाए रखने तथा ऐसे मामलों को तेजी से निपटाने को देखते हुए इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

उपभोक्ता अदालत (Consumer Court)

'उपभोक्ता अदालत' वह विशेष अदालत है जो ग्राहकों (Buyers) या उपभोक्ताओं (Consumers) की शिकायतों तथा विवादों के निवारण के लिए गठित की जाती है। इसका प्रमुख उद्देश्य यह देखना है कि वस्तुओं और सेवाओं के विक्रेता उपभोक्ताओं का शोषण न कर सकें।

1960 के दशक में ही भारत में व्यवस्थित उपभोक्ता अदालतों का संकल्प दिखाई देने लगे थे, जिनका तार्किक परिणाम 1986 में दिखा। इस वर्ष केंद्र सरकार ने संसद से 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986' (COPRA—Consumer Protection Act, 1986) पारित कराया जिसका एक उद्देश्य उपभोक्ताओं में अपने अधिकारों की चेतना को बढ़ाना था और दूसरा यह था कि यदि उपभोक्ता के साथ कोई विक्रेता छल-कपट करे तो वह कानूनी पेचोदगियों में उलझे बिना कानूनी सहायता प्राप्त कर सकें। उपभोक्ता अदालतों की व्यवस्था इसी अधिनियम के तहत की गई है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता अदालतों का गठन 3 स्तरों पर किया गया है। सबसे निचले स्तर पर 'जिला उपभोक्ता फोरम' (District Consumer Forum) है जिसका गठन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। जिला फोरम (District Forum) को वे सभी शक्तियाँ प्राप्त हैं जो 'सिविल प्रक्रिया संहिता' के अंतर्गत सिविल अदालतों को दी गई हैं। जिला फोरम ऐसे सभी मामलों को सुनने की अधिकारिता रखता है जिनमें बेची गई वस्तु या दी गई सेवा का मूल्य 20 लाख रुपये से कम है।

जिला फोरम से ऊपर राज्य स्तरीय उपभोक्ता अदालत होती है जिसे 'राज्य उपभोक्ता आयोग' (State Consumer Commission) कहा जाता है। इस अदालत में वे मामले आते हैं जिनमें बेची गई वस्तु या दी गई सेवा का मूल्य 20 लाख से 1 करोड़ रुपये के बीच होता है। इसके अलावा, इस अदालत द्वारा जिला फोरम के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें भी सुनी जाती हैं।

इससे ऊपर एक राष्ट्रीय उपभोक्ता अदालत है जिसे 'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद समाधान आयोग' (National Consumer Disputes Redressal Commission) कहा जाता है। इस आयोग का अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति होता है जो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है।

राष्ट्रीय आयोग की अधिकारिता दो तरह के मामलों पर है। आर्थिक अधिकारिता के तहत वह उन मामलों की सुनवाई करता है, जिनमें बेची गई वस्तु या दी गई सेवा का मूल्य 1 करोड़ रुपये से अधिक होता है। इसके अलावा, उसके पास अपीलीय अधिकारिता भी है जिसके अंतर्गत वह 'राज्य उपभोक्ता आयोग' के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनता है। उसे यह अधिकार भी है कि वह किसी राज्य उपभोक्ता आयोग से कोई मामला किसी अन्य राज्य उपभोक्ता आयोग को या किसी जिला फोरम से किसी अन्य जिला फोरम

उपभोक्ता अदालतों का काम प्रायः संतोषजनक रहा है। इनके साथ-साथ 1986 के अधिनियम के तहत केंद्र, राज्य तथा जिला स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदें (Consumer Protection Councils) भी बनाई गई हैं जो उपभोक्ताओं को जागरूक बनाने के अलावा वस्तु विक्रेताओं तथा सेवा प्रदाताओं को भी कानून के भीतर रहकर काम करने के लिए प्रेरित करती हैं।

सेना न्यायालय/कोर्ट मार्शल (Court Martial)

'कोर्ट मार्शल' उन अदालतों को कहते हैं जो सैनिकों के अपराधों से जुड़े मामलों की सुनवाई के लिए बनाई जाती हैं। प्रायः सभी देशों में 'सेना न्यायालयों' (Military Courts or Courts Martial) को परंपरागत न्यायपालिका से अलग रखा जाता है। ऐसे न्यायालयों में सेना के वरिष्ठ अधिकारी ही न्यायाधीश की भूमिका में होते हैं। इस व्यवस्था का मूल उद्देश्य यह है कि सेना को बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त रखते हुए उसमें अनुशासन सुनिश्चित किया जा सके। दूसरा कारण यह है कि चूंकि सेना की स्थितियों की विशिष्ट जानकारी सेना के लोगों को ही होती है, अतः वे किसी मामले को गहराई से समझकर सही निर्णय कर सकते हैं।

भारत में भी कोर्ट मार्शल की व्यवस्था की गई है। सैनिकों द्वारा किसी गैर-सैनिक की हत्या तथा बलात्कार के मामले छोड़कर सैनिकों के शेष सभी आपराधिक कृत्यों की सुनवाई कोर्ट मार्शल द्वारा ही की जाती है। यदि कोई सैनिक आपराधिक कृत्य करते हुए पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है तो भी उसे सेना को सौंप दिया जाता है। अपराध का विचारण सेना न्यायालय (Court Martial) द्वारा ही किया जाता है। यह व्यवस्था 'सेना अधिनियम, 1950' (Army Act, 1950); 'वायुसेना अधिनियम, 1950' (Air Force Act, 1950) तथा 'नौसेना अधिनियम, 1957' (Navy Act, 1957) के तहत कार्य करती है।

'कोर्ट मार्शल' के निर्णयों का पुनर्विलोकन प्रायः संभवित नहीं है। आपत्तियों पर दो स्तरों पर अपील का विकल्प मिलता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति की अपीलें (Special Leave Appeals) कोर्ट मार्शल के निर्णयों के विरुद्ध नहीं सुनी जा सकती हैं। इसी तरह, अनुच्छेद 227 में स्पष्ट किया गया है कि उच्च न्यायालयों की भी कोर्ट मार्शल के निर्णयों पर अपील की अधिकारिता प्राप्त नहीं है।

कोर्ट मार्शल के निर्णयों के खिलाफ अपील का एक ही रास्ता है कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय या अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को रिट अधिकारिता के अंतर्गत अपील की जाए। सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या है कि अनुच्छेद 136 तथा 227 के अधीन तो उच्चतर न्यायालयों को कोर्ट मार्शल की अपील सुनने से रोकना प्रभावहीन है, पर अनुच्छेद 32 तथा 226 में ऐसी कोई सीमा आरोपित नहीं की गई है।

हाल ही में केंद्र सरकार ने सेना न्यायालयों के निर्णयों पर अपील सुनने के लिए एक 'सशस्त्र सेना अधिकरण' (Armed Forces Tribunal) का गठन किया है जिसकी प्रधान पीठ दिल्ली में है तथा 8 अन्य पीठ देश के विभिन्न भागों में हैं। उम्मीद की जा रही है कि इससे सैनिकों को न्याय भी मिल सकेगा तथा उच्च न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायालय पर कार्य का बोझ भी नहीं बढ़ेगा।

हरित पीठें तथा हरित अधिकरण (Green Benches and Green Tribunal)

हरित पीठें तथा हरित अधिकरण का संबंध पर्यावरण संरक्षण से जुड़े न्यायिक प्रयासों से है। सर्वोच्च न्यायालय ने 1980 और 1990 के दशकों में अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए कई ऐसे निर्णय दिए थे जो पर्यावरण संरक्षण में सहायक सिद्ध हुए। इसी के अगले चरण के रूप में हरित पीठें तथा हरित अधिकरण की धारणा सामने आई।

अप्रैल, 1996 में सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों श्री कुलदीप सिंह तथा श्री एस. सी. लोन्गोवाल की खंडपीठ (Division Bench) ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को निर्देश दिया कि वे एक विशेष पीठ गठित करें जो पर्यावरण से जुड़ी याचिकाओं पर विचार करें। इसे ही 'हरित पीठ' (Green Bench) कहा गया। इसके कुछ महीनों बाद सितंबर, 1996 में सर्वोच्च न्यायालय ने मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को 'हरित पीठ' स्थापित करने का निर्देश दिया। इस प्रकार हरित पीठें अस्तित्व में आईं। इनमें सामान्यतः ऐसे न्यायाधीश शामिल होते हैं जिनकी पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर गहरी समझ होती है।

कुछ समय बाद, संसद ने भी पर्यावरण से संबंधित मामलों सुनने के लिए एक विशेष अधिकरण गठित करने का निश्चय किया जिसमें पर्यावरण संबंधी विशेषज्ञता से युक्त लोग हों। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि सरकारी तथा गैर-सरकारी परियोजनाओं से संबंधित पर्यावरणीय विवादों को शीघ्र निपटारा किया जा सके। 2010 में संसद ने 'राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010' (National Green Tribunal Act, 2010) पारित किया तथा उसके प्रावधानों के अनुसार अक्टूबर 2010 में 'राष्ट्रीय हरित अधिकरण' का गठन किया। इस अधिकरण की प्रधान पीठ दिल्ली में है तथा चार अन्य पीठें भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई में हैं। इसके अलावा, अन्य स्थानों पर इस अधिकरण की प्रमणकारी बैठकें (Circuit Meetings) भी आयोजित की जा सकती हैं।

अधिनियम में निर्देश दिया गया है कि अधिकरण सामान्यतः किसी भी आवेदन या अपील का निपटारा 6 महीने के भीतर कर देगा। यह 'सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908' के प्रावधानों से बंधन की बजाय 'प्राकृतिक न्याय' के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करेगा। पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं के लिए अधिकरण में कोई भी व्यक्ति, मीडिया संगठन या गैर सरकारी संगठन (NGO) अपनी शिकायत पेश कर

न्यायपालिका में नवाचार (Innovations in Judiciary)

हमारी न्यायपालिका के पास कार्य का अत्यधिक बोझ है जिसके कारण अदालतों में बहुत बड़ी संख्या में मुकदमे अनिर्णीत हैं। माना जाता है कि भारत की सभी अदालतों में कुल मिलाकर लगभग 3.1 करोड़ मुकदमे लंबित हैं। इनमें से लगभग 52,500 मामले सर्वोच्च न्यायालय में; लगभग 40 लाख मामले उच्च न्यायालयों में तथा शेष लगभग 2 करोड़, 70 लाख मामले अधीनस्थ न्यायालयों में लंबित हैं। न्यायाधीशों की संख्या तथा आधारभूत संरचना की कमी के कारण कई बार मुकदमा निपटने में 20-25 वर्षों का समय लग जाता है। एक अनुमान के मुताबिक वर्तमान में भारत में प्रति 10 लाख जनसंख्या पर सिर्फ 12 न्यायाधीश हैं, जबकि यह संख्या ब्रिटेन में 100 तथा अमेरिका में 130 के आसपास है। यदि हम पारंपरिक अदालतों के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान निकालना चाहें तो यह असंभव प्रतीत होता है क्योंकि लंबित पड़े तीन करोड़ से अधिक मामलों को वर्तमान गति से निपटाने के लिए अनुमानतः 400 वर्षों का समय चाहिए। संविधान समीक्षा आयोग (NCRWC) ने इस संबंध में सुझाव दिया है कि न्यायालयों में प्रत्येक मामला निपटाने को एक निश्चित अवधि तय की जानी चाहिए।

न्यायपालिका की दूसरी समस्या यह है कि इसकी प्रक्रियाएँ बहुत जटिल, औपचारिक व लंबी हैं जो आम आदमी को तंग करती हैं। इसके अलावा, हमारी न्याय प्रणाली बेहद महंगी भी है। गरीब तथा वंचित वर्गों के बहुत से लोग न्यायालय जाने तथा वकीलों का खर्च उठाने की ताकत नहीं रखते, इसलिए कई बार वे न्याय को सहज कर लेना ही बहुत समझते हैं।

भारत सरकार तथा न्यायपालिका ने इन मुकदमों तथा जटिलताओं को देखते हुए मुकदमों को तीन-दसकों में कई ऐसे प्रयोग किए हैं जिन्होंने न्यायपालिका के बोझ को कम करते हुए जनता के लिए न्याय को सुलभ बनाया है। 'अधिकरणों' तथा 'विशेष उद्देश्य न्यायालयों' (Special Purpose Courts) का प्रयोग भी ऐसे नवाचारों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। उसके अलावा, बहुत से अन्य प्रयोग भी किए गए हैं जिनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जा रही है।

वैकल्पिक विवाद समाधान (ADR—Alternative Dispute Resolution)

वैकल्पिक विवाद समाधान की प्रणाली न तो भारत के लिए नई है और न ही विश्व के लिए। इसका सरल सा अर्थ यह है कि जिन पक्षों में विवाद है वे न्यायालय की मदद के बिना आपस में हो या कुछ अनौपचारिक मध्यस्थों की सहायता से विवाद का समाधान कर लें। आधुनिक भारत में ऐसा सबसे महत्वपूर्ण प्रयास 1987 में लोक अदालतों के गठन के माध्यम से किया गया। इसके अलावा, 1996 में पारित किया गया 'मध्यस्थता व सुलह अधिनियम, 1996' (Arbitration and Conciliation Act, 1996) भी वैकल्पिक समाधान प्रणाली की दृष्टि से महत्वपूर्ण कदम है।

लोक अदालत (Lok Adalat)

लोक अदालतों की व्यवस्था 'वैधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987' (Legal Services Authorities Act, 1987) के तहत लागू की गई थी। अधिनियम के तहत, ऐसी अदालतें तालुक, जिला तथा राज्य स्तर के अलावा उच्च व सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा भी आयोजित किए जाने का प्रावधान किया गया था। आगे चलकर, 2002 में इस अधिनियम में संशोधन करके स्थायी लोक अदालतें (Permanent Lok Adalats) का प्रावधान भी जोड़ा गया।

लोक अदालतें एक अर्थ में 'छद्म या प्रतीतिक अदालतें' (Mock Courts) हैं जो पारंपरिक अदालतों से भिन्न तरीकें से काम करती हैं। ऐसी अदालतों की अध्यक्षता एक न्यायाधीश (साधारणतः सेवानिवृत्त न्यायाधीश) द्वारा की जाती है तथा आमतौर पर इसमें दो अन्य सदस्य होते हैं जिनमें से एक वकील होता है तथा दूसरा कोई सामाजिक कार्यकर्ता। इन अदालतों में कोई न्यायालय शुल्क (Court Fee) नहीं लगता। इनमें 'सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908' (Civil Procedure Code, 1908) तथा 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872' (Indian Evidence Act, 1872) के नियमों को मानने की बाध्यता भी नहीं है। दोनों पक्ष न्यायाधीश से सीधी बातचीत भी कर सकते हैं।

लोक अदालत को सिविल न्यायालय की मान्यता दी गई है। सिविल प्रकृति के लगभग सारे विवाद, जैसे—विवाह संबंधी, भूमि संबंधी, संपत्ति के बँटवारे से जुड़े विवाद तथा श्रम विवाद इसमें लाए जा सकते हैं। यदि कोई आपराधिक मामला शपनीय (Compoundable) प्रकृति का है तो वह भी इसमें लाया जा सकता है। शपनीय (Compoundable) आपराधिक मामले वे होते हैं जिन्हें दोनों पक्षों के समझौते द्वारा निपटारा जाने की अनुमति दी गई है।

न्यायालय में पहले से चल रहे मामलों को भी लोक अदालत में स्थानांतरित किया जा सकता है। यदि दोनों पक्षों में समझौता हो जाता है तो लोक अदालत उस समझौते या सहमति को ही डिक्री (Decree) के रूप में घोषित कर देती है। यदि समझौता नहीं हो पाता है तो मामला वापस उसी अदालत को भेज दिया जाता है जहाँ वह चल रहा था। यदि समझौता हो जाए तो वह न्यायालय शुल्क (Court fee) भी वापस लौटा दिया जाता है जो मूल न्यायालय को दिया गया था।

लोक अदालतों के निर्णयों के खिलाफ किसी अपील का प्रावधान नहीं है क्योंकि इसमें निर्णय दोनों पक्षों की सहमति से होता है। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में भी इसके खिलाफ अपील नहीं की जा सकती।

लोक अदालतों की आर्थिक सफलता को देखते हुए सरकार ने इनका विस्तार कई मामलों पर किया। 2002 में 'विधिक सेवाएँ प्राधिकरण अधिनियम, 1987' (Legal Services Authorities Act, 1987) में संशोधन करके ऐसी 'स्थायी लोक अदालतों' (Permanent Lok Adalats) का प्रावधान किया गया जिनका संबंध जन-उपयोगी सेवाओं (Public Utility Services) से है, जैसे-परिवहन सेवा, टैलीफोन सेवा, बिजली सेवा इत्यादि। इन अदालतों का उद्देश्य यह है कि अदालत में मामला जाने से पहले ही आपसी बातचीत के जरिए उसका समाधान निकाल लिया जाए। वर्तमान में ये विभाग आपतौर पर स्थायी लोक-अदालतों के माध्यम से ही मामले निपटाने का प्रयास करते हैं।

मध्यस्थता व सुलह अधिनियम, 1996 (Arbitration and Conciliation Act, 1996)

यह अधिनियम भी वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution) प्रणाली को मजबूत करने के लिए पारित किया गया था। इसके साथ, 'सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908' (Civil Procedure Code, 1908) को भी संशोधित किया गया तथा अदालत से बाहर विवादों का समाधान करने की प्रक्रिया को और भी आसान बनाया। यह अधिनियम अंग्रेजी समाधान के पश्चिमी मॉडल पर आधारित है तथा मध्यस्थता (Arbitration) और सुलह (Conciliation) के माध्यम से विवादों का समाधान स्पष्ट कर देता है।

मध्यस्थता (Arbitration) और सुलह (Conciliation) में थोड़ा सा अंतर है। मध्यस्थता (Arbitration) तब होती है जब दो पक्षों में पहले से मध्यस्थता समझौता (Arbitration agreement) हो तथा उसमें लिखा हो कि कोई विवाद होने की स्थिति में मध्यस्थ (Arbitrator/Arbiter) की मदद से समाधान किया जाएगा। ऐसा विवाद होने पर कोई भी पक्षकार अपने अधिकार के रूप में मध्यस्थ (Arbitrator/Arbiter) की नियुक्ति का मांग कर सकता है। यदि कोई पक्ष मध्यस्थता (Arbitration) से संतुष्ट न हो तो वह सिविल न्यायालय में अपील कर सकता है किंतु यदि अपील खारिज हो जाए तो मध्यस्थ (Arbitrator/Arbiter) की निर्णय अंतिम होता है।

सुलह (Conciliation) इसकी तुलना में कुछ सरल व अनौपचारिक प्रक्रिया है। इसके लिए जरूरी नहीं है कि दोनों पक्षों के बीच पहले से कोई समझौता हो। विवाद की स्थिति में यदि दोनों पक्ष सहमत हो तो सुलहकर्ता (Conciliator) की नियुक्ति कर सकते हैं। यदि दोनों में से एक भी पक्ष सहमत न हो तो मामला अदालत के माध्यम से सुलझाया जाता है।

फास्ट ट्रैक न्यायालय (Fast Track Court)

फास्ट ट्रैक न्यायालय की अवधारणा लंबित मामलों, विशेषतः आपराधिक प्रकृति के लंबित मामलों को तेजी से निपटाने से जुड़ी है। लंबे समय से इसकी जरूरत महसूस की जा रही थी किंतु 11 वें वित्त आयोग (Finance Commission) ने जब पहली बार 1734 फास्ट ट्रैक न्यायालयों के लिए धन मुहैया कराया तो यह व्यवस्था लागू हो सकी। आरंभ में ये अदालतें प्रायोगिक तौर पर 5 वर्षों (2000-2005) के लिए स्थापित की गईं। इन्हें एक समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार काम करना था। सबसे पहले इन्हें बं मायले निपटाने थे, जिनमें अभियुक्त (Accused) पर विचारण (trial) चल रहा है और वह जेल में बंद है। अनुमान लगाया गया था कि लगभग 2 लाख लोग जेल में कैद होकर विचारण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं जिनमें से अधिकांश के अपराध बहुत गंभीर नहीं हैं। इसके बाद, दूसरे क्रम पर उन मामलों को लिया जाना था जो 2 वर्षों या उससे अधिक समय से लंबित हैं तथा जिनके अभियुक्त जमानत पर छूटे हुए हैं। प्रत्येक फास्ट ट्रैक अदालत के लिए निर्धारित किया गया था कि वह प्रत्येक माह 14 सत्र विचारण मामले (Sessions Trial Cases) निपटाएगी या 20-25 के बीच आपराधिक या सिविल मामलों का निपटारा करेगी।

फास्ट ट्रैक अदालतों का पहला लाभ यह हुआ कि जेलों में बंद बहुत से निर्दोष अभियुक्त तथा मामूली अपराधों के दोषी मुक्त हो गए। इन अदालतों पर खर्च किया गया धन दरअसल निवेश ही माना जाएगा क्योंकि जेलों में कैदियों को रखने पर जो धन खर्च हो रहा था, उसमें इन अदालतों की मदद से काफी कमी आई। अभी तक इन अदालतों ने इन्हें सौंपे गए 38.90 लाख मामलों में से 32.34 लाख मामलों को निपटा दिया है। इस दृष्टि से इस प्रयोग को सफल माना जाना चाहिए।

किंतु, केंद्र सरकार इस योजना पर खर्च होने वाली राशि को लेकर संतुष्ट नहीं थी। 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) की सरकार बनी और उसकी राय थी कि 2005 में 5 वर्ष पूरे हो जाने के बाद इस प्रयोग को आगे न बढ़ाया जाए। किंतु, 'वृजमोहन लाल बनाम भारत संघ' (2002) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया था कि फास्ट ट्रैक अदालतों की योजना को एक अटके

वर्ष के लिए आगे बढ़ाया गया तथा उसके बाद केंद्र सरकार ने घोषित कर दिया कि 31 मार्च, 2011 के बाद यह योजना नहीं चलाई जाएगी। सरकार ने तर्क दिया कि उसे एक निश्चित अवधि के लिए बनाई गई योजना को उस अवधि के बाद चलाने के लिए तथा उस पर धन खर्च करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। सरकार को इस बात से भी शिकायत थी कि कई बार निवेदन किए जाने के बावजूद राज्य सरकारें इस परियोजना में वित्तीय सहभागिता के लिए तैयार नहीं थीं। इस नीति के परिणामस्वरूप अप्रैल, 2011 से बहुत से फास्ट ट्रैक न्यायालय बंद हो गए हैं तथा कुछ तदर्थ (Ad hoc) आधार पर चलाए जा रहे हैं।

2012 में सर्वोच्च न्यायालय ने 'ब्रजमोहन लाल बनाम भारत संघ' मामले पर विशेष अनुमति अपील की याचिका पर विचार करते हुए फास्ट ट्रैक अदालतों को बंद करने से संबंधित सरकारी नीति को खारिज करने से इंकार कर दिया, किंतु अनुच्छेद 142 के तहत 'पूर्ण न्याय' (Complete Justice) करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए उसने कई घोषणाएँ कीं। एक घोषणा यह थी कि इस निर्णय के 3 महीनों के भीतर सरकार को अधीनस्थ न्यायापालिका (Subordinate Judiciary) के न्यायाधीशों की कुल संख्या के 10% नए पद बनाने होंगे और उन पर नियुक्तियाँ करनी होंगी क्योंकि सरकार आर्थिक संसाधनों की कमी के आधार पर जनता से त्वरित न्याय (Speedy Justice) प्राप्त करने का अधिकार नहीं छीन सकती। ध्यातव्य है कि वर्तमान में अधीनस्थ न्यायापालिका में लगभग 18 हजार न्यायाधीश कार्यरत हैं जिनके 10% अर्थात् 1800 न्यायाधीशों की नियुक्ति होने पर प्रायः वही स्थिति बनी रहेगी जो 1734 फास्ट ट्रैक अदालतों के होने पर थी। इसके साथ ही न्यायालय ने फास्ट ट्रैक अदालतों में काम कर रहे न्यायाधीशों को भी एक परीक्षा के आधार पर संबंधित राज्य की उच्च न्यायिक सेवाओं (Higher Judicial Services) में नियुक्ति के लिए अर्ह (eligible) घोषित किया।

वर्तमान स्थिति यह है कि अधिकांश फास्ट ट्रैक अदालतें बंद हो गई हैं तथा शेष अपने कार्यकाल के अनुसार 2016 तक क्रमशः बंद होंगी। इस बीच, कुछ राज्यों में यह रुझान देखा गया है कि वहाँ की सरकारें कुछ खास विषयों से जुड़े मामलों के लिए अपने संसाधनों से फास्ट ट्रैक अदालतें स्थापित कर रही हैं। उदाहरण के लिए, सितंबर 2012 में दिल्ली सरकार ने दिल्ली उच्च न्यायालय की सहमति से 'यौन उत्पीड़न' (Sexual Assault) से जुड़े अपराधों पर त्वरित विचारण के लिए फास्ट ट्रैक अदालतें गठित करने की घोषणा की है। इसी प्रकार, प्रसिद्ध आभिनता आमार खान की हत्या की कारकम सत्यमेव जयते से प्रभावित होकर राजस्थान के मुख्यमंत्री ने 'मादा भ्रूण हत्या' (Female foeticide) से जुड़े मामलों पर फास्ट ट्रैक अदालतें गठित करने में रुचि दिखाई है तथा राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने भी इस मामले पर सकारात्मक सहमति दे दी है।

ग्राम न्यायालय (Gram Nyayalaya)

2008 में भारत सरकार के विधि एवं न्याय मंत्रालय ने न्याय प्रणाली को ग्राम जनता के निकट ले जाने के लिए 'ग्रामीण न्यायालय अधिनियम, 2008' (The Gram Nyayalayas Act, 2008) संसद से पारित करवाया। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार 2 अक्टूबर, 2009 से कुछ राज्यों में ग्राम न्यायालय कार्य करने लगे।

ग्राम न्यायालय में प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट स्तर का एक न्यायाधीश होता है जिसे न्यायाधिकारी पदनाम दिया गया है। न्यायाधिकारियों की नियुक्ति संबंधित उच्च न्यायालय के परामर्श के अनुसार राज्य सरकार करता है। नियुक्तियों में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं तथा अन्य ऐसे पिछड़े वर्गों को प्रतिनिधित्व दिया जाए, जिनकी घोषणा राज्य सरकार ने इस प्रयोजन हेतु की है।

न्यायाधिकारी को किसी एक स्थान पर रहकर न्यायिक कार्य नहीं करना होता। उसका दायित्व है कि वह अपने अधिकार-क्षेत्र में शामिल गाँवों का दौरा करें तथा जिस गाँव से संबंधित कोई मामला है, वहाँ या उसके निकटतम किसी उपयुक्त स्थान पर अपनी अदालत लगाए। राज्य सरकार का दायित्व है कि वह न्यायाधिकारी को ऐसी गतिशील अदालतों (Mobile Courts) के लिए वाहन व अन्य सुविधाएँ मुहैया कराए।

ग्राम न्यायालय कम गंभीरता के सिविल तथा आपराधिक दोनों मामलों देखता है। इन मामलों की सूची 'ग्राम न्यायालय अधिनियम' की अनुसूची में दी गई है। साधारणतः वह ऐसे आपराधिक मामलों देखता है जिनमें 2 वर्षों की अधिकतम सजा का प्रावधान होता है। सिविल मामलों में अन्तर्गत वह मुख्यतः 'न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948'; 'सिविल अधिकार (संरक्षण) अधिनियम, 1955'; 'वधुआ मजदूरी (उन्मूलन) अधिनियम, 1976'; 'समान मजदूरी अधिनियम, 1976' तथा 'घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005' के अन्तर्गत आने वाले मामलों देखता है। इनके अलावा, संबंधित राज्य सरकार राज्य के कुछ कानूनों के तहत न्यायालय को

ऐसे अभियुक्त (Accused) को वकील मुहैया कराए, जो स्वयं वकील का खर्च उठाने में समर्थ नहीं है। अधिनियम में कहा गया है कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए 'राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण' द्वारा निर्मित पैनल में से प्रत्येक ग्राम न्यायालय में दो वकील नियुक्त किए जाएंगे।

ग्राम न्यायालय की प्रक्रिया भी ऐसी रखी गई है कि न्याय पारदर्शी तरीके से तथा तेज़ गति से मिले। अधिनियम में निर्देश है कि मामलों की सुनवाई प्रतिदिन होगी और विशिष्ट परिस्थितियों में ही उसे स्थगित (adjourn) किया जाएगा। सभी निर्णय खुले न्यायालय में ही सुनाए जाएंगे तथा निर्णय की निःशुल्क प्रतिलिपि दोनों पक्षों को उपलब्ध कराई जाएगी।

ग्राम न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध जिला न्यायाधीश (District Judge) के पास अपील किए जाने का प्रावधान है। अपील का अधिकार उन सिविल मामलों में नहीं दिया गया है जिनमें आपसी सम्झौते से निर्णय हुआ है या विवादित राशि एक हजार रुपये से कम है। जिन अपराधिक मामलों में अभियुक्त ने स्वयं अपराध स्वीकार किया है या जिनमें एक हजार रुपये से कम राशि का आर्थिक दंड दिया गया है, उनमें भी अपील का अधिकार नहीं दिया गया है। किंतु, अनुच्छेद 32 तथा अनुच्छेद 226 के तहत संवैधानिक उपचार प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक नागरिक के पास है।

ग्राम न्यायालयों की व्यवस्था 2 अक्टूबर, 2009 से शुरू हुई। सरकार का दावा था कि वह 5 हजार ऐसे न्यायालय शुरू करेगी, पर अभी तक सिर्फ 6 राज्यों में 159 ग्राम न्यायालय स्थापित हुए हैं जिनमें से 151 ही कार्यरत हैं। ये राज्य हैं- मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, ओडिशा, झारखंड तथा कर्नाटक। तमिलनाडु, उत्तराखण्ड तथा दिल्ली की सरकारों ने बताया है कि उन्हें ग्राम न्यायालयों की आवश्यकता नहीं है। बाकी राज्यों ने अभी इन न्यायालयों की स्थापना नहीं की है।

मोबाइल अदालत (Mobile Court)

माना जाता है कि मोबाइल अदालत की अवधारणा के जनक भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री ए. पी. जे. अब्दुल कलाम हैं। इस धारणा का सार यह है कि अदालत स्वयं जनता के पास पहुंचे ताकि जनता को न्याय प्राप्त के लिए धन व समय खर्च न करना पड़े। प्रायः अदालतें गाँवों से काफी दूर होती हैं और गरीब लोगों के लिए लंबी यात्रा करके बार-बार अदालत पहुंचना कठिन व महंगा होता है।

मोबाइल अदालत का पहला प्रयोग 2007 में हरियाणा के मेवात जिले में किया गया। भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाभूति श्री के. जी. बालाकृष्णन हरियाणा सरकार तथा केंद्र सरकार के आपसी सहयोग से यह कदम उठाया गया। मेवात जिले की इसलिए चुना गया था क्योंकि वह हरियाणा का सबसे पिछड़ा जिला है और दिल्ली के अत्यंत निकट होने के बावजूद शिक्षा व जागरूकता के अभाव के कारण वहाँ की अधिकांश लोग को अपने मूल या कानूनी अधिकारों की जानकारी नहीं है।

मोबाइल अदालत एक 'बस' के भीतर कार्य करती है। 'बस' के भीतर न्यायालय का जरूरी ढाँचा उपलब्ध होता है। जरूरत होने पर यह अदालत खुले मैदान में भी लगाई जा सकती है। मेवात की मोबाइल अदालत सप्ताह में चार दिन पूर्वघोषित कार्यक्रम के अनुसार अलग-अलग ब्लॉकों में बैठक करती है जबकि दो दिन एक महत्त्वपूर्ण ब्लॉक में स्थायी अदालत की तरह काम करती है। इस अदालत की अध्यक्षता 'अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश सह उपमहान्यायिक दण्डाधिकारी' (Additional Civil Judge-Cum-Sub-divisional Judicial Magistrate) स्तर के न्यायाधीश द्वारा की जाती है जो सिविल तथा आपराधिक दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई करता है।

यह प्रयोग शुरूआती तौर पर काफी सफल रहा है। इसे प्रायः 'पहियों पर न्याय' (Justice on Wheels) के नाम से भी जाना जाता है।

'ई-अदालत' तथा 'आभासी अदालत' (E-Court and Virtual Court)

'ई-अदालत' एक जटिल धारणा है जिसमें कई पक्ष शामिल हैं। ई-अदालत के एक विशेष रूप को ही 'आभासी अदालत' (Virtual Court) कहते हैं। भारत में इस विचार की शुरुआत 2003 में हुई तथा इसका सबसे पहला पक्ष 'वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग' था।

2003 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि यदि किसी गवाह को समय के भीतर या बहुत अधिक खर्च के बिना बुलाना संभव न हो तो उसके साक्ष्य (evidence) का अभिलेखन (recording) वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से भी किया जा सकता है।

इस निर्णय ने न्याय की प्रक्रिया को सरल बनाने की दिशा में एक नया आयाम जोड़ा। गौरतलब है कि हर जिले में बहुत सारे कैदियों को बार-बार जेल से न्यायालय सिर्फ इसलिए ले जाना पड़ता है कि उस दिन न्यायाधीश के समक्ष कैदी की पेशी निर्धारित है। यह प्रक्रिया न सिर्फ महंगी है बल्कि बहुत सारे पुलिस कर्मियों को भी इसी में लगे रहना पड़ता है। इसमें यह खतरा भी होता है कि रास्ते का फायदा उठाकर कोई कैदी भाग न जाए या उसके साथी उसे छुड़ा न लें। इन खतरों से निपटने के लिए वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग का प्रयोग उचित माना गया। वर्तमान में महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात, कर्नाटक तथा बिहार जैसे कई राज्य वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग

2004 में ई-अदालतों के प्रयोग को आगे बढ़ाने को उद्देश्य से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में एक 'ई-समिति' (E-Committee) गठित की गई। सरकार ने योजना बनाई है कि मार्च, 2014 तक 14249 जिला तथा अधीनस्थ न्यायालयों का कंप्यूटीकरण कर दिया जाए। यह परियोजना 'नैशनल इन्फोमेटिक्स सेंटर' (NIC-National Informatics Centre) द्वारा लागू की जा रही है। इसके तहत कंप्यूटर, ब्रॉडबैंड कनेक्शन, वाद सूचना सॉफ्टवेयर (Case Information Software) इत्यादि कई तकनीकी सुविधाएँ स्थापित की जानी हैं। ई-अदालतों को इन तकनीकों के माध्यम से कुल 41 सेवाएँ मुहैया करानी हैं। अक्टूबर, 2012 तक कुल 10877 जिला व अधीनस्थ न्यायालयों का कंप्यूटीकरण हो चुका था। उनमें से 7863 न्यायालयों ने 41 में से 28 ई-सेवाओं का प्रयोग आरंभ कर दिया था और शेष सेवाओं के लिए प्रयास चल रहा था।

'ई-अदालत' या 'आभासी अदालत' (Virtual Court) की अवधारणा अत्यंत व्यापक है। इसमें कुल 41 तकनीकी सेवाएँ शामिल हैं जिनके पूरा होने पर किसी अदालत को ई-अदालत कहा जा सकता है। इसमें शामिल कुछ प्रमुख सेवाएँ निम्नलिखित हैं-

- (i) इंटरनेट के माध्यम से याचिका दायर करने की सुविधा,
- (ii) न्यायालय शुल्क (Court Fee) के इलेक्ट्रॉनिक भुगतान की सुविधा,
- (iii) यदि याचिका त्रुटिहीन हो तो वाद का इलेक्ट्रॉनिक तरीके से पंजीकृत हो जाना,
- (iv) प्रमाणों तथा अन्य कागजातों को इलेक्ट्रॉनिक तरीके से जमा कराने की सुविधा,
- (v) ई-मेल के माध्यम से नोटिस या मामले की तिथियों संबंधी सूचनाएँ भेजा जाना,
- (vi) मामले से जुड़े सभी कागजातों का डिजिटल रूप में होना तथा न्यायाधीशों या जजों की जगह इलेक्ट्रॉनिक तरीके से फाइलों को पढ़ पाना,
- (vii) गवाहों को बिना उपस्थित हुए वीडियो कांफरेंसिंग की मदद से अपनी गवाही देना सुविधा देना,
- (viii) अदालत की वेबसाइट पर दैनिक तथा साप्ताहिक वाद-सूचियों (Cause Lists) का उपलब्ध होना,
- (ix) अभिलेख न्यायालयों के समीक्षणीय डिजिटल रूप में प्रत्येक अधीनस्थ न्यायालय के पास हर समय उपलब्ध होना।
- (x) अधीनस्थ न्यायालयों के समीक्षणीय तथा आदेश इंटरनेट पर उपलब्ध होना ताकि मुंबविकला को जानकारी के लिए बार-बार न्यायालय न आना पड़े।

अभी तक जो भी प्रयोग हुए हैं, वे आशंकित हैं। विभिन्न अदालतों में इनमें से कुछ तकनीकों का प्रयोग हो रहा है। तकनीकी तौर पर अभी देश में एक भी ऐसा अदालत नहीं है जिसे ई-अदालत कहा जा सके। इतना जरूर है कि सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों ने वाद-सूचियों (Cause Lists) अपनी वेबसाइट पर उपलब्ध करा दी हैं और न्यायालय शुल्क (Court Fee) के इलेक्ट्रॉनिक भुगतान जैसी कुछ सुविधाएँ प्रदान कर दी हैं। कुछ अदालतों में गवाहों के लिए वीडियो कांफरेंसिंग का प्रयोग हो रहा है। वस्तुतः ई-अदालतों की स्थापना के लिए अभी काफी प्रयास किये जाने की जरूरत है।

विधिक सहायता क्लिनिक (Legal Aid Clinic)

न्याय को आम आदमी तक पहुँचाने के लिए 1987 में 'विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987' (Legal Services Authorities Act, 1987) पारित किया गया था। इसके तहत, जनता को कानून संबंधी सेवाएँ देने के लिए विभिन्न स्तरों पर कुछ समितियाँ गठित करने का प्रावधान किया गया था। केन्द्रीय स्तर पर 'राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण' (National Legal Services Authority) बनाया गया जिसे 'नालसा' (NALSA) के संक्षिप्त नाम से जाना जाता है। ऐसे ही प्राधिकरण राज्य, जिला तथा मंडल (या तालुक) के स्तर पर भी बनाए गए। इन प्राधिकरणों की सहायता के लिए सर्वोच्च न्यायालय में 'सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति' (Supreme Court Legal Services Committee) गठित की गई तथा ऐसी ही समितियाँ उच्च न्यायालयों तथा जिला न्यायालयों में भी बनाई गईं। इन सभी संस्थाओं का उद्देश्य यह था कि आम आदमी तक न्याय पहुँच सके। 'नालसा' (NALSA) का उद्देश्य वाक्य भी 'न्याय सब के लिए' (Access to Justice for all) ही है।

'नालसा' (NALSA) सहित इन संस्थाओं ने ऐसे बहुत से कदम उठाए, जो आम जनता तक न्याय पहुँचाने में सहायक थे। इन्हीं में से एक कदम के रूप में 'विधिक सहायता क्लिनिकों' (Legal Aid Clinics) की शुरुआत 2010 में की गई। ये क्लिनिक लगभग प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के ढाँचे पर काम करते हैं। जिस तरह प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ जानकारी और सुविधाएँ उपलब्ध करते हैं, वैसे ही 'विधिक सहायता क्लिनिक' कानून की बुनियादी जानकारी तथा सेवाएँ प्रदान करते हैं। इनमें प्रायः एक वकील और एक परा-विधिक स्वयंसेवक (Para Legal Volunteer) नियुक्त किये जाते हैं जो लोगों की कानून से संबंधित बुनियादी जरूरतें पूरते हैं।

(District Legal Services Authority) को अधिकार है कि वह गाँवों की जनसंख्या के अनुसार दो या अधिक गाँवों के लिए एक क्लिनिक की व्यवस्था कर सके। इन क्लिनिकों में काम करने के लिए वकीलों का एक पैनेल बनाया जाता है और जिला-विधिक सेवा प्राधिकरण तय करता है कि कौन सा वकील किस गाँव में तथा किस-किस दिन जाएगा। 3 साल से अधिक कार्य-अनुभव रखने वाली महिला वकीलों को इस पैनेल में प्राथमिकता दी जाती है। इन वकीलों की सहायता के लिए कुछ 'परा-विधिक स्वयंसेवक' (Para-Legal Volunteers) नियुक्त किए जाते हैं जो कार्यालय समय के दौरान क्लिनिक में हमेशा उपस्थित रहते हैं।

'विधिक सहायता क्लिनिक' (Legal Aid Clinic) को कई कार्य करने होते हैं। सर्वप्रथम, उसे जनता को कानूनी मामलों से संबंधित सलाह देनी होती है जिसमें नोटिस बनाना, नोटिस का जवाब तैयार करना, याचिका (Petition) तैयार करना इत्यादि शामिल हैं। किसी मामले से जुड़े कानूनी पक्षों को समझाना भी ऐसे क्लिनिकों का महत्वपूर्ण कार्य है। इसके अलावा, 'मनरेगा' जैसी किसी योजना से संबंधित फॉर्म भरवाना, 'जॉब कार्ड' तैयार करवाना, सरकारी कार्यालयों से जुड़े पत्राचार में सहायता करना भी इसके कार्य हैं।

'विधिक सेवा क्लिनिक' (Legal Aid Clinic) को यह कोशिश भी करनी होती है कि गाँव के लोगों में पैदा होने वाले आपसी विवाद अदालत पहुँचने से पहले ही सुलझा लिए जाएँ। इन क्लिनिकों पर कार्य करने वाले वकील और स्वयंसेवक कोशिश करते हैं कि दोनों पक्षों की आपसी बातचीत के जरिए ही विवाद-सुलझा लिए जाएँ। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो वे जिला विधिक सेवा प्राधिकरण से निवेदन करते हैं कि 'मोबाइल लोक अदालत' को क्लिनिक पर भेजा जाए ताकि इस तरह के विवादों को प्राथमिक स्तर पर ही सुलझा लिया जाए।

विधि (Law) के विद्यार्थियों को भी ऐसे क्लिनिकों से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। 'विधिक सहायता क्लिनिक योजना, 2010' (Legal Aid Clinic Scheme, 2010) में यह प्रावधान है कि एलएलबी के अंतिम वर्ष के विद्यार्थी ऐसे क्लिनिकों में विधिक सेवाएँ दे सकते हैं और उनका कनिष्ठ अधिवक्ता उनकी सहायता कर सकते हैं। कितना सही कहें कि ऐसे क्लिनिक किसी विधि-प्राध्यापक की निगरानी में ही चलेंगे जो नियुक्त अद्वैत स्वयंसेवक होगा। विधि महाविद्यालयीय विधि-विश्वविद्यालयों को ऐसे स्थायी क्लिनिक स्थापित करने का निवेदन भी दिया गया है। इसके अलावा, उन्हें दूर-दराज के गाँवों को विधिक सेवा क्लिनिकों को मोह लेने के लिए भी प्रेरित किया जाता है।

'विधिक सेवा क्लिनिक' (Legal Aid Clinic) की व्यवस्था अभी शुरुआती दौर में है लेकिन जहाँ-जहाँ इसे शुरू किया गया है, इसके नतीजे काफी उत्साहजनक रहे हैं।

दलील सौदेबाजी/प्ली बार्गेनिंग (Plea Bargaining)

'दलील सौदेबाजी' या 'प्ली बार्गेनिंग' (Plea Bargaining) का अर्थ उस समझौते से है जिसके तहत किसी अपराधिक मामले का अभियुक्त (Accused) इस शर्त पर अपना अपराध कबूल कर लेता है कि उसे निर्धारित से कम सजा दी जाएगी। यह समझौता बचाव पक्ष (Defendant) और अभियोजन पक्ष (Prosecution) के बीच में होता है और इसे समझौते के आधार पर दोनों पक्ष अदालत में अपनी बात रखते हैं। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य यह है कि मुकदमे की लम्बी कार्यवाही से बचा जा सके तथा अदालत व दोनों पक्षों के समय, धन और श्रम को बचत हो।

कई देशों में यह प्रणाली काफी पहले से चल रही है। अमेरिका इसका अगुआ देश है जहाँ 19वीं सताब्दी से ही यह व्यवस्था लागू है। यूरोप में स्कैंडिनेवियन देश (जैसे डेनमार्क, स्वीडन और नॉर्वे) 'प्ली बार्गेनिंग' का समर्थन नहीं करते किन्तु इंग्लैंड तथा कुछ अन्य देशों में धीरे-धीरे इसके प्रति स्वीकृति बढ़ रही है। ऑस्ट्रेलिया में भी कुछ मामलों में इसे स्वीकार किया जाने लगा है।

जहाँ तक भारत की बात है, भारत सरकार ने इस उद्देश्य से 'अपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 2005' [Criminal Law (amendment) act, 2005] पारित किया, जिसके अन्तर्गत 'अपराधिक प्रक्रिया संहिता' (Cr.P.C. - Criminal Procedure Code) में एक नया अध्याय XXI (क) जोड़ा गया जिसका शीर्षक है- 'प्ली बार्गेनिंग' (Plea Bargaining)। यह नई व्यवस्था 11 जनवरी, 2006 से लागू हुई।

भारत में 'प्ली बार्गेनिंग' की व्यवस्था केवल उन मामलों पर लागू होती है जिनमें अधिकतम 7 वर्षों के कारावास का प्रावधान है। जो अपराध महिलाओं या 14 वर्षों से कम आयु के बच्चों के विरुद्ध किए जाते हैं, वे 'प्ली बार्गेनिंग' से नहीं सुलझाए जा सकते। इसके अलावा, देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले अपराध भी इससे अलग रखे गए हैं।

भारत में 'प्ली बार्गेनिंग' की प्रक्रिया यह है कि अभियुक्त को स्वच्छ से इसका आवेदन न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। उसके बाद न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता (Complainant) और अभियुक्त (Accused) को मौका दिया जाता है कि वे बिचार-विमर्श करके किसी संतोषप्रद समझौते तक पहुँचें। यदि अभियुक्त अपराध कबूल कर लेता है तो न्यायालय अलग-अलग मामलों में उसके

है।

'प्ली बार्गेनिंग' की व्यवस्था के फायदे भी हैं और नुकसान भी। फायदे ये हैं कि इससे अभियुक्त को ईमानदारीपूर्वक अपराध स्वीकार करने का प्रोत्साहन मिलता है; न्यायालयों का बोझ कम होता है; अभियोजन पक्ष, बचाव पक्ष तथा अदालत का समय व श्रम बचता है; तथा अभियुक्त कम सजा के माध्यम से अपने अपराध से मुक्त हो पाता है।

'प्ली बार्गेनिंग' के कुछ नुकसान भी हैं। सबसे बड़ा नुकसान यही है कि लंबे कानूनी झड़पों से बचने के लिए कई बार कुछ निर्दोष लोग भी अपराध स्वीकार कर लेते हैं जिससे न्याय व्यवस्था के मूल सिद्धांत खतरे में पड़ जाते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि कई बार पुलिस, वकील और अदालत अभियुक्त पर दबाव बनाते हैं कि वह अपराध स्वीकार कर ले। इसके अलावा, यह भी देखा गया है कि कुछ घट्ट न्यायाधीश कम दंड देने की एज में अभियुक्तों से रिश्वत की मांग करते हैं।

राष्ट्रीय मुकदमा नीति (National Litigation Policy)

2010 में भारत सरकार के विधि एवं न्याय मंत्रालय ने न्यायालयों का समय बचाने तथा लंबित मामलों का जल्दी निपटाने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय मुकदमा नीति' (National Litigation Policy) घोषित की है। इस नीति का उद्देश्य यह है कि अदालतों में मामलों के लंबित रहने की औसत अवधि 15 वर्षों से कम करके 3 वर्षों तक लाई जाए।

यह नीति इस तथ्य को मानकर चलती है कि न्यायपालिका के पास जाने वाले मुकदमों के एक बड़े भाग में सरकार स्वयं एक पक्ष के रूप में उपस्थित होती है। यदि सरकार मुकदमे की प्रक्रिया (litigation procedure) में जिम्मेदारी के साथ शामिल हो तो न्यायालयों का काफी समय बचाया जा सकता है। इस तथ्य से इस नीति में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु घोषित किए गए हैं—

- (i) सरकार एक साधारण नागरिक (Litigant) जलाने से होकर लगे मुकदमों जीतने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। यदि यह स्पष्ट हो जाए कि वह गलत है तो उसे यह स्वीकार कर लेना चाहिए।
- (ii) मुकदमे से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य समय-समय पर अदालत को पेश किए जाने चाहिए ताकि तथ्यों की कमी के कारण मुकदमा निपटने में देर न हो। अनावश्यक सूचनाओं विशेषतः तकनीकी सूचनाओं से बचना चाहिए क्योंकि उन्हें पढ़ने में बहुत सा समय व्यर्थ होता है। किसी भी स्थिति में कोई प्रासंगिक तथ्य न्यायालय से छिपाया नहीं जाना चाहिए।
- (iii) यह प्रयास किया जाएगा कि जितने मुकदमों का समाधान "वैकल्पिक विवाद समाधान" (Alternative Dispute Redressal) की प्रणालियों में निकल सकता हो, उनके लिए न्यायालय को क्रियान्वित करने में समय बर्बाद न किया जाए।
- (iv) मुकदमे की कार्यवाही में विशेषज्ञता को शामिल किया जाना चाहिए। कई अच्छे मामलों में सरकार की हार सिर्फ इसलिए हो जाती है क्योंकि सरकार के वकील द्वारा याचिका के प्रारूपण (Drafting), मुकदमे की प्रगति या अनुसंधान के स्तर पर लापरवाही की गई होती है। ऐसे मामलों में यह नीति सरकार वकीलों को जिम्मेदारी सुनिश्चित करने पर बल देती है।
- (v) सरकार द्वारा की जाने वाली अपील की संख्या कम की जानी चाहिए। अधिकारियों के विरुद्ध विरल मामलों में ही अपील की जानी चाहिए क्योंकि उनकी न्यायपीठों विशेषज्ञ लोगों से मिलकर बना होती हैं। सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास अपील विरलतम स्थितियों में ही की जानी चाहिए। प्रायः अपीलें उन्हीं मामलों में दाखिल की जानी चाहिए जो समाज का व्यापक तौर पर प्रभावित करते हैं।
- (vi) कभी-कभी कुछ अच्छे मुकदमों में सरकार की हार का कारण यह होता है कि दी गई अवधि में अपील दाखिल नहीं हो पाती। कभी-कभी ऐसी देरी भ्रष्टाचार के कारण जानबूझकर होती है क्योंकि उस मुकदमे में बड़ी राशि दौब पर होती है। ऐसी एक भी घटना को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए संबंधित विभाग के प्रमुख को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए।
- (vii) नीति के अनुसार, लंबित मामलों का पुनर्विलोकन अतिरिक्त महाधिवक्ता (Additional Solicitor General) द्वारा किया जाएगा जो मामले अगंभीर (Frivolous) या अनावश्यक हैं, उन्हें छोड़ दिया जाना चाहिए। शेष मुकदमों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि एक प्रकार के मुकदमे एक साथ निपटाए जा सकें।

अभी यह नीति अपनी आरंभिक अवस्था में है। उम्मीद की जानी चाहिए कि निकट भविष्य में इसके सुखद परिणाम दिखाई देने लगेंगे।

राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी (National Judicial Academy)

न्यायपालिका की समस्याओं में से एक यह भी है कि हमारे यहाँ न्यायाधीशों के प्रशिक्षण की कोई संरचनात्मक व्यवस्था नहीं है। अधिकांश न्यायाधीश बिना किसी कार्य-प्रशिक्षण के अपना कार्य आरंभ करते हैं तथा अनुभव से ही सीखते हैं। कभी-कभी सीखने की यह प्रक्रिया कठोर और संभवतः ही बेसी है जिसका प्रभाव न्याय की प्रणाली तथा न्याय की देरी के रूप में सामने आता है।

इसी समस्या का एक विशेष रूप तब सामने आता है जब अधीनस्थ न्यायपालिका से प्रोन्नत होकर कोई न्यायाधीश उच्च न्यायालय में नियुक्त होता है। उच्चतर न्यायालयों की कार्य-प्रणाली अधीनस्थ न्यायालयों से काफी अलग होती है जिसे सीखने के लिए प्रशिक्षण दिया जाना वांछनीय है, पर ऐसी कोई व्यवस्था अभी तक लागू नहीं हो सकी है।

इन समस्याओं के निराकरण के लिए 1993 में 'राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी' (National Judicial Academy) का गठन किया गया। संरचना की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र गैर-सरकारी संगठन (NGO) है जिसे 'सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1860' के तहत पंजीकृत कराया गया है। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को इसका पदेन सभापति (Ex-officio Chairperson) बनाया गया है। यह संगठन पूर्णतः भारत सरकार द्वारा वित्तपोषित है।

राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी का परिसर (Campus) भोपाल में है। इसमें 'राष्ट्रीय न्यायिक शिक्षा रणनीति' (NJS—National Judicial Education Strategy) के दिशानिर्देश के अनुसार अकादमिक कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इसमें जिला न्यायाधीश तथा ऊपर के न्यायिक पदों पर नियुक्त व्यक्तियों के लिए आरंभिक प्रशिक्षण (Induction) कार्यक्रम तथा गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम (Quality Enhancement Programmes) चलाए जाते हैं। डॉक्यूमेंट्री फिल्मों, सेमिनारों, खुली परिचर्चाओं आदि विधियों द्वारा प्रतिभागियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। 'समस्याओं के समाधान के लिए ज्ञान को साझा करना' (Knowledge Sharing for Problem Solving) इस संस्था का मूल-मंत्र है।

'सीमांत व्यक्तियों के लिए न्याय तक पहुंच'

(A2J- Access to justice for Marginalised People)

यह कार्यक्रम 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' (UNDP—United Nations Development Programme) की सहायता से भारत सरकार का विधि एवं न्याय मंत्रालय चला रहा है। इसका उद्देश्य है गरीब तथा सीमांत व्यक्तियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना तथा न्याय प्रदान करने वाली संस्थाओं को गरीबों के लिए न्याय की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सहायता प्रदान करना। इसे संक्षेप में 'A2J' कहा जाता है।

यह कार्यक्रम 2009 में शुरू किया गया था। इसका पहला चरण 2009-2012 तक निर्धारित है जबकि दूसरा चरण 2013-2017 तक। पहले चरण में यह सात राज्यों—बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, ओडिशा तथा राजस्थान के 87 जिलों में चलाया जा रहा है।

कार्यक्रम के अंतर्गत प्रमुख कोशिश यह रहती है कि गरीब और सीमांत लोगों को मनोरंजन के माध्यम से 'सूचना के अधिकार' (Right to Information), महिलाओं के संपत्ति तथा धरोहर हिस्से के विवाद अधिकार, वनवासियों (Forest dwellers) के अधिकार, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के अधिकार, आपराधिक मामलों में मुक्ति तथा अभियुक्तों के अधिकार आदि के बारे में कार्यात्मक जानकारी दी जाए। जानकारी देने के लिए लघु फिल्मों, नृत्य, नाटकों, लोक गीतों, हंसो मजाक, 'न्यायपथ' (Nyayapath) तथा सॉफ-सीडी जैसे खेलों, चित्रों व पोस्टरों; सामुदायिक रैडियो कार्यक्रमों, टेलीफोन हेल्पलाइन, कानूनी जागरूकता शिविरों, विधिक सहायता क्लिनिकों आदि का प्रयोग किया जाता है।

यह कार्यक्रम कुछ देशों में सफलतापूर्वक चलाया जा चुका है। सियरा लियोन, दक्षिण अफ्रीका, मलावी तथा इंडोनेशिया जैसे देश इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इन देशों से प्राप्त अनुभवों को प्रयोग भी इस कार्यक्रम में किया जा रहा है।

अभी तक यह कार्यक्रम काफी सफल रहा है। लगभग 7000 परा-विधिक कार्यकर्ता (Para Legal Workers) प्रशिक्षित किए जा चुके हैं तथा 300 विधिक सहायता अधिवक्ता (Legal Aid Lawyers) को कार्यक्रम में शामिल किया जा चुका है। कई गरीब लोगों ने इस प्रशिक्षण की बदौलत सूचना के अधिकार का प्रयोग करना शुरू कर दिया है, विशेषतः बिजली-पानी जैसी मूलभूत सुविधाओं की आपूर्ति के संबंध में। मनरेगा जैसी योजनाओं के संबंध में लोगों ने सवाल पूछने शुरू कर दिए हैं। महिलाओं, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों में भी अपने विशेष संरक्षणार्थक कानूनों (Special Protective Laws) के संबंध में जागरूकता बढ़ी है।

क्षेत्रीय नवाचार परिषद (Sectoral Innovation Council)

न्याय प्रबंधन के क्षेत्र में चुनौतियों को देखते हुए भारत सरकार ने अपने अन्य विभागों की तरह विधि एवं न्याय मंत्रालय में

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for Practice)

1. किशोर न्याय बोर्ड (Juvenile Justice Board) के संबंध में सुमेलित कथनों का चयन कीजिए—

- (i) इसके सदस्यों में कम से कम एक महिला सदस्य के होने का प्रावधान है।
(ii) इसकी समस्त कार्यवाही गोपनीय रखी जाती है।
(iii) इसके निर्णय के खिलाफ जिले के सत्र-न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है।

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (ii) (4) (i), (ii) और (iii)

2. निम्नलिखित कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) जिला फोरम ऐसे सभी मामलों को सुनने की अधिकारिता रखता है जिनमें बेसी गई वस्तु नष्ट हो गई सेवा का मूल्य 20 हजार रुपये से कम है।
(ii) राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद समाधान आयोग का अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय का वर्तमान या भूतपूर्व न्यायाधीश होता है।
(iii) राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद समाधान आयोग के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील दाखल की जा सकती है।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

3. सेना न्यायालय अथवा कोर्ट मार्शल के संबंध में कौन-सा कथन गलत है?

- (1) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति की अपीलों (Special Leave Appeals) कोर्ट मार्शल के निर्णयों के विरुद्ध सुनी जा सकती हैं।
(2) ऐसे न्यायालयों में सेना के वरिष्ठ अधिकारी ही न्यायाधीश की भूमिका में होते हैं।
(3) अनुच्छेद 227 में स्पष्ट किया गया है कि उच्च न्यायालयों को कोर्ट मार्शल के निर्णयों पर अपील की अधिकारिता प्राप्त नहीं है।
(4) कोर्ट मार्शल के निर्णयों के खिलाफ 'रिट अधिकारिता' के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों में अपील की जा सकती है।

4. अक्टूबर 2010 में गठित राष्ट्रीय हरित अधिकरण की प्रधान पीठ दिल्ली में है तथा अन्य चार पीठें देश के चार शहरों में हैं। ये चारों शहर हैं—

- (1) कोलकाता, चेन्नई, मुंबई तथा चंडीगढ़।
(2) भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई।

- (3) पुणे, चेन्नई, मुंबई तथा सिक्किम।

- (4) अहमदाबाद, हैदराबाद, चेन्नई तथा कोलकाता।

5. लोक अदालत के संदर्भ में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) यदि कोई आपराधिक मामला शमनीय प्रकृति का है तो उसे लोक अदालत में नहीं लाया जा सकता है।
(ii) लोक अदालत को सिविल न्यायालय की मान्यता दी गई है।
(iii) लोक अदालतों के निर्णयों के खिलाफ किसी अपील का प्रावधान नहीं है।
(iv) अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में इसके खिलाफ अपील की जा सकती है।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iv) (4) उपरोक्त सभी।

6. ग्राम न्यायालय के संबंध में कौन-से कथन सुमेलित हैं?

- (i) ग्राम न्यायालय सिविल तथा आपराधिक दोनों मामलों देखता है।
(ii) ग्राम न्यायालय में प्रथम प्रणीतमजिस्ट्रेट स्तर का एक न्यायाधीश होता है जिसे 'न्यायाधिकारी' नाम दिया गया है।
(iii) न्यायाधिकारियों की नियुक्ति संबंधित राज्य सरकार से परामर्श कर उच्च न्यायालय करती है।

कूट—

- (1) केवल (ii) (2) (i) और (ii)
(3) (ii) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

7. ग्राम न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील के संदर्भ में सुमेलित कथनों का चयन कीजिए—

- (i) ग्राम न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध जिला न्यायाधीश के पास अपील किए जाने का प्रावधान है।
(ii) जिन आपराधिक मामलों में अभियुक्त ने स्वयं अपराध स्वीकार किया है या जिनमें एक हजार रुपये से कम राशि का आर्थिक दंड दिया गया है, उनमें अपील का अधिकार नहीं दिया गया है।
(iii) अपील का अधिकार उन सिविल मामलों में भी नहीं दिया गया है जिनमें आपसी समझौते से निर्णय हुआ है या विवादित राशि एक हजार रुपये से कम है।

कूट—

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)

8. मोबाइल अदालत के संबंध में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए—

- (i) डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को मोबाइल अदालत की अवधारणा के जनक के रूप में जाना जाता है।
- (ii) इस अदालत का पहला प्रयोग 2010 में राजस्थान के नागौर जिले में किया गया।
- (iii) इस अदालत को पहियों पर न्याय (Justice on Wheels) के नाम से भी जाना जाता है।
- उपरोक्त कथनों में कौन सा/से सत्य है/हैं?
- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i) और (iii) (4) (i), (ii) और (iii)
9. प्ली बार्गेनिंग (Plea Bargaining) के संबंध में सुमेरित कथन हैं—
- (i) यह एक समझौता है जिसके तहत किसी आपराधिक मामले का अभियुक्त इस शर्त पर अपना अपराध कबूल कर लेता है कि उसे निर्धारित से कम सजा दी जाएगी।
- (ii) भारत में 'प्ली बार्गेनिंग' की व्यवस्था केवल उन मामलों पर लागू होती है जिनमें अधिकतम 7 वर्षों के कारावास का आवधान है।
- (iii) भारत में 'प्ली बार्गेनिंग' की प्रक्रिया यह है कि अभियुक्त को स्वेच्छा से इसका आवेदन न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करना होता है।

(iv) ब्रिटेन इसका अगुआ देश है जहाँ 19वीं शताब्दी से ही यह व्यवस्था लागू है।

कूट—

- (1) (i) और (ii) (2) (ii) और (iii)
(3) (i), (ii) और (iii) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)

10. राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी (National Judicial Academy) के संदर्भ में गलत कथनों का चयन कीजिए—

- (i) संरचना की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र गैर-सरकारी संगठन है जिसे सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 के तहत पंजीकृत कराया गया है।
- (ii) भारत के विधि मंत्री को इसका पदेन सभापति बनाया गया है।
- (iii) राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी का परिसर नई दिल्ली में है।

(iv) डॉक्यूमेंट्री फिल्मों, सेमिनारों, खुली परिचर्चाओं आदि विधियों द्वारा प्रतिभागियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

कूट—

- (1) (i) और (iv) (2) (ii) और (iii)
(3) (ii) और (iii) और (iv) (4) इनमें से कोई नहीं।

राज्य का विधानमंडल (The State Legislature)

संविधान के भाग-6 का अध्याय-3 राज्यों के विधानमंडल से संबंधित है। इसमें अनुच्छेद 168 से 212 तक शामिल हैं। इस अध्याय का शीर्षक है- 'राज्य का विधानमंडल' (The State Legislature)।

संविधान निर्माताओं ने केंद्र की तरह राज्यों के लिए भी संसदीय प्रणाली को उपयुक्त समझा था। जिन राज्यों में एक ही सदन है, उस सदन को 'विधानसभा' (Legislative Assembly) कहा जाता है। 'विधान परिषद' (Legislative Council) दूसरा सदन है जो कुछ ही राज्यों में है। केंद्रीय विधायिका से तुलना करें तो कहा जा सकता है कि 'विधानसभा' की भूमिका प्रायः 'लोकसभा' के समान है जबकि 'विधान परिषद' की 'राज्यसभा' के समान।

अनुच्छेद 168 घोषित करता है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल (Legislature) होगा। विधानमंडल में राज्यपाल और विधानसभा अभिन्न हिस्से होंगे। जिन राज्यों में विधान परिषद है, उनका विधानमंडल इन दोनों के साथ उसे जोड़ने से पूरा होगा।

विधान परिषद (The Legislative Council)

विधान परिषद से संबंधित विशिष्ट प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 169 तथा 171 में दिए गए हैं।

सृजन तथा उत्सादन (Creation and Abolition)

अनुच्छेद 169 में बताया गया है कि किसी राज्य में विधान परिषद के सृजन (Creation) या उत्सादन (Abolition) की क्या प्रक्रिया होगी? इसके अनुसार, संसद विधि द्वारा किसी राज्य में विधान परिषद का सृजन या उत्सादन करने के लिए विधि बना सकती है, बशर्ते उस राज्य की विधानसभा ने इस आशय का संकल्प पारित किया हो। ऐसा संकल्प विधानसभा की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित होना अनिवार्य है।

अनुच्छेद 169(3) में स्पष्ट किया गया है कि यदि संसद द्वारा ऐसे संकल्प के अनुरूप विधान परिषद के सृजन या उत्सादन के लिए कोई विधि बनाई जाती है तो उसे अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए संविधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा।

मूल संविधान में कुल 8 राज्यों आंध्र प्रदेश, बिहार, बंबई (अब महाराष्ट्र), तमिलनाडु, मैसूर (अब कर्नाटक), पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल राज्यों के लिए द्विसदनीय विधानमंडल की व्यवस्था की गई थी जबकि बाकी राज्यों के लिए एक ही सदन अर्थात् विधानसभा की। आगे चलकर, दो सदनों वाले राज्यों में से कुछ ने महसूस किया कि उनके विधायी कार्यों के लिए एक सदन पर्याप्त है, विधान परिषद की विशेष उपयोगिता नहीं है। ऐसे राज्यों ने संविधान के अनुच्छेद 169 के अनुसार विधान परिषद के उत्सादन (Abolition) के लिए संकल्प पारित करके संसद को सौंप दिया तथा संसद ने विधि द्वारा उन राज्यों से विधान परिषदों को हटा दिया। इस उपबंध के तहत संसद ने पंजाब (1969), पश्चिमी बंगाल (1969), आंध्र प्रदेश (1985) तथा तमिलनाडु (1986) की विधान परिषदों के उत्सादन के लिए अधिनियम पारित किए हैं। इनमें से आंध्र प्रदेश ने हाल ही में पुनः विधान परिषद के गठन का संकल्प पारित किया जिसके प्रत्युत्तर में 2005 में संसद ने 'आंध्र प्रदेश विधान परिषद अधिनियम, 2005' पारित किया है। 1985 में उत्सादित किए जाने के बाद आंध्र प्रदेश की विधान परिषद 2007 में पुनः गठित की गई है।

वर्तमान में जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त 5 राज्यों में विधान परिषद अस्तित्व में है जबकि शेष 22 राज्यों में एक ही सदन है। विधान परिषद वाले राज्य हैं- बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश तथा आंध्र प्रदेश। जम्मू-कश्मीर को जोड़ लें तो यह संख्या 6 हो जाती है। ज्ञातव्य है कि जम्मू-कश्मीर का पृथक संविधान है जिसके तहत दो सदनों वाले विधानमंडल की व्यवस्था की गई है।

सबसे विचित्र स्थिति मध्य प्रदेश की है। संविधान के 'सातवें संशोधन, 1956' द्वारा मध्य प्रदेश के लिए विधान परिषद गठित करने का उपबंध किया गया था किंतु अभी तक इस उपबंध को प्रवृत्त करने के लिए अधिसूचना जारी नहीं की गई है। इसलिए मध्य प्रदेश में विधान परिषद का गठन अभी भी लंबित है।

तमिलनाडु की स्थिति भी रोचक है। वहाँ 1986 में विधान परिषद का उत्सादन किया गया था पर अप्रैल 2010 में द्रमुक (DMK) की सरकार ने पुनः उसके गठन का संकल्प पारित किया। उसके प्रत्युत्तर में संसद ने जून, 2010 में 'तमिलनाडु विधान

द्रमुक (DMK) की सरकार गिर गई और चुनावों के बाद अन्नाद्रमुक (AIADMK) की सरकार बन गई। नई सरकार ने विधानसभा में इस आशय का संकल्प पारित कर दिया कि तमिलनाडु में विधान परिषद के पक्ष में पारित किया गया संकल्प वापस लिया जाता है। इसके प्रत्युत्तर में मई, 2012 में केंद्र सरकार ने राज्यसभा में 'तमिलनाडु विधान परिषद (निरसन) विधेयक' पेश किया है जो अभी पारित होने की प्रक्रिया में है। वर्तमान स्थिति यह है कि संविधान तमिलनाडु में विधान परिषद के गठन की अनुमति देता है, पर व्यवहार में वहाँ एक ही सदन (विधानसभा) है।

विधान परिषद की संरचना (Composition of Legislative Council)

अनुच्छेद 171 के अनुसार किसी राज्य की विधान परिषद के सदस्यों की कुल संख्या किसी भी स्थिति में 40 से कम नहीं होगी और उस राज्य की विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक-तिहाई से अधिक नहीं होगी।

अनुच्छेद 171(2) में संसद को अधिकार दिया गया है कि वह विधि बनाकर किसी राज्य की विधान परिषद की संरचना निर्धारित कर सकती है; किंतु जब तक संसद ऐसा नहीं करती, तब तक के लिए अनुच्छेद 171(3) में बताई गई रीति के अनुसार विधान परिषद का गठन होगा। संसद ने अभी तक इस संबंध में कोई विधि नहीं बनाई है, अतः वर्तमान में अनुच्छेद 171(3) में निर्दिष्ट रीति के अनुसार ही विधान परिषदें गठित होती हैं। इस रीति के तहत विधान परिषद के सदस्यों का निर्धारण इस प्रकार होता है-

- (i) कुल संख्या का यथासंभव निकटतम 1/3 भाग राज्य की नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों तथा संसद द्वारा निर्दिष्ट स्थानीय प्राधिकारियों के सदस्यों से मिलकर बने वाले निर्वाचन मंडलों (Electoralates) द्वारा निर्वाचित होता है।
- (ii) कुल संख्या का यथासंभव निकटतम 1/12 भाग उस राज्य में निवास करने वाले ऐसे व्यक्तियों के निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित होता है जो कम से कम 3 वर्ष पूर्व से स्नातक हैं या 3 वर्ष पूर्व से कोई ऐसी योग्यता रखते हैं जिसे संसद ने विधि द्वारा किसी विश्वविद्यालय के स्नातक के समतुल्य घोषित किया है।
- (iii) कुल संख्या का यथासंभव निकटतम 1/12 भाग ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित होता है जो कम से कम पिछले 3 वर्षों से राज्य में कार्यरत ऐसी शिक्षा संस्थाओं में जो संसद ने विधि द्वारा निर्दिष्ट की हैं, माध्यमिक स्तर या उससे ऊँचे स्तर की कक्षाओं को पढ़ाने के काम में लगे हुए हैं।
- (iv) यथासंभव निकटतम 1/3 भाग राज्य की विधानसभा के सदस्यों द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से निर्वाचित होगा जो विधानसभा के सदस्य नहीं हैं।
- (v) शेष सदस्य, जो कि कुल सदस्य संख्या के लगभग 1/6 के आसपास होंगे, राज्यपाल द्वारा मनोनीत किए जाएंगे। अनुच्छेद 171(5) में स्पष्ट किया गया है कि राज्यपाल ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करेंगे जिन्हें 'साहित्य', 'विज्ञान', 'कला', 'सहकारी आंदोलन' और 'समाज सेवा' में से किसी या किन्हीं विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है।

गौरतलब है कि राज्यपाल द्वारा मनोनीत होने वाले सदस्यों को छोड़कर शेष सभी सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Proportional representation system) के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) द्वारा होता है। यह पद्धति वही है जो राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा राज्यसभा के सदस्यों के निर्वाचन में प्रयुक्त होती है।

यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि राज्यपाल द्वारा मनोनीत 1/6 सदस्यों और विधानसभा द्वारा निर्वाचित 1/3 सदस्यों को छोड़कर विधान परिषद के शेष सभी सदस्य (जो कुल संख्या के आधे होते हैं) प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (Territorial constituencies) से चुने जाते हैं। ये प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र संसद की विधि द्वारा या संसद की विधि के अधीन निर्धारित किए जाते हैं।

विधान परिषद की अवधि (Term for the Legislative Council)

राज्यसभा के अनुकरण में विधान परिषद को भी 'स्थायी सदन' बनाया गया है। अनुच्छेद 172(2) में स्पष्टतः कहा गया है कि विधान परिषद का कभी विघटन नहीं होगा। प्रत्येक 2 वर्षों के बाद उसके यथासंभव निकटतम 1/3 सदस्य निवृत्त हो जाते हैं।

विधानसभा (The Legislative Assembly)

राज्य-विधानमंडल का लोकप्रिय सदन (Popular house) विधानसभा (Legislative Assembly) कहलाता है। विधानसभा की संरचना से संबंधित सभी उपबंधों को निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा समझा जा सकता है।

सदस्यों की संख्या (Number of members)

अनुच्छेद 170 के अनुसार, किसी राज्य की विधानसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 500 हो सकती है और न्यूनतम संख्या 60; किंतु संविधान लागू होने के बाद बनाए गए कुछ छोटे राज्यों के संबंध में इस प्रावधान को बदला गया है। वर्तमान स्थिति यह है कि अनुच्छेद 170 में तो विधानसभा सदस्यों की संख्या 60-500 के बीच बताई गई है किंतु अनुच्छेद 371 के विभिन्न खंडों में कुछ राज्यों के लिए बनाए गए विशेष प्रावधानों के तहत इसे कहीं-कहीं 60 से कम किया गया है। यह न्यूनतम संख्या नागालैंड के लिए 46 है; सिक्किम के लिए 30; मिजोरम के लिए 40; अरुणाचल प्रदेश के लिए 30 और गोवा के लिए 30 है। वर्तमान में 3 राज्य ऐसे हैं, जहाँ की विधानसभाओं में सचमुच 60 से कम सदस्य हैं। ये हैं- गोवा (40), नागालैंड (40) और सिक्किम (32)। निम्नलिखित तालिका में सभी राज्यों की विधानसभाओं की सदस्य संख्या देखी जा सकती है-

आंध्र प्रदेश	294	महाराष्ट्र	288
अरुणाचल प्रदेश	60	मणिपुर	60
असम	126	मेघालय	60
बिहार	243	मिजोरम	40
छत्तीसगढ़	90	नागालैंड	60
गोवा	40	ओडिशा	147
गुजरात	182	पंजाब	117
हरियाणा	90	राजस्थान	200
हिमाचल प्रदेश	68	सिक्किम	32
जम्मू-कश्मीर	89	तमिलनाडु	234
झारखंड	81	त्रिपुरा	60
कर्नाटक	224	उत्तर प्रदेश	403
केरल	140	उत्तराखंड	70
मध्य प्रदेश	230	पश्चिमी बंगाल	294

गौरतलब है कि 7 में से 2 संघ राज्यक्षेत्रों (Union territories) में भी विधानसभाएँ गठित की गई हैं। ये हैं- दिल्ली तथा पुदुच्चेरी। दिल्ली विधानसभा में 70 सदस्य हैं जबकि पुदुच्चेरी विधानसभा में 30। इनसे संबंधित विशिष्ट उपबंध संविधान के अनुच्छेद 239 में दिए गए हैं।

चुनाव विधि (Election method)

विधानसभा के सदस्यों का चुनाव प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (Territorial constituencies) से प्रत्यक्ष विधि द्वारा होता है। चुनाव की यह प्रणाली ठीक वैसी है जैसी लोकसभा चुनावों के लिए है। गौरतलब है कि नागालैंड तथा सिक्किम के संबंध में विशेष उपबंध है कि इन राज्यों की विधानसभाओं में कुछ स्थान परोक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाएंगे। इसी तरह, जम्मू-कश्मीर के संविधान में प्रावधान है कि इसके 89 में से 2 सदस्य मनोनीत किए जाएंगे जबकि 87 स्थान चुनावों द्वारा भरे जाएंगे।

आरक्षण (Reservation)

अनुच्छेद 332 तथा 333 के तहत विधानसभाओं में आरक्षण दिए जाने का प्रावधान है। अनुच्छेद 332 में स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक राज्य की विधानसभा की सदस्यता के लिए अनुसूचित जातियों (Scheduled castes) और अनुसूचित जनजातियों (Scheduled tribes) को राज्य की जनसंख्या में उनके अनुपात के अनुसार आरक्षण दिया जाएगा।

समुदाय का प्रतिनिधित्व आवश्यक है किंतु पर्याप्त नहीं है तो वह आंग्ल-भारतीय समुदाय के एक सदस्य को विधानसभा के लिए मनोनीत कर सकेगा।

आरक्षण तथा मनोनयन की ये दोनों व्यवस्थाएँ संविधान निर्माण के समय 10 वर्षों के लिए निर्धारित की गई थीं, पर संसद ने समय-समय पर उन्हें समग्र-विस्तार दिया है। अद्यतन स्थिति यह है कि '95वें संविधान संशोधन, 2009' के द्वारा इन दोनों व्यवस्थाओं को 26 जनवरी, 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया है।

विधानसभा की अवधि (Term of Legislative Assembly)

कार्य रूप में प्रवृत्त है।

ध्यातव्य है कि परिसीमन का प्रभाव उस विधानसभा पर नहीं पड़ता जो कार्यरत होती है। उसका प्रभाव अगले विधानसभा चुनावों पर लागू होता है।

सत्र, सत्रावसान तथा विघटन (Sessions, Prorogation and Dissolution)

राज्य के विधानमंडल के दोनों सदन समय-समय पर विभिन्न सत्रों के लिए एकत्र होते हैं। विभिन्न सत्रों की शुरुआत, स्थगन (adjournment) तथा सत्रावसान (prorogation) आदि से संबंधित विभिन्न नियम हैं जिनमें से प्रमुख की चर्चा यहाँ की जा रही है।

सत्र आहूत करना (Summoning of the Session)

संविधान के अनुच्छेद 174(1) में कहा गया है कि राज्यपाल समय-समय पर राज्य के विधानमंडल के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर अधिवेशन (meeting) के लिए बुलाएगा जिसे वह उचित समझे। इसमें यह भी कहा गया है कि एक सत्र की अंतिम बैठक तथा अगले सत्र की पहली बैठक के मध्य 6 महीनों का अंतराल नहीं होना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि वर्ष में कम से कम दो बार तो विधानमंडल का सत्र होना ही चाहिए। ध्यातव्य है कि विधानमंडल का सत्र बुलाना राज्यपाल का विवेकाधिकार (discretion) नहीं है। वह मुख्यमंत्री की सलाह के अनुसार ही सत्र बुलाता है।

राज्यपाल का अभिभाषण (Governor's address)

अनुच्छेद 176 के तहत विधानसभा के चुनावों के पश्चात् पहले सत्र की शुरुआत पर तथा प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र की शुरुआत के अवसर पर राज्यपाल विधानसभा को (या दोनों सदनों को संयुक्त रूप से) संबोधित करता है। इस संबोधन को 'राज्यपाल का विशेष अभिभाषण' (Special address by the Governor) कहते हैं। यह राज्यपाल का व्यक्तिगत भाषण नहीं होता। इसे मंत्रिपरिषद् द्वारा तैयार किया जाता है और इसमें सरकार की नीतियाँ तथा भावी कार्यक्रमों की चर्चा होती है।

स्थगन (Adjournment)

स्थगन का अर्थ है—बैठक को अस्थायी तौर पर निलंबित करना। सदन की स्थगित करने की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी के पास होती है। प्रायः स्थगन द्वारा सदन की बैठक को कुछ मिनटों, घंटों या कुछ दिनों के लिए निलंबित किया जाता है। स्थगन का प्रभाव सदन में विजराधीन किसी भी विधेयक या प्रस्ताव आदि पर नहीं पड़ता है।

कभी-कभी हो सकता है कि पीठासीन अधिकारी सदन को स्थगित तो करे, किंतु उसके पुनः एकत्रित होने के संबंध में तिथि या समय की घोषणा न करे। इस प्रकार के स्थगन को 'अनिश्चितकाल के लिए स्थगन' या 'साइन डाइ स्थगन' (Adjournment Sine Die) कहते हैं।

सत्रावसान (Prorogation)

सत्रावसान का अर्थ है—विधानमंडल के किसी सत्र का समाप्त होना। सत्रावसान सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा नहीं बल्कि राज्यपाल द्वारा घोषित किया जाता है।

विघटन (Dissolution)

विघटन सत्रावसान से अलग होता है। सत्रावसान (prorogation) सदन के एक सत्र (session) को समाप्त करता है जबकि विघटन (dissolution) सदन को ही समाप्त कर देता है। ध्यातव्य है कि विघटन सिर्फ विधानसभा का होता है, विधान परिषद् का नहीं; क्योंकि विधान परिषद् स्थायी सदन है। विधानसभा के विघटन से विधानसभा समाप्त हो जाती है और आम चुनावों के बाद नई विधानसभा का गठन होता है।

विधानसभा का विघटन करने की शक्ति राज्य के राज्यपाल को दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 174(2) में कहा गया है कि राज्यपाल समय-समय पर विधानसभा का विघटन कर सकेगा।

विधानसभा का विघटन 3 कारणों से हो सकता है—

(क) यदि इसका कार्यकाल पूरा हो गया हो।

तब होता है जब सरकार को नया जनादेश लेने की जरूरत महसूस होती है; या वह विश्वास प्रस्ताव (Confidence motion), अविश्वास प्रस्ताव (No confidence motion) या किसी अन्य नीति विषयक प्रश्न पर विधानसभा में पराजित हो जाती है और राज्यपाल को उसी विधानसभा में से नई सरकार का गठन व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता है।

- (ग) यदि राष्ट्रपति ने राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के आधार पर अनुच्छेद 356 को तहत राष्ट्रपति शासन लगा दिया है और उसने पाया है कि वर्तमान परिस्थितियों में विधानसभा का विघटन करना ही उचित होगा।

विधानमंडल के पदाधिकारी (Office bearers of the State Legislature)

विधानसभा और विधान परिषद में दो-दो प्रमुख अधिकारी होते हैं- विधानसभा में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा विधान परिषद में सभापति और उपसभापति।

विधानसभा के सदस्य अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को अपने में से ही चुनते हैं। प्रत्येक आम चुनावों के पश्चात् विधानसभा यथाशीघ्र अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव करती है। इसी प्रकार, विधान परिषद भी अपने सदस्यों में से दो को सभापति तथा उपसभापति पदों के लिए चुनती है। यह चुनाव तब होता है जब एक-तिहाई सदस्यों के सेवानिवृत्त होने की प्रक्रिया में सभापति या उपसभापति सेवानिवृत्त हो जाते हैं। गौरतलब है कि राज्यसभा में सभापति का पद उपराष्ट्रपति को दिया गया है जो स्वयं राज्यसभा का सदस्य नहीं होता; पर विधान परिषद का सभापति विधान परिषद का ही सदस्य होता है और सदन के सदस्यों के बहुमत से चुना जाता है। कई मामलों में राज्यसभा के समान होकर भी इस उपबंध की दृष्टि से विधान परिषद राज्यसभा से अलग है।

इन पदाधिकारियों को अपना पद सम्भालने के लिए न तो कोई शपथ (Oath) लेनी पड़ती है और न ही कोई प्रतिज्ञा (affirmation) करनी पड़ती है।

यदि कभी विधानसभा के अध्यक्ष का पद रिक्त हो तो उपाध्यक्ष उसकी भूमिका का निर्वाह करता है। यदि उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त हो तो विधानसभा का ऐसा सदस्य, जिसे राज्यपाल नियुक्त करे, इस पद का निर्वाह करता है। ठीक यही व्यवस्था विधान परिषद के सभापति व उपसभापति के संबंध में भी है।

जहाँ तक सदन की बैठकों के संचालन का प्रश्न है, सामान्यतः अध्यक्ष या सभापति ही उनका संचालन करता है और यदि वह न हो तो उपाध्यक्ष या उपसभापति उसकी भूमिका निभाता है। अनुच्छेद 180(2) में कहा गया है कि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष के रूप में वह व्यक्ति कार्य करेगा, जो विधानसभा द्वारा इस कार्य हेतु निर्दिष्ट किया गया हो। विधानसभा अपनी 'प्रक्रिया संबंधी नियमावली' (Rules of procedure) के अनुसार एक सूची बनाती है, जिसमें कुछ सदस्यों के नाम होते हैं।

उक्त चारों पदाधिकारियों के कार्यकाल की अवधि अलग से निर्धारित नहीं है। साधारण स्थितियों में विधानसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष अपने पदों पर तब तक बने रहते हैं जब तक विधानसभा का विघटन नहीं होता है। इसी प्रकार, विधान परिषद के सभापति तथा उपसभापति तब तक पदों पर रहते हैं जब तक उनके 6 वर्ष के कार्यकाल को समाप्ति न हो जाए। किंतु, कुछ ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जब ये पदाधिकारी इस अवधि के दौरान ही अपने पद से मुक्त हो जाएँ। ऐसी स्थितियाँ संविधान के अनुच्छेद 179 तथा 183 में बताई गई हैं जो निम्नलिखित हैं-

- (क) यदि वे सदन के सदस्य न रहें। (जैसे, यदि उनका चुनाव अवैध घोषित कर दिया जाए)।
- (ख) यदि वे स्वेच्छा से इस्तीफा दे दें। इस्तीफा देने का तरीका यह है कि अध्यक्ष उपाध्यक्ष को, उपाध्यक्ष अध्यक्ष को, सभापति उपसभापति को तथा उपसभापति सभापति को संबोधित करके अपना इस्तीफा दे सकता है।
- (ग) यदि सदन अपने तात्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से संकल्प (resolution) पारित करके उन्हें पद से हटा दे।

इस संबंध में एक नियम यह भी है कि यदि चारों में से किसी भी पदाधिकारी को हटाने के लिए संकल्प प्रस्तावित किया जाना है तो इस आशय की सूचना कम से कम 14 दिन पहले देना अनिवार्य है।

जिस बैठक में किसी पदाधिकारी को हटाने के लिए सदन विचार कर रहा होता है, उस बैठक में वह पदाधिकारी उपस्थित तो हो सकता है किंतु पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) के रूप में कार्य नहीं कर सकता। उसे अपना पक्ष रखने, सदन की कार्यवाही में भाग लेने तथा उसे हटाए जाने को लेकर प्रस्तावित संकल्प पर मतदान करने का अधिकार होता है, किंतु यदि पक्ष और

निर्वहन करता रहता है।

अध्यक्ष व सभापति की शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and functions of the Speaker and Chairman):

विधानसभा अध्यक्ष तथा विधान परिषद के सभापति के पर अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनकी प्रमुख शक्तियाँ और कार्य इस प्रकार हैं—

- (i) उनका प्राथमिक कार्य सदन की बैठकों के लिए दिन तथा समय निर्धारित करना, उनका संचालन करना तथा कार्यवाही को व्यवस्थित व नियंत्रित करना है। संचालन संबंधी किसी भी संशय या मतभेद की अवस्था में उनका निर्णय अंतिम होता है।
- (ii) यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत पड़ते हैं तो वे निर्णायक मत (Casting vote) देते हैं।
- (iii) 10वीं अनुसूची अर्थात् दल-बदल विरोधी कानून (Anti-defection law) के तहत उन्हें शक्ति दी गई है कि सदन के किसी सदस्य के संबंध में दल-बदल संबंधी शिकायत मिलने पर उसकी निरहता (disqualification) के प्रश्न पर फैसला करें।
- (iv) वे तय करते हैं कि किसी सदस्य को सदन में बोलने का मौका देना है या नहीं; और यदि देना है तो कितनी अवधि के लिए?
- (v) वे चाहें तो सदन की किसी बैठक को 'गुप्त सत्र' (Secret session) में रूपांतरित कर सकते हैं। ऐसा निर्णय सदन के नेता के आग्रह पर किया जाता है।
- (vi) वे सदन की समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति करते हैं तथा कुछ महत्वपूर्ण समितियों की अध्यक्षता स्वयं भी करते हैं।
- (vii) सदन की बैठक के लिए जरूरी है कि कुल सदस्य सख्या के कम से कम 1/10 सदस्य या कुल 10 सदस्य (जो भी अधिक हो) उपस्थित हों। यदि यह गणपूर्ति (Quorum) नहीं है तो अध्यक्ष या सभापति का कर्तव्य खिन्नता है कि वह बैठक को तब तक के लिए स्थगित (adjourn) कर दे, जब तक गणपूर्ति न हो जाए।

एक मामले में विधानसभा अध्यक्ष के पास विधान परिषद के सभापति की तुलना में विशेष शक्ति है। यह शक्ति धन-विधेयक के संबंध में है। कोई विधेयक धन-विधेयक (Money Bill) है या नहीं, यह निश्चित करने की शक्ति विधानसभा अध्यक्ष के पास है। इस संबंध में उसका निर्णय अंतिम होता है।

विधानमंडल की सदस्यता (Membership of the Legislature)

संविधान में राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के संबंध में अर्हताएँ (qualifications) तथा निरहताएँ (disqualifications) बताई गई हैं। साथ ही, अनुच्छेद 173(ग) के तहत संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह इन अर्हताओं या निरहताओं की सूची में अन्य उपबंध जोड़ सके।

सदस्यता के लिए अर्हताएँ (Qualifications for membership)

राज्य-विधानमंडल की सदस्यता के लिए निर्धारित अर्हताओं की सूची दो स्रोतों से मिलती है। पहला स्रोत संविधान है जबकि दूसरा संसद द्वारा पारित 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951'।

(क) संविधान में वर्णित अर्हताएँ (Qualifications described in the constitution): अनुच्छेद 173 के अनुसार राज्य-विधानमंडल का सदस्य बनने के लिए प्रत्याशी को निम्नलिखित अर्हताएँ पूरी करनी होती हैं—

- (i) वह भारत का नागरिक हो।
- (ii) उसकी आयु विधानसभा सदस्य बनने के लिए कम से कम 25 वर्ष और विधान परिषद की सदस्यता के लिए न्यूनतम 30 वर्ष हो।
- (iii) उसने संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार शपथ (oath) ली हो। यह शपथ किसी ऐसे व्यक्ति के सामने ली जानी चाहिए जिसे चुनाव आयोग ने इस कार्य के लिए प्राधिकृत किया है। इस शपथ के अभाव में नामांकन पत्र रद्द कर दिया जाता है।
- (iv) वह ऐसी अन्य अर्हताएँ भी पूरी करता हो, जो इस संबंध में संसद द्वारा पारित किसी विधि के अधीन निर्धारित की गई हों।

(ख) संसद द्वारा निर्धारित अर्हताएँ (Qualifications determined by the parliament): संसद ने अनुच्छेद 173 द्वारा प्रदत्त

अन्य अर्हताएँ भी निर्धारित की हैं, जैसे-

- (i) राज्य के विधानमंडल का सदस्य बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को उसी राज्य के किसी न किसी विधानसभा क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए। यह नियम उन सदस्यों पर भी लागू होता है जो राज्यपाल द्वारा किसी सदन में मनोनीत किए गए हैं।
- (ii) यदि कोई व्यक्ति अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ना चाहता है तो उसे राज्य सरकार द्वारा घोषित अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल समुदाय का अंग होना चाहिए।

सदस्यता के लिए निरर्हताएँ (Disqualifications for membership)

राज्य के विधानमंडल की सदस्यता से संबंधित निरर्हताएँ प्रायः वैसी ही हैं जैसी संसद की सदस्यता के लिए हैं। इन निरर्हताओं की जानकारी तीन स्रोतों से प्राप्त होती है-

- (क) **संविधान में वर्णित निरर्हताएँ (Disqualifications described in the constitution):** अनुच्छेद 191 में बताया गया है कि कोई भी व्यक्ति जो निम्नलिखित में से कोई निरर्हता रखता है, राज्य के विधानमंडल का सदस्य नहीं बन सकेगा-
 - (i) यदि वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन कोई 'लाभ का पद' (Office of profit) धारण करता है।
 - (ii) यदि वह विकृत मस्तिष्क (Unsound mind) का है तथा सक्षम न्यायालय ने ऐसी घोषणा की है।
 - (iii) यदि वह अनुसूक्त दिवालिया (Undischarged insolvent) है।
 - (iv) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा स्वीकार किए हुए है।
 - (v) यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है।
- (ख) **दल-बदल विरोधी कानून से जुड़ी निरर्हताएँ (Disqualifications associated with Anti defection law):** अनुच्छेद 191 के साथ दिए गए दूसरे स्पष्टीकरण में बताया गया है कि यदि कोई व्यक्ति 10वीं अनुसूची में दिये गये नियमों के आधार पर निरर्हत घोषित हो जाता है तो वह राज्य के विधानमंडल का सदस्य होने के लिए अर्हित (qualified) नहीं रह जाएगा। वर्तमान स्थिति यह है कि यदि किसी दल की दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में विलय (Merger) कर लेते हैं तो कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती किन्तु उससे कम सदस्यों का दल से अलग होना उन सदस्यों को राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अयोग्य बना देता है। इसके अतिरिक्त, निर्दलीय विधायक द्वारा किसी दल की सदस्यता लेना; मनोनीत विधायक द्वारा मनोनयन के 6 महीने बाद किसी दल की सदस्यता लेना; किसी विधायक द्वारा पार्टी व्हिप का उल्लंघन करना आदि भी इस अधिनियम के तहत निरर्हता के आधार हैं।
- (ग) **'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' से जुड़ी निरर्हताएँ (Disqualifications associated with 'Representation of people act, 1951'):** इसके अनुसार, निम्नलिखित में से कुछ भी होने पर कोई व्यक्ति राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अर्हित नहीं रहेगा-
 - (i) वह व्यक्ति किसी चुनाव में भ्रष्ट आचरण का दोषी सिद्ध हुआ हो।
 - (ii) उसे किसी अपराध में दोषी सिद्ध होने के आधार पर 2 वर्ष या उससे अधिक के कारावास की सजा मिली हो। इसमें निवारक निरोध (Preventive detention) के आधार पर किया गया बंदीकरण शामिल नहीं है।
 - (iii) वह अपने चुनावी खर्च का ब्यौरा निर्धारित समय के भीतर देने में विफल रहा हो।
 - (iv) वह किसी ऐसे निगम में 'लाभ का पद' (Office of profit) धारण करता हो जिसमें सरकार की हिस्सेदारी 25 प्रतिशत या उससे ज्यादा हो।

निरर्हता से संबंधित निर्णय की प्रक्रिया (Procedure of decision regarding disqualification)

कोई सदस्य निरर्ह (disqualified) हो गया है या नहीं, यह प्रश्न राज्यपाल को निर्देशित किए जाने का प्रावधान है। अनुच्छेद 192 में स्पष्ट किया गया है कि ऐसा प्रश्न राज्यपाल को निर्देशित किया जाएगा और इस संबंध में उसका निर्णय अंतिम होगा। ऐसे

करे।

वर्तमान व्यवस्था यह है कि निर्वाचन से पहले की निरर्हता का फैसला उच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है जबकि निर्वाचन के बाद की निरर्हता का फैसला राज्यपाल करता है।

सदस्यता की समाप्ति (Termination of membership)

किसी राज्य के विधानमंडल सदस्य की सदस्यता निम्नलिखित आधारों पर समाप्त हो सकती है—

- (i) यदि किसी विधायक ने विधान परिषद के सभापति या विधानसभा के अध्यक्ष को संबोधित करके अपना त्यागपत्र दे दिया हो तथा पीठासीन अधिकारी ने उसे स्वीकार कर लिया हो।
- (ii) यदि कोई विधायक संविधान में बताई गई या संसद की विधि द्वारा निर्धारित की गई निरर्हताओं (disqualifications) में से किसी का भागी हो गया है तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी।
- (iii) यदि कोई सदस्य सदन से अनुमति लिए बिना लगातार 60 दिनों तक सदन की प्रत्येक बैठक में अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है।
- (iv) राज्य के विधानमंडल की सदस्यता कुछ अन्य स्थितियों में भी समाप्त हो सकती है, जैसे—
 - (क) यदि न्यायालय उस चुनाव को ही अवैध या शून्य (void) घोषित कर दे जिसके आधार पर वह व्यक्ति विधानमंडल का सदस्य बना था।
 - (ख) यदि विधानमंडल का कोई सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति चुने लिया जाता है अथवा किसी राज्य का राज्यपाल बना दिया जाता है।
 - (ग) यदि किसी सदस्य को अनुचित आचरण आदि के कारण सदन द्वारा निष्कासित (expel) कर दिया जाता है।

विधानमंडल में मंत्रियों एवं महाधिवक्ता के अधिकार

(Rights of Ministers and Advocate General in Legislature)

विधानमंडल के दोनों सदनों के सदस्यों के अलावा महाधिवक्ता (Advocate General) तथा मंत्रियों को भी सदन की कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद 177 तथा 194(4) में इनके अधिकार बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं—

- (i) महाधिवक्ता (Advocate General) किसी भी सदन की कार्यवाही में भाग ले सकता है और यदि उसे किसी समिति में सदस्य बनाया गया है तो उसमें भी भाग ले सकता है। वह इन सभी मामलों पर अपने विचार भी व्यक्त कर सकता है किंतु उसे मतदान करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।
- (ii) यदि कोई मंत्री किसी सदन का सदस्य नहीं है तो भी वह दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है तथा मतदान के अलावा उपरोक्त वर्णित अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। ध्यातव्य है कि कोई व्यक्ति बिना किसी सदन का सदस्य हुए अधिकतम 6 महीनों तक मंत्री-पद धारण कर सकता है।
- (iii) जो मंत्री विधानमंडल के सदस्य हैं, उन्हें भी एक विशेष अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक मंत्री उस सदन की कार्यवाही में भी भाग ले सकता है जिसका वह सदस्य नहीं है; किंतु उसे मतदान का अधिकार उसी सदन में होता है जिसका वह सदस्य है।

विधानमंडल के विशेषाधिकार (Legislature's Privileges)

राज्य-विधानमंडल के सदस्यों को अपने कार्यों का समुचित निर्वहन करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 194 के तहत कुछ विशेष अधिकार व उन्मुक्तियाँ दी गई हैं। ये अधिकार विधानमंडल के सदस्यों के साथ-साथ राज्य के महाधिवक्ता (Advocate General) तथा मंत्रियों (जो अभी राज्य-विधानमंडल के सदस्य नहीं बने हैं) को भी दिए गए हैं।

विधानमंडल के विशेषाधिकारों का वर्णन किसी एक स्थान पर व्यवस्थित रूप में नहीं मिलता। संविधान के कुछ उपबंधों के अलावा राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित कानूनों, विधानसभा (या दोनों सदनों) के कार्यवाही संबंधी नियमों, न्यायालय द्वारा की गई व्याख्याओं तथा राज्य के विधानमंडल की स्थापित परंपराओं के समग्र अध्ययन से इनकी पूरी सूची को समझा जा सकता है।

विशेषाधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Privileges)

(क) सामूहिक विशेषाधिकार (Collective Privileges)

दोनों सदनों के सामूहिक विशेषाधिकार निम्नलिखित हैं—

- (i) कार्यवाहियाँ चलाने का अधिकार— इसका अर्थ है कि सदन को अपनी कार्यवाहियों को अपने तरीके से चलाने और विनियमित करने का अधिकार है। यदि इससे संबंधित कोई प्रश्न उठता है तो उसके संबंध में सदन का निर्णय अंतिम होता है।
- (ii) बहस और कार्यवाहियों के प्रकाशन का अधिकार तथा प्रकाशन रोकने का अधिकार— इसके अनुसार विधानमंडल को अधिकार है कि वह अपनी कार्यवाही को प्रकाशित कर सकता है, किसी अन्य व्यक्ति को प्रकाशन का अधिकार दे सकता है तथा किसी को भी संसदीय कार्यवाहियों के प्रकाशन से रोक सकता है।
- (iii) बाहरी व्यक्तियों को सदन से बाहर निकालने का अधिकार— विधानमंडल के दोनों सदनों को अधिकार है कि वे अपनी किसी भी बैठक को गुप्त सत्र (Secret Session) घोषित कर सकते हैं। इस दृष्टि से उन्हें यह हक है कि वे किसी भी बाहरी व्यक्ति को सदन से बाहर भेज सकें।
- (iv) विशेषाधिकार हनन (Breach of privileges) के लिए अपने सदस्यों और बाहरी व्यक्तियों को दंड देने का अधिकार— विधानमंडल के प्रत्येक सदन को यह शक्ति है कि वह अपने विशेषाधिकार उल्लंघन (Breach of Privileges) के लिए सदन के सदस्य या बाहरी व्यक्ति को दंड दे सके।
- (v) अपनी चारदीवारी के भीतर सभी मामलों को विनियमित करने का अधिकार— प्रत्येक सदन को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपने परिसर के भीतर उत्पन्न होने वाले किसी भी विषय पर फैसला ले सके। उदाहरण के लिए, सदन परिसर में पोटासीन अधिकारी की अनुमति के बिना किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह सदस्य हो या गैर-सदस्य, न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही उसके विरुद्ध कोई सिविल या आपराधिक कार्यवाही की जा सकती है।
- (vi) साधारण वारंट द्वारा गिरफ्तारी का विशेषाधिकार— इसका अर्थ है कि विधानमंडल के प्रत्येक सदन को अपनी अवमानना या विशेषाधिकार हनन के मामले में किसी भी व्यक्ति को जेल भेजने का अधिकार है। वस्तुस्थिति यह है कि विधानमंडल की यह शक्ति अनुच्छेद 21 और न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial review) से स्वतंत्र नहीं है।
- (vii) सदन को यह अधिकार है कि यदि उसके किसी सदस्य की गिरफ्तारी हुई है, उसे निरुद्ध (detain) किया गया है, वह दोषसिद्ध (convict) हुआ है, उसे कारावास भेजा गया है या कारावास से मुक्त किया गया है तो उसकी सूचना तुरंत सदन को प्राप्त होनी चाहिए।
- (viii) सदन को यह भी अधिकार है कि उसको किसी समिति की रिपोर्ट या समिति के समक्ष दिए गए साक्ष्य (evidence) को तब तक कोई प्रकाशित नहीं कर सकता जब तक वह सदन के सामने प्रस्तुत न कर दिया गया हो।

(ख) व्यक्तिगत विशेषाधिकार (Individual Privileges):

विधानमंडल के सदस्यों को कुछ व्यक्तिगत विशेषाधिकार भी दिए गए हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

- (i) सिविल गिरफ्तारी से मुक्ति— विधानमंडल के सदस्यों को विधानमंडल के सत्र के दौरान या उससे 40 दिन पहले तथा 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह विशेषाधिकार सिर्फ सिविल मामलों से जुड़ी गिरफ्तारियों तक सीमित है। यदि विधानमंडल का कोई सदस्य किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त है या उसे निवारक निरोध (Preventive detention) के तहत गिरफ्तार किये जाने की ज़रूरत है तो उसे यह संरक्षण नहीं मिलेगा। न्यायालय की अवमानना (Contempt of Court) के मामले में भी यह संरक्षण उपलब्ध नहीं होता है।
- (ii) गवाह के रूप में उपस्थित होने से स्वतंत्रता— जिस समय विधानमंडल का सत्र चल रहा होता है, उस समय किसी सदस्य को किसी मामले में गवाही देने के लिए सदन की अनुमति के बिना नहीं बुलाया जा सकता है।
- (iii) वाक्-स्वातंत्र्य या अधिव्यक्ति की स्वतंत्रता— इसका अर्थ है कि विधानमंडल का सदस्य विधानमंडल के भीतर की गई अपनी अधिव्यक्तियों के संबंध में पूर्णतः स्वतंत्र होता है। संविधान का अनुच्छेद 194(1) विधानमंडल सदस्यों को यह विशेषाधिकार प्रदान करता है। किंतु, यह वाक्-स्वतंत्रता दो तरह के निर्बंधनों (restrictions) के अधीन है—

- (i) उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए किए गए किसी आचरण के विषय में विधानमंडल में कोई चर्चा नहीं की जा सकती।

- (ii) अगर विधानमंडल ने अपनी प्रक्रिया के नियमों के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ सीमाएँ आरोपित की हैं तो विधायकों को उनका पालन करना होता है।

विधि निर्माण की प्रक्रिया (Legislative Procedure)

1. साधारण विधेयकों की प्रक्रिया (Procedure for Ordinary Bills)

साधारण विधेयक कानून बनने से पूर्व कई चरणों से गुजरता है। यह प्रक्रिया पूर्णतः वही है जो संसद में अपनाई जाती है। संक्षेप में, यह प्रक्रिया इस प्रकार है—

- (i) **प्रथम वाचन (First Reading)**— प्रथम वाचन का अर्थ विधेयक को पेश किए जाने तथा राजपत्र में उसका प्रकाशन होने से है। गौरतलब है कि साधारण विधेयक विधानसभा या विधानपरिषद किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
- (ii) **द्वितीय वाचन (Second Reading)**— इसके अंतर्गत विधेयक के सभी उपबंधों पर विस्तृत विचार-विमर्श होता है। यदि उसमें कोई संशोधन आदि प्रस्तावित किए जाते हैं तो उन पर मतदान कराकर इस चरण में उन्हें शामिल या खारिज किया जाता है।
- (iii) **तृतीय वाचन (Third Reading)**— यह किसी सदन द्वारा विधेयक पारित किए जाने की प्रक्रिया का अंतिम चरण है। इस चरण में सिर्फ संपूर्ण विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने पर चर्चा होती है। विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता। यदि सदन का अपेक्षित बहुमत उसका समर्थन कर देता है तो विधेयक पारित हो जाता है।
- (iv) **विधेयक दूसरे सदन को भेजा जाना (Sending the Bill to the Second House)**— यह चरण उन्हीं राज्यों में आता है जहाँ विधानमंडल के 2 सदन हैं। ऐसे विधानमंडलों में विधेयक पर दोनों सदनों की सहमति जरूरी होती है। यदि विधानसभा विधेयक को पारित करके सहमति प्राप्त करने के लिए उसे विधान परिषद को प्रेषित करती है तो विधान परिषद के पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं—
 - (क) वह विधेयक को बिना किसी संशोधन के पारित करके विधानसभा को वापस भेज सकती है।
 - (ख) वह विधेयक को कुछ संशोधनों के साथ विधानसभा को वापस भेज सकती है।
 - (ग) वह विधेयक को अस्वीकार कर सकती है।
 - (घ) वह यह भी कर सकती है कि 3 महीनों से अधिक अवधि तक विधेयक को पड़ा रहने दे और उस पर कोई कार्यवाही न करे।

यदि विधान परिषद विधेयक को बिना संशोधनों के पारित कर देती है तो यह प्रक्रिया अगले चरण में पहुँच जाती है और विधेयक को राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। इसी प्रकार, यदि विधान परिषद विधेयक को कुछ ऐसे संशोधनों के साथ पारित करती है जिन पर विधानसभा सहमत है तो भी विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाता है तथा राज्यपाल को प्रेषित कर दिया जाता है।

किंतु, यदि विधान परिषद निम्नलिखित तीन में से कोई एक स्थिति उत्पन्न करती है तो यतिरोध पैदा हो जाता है—

- (i) यदि वह विधेयक को अस्वीकार कर देती है।
 - (ii) यदि वह 3 महीनों से अधिक अवधि तक विधेयक को अपने पास पड़ा रहने देती है तथा उस पर कोई कार्यवाही नहीं करती।
 - (iii) यदि वह विधेयक को ऐसे संशोधनों के साथ पारित करती है जिन पर विधानसभा सहमत नहीं है।
- इनमें से कोई भी स्थिति पैदा होने पर विधानसभा उस विधेयक को संशोधनों के साथ या संशोधनों के बिना पुनः पारित कर सकती है और उसे पुनः विधान परिषद को भेज सकती है। इस बार विधान परिषद को पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं—
- (i) वह विधेयक को स्वीकार कर ले अर्थात् पारित कर दे।
 - (ii) वह विधेयक को पुनः अस्वीकार कर दे।
 - (iii) वह विधेयक को ऐसे संशोधनों के साथ पारित कर दे जिनसे विधानसभा सहमत नहीं है।
 - (iv) वह 1 महीने से अधिक अवधि तक विधेयक पर कोई कार्यवाही न करे।

दिया गया है जैसा विधानसभा ने दूसरी बार में पारित किया था। इसका अर्थ है कि विधान परिषद के पास सिर्फ यह शक्ति है कि वह विधेयक को पहली बार में 3 महीने तथा दूसरी बार में 1 महीने तक रोक सकती है, किंतु वह उसे कानून बनने से पूरी तरह नहीं रोक सकती। इस दृष्टि से वह राज्यसभा की तुलना में काफी कमजोर सिद्ध होती है।

गौरतलब है कि संसद में ऐसे गतिरोध को सुलझाने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की व्यवस्था है किंतु राज्य के विधानमंडल के संबंध में ऐसा कोई उपबंध नहीं है।

ध्यान देने की बात है कि यदि विधेयक की शुरुआत विधान परिषद से होती है तो विधानसभा की सहमति के बिना विधेयक के पारित होने की कोई संभावना नहीं होती। यदि विधानसभा अनिश्चित काल तक उस पर विचार न करे तो भी विधान परिषद उसे विचार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। यदि विधानसभा उसे खारिज कर देती है तो विधेयक वहीं समाप्त हो जाता है।

- (v) **राज्यपाल की स्वीकृति (Assent of the Governor)**— विधानसभा (या विधानमंडल के दोनों सदनों) द्वारा पारित किए जाने के बाद विधेयक राज्यपाल के पास भेजा जाता है क्योंकि उसकी स्वीकृति विधेयक के अधिनियम बनने के लिए अनिवार्य है। अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल के पास ऐसे विधेयक के संबंध में निम्नलिखित विकल्प होते हैं—

- (क) वह विधेयक को स्वीकार करने की घोषणा कर सकता है। उसकी स्वीकृति मिलने पर विधेयक अधिनियम बन जाता है।
- (ख) वह विधेयक को अस्वीकार करने की घोषणा कर सकता है। ऐसा वह तभी कर सकता है जब मंत्रिपरिषद ने उसे ऐसा करने की सलाह दी हो।
- (ग) यदि राज्यपाल विधेयक के उपबंधों से संतुष्ट नहीं है तो वह उसमें संशोधन के कुछ सुझावों सहित उसे विधानसभा (या विधानमंडल के दोनों सदनों) को पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है। यदि विधानसभा (या दोनों सदनों) द्वारा राज्यपाल के सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करते हुए विधेयक को पुनः पारित कर दिया जाता है तो राज्यपाल उस पर अनुमति देने के लिए बाध्य होता है।
- (घ) राज्यपाल यह भी कर सकता है कि विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर ले। यदि किसी विधेयक से उच्च न्यायालय की शक्तियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना हो तो राज्यपाल को ऐसा विधेयक अनिवार्यतः आरक्षित करना होता है। इसके अलावा, रोष मामलों में राज्यपाल अपने विवेक से तय करता है कि विधेयक को आरक्षित किया जाना चाहिए या नहीं? साधारणतः वह ऐसे विधेयक को आरक्षित कर लेता है जिसमें कोई राष्ट्रीय महत्त्व का विषय शामिल हो या जिससे मूल अधिकारों के सीमित होने का खतरा हो।
- (ङ) वह विधेयक को अपने पास रोक भी सकता है। रोकने का अर्थ 'जेबी वीटो' अर्थात् 'पॉकेट वीटो' का प्रयोग करना है। चूंकि संविधान में राज्यपाल को विधेयक पर फैसला करने के लिए कोई समय सीमा नहीं दी गई है, इसलिए वह चाहे तो विधेयक को अनिश्चित काल तक अपने पास रोक सकता है।

यदि राज्यपाल ने विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लिया है तो अनुच्छेद 201 के तहत राष्ट्रपति के पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं—

- (i) वह विधेयक को अनुमति देने की घोषणा कर सकता है। ऐसा होने पर विधेयक अधिनियम बन जाता है।
- (ii) वह विधेयक को अनुमति नहीं देने की घोषणा कर सकता है। ऐसा होने पर विधेयक अधिनियम नहीं बन पाता।
- (iii) चूंकि अनुच्छेद 201 में राष्ट्रपति को विचार करने के लिए कोई समय सीमा नहीं बताई गई है, इसलिए यदि वह चाहे तो विधेयक को बिना विचार किए अपने पास पड़ा रहने दे सकता है।
- (iv) वह राज्यपाल को निर्देश देकर विधेयक को इस संदेश के साथ विधानमंडल को वापस भेज सकता है कि वह विधेयक के किसी या किन्हीं विशेष उपबंधों के संबंध में पुनर्विचार करे। ऐसा होने पर संदेश प्राप्त होने की तारीख से 6 महीने के भीतर विधानमंडल उस पर विचार करता है। अगर वह विधेयक को संशोधनों के साथ या उनके बिना पुनः पारित कर देता है तो उसे फिर से राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रपति इस बार भी विधेयक को अनुमति देने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 201 में सिर्फ इतना ही लिखा हुआ है कि विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष विचार के लिए फिर से प्रस्तुत किया जाएगा। इस संबंध में न तो कोई समय-सीमा दी गई है, और न ही उसे मंजूर करने संबंधी बाध्यता घोषित की गई है।

2. धन विधेयकों की प्रक्रिया (Procedure for Money Bills)

संविधान सभा चाहती थी कि जिस तरह केंद्र की वित्तीय व्यवस्था लोकसभा के नियंत्रण में है, उसी तरह राज्य की वित्तीय व्यवस्था विधानसभा के नियंत्रण में रहे। धन विधेयक के मामले में विधानसभा को इसीलिए विशेष अधिकार दिए गए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 199 में बताया गया है कि कोई विधेयक धन विधेयक तब माना जाएगा यदि उसमें अनुच्छेद 197 में दी गई सूची में से कोई एक, एक से अधिक या सभी विषयों से जुड़े प्रावधान होंगे तथा इस सूची से बाहर के विषयों से जुड़े कोई प्रावधान नहीं होंगे। यह सूची ठीक वही है जो संसद के संबंध में अनुच्छेद 110 में दी गई है।

धन विधेयक का निर्धारण (Determining the Money Bill)

अनुच्छेद 199(3) में स्पष्ट किया गया है कि यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं तो इस संबंध में विधानसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा। इसके अलावा, अनुच्छेद 199(4) में यह भी स्पष्ट किया गया है कि जब कभी कोई धन विधेयक विधान परिषद या राज्यपाल के पास सहमति या अनुमति के उद्देश्य से भेजा जाएगा तो ऐसे हर अवसर पर विधानसभा अध्यक्ष को यह प्रमाणपत्र पृष्ठांकित (endorse) करना होगा कि उक्त विधेयक धन विधेयक है।

अनुच्छेद 207 में बताया गया है कि धन विधेयक राज्यपाल की सिफारिश से ही तथा सिर्फ विधानसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है; विधान परिषद में नहीं। हाँ, यदि किसी कर को कम करने या हटाने के लिए किसी विधि में संशोधन किया जाना हो तो ऐसे मामले में राज्यपाल की सिफारिश की जरूरत नहीं है।

पारित करने की प्रक्रिया (Procedure for enactment)

सबसे पहले, धन विधेयक को विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है और तीन वाचनों (Three readings) को उसी प्रक्रिया द्वारा पारित किया जाता है जो साधारण विधेयकों पर लागू होती है। विधानसभा द्वारा पारित कर दिए जाने के बाद, धन विधेयक विधान परिषद के पास भेजा जाता है, किंतु इस विधेयक के मामले में विधान परिषद की शक्तियाँ अत्यंत सीमित हैं। वह अधिक से अधिक इतना ही कर सकती है कि उसमें संशोधन के लिए सिफारिश करे। इसके लिए उसके पास अधिकतम 14 दिनों का समय होता है। यदि वह 14 दिनों के भीतर विधेयक वापस नहीं लायती है तो मान लिया जाता है कि विधेयक उसी रूप में पारित हो गया है जिस रूप में विधानसभा ने उसे पारित किया था। यदि विधान परिषद इस विधेयक को पारित कर देती है तो भी विधेयक कानून बन जाता है।

यदि विधान परिषद धन विधेयक से संतुष्ट नहीं है और वह 14 दिनों के भीतर संशोधन से संबंधित सिफारिशें कर देती है तो विधानसभा के पास तीन विकल्प होते हैं—

- (क) वह सभी सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है।
- (ख) वह सभी सिफारिशों को खारिज कर सकती है।
- (ग) वह कुछ सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है और कुछ को खारिज।

यदि विधानसभा सभी सिफारिशों को खारिज कर देती है तो समझा जाता है कि विधानसभा द्वारा पारित पूरा विधेयक को दोनों सदनों ने पारित कर दिया है। यदि विधानसभा सभी या कुछ सिफारिशें स्वीकार कर लेती है तो समझा जाता है कि दोनों सदनों ने संशोधित विधेयक को स्वीकार कर लिया है।

इसके बाद धन विधेयक राज्यपाल के पास भेजा जाता है। विधानसभा अध्यक्ष विधेयक के साथ इस आशय का प्रमाण-पत्र पृष्ठांकित (endorse) करता है कि यह धन विधेयक है। अनुच्छेद 200 के तहत धन विधेयक के मामले में राज्यपाल को यह अधिकार नहीं है कि वह उसे राज्य के विधानमंडल को पुनर्विचार के लिए लाँटा सके। उसके पास तीन ही विकल्प होते हैं— पहला यह कि वह उस पर स्वीकृति दे दे; दूसरा यह कि स्वीकृति न दे; और तीसरा यह कि वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर ले। अनुच्छेद 201 में बताया गया है कि राष्ट्रपति भी ऐसे विधेयक पर या तो अनुमति दे सकेगा या रोक सकेगा; पर उसे सदन या सदनों के पास पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकेगा। इन विकल्पों के अलावा, राज्यपाल तथा राष्ट्रपति (अगर विधेयक को आरक्षित किया गया हो) के पास जेबी वोटो (Pocket veto) के प्रयोग का विकल्प तो रहता ही है क्योंकि उनके निर्णय के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है।

साधारणतः राज्यपाल धन विधेयक पर स्वीकृति दे देता है क्योंकि विधानसभा में ऐसा विधेयक पेश करने से पहले ही अनुच्छेद 207 के तहत उसकी सहमति ली जा चुकी होती है। इसलिए इस बात की संभावना नहीं के बराबर होती है कि राज्यपाल धन विधेयक को स्वीकृति प्रदान न करे।

3. वित्तीय विधेयकों की प्रक्रिया (Procedure for Financial Bills)

वित्तीय विधेयक उन सभी विधेयकों को कहते हैं जिनका संबंध वित्त से जुड़े मामलों से होता है, जैसे—सरकार के राजस्व (revenue) या व्यय (expenditure) से संबंधित विधेयक। किसी कर को लगाना या उसमें परिवर्तन करना आदि वित्तीय विधेयकों के सामान्य विषय हैं। हर धन विधेयक वित्तीय विधेयक होता है किंतु हर वित्तीय विधेयक धन विधेयक नहीं होता। राज्य सरकार के वित्तीय मामलों के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए वित्तीय विधेयकों (जो धन विधेयकों से पृथक हैं) को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— (i) वित्तीय विधेयक (प्रकार-I)— जो अनुच्छेद 207(1) से संबंधित है; तथा (ii) वित्तीय विधेयक (प्रकार-II)— जो अनुच्छेद 207(3) से संबंधित है।

- (i) वित्तीय विधेयक (प्रकार-I) [Financial Bills (Type-I)]: इन विधेयकों की चर्चा अनुच्छेद 207(1) में की गई है। ये वे विधेयक हैं जिनमें अनुच्छेद 199 में वर्णित कोई विषय तो शामिल है ही, साथ में कुछ ऐसे विषय भी शामिल हैं जो अनुच्छेद 199 की परिधि से बाहर के हैं। ऐसे विधेयक दो मामलों में धन विधेयकों के समान होते हैं—

(क) इन्हें विधानसभा में ही पेश किया जा सकता है, विधान परिषद में नहीं।

(ख) इन्हें राज्यपाल की सिफारिश से ही पेश किया जा सकता है।

ऐसे विधेयकों पर शेष सभी उपबंध वही लागू होते हैं जो साधारण विधेयकों के संबंध में बताए गए हैं। विधान परिषद तथा राज्यपाल को जो शक्तियाँ साधारण विधेयकों के संबंध में मिली हुई हैं, वे ही इन विधेयकों के संबंध में भी लागू होती हैं। उदाहरण के लिए, राज्यपाल चाहें तो ऐसे विधेयक को पुनर्विचार के लिए सदन या सदनों को लौटा सकता है जबकि वह धन विधेयकों के मामले में ऐसा नहीं कर सकता।

- (ii) वित्तीय विधेयक (प्रकार-II) [Financial Bills (Type-II)]: इस वर्ग में वे विधेयक शामिल हैं जिनकी चर्चा अनुच्छेद 207(3) में की गई है। इन विधेयकों में राज्य की संचित निधि से होने वाले खर्चों से जुड़े उपबंध होते हैं लेकिन ऐसा कोई विषय शामिल नहीं होता जिसका संबंध अनुच्छेद 199 में शामिल विषयों से हो।

ऐसे विधेयकों पर प्रायः साधारण विधेयकों वाले प्रावधान ही लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, इन्हें किसी भी सदन में शुरू किया जा सकता है, इनके लिए राज्यपाल की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होती और राज्यपाल के पास भी इन विधेयकों के संबंध में स्वीकृति देने, रोक लेने तथा पुनर्विचार हेतु वापस भेजने सहित सभी विकल्प होते हैं।

इन विधेयकों के संबंध में सिर्फ एक बात विशेष महत्त्व की है। ऐसे विधेयक को कोई भी सदन जब चाहें शुरू कर सकता है, किंतु जब सदन उस पर विचार करना या उसे पारित करना चाहता है तो उससे पहले राज्यपाल की सिफारिश लेना जरूरी होता है। यह सिफारिश दोनों सदनों को लेनी होती है।

विभिन्न प्रकार की निधियाँ (Different kinds of funds)

भारतीय संविधान में राज्य सरकार के राजस्व तथा खर्चों आदि के लिए तीन प्रकार की निधियों की चर्चा की गई है जो निम्नलिखित हैं—

- (i) राज्य की संचित निधि (Consolidated fund of State)— इसकी चर्चा अनुच्छेद 266 में की गई है। राज्य सरकार को प्राप्त होने वाला सारा राजस्व तथा ऋण-अदायगी (Loan repayment) से प्राप्त होने वाला सारा धन इसी में जमा कराया जाता है और राज्य सरकार के सभी खर्च भी सामान्यतः इसी निधि के माध्यम से होते हैं। इस निधि में से कोई भी धन तभी निकाला जा सकता है जब राज्य के विधानमंडल ने विनियोग अधिनियम (Appropriation act) या अनुपूरक अनुदान (Supplementary grant) संबंधी अधिनियम पारित किया हो।
- (ii) राज्य का लोक लेखा (Public Account of India)— इसकी चर्चा भी संविधान के अनुच्छेद 266 में की गई है। संचित निधि में जो राशियाँ शामिल होती हैं, उनके अलावा सभी सार्वजनिक राशियाँ 'राज्य के लोक लेखा' में जमा होती हैं। इस खाते से धन निकालने के लिए सरकार को विधानमंडल की मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती।
- (iii) राज्य की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund of India)— संविधान के अनुच्छेद 267 में राज्य के विधानमंडल को अधिकार दिया गया है कि वह 'राज्य की आकस्मिकता निधि' नाम से ज्ञात होने वाली एक निधि की स्थापना कर सकेगा। इस निधि का उद्देश्य यह होगा कि जब तक किसी आकस्मिक खर्च के लिए राज्य के विधानमंडल ने सरकार को प्राधिकृत न किया हो, तब तक राज्यपाल उसमें से आवश्यक धनराशि सरकार को अग्रिम (advance) के तौर पर दे सकेंगा। यह निधि राज्यपाल के अधिकार में रहती है और इसे संचालित करने के लिये संसदीय कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती।

विधानसभा और विधान परिषद की तुलना

(Comparison between Legislative Assembly Legislative Council)

विधानसभा और विधान परिषद को संविधान द्वारा न तो बराबर शक्तियाँ दी गई हैं और न ही बराबर कार्य। इनके बीच का शक्ति संतुलन साफ तौर पर विधानसभा के पक्ष में है। कुछ ही मामलों में विधान परिषद विधानसभा की बराबरी कर सकती है। निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से दोनों की तुलनात्मक स्थिति को समझा जा सकता है-

(1) वे मामले जिनमें दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर हैं:

- (i) साधारण विधेयकों को आरंभ करना।
- (ii) मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करना। ज्ञातव्य है कि मंत्री विधानमंडल के किसी भी सदन के सदस्य हो सकते हैं, हालाँकि वे सभी विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- (iii) राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेशों को स्वीकृति प्रदान करना या खारिज करना।
- (iv) संवैधानिक संस्थाओं जैसे राज्य वित्त आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग आदि की नियमित रिपोर्टों पर विचार करना।

(2) वे मामले जिनमें विधानसभा की शक्तियाँ ज्यादा हैं:

- (i) धन विधेयक सिर्फ विधानसभा में ही आरंभ किये जा सकते हैं (विधान परिषद में नहीं)। विधान परिषद उनमें न तो संशोधन कर सकती है, न ही उन्हें खारिज कर सकती है। वह अधिक से अधिक उन्हें 14 दिनों तक रोक सकती है या 14 दिनों के भीतर संशोधन संबंधी सिफारिशें भेज सकती है। विधानसभा इन सिफारिशों को स्वीकार भी कर सकती है और खारिज भी। हर स्थिति में विधानसभा की राय ही अंतिम मानी जाती है।
- (ii) वित्तीय विधेयक [जिसको संबंध अनुच्छेद 207(1) के साथ है] केवल विधानसभा में ही आरंभ किया जा सकता है; हालाँकि प्रस्तुत हो जाने के बाद ऐसे विधेयक के मामले में दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर हो जाती हैं।
- (iii) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, यह तय करने की शक्ति विधानसभा अध्यक्ष के पास है।
- (iv) बजट पारित करने की प्रक्रिया में भी विधानसभा को बढ़त हासिल है। वह विभिन्न मंत्रालयों द्वारा मांगे गए अनुदानों (grants) पर विचार-विमर्श भी करती है तथा उन्हें पारित भी करती है। विधान परिषद उन पर बहस तो करती है, किंतु उन्हें पारित नहीं करती।
- (v) साधारण विधेयक के मामले में भी अंतिम शक्ति विधानसभा के पास है। विधानसभा द्वारा पारित विधेयक को विधान परिषद ज्यादा से ज्यादा 4 महीने तक रोक सकती है- पहली बार में 3 महीने और दूसरी बार में 1 महीना। इस मामले में उसकी शक्ति सिर्फ विलंब करने तक सीमित है और वह राज्यसभा से भी कमजोर है।
- (vi) मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility) विधानसभा के प्रति होता है। विधानसभा अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से मंत्रिपरिषद को हटा सकती है, किंतु विधान परिषद के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है।
- (vii) विधानसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में मतदान करते हैं पर विधान परिषद के सदस्यों को यह अधिकार हासिल नहीं है।
- (viii) राज्यसभा के चुनावों में भी विधानसभा के सदस्य ही भाग लेते हैं, विधान परिषद के नहीं।
- (ix) विधान परिषद का अस्तित्व ही विधानसभा की इच्छा पर निर्भर है। यदि विधानसभा विधान परिषद के उत्सादन के लिए विशेष बहुमत से संकल्प पारित कर देती है तो संसद विधान परिषद को समाप्त कर सकती है।

स्पष्ट है कि विधान परिषद शक्तियों के मामले में विधानसभा के आसपास भी नहीं पहुँचती है। बहुत से कानूनविदों की राय है कि वह एक अनावश्यक बोझ है जिसे हटा दिया जाना चाहिए। अब सचमुच इस प्रश्न पर गंभीर विमर्श का समय आ गया है कि विधान परिषद हमारे राज्यव्यवस्था के लिए सहायक है या बाधक?

अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions for Practice)

1. किसी राज्य में विधान परिषद के सृजन या उत्सादन की प्रक्रियाओं में सम्मिलित तत्व है/हैं-

- (i) किसी राज्य में विधान परिषद का सृजन या उत्सादन संबंधी विधि बनाने का अधिकार संसद को है।
- (ii) किसी राज्य में विधान परिषद के सृजन या उत्सादन के लिए संबंधित राज्य को इस आशय का संकल्प पारित करना आवश्यक होता है।
- (iii) ऐसा संकल्प विधान सभा की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित होना अनिवार्य है।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) (i) और (ii)
- (3) (ii) और (iii)
- (4) (i), (ii) और (iii)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये-

- (i) वर्तमान में जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त 5 राज्यों में विधान परिषद अस्तित्व में है जबकि शेष 22 राज्यों में एक ही सदन है।
- (ii) जम्मू-कश्मीर का पृथक संविधान है जिसके तहत दो सदनों वाले विधान मंडल की व्यवस्था की गई है।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

3. विधान परिषद की संरचना के संबंध में कौन-सा कथन सुप्रेलित नहीं है?

- (1) विधान परिषद के सदस्यों की कुल संख्या किसी भी स्थिति में 40 से अधिक नहीं और उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक-तिहाई से कम नहीं होगी।
- (2) संसद को अधिकार दिया गया है कि वह विधि बनाकर किसी राज्य की विधान परिषद की संरचना निर्धारित कर सकती है।
- (3) राज्यपाल द्वारा मनोनीत होने वाले सदस्यों को छोड़कर शेष सभी सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है।
- (4) राज्यपाल द्वारा मनोनीत और विधानसभा द्वारा निर्वाचित सदस्यों को छोड़कर शेष सभी सदस्य प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुने जाते हैं।

4. विधान परिषद की संरचना के संदर्भ में कौन-सा/से कथन असत्य है/हैं?

- (i) कुल संख्या का 1/3 भाग राज्य की विधान सभा के सदस्यों द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से निर्वाचित होता है जो विधानसभा के सदस्य नहीं हैं।

(ii) कुल सदस्य संख्या का 1/6 भाग उस राज्य में निवास करने वाले ऐसे व्यक्तियों के निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित होता है जो कम से कम 3 वर्ष पूर्व से स्नातक हैं या 3 वर्ष पूर्व से कोई ऐसी योग्यता रखते हैं जिसे संसद ने विधि द्वारा किसी विश्वविद्यालय के स्नातक के समतुल्य घोषित किया है।

(iii) कुल सदस्य संख्या का 1/12 भाग राज्यपाल द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।

कूट-

- (1) केवल (i)
- (2) (i) और (ii)
- (3) (ii) और (iii)
- (4) उपरोक्त में से कोई नहीं।

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये-

- (i) राज्यपाल द्वारा मनोनीत होने वाले सदस्यों को छोड़कर विधान परिषद के शेष सभी सदस्यों के चुनाव की वही पद्धति है जो राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा राज्यसभा के सदस्यों के निर्वाचन में प्रयुक्त होती है।
- (ii) विधान परिषद के चुनाव हेतु प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र संसद की विधि द्वारा या संसद की विधि के अधीन निर्धारित किए जाते हैं।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i)
- (2) केवल (ii)
- (3) (i) और (ii) दोनों
- (4) न तो (i) न ही (ii)

6. राज्यपाल द्वारा विधान परिषद के लिए सदस्यों का मनोनयन किन आधारों पर होता है?

- (i) साहित्य
- (ii) विज्ञान
- (iii) कला
- (iv) समाज सेवा
- (v) सहकारी आंदोलन

कूट-

- (1) (i), (ii) और (iii)
- (2) (i), (ii) और (iv)
- (3) (i), (ii), (iii) और (iv)
- (4) उपरोक्त सभी।

7. निम्नलिखित में कौन-से कथन सत्य हैं?

- (i) विधान परिषद एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता।
- (ii) विधान परिषद के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष होता है।
- (iii) प्रत्येक 2 वर्षों के बाद विधान परिषद के 1/3 सदस्य सेवानिवृत्त हो जाते हैं तथा उतने ही नए सदस्यों का निर्वाचन का विधान होता है।

- (iv) यदि किसी सदस्य के त्यागपत्र या मृत्यु के कारण बीच में ही किसी नए सदस्य को निर्वाचित या मनोनीत किया जाता है तो उसकी सदस्यता पूरे 6 वर्षों के लिए होती है।

कूट-

- (1) (i) और (ii) (2) (i), (ii) और (iii)
 (3) (i), (ii) और (iv) (4) (i), (ii), (iii) और (iv)
8. किसी राज्य की विधान सभा में सदस्यों की अधिकतम संख्या कितनी हो सकती है?
- (1) 550 (2) 552
 (3) 250 (4) 500
9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये-
- (i) वर्तमान में विधानसभा में सदस्यों की संख्या 60 से 500 तक निर्धारित की गई है।
 (ii) वर्तमान में तीन राज्य ऐसे हैं जहाँ की विधानसभाओं में सदस्यों की संख्या 60 से कम है।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

10. निम्नलिखित में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं-

- (i) लोकसभा की तरह राज्य की विधान सभाओं में भी दो आंग्ल-भारतीय समुदाय का मनोनयन निर्धारित किया गया है।
 (ii) 95 वें संविधान संशोधन, 2009 के द्वारा राज्य विधानसभा में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं आंग्ल-भारतीय समुदाय से संबंधित आरक्षण तथा मनोनयन की व्यवस्थाएँ 26 जनवरी 2026 तक के लिए बढ़ा दी गई हैं।

कूट-

- (1) केवल (i) (2) केवल (ii)
 (3) (i) और (ii) दोनों (4) न तो (i) न ही (ii)

